मध्यएसिया का इतिहास

खण्ड १

राहुल सांकृत्यायन



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

मध्यएसिया का इतिहास

खण्ड १

राहुल सांकृत्यायन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रथम संस्करण; वि० सं० २०१३, सन् १९५६ ई०

मूल्य १०॥) सजिल्द १२)

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

समर्पण

परंगत डा० काशीप्रसाद जायसवालको
जिनकी स्मृति अठारह वर्षोंके अनन्त वियोगके बाद भी
मेरे जीवनकी प्रिय निधि है

वक्तव्य

"विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्"

बिहार-राज्य के शिक्षा-विभाग के अन्तर्गत यह परिषद् एक साहित्यिक संस्था है। अबतक इसके द्वारा दो दर्जन महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। उन्हें समस्त हिन्दी-संसार ने पसंद भी किया है।

सन् १९५४ ई० में, बिहार के तत्कालीन शिक्षासचिव श्री जगदीशचन्द्र माथुर आइ० सी० एस० के अनुरोध से, परिषद् ने इस पुस्तक का प्रकाशन स्वीकृत किया था। किन्तु परिषद् की स्वीकृति से पूर्व ही इसके दूसरे खण्ड के कई फार्म लखनऊ में छप चुके थे। तब भी, हिन्दी में ऐसी पुस्तक का अभाव और एक अधिकारी विद्वान् द्वारा उस अभाव की पूर्ति का सत्प्रयास देखकर, परिषद् ने अपने नियमों के अपवाद-स्वरूप, विशेष परिस्थिति में, वह स्वीकृति दी थी।

इसलिए कि लेखक ने इस पुस्तक के दूसरे खण्ड की छपाई पहले ही शुरू करा दी थी, इस पहले खण्ड की पाण्डुलिपि भी—दोनों खण्डों की एक-सी छपाई कराने के विचार से—लखनऊ भेज दी गई। परन्तु कुछ अनिवार्य कारणों से जब दूसरे खण्ड की ही छपाई में विलम्ब होने लगा, तब प्रस्तुत खण्ड को पहले ही प्रकाशित करना आवश्यक समझ, प्रयाग में इसकी छपाई का प्रबन्ध करना पड़ा; क्योंकि इसके लिए लखनऊ में खरीदा हुआ कागज भी प्रयाग भेजना था।

हम चाहते थे कि दोनों खण्ड एक साथ ही प्रकाशित हों। पर दूसरा खण्ड इससे कुछ बड़ा है। फिर भी हम उसे अविलम्ब प्रकाशित करने में प्रयत्नशील हैं। आशा है कि वह भी शीघ्र ही पाठकों की सेवा में पहुँचेगा। तबतक इस खण्ड का पहले निकल जाना उचित ही हुआ।

इस पुस्तक में विभक्तियों के चिह्न सर्वत्र शब्दों के साथ लगे हुए हैं। परिषद् की अन्य पुस्तकों में ऐसा नहीं है। किन्तु इस पुस्तक के दूसरे खण्ड के कई फार्म जैसे पहले छप चुके थे वैसे ही इस खण्ड के भी छपवाने पड़े। कारण, दोनों खण्डों की छपाई में समता रखना आवश्यक प्रतीत हुआ। विभक्तियों को शब्दों से हटाकर या सटाकर लिखने-छापने की परिपाटी आज भी हिन्दी-जगत् में प्रचलित है। अतः पहले के छपे हुए पृष्ठों को नष्ट करके परिषद् की परम्परा के अनुसार पुनः नये सिरे से छपाई शुरू कराना हमने अनावश्यक समझा; क्योंकि पुस्तक के महत्त्व में इससे कोई बाधा नहीं पड़ी है।

अस्तु। भारत का इतिहास पढ़ने पर प्रायः ऐसा अनुभव होता है कि मध्य एसिया के इतिहास से भारत के इतिहास की कितनी ही घटनाएँ सम्बद्ध हैं। परन्तु हिन्दी में मध्य एसिया के कुछ देशों के भौगोलिक एवं ऐतिहासिक विवरण तो मिलते हैं, सम्पूर्ण मध्य एसिया का क्रम-बद्ध इतिहास नहीं मिलता। इसलिए अनेक ऐतिहासिक जिज्ञासाओं का समाधान नहीं हो पाता था। आशा है कि अब यह पुस्तक भारत और उसके पड़ोसी देशों के इतिहास की शृंखला को अटूट सिद्ध करके पाठकों को सन्तुष्ट करेगी।

इस पुस्तक के समर्थ लेखक महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायनजी अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् हैं। इस युग के आप एक धुरन्धर साहित्यकार हैं। साहित्यिक शोध का क्षेत्र आपके अनवरत अनुसन्धानात्मक परिश्रम एवं लेखनी-संचालन से बहुत उर्वर हुआ है। आपकी अथक लेखनी ने कितने ही ऐसे विषयों को सनाथ किया है, जिनकी ओर हिन्दी-संसार के विद्वज्जनों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था। अतः हिन्दी-साहित्य आपकी खोज की लगन और देन से बहुत लाभान्वित हो रहा है। विश्वास है कि यह पुस्तक भी हिन्दी-साहित्य के एक चिर-अनुभूत अभाव की पूर्ति करेगी तथा ऐतिहासिक शोध के कामों में भी सहायक होगी।

शिवपूजन सहाय
(संचालक)

दीपावली, संवत् २०१३ वि०



लेनिन

भूमिका

भारतके इतिहास की जगह मध्य-एसियाके इतिहासपर मैंने क्यों कलम उठाई, यह प्रश्न हो सकता है। उत्तर आसान है। भारतके इतिहासपर लिखनेवाले बहुत हैं। जिसका अभाव है, उसकी पूर्ति करना जरूरी था, यही विचार इस प्रयासका कारण हुआ। अपनी यात्राओंमें में रूस और मध्य-एसियाके सम्पर्कमें आया, उनके ऊपर कितनी ही पुस्तकें लिखीं और अनुवादित कीं। उसी समय विचार आया, आधुनिक ऐतिहासिक घटनाओंको पिछले इतिहासकी पृष्ठभूमिमें देखना चाहिये। इस तरफ आगे बढ़ा, तो यह भी मालूम हुआ, मध्य-एसियाका इतिहास हमारे देशके इतिहाससे बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। द्रविड़ (फिनो-द्रविड़) जाति—जिसने मोहनजोडरो और हड़प्पाके भव्य नगर और यशस्वी सिन्धु-सभ्यताको प्रदान किया—का सम्बन्ध मध्य-एसियासे भी था। हालके पुरातात्विक अनुसन्धान बतलाते हैं, कि आर्योंका सम्पर्क द्रविड़ जातिसे सबसे पहले सिन्धु-उपत्यकामें नहीं, बल्कि ख्वारेज़्ममें हुआ था। वहां पराजित करके उनका स्थान ले आर्य भारतकी ओर बढ़े। उनका बढ़ाव पिछली विजित भूमिको बिना छोड़े आगे की तरफ होता रहा, इसीलिये भारतीय आर्योंकी परम्परा में अपने-पुराने छोड़े हुये स्थानका उल्लेख नहीं पाया जाता। आर्योंकी अनेक लहरोंके बाद ग्रीक लोगोंने भी बाख्त्रियासे आकर भारतके कुछ भाग पर शासन किया। शक-कुषाण भी वहांसे ही होकर आये। तथाकथित हूण—हेफ्ताल—भी मध्य-एसियासे भारतकी ओर बढ़े। तुर्क और इस्लाम भी वहांसे चलकर भारत आया। इन शासकों और उनकी जातियोंके इतिहासका एक भाग मध्य-एसियामें पड़ा रहा, जिसे जाने बिना हम अपने इतिहासको समझनेमें गलती कर बैठते हैं। इस दृष्टि से भी मुझे इस पुस्तकके लिखनेकी प्रेरणा मिली।

यद्यपि मैं अपने इतिहासको मध्य-एसिया—अर्थात् मुख्य चीन, भारत-अफगानिस्तान, ईरान, कास्पियन समुद्र और रूस द्वारा घिरी हुई भूमि—तक ही सीमित रखना चाहता था, लेकिन इतिहासकी नदी बहुत टेढ़ी-मेढ़ी बहती है, जिसके कारण मुझे इन सीमांत देशोंके इतिहास में भी कहीं-कहीं भटकना पड़ा। वैसा न करनेसे विषयके समझनेमें कठिनाई होती।

नामोंके उच्चारणमें हिन्दीमें अभी हमारी कोई परम्परा नहीं बनी है, विशेषकर उन नामोंके बारेमें, जो कि पहली बार इस पुस्तकमें आ रहे हैं। अंग्रेजों और अंग्रेजीका उच्चारण सबसे भ्रष्ट होता है, इसलिये मैंने उससे बचनेकी कोशिश की है। जर्मन इसके बारेमें ज्यादा अच्छे रहते हैं, और अपनी अधिक उच्चारणानुरूप लिपिके कारण रूसी सबसे अच्छे हैं। पर, मूल भाषाओंकी लिपियोंमें जो दोष हैं, उसे वह कैसे दूर कर सकते हैं? मंगोल लिपिमें मुश्किलसे डेढ़ दर्जन अक्षर हैं। वहां क, ग, और ह में कोई अन्तर नहीं है। कगान, खगान, हगान, हकान चाहे जिस तरह एक ही लिखे शब्द को पढ़ लीजिये। चीनी नामोंके उच्चारणमें भी ऐसी कठिनाई है। इसके अतिरिक्त पुस्तककी छपाई जिस निराशाजनक परिस्थितियोंमें वर्षों रुक-रुक

कर होती रही, उसके कारण मैं नामोंके एक समान उच्चारणको बराबर इस्तेमाल नहीं कर सका। इस तथा दूसरी बातोंमें भी विषय-सूचिमें दिये गये रूपको अन्तिम मानना चाहिये।

पुस्तककी सामग्रीका बहुत बड़ा भाग मैंने रूसमें अपने दो सालके प्रवास (१९४५-४७ ई०) में जमा किया। इसमें शक नहीं, मध्य-एसियाके इतिहासकी जितनी सामग्री रूस और रूसी भाषामें है, उतनी अन्यत्र नहीं मिल सकती। जिस तत्परतासे वहां ऐतिहासिक और पुरातात्विक अनुसन्धान हो रहे हैं, उनके कारण हर साल नई-नई सामग्री प्राप्त हो रही है। अफसोस है १९४७ के बादकी उपलब्ध सामग्रीमें बहुत कम हीका इस्तेमाल मैं कर सका। प्रो० ताल्स्तोफ़ कई वर्षोंसे पुरातात्विक अभियानोंके नेता होते रहे हैं। इस विषयमें—विशेषकर ख्वारेज्म, कराकुम और किजिलकुमकी भूमिके सम्बन्धमें—उनका ज्ञान अद्भुत है। सप्तनदके बारेमें डा० बेर्नस्तामका अध्ययन गंभीर है। इन दोनों विद्वानोंसे जब-जब मुझे मिलनेका मिला, उन्होंने समय और श्रमका कुछ भी न खयाल करके दिल खोल कर अपने ज्ञानसे लाभ उठानेका मुझे अवसर दिया। इसका उल्लेख मैं अपनी यात्रा-पुस्तक "रूसमें पच्चीस मास" में कर चुका हूं। मैं अपनी कुछ कल्पनाओंमें उतना आग्रहवान् न होता, यदि उनके साथ विचार-विनिमयके बाद उनमें सार न रता। मध्य-एसियाका इतिहास लिखनेके अधिकारी सोवियत् विद्वान् ही हो सकते हैं, लेकिन अभी वह भिन्न-भिन्न कालों और अंशोंपर ही अनुशीलन कर रहे हैं। न मालूम कब तक वह इस अनुशीलनको क्रमबद्ध इतिहासके महाग्रंथके रूपमें परिणत करेंगे। उस ग्रंथके तैयार होने तक मेरे इस प्रयासका मूल्य रहेगा ही।

दो सालके बाद रूससे भारत चले आनेका एक बड़ा कारण संगृहीत सामग्री और अध्ययनको पुस्तकके रूपमें लानेका खयाल था। मैंने वहां चार-पांच मन पुस्तकें जमा की थीं। इनके अतिरिक्त दो वर्षमें पढ़ी पुस्तकोंसे बहुत से नोट लिये थे। वहां रहते पुस्तक लिखनेपर वह प्रेसका मुंह देख सकती, इसमें पीछेके तजर्बेने भी सन्देह पैदा कर दिया। इन्हीं पुस्तकोंको सुरक्षित लानेके खयालसे मैं अफगानिस्तानके छोटे रास्तेको छोड़ इंगलैण्ड होते भारत लौटा। यदि सीधे रास्ते लौटा होता, तो अगस्त १९४७ में पश्चिमी पाकिस्तानमें आता, फिर न मालूम सामग्री और संग्राहक पर क्या बीतती?

इतनी बड़ी पुस्तकको छापनेवाले मिलने मुश्किल थे। एक प्रकाशकने पहिली जिल्दके बीस-पचीस पृष्ठ कम्पोज कर लिये, और दूसरी जिल्दको नेशनलहेरल्ड प्रेसमें छापनेके लिये दिलवा दिया; पर अन्तमें यह भार उनको अपनी शक्तिसे बाहर मालूम हुआ। नेशनल हेरल्ड प्रेसने मेरी जिम्मेवारीपर उस जिल्दको छापना शुरू किया, जिसके लिये कागज भी मैं दे चुका था। पहलेवाले प्रकाशकके हाथ ढीला करनेपर यह सारा बोझ मुझे बर्दाश्त करना पड़ा—और वह पहला नहीं दूसरा खंड था! श्री जगदीशचन्द्र माथुरने पुस्तककी पाण्डुलिपिको देखकर इसे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्को देनेके लिये कहा। पर पहिले तो पहलेवाले प्रकाशकको तैयार करना था, जिन्हें मैं वचन दे चुका था। वह राजी हुये। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्ने प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रकट की, जिसमें श्री जगदीशचन्द्र माथुर और परिषद्के संचालक-मण्डल ने जो प्रयत्न किया, वह न होता, तो पुस्तककी सद्गति कीड़े-मकोड़े ही करते।

पुस्तकका पहला जिल्द सम्मेलन मुद्रणालय प्रयागमें छपा है, और दूसरा नेशनल हेरल्ड प्रेस लखनऊमें। सम्मेलन मुद्रणालयके अध्यक्ष श्री सीताराम गुंठे अपनी चुस्ती और कार्य-

क्षमताके लिये प्रसिद्ध हैं। उन्होंने इसको जिस तत्परतासे छापा, उसके लिये मैं उनका हृदयसे कृतज्ञ हूं। पहले नेशनल हेरल्डने फुर्तीसे छापना शुरू किया था, फिर उसने वर्षों तक चुप्पी साध ली। हर्ष है, नये प्रबन्धकने अब तत्परता दिखलाई है। आशा है, दूसरा खंड भी जल्दी निकल जायगा।

लिखावट खराब होने और अभ्यास छूट जानेके कारण, मैं पुस्तक को टाइपराइटर-पर बोल कर लिखाता हूं। मुझे परिश्रमका अभ्यास है, और बाहरी बाधा उपस्थित न हो, तो सारा समय लिखने-पढ़नेमें बिता सकता हूं। मेरे साथ चलनेवाले सहायक बहुत कम मिल सकते हैं। श्री मंगलदेव परियार इस विषयमें मेरी ही तरह निरलस हैं। उनकी सहायता और द्रुतगतिने इस पुस्तकमें बड़ी सहायता की है।

त्रुटियोंके बारेमें विषय-सूचीके हेडिंगों और उच्चारणोंको अन्तिम मानना चाहिये।

मसूरी,
४-६-५६

राहुल सांकृत्यायन

मध्य-एसियाका इतिहास (१)

विषय-सूची

अध्याय — पृष्ठ

भाग १.

(प्रागैतिहासिक मानव १ लाख—३००० वर्ष पूर्व) १

§१. पुराकल्प ३

§१. पृथिवी पर प्राणी ३

§२. प्राकृतिक भूगोल ५

§३. जलवायु-परिवर्तन ७

§४. वनस्पति क्षेत्र में परिवर्तन ८

§५. हिमयुग ९

२. पुरापाषाणयुग (..—२६०००—१३००० वर्ष पूर्व) ११

§१. मानव-जातियां ११

§२. निम्न-पुरापाषाण युग १४

(१) जावा मानव १४

(२) पेकिंग-मानव १६

(३) हैडलवर्ग-मानव १७

(४) मुस्तेर-मानव २०

३. उपरि-पुरापाषाणयुग और मध्य-पाषाणयुग २०

§१. ओरन्यक (१५००० वर्ष पूर्व) २०

(१) क्रोमेनों २०

(२) ग्रिमाल्दी २०

(३) सोलूत्रे २२

(४) मद्लेन २२

§२. मध्यपाषाण (१२००० पूर्व) २३

§३. मानव शरीर-लक्षण २४

(१) शरीर-लक्षण २४

(२) जातियों का सम्मिश्रण २५

(३) रक्त-भेद २६

४. मध्य-एसिया के आदिम मानव (—२५००० ई० पू०) २८

§१. मध्यपाषाण-युग २८

(१) तेशिकताश मानव २८

(२) जीवनचर्या ३१

(३) भाषा ३३

§२. मध्यपाषाण-युग ३५

अध्याय — पृष्ठ

५. नवपाषाण-युग, (५००० ई० पू०) अ-नवपाषाण-युग (३००० ई० पू०) ३७

§१. नवपाषाण-युग ३७

(१) कृषि ३७

(२) पशुपालन ३९

(३) मृत्पात्र ४०

(४) पाषाणास्त्र ४१

(५) जलवायु ४१

(६) अनौमें नवपाषाण-युग ४२

§२. अनवपाषाण-युग ४४

§३. मानव-जाति ४५

भाग २.

(धातु-युग ३०००—७०० ई० पू०)

१. ताम्र-युग (२५००—१५०० ई० पू०) ५१

१. युगकी विशेषता ५१

२. ताम्र-उद्योग ५२

३. व्यापार ५३

४. हथियार ५४

५. राज-व्यवस्था ५४

६. अनोमें ताम्रयुग ५७

७. ख्वारेज्ममें ताम्रयुग ५८

८. लिपि आदि ५८

२. पित्तल-युग (१५००—७०० ई०पू०) ६०

१. युगकी विशेषता ६०

२. ख्वारेज्ममें पित्तल-युग ६१

३. सप्तनदमें पित्तल-युग ६१

४. अनौमें पित्तल-युग ६२

५. जातियां- ६२

३. लौहयुग (७०० ई० पू०) ६४

१. शकद्वीप ६४

२. शक लोग ६७

भाग ३.

उत्तरापथ (ई० पू० ६००—७२० ई०)

१. शक (६००—१७४ ई० पू०) ७३

१. शक-जातियां ७३

अध्याय	पृष्ठ
२. अलताई के शक	७५
२. हूण (ई० पू० ३००—३०० ई०)	७९
§१. प्राचीन हूण	७९
§२. हूण पराभव	८१
§३. पीछे के हूण शासक	८७
(१) वूगी और हूण	८८
(२) हूण पराभव	८९
(३) उत्तरी और दक्षिणी शानूयू	९२
३. वू-सुन, अवार	
§१. वू-सुन् (३००-१०० ई० पू०)	९७
(१) संस्कृति	९८
(२) इतिहास	९८
(३) वू-सुनों के पड़ोसी	१००
(४) वूतुन् राजा (सेन्-चू)	१०२
§२ अवार ४००-५८२ ई० पू०)	१०४
(१) अवार	१०४
४. तुर्क (५४६—७०४ ई०)	
१. तुर्क साम्राज्यकी स्थापना	१०६
२. शव-क्रिया	१०८
३. तुर्क-राजावलि	१०९
(१) इल-खान तू-मिन	११०
(२) इसि-गी	११०
(३) मू-यू खान	११०
(४) तोबा खान	१११
(बौद्ध धर्मका प्रवेश)	१११
(५) शेतू शबोलियो	११२
(६) दूलन खान	११३
(७) दा-तू बुगा खान	११५
(८) खे-ली खान	११५
(९) तु-ली खान	११७
(१०) सि-बु-ली खान	११८
(११) चे-बी खान	११९
४. अशेना-निशो	
(१२) गु-दु-लु कगान	१२०
(१) मोचो	१२१
(२) मो-गि-ल्यान्	१२४
५. पश्चिमी तुर्क (५८०—७०४ ई०)	
१. दालोव्यान	१२८
२. नीली	१२९
३. चुरो कगान	,,
४. शे-गुइ	१३०
५. तुन्-शे-खू	१३०
६. क्यू-ली सि-बि खान	१३३
७. सि शे-खू	१३४
८. निशू दुलु-खान	१३४
९. शबोलो खिलिश खान	१३
१०. इबी दुलू-खान	१३
११. इबी शबोलो शे-खू	१३४
१२. अशिना शिन्	१३४
१३. सोगे	१३५
१४. सु-लू	१३५
(तुर्क जातियां)	१३७
भाग ४.	
(दक्षिणापथ ई० पू० ५५०—६७३ ई०)	
१ अखमनी (५५०—३२६	
१. कुरव (कौरोश)	१४६
२. दारयबहु	१४७
(१) शासन-व्यवस्था	१४८
(२) धर्म	१५१
(३) क्षयार्श	१५१
(४) दारयबहु	१५४
(५) अलिकसुंदर	१५४
२. कंग ई० पू० ५००—१०० ई०)	
१. केल्तमीनार संस्कृति	१५८
२. ताजाबागायब ,,	१५९
३. ताजामीराबाद ,,	१६०
४. आदिम कंग	,,
५. कंग	,,
(कंग-कुषाण)	
६. कुषाण-अफ्रीग	१६२
७. अफ्रीग संस्कृति	,,
३. ग्रीक-बाख्त्र (३३०—१३० ई० पू०)	
३. ग्रीक-बाख्त्री (२६०–१३० ई० पू०)	१६४
§१. अलिकसुंदर	,,
§२. सेल्युक (१)	१६७
§३. ग्रीको-बाख्तरी	१६८
(तुलनात्मक बाख्तरी ग्रीक-वंश)	१६९
(१) दिवोदात (१)	१७०
(२) दिवोदात (२)	१७०
(३) एउथुदिम	१७१
(४) दिमित्रि	१७३
(भारत-विजय)	१७४
(५) एउक्रतिद	१७८
(६) हेलियोकल	१७९
(७) अन्तिलियकिद	१८०
§४. भारतमें	

अध्याय	पृष्ठ
(१) मेनान्दर	१८१
(२) स्त्रात (१)	१८१
(३) स्त्रात (२)	१८१
§५. राजव्यवस्था	१८२
§६. कला	१८५
४. शक (ई० पू० १३०—४२५ ई०)	
१. यूची	१८७
§१. क्षहरात वंश	१९०
२ मोग	१९०
३ पह्लव	१९१
(तुलनात्मक शक-पह्लव वंश)	
§२. कुषाण	१९५
१ कुजुल कदफिस्	१९६
२ विम कदफिस्	१९८
३ कनिष्क (१)	१९९
४ वशिष्क	२०७
५ कनिष्क (२)	"
६ हुविष्क	"
७ वासुदेव	२०९
पिरो	२१०
५. हेफताल (४२५—५५७ ई०)	
१ राजा	"
२ तुलनात्मक हेफताल-अवार वंश	"
३ ईरानी और हेफ्ताल	२१३
६. तुर्क (५५७—७०४ ई०)	
१ दालोबियान	"
२ चुलो कगान	"
३. तुलनात्मक तुर्क-वंश	२१७
४. शे-गुइ और ५ तुन-शे-खू	२१८
५. स्वेन्-चाङ का देश-वर्णन	२१९
६. अंतिम तुर्क	२२६
(१) शेरेकिश्वर, सेकेंजकेत	"
(२) बेन्दून	"
(३) तगशादे	२२७
भाग ५.	
(उत्तरापथ ७६६—९४० ई०)	
१. आगूज,उइगुर (..६२९—९२६ ई०)	
§१. आगूज	२३१
§२. उइगुर	२३३
§३. उइगुर-खाकान	२३४
१. जिकेन्	"
उइगुर-राजावली	
२. बोसत	२३५

अध्याय	पृष्ठ
३. तुमेत	२३६
४. बोरन,	२३६
५. बीरुत पीली	"
६. तु-खे-ली	"
७. बखतेवर	"
८. पुत्र	२३७
९. कुतुलिग बिगा	"
१०. मोइनचुरा	"
११. यितिकिन	२४०
१३. दुर्मोगो	"
१५. आचो	२४२
१६. कुतुलुग	"
१७. काउ-साङ	"
१८. गुदुलुग जिगिन	"
१९. भाई	२४३
२०. भतीजा	"
२१. ...	"
२२. ओके	२४४
२३. ओ-नेयन	"
२४. अन्तिम उइगुर	"
आतुर्युक	२४५
२. करलुक (७३९—९४० ई०)	
१. करलुक (करलोग) जाति	२४८
२. धर्म	२४९
३. करलुकोंके नगर	२५०
भाग ६	
(दक्षिणापथ ६७३—९०० ई०)	
१. अरब (..—६७३—८१२ ई०)	
§१. पैगम्बर मुहम्मद	
(नई आर्थिक व्याख्या)	२५७
§२. आरंभिक खलीफा	२५८
१. अबू-बकर	२५९
२. उमर	२५९
३. उस्मान	२६१
४. अली	२६२
२. उमैय्या वंश(खलीफा ६६१—७४९ ई०)	
१. म्वाविया मेरवान (१)	२६४
(१) (तुलनात्मक अरब वंश)	२६६
(२) (अरब-विजय के समय)	२६८
२. यजीद मेरवान-पुत्र	२७१
३. म्वाविया (२)	२७२
४. अब्दुल-मलिक	"
५. वलीद	२७३

अध्याय	पृष्ठ
कुतैब मुस्लिम-पुत्र वाहिली	२७३
स्वतंत्रताका अंतिम प्रयास	२७९
६. सुलेमान	२८२
७. उमर (२)	२८५
८. यजीद (२)	२८६
९. हिशाम	२८७
शिया-आंदोलन	२८९
अबू-मस्लिम	२९४
३. अब्बासी (खलीफा ७४९—८१८ ई०)	
१. सफ्फाह अबुल्-अब्बास	२९७
२. मंसूर	३०१
३. मेंहदी	३०४
(मुकन्ना-विद्रोह)	३०५
४. हादी	३०६
५. हारून रशीद	३०७
६. अमीन	३०८
७. मामून	३०९
(अरबी साहित्य)	"
(सिक्के)	३११
४. ताहिरी (८१८—७२ ई०)	
१. ताहिर (१)	३१३
(तुलनात्मक वंश)	"
२. तलहा	३१४
३. अली	३१५
४. अब्दुल्ला	"
५. ताहिर (२)	३१६
(शासन-व्यवस्था)	"
६. महम्मद	"
५. सफ्फारी (८६१—९३० ई०)	
१. याकूब	"
२. अम्र सफ्फार	३१९
भाग ६	
(उत्तरापथ ९४०—१२१२ ई०)	
१. कराखानी (९४०—११२५ ई०)	
§१. उद्गम	३२६
§२. राजावलि	३२८
§३. राजा	"
१. शातुक कराखान	"
२ बोगराखान	"
३ इलिक नस्र	३२९
४ तुगान	"
५ कादिरखान यूसुफ	"
६ अरसलन खान सुलेमान	३३०
७ बोगरा खान	"
८ इब्राहीम	३३१
९ तुगरल कराखान युसुफ	"
१० तुगरल तैमन	३३२
११ बोगरा खान हारून	"
१२ कादिर खान जिबराईल	३३३
२. कराखिताई (१११५—१२१९ ई०)	
§१. उद्गम	"
§२. खित्तन सम्राट्	३३५
१. अपोकी	"
२. ताइ-चुङ	३३८
३. शी-चुङ	३३९
४. मू-चुङ	३४०
५. चिङ-चुङ मिंगची	"
६. शङ-चुङ	३४१
७. शिङ-चुङ	३४२
८. ताउ-चुङ	३४३
९. ताउ चू-ति	३४४
१०. ते-चुङ	३४५
§३. कराखिताई	३४७
१. येलू दैशी	"
२. गुरखान-पुत्री	३५०
३. येलू-इ-ले	"
४. चे-लु-गू	"
५. गुरखान	३५१
(१) मुस्लिम विद्रोह	"
ख्वारेज्मसे झगडा	३५२
(१) परंपरा	"
(२) परंपरा	३५३
६. कुचुलुक	३५५
(१) उस्मान खांसे झगड़ा	३५६
(२) मंगोलोंसे झड़प	३५७
भाग ७	
(दक्षिणापथ ८९२—१२२९ ई०)	३५९-६०
१. सामानी (८९२—९९९ ई०)	३६१
उद्गम	"
१. नस्र (१)	३६२
२. इस्माईल	"
३. अहमद	३६४
(फाराबी)	"
४. नस्र (२)	३६६
५. नूह (१)	"
६. अब्दुलमलिक (१)	

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
८. मन्सूर (१)	३६७	§२. उद्भव	४१७
९. नूह (२)	,,	§३. सुल्तान	४१८
बू-अली सीना	३६८	१. तुगरल मिकाईल-पुत्र	,,
१०. मंसूर (२)	३७०	२. अल्प अरसलन	४२१
११. अब्दुलमलिक (२)	३७१	३. मलिकशाह (१)	४२२
१२. मुन्तसिर	,,	(गज़ाली)	४२३
(१) सामानी शासन-व्यवस्था	३६३	४. महमूद (१)	४२४
(२) शिल्प और व्यवसाय	३७६	५. बरकियारुक	,,
२. कराखानी (९९३—११३१ ई०)		६. मलिकशाह (२)	४२५
उद्गम	,,	७. मुहम्मद	,,
१. इलिक नस्र	३८०	८. महमूद (२)	
२. इब्राहीम (१)	३८२	९. सिंजर	,,
३. इब्राहीम (२)	३८३	५. गोरी (११५६—१२०७ ई०)	४३२
४. शम्शुल्मूल्क	३८४	§१. कराखिताई	,,
५. खिज्र खान	३८६	§२. गोरी	४३३
६. अहमद	,,	१. गयासुद्दीन मुहम्मद (१)	४३४
९. महमूद तगिन	३८८	२. शहाबुद्दीन	४३६
१०. तमगाच बोगरा खान	३८९	३. गयासुद्दीन (२) महमूद	४३८.
११. किलिच तमगाच खान	,,	६. ख्वारेज्मी (१०७७—१२३१ ई०)	४३९
१२. रुकुनद्दीन महम्मद	३९०	§१. प्रवेशक	,,
१३. सिक्के	,,	तुलनात्मक वंशावलि	,,
३. गजनवी (९९८—१०५९ ई०)		§२. सुलतान	,,
§१. उद्गम	,,	१. अनोश तगिन	,,
१. अल्प तगिन	३९३	२. कुतुबुद्दीन मुहम्मद	४४०
२. सुबुक तगिन	३९४	३. अत्सिज	,,
३. तुलनात्मक वंशावलि	३९७	४. इल्-अरसलन	४४२
§२. राजावलि	३९८	६. तकाश	४४४
१. सुबुक तगिन	,,	(बौद्ध-ईसाई-जर्थुस्ती)	४४८
२. महमूद	,,	७. मुहम्मद (अलाउद्दीन)	४५०
३. महमूद और ख्वारेज्मशाह	४००	(१) शासन-व्यवस्था	४५५
(१) मामून (१)	,,	(२) मांसे झगडा	४५६
(२) मामून (२)	,,	७. चिंगिसखान (१२१९—२९ ई०)	४५८
(३) अबुल हारिस	४०२	§१. तैयारी	४५९
(१) अल्तुनताश	४०३	१. शासन, शिक्षा	४६१
३. मसऊद	४०९	२. ख्वारेज्मशाह से वैमनस्य	४६३
(२) हारून ख्वारेज्मशाह	४१०	§२. अभियान	४६६
(सल्जूकी तुर्कमान)	४११	१. अन्तर्वेद-विजय	४६७
(बूरीतगिन)	४१३	२. जूचीकी सफलता	४७०
४. मुहम्मद	४१५	३. मुहम्मद का अन्त	४७२
५. मौदूद	,,	४. जलालुद्दीन ख्वारेज्मी	४७५
६. इब्राहीम	,,	५. विद्या-केंद्र ख्वारेज्म	४७६
४. सल्जूकी (१०३६—११५७ ई०)		६. ख्वारेज्मका पतन	४७७
§१. राजावलि	४१६	७. जलालुद्दीन भगोडा	४७९

अध्याय	पृष्ठ
८. गजनीका झगडा	४८१
९. एक सफलता	"
१०. पराजय	४८२
११. खुरासान-विद्रोह-दमन	४८४
§३. पश्चिमकी विजय-यात्रा	४८५
§४. मंगोल युद्ध-साधन	४८६
§५. चिंगिस सम्राट्	४८८
१. चाङ्चुन की यात्रा	"
२. चिंगिस मंगोलिया लौटा	४९०
३. जूचीकी मृत्यु	४९२
४. चिंगिसकी मृत्यु	"
५. चिंगिसकी समाधि	४९३
६. जलालुद्दीनका अवसान	"
७. परिणाम	"
८. याम्सा	४९४
परिशिष्ट	
§१. पुस्तक-सूची	४९९
§२. नामानुक्रमण	५०४
§३. ग्राक-बाख्तरी मुद्रायें	
मानचित्र-चित्र-सूची	
१. जलनिर्गम-रहित भूमि	७
२. पुरापाषाण मानव	१४
३. जावा मानव	१५
४. पेकिंग मानव	१६
५. मुस्तेर (नियंडर्थल) मानव	१८
६. क्रोमेग्नों मानव	१९
७. तेशिक ताश गुहा	२९

अध्याय	पृष्ठ
८. " हथियार	३०
९, १०. शक	६५, ६८
११. उत्तरापथ, दक्षिणापथ	५७
१२. माउदुन-साम्राज्य	८३
१३. वूसुन-भूमि	९७
१४. अवार-साम्राज्य	१०५
१५. तोबा-साम्राज्य	३९१
१६. पूर्वी-पश्चिमी तुर्क	३९१
१७. दारयबहु-साम्राज्य	१५३
१८. ख्वारेज्मी संस्कृतियां	१५९
१९. "	१६३
२०. अलिकसुंदर-साम्राज्य	१६६
२१. देमित्रि "	१७४
२२. कनिष्क "	२००
२३. कनिष्क-मूर्त्ति	२०२
२४. हेफ्ताल-साम्राज्य	२१५
२५. उइगुर राज्य	२४१
२६. अरब-साम्राज्य	२६०
२७. उमैया "	२६४
२८. अब्बासी "	३०६
२९. कराखिताई "	३४८
३०. कराखानी "	३८१
३१. सलजूकी "	४३०
३२. गोरी "	४३५
३३. चिंगिसखान	४
३४. चिंगिसी साम्राज्य	४
३५-३७ ग्रीक-बाख्तरी मुद्रायें	अन्त में

मध्यएसिया का इतिहास

खण्ड १

भाग १

प्रागैतिहासिक मानव (१ लाख वर्ष——३००० ई० पू०)

अध्याय १

पुराकल्प

§१. पृथ्वीपर प्राणी

वैज्ञानिक खोजों से पता लगता है, कि हमारी पृथिवी का जन्म आज से दो या चार अरब वर्ष पहले हुआ था। लेकिन, उस समय अपनी उष्णता के अधिक होने और दूसरे साधनों के अभाव से कोई वनस्पति या प्राणी न पैदा हो सकता और न जी सकता था। मनुष्य तो पृथिवी के आयु से मिलाने पर बिल्कुल हाल में आया हुआ प्राणी है। पन्द्रह लाख वर्ष पहले भी उसका बहुत मुश्किल से पता लगता है। एक तरह हम कह सकते हैं, कि उसकी सत्ता का भान दस लाख वर्ष से पहले नहीं जाता। आगे हम देखेंगे, कि इस दस लाख वर्ष में भी साढ़े नौ लाख वर्ष तक वह मनुष्य कहलाने का पूरी तौर से अधिकारी नहीं हो सका था और जिसे हम मानवता कहते हैं, उसका आरम्भ तो आज से पन्द्रह हजार वर्ष से भी पीछे नहीं होता।

मध्य-एसिया में मानव का इतिहास लिखते समय मानव की पृष्ठभूमि पर भी एक सरसरी दृष्टि डाल देना अनावश्यक नहीं होगा। दो (या चार) अरब वर्ष की पृथिवी की आयु में तीन चौथाई अथवा १४२·५ करोड़ वर्ष तो अजीव-कल्प के हैं। इस सारे समय में पृथिवी पर किसी तरह का कोई जीवधारी नहीं था। ५७·५ करोड़ वर्ष पहल ही सर्वप्रथम हमें प्राणी के फोसील (पथराये शरीर) का पता लगता है। इसी समय से जीव-कल्प आरम्भ होता है—अर्थात् पृथिवी पर प्रथम जीवधारी को आये अभी साढ़े सत्तावन करोड़ वर्ष हुए हैं। जीवकल्प के पहले प्राक्-कैंब्रियन चट्टानें एक लाख अस्सी हजार तथा २५ हजार फुट मोटी मिलती हैं। जीवकल्प भी पुराजीवक (पलियोज़ोइक्), मध्य-जीवक (मेसो-ज़ोइक्) और नव-जीवक (किनोज़ोइक्) तीन कल्पों में विभक्त हैं। पुरा-जीवक कल्प के छ भेद हैं, जिनके नाम फलक (१) से मालूम होंगे। पुराजीवक कल्प में हम अत्यारंभिक तथा मीन जैसे प्राणी तक को ही देख पाते हैं, प्रथम मीन का अस्तित्व ३२ करोड़ वर्ष से पहले नहीं मिलता। पुराजीवक को आदिकल्प भी कह सकते हैं।

मध्य-जीवक (द्वितीय-कल्प) में विशालकाय शरटों (छिपकली-मगर की जातियों), दन्त-धारी पक्षियों तथा प्रथम शुद्ध पक्षी तक जीवन का विकास हो जाता है। शरट-युग को त्रियासिक युग कहतेहैं और दन्तधारी पक्षी जुरासिक युग में हुए थे। जहाँ पुराजीव कल्प ३० करोड़ वर्ष तक रहा, वहाँ मध्य-जीवक कल्प साढ़े १४ करोड़ वर्ष में समाप्त हो गया। इसके बाद नवजीवक (किनोज़ोइक्) कल्प आज से ६ करोड़ वर्ष पहले आरम्भ हुआ, जो अब तक चला जाता है। नवजीवक कल्प के तृतीयक और चतुर्थक दो युग-भेद हैं। यदि जीवकल्प के आरम्भ से इस तरह

के विभाजन को स्वीकार करें, तो पुराजीवक आदि युग हुआ, मध्य-जीवक द्वितीयक युग, नवजीवक तृतीयक और चतुर्थक दो युगों में विभक्त हुआ। नवजीवक के तृतीयक और चतुर्थक युग भी अनेक भागों में विभक्त हैं। इसी युग में प्रायः ५ करोड़ वर्ष पूर्व प्रथम स्तनधारी प्राणी का प्रादुर्भाव हुआ। इससे पहले के प्राणी (शुद्ध पक्षी, दन्तधारी पक्षी) अण्डज थे। अण्डज प्राणी का उत्पादन उतना सुरक्षित नहीं होता, क्योंकि माता को अण्डे बाहर कहीं रख देने होते हैं, जहाँ पर उनके खानेवालों की संख्या कम नहीं होती। उनकी रक्षा में मीन और शरट जैसे जल-थल उभयजीवी प्राणियों को, विशेषकर अंडे से बाहर निकलने के बाद पानी और भोज्य पत्तियों के लिए वृक्ष सहायक होता है। स्तनधारी प्राणियों को सबसे बड़ी सुविधा यह है, कि उनका अंडा बाहर नहीं, बल्कि माँ के पेट के भीतर परिपुष्ट होता है और काफी शक्ति-संचय के बाद बाहर आता है। उस वक्त भी तुरन्त वह अपने पैर पर खड़ा होकर स्वावलम्बी नहीं हो जाता, किन्तु, उसकी रक्षा के लिये जहाँ माँ की बच्चे के प्रति ममता सहायक होती है, वहाँ माता के स्तन से दूध निकलकर भोजन से उसे निश्चिन्त कर देता है। नवजीवक कल्प एक तरह स्तनधारियों का कल्प था।

जैसा कि अभी कहा, नवजीवक कल्प तृतीयक और चतुर्थक दो युगों में विभक्त हैं। इस सारे नवजीवक को जीवन की उषा मान कर पाँच भागों में विभक्त किया गया है, जिनमें उषा (एओसेन), लघुउषा (ओलिगोसेन), मध्यउषा (मिओसेन) और अतिउषा (प्लिओसेन) के चार युगों को तृतीय युग कहा जाता है। मध्यउषा-युग आज से साढ़े तीन करोड़ वर्ष पहले था और अतिउषा पन्द्रह लाख वर्ष पहले। मियोसेन (मध्यउषा) युगके अन्त के करीब प्राग्मानव का आरम्भ माना जाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए यह समझ लेना आवश्यक है, कि उषायुग में ही लेमूर और नर-वानर वंश का अलग विभाजन हुआ था। लघुउषा-युग में अभी नर-वानर वंश अलग नहीं हुआ था। यह मध्य उषा युग ही था, जिसमें नर और वानर दोनों वंश अलग होने लगे। अतिउषा युग के सारे समय तक हम कल्पना ही से कह सकते हैं, कि मानव का पूर्वज किसी रूप में अवस्थित था। हमारे यहाँ सिवालिक में इस जन्तु की फोसील हड्डियाँ मिली हैं। तो भी इसमें भारी सन्देह है, कि मनुष्य बनने की ओर बढ़ने में यह सफल हुआ था; उधर बढ़ रहा था, इसमें तो सन्देह नहीं, क्योंकि वनमानुषों की अपेक्षा उसके शरीर और कपाल का विकास अधिक मानवोचित था।

तृतीय कल्प के अन्त में चाहे मानव का प्रथम पूर्वज किसी रूप में अस्तित्व में आया हो, किन्तु उसका स्पष्ट पता हमें चतुर्थयुग या अतिउषा युग में ही मिलता है, जब कि उसे हम जावा-मानव, पेकिंग-मानव, हैडलवर्ग-मानव, नियंडर्थल (मुस्तेर)-मानव आदि के रूप में पाते हैं। तो भी हमारे नृवंश (सपियन-मानव) का पता बहुत पीछे लगता है।

मानव और उससे सम्बन्ध रखनेवाले प्राणियों के विकास का परिचय यहाँ दिये फलकों से अच्छी तरह हो जायगा। लेकिन, मध्य-एसिया में मानव-विकास को वहाँ प्राप्त सामग्री के आधार पर बतलाने के लिए यह जरूरी होगा, कि वहाँ के प्राकृतिक भूगोल और जलवायु के इतिहास पर भी कुछ कहा जाय, क्योंकि मानव-विकास में इनका भारी हाथ रहा है।

फलक १—भूतत्त्वीय कल्प[1]

		युग	स्तर की मुटाई (फुट)	काल (वर्ष)	शरीर विशेष
जीवकल्प	नवजीविक	अधिउषा	४०००	१० लाख	मानव
		अतिउषा	१३०००	१५ "	मानव
		मध्यउषा	२१०००	३.५ करोड़	
		लघुउषा	१२०००		स्तनधारी
		उषा	२३०००	६ करोड़	
	मध्यजीविक	क्रैतासस्	४६०००		शुद्ध पक्षी
		जुरासिक	२००००		दन्तधारी पक्षी
		त्रियासिक	२२०००		शरट
	पुराजीविक	पैमीर्यन	१३०००		
		कर्वनभक्षीय	४००००	३० करोड़	
		प्राचीन रक्त	३७०००		प्रथम मीन
		सिलूरियन	१५०००		
		औदर्विचियन्	४००००		
		केम्ब्रियन्	४००००	५७.५ करोड़	प्रथम फोसील
अजीव कल्प		प्राक्-केम्ब्रियन	१८०००		
			२५०००	२ या ४ अरब	

§२. प्राकृतिक भूगोल

तृतीय कल्प ऐसा समय था, जबकि पृथिवी लगातार कँप रही थी, भूकंपों का ताँता लगा हुआ था। पृथिवी की ऊपरी पपड़ी सिकुड़ रही थी, जिसके कारण एक विशाल पर्वत-श्रेणी पृथिवी के भीतर से ऊपर की ओर उठने लगी। यह उठी पर्वत-श्रेणी युरोप और एसिया (युरेसिया महाद्वीप) को दो भागों में विभक्त करती आज भी मौजूद है। इसी सुदीर्घ पर्वत-श्रेणी के अलग-अलग भाग हैं: पेरिनेस, काकेसस, हिमालय और उसके आगे मध्य-चीन के पर्वत। युरेसिया द्वीप का रूप आज की तरह पहिले नहीं था। इसके भीतर एक बड़ा समुद्र लहरें मार रहा था, जो कि अतलान्तिक को भूमध्य सागर और काला सागर से मिलाते कास्पियन, अराल समुद्र तथा बलकाश को लेते तियेनशान पर्वतमाला तक फैला हुआ था। उत्तर से दक्षिण की ओर फैली अल्ताई और तियेनशान पर्वतमाला इस महासमुद्र को और पूर्व बढ़ने में बाधक थी। इससे यह भी मालूम होगा, कि मध्य-एसिया का पूर्वी और पश्चिमी भागों में विभाजन कृत्रिम और राजनीतिक नहीं, बल्कि प्राकृतिक है। तियेनशान और पामीर की पर्वतमालाएँ दक्षिण में हिमालय-श्रेणी से मिलकर पश्चिमी मध्य-एसिया को पूर्वी मध्य-एसिया से अलग करती हैं।

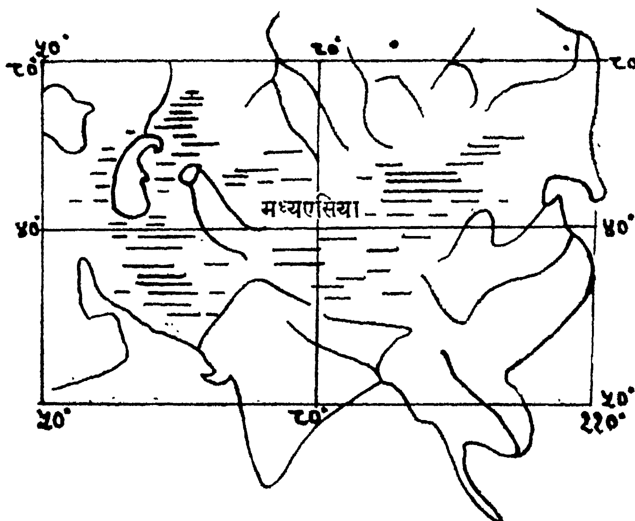
[1] Geology in the Life of Man (Duncan Leith 1945) p. 39

यह अवस्था तृतीय कल्प के आरम्भ में थी। तृतीय कल्प के मध्य में पहुँचने तक युरेसियन महासागर कई स्थानों में छिन्न-भिन्न हो गया और उसके स्थान पर आस्ट्रिया से बलकाश सागर तक एक महासागर दिखाई पड़ने लगा। बल्कान से काला सागर, कास्पियन सागर, अराल और बलकाश तक को अपने पेट में रखनेवाले इस जलिनिधि को भूतत्व-विशारद् सरमातिक सागर कहते हैं। लेकिन, भूपरिवर्त्तन का काम अभी समाप्त नहीं हुआ था, तृतीय कल्प के अन्त में सरमातिक सागर भी कई स्थानों से विलुप्त हो गया और उसके स्थान पर काला सागर, कस्पियन सागर तथा अराल और बलकाश के महासरोवर बच रहे।

तृतीय कल्प का अन्त हो रहा था और चतुर्थ का आरम्भ, जबकि एक और प्राकृतिक परिस्थिति उपस्थित हुई। तियेनशान् के पश्चिमवाले मध्य-एसिया में महासमुद्र के बहुत सूख जाने के कारण जलवायु में सूखापन होना जरूरी था, उधर भूमध्य-रेखाके ऊपर जमी महाजलराशि से आशा हो सकती थी, कि वह इस सूखी प्यासी भूमि के लिए बादल भेजकर सहायता करेगी। लेकिन, बादलों के रास्तेमें हिमालयसे काकेसस तक फैली अति उच्च पर्वतमाला वैसा करने नहीं देती थी। वह बल्कि, समय-समय पर उचककर अभी और भी ऊपर उठती जा रही थी। आकाशमें सिर उठाकर बादलोंका रास्ता रोकनेके लिए तैयार इस महापर्वत-श्रेणीने पश्चिमी मध्य-एसियाकी वर्षा को बहुत कम कर दिया। इसका परिणाम मध्य-एसियाकी भूमिपर यही हुआ, कि वहाँके बचे-खुचे समुद्र या महासरोवर और क्षीण होने लगे, नदियोंकी धाराएँ पतली हो चलीं, भूमि और शुष्क होने लगी। पानी और नमीके अभावमें वनस्पतियों और उनपर अवलम्बित प्राणियोंकी स्थितिमें क्रान्ति होना आवश्यक था। कजाकस्तानकी प्यासी भूमि, उज्बेकिस्तान तथा तुर्कमानिस्तानके कराकुम (कालामरु) एवं किजिलकुम (लालमरु) उसीके परिणाम हैं। चतुर्थ कल्पके आरम्भसे आज तक मध्य-एसियाकी यह सूखी प्यासी भूमि इसी अवस्थामें चली आई हैं, बीचमें कभी-कभी सूखा और नमीके कारण जलवायुमें थोड़ा-सा अन्तर देखनेमें आया। आज भी इस भूमिमें जाड़ोंमें थोड़ी-सी हिमवर्षा हो जाती है और वर्षाके नामपर गर्मियोंमें कभी-कभी कुछ छींटे पड़ जाते हैं। अत्यन्त ऊँचे पर्वत-शिखरों या पर्वत-पृष्ठोंको छोड़कर मध्य-एसियाकी सारी भूमि सालभर प्यासी ही रहती है।

पूर्वी और पश्चिमी दोनों मध्य-एसियाको लेकर देखें, तो मालूम होगा, कि मंचूरियाकी पश्चिमी सीमासे लेकर कालासागर या अजोफ सागरके पूर्वी छोर तकके दक्खिन की भूमि ऊँची धरती या पर्वतोंसे घिरी एक विशाल खलार है। यहाँका पानी बासफोरस (तुर्की) के एक सँकरे से मार्गको छोड़कर महासागरोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। बल्कि कालासागर मध्य-एसियासे बाहर होनेके कारण हम कह सकते हैं, कि उसके वर्षा या समुद्रके पानीका पृथिवीके महासागरोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। बासफोरसका जलमार्ग भी बहुत समय तक बन्द था और वह अन्तिम हिमयुग (प्रायः १००००० वर्ष पूर्व) के बलके कम होनेपर पिघली अपार जलराशिके फूट निकलनेके कारण ही खुला। मध्य-एसियाकी यह जलनिर्गमहीन खलार अल्ताई-तियेन्शान्की पर्वत-श्रेणियों द्वारा दो भागोंमें विभक्त है, जिसमें (१) पूर्वी मध्य-एसिया गोबीसे लेकर तरिम-उपत्यका तक पश्चिममें तियेनशान् और दक्षिणमें क्वेलुन पर्वतमालासे घिरा है। (२) पश्चिमी मध्य-एसियाके पूर्वमें तियेनशान् और पामीर दक्षिणमें अफगानिस्तान और ईरानकी पर्वतमाला तथा पश्चिममें काकेशस गिरिमेखलासे घिरा है। इसका पश्चिमी भाग अर्थात् कास्पियन समुद्रके पासकी

भूमि समुद्रतलसे ६०० फुट नीची है। यदि कालासागरसे कास्पियन सागरके बीचकी पार्वत्य भूमिको तोड़कर जलमार्ग बना दिया जाय, तो कालासागरका पानी बड़े वेगसे कास्पियनमें गिरने लगेगा और कास्पियन तथा अराल समुद्र मिलकर एक बहुत बड़े सागरके रूपमें परिणत हो जायेंगे, जिसका प्रभाव मध्य-एसियाके जलवायु पर भी बहुत भारी पड़ेगा। दूसरी ओर यदि तियेनशान्-पामीरके



१. जलनिर्गमरहित

हिमाच्छादित पहाड़ोंसे निकलनेवाली इली, चू, सिर, जरफशाँ और वक्षु (आमू) नदियाँ दक्षिणसे मुर्गाब आदि, और पश्चिमी (काकेशस) गिरिमालासे किरा आदि छोटी-बड़ी नदियाँ पानी लाना बन्द कर दें, तो सारा पश्चिमी मध्य-एसिया पूर्णतया रेगिस्तान हो जायगा।[1]

§३. जलवायु-परिवर्त्तन

यद्यपि मध्य-एसियाके तीन तरफ खड़े इन विशाल पर्वतोंने वर्षाको रोक उसका बहुत अहित किया है, किन्तु साथ ही इस भूमिको बिल्कुल प्यासा मरने भी नहीं दिया। इनसे निकलनेवाली नदियाँ कम या अधिक परिमाणमें हिमगलित पानी बराबर लाती रहीं। मानवका प्रादुर्भाव तृतीयकल्पके अन्तमें उषापाषाण-युगमें हुआ। उस समय मध्य-एसियामें मानवके अस्तित्वका कोई पता नहीं लगता और जैसा कि हम आगे बतलायेंगे, जावा नर-वानरकी विचरण-भूमि मध्य-एसियासे तीस डिग्रीसे भी अधिक दक्षिणमें है। मध्य-एसियामें बीस हजार वर्ष पहले चतुर्थ हिमयुगके समय मानव अवश्य मौजूद था। निर्मानव कालसे मानवकाल लेते आज तक मध्य-एसियाकी भूमि प्रकृतिके निष्ठुर हाथोंमें खेल रही थी,[2] जिसके साथ मनुष्य भी अपनी बेबसी दिखलानेके सिवा कोई चारा नहीं रखता था। आज वहाँ मानव अपने भव्य सामाजिक उत्कर्षमें पहुँचकर प्रकृतिके

---

[1] Exploration in Turkistan, (R. Pumpelly, 1903) vol. I. pp. 1-4

[2] वही, I pp. 2,8

बाधाको हटानेके लिए कटिबद्ध हुआ है। कास्पियन सागरका अजोफ-कालासागरसे मिलानेके लिए वोल्गा-दोनकी विशाल नहर तैयार हो गई है, जिसके द्वारा बम्बईसे चला जहाज बाकूके तैलक्षेत्रमें आसानीसे पहुँच सकता है। लेकिन, यह परिवर्तन उससे बहुत कम है, जो कि मध्य-एसियाकी तीन विशाल मरुभूमियों (प्यासी भूमि, कराकुम और किजिलकुम) को सस्यश्यामला भूमिमें परिणत करनेके लिए किया जा रहा है। वक्षु (आमूदरिया) को एक विशाल नहर द्वारा किजिलकुम-मरुभूमिके भीतर हो कास्पियन समुद्रसे मिलानेका काम बड़े जोर-शोरसे चल रहा है। इससे किजिलकुमकी करोड़ों एकड़ बालुका-भूमि मेवेके बागों और गेहूँ के खेतोंके रूपमें परिणत हो जायगी। इस नहरके कारण बम्बईका कपड़ा लालसागर, भूमध्यसागर, कालासागर, अजोफ-सागर, दोन नदी, दोन-वोल्गा नहर, वोल्गा नदी और कास्पियन सागर होते वक्षु नहर और वक्षु नदी द्वारा अफगानिस्तान पहुँच जायेगा। लेकिन, इतनेसे हम पश्चिमी मध्य-एसियाकी जल-समस्याको पूरी हल हुई नहीं देखते। सिर, जरफशाँ और आमू दरियाके पानीसे बनी अनेक महान् जलनिधियों तथा उनसे निकलनेवाली नहरों द्वारा सिंचित करोड़ों एकड़ भूमि रेगिस्तानके पेटसे निकालकर जो हरे-भरे खेतोंके रूपमें परिणत की जायगी, उसके कारण सूर्य-किरणें इस भूमिके जलको मनमानी तौरसे सोखने नहीं पायेंगी और उससे जलवायुमें भी अनुकूल परिवर्त्तन होगा। लेकिन सोवियत विज्ञानवेत्ता इतने ही से संतोष नहीं करना चाहते। वह सोच रहे हैं, कि कैसे जिब्राल्टर और बासफोरसकी जलप्रणालियों द्वारा सम्बन्धित पृथिवीके महासागरोंको अजोफ और कास्पियनके कृत्रिम मार्ग द्वारा मिलाकर मध्य-एसियाकी जलराशिको बढ़ाया जा सकता है। परमाणु-शक्ति और परमाणु-बमका आविष्कार कर मनुष्यका मस्तिष्क बैठ नहीं सकता, वह उस दिनकी आशा रख रहा है, कि मध्य-एसियाके जलाभावको वह दूर करके छोड़ेगा। सोवियत राष्ट्र ओब नद के पानी के बहुत से भाग को मध्य-एसिया के रेगिस्तान की ओर मोड़ कर इसे करना चाहत है। प्रसंगवश यह कह देना आवश्यक है, कि हमारे यहाँ भी, जहाँ कि वर्षा करनेमें प्रकृति बहुत उदार है, अपने प्राकृतिक जलमार्गोंमें अनुकूल परिवर्तन करनेकी बहुत सम्भावना है। कटक या उड़ीसासे हमें समुद्र द्वारा बम्बई या सूरत जानेकी अनिवार्यता नहीं होगी, यदि महानदी और नर्मदाके ऊपरी भागोंको कुछ ही मील लम्बी नहर द्वारा मिला दिया जाय।

§४. वनस्पति-क्षेत्र में परिवर्त्तन

तृतीय कल्पका अति-उषा युग आया, जब कि जावामें प्रथम मनुष्यका दर्शन होने लगा। उस समय पश्चिमी मध्य-एसियामें समुद्रके पास जहाँ-तहाँ थोड़ा-सा रेगिस्तान था, अर्थात् प्यासी भूमि, कराकुम और किजिलकुमका अभी शिलान्यास ही भर हो पाया था, बाकी भूमि या तो तृण-वनस्पतिसे आच्छादित मैदान अथवा भारी जंगलोंसे ढंके पहाड़ और उसकी तराइयाँ थीं। भूकम्प समय-समयपर आए, जिनसे ये पर्वत उचककर और ऊपर उठ गये, बादलका रास्ता और रुका, वर्षाकी और कमी हुई, जिससे वनस्पति-क्षेत्र समुद्रोंके तटसे पहाड़ोंकी ओर सिकुड़ने लगा।

मध्यउषायुग (साढ़े तीन करोड़ वर्ष पूर्व) के बाद महासागरोंसे सरमातिक सागरका सम्बन्ध टूट गया। उसका जल भाप बनकर उड़ता गया, समुद्र सूखता और उसका जल अधिक

खारा होता गया। इसके अवशेषके रूपमें जिप्सम और लवणकी राशि जमा होती गई, जो आज भी वहाँ मिलती है। प्रकृतिने सूर्य-किरणों द्वारा ही जल सुखाकर अपना काम समाप्त नहीं कर दिया, बल्कि यह युग भीषण आँधियोंका भी था। आज वैसी प्रचण्ड आँधियोंके न होनेपर भी वायु देवता अपने पूर्व पौरुषको रेगिस्तानोंमें किसी जगह बालूके पहाड़ोंको बना और किसी जगह बिगाड़कर दिखाते हैं। उस समय जब कि वनस्पति-हीन[१] होते मैदान में अभी बालू नहीं, साधारण मिट्टीकी प्रधानता थी, इन प्रलयंकर झंझावातोंने मिट्टीके अतिसूक्ष्म रेणुओं (त्रसरेणुओं) को आकाशमें बहुत ऊपर उठाकर ले जाके ऊँचे पर्वतोंके मस्तकपर जमा करना शुरू किया। इन त्रसरेणुओंकी भारी मोटी तह वनस्पतियोंके लिए बड़ी ही उर्वर है, जिससे वायुने मैदानोंको वंचित कर पहाड़ोंका घर भरा।

§५. हिमयुग[१]

सूर्य-किरणें और झंझावातोंका प्रभाव मध्य-एसियाकी भूमिमें बहुत पड़ा, किन्तु उससे कम प्रभाव चारों हिमयुगोंका इस भूमिपर नहीं पड़ा। तृतीय कल्पके अति-उषायुगके बाद ये हिमयुग आने शुरू हुए। एक-एक हिमयुग हजारों नहीं लाखों वर्षों तक रहा। इनके समयमें मनुष्य पृथिवीपर आ चुका था, यद्यपि अभी वह उसका एक दुर्लभ प्राणी था और पृथिवीके कुछ ही स्थानोंमें देखा जाता था। यह हिमयुग आजके परमाणु-बमसे भी अधिक भयानक साबित हुए थे। मानव प्रकृतिमाता पर बहुत विश्वास करके बहुत-कुछ आलसीकी जिन्दगी बिताने लगा था, न उसे तन ढाँकनेकी फिकर थी, न छत ढूँढ़नेकी। हिमयुग उनसे कहने लगा—या तो हमारे प्रहार-को सहन करने लायक बनो, नहीं तो पृथिवीसे लुप्त होनेके लिए तैयार हो जाओ। आज भी यदि युरोपका वार्षिक माध्यम तापमान पाँच ही डिग्री सेंटीग्रेड नीचे गिर जाये, तो हिमयुगकी अवस्था पैदा हो जायगी। सारे अतिउषाकालमें तापमान गिरता गया, सर्दी बढ़ती गई, जिसके परिणाम-स्वरूप हिमयुगोंका आरम्भ हुआ। चारों हिमयुगोंमें युरोपकी भूमिपर इंगलैण्डसे उराल पर्वत तक हजारों फुट मोटी बर्फ की तह जम गई थी। लेकिन, उरालसे पूर्व अर्थात् मध्य-एसियामें वैसा नहीं हुआ। बर्फकी तह मोटी न होनेपर भी जलवायु अत्यन्त भीषण रूपसे शीतल हो गया था। हिम-युगोंकी उग्र सर्दीके कारण पशु-वनस्पतिके क्षेत्र क्षीण होते गये। हर दो हिमयुगके बीचके सन्धिकाल (हिमसन्धि) में जलवायुकी अवस्था कुछ नरम जरूर हो जाती और प्राणी-वनस्पति फिर अपनी खोई हुई भूमिको प्राप्त करनेकी कोशिश करते। यह स्मरण रखना चाहिए, कि यह सन्धिकाल भी हजारों वर्षके थे।

मान लो, हम आजसे लाखों वर्ष पूर्वके प्रथम हिमयुगमें जाकर मध्य-एसियाको देख रहे हैं। उस समय इसके पश्चिमोत्तरमें उरालसे परे हजारों फुट मोटी बर्फसे ढँकी रूसकी भूमि है। मध्य-एसियाकी भूमिमें एक अति विशाल समुद्र (सरमातिक) लहरें मार रहा है, जिसमें पूर्व, दक्षिण और पश्चिमके हिम-पर्वतोंकी हिमानियोंसे निकलकर बड़ी-बड़ी नदियाँ गिर रही हैं, जो अपने सागर-संगमोंपर डेल्टा और कछारोंमें मिट्टीके स्तर जमा करती जा रही हैं। हजारों

---

[१] General Anthropology (Franz Boas and others, New York 1938) p. 116; Expl. Turk. pp. 1-4।

वर्ष बाद प्रथम हिमयुग समाप्त हो गया। अब हिमसंधि-काल आ गया। पश्चिमोत्तर-भागमें दुरन्तव्यापी हिममालिका रूससे लुप्त हो गई। पूर्व, दक्षिण और पश्चिमके हिम-पर्वतोंकी दूर तक विस्तृत हिमानियाँ भी संकुचित होने लगीं, इसके कारण नदियोंकी धाराएँ क्षीण होती गईं। सर-मातिक समुद्रमें जलकी आय कम और व्यय अधिक होने लगा—नदियोंसे जितना जल आता था, उससे कहीं अधिक धूपमें भाप होकर उड़ता जा रहा था। विशाल सरमातिक समुद्र और भी छिन्न-भिन्न होने लगा। सहस्राब्दियाँ बीतती गईं, नदियोंकी धाराएँ और भी कृश हो गईं। पानीकी कमी और रेगिस्तानकी वृद्धिके कारण चू, तलस, जरफशाँ और मुर्गाबकी भाँति कितनी ही समुद्रमें पहुँचनसे पूर्व ही अपनेको मरुभूमिमें खोने लगीं। झंझावात नदियोंकी लाई मिट्टीके साथ खेलवाड़ करने लगा। मोटे कण अर्थात् बालू एक जगहसे दूसरी जगह टीलोंके रूपमें बनते-बिगड़ते रहे और सूक्ष्म कण (त्रसरेणु) टिड्डी-दलकी भाँति उड़ते-सुस्ताते, घासके मैदानों, तराई और पहाड़ोंके जंगलोंको पड़ कर ढाँकते जा रहे थे।

इस प्रकार हिमयुगों और हिमसंधियोंनें मध्य-एसियाके भूतलको बड़ी निर्दयतापूर्वक दलित-मर्दित कर दूसरा ही रूप दे दिया। प्रकृतिकी इस निष्ठुर क्रीड़ाने केवल धरातलके ही आकार-प्रकारमें परिवर्त्तन नहीं किये, बल्कि वनस्पतियों और प्राणियोंकी अवस्थामें भीषण उथल-पुथल मचाई।

स्रोत ग्रंथ :

१. पेर्वोबित्नोये ओबश्चेस्त्वो (प० प० येफ़िमेंको) लेनिनग्राद १९३८

2. Geology in the Life of Man (Duncan Leith, London 1945)

3. Exploration in Turkistan (R. Pumpelly, 1903) vols I, II

4. General Authropology (Frunez Boas and others, New York 1938)

5. Everyday Life in the Old Stone Age (Marjorie and C. H.B. Quennell, London 1945)

अध्याय २

पुरा-पाषाणयुग[1]

§१. मानव-जातियाँ

चतुर्थयुग अधिउषा (प्लेस्तोसेन) और अतिउषा (होलोसेन) के दो उपयुगोंमें विभक्त है। अधिउषायुग हमारी सपियन-मानव-जातिकी प्रधानताका है, जिसमें नवपाषाण युग प्रथम है, जो आजसे ७००० हजार वर्ष पहले शुरू हुआ था—यद्यपि उसका यह अर्थ नहीं, कि वह पृथिवी पर सभी जगह एक ही समय आरम्भ हुआ। तस्मानियाके मूल निवासी, जो युरोपीय लोभी नर-राक्षसोंके कारण अब संसारसे लुप्त हो चुके हैं, उन्नीसवीं सदी तक अभी पुरापाषाण-युगमें विचरण कर रहे थे। चतुर्थ युगके आदिम भाग पुरापाषाण-युगके आदिम या निम्न पुरापाषाण-युगमें और भी कितनी ही मानव-जातियाँ अस्तित्वमें आई थीं, जिनमेंसे नियंडर्थल (मुस्तेर) मानवका ही अभी तक मध्य-एसियामें पता लगा है। हो सकता है, इससे पहलेकी हैडलवर्ग और पेकिंग मानव जैसी जातियोंके भी अवशेष आगे मिलें। मानव-इतिहासको क्रमबद्ध करनेके लिए यह आवश्यक है, कि उज्बेकिस्तानमें मिले मुस्तर मानवकी कड़ीको पीछेसे मिलानेके लिए दूसरे मानवोंका भी कुछ वर्णन कर दिया जाय।

सभी मानव-जातियाँ उसी समय विद्यमान थीं, जब कि पृथिवीपर चार महान् हिमयुग आये थे। ये हिमयुग निम्न प्रकार थे[2]—

		मानव-जाति
पश्च-हिमयुग	१३००० वर्ष	ओरिन्यक
चतुर्थ हिमयुग (उर्म)	५०००० ,,	मुस्तेर
तृतीय हिमसंधि	१.५० लाख	अश्योल
तृतीय (रिस्)	२ ,,	प्राग्-अश्योल
द्वितीय हिमसंधि	३ ,,	शैल (हैडल्वर्ग)
द्वितीय ० (मिंदेल)	४ ,,	पेकिंग
प्रथम हिमसंधि	५ ,,	
प्रथम ० (गुंज)	६ ,,	

ऊपरी-पुरापाषाण-युग चारों हिमयुगोंके समाप्त होनेके साथ आजसे प्रायः १५ हजार वर्ष पूर्व आरम्भ होता है। कुछ विद्वान् पुरापाषाण-युगमें एक मध्य-पुरापाषाण-युग को भी मानते

---

[1] Our Early Ancesters (M. C. Burkitt. 1929) pp. 3-6, Prehistoric India (P. Mitra, Calcutta 1928)

[2] पेर्वोबित्नोये ओबश्चेस्त्वो (प० प० येफ़िमेंको) पृष्ठ ३०, Everyday Life in the Old Stone Age (Marjorie and C. H. B. Quennell (1945) p. 11; Progress and Archaeology (V. Gordon Childe) p. 9

हैं, जो ३५ से ५० हजार वर्ष पूर्व मौजूद था और इसी समय चतुर्थ हिमयुगके भीतरसे मुस्तेर (नियण्डर्थल) मानव जीवन-संघर्ष कर रहा था। ऊपरी पुरापाषाण-युगके ६ हजार वर्षोंमें निम्न प्राचीन जातियोंका पता लगा है—

वर्ष पूर्व	जाति	उपजाति
१५०००	ओरिन्यक	ग्रिमाल्दी, क्रोम्योन्
१४०००	सोलूत्र	
१३०००	मद्लेन	
११०००	अज़िल	

यहाँ जो काल दिया गया है, उसे एकदम निश्चित नहीं समझना चाहिए। उदाहरणार्थ, जहाँ मद्लेन मानवको कोई-कोई विद्वान् १३००० हजार वर्ष पहले मानते हैं, वहाँ दूसरे उसे २५-२६ हजार वर्ष पहिले स्वीकार करते हैं। इनको स्पष्ट करनेके लिए यहाँ दिये हुए दूसरे, तीसरे और चौथे फलकों को देखें। पाँचवें फलकसे ताम्र और लौह-युगकी सभ्यता भारतवर्षमें किस रूपमें रही, इसका पता लगेगा।

फलक २—नवजीवक-कल्पका विवरण

(नवजीवक)

कल्प	युग	सभ्यता		काल		जलवायु
चतुर्थकल्प	इदउषा		लौह	१००० ई० पू०		नरम
			ताम्र	१५०० ई० पू०		
			नवपाषाण	५००० ई० पू०	गुहावासी	आर्द्र
	अधि-उषा	पुरापाषाण — उपरि पुरा-पाषाण — मध्य पा०	अजिल	११००० ई० पू०	गुहावासी	ठण्ड-गर्म
		उपरि पुरा-पाषाण	मदलेन	१३००० ई० पू०	गुहावासी	
			सोलूत्र	१४००० ,,		
			ओरिन्यक	१५००० ,,		पश्चाद्-हिम
		मध्य पु०	मुस्तेर	२०००० ,,	कछारवासी	चतुर्थ हिम (बुर्म)
						तृ० हिमसंधि
						तृ० हिम (रिस्)
		निम्न	अश्योल्	२२०००	कछारवासी	द्वि० हिमसंधि
			प्राग्-अश्योल्	२६०००		द्वि० हिम (मिन्देल)
			शेल्स			प्र० हिमसंधि
			स्त्रेपी			प्र० हिमसंधि (गुंज)
तृतीयकल्प	अतिउषा			६ लाख		नरम
	मध्यउषा					उष्ण
	लघुउषा					नरम
	उषा					

फलक ३—चतुर्थ युग[1]

युग	हिमयुग	पुरातत्वीय युग	मानव-जाति	समाज
चतुर्थ युग — इद-उषा		लौह		
		पित्तल		
		ताम्र		
चतुर्थ युग — अधि-उषा		मध्य पा० — नवपाषाण		
		अजिल		
	वर्म	ऊपरि पुरा पा० — मद्लेन	सपियन	मातृसत्ताक
			क्रोमञों	
		सोलूत्र	ग्रिमाल्दी	
		ओरिन्अक		
	रिस	मुस्तेर	नेयण्डर्थल	सगोत्र विवाह
	मिन्देल	निम्न पुरा पा० — अश्योल		
	प्राग्हिम	शेल		
			हैडलवर्ग	आदिम साम्यवाद

—प० प० एफिमैन्को ('पेर्वोबित्नोये ओव्श्चेस्त्वो') पृष्ठ ९९

फलक ४—मानव-जातियाँ[2]

मानव-जातियां	वर्ष	हिमयुग	उद्योग	आविष्कार (मिश्र)
	१५०० ई० पू०			लौह
	२००० ,,			पित्तल
	३००० ई० पू०			इतिहासारम्भ
	४००० ,,			लोह उपयोग
	५५०० ,,			ताम्र
	६५०० ,,			
पुरापाषाण — क्रोमञो	८५०० ,,			
ग्रिमाल्दी	१३५०० ,,			
मुस्तेर	७५०० ,,	रिस उतार	प्राचीन मुस्तेर, आग, धनुष	
हैडलवर्ग		मिन्देल	अश्येल	
पेकिङ		गुंज संधि	शेल	
जावा	५०००० ,,			
	१० लाख	अधिउषा		

[1] पे० ओब्० पृ० ११२।

[2] वहीं पृ० ९९ General Anthropology (Frunz Boas and others 1938) pp. 174-75

फलक ५--भारत में इद-उषा युग

काल	वर्ष
इस्लाम	१००० ई०
गुप्त	४०० ,,
शक	०
मौर्य	३०० ई० पू०
बुद्ध	५०० ,,
उपनिषद्	७०० ,,
ऋग्वेद	१२०० ,,
सिंधु सभ्यता	३००० ,,

§२. निम्न-पुरापाषाण युग[1]

१. जावा मानव[1]

अभी तक जितने मानव-अवशेषोंका पता लगा है, उनमें जावा-मानव [2]सबसे पुराना है। इसे त्रिनील मानव या पिथक-अंथ्राप भी कहते हैं। १८६१ ई० में डच विद्वान् प्रोफेसर ई० दुब्वाको मध्य-जावाकी सोलो नदीके किनारे त्रिनील स्थानमें इस मानव-खोपड़ीका ऊपरी भाग, दाढके दो



२. पुरापाषाणयुग का मानव

दाँतों और जाँघकी एक हड्डीके साथ प्राप्त हुआ। यह फोसील जिस स्तरमें मिली थी, उससे वह अतिउषाकालकी मालूम होती थी। इसी स्तरमें सूअर, जलीय अश्व, हरिन तथा विलुप्त स्टेगोडन

---

[1] काल एक लाख वर्षसे पूर्व Gen. Anth. p. 227 पेर्वो बितूनोये ओब्श्चेस्त्वो (प० प० येफ़िमेंको १९३८, पृष्ठ २७)

[2] Pithecanthropus, इसके समकालीन मानव नर्वदा उपत्यका (होशंगाबाद और जब्बलपुर के जिले) में मिले हैं--Prehistoric India (Stuart Pigget, 1950) p. 29

गज जैसे प्राणियोंकी फोसीलायित हड्डियाँ मिली थीं, जिससे मालूम होता है, कि जावा मानवको भोजनके लिए इन जानवरोंको मारना पड़ता था। जावा मानवका कपाल-क्षेत्र ९४० घन सेन्ती-मीतर है, जो सभी वन-मानुषोंसे अधिक है, क्योंकि उनका कपाल-क्षेत्र ६५५ घन सेन्तीमीतरसे अधिक नहीं होता। लेकिन यह आधुनिक मानवके कपालक-क्षेत्र १६०० घन सेन्तीमीतरका दो-तिहाई है, अथवा उतना ही, जितना कि आधुनिक मानवके अत्यल्प विकसित वेद्दा (लंका) लोगोंका कपाल-क्षेत्र होता है। जावा मानव बाहरसे दीर्घ कपाल (७१.२) किन्तु खोपड़ीके भीतर आयत-कपाल (८०) था। इलियट स्मिथके मतसे वह निसन्देह मानव-वंशका था और कुछ थोड़ी-सी वाणी (भाषा) की शक्ति भी रखता था, किन्तु वह खाँसने जैसी ध्वनिसे अधिक विकसित नहीं थी। खड़ा होके चलनेमें वह बहुत-कुछ मनुष्य जैसा था, किन्तु दांत वनमानुषसे अधिक समानता रखते थे। ऊँचाईमें वह ५ फुट ६ या ७ इंच था अर्थात् बहुत-कुछ आजकलके साधारण मनुष्य जितना लम्बा था। भय उपस्थित होनेपर वह आसानीसे वृक्षोंपर चढ़ जाता था



३. जावा मानव

और शायद रहनेके लिए वहीं घास-फूसकी नीड जैसी झोपड़ी भी बना लेता था। जावा-मानव[१] उसी समय जावाके सदाहरित जंगलोंमें निवास करता था, जब कि युरोप प्रथम-हिमयुगसे गुजर रहा था। उस समय सुमात्रा और मलायासे मिला हुआ जावा, एसियाका एक अभिन्न अंग था। जावा मानवके कालके विषयमें मतभेद होना स्वाभाविक है। कोई-कोई उसे हैडलवर्गीय मानवका समकालीन मानते हैं और कोई उसे पैकिंग मानवसे पीछेका।[२]

---

[१] विशेष के लिए पठनीय General Authropology, History of Anthropology (A.C. Haddon) 56-57 Man the verdict of science (G.N. Ridley 1946) p. 41, Progress and Archaeology [२] History of Anthropology (A.C. Haddon)p. 53

२. पेकिंग-मानव

प्रोफेसर ओसबोर्न तथा दूसरे कितने ही नृतत्व-विशारदोंका मत है, कि मानव-जातिका उद्‌गम एसिया हीमें कहीं होना चाहिए। जावा मानव एसियामें मिला। पेकिंग मानव भी एसियामें ही प्राप्त हुआ। चीन और मंगोलियामें पुरा-पाषाण युगके बहुतसे पुराने पाषाण हथियार मिले हैं, किन्तु उनके साथ मानव-अवशेष नहीं मिले, अतः मानवकी आकृति आदिके बारेमें कुछ कहना मुश्किल है। वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें कुछ फोसील हुए मानव-दन्त भी मिले थे। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण प्राप्ति १९२६ में हुई जब कि चीनकी राजधानी पेकिंगसे ३७ मील दक्षिण-पश्चिम चूकूतीयानकी एक गुहामें अधिउषा (प्लैसृतोसेन) के दो मानव-दन्त प्राप्त हुए। १९२७ में एक और दाँत तथा निचली दाढ़ का फोसील मिला, जो कि किसी तरुणका विना घिसा हुआ दाँत था। यह जावा-मानव से अधिक विकसित रहा होगा। २ दिसम्बर १९२९ को सभी सन्देहोंको दूर करनेवाली प्राप्ति एक तरुण चीनी विद्वान्‌को मिली। यह खोपड़ी प्रायः पूरी है और इसका कपाल-क्षेत्र जावा मानवसे कुछ अधिक है। इसका काल प्रायः ५ लाख वर्ष पूर्व बतलाया जाता है। बड़ा होनेपर भी पेकिंग मानवका कपाल जावा-मानवसे बहुत समानता रखता है। खोपड़ी अधिक चिपटी, सँकरी और पीछेकी ओर नीचा होती, ललाट तथा आँखोंके ऊपर उभड़ी हुई हड्डी दोनोंमें एक-सी है। किन्तु पेकिंग मानवकी अपेक्षा जावा मानवका ललाट अधिक ऊँचा है, इसलिए कितने ही विद्वान् उसे नेयण्डर्थल (मुस्तेर) के पास खींच लाना चाहते हैं। इसका कपाल-क्षेत्र ९०० घन सेंतीमीतर तक अर्थात् जावा-मानवसे ४० ही सेंतीमीतर कम है। जून १९३० ई० में उसी गुहासे एक और खोपड़ी मिली, जिसका कपालक-क्षेत्र प्रथमसे अधिक तथा आकृति मुस्तेर-मानवसे बहुत समानता रखती है। नवम्बर १९३६ में उसी गुफामेंसे तीन और खोपड़ियाँ मिलीं, जिनमेंसे दो १२०० और ११०० घन सेंतीमीतरवाली दो पुरुषोंकी थीं और तीसरी १०५० घन सेंतीमीतरकी



४. पेकिङ् मानव (खोपड़ी और मानव)

एक स्त्रीकी थी। स्टाइहाइमको मिली नियंडर्थल स्त्रीकी खोपड़ी ११०० घन-सेंतीमीतरकी थी। इन पिछली खोपड़ियोंके साथ गालकी हड्डियाँ भी मिलीं, जिनसे पता लगता है कि पेकिंग-मानव गाल और नाककी हड्डियोंमें आधुनिक मंगोलायित जातियोंसे समानता रखता था, यह

समानता उसके दाँतोंमें भी थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि यह मंगोलीय जातियोंका पूर्वज था। प्रोफेसर ब्लैकका कहना है—'पेकिङ्ग-मानवके दाँतोंकी विशेषता बतलाती है, कि वह उस मानवित (होमोनिद) से बहुत अन्तर नहीं रखता था, जिससे कि पीछे नियंडर्थल (मुस्तेर) और सपियन मानव-जातियोंका विकास हुआ।"

पेकिंग मानव अग्निका उपयोग करता था, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि वह अग्नि बना भी सकता था। इसके हथियार लकड़ी पत्थर और हरिनकी सींगके होते थे।

३. हैडलवर्ग मानव[१]

आजसे डेढ़ लाख वर्ष पहले प्रथम या द्वितीय हिमसंधिमें एक मानव रहता था, जिसे हैडलवर्ग मानव कहा जाता है। १९०७ ई० में जर्मनीके हैडलवर्ग नगरके समीप मावरमें इस मानवका सबसे पहले जबड़ा मिला था। स्थानके कारण इस मानव-जातिका नाम हैडलवर्ग पड़ गया। इससे पहले जावा और पेकिङ्ग मानव यद्यपि मौजूद थे, किन्तु उनपर अब भी नर या वन-मानुषके बीचमें होनेका सन्देह हो सकता था। हैडलवर्ग मानव पहला असंदिग्ध मानव है। इसका वह जबड़ा आजके धरातलसे ७९ फुट नीचे एक प्राचीन नदीकी बालुकामें चिपका हुआ मिला था। उसी स्तरमें अधि-उषा युगके स्तनधारियोंकी हड्डियाँ भी मिली थीं, जिनमें सरलदन्त गज, सिंह और लोमधारी गैंड़ा भी थे। हैडलवर्ग मानवके ये ही खाद्य थे और इन्हींसे उसका संघर्ष था। उस समय हिमसंधिके कारण जलवायु अधिक ठंडा नहीं था, जिससे उसे गुहामें रहनेकी अवश्यकता नहीं थी। इस मानवका जबड़ा बहुत बड़ा और भारी था, ठुड्डीका एक तरह अभाव था। वह आजकलके कितने ही आधुनिक मानवोंसे अधिक बड़ा नहीं था। कितने ही शरीर-शास्त्रियों का कहना है, कि जबड़ा यद्यपि वनमानुष जैसा भारी है, किन्तु कुछ दूसरे शरीर-लक्षण आगे आनेवाली मुस्तेर जाति जैसे हैं। इसीलिए कितने ही विद्वान् इसे मुस्तेर (नियंडर्थल) का पूर्वज मानते हैं। शायद इसके हथियार शेल-कालीन हथियारों जैसे थे। यह भी अनुमान किया जाता है, कि अपने सांस्कृतिक विकासमें हैडलवर्ग-मानव पेकिंग-मानव जैसा ही था।

४. मुस्तेर (नियण्डर्थल)[२]

वर्तमान सपियन मानव-वंशसे भिन्न जिन पुरातन मानव-वंशोंके चिह्न प्राप्त हुए हैं, उनमें सबसे अधिक इसी मानवके हैं। सर्वप्रथम १८४५ ई० में जिब्राल्टरमें इसकी एक खोपड़ी मिली थी, किन्तु उस समय विद्वानोंका ध्यान उसकी ओर नहीं गया। उससे आठ वर्ष बाद डुसेल्-डोर्फ (जर्मनी) के पास नियण्डर्थलकी घाटीकी एक गुहामें खुदाई करते समय मजूरोंको एक खंडित कंकाल मिला, जिसमें ऊपरी कपाल, बाँह और पैर एवं कंधे और कूल्हेकी हड्डियाँ थीं। खोपड़ी अधिक चिपटी तथा बाँहोंकी हड्डी अधिक उभड़ी हुई थी, जो कि आगे चलकर इस जातिका विशेष शरीर-लक्षण मानी गई; इसी कारण इसका नाम नियण्डर्थल-मानव पड़ा। लेकिन, नियण्डर्थलके

---

[१] Man : the Verdict of Science (G. N. Ridley) p. 41

[२] काल ५०००० वर्ष (V. Gordon Childe : Progress and Archcology, p. 79 : ५००००-३०००० वर्ष (Gen. Anth.)

अतिरिक्त इसका दूसरा अधिक प्रसिद्ध नाम मुस्तेर है। १९०८ ई० में फ्रांसके दोरदोएँ इलाकेके मुस्तेर स्थानमें एक नियण्डर्थल कंकाल प्राप्त हुआ था, जिसके नामपर यह मानव और उसकी संस्कृति मुस्तेरके नामसे प्रसिद्ध हुई। इस मानवकी हड्डियाँ बेल्जियम, इंग्लिशचेनलके द्वीप-समूह (१८४८ ई०), युगोस्लाविया (१८९९ ई०), क्रिमिया (१९२३ ई०), फिलस्तीन (१९२५ ई०), इताली (१९२९ ई०), क्रिमिया, दोनेत्स उपत्यका,[1] उज्बेकिस्तान (१९३८ ई०) आदि बहुत जगहों पर मिली हैं। यह मानव तृतीय हिमयुग (रिस्) के बादकी तृतीय हिमसंधिमें मौजूद था, जिसका काल एक लाखसे २५ हजार वर्ष पूर्व तक आँका गया है। मुस्तेरीय संस्कृतिके हथियार मंगोलिया और चीन (शेंन्सी) तक मिले हैं, किन्तु शरीर-अवशेष न मिलनेसे यह कहना मुश्किल है, कि वह मुस्तेर मानवके हैं।

मुस्तेरकी गुहामें प्राप्त हड्डी १५ वर्षके एक बालककी थी, जो ५ फुटसे कम लम्बी थी। आमतौरसे यह जाति छोटे कदके लोगोंकी थी, जिनकी लम्बाई ५ फुट २ इंचसे ५ फुट ४ इंच तक पाई जाती है। जिब्राल्तरकी स्त्री-खोपड़ीका कपालक-क्षेत्र १२८० घन-सेंतीमीतर था और शापेल-ओ-सेंतकी खोपड़ी १६०० घन-सेन्तीमीतर। मुस्तेर मानव दीर्घ-कपाल (७० और ७६ के



५. मुस्तेर (नियण्डर्थल मानव)

बीच) था। बाँहोंकी हड्डीका उभड़ा होना इसकी अपनी विशेषता थी, यह बतला आये हैं। इसका चेहरा बहुत लंबोतरा और नाक अधिक चौड़ी होती थी। चौड़ी होने का यह अर्थ नहीं, कि वह चिपटी होती थी। इसकी ठुड्डी नहींके बराबर थी। नियण्डर्थल-मानवके पैर आजकलके बच्चों

---

[1] पेर्बो०ओब् ० पृष्ठ २९०, २९६; और २२०, ३०० में भी।

जैसे थे, जिससे जान पड़ता है, कि उसकी घुट्टीके जोड़ ऐसे थे, कि वह पैरोंपर अधिक चक्कर काट सकता था। कंधेपर सिर कुछ आगेको निकला रहता था।[1]

मुस्तेर-मानव तेशिकताश (मध्य-एसिया) में भी मिला है, इसे हम आगे बतलायेंगे। इसका मूलस्थान एसिया माना जाता है।[2]

चतुर्थ हिमयुगके उतार आरम्भ होनेके बाद कुछ सहस्राब्दियों (२५ हजार वर्ष पूर्व) तक मुस्तेर मौजूद रहा। आजसे २५-३० हजार वर्ष पूर्व सपियन (उत्तम) मानवकी पुरातन शाखा क्रोमेञों आ मौजूद हुई। कितने ही नृतत्त्व-विशारद् मानते हैं, कि विशेष परिस्थितियोंके कारण मुस्तेर मानव का ही सपियन-मानवके रूपमें जाति-परिवर्त्तन हुआ।[3] दूसरोंका कहना है, कि सपियन विजेताओंने मुस्तेरको पराजित कर उन्हें अपनेमें हजम कर लिया। अन्तिम उपरि-पुरापाषाण युगके क्रोमेञों, ग्रिमाल्दी और मद्लेन मानव सपियन जातिके थे। आजसे २५-३० हजार वर्ष पहले मुस्तेर मानव जाति लुप्त हो गई। सबसे पुरातन अवशेष मुस्तेर जातिका ही मध्य-एसियामें मिला है, इसलिए उसके बारेमें और विस्तारके साथ हम आगे लिखेंगे। यहाँ मानव-विकासकी कड़ीको स्पष्ट करनेके लिए सपियन मानवकी कुछ पुरानी जातियोंका वर्णन कर देना उचित है।

---

[1] आग का उपयोग यह जानता था (General Anthropology p. 239 विशेष के लिए L, Humanite Prehistorique (G) acques de Morgan, Paris (924)

[2] 10 Hist of Anth. p. 58.

[3] Gen. Anth. p. 78

स्रोत ग्रन्थ :

1. पेर्वो० ओब्०
2. Our Early Ancesters (M..H Burkitt, Cambridge, 1929)
3. Prehistoric India (Paggot),
4. Prehistoric India, (P. Mitra, Cal 1924)
5. General Anthropology
6. History of Anthropology (A. C. Haddon, London, 1945)
7. 7. Man : the Verdict of Science (G. N. Ridley, London 1946)
8. Progress and Archaeology (V. G. Childe, London 1944)
9. Stone Age in India (P. T. S. Ayyangar)

अध्याय ३

उपरि-पुरापाषाण और मध्यपाषाण-युग

§१. ओरन्यक (१५००० वर्ष पूर्व)

तूलूज् (फ्रांस) से ४० मील दक्षिण-पश्चिम ओरन्यक नामक स्थान है। यहीं पर इस मानव के शरीर-अवशेष मिले थे, जिसके कारण इस जाति तथा इसकी शाखाओं का नाम ओरन्यक पड़ा। इसी जाति के अन्तर्गत क्रोमेञों, सोलूत्रे, मद्लेन और अज़िल जातियां हैं, जो आज से १५ हजार वर्ष पूर्व तक मौजूद थीं। मुस्तेर मानव के साथ पुरापाषाण युग का निम्न स्तर खतम हो जाता है और ओरन्यक से हम उपरिपुरापाषाण युग में पहुँचते हैं।

१. क्रोमेञों[1]

फ्रांस की वेजेर नदी की उपत्यका में, जहाँ पर कि पूर्वोक्त मुस्तेर-गुहा है, एक दूसरी लटकी हुई चट्टान है, जिसे क्रोमेञों कहते हैं। १८६८ ई० में क्रोमेञों की शैल-गुहा में पाँच मानव-कंकाल मिले, जिनका नाम प्राप्ति-स्थान के कारण क्रोमेञों पड़ गया। उपरि-पुरापाषाण युग में युरोप का सब से अधिक प्रसिद्ध मानव यही था। मुस्तेर मानव जहाँ खर्वकाय था, वहाँ क्रोमेञों कितनी ही बार ६ फुट का कद्दावर मनुष्य था। यह दीर्घ कपाल था और इसका कपाल-क्षेत्र १५९० से १७१५ घन सेन्तीमीतर तक होता था। चेहरा शरीर की अपेक्षा छोटा और चौड़ा था। क्रोमेञों स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक नाटी होती थीं। इस मानव का शरीर-लक्षण कितनी ही बातों में आधुनिक एस्किमों—विशेष कर ग्रीनलैण्डवालों—से इतनी समानता रखता है, कि कितने ही विद्वान् मानते हैं, कि मध्य-एसिया से नवपाषाण-युग के मानव के आने पर क्रोमेञों उत्तर की ओर हटते दूर चले गये, जो ही आजकल एस्किमों हैं। इस बात में तो सभी सहमत हैं, कि यह मानव-वंश मुस्तेर की भाँति उच्छिन्न नहीं हो गया, बल्कि उसकी संतान या रक्त आधुनिक मानव में मौजूद हैं।[2]

२. ग्रिमाल्दी[3]

भूमध्यसागर के तट पर फ्रांस के माने प्रदेश में ग्रिमाल्दी नाम की नौ गुफाएँ हैं, जिनमें अधिकांश ध्वस्त हो चुकी हैं। इन्हीं में से एक शिशु-गुहा में १९०१ में माँ और बेटे के दो सम्पूर्ण

---

[1] पेर्वो० ओब्० पृ० ४३; Gen. Anth. pp. 78-82

[2] Gen Anth. pp. 76, 78,

[3] Everyday Life in the old Stone Age p. 73

कंकाल मिले। स्त्री प्रौढ़ा रही होगी और पुत्र १४ वर्ष के करीब का। स्त्री का कद ५ फुट ३ इंच था और लड़के का ५ फुट से थोड़ा ही अधिक। दोनों कंकाल ओरन्यक काल के हैं, यद्यपि इनका सम्बन्ध उनसे नहीं है। नृतत्त्व-विशारद् इसे निग्रोयित जाति का बतलाते हैं। इसकी खोपड़ी दीर्घ कपाल, ठुड्डी थोड़ी सी विकसित, दाँत बहुत बड़े, नाक की हड्डियाँ चिपटी थीं। बड़े नथुने विशेष तौर से निग्रो जैसे थे। इसके निग्रो-सम्बन्ध को अपेक्षाकृत लम्बी टाँगें तथा बाहु के ऊपरी भाग भी बतलाते हैं। ग्रिमाल्दी कंकाल अफ्रीका के श्मेस लोगों से अधिक समानता रखते हैं। यद्यपि यह प्रश्न जटिल है, कि निग्रोयित आकार के ये लोग युरोप में कैसे पहुँचे। कुछ विद्वानों का कहना है, कि ग्रिमाल्दी-मानव क्रोमेञों मानव का पूर्वज था। प्रोफेसर इलियट-स्मिथ का मत है, कि ग्रिमाल्दी जाति का शरीर-लक्षण, निग्रो की अपेक्षा आस्ट्रेलायित मानव से ज्यादा मिलता है।



६. क्रोमञों मानव

ग्रिमाल्दी मानव यद्यपि ओरन्यक् कालमें था, तो भी उस जातिमें इसे सम्मिलित करनेके लिए अधिकांश विद्वान् तैयार नहीं हैं।

ओरन्यक् मानव सांस्कृतिक विकासमें मुस्तेर मानवसे आगे बढ़ा था। उसके चकमक-पत्थरके हथियार अधिक सुधरे तथा कार्यकारी थे। उसके हथियारोंके भेद भी अधिक थे। यद्यपि हथियार पत्थरके अतिरिक्त कुछ हड्डीके भी थे, लेकिन इसमें सन्देह नहीं उसके हथियारोंमें लकड़ीके भी बहुतसे रहे होंगे, जो १०-१५ हजार वर्षों तक सुरक्षित नहीं रह सकते थे। अपने पत्थरके हथियारोंसे वह बारहसिंगेकी सींगोंको काटकर वाण और भालेके फल बनाता था। हड्डीके हथियारोंका बनाना शायद इसी मानवने पहले-पहल आरम्भ किया। हड्डीकी सूइयोंसे वह चमड़ेकी सिलाई भी करने लगा था, यद्यपि इस सुईसे मोची की सुईकी तरह सूत खींचा जाता था। ओरन्यक् मानव धनुष और वाणका इस्तेमाल जानता था। इसने हड्डियोंपर अपनी कलाभिरुचिका प्रदर्शन

किया है, साथ ही गुफाओंमें उसके हाथके चित्र भी मिलते हैं। स्पेनके अल्तमीरा गुफाकी छत और दीवारोंपर उसके हाथके बनाये हुए कितने ही बैल, बिसोन, हरिन और घोड़ेके अत्यन्त सजीव चित्र हैं। अल्तमीराकी गुफा बहुत अँधेरी—२८० मीतर लम्बी है, (एक मीतर ३ फुट पौने ४ इंचका होता है)। गुफाके भीतर रोशनी बिल्कुल नहीं जा सकती और चित्र भीतरकी दीवारमें सब जगह बने हुए हैं। आज भी प्रकाशके विना उन्हें देखा नहीं जा सकता, इसलिए चित्रकारोंने अवश्य दिये की सहायता ली होगी। ओरनयक् मानव ४-५ इंचकी मिट्टीकी मूर्तियाँ भी बना लेता था, जो काफी अच्छी थीं।

३. सोलूत्रे[1] (१४००० वर्ष पूर्व)

फ्रांसमें मासोंके पास सोलूत्रे नामक स्थान है, जहाँ ऊपरी पुरापाषाण युगके मानवके शरीरावशेष मिले हैं, जिसके कारण उसका नाम सोलूत्रे पड़ा। इस मानवके अवशेष इंगलैण्ड, उत्तरी स्पेन और मध्य युरोप तक मिले हैं। वह घोड़ोंका शिकारी था और हिमयुगके समाप्त होनेके बाद युरोपमें जो घासके मैदान मौजूद हुए थे, उनमें घूमा करता था। चकमक-पत्थरके बने हुए सुन्दर फल वह अपने भालों और वाणोंमें लगाता था, जो शिकारके लिए ही भयंकर हथियार नहीं थे, बल्कि उनके बनानेमें कला और सुरुचिका भी भारी परिचय दिया गया था। सोलूत्रे मानवकी दस्तकारीके रूपमें चकमक पत्थरकी छिलाई और सफाई अपने जिस उच्चतम विकासपर पहुँची थी, उसका मुकाबिला नवपाषाण युगके पहलेवालोंने नहीं कर पाया। इसने हड्डीकी सच्ची सूई बनाई, इससे पहले मोचियोंकी तरह ही सिलाई होती थी। इस मानवकी सूईके लिए सूतका काम अँतड़ियोंके रेशे या नसें करती रही होंगी। इस समय मानवने अपने चमड़ेके परिधान और जूता आदिके बनानेमें बहुत तरक्की की होगी, इसमें सन्देह नहीं। इस मानवके रहनेके समय युरोपका जलवायु वैसा गरम नहीं था, जैसा ओरन्यक् मानवके समय। वह कुछ अधिक सर्द था। इस समय युरोपमें मम्मथ गज अब भी मौजूद थे।

४. मद्लेन[2] (१३००० वर्ष पूर्व)

सोलूत्रे मानवके दो सहस्राब्दियों बाद मद्लेन मानवका पता लगता है। फ्रांसकी वेज़ेर नदीकी उपत्यकामें मद्लेन कैसल (गढ़) के करीब ही इस मानवका अवशेष मिला था। अपने पत्थरके हथियारोंमें यह सोलूत्रे मानवका मुकाबिला नहीं कर सकता था। हड्डी और हाथी-दाँतके हथियारोंको यह ज्यादा पसन्द करता था और चकमकको बहुत कठोर हथियारोंके[3] तौर पर ही इस्तेमाल करता था। औरन्यक-वंशका इसे नालायक उत्तराधिकारी कह सकते हैं। यह फ्रांस ही नहीं स्पेन, जर्मनी, बेल्जियम और इंगलैण्डमें भी रहता था। इसके समय शायद हिमयुग की स्मृति भी लुप्त हो चुकी थी। मद्लेन मानव अपने भालों और वाणोंके फल हाथी-दाँत तथा हरिनकी

---

[1] पेर्वो० ओब्० पृ० ३५०–६३।

[2] Gen. Anth. p. 242.

[3] पेर्वो० ओब्० पृ० ४६९–८३, Gen. Anth pp. 77, 143,

सींगोंका बनाता था। इन फलोंमें कुछ काँटेदार भी होते थे, जिनसे आगे मछली मारनेकी वंशीका विकास हुआ। अपने हड्डीके हथियारोंपर यह चित्रकारी भी करना जानता था। मद्लेन मानव के चित्रों में सील और सामोन मछलीकी आकृतियाँ काफी मिलती हैं। इस्कैमोसे इसके शरीर-लक्षणों में भारी समानता है। एस्किमो लोग भी हड्डी और लकड़ी पर कारुकार्य करनेमें बहुत दक्ष होते हैं। हो सकता है, मदलेन मानव लकड़ीके बोटोंको चमड़ेसे बाँधकर एक तरहकी नाव बनाता था। वह धनुहीके सहारे बर्मा द्वारा लकड़ी और हड्डीमें गोल छेद कर सकता था। वह जाड़ेके दिनोंमें गुफाओं या चट्टानोंकी छायाके नीचे शरण लेता और गर्मियोंमें फूस या चमड़ेकी झोपड़ी में। आधुनिक एस्किमो लोगोंसे आकृति और हस्त-शिल्पमें ही नहीं वह भारी समानता रखता था, बल्कि दीपकसे प्रकाश और खाना पकानेका भी शायद काम लेता था। चित्रकलाके विकासमें, प्रागैतिहासिक मानवोंमें इसे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसके चित्रोंमें मम्मथ गजका सजीव चित्रण यदि कहीं देखा जाता है, तो कहीं बिसौन और सिंहका आकार, कहीं लाल और दूसरे हरिनोंका शिकार अंकित मिलता है। वह लाल, भूरे, काले और पीले रंगोंको इतनी सुन्दरताके साथ इस्तेमाल करता था, कि चित्र बहुत सजीव और भावपूर्ण हो जाता था। इसके चित्रोंमें कितने ही पूर्ण आकार के हैं। वह ब्रुशका अवश्य इस्तेमाल करता था। रंगोंको शायद हरिनकी सींगोंकी बनी नलियों में रखता था।[1]

§२. मध्यपाषाण

अज़िल, अश्योल[2] (११००० वर्ष पूर्व)

मदलेनसे दो सहस्राब्दी बाद इस मानवका पता लगता है, जो कि पुराण मानवजातियोंका अन्तिम प्रतिनिधि था, और अपनी विशेषताओं के कारण इसे पुरापाषाण और नवपाषाणके बीचवाले मध्यपाषाण युगका मानव कहते हैं। दक्षिणी फ्रांसमें लूदके समीप मा-द-अज़िलकी गुफामें इसके हाथकी चीजें मिली थीं। इंगलैण्ड और स्काटलैण्डमें भी इसका पता लगता है। अज़िल मानवकी एक विशेषता यह थी, कि वह मुर्देकी बहुत सी खोपड़ियोंको अलग करके अण्डेकी तरह एक जगह गाड़ा करता था। बवेरियामें नोर्दलिंगेन के पास ओफनेत गुहामें एक ही जगह १७ खोपड़ियाँ गाड़ी मिली थीं, जिनके साथ गेरूके टुकड़े भी थे, जिससे मालूम होता है, कि वह गेरूसे रंगकर शरीरका शृङ्गार किया करता था। उन खोपड़ियोंमें एक छोटे बच्चेकी भी थी, जिसके पास बहुतसे घोंघे आदि रक्खे हुए थे, जो मरनेपर भी लड़केको खेलनेके लिए थे। जान पड़ता है, शरीरके बाकी भागको ये लोग जला दिया करते थे। पीछे जब शरीरका जलाना आम हो गया, तो भस्मको मिट्टीके बर्तनमें रखकर गाड़ दिया जाता था, लेकिन यह नव-पाषाण युगकी बात है। हिमयुगके बीते बहुत दिन हो गये थे, युरोपका जलवायु इस वक्त नरम था। मदलेनके समय घासवाले मैदानों का स्थान घने जंगलोंने ले लिया था। अज़िल मानव अच्छे मछुए थे, साथ ही शिकार भी उनकी जीविकाका बड़ा साधन था। पालतू

---

[1] दक्षिण-भारत में कुर्नूल के पास एक गुहा में इस जसे हथियार १८८१ ई० में मिले थे, Prehistoric India (Paggot, page 35)

[2] (पेर्वो० ओव् पृ० बि० १६०, Gen. Anth. p. 45)

पशुका पहले-पहल इन्हींके समय पता लगता है, जो कि कुत्ता था। अभी कृषिका कहीं पता नहीं था। अज़िल मानवको मछली या जानवरके शिकारपर गुजारा करना पड़ता था। कुत्तेकी घ्राणशक्तिका उपयोग करके वह शिकारके जानवरोंका अच्छी तरह पीछा कर सकता था और शायद कुत्ते जानवरके घेरनेमें भी सहायता करते थे। अभी फल जमा करने और शिकारसे प्राप्त मांसके सिवाय आहारका कोई दूसरा साधन मानवको प्राप्त नहीं हुआ था।

§३. मानव शरीर-लक्षण

प्राचीन मानवोंका फोसील-भूत हड्डियोंके सिवा और कोई शरीरावशेष नहीं मिला, इसलिए उनके केशोंकी बनावट कैसी थी, चमड़े, आँख और केशका रंग कैसा था, रुधिर किस वर्गका था इत्यादि बातोंके जाननेका हमारे पास साधन नहीं है। आजकलकी मानव-जातिके मुख्यतः चार भेद हैं : आस्ट्रेलायित, निग्रोयित, मंगोलायित और श्वेतांग। रंगोंका अन्तर दिखलाई पड़ते भी मंगोलायित और श्वेतांग जातियोंके शिशुओंकी नासाकृतिमें पहले अन्तर नहीं रहता, नासा-सेतु (बाँसा) का विकास वयस्कताके साथ होता है।

१. शरीर-लक्षण[1]

केशकी बनावट चमड़ेका वर्ण और नासाकृतिको देखकर आज हम मानव-जातियोंके भिन्न-भिन्न भेदको समझ लेते हैं। निग्रोयित जातियोंके चमड़ेका रंग काला, बाल काले तथा ऊन जैसे फूले होते हैं। आस्ट्रेलायित लोगोंका चमड़ा काला और बाल काले तथा लहरदार होते हैं। मंगोलायित, जिसमें अमेरिकन इंडियन भी शामिल हैं, हल्का रंग, सीधे बाल तथा उन्नत-नासा-सेतुके होते हैं। श्वेतांग बहुत हल्का रंग, पतली नाक तथा भिन्न-भिन्न वर्ण और बनावटके केशोंवाले होते हैं। नेत्रकी आकृतिमें भी भेद देखा जाता है, किन्तु वह अधिक स्थिर लक्षण नहीं है। श्वेतांगों और निग्रोयितोंकी आँखें अधिक विस्फारित होती हैं, जब कि मंगोलायितोंकी ऊपरी पपनीमें एक भारी परत पड़ी रहती है, जिसके कारण वह पूरी तौर से खुल नहीं सकतीं। निग्रोयितों और आस्ट्रेलायितोंके ओठ बहुत मोटे होते हैं, मंगोलायितोंके उनसे कम और श्वेतांगोंके ओठ बहुत पतले होते हैं। कभी-कभी शरीराकृतिमें भिन्न प्रकारके विकास भी देखे जाते हैं। अमेरिकन इंडियन नियमितरूपेण काले बालों और आँखों तथा हल्के रंगवाले होते हैं, किन्तु अलास्का और ब्रिटिश कोलम्बियाके विशालतम मस्तिष्क और अल्पतम रोमवाले लिगित और हैदा एस्किमो इसके अपवाद हैं। इनका चमड़ा बहुत सफेद, केश लाल और आँखें हल्की भूरी होती हैं, जिनके कारण इन्हें कपिल (ब्लौंड) एस्किमों कहा जाता है। आजकल भी देखा जाता है, भिन्न-भिन्न जातिके लोग प्रायः अपनी ही जातिमें विवाह या सन्तानोत्पत्ति करते हैं, जिसके कारण उनकी शरीराकृतिमें आनुवंशिकता कायम हो जाती है : अर्थात् एक जातिमें एक ही रूपरंगके

---

[1] Gen. Anth. p. 102

व्यक्ति पैदा होते रहते हैं। मानव-आकृति और रंगके परिवर्त्तनमें जलवायु भी कारण होता है। अधिक गरम देशोंमें रहनेवाले लोगोंका रंग श्याम होने लगता है, चाहे उनके माता-पिता श्वेतांग ही हों, तो भी जलवायु का प्रभाव उतना अधिक और शीघ्रतासे नहीं देखा जाता, जितना कि जोड़ा-निर्वाचन या एस्किमोकी भाँति अज्ञात कारणों द्वारा देखा जाता है।

भिन्न-भिन्न मानव-जातियोंमें वर्ण-भेद और रूप-भेद किस तरह हुआ, इसके बारेमें विद्वानोंने बहुत सी कल्पनाएँ दौड़ाई हैं। अर्थर कीथके मतानुसार वर्ण-भेदका कारण मनुष्य-शरीरके भीतरकी निष्प्रणालिक ग्रंथियोंके हारमोन (जीवन-रस) है। मस्तिष्कके ललाटकी बगलमें अवस्थित पिटुइटरी ग्रंथि अधिक बढ़ी हो, तो उससे हारमोनका भी अधिक स्राव होगा, जिसके कारण नाक,[1] चिबुक (ठुड्डी), हाथ और पैर अधिक लम्बे हो जायेंगे। शरीरकी बृद्धिपर थाइराइड ग्रंथि नियंत्रण करती है। यदि इसका हारमोन कम निकले, तो नासा और केश बहुत कम विकसित हो पाते हैं और चेहरा चिपटा हो जाता है। इस हारमोनकी कमी से निग्रो जातिके लोगों के शरीरपर बालकी कमी है। जलमें आइडिनका अभाव होनेसे थाइराइड ग्रंथि हारमोन स्राव के लिए अधिक प्रयत्न करके स्वयं बढ़कर घेघेका रूप धारण कर लेती है। बचपनसे वैसा होना बकलोल भी बना देता है। इसका अर्थ यह हुआ, कि बाहरी प्रकृति (जलमें आइडिनका अभाव) भी मनुष्यकी भीतरी निष्प्रणालिक ग्रंथियोंपर प्रभाव डालती है और उसके द्वारा (अर्थात् प्राकृतिक वातावरणके कारण) शरीर-लक्षणोंमें परिवर्तन होता है। केवल रंग आदि हीमें नहीं, बल्कि शरीरके ढाँचे पर भी इस तरहके प्रभाव देखे जाते हैं, जिससे मालूम होता है कि शरीर-लक्षण कोई स्थिर चीज़ नहीं है। पूर्वी युरोपसे अमेरिका आये हुए यहूदियोंकी कपाल-भित्ति ८३ होती है, किन्तु उनके पुत्र-पुत्रियोंकी ८१. ४ और पौत्र-पौत्रियोंकी ७८. ७ बन जाती हैं। शरीर-दीर्घताकी बात तो यह है, कि हार्वर्ड-विश्वविद्यालयके छात्र अपने माता-पितासे ३. ४ सेन्तीमीटर अधिक ऊँचे हो जाते हैं।

२. जातियों का सम्मिश्रण[1]

प्राचीन मानव-जातियों में भी जाति-सम्मिश्रण हुआ, क्योंकि मानव सदासे घुमन्तू रहा है—कृषियुगसे पहले तो वह घुमन्तू छोड़कर और कुछ था ही नहीं। हम आजकी मानव-जातिके इतिहास में भी ऐसे बहुत से उदाहरण पाते हैं, जिसमें दो-चार व्यक्ति नहीं, बल्कि जातियोंका सम्मिश्रण हुआ। ईसापूर्व द्वितीय शताब्दीके अन्तमें ग्रीक लोग आक्रमण कर भूमध्यसागरके तट पर बस गये। थ्रेस (बलकांन) वासी क्षुद्र-एसिया में चले गये, इसी तरह केल्ट भी इताली तक फैलते क्षुद्र-एसिया में पहुँच गये। रोमन उपनिवेशिक युरोपके बहुत से भागों में जा बसे। जर्मन कबीले कालासागर के उत्तरी तट से चलकर पश्चिम और दक्षिणी युरोप तथा उत्तरी अफ्रीका में जा बसे। स्लावोंने फिनोंको हटाकर रूसमें उनका स्थान ले लिया। बुलगार कालासागर-

---

[1] Gen. Anth. p. 102 शैशवके बाद नाक स्पष्ट होती है, Gen. Anth. p. 101, वहीं और p. 106.

तट छोड़ बल्कानमें चले गये। कितने ही हूण कबीले वर्तमान मंगोलियासे चलकर हुँगरीमें जा मगियार के रूप में बस गये। युरोप-निवासी तब तक बराबर चलते-फिरते ही दिखाई देते रहे, जब तक कि खेतों में वैयक्तिक संपत्ति का अधिकार स्थापित नहीं हो गया । जो बात युरोपके लिये हुई, एसिया उसका अपवाद नहीं रहा। इन्दोनेसिया के निवासी मलयू लोग पश्चिम की ओर प्रयाण करते-करते युरोपियन तुर्की तक चले गये। इस प्रकार किसी भी जाति का शुद्धताका दावा बिल्कुल झूठा है। हाँ, कभी-कभी आदिम मानव ऐसे स्थान पर भी पहुँच गया, जहाँ प्राकृतिक बाधाओं के कारण वह बाहरसे सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सका। उदाहरणार्थ, ग्रीनलैण्ड के स्मिस-सोंड इलाके के एस्किमो और तस्मानिया के मूल निवासी। सहस्राब्दियोंसे दूसरी जातियोंके सम्पर्कसे वंचित होनेके कारण इन जातियों ने अपने विशेष शरीर-लक्षण विकसित कर लिये। एक समयकी संकरित या मिश्रित जातियाँ भी अधिक समय तक एक जगह अलग-अलग रहकर विशेष लक्षण विकसित करने में समर्थ होती हैं। अधिक देशोंमें बिखरी होनेपर भी प्रायः अपनी जातिमें ही सन्तानोत्पत्ति करनेके कारण युरोपीय यहूदी लोगों की शुकाकृति नाक उनका साफ परिचय देती हैं।

३. रक्त-भेद[१]

वर्तमान शताब्दीमें चिकित्सा शास्त्रकी खोजोंमें रक्त-परीक्षाका भी एक स्थान है। मानव-जातिके रक्तका ओ० ए० बी० और एबी इन चार समूहोंमें वर्गीकरण हुआ है। रक्तको किसी बीमारके शरीरमें डालते वक्त इस वर्गीकरणका ध्यान रखना आवश्यक होता है, क्योंकि जहाँ ओ रक्त किसी भी आदमीको दिया जा सकता है, वहाँ ए रक्तको बी में डालनेसे हानि होती है। शुद्ध अमेरिकन-इंडियन लोगोंमें शुद्ध ओ रक्त पाया जाता है। आस्ट्रेलियन मूलनिवासियोंमें भी ओ रक्त ही अधिक मिलता है और बाकीके ए रक्तवाले होते हैं। सारे एसियाको लेनेपर २० से ३५ सैकड़ा ही ओ रक्त मिलता है। पश्चिमी युरोपमें बीकी अपेक्षा ए रक्तवाले ज्यादा मिलते हैं, किन्तु पूर्वी और दक्षिणी युरोपमें बी की प्रधानता देखी जाती है। सीमान्त पर रहनेवाले कितने ही लोगोंमें ए बहुत कम मिलते हैं और बी रक्तवाले ही अधिक होते हैं। विद्वानोंका कहना है, कि ओ रक्त, चूँकि सर्वत्र मिलता है, इसलिए शायद यही मूल और सबसे प्राचीन रक्त हो। बीकी अपेक्षा ए रक्तको आदिम जातियोंमें ज्यादा पाया जाता है, इसलिये ए अधिक पुराना है। इस प्रकार रक्तकी आनुवंशिकतासे हम पीछेकी ओर बढ़ते-बढ़ते पुरा-पाषाणके मानवों तक पहुंच सकते हैं किन्तु तुलनात्मक परीक्षाके लिए हमारे पास साधन नहीं है। एक विद्वान्‌का कहना है, कि यूरेसि-याई जातियोंका चौड़े सिरवाला होना बी रक्तकी उत्पत्ति और प्रसारके कारण हुआ। राइन-लैण्डकी अपेक्षा र्बलिन और लाइपजिगमें एकी अपेक्षा बी रक्त अधिक पाया जाता है। एल्बे नदीके पूरब पश्चिमकी अपेक्षा और भी अधिक बी मिलता है। बी रक्तकी अधिकताका कारण वहाँके लोगोंका यूरेसियाई (स्लाव) लोगोंके साथ अधिक सम्मिश्रण है। रक्तका वर्गीकरण का चिकित्सा-शास्त्रसे बाहर नृतत्त्वीय अनुसन्धानमें भी उपयोगी हो चला है, किन्तु उससे हम

---

[१] पेर्वोबित्नोये ओबश्चेस्त्वो (प. प. एफिमेंको)

प्राचीनतम मानव-जातियोंके बारे में बहुत अधिक नहीं बतला सकते। हाँ, मुस्तेर, क्रोमेञों आदि कितनी ही प्राचीन जातियोंकी मंगोलायित आकृति शायद उन्हें ए वर्गका बतलाती है।

स्रोत ग्रन्थ :

1 History of Anthropology, pp. 36-37
2 L' Humnite Prehistorique (J. de-Morgan)
3 General Anthropology (Boas)
4 Our Early Ancetsors, (M. C. Burkitt)
5 Progress and Archaeology (V. G. Childe)
6 Anthropology I, II (E. B. Taylor, London. 1946)
7 In the Beginning (G. Elliot Smith, London. 1946)
8 Geology in the life of man (Duncan Leith, Londan. 1945)
9 Man the verdict of Science (G. N. Ridley, London. 1946)
10 History of Anthrpology (A. C. Haddon)

अध्याय ४

मध्य-एसिया के आदिम मानव

मध्य-एसियाकी अपार बालुकाराशि (प्यासी भूमि, कराकुम, किजिलकुम, तकलामकान और गोबी) का पूरी तौरसे अनुसंधान अभी ही शुरू हुआ है, जब कि ये रेगिस्तान कम्युनिस्त शासनमें आये। नृतत्त्व-विशारदोंको बहुत आशा है, कि मानवके आरंभिक इतिहासकी कुंजी शायद इन्हीं रेगिस्तानोंसे मिले, जो कि किसी समय हरे-भरे घासके मैदान अथवा वृक्ष-वनस्पतिसे आच्छादित वनखंड थे। पश्चिमी मध्य-एसियामें सबसे प्राचीन मानव मुस्तेरके अवशेष दो जगह मिले हैं। इरतिसके तटपर कुरदाइ में मध्य-पुरापाषाण युगका मानव रहता था, लेकिन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है दक्षिणी उज्बेकिस्तान में तेशिकतांशका गुहा-मानव।

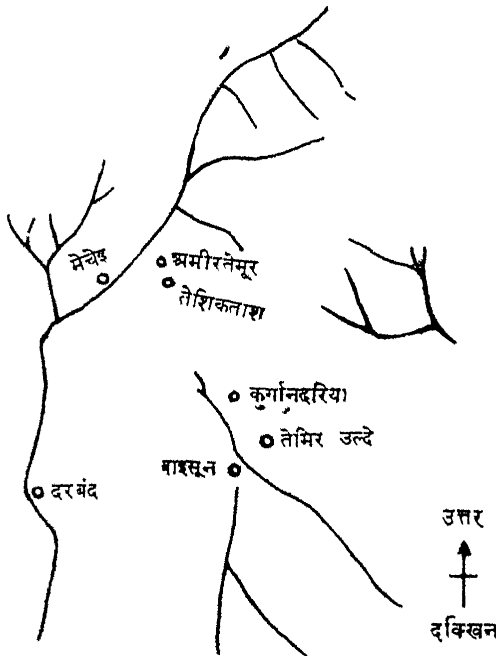
§१. मध्य-पुरापाषाण-युग

१. तेशिकताश मानव

पामीर का ही पश्चिमकी ओर बढ़ा हुआ पर्वतीय भाग उज्बेकिस्तान गणराज्यमें समरकन्दसे लेकर तिरमिजके उत्तर तक फैला हुआ है। इसी पर्वतमालाके दक्षिणी भागमें दरबंदका प्रसिद्ध गिरिद्वार हैं, जो स्वेन-चांगकी यात्राके समय (६३० ई०) देशकी प्रतिरक्षाका बहुत जबर्दस्त साधन समझा जाता था। इस सँकरे गलियारेमें लोहेका फाटक लगा हुआ था। अब उसका वह सैनिक महत्त्व नहीं रह गया है, और न समरकंद बुखारासे आनेवाले यात्रीके लिए दरबंदसे गुजरना आवश्यक है। लेकिन दरबंद होकर जानेवाली शीराबादकी छोटी नदी अपना एक दूसरा महत्त्व रखती है। दरबंदसे कुछ मील उत्तर इसी नदीके दाहिने किनारेपर कत्ताकुर्गनका विशाल गाँव है, जिससे कुछ और ऊपर जानेपर नदीके बाँयें तटपर अमीर-तैमूर स्थान है। शायद अमीर-तैमूर यहाँ आया हो, किंतु अमीर-तैमूरके आनेसे पचासों हजार वर्ष पहले एक दूसरी ही मानव-जातिका यहाँ डेरा था, जो तैमूरसे कहीं ज्यादा खूनखार थी। अमीरतैमूरके बिल्कुल पास की पहाड़ीमें तेशिकताशकी गुहा है। यहीं मुस्तेर मानवके अवशेष जून १९३८में मिले।[1] यह स्थान उज्बेकिस्तानके बाइसून जिलेमें है। अमीर-तैमूरमें भी मध्य-पुरापाषाण युगके अस्त्र मिले हैं, किंतु वहाँ मानव-शरीरावशेष नहीं मिले। एसियामें यहाँसे पूरब मुस्तेर मानवका अवशेष और कहीं नहीं मिला है। यह गुफा १५-१६ सौ मीतर लंबी और १५ से २० मीतर चौड़ी है। सोवियत पुरातत्ववेत्ताओंने इसकी सुव्यवस्थित रीतिसे खुदाई करके बहुत सी एतिहासिक सामग्री प्राप्त की है, जिनमें पाषाण-अस्त्र (नुकलेयस, छुरे) तथा बहुत प्रकारके जानवरोंकी हड्डियाँ हैं। जंगली बकरियोंकी विशाल सींगें काफी परिमाण में प्राप्त हुई हैं। इस गुफाके वर्तमान धरातलके नीचे दस स्तरोंका पता लगा है। ऊपर से तीसरे

[1] त्रुदी उज्बेकिस्तान्स्कओ अकदमी नाउक (ताशकंद १९४०, पृष्ठ ५४२-४)

तलम ५० मीतर लंबा एक चबूतरा-सा मिला, जिसपर बहुतेरे बड़े-बड़े पत्थर पड़े हुए थे। यहाँ बकरीकी सीगों तथा पत्थरके हथियार बनानेके साधन प्राप्त हुए। नवें स्तरके तीसरे चौथे तथा दसवें स्तरके भी तीसरे चौथे चतुष्कोणोंमें सबसे अधिक सामग्री मिली, जिनमें पाषाण-अस्त्रोंके साथ दो बकरीकी सींगें तथा बहुतसे जंगली जानवरोंकी हड्डियाँ मिलीं। मालूम होता है, पत्थरके हथियारोंका मिस्त्रीखाना यहीं पर था। सबसे महत्त्वकी चीज जो यहाँ मिली, वह थी आदमीकी

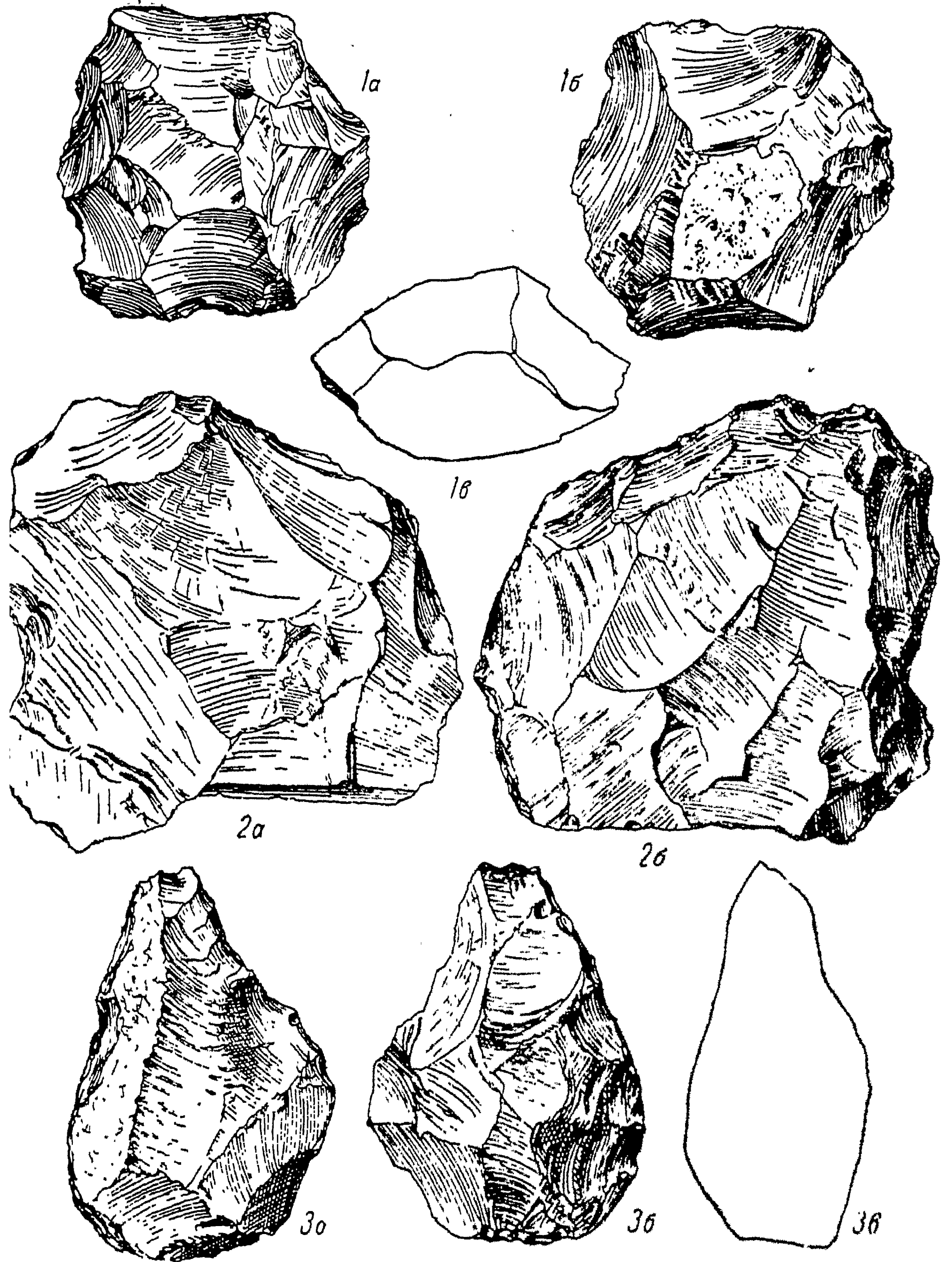


७. तेकिशताश गुहा

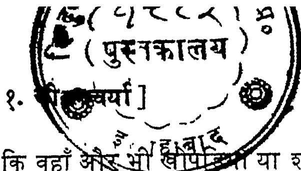
हड्डी, खोपड़ी, जिसमें नेयण्डर्थल या मुस्तेर मानवके शरीर-लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। खोपड़ी बहुत मोटी थी, इसका ललाट नीचा था, भौंकी हड्डी उभड़ी हुई थी, दाँतोंमें कुकुरदंत छोटा था यद्यपि और दाँत बहुत बड़े थे। मुँह बहुत बड़ा था, पर ठुड्डीका अभाव था।

तेशिकताश गुफामें मिली हड्डियोंके देखनेसे पता लगता है, कि वहाँ सबसे ज्यादा सिबेरीय बकरीका इस्तेमाल होता था, जिसकी ६४६ संख्याका पता लगा है। इसके अतिरिक्त ५ पक्षी, २ घोड़े, २ सूअर, १ पार्दसिंग तथा ५, ७ और जानवरोंका पता लगा है। हड्डियोंसे मालूम होता है, कि तेशिकताश मानवका सबसे प्रधान खाद्य सिबेरीय बकरी थी, उसीका शिकार उसकी प्रधान जीविका थी।

इस खोपड़ीका कपालक-क्षेत्र १४६० घन-सेंतीमीतर था, जबकि आजकलके शिशुका ११५० से १५०५ घन-सेंतीमीतर होता है (चिम्पांजीका कपालक-क्षेत्र ३५०, ओराङऊतानका ३८० और गुरिल्लाका ४०० घन-सेंतीमीतर होता है)। यह खोपड़ी १५-१६ सालके लड़केकी थी। गुहामें से बहुत सारे पाषाणास्त्र और हड्डियाँ मिलीं, इसलिए आशा हो सकती थी,



८. तेशिकताश मानवके पाषाणास्त्र p १८.



कि वहाँ और भी खोपड़ियाँ या शरीरावशेष होंगे। किंतु मुस्तेर मानवके अवशेष उतने सुलभ कहीं भी नहीं हैं। नृतत्त्व-विशारदोंका कहना है, कि तेशिकताश-मानव पेकिंग-मानव और आधुनिक मानवके बीचका था।

(१) जीवनचर्या

आजसे २५-३० हजार वर्ष पहले चतुर्थ हिमयुगके अंतमें लुप्त इस मुस्तेर मानवकी जीवन-यात्रा कैसी थी, इसका कुछ पता उसकी गुफामें मिली हड्डियाँ बतलाती हैं और कुछ का अनुमान हम तस्मानिया के मूल-निवासियोंकी जीवन-यात्रासे कर सकते हैं। तस्मानियाके लोग दक्षिणी उज्बेकिस्तानके बराबर ही शीतोष्ण (प्रायः ४० डिग्री अक्षांश)में रहते थे, यद्यपि एक दूसरेसे भिन्न (दक्षिणी और उत्तरी गोलार्ध) में होनेके कारण उनकी ऋतु एक दूसरेसे उलटे कालमें पड़ती थी। तेशिकताश मानवको जहाँ हिमयुगकी कठोर सर्दीमें जीवन-संघर्ष करना पड़ रहा था, वहाँ पिछली शताब्दीमें अँगरेजोंकी कृपासे जीवनसे मुक्त हो जानेवाले तस्मानियन लोगोंको उतनी सर्दीका मुकाबिला नहीं करना पड़ता था, तो भी वह ऐसी जगह पर थे, जहाँ कभी-कभी जाड़ोंमें बर्फ पड़ जाती थी। आबेल तस्मनने १६४२ ई० में आस्ट्रेलियाके दक्षिणमें अवस्थित इस द्वीपका पता लगाया था, जिसके ही नाम पर उसका नाम तस्मानिया[१] पड़ा। १७७७ ई० में कप्तान कूक जब तस्मानिया पहुँचा, तो उसने वहाँके लोगोंको पुरापाषाण-युगमें पाया। जान पड़ता है, तस्मानियन लोग एसियासे मलाया-जावा होते आस्ट्रेलिया पहुँचे थे। उस समय आस्ट्रेलिया शायद एसियासे स्थल द्वारा मिला हुआ था। प्रबल मानव-शत्रुओंके भयके मारे तस्मानियन लोग भागते भागते इस द्वीपमें पहुँच हजारों वर्षोंसे अपना सरल जीवन बिता रहे थे। दूसरे बर्बर मानव-शत्रुओंने उन्हें भागकर जान बचानेका अवसर दिया था, किंतु सभ्य अँगरेज उतनी दया दिखलानेके लिए तैयार नहीं थे। अस्तु, तस्मानिया द्वीपमें पहुँचकर ये मानव-संपर्कसे वंचित हो अपना पुराना जीवन बिता रहे थे, जबकि श्वेतांग नई भूमियोंकी खोज करते उनके पास पहुँचे। उस समय वह लोहा या किसी धातुका हथियार इस्तेमाल नहीं करते थे। पुरापाषाणयुगीन मानवकी तरह उनके हथियार छिले चकमक पत्थरके होते थे। पाषाण कुठारको भी बनाना नहीं जानते थे, जिसे कि शेल मानव बना सकता था। वे आमतौरसे नंगे रहा करते थे, किंतु कभी-कभी चमड़े भी पहनते थे। कांगरूके चमड़ेसे बिछौनेका काम लेते थे। वर्षा और गर्मीसे उनके स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता था। उनका घर खाली शाखाओं और घासोंका बनाया हुआ आड़ होता था, जिसके ऊपर छत डालनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। अँगरेजोंने धीरे धीरे तसमानियाके सुन्दर द्वीपको निगलकर अधिकांश निवासियोंको अकाल ही काल-कवलित करा दिया। बचे हुए निवासियोंको १८३१ ई० में पासके फिलण्डर द्वीपमें निर्वासित कर दया दिखाते हुए झोपडियों में रख दिया गया। खुली जगहमें वर्षामें भींगते और जाड़ेमें काँपते उन्हें कोई रोग नहीं हुआ था, किंतु अब उन्हें सर्दी और जुकाम होने लगा। अपनी प्राकृतिक अवस्थामें यह लोग शरीर पर चर्बी और गेरू पोता करते थे, जिससे शायद सर्दी-गर्मीका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता था।

---

[१] Everyday Life in the Old Stone Age, pp. 40-44

तस्मानियन लोगोंके जीवनसे हमें पता लग सकता है, कि आजसे ५० हजार वर्ष पहले मध्य-एसियाके प्राचीन निवासी कैसे रहते थे। तस्मानीय लोग घोंघे-कौड़ी आदिकी मालाके बड़े शौकीन थे और तेज चकमक पत्थरसे काट कर गोदना भी गोदाते थे। आहारकी खोजमें वह बराबर एक जगहसे दूसरी जगह घूमते रहते थे। कितनी ही बार बच्चोंको भी आहारकी कमीके कारण भूखे मरनेके लिए छोड़ दिया जाता था, वही बात विकलांगों और अधिक बूढ़े आदमियोंकी भी थी। कड़ी लकड़ीके बने हुए सीधे-सादे भालेसे वह कांगरूका शिकार करते थे। लकड़ीको काटकर उसे चकमक से छील लेते थे। यदि लकड़ी टेढ़ी होती तो उसे आगसे गर्माकिर सीधा करते थे। एक छोरको आगसे जला लेते थे, फिर उसे छीलकर तेज बना लेते। यह छोर उसी ओर होता था, जिधर लकड़ी ज्यादा मोटी अतएव भारी होती थी। उनके भाले ११-१२ फुट लंबे होते थे। एक ओर भारी होनेकी वजहसे उस ओर सामने करके फेंका हुआ भाला लक्ष्यपर सीधे जाता था। तस्मानीय शिकारी ४०-५० गजके फासलेसे काँगरूको मार सकता था। वह जिस तरह चिर-अभ्यासके कारण भालेका ठीक निशाना लगा सकता था, वैसे ही ढाई फुट लंबे मोटे डंडे या पत्थरोंको भी फेंककर शिकार कर सकता था। उनकी आँख, कान और घ्राणकी शक्ति बड़ी तीव्र थी, जिससे अपने शिकारका अच्छी तरह पीछाकर सकते थे। जो भी पशु-पक्षी उनके हाथमें आता, उसे लकड़ीकी आगमें डाल अधपका करके बालों और पंखोंको झुलसा कर चकमकके चाकूसे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देते। नमकका काम थोड़ी-सी लकड़ीकी सफेद राख देती थी। वह केवल भुना हुआ मांस खाते थे, उबालनेके लिए उनके पास कोई बर्तन नहीं था।

भोजनके बारेमें तेशिकताश मानवकी भी यही अवस्था रही होगी। तेशिकताश मानव गर्मियोंमें अपनी गुफासे बहुत दूर-दूर तक भटकता रहा होगा। उसको ऐसी नदी, जलाशय भी मिलते होंगे, जिनमें मछलियाँ रहती थीं। शायद इनकी स्त्रियां भी तस्मानीय स्त्रियोंकी भाँति पानीमें गोता लगाकर या वैसे ही मछलियां पकड़ती रही होंगी। बंसी या जालका पता तस्मानीय लोगोंको नहीं था। पुरुषोंका काम शिकार खेलना था। तस्मानीय स्त्रियाँ दूसरा काम करती थीं। वह अपने पुरुषोंके पास खाते वक्त बैठ जातीं, वह अपनी आज्ञाकारिणी स्त्रियों को अपने मांसमेंसे काटकर एक टुकड़ा थमा दिया करते थे। तस्मानीय पुरुष लकड़ीके बोटोंको नावकी तरह इस्तेमाल करते थे, तीन चार आदमी उस पर बैठ कर लकड़ीके भालोंसे मछली मारते थे। यही भाले नावकी लग्गीका भी काम देते थे।

वह व्यापार या चीजोंकी अदला-बदलीका ज्ञान नहीं रखते थे, न कृषि जानते थे और न पशुओंका पालन ही। उनके यहां न कोई सामन्त-राजा था, न कानून और नहीं कोई नियमित सरकार। अगर बीमारी होती, तो थोड़ा-सा खून निकालकर चिकित्सा कर लेते थे। मुर्दोंको कभी-कभी वह गाड़ देते थे और कभी-कभी किसी पेड़के कोटरमें रख देते थे। यदि जलाते तो अवशेष को गाड़ देते, लेकिन खोपड़ीको या तो संस्मारकके तौरपर रख लिया जाता या पीछेसे कहीं अलग गाड़ दिया जाता था। उनका विश्वास था, कि मनुष्य मरनेके बाद अपने पितरोंके साथ एक आनन्दमय द्वीप में रहता है। झगड़ा खड़ा होने पर उनके न्याय तरीका बड़ा विचित्र था : "दोनों पक्ष वाले पास आकर आमने सामने से छातीके ऊपर अपने दोनों हाथोंको रक्खे अपने सिरको एक दूसरेके चेहरेपर हिलाते बहुत क्रोधपूर्ण चीखनेकी आवाज तब तक करते रहते, जब तक कि उनमेंसे एक थक नहीं जाता या

उसका क्रोध शांत नहीं हो जाता था ।" शायद सहस्राब्दियोंके तजर्बेके बाद उन्हें युद्धकी जगह यह तरीका पसंद आया । तस्मानीय जातिका अंतिम पुरुष त्रुगनिनि १८७७ ई० में मरा, जिसके साथ पुरापाषाण युगकी इस प्राचीन जातिका खातमा हो गया ।

(२) भाषा[१]

प्राचीन मानवने अपने पत्थरके हथियारों या हड्डियोंके रूपमें जो अवशेष छोड़े हैं, उनसे उनके इतिहास पर सबसे अधिक प्रकाश पड़ा है । पर, भाषा द्वारा मानवके प्रागैतिहासिक काल पर उससे भी अधिक प्रकाश पड़ा है, जितना कि शरीरके ढाँचे या हथियारोंके अध्ययनसे । शरीरके ढाँचेमें भिन्न-भिन्न जातियोंके सभी व्यक्तियोंमें वह भिन्नता नहीं देखी जाती, जो कि भाषाके अध्ययनसे स्पष्ट दिखाई पड़ती है । भाषाने एक दूसरे से बहुत दूर निवास करनेवाली जातियोंके पुराने संबंधका पता दिया । अफ्रीकाके पासके मदगास्कर द्वीपके निवासियोंका संबंध मलय लोगोंसे है, इसका किसको पता लगता, यदि भाषाने इसकी सूचना न दी होती । भारतीय आर्योंका, अँगरेजों, जर्मनों, और रूसियोंसे वंश-संबंध है, इसका पता नहीं लग सकता था, यदि भाषाने इसका संकेत न किया होता । लेकिन जिह्वा, तालु, ओठके अतिरिक्त स्वर-यंत्रके काफी विकास होने पर ही मानव ठीकसे वर्ण-उच्चारण कर सकता है । स्वर-यंत्रके विकासका पता मस्तिष्कके भीतरके उस क्षेत्रके विकाससे लगता है, जहाँसे भाषण-यंत्र पर नियंत्रण होता है। निम्न-पुरापाषाण युगके मानव—जावा, पेकिंग और हैडलवर्ग—के स्वर-यंत्रका विकास इतना नहीं हुआ था, कि वह वर्णोंका अच्छी तरह उच्चारण कर सकते । मुस्तेर मानव इस विषय में कुछ आगे बढ़ा हुआ था, किंतु वर्तमान भाषा-वंशों में से किसी का उसके साथ संबंध जोड़ना बहुत कठिन है । भाषा भावों के संकेत का साधन है । शब्द, स्पर्श, और गति (अंग-परिचालन) द्वारा प्राणी एक दूसरे को अपने भावों से अवगत कराते हैं । कुत्ता अपने स्पर्श और भिन्न-भिन्न प्रकार की अंग-गति से ही अपने भावों को नहीं व्यक्त करता, बल्कि उसके शब्दों में भी दुःख, रुवाँसे होने, प्रार्थना, आग्रह, खतरा या आक्रमण के भावों को प्रकट करनेवाले भिन्न-भिन्न स्वर होते हैं । तो भी वनमानुष जैसे बहुत ही विकसित प्राणियों में भी किसी प्रकार की भाषा का पता नहीं लगता । मनुष्य अन्य प्राणियों की तरह संकेत द्वारा भी अपने भावों को व्यक्त करता है और वचन द्वारा भी । यह कहना कठिन है, कि इन दोनों में पहले किसका विकास हुआ । आज भी एक दूसरे की भाषा से अपरिचित व्यक्ति अथवा गूंगे-बहरे संकेत द्वारा अपने भावों को प्रकट करते हैं । भाषा के विकास के लिए स्वर-यंत्रों का अधिक विकसित होना अवश्यक है । लेकिन स्वर-यंत्र के भी विकसित होने पर भाषा का विकास तब तक नहीं हो सकता, या भाषा तब तक नहीं फूट निकल सकती, जब तक कि मष्तिस्क में उसका नियंत्रक-यंत्र भी विकसित न हो चुका होता । तोता-मैना इसके उदाहरण हैं । अपने स्वर-यंत्रों के विकास के कारण वह मनुष्य-जैसी भाषा बोल तो सकते हैं, किंतु नियंत्रक स्थान के अभाव के कारण केवल मनुष्य के स्वरों की नकल भर है । धीरे-धीरे बोलता आदमी ०.०७ ($\frac{७}{१००}$) सेकेण्ड में एक स्वर बोल सकता है, जल्दी बोलने में और भी कम

---

[१] Gen. Anth. pp. 135-40

समय लगता है। इतनी जल्दी और बारीकी से शब्द को निकालना मनुष्य के उपर्युक्त यंत्र की करामात है।[१]

भाषा का लिपिबद्ध होना बहुत पीछे हुआ। मिस्र और असीरिया की भाषाएँ आज से ४-५ हजार वर्ष पहले लिपिबद्ध हुईं। मिस्र में अक्षर-संकेत न हो अर्थ-संकेत रहने के कारण उच्चारण का पता नहीं लग सकता। उच्चारण का पता तो आज की हमारी लिपिबद्ध भाषाओं की पुस्तकों द्वारा न भी पूरा हीं हो सकता। एक-एक स्वर के उच्चारण में जहाँ व्यक्ति में अन्तर देखा जाता है, वहाँ स्वरों के उतार-चढ़ाव आदि के संबंध में तो आज भी हमारी लिपियों में कोई विशेष संकेत नहीं है। देश और काल में दूरस्थ एक वंश की भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से हमें उनका संबंध मालूम होता है, तथा यह भी कि उनमें कितना परिवर्तन हुआ है। भाषाओं का इतिहास यह स्पष्ट बतलाता है, कि उनका उच्चारण, अर्थ और व्याकरण-नियम सभी परिवर्तन-शील है। सांस्कृतिक स्तर में जब भारी परिवर्तन आता है, तो इस परिवर्तन की गति भी तीव्र हो जाती है। सांस्कृतिक विकास जब एक तल पर रुक सा जाता है, तो भाषा में परिवर्तन भी बहुत कम होता है। हिन्दी-युरोपीय भाषा-वंश की स्लाव-जैसी भाषाओं का संश्लिप्ट (सेन्थेटिक) रूप अब तक मौजूद रहना यही बतलाता है, कि काफी समय तक वह उसी सांस्कृतिक स्तर पर रह गई। हम जानते हैं कि स्लाव जातियों के पूर्वज (शक) बहुत पीछे तक धुमन्तू पशुपाल रहे और अपने दक्षिण के पड़ोसियों के लौह-युग में चले जाने के बाद भी कुछ शताब्दियों तक पित्तल-युग में ही रहे। भिन्न-भिन्न भाषा बोलनेवाले लोगों के साथ घनिष्ठ संपर्क होने पर भी भाषा में तेजी से परिवर्तन होता है। यह गलत धारणा है कि लिपिबद्ध भाषा ही में परिवर्तन की गति मंद होती है। ग्रीनलैंड और मेकेंजी नदी के एस्किमो लोग अत्यन्त प्राचीन समय से एक दूसरे से अलग हो गये, किंतु उनकी आजकल की बोलियों में बहुत कम अन्तर पाया जाता है। अफ्रीका की बन्तू बोलियाँ भी देश और काल के भारी अन्तर के बाद भी बहुत कम परिवर्तित हुईं। यह भी इसी तत्व को बतलाती हैं, कि सांस्कृतिक विकास की गति मंद होने पर भाषा में परिवर्तन की गति भी धीमी हो जाती है। दूसरी तरफ हम हिंदी-युरोपीय भाषाओं को देखते हैं, कि युरोप से लेकर एसिया तक की उनकी भिन्न-भिन्न भाषाओं और बोलियों में कितनी तेजी के साथ परिवर्तन हुआ।

परिवर्तन में स्वर सबसे आगे रहती है, लेकिन व्यंजन भी कम परिवर्तित नहीं होते। भाषा के यह बाहरी कलेवर ही तेजी से परिवर्तित नहीं होते, बल्कि उनके अर्थों में भी भेद हो जाता है और कभी-कभी तो वह बिल्कुल उल्टा अर्थ देने लगते हैं। हिंदी और बँगला में उपन्यास से हम कथाग्रंथ का अर्थ लेते हैं, किंतु दक्षिण भारत की बोलियों में उसका अर्थ है भाषण।

जिस तरह यह कल्पना अवैज्ञानिक है, कि एक ही जोड़े से दुनिया की सभी मानव जातियाँ पैदा हुई, उसी तरह एक भाषा से दुनिया की भाषाओं का विकास मानना भी गलत है। यद्यपि आज चार पाँच भाषा-वंश ही पृथ्वी के अधिकांश देशों और लोगों में बोले जाते हैं: युरोप, अमेरिका और एसिया के भी बड़े भाग में हिंदी-युरोपीय भाषा-वंश की बोलियाँ चलती हैं। तुर्की चीनी तुर्किस्तान से लेकर तुर्की तक में बोली जाती है। चीनी भाषा भी एसिया के बहुत बड़े भूखण्ड में बोली जाती है। मलय भाषा-वंश फिलिपाइनसे मदगास्कर तक फैला हुआ है। अफ्रीका के

---

[१] Language its Nature, Devolopment and origin (O. Jasperson, 1923)

बहुत बड़े भाग में बंतू भाषा-वंश का राज्य है। लेकिन एक-एक भाषा का इतना विस्तार नव-पाषाण युग ही नहीं, बल्कि और पीछे की घटना है। युरोप के बहुत से भागों तथा भूमध्यसागर के निकटवर्ती देशों में बहुत पीछे तक अ-हिन्दूयुरोपीय भाषाएँ बोली जाती थीं। दक्षिणी अफ्रीका में बन्तू भाषा का प्रचार हाल के समय में हुआ है। तुर्की भाषा-वंश पांचवीं सदी ई० में पश्चिमी मध्य-एसिया में जरा-जरा फैलने लगा और आधुनिक तुर्की विशेषकर उसके युरोपीय भाग में तो, पंद्रहवीं सदी में उसका प्रवेश हुआ। अरबी का मिस्र और मराको की भाषा होना पैगंबर मुहम्मद (मृत्यु ६२२) के बाद की बात है। अनुसंधान से पता लगता है, कि प्राचीन काल में भाषाओं का बहुत अधिक विकेंद्रीकरण था और आज से कहीं अधिक भाषाएँ उस समय बोली जाती थीं। उनमें से कुछ सदा के लिए लुप्त हो किसी एक भाषा के अधिक फैलने में सहायक हुईं। सांस्कृतिक इतिहास हमें बतलाता है, कि उच्च संस्कृतियाँ अल्प-विकसित संस्कृतियों को अपने जैसा बनाने में सफल होती हैं। उच्च संस्कृति पर जल्दी पहुँचने के लिए अल्प-विकसित लोगों को जो परिवर्तन करना पड़ता है, उसमें पराई भाषा का स्वीकार भी शामिल है। भाषा वस्तुतः सांस्कृतिक अवस्था के विकास का दर्पण है। सांस्कृतिक विकास के साथ भाषा का विकास अनिवार्य है, और इसी परिवर्तन में जातियों की तरह कितनी ही भाषाओं का नाम शेष हो जाना भी आवश्यक है। भाषा-वंश बतलाता है, कि उनकी भाषाओं को बोलनेवाले खास मानव-वंश रहे होंगे अर्थात् एक मानव-वंश की एक भाषा रही होगी; किंतु भाषा रक्त के संबंध को सर्वदा निश्चित नहीं बतलाती। कितनी ही जातियाँ अपनी भाषा छोड़ दूसरी भाषा स्वीकृत कर लेती हैं। अमेरिका के निग्रो अपनी भाषा भूल गये हैं, और वह अब अँगरेजी बोलते हैं। पूर्वी जर्मनी के अधिकांश निवासी स्लाव-जाति के हैं, लेकिन अब वह जर्मन भाषा बोलते हैं।

§२. मध्यपाषाण-युग (१२००० वर्षपूर्व)

पहले युगों की अपेक्षा इस युग के मानव के अवशेष पश्चिमी मध्य-एसिया में बहुत जगहों पर मिले हैं। निम्न सिरदरिया में तुर्किस्तान-शहर में इसका पता लगा है। कराताउ, और म्यूकम (जंबुलिजिला), बेत्पक् दला (अल्माअता) भी मध्य-पाषाण युग के अवशेषों के लिए मशहूर हैं। अराल समुद्र के पास भी इस युग के मानव के अवशेष पाये गये हैं। किजिल्कुम और कराकुमकी विशाल मरुभूमियाँ आज सोवियत पुरातत्ववेत्ताओं की आखेट-भूमि बन गई हैं। कोई आश्चर्य नहीं, यदि वहाँ ऐसे मध्यपाषाण युगीन मानव के अवशेष और भी मिल जायँ, जिनसे उस युग के इतिहास पर काफी प्रकाश पड़े। यह तो हमें मालूम है, कि आज से १०-१२ हजार वर्ष पहले से ही, जब मध्यपाषाण-युग का मानव मध्य-एसिया में रहता था, उस समय का जलवायु वहाँ के मानव के लिए अत्यन्त प्रतिकूल सिद्ध हो रहा था। हिमयुग के पश्चात् समुद्र और नदियों के सूखते जाने से यहाँ की भूमि अत्यन्त सूखी होती। जंगलों और घास के मैदानों को बिकराल रेगिस्तान अपने पेट में हजम करते गये। मध्य-एसिया के मानवों के लिए यह सत्यानाश की घड़ी थी। उसके लिए दो ही रास्ता था, या तो वहाँ रहकर लुप्त हो जायँ अथवा अन्यत्र चले जायँ। युरोप की अवस्था इस वक्त बड़ी अनुकूल थी, इसलिए

उनका उधर जाना स्वाभाविक था। भारत में इस युग के अवशेष ऊपरी गंगा से कच्छ तक मिले हैं।[१]

जैसा कि नाम से ही पता लगता है, मध्यपाषाण युग पुरा-पाषाण और नव-पाषाण के बीच का समय है। यह मानव-प्रगति में बहुत शिथिल सा समय था। इस समय प्रवाह रुक सा गया था, उसका खुलना नव-पाषाण युग ही में देखा जाता है (यह वही समय था, जबकि युरोप में अज़िल मानव रहता था)। मध्यपाषाण-युगीन मानव की जीविका का साधन फल-संचय तथा पशु और मछली का शिकार था। अभी केवल कुत्ता मनुष्य का पालतू साथी बन सका था। ग्राम्य पशुओं में यही वह जानवर था, जो मनुष्य के घनिष्ठ संपर्क में सबसे पहले आया और आज भी उसकी स्वामि-भक्ति वैसी ही देखी जाती है।

मध्यपाषाण-युगीन मानव उस समय के प्रतिकूल वातावरण में बेत्पक्दला (अल्माअता) से अराल और कास्पियन तट तक किसी तरह अपना जीवन व्यतीत करता रहा। प्रकृति की निष्ठुरता के कारण उसके लिए जीवन-संघर्ष बहुत कठिन था, जिसी के कारण वह युरोप की अनुकूल भूमि की ओर गया। हिमयुग के अवसान हुए देर होने के कारण बहुत से पहाड़ हिममुक्त हो गये थे, जिसके कारण यातायात का बहुत सुभीता था। मध्यपाषाण-युग के बाद मध्य-एसिया के अनौ जैसे कितने भागों में, हम जिस मानव को पाते हैं, उसका संबंध यदि खोपड़ी में से अल्पाइन जाति से मिलता है, तो संस्कृति में उसकी मसोपोतामिया और सिंध-उपत्यका से अधिक घनिष्ठता दिखाई पड़ती है। ऐसी अवस्था में यह कहना कठिन है, कि यहाँ रहनेवाली जाति मध्यपाषाण-युगीन मानवों की संतान थी, अथवा पश्चिमी मध्य-एसिया के दक्षिणी भाग को अधिक अनुकूल पाकर भूमध्य जातीय मेसोपोतामिया और सिंध-उपत्यकाके लोगों का यहाँ स्थायी प्रवेश हो गया। सिंधु-उपत्यका या मसोपोतामिया से अनौ या अराल तट तक भूमध्य-जातीय लोगों और उनकी संस्कृति के अवशेष मिलते हैं। हो सकता है, मध्यपाषाण युग में पश्चिमी मध्य-एसिया के पुराने निवासी युरोप की ओर प्रवास कर गये हों और पीछे उनकी जगह भूमध्यीय लोग अपनी नवीन संस्कृति के साथ आ गये हों। यदि पहले के निवासियों में कुछ रह गये हों, तो वह भी धीरे-धीरे भू मध्यीय जाति के भीतर मिल गये।

---

[१] Gen. Anth. p. 252. L' Humenite' Prehistorique p. 594 Our Early Ancesters pp. 10, 75 Prehistoric India (S. Paggot) p. 36

स्रोत ग्रंथ:

1. त्रुदी उज्बेकिस्तान्स्कओ अकदमी नाउक (ताशकंद १९४०)
2. Everyday Life in the Old Stone Age (Quinnell)
3. General Anthroplology (Boas)
4. Language its Nature, Devolopment and Origin (O. Japerson, 1923)
5. Le' Humenite' Prehistorique (J. De Morgan)
6. Prehistoric India (S. Paggot)
7. Prehistoric India (P. Mitra)
8. Language (L. Bloomfield, 1933)
9. Les Langues du Monde (A. Meillet and M Cohen, Paris 1924)
10. Researches to the Early History of Mankind (E. B. Taylor, London, 1878)

अध्याय ५

नवपाषाण-युग, अ-नवपाषाण-युग

मध्य-एसिया में मानव पाषाण-युग से नवपाषाण युग में ईसा पूर्व ५००० अर्थात् आज से ७००० वर्ष पूर्व आया। सिरदरिया की उपत्यका, सोग्द (जरफशाँ-उपत्यका), तुषार (मध्यवक्षु-उपत्यका), ख्वारेज्म (निम्न वक्षु-उपत्यका) और अराल, मेर्व (मुर्गाब, उपत्यका) आदि बहुत से स्थानो में नव पाषाण युग के अवशेष मिले हैं।

§१. नवपाषाण-युग (५००० ई० पू०)

मध्यपाषाण युग में जलवायु के अत्यन्त सूखे होने के कारण यहाँ के मानव को बहुत कष्ट हुआ। नवपाषाण युग में उसमें थोड़ा परिवर्तन अवश्य हुआ था, जिसके कारण प्रगति का अवरुद्ध मार्ग फिरसे खुला। नवपाषाण-युग की विशेषता है—१ कृषि, २ पशुपालन, ३ मृत्पात्र-निर्माण और ४ पीस-घिस कर बने पाषाणास्त्र। कृषि और पशुरक्षाके कारण अब मानव निरा घुमन्तू नहीं रह सकता था। उसे अब एक जगह बसने की अवश्यकता हुई—इसी समय पहले-पहल ग्राम आबाद हुए। मनुष्य सामाजिक जीवन की उस अवस्था में पहुंचा, जब कि वह एक जगह रहते हुए सामूहिक काम कर सकता था और सामूहिक तौर से अपने शत्रुओं से रक्षा भी कर सकता था। अब शिकार और फल-संचय ही जीविका के साधन नहीं रह गये थे। कृषि और पशुपालन में स्त्री का अब प्रधान भाग नहीं रह गया था, इसलिए सारे पुरापाषाण-युग में चली आई मातृसत्ता का लोप हुआ और उसकी जगह पुरुष-प्रधानता या पितृसत्ता की स्थापना हुई। शिकार (चाहे मछली का हो या प्राणियों का) ही मध्य-एसिया के मानव की पिछले युग में प्रधान जीविका थी। पहाड़ों में जंगल था और वहाँ आज जैसे तब भी जंगली सेब, नास्पाती, अंगूर आदि फल होते थे। मानव को फल-संचय का भी अधिक सुभीता था, किंतु जिन जगहों पर नवपाषाण युग के मानव के अवशेष मिले हैं, वहाँ फल-संचय का सुभीता कम ही रहा।

१. कृषि[1]

गेहूँ और जौ मध्य-एसिया के पहाड़ों में जंगली अवस्था में मौजूद थे। आज भी लाहुल की सीमाके पार लदाखके रास्ते में नदी की कछारों के पास जंगली गेहूँ और चने मिलते हैं और लदाख जानेवाले अपने घोड़े-खच्चरों को वहाँ दो-चार दिन ठहरकर चराना आवश्यक समझते हैं। गद्दी लोग तो हर साल वहाँ अपनी भेड़ों को मोटी करने के लिए ले जाते हैं। कोई आश्चर्य नहीं, यदि

[1] Gen. Anth, p. p 90-99

कृषि के लिए नवपाषाण-युग के मानव ने गेहूँ और जौ को स्वीकार किया। आरंभिक गेहूँ-जौ जंगली गेहूँ जौ की तरह ही पतला होता रहा होगा। जंगली अवस्था में पशु, जलवायु अनुकूल होने पर अधिक मोटे होते हैं, किंतु पालतू बनने के बाद उनकी हड्डियाँ पतली, तथा उनके कण सूक्ष्म हो गये। पर अनाज और फल मनुष्य के हाथों में पड़कर अधिक बड़े और स्वादु बने।

कृषि का अविष्कार कैसे हुआ, इसके बारे में विद्वान् कहते हैं: शिकारी आदमी ने घास के अभाव में शिकार के पशुओं को दूसरी जगह जाने से रोकने के लिए पहले घास के तौर पर अनाज को बोना शुरू किया, जिसके खाद्य होने का परिचय उसे पीछे मिला। सूखे फल यद्यपि देर तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं, किंतु जैसा कि पहले बताया, मध्य-एसिया में उसकी सुलभता बहुत कम जगहों पर थी। शिकार के मांस को जाड़ों में भले ही कुछ महीनों तक रक्खा जा सके, नहीं तो जल्दी न खतम करने पर उसके सड़कर खराब हो जाने का डर रहता है। उस समय के मानव को मांस की दुर्गन्ध आज की जितनी नापसन्द नहीं थी, तो भी मांस सड़ाकर खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है, इसका पता तो उसको था ही। अनाज ऐसी चीज थी, जिसको बहुत समय तक रक्खा जा सकता था। करतल-भिक्षा तरुतल-वास बिल्कुल अनिश्चिन्तताका जीवन है। कृषि ने मानव को इसके बारे में बहुत-कुछ निश्चिंत कर दिया। चाहे मांस के बराबर स्वाद और शक्ति अनाज में न भी हो, किंतु उसके द्वारा महीनों के लिए आहार की चिंता का दूर हो जाना मानव-प्रगति के लिए हुई बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। शिकारी मानव को प्रायः रोज शिकार की चिंता में दौड़ते रहना पड़ता था। अपने पत्थर के हथियारों द्वारा शिकार करने में सफल होना रोज-रोज नहीं हो सकता था। कितनी ही बार उसे सपरिवार भूखे रहना पड़ता था।

खेती करने के लिए अब उसे विशेष हथियारों की अवश्यकता हुई, जो सभी हथियार पत्थर के होते थे। पुरापाषाण-युग के मानव अपने पत्थर के हथियारों से पेड़ों को काट लेते थे, डालियों को काट छीलकर लकड़ी के भाले या डंडे बना लेते थे। मई १९५१ में (परमाणु-युग के भीतर) मुझे निम्न-पुरापाषाण युग के शिल्पका परिचय मिला। केदारनाथ ४ मील के करीब रह गया था। मेरे भार-वाहक तरुण नेपाली बलबहादुर ने पहिले डंडा रखने की अवश्यकता नहीं समझा था, लेकिन जब ९००० फुट से ऊपर की चढाई में साँस फूलने लगी, तो उसे डंडे की अवश्यकता मालूम हुई। वृक्षों के क्षेत्र से हम लोग ऊपर थे, किंतु झाड़ियाँ अभी खतम नहीं हुई थीं। झाड़ियों में डेढ़-दो इंच मोटे डंडे मिलने आसान थे, किंतु हमारे पास फल खाने के छोटे से चाकू के अतिरिक्त यदि कोई दूसरा हथियार था, तो रिवाल्वर, जिससे डंडा नहीं काटा जा सकता था। बलबहादुर अपने पूर्वजों की तरह चौबीस घण्टे खुकुरी बाँधना धर्म नहीं समझता था। लेकिन, डंडे की भारी अवश्यकता थी। पुरापाषाण-मानव का चकमक का पास में किसी तरह का छिला हथियार भी नहीं था। उसने नाले में पड़े बहुत से पाषाण-खंडों में से एक धारदार पत्थर उठा लिया, और कुछ ही मिनटों में झाड़ी में से एक अच्छा खासा मोटा डंडा काट लाया। उसी पाषाणास्त्र से उसने डंडे की कमचियाँ काटकर गाँठों को भी चिकना कर दिया, फिर छाल को छीलने लगा। मुझे डर लगा, कहीं वह इसमें अपनी कला न दिखाने लगे। मैं केदारनाथ जल्दी पहुँचना चाहता था। आकाश का कोई ठिकाना नहीं था, न जाने कब धूप छिप जाय और मैं फोटो लेने से वंचित हो जाऊँ। उसने ऊपर के थोड़े से भाग को छीलकर अपना काम खत्म कर दिया और हम वहाँ से चल पड़े। मैं अपने पूर्वजों के इस युग से परिचित था,

किंतु बलबहादुर को इतिहास से क्या काम था, उसे तो काला अक्षर भैंस बराबर था। अवश्यकता आविष्कारकी मा होती है, इसका ही यहाँ पता नहीं लगा, बल्कि यह भी मालूम हुआ, कि पाषाण-युग के सिद्धहस्त मानव ने और भी अच्छी तरह से काटने, फाड़ने, छीलने आदि कामों को अपने पत्थर के हथियारों से किया होगा। कृषि-युग के लिए आवश्यक हल को उसने पहले ही बना लिया होगा, इसमें संदेह है; किंतु वर्षा से भीगी धरती को पत्थर की कुदाल से वह खोद सकता था। आगे चलकर उसने लकड़ी के किसी तरह के हल में चकमक पत्थर का फाल लगायाहोगा। फसल काटने के लिए उसका पत्थर का हसिया मध्य-एसिया और दूसरी जगहों में बहुत मिला है। टेढी लकड़ी में दाँत की तरह तेज धारवाले छोटे छोटे पत्थरों को जड़ दिया जाता था, यही उस समय का हसिया था। डंठल काटने के कारण पत्थर के दाँत धीरे-धीरे अधिक चिकने हो जाते हैं, ऐसे दांत बहुत से मिले हैं। कृषि के साथ तीसरा आवश्यक हथियार था आटा पीसने का ओखल-मूसल। आजकल ओखल-मूसल अधिकतर चावल कूटने या अनाज के छिलके को छुड़ाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। मैदान में लकड़ी और पत्थर दोनों के ओखल होते हैं, किंतु मूसल लकड़ी का ही होता है। पहाड़ में पत्थर की ही ओखल होती है, जो प्रायः किसी चट्टान में गढा खोदकर बनाई जाती है। आटा पीसने का साधन उस समय ओखल-मूसल नहीं, बल्कि खरल से अधिक समानता रखता था। ११वीं शताब्दी में भी तिब्बत के घुमन्तू लोग किसानों से बदल के लाये अपने अनाज को पत्थर की बड़ी कुंडी में मोटे लोढ़े से पीसा करते थे। भारतीय विद्वान् स्मृतिज्ञान-कीर्ति (१०४० ई०) भेस बदल कर किसी पशुपाल के यहाँ चाकरी करते थे। एक दिन बड़ी रात तक मालकिन के हुक्म से आटा पीसते हुए उनको झपकी लग गई, और शिर लोढ़े से जाकर टकरा गया। सत्तू के लिए भूना जौ कुछ बिखर गया, जिसके लिए मालकिन ने गालियां देना जितना आवश्यक समझा, उतना बेचारे स्मृति के शिर में लगी चोट के लिए सान्त्वना देना जरूरी नहीं समझा। नवपाषाण-युग में अभी न हाथ की चक्की का पता था न पनचक्की का। उस समय यही पत्थर की कुंडी-लोढ़ा या ओखल-मूसल काम देता था। आज भी तिब्बत आदि देशों में सत्तू खाने का रवाज है। इससे आदमी रोटी बनाने के झंझट से ही नहीं बच जाता, बल्कि जहाँ रोटी बनाने के लिए रोज-रोज लकड़ी जमा करने और चूल्हा फूँकने की तरद्दुद है, वहाँ एक दिन भूनकर सत्तू पीस लेने पर महीनों के लिए छुट्टी हो जाती है। भारतीय आर्य ईसा से डेढ़ हजार वर्ष पहले भारत पहुँचे। उनके प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में ही नहीं, बल्कि पीछे के भी पुराने संस्कृत-ग्रंथों में रोटी का पता बहुत कम लगता है। सत्तू (सक्तु) और छालनी तो वैदिक काल में दृष्टान्त रूप में मशहूर हो गये थे। अनौ की खोदाई में[१] तंदूर का भी पता लगा है, जिससे मालूम होता है, कि मध्य-एसिया के नवपाषाण-युगीन मानव तंदूरी रोटी से अपरिचित नहीं थे। शायद मिट्टी या पत्थर के तवों पर भी वह रोटी बना लेते थे।

२. पशुपालन

तिब्बत के ऊँची पथारों में गदहे की जाति का एक जानवर (क्याङ्) पाया जाता है, जो खच्चर के जितना बड़ा होता है। तिब्बती लोगों ने क्याङ् को पालतू बनाने की बहुत कोशिश

---

[१] Exploration in Turkistan pp. 16-27

की, किंतु वह उसमें सफल नहीं हुए। पालतू बनाने का मतलब केवल साथ रखना ही नहीं, बल्कि जानवर से काम लेना भी है। साक्या के लामा के खच्चरों के साथ मैंने एक क्याङ् को देखा था। क्याङ् का छोटा बच्चा कहीं से मिल गया था, जिसे अपने खच्चरों के साथ लामा ने पाल लिया और अब वह बड़ा होने पर भी खच्चरों के साथ रहता था। लेकिन, उस पर भला कौन बोझ लाद सकता था? वह प्राण देने के लिए तैयार हो जाता, यदि कोई पीठ पर कुछ बाँधने की कोशिश करता। नव-पाषाण युग ही में नहीं, बल्कि उससे पहले भी मनुष्य के पास किसी जंगली जानवरों के बच्चे का पल जाना मुश्किल नहीं था, और ऐसे हरिन, कुत्ते, भेड़ या दूसरी जाति के छोटे बच्चे को कभी किसी ने पाल लिया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन असली पशुपालन तब कहते हैं, जब कि मनुष्य अपने घर में नर-मादा पशुओं को रखकर उनकी संतान बढ़ाता है। मध्य-पाषाण युग में कुत्ता पालतू हो गया था, यह हम बतला आये हैं। विस्तार के साथ पशुपालन का व्यवस्थित प्रबंध नवपाषाण-युग में ही हुआ। यह बतला चुके हैं, कि पालतू जानवरों की हड्डियाँ पतली और सूक्ष्म होती हैं, जब कि उसी जाति के जंगली प्राणियों में उससे उल्टा पाते हैं। यदि भूमि अत्यन्त हरी-भरी हो, तो, जंगली जानवर बड़े कद्दावर होते हैं। बारह-सिंगे तो वनस्पति की कमी के कारण जहाँ शरीर में छोटे होते जाते हैं, वहाँ उनकी सींगे छोटी तथा शाखायें कम होती जाती हैं, तो भी उनकी हड्डियों की बनावट पालतू जानवरों जैसी नहीं होती। भेड़, गाय और सूअर मध्य-एसिया में इस समय पालतू बनाये गये। घोड़े के पालतू बनने में कुछ संदेह है। मध्य-एसिया में ही पालतू बनाई गई भेड़ें, यहाँ से गये लोगों के साथ युरोप गईं। यद्यपि जंगली गदहा मध्य-एसिया में भी रहा होगा, किंतु गदहे और बिल्ली को सबसे पहले पालतू बनाया मिस्रियों ने। मध्य-एसिया का ऊँट दो कोहानों का होता है, जब कि अरब और दूसरी जगह के ऊँटों के पीठ पर एक ही कोहान होता है। ऊँट नवपाषाण-युग के पीछे मध्य-एसिया में पालतू बनाया गया।

३. मृत्पात्र

मिट्टी के बर्तन बनाना भी नवपाषाण-युग की एक विशेषता है। आग का पता निम्न-पुरापाषाण-युग में ही लग गया था। उसी समय (युग के पिछले भाग में) लकड़ी या पत्थर से घिस कर आग पैदा करना भी आदमी को मालूम हो गया था। वह अपने मांस को आग पर भूनकर खाना जानता था। अनाज की उत्पत्ति से उसे मिट्टी के बर्तनों की अधिक आवश्यकता मालूम हुई, इसीलिए इस समय मृत्पात्रों के बनने और उनके उपयोग का विशेष प्रचार हुआ। कई-कई प्रकार और रंग के मिट्टी के बर्तन बनने लगे—पानी रखने के बर्तन, पानी पीने के बर्तन, पकाने के बर्तन आदि नाना प्रकार के भेद इसी समय प्रकट हुए। अभी कुम्हार का चक्का नहीं बन पाया था। श्रम का विभाजन भी उतना नहीं हुआ था और एक ही आदमी या परिवार पीर-बबरची-भिश्ती-खर सबका काम देता था। तिब्बत में आज भी कुम्हार की अलग जाति या पेशा नहीं है, लोग स्वयं मिट्टी के बर्तन बना लेते हैं। कितने ही बर्तन वहां आज भी कुम्हार के चक्के की सहायता से नहीं बनते। चाय रखने की खोटी (टोंटीदार हैण्डलदार सैंकी) तो बहुधा हाथ से बनाई जाती, और कितने ही हाथ उसमें अद्भुत कला का चमत्कार दिखलाते हैं। नव पाषाण-युग के मानव भी अपने हाथों से ही मिट्टी के बर्तनों बनाया करते थे। गोलाई लाने के

लिए वह मिट्टी की गोल-गोल मेखलाएँ बना कर एक के उपर एक रख देते और फिर गीले हाथों से भीतर-बाहर उसमें चिकना देते। यदि मिट्टी के बर्तनों को खुले आँवे में पकाया जाय, तो हवा का प्रवेश निर्बाध हो जाता है। मिट्टी में लौह-कण मौजूद रहते हैं, पकते वक्त हवा के साथ इनके सीधे संबंध से बर्तन लाल हो जाते हैं। यदि बन्द हवा के साथ भट्ठी के भीतर बर्तन को पकाया जाय, तो हवा के सम्पर्क से बहुत-कुछ वंचित रहने के कारण बर्तन लाल न हो, भूरा या राखके रंग का हो जाता है। यदि मिट्टी में कुछ कोयला पीसकर मिला दिया जाय, तो बर्तन का रंग काला हो जाता है। यह बातें नव पाषाण-युग के मानव को मालूम थीं ?

४. पाषाणास्त्र[1]

पुरापाषाण-युग के मानव के हथियार बहुत कुछ फ्लिन्ट (चकमक) पत्थर के होते थे, जो मामूली पत्थर से ज्यादा कड़ा होता है, इसीलिए उसकी माँग बहुत अधिक थी, और वह हर जगह सुलभ नहीं था। खड़िया की खानों क खड़िया के स्तर में हड्डी की तरह यह मिला करते हैं। नवपाषाण-युग का मानव अपने पत्थर के हथियार से खोदकर कुआँ सा बनाते हुए चकमक के स्तर पर पहुँचता था। कभी-कभी इसके लिए उसे २०-२० फुट गहरी खुदाई करनी पड़ती थी। चकमक को निकाल लेने के बाद कुएँ फिर उसी गड्ढे में कभी-कभी ढह जाते थे। बेल्जियम में स्पीनेस की चकमक खान में पुरापाषाण-युग के दो पिता-पुत्र खनक खान के नीचे उतरकर अपना काम कर रहे थे, इसी समय उनपर से छत गिर गई और दोनों दबकर मर गये। आज भी उनका शरीर ब्रुसेल्स के राष्ट्रीय म्यूजियम में रखा हुआ है। चकमक पत्थर की दुर्लभता ही कारण थी,जिसमें कि नयी तरहके हथियारों के बनानेका दिशा-निर्देश किया। खतरा शायद कभी ही कभी होता था। खड़िया की खानों में चकमक की रीढ़ ढूँढ़ना और निकालना इतना समय और श्रमसाध्य था, कि आदमी ने उसकी जगह साधारण पत्थरों को भी इस्तेमाल किया। उसने देखा कि रगड़कर पालिश करने से दूसरे पत्थरों में भी धार आ जाती है। रगड़कर पालिश करके पत्थर के हथियार बनाना नवपाषाण-युग के मानव के हथियार की सबसे बड़ी विशेषता थी। १८६६ ई० में डेनमार्क के कुछ प्रागैतिहासिकों ने नवपाषाण युग की कुल्हाड़ी की परीक्षा ली। उन्हें मालूम हुआ, कि केवल इन्हीं हथियारों से जंगल के कैल और दयार जैसे दरख्तों को काटा जा सकता है और इनके सहारे पेड़ के तने को खोदकर नाव बनाई जा सकती। नवपाषाण-युग के मानव ने घिसे पालिश किये हथियारों के बनाने के साथ-साथ पुराने ढंग के चकमकवाले पाषाण-अस्त्रों को, जो कि छाँट और चैली निकालकर बनाये जाते थे, छोड़ा नहीं। पाषाण-अस्त्रों के अतिरिक्त उस समय लकड़ी और सींग के हथियार भी इस्तेमाल किये जाते थे।

५. जलवायु

पुरापाषाण-युग के मानव के लिए तापमान की अनुकूलता-प्रतिकूलता सब से अधिक ध्यान देने की बात थी। तापमान गिरने से सरदी बढती, जिसके कारण शिकारके जानवर दक्षिण

[1] Gen. Anth. pp. 152-62

की ओर अधिक गरम जगहों में चले जाते। इसलिए शिकारी को भी दक्षिणाभिमुख यात्रा करनी पड़ती। इसके अतिरिक्त अपने शरीर के लिए भी उसे अधिक चमड़ा पहनने की अवश्यकता होती। नवपाषाण-युग का मानव अब कृषि-जीवी भी था। कृषि में तापमान से भी अधिक नमी अथवा वर्षा के न्यूनाधिक होने पर ध्यान देना पड़ता। मध्य-एसिया में जहां मध्य-पाषाण-युग वर्षा और जल के अभाव का समय था, वहाँ नवपाषाण-युग अपेक्षाकृत अधिक आर्द्र था। इसके कारण मानव वहाँ वर्षा के भरोसे खेती कर सकता था। अभी नहरों द्वारा सिंचाई करने का समय नहीं आया था। इस नमी के कारण मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता था, जहाँ यह वनस्पति के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध होती थी, वहाँ उसके कारण मक्खियाँ और मच्छरों को भी बहुत सुभीता था, जिनकी भरमार से तरह-तरह की बीमारियाँ होती थीं। मृत्यु का तुलनात्मक अध्ययन भी हमें इसी परिणाम पर पहुँचाता है। भिन्न-भिन्न युगों के भिन्न-भिन्न आयु के लोगों में प्रतिशत मृत्यु-संख्या निम्न प्रकार थी[१]—

युग	आयु : ०-१४	१५-२०	२१-४०	४१-६०	६० से ऊपर
मध्य-पुरापाषाण	४०	१५	४०	५	
उपरिपुरापाषाण	२४.५	९.८	५३.९	११.८	
मध्य-पाषाण	३०.८	६.२	५८.५	३	१.५
नवपाषाण	,,	,,	,,	,,	,,
प्राचीनपित्तल (आस्ट्रिया)	७.९	१७.२	३९.९	२८.६	७.३
१९वीं सदी (,,)	५०.७	३.३	१२.१	१२.८	२१
२०वीं सदी (,,)	१५.४	२.७	११.९	२२.६	४७.४

यद्यपि यह विवरण मध्य-एसिया नहीं मध्य-युरोप (अस्ट्रिया) का है, तो भी हम मध्य-एसिया के नवपाषाण युग के बारे में भी कह सकते हैं, कि उसके अधिकांश मानव २१ से ४४ वर्ष की उमर में मर जाते थे, उसके बाद १४ वर्ष से नीचे के लड़के ज्यादा मरते थे। ४० वर्ष से ऊपर जीनेवाले बहुत थोड़े ही आदमी होते थे।

६. अनौमें नवपाषाण-युग[२]

पश्चिमी मध्य-एसिया के दक्षिण-पश्चिम कोण पर तुर्कमानिया सोवियत गणराज्य की राजधानी अश्काबाद से थोड़ी दूर पश्चिम अनौ के प्राचीन ध्वंसावशेष हैं, जिनकी खुदाई १९०३ में अमेरिकन पुरातत्त्ववेत्ता राफेल पम्पेलीने की थी। यह स्थान ईरान और सोवियत की सीमा पर अवस्थित कोपेत दाग पर्वतमाला से थोड़ा उत्तर में है। पम्पेलीने यहाँ ध्वंसावशेषों की खुदाई के अतिरिक्त अश्काबाद के एक पाताल-कूप के भिन्न-भिन्न स्तरों की भूस्थिति का भी परिचय दिया है। इस कुएँ में २२ सौ फुट तक नल धँसाया गया था, तो भी चट्टान का पता नहीं लगा

[१] Progress and Archaeology p. 111

[२] Exploration in Turkistan vol. I p. 16

था। २१सौ फुट पर भूरे रंग की चिकनी मिट्टी मिली थी। उसके ऊपर कभी पत्थर के ढोंके, कभी भूरी मिट्टी, १८ सौ फुट पर बालू, १७ सौ फुट पर गोल-गोल पत्थर इसी तरह आगे इन्हीं चीजों को पाया गया। ६०० से ८०० फुट की गहराई में हिमयुग का प्रभाव दिखाई पड़ा। इन स्तरों से पता लगा, कि मध्य-एसिया के जलवायु में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा। अनौ में खुदाई तीन जगहों पर हुई थी, जिसमें उत्तरी कुर्गान (उत्तरी डीह) की खुदाई वर्तमान तलसे २० फुट नीचे तक की गई। यह कुर्गान आस-पास के धरातल से २० फुट ऊंचा है। उत्तरी कुर्गान में नवपाषाण-युग और अनव-पाषाण युग के अवशेष मिले थे। अनौ के नवपाषाण-युगीन लोग कच्ची ईंटों के आयताकार मकानों में रहते थे। घरों की छतें आज की तरह मिट्टी की नहीं, बल्कि फूस की होती थीं। आजकल वर्षा के अत्यन्त कम होने के कारण सारे मध्य-एसिया में मिट्टी की छतें होती हैं। यह मिट्टी की छतें कौशांबी और रायबरेली से पच्छिम उराल पर्वतमाला तक चली जाती हैं। पूरब में मिट्टी की छतों का स्थान फूस की झोपड़ियाँ या खपड़ैलके मकान लेते हैं। यही अवस्था प्रागैतिहासिक कालसे चली आ रही है। पूरबमें मिट्टीकी छतोंका रवाज नहीं है, उसका कारण मिट्टीका कमजोर होना नहीं, बल्कि वर्षाका आधिक्य है। अनौमें फूसकी झोपड़ियाँ यही बतलाती हैं, कि ६ हजार वर्षपूर्व वहाँ आजकी अपेक्षा वर्षा अधिक होती थी। तो भी वह बहुत अधिक नहीं होती थी, नहीं तो कच्ची ईंटोंका स्थान मिट्टीकी रद्देवाली दीवारें लेती। पक्की ईंटोंका बनाना तभी सुकर था, जब कि आस-पासमें जंगल काफी होता। करीब-करीब उसी समयसे थोड़ा पीछे मोहनजोदडोमें पक्की ईंटोंका उपयोग होता था।

अनौ के मानव हाथसे मिट्टीके बर्तन भी बनाते थे, जो पतले किंतु देखनेमें भद्दे होते थे। अपने बर्तनोंपर वह भिन्न-भिन्न ज्यामितीय आकृतियाँ बनाते थे। मिट्टीकी तकली पर वह ऊन कातते थे, लोढ़े और कुंडीसे अनाज पीसते थे। उनकी खेती गेहूँ और जौकी थी, जिसकी भूसीको मोटे बर्तनोंके बनानेकी मिट्टीमें सान लेते थे। उनके शिकारके जन्तुओंमें सूअर, लोमड़ी, भेड़िया, हरिन आदि थे। सीनेके लिये हड्डीका सूआ इस्तेमाल करते थे। इनके हथियार छिले हुए चकमक पत्थरके होते थे। लकड़ीके डंडे और पत्थरकी मुंडीकी गदा इनका युद्धका हथियार था। तीर और भालेके फल या गोफन (ढेलवाँस) के पत्थरका भी उपयोग इन्हें मालूम नहीं था। इनके शिकार किये हुए पशु ऐसी आयु और आकारके थे, जिन्हें आसानीसे मारा जा सकता। घरके भीतर मिट्टीके फर्शके नीचे यह अपने बच्चोंको दफना देते थे, साधारण मुर्देको बाहर फर्शके नीचे दबाते थे। शवके साथ गुरिया अन्य उपभोगकी चीजें और खान-पानकी वस्तुएँ भी दफनाते थे। शायद बच्चे देवताको प्रसन्न करनेके लिए घरकी फर्शके भीतर बलि रूपमें दबाये जाते हों। अन्दमनके आदि-निवासी भी बच्चोंको घरके भीतर और बड़ोंको बाहर दफनाते हैं। दाँत न निकले बच्चे रोममें भी दफनाये जाते थे, जबकि सयानों को आगमें जलाना होता था। भारतके हिंदुओंमें यह प्रथा आज भी देखी जाती है। सबसे नीचे १० फुट मोटाईवाले प्राचीनतम स्तरमें पालतू पशुओंका पता नहीं लगता, बल्कि हाँ, शिकार किये हुए जंगली पशुओंकी हड्डियाँ मिलती हैं। पम्पेलीने नवपाषाण-युगीन स्तरमें निम्न चीजोंका भाव और अभाव उल्लिखित किया है[१]—

[१] Exploration in Turkistan p. 60

भाव	अभाव
हस्तनिर्मित रेखा-रंजित मृत्पात्र	पालिश किया पात्र या गुरिया
गेहूँ-जौकी खेती	पक्की ईंटें
कच्ची ईंटके आयताकार गृह	बर्तनकी मुठिया
हड्डीका सूआ	उत्कीर्ण पात्र
चकमकके सीधी धारवाले हथियार	सोना-रूपा
मिट्टीकी तकली	राँगा
तांबे-सीसेका हलका-सा ज्ञान	लोहा
पीसनेका पत्थर	धातुके फल
फीरोजेकी मणियाँ	पशु, मनुष्य या वृक्षके चित्र
दीर्घश्रृंग गाय, सूअर, घोड़े	कुत्ता
घरमें सिकुड़े शिशुकी समाधि	ऊँट
गौ, भेड़, हरिन, बारहसिंगा, घोड़ा, भेड़िया और सूअरका शिकार	बकरी

इस स्तरमें जिन चीजोंका अभाव था, उनमेंसे कितनी ही ऊपरके स्तरोमें मिलीं।

§२. अनवपाषाण-युग[1] (३००० ई० पू०)

जैसा कि नामसे प्रकट है, यह एक अवान्तर युग था, जब कि पाषाण-युगका अन्त हुआ, किंतु धातु-युगका आरंभ नहीं हो पाया। अनौ की खुदाई में हम देख आये हैं, कि इससे पहलेके युगमें भी तांबे-सीसेका हलका-सा परिचय था, किंतु असली धातु-युगके आरंभ होनेके लिये आवश्यक है, कि आदमी धून (धातुपाषाण) को गलाकर धातु बना सके। यह भी याद रखना चाहिए, कि पाषाण-युगका अन्त दुनिया के सभी देशोमें एक समय नहीं हुआ। जहाँ मेसोपोतामियामें पाषाण-युगका अन्त ३५०० ई० पू० में होता है, वहाँ डेन्मार्कमें १६०० ई० पू० में और न्यूजीलैण्डमें उसका अन्त सन् १८०० ई० में ही जाकर होता है, जबकि वहांके आदिम निवासियोंका युरोपियन जातिसे सम्पर्क होता है। अनौमें इस स्तरको पम्पेलीने द्वितीय-संस्कृति कहा है, जो कि ऊपरके तलसे २५ फुट नीचे है। पम्पेलीने इसका काल ६०००-५००० ई० पू० माना है, लेकिन अधिकांश विद्वानोंके मतसे यह समय ४००० ई० पू० से अधिक पुराना नहीं हो सकता। उस कालमें निम्न वस्तुओंका भाव और अभाव देखा जाता है—

भाव	अभाव
मृत्पात्र पूर्ववत्	कुम्हारका चक्का
तन्दूर पात्र	पक्की ईंटें
घर पूर्ववत्	बर्तनकी मुठिया
चकमक का हँसिया, सूआ, गदा और गोफन	उत्कीर्ण पात्र

[1] Le' Humanite' Prehistorique, 590-95

भाव	अभाव
मिट्टीकी तकली	सोना-रूपा
तांबे और सीसेका थोड़ा-सा ज्ञान	राँगा-पीतल
पीसनेका पत्थर	लोहा
छोटी-बड़ी सींगवाली गायें, सूअर, घोड़े,	धातुके फल
बकरी, ऊँट, कुत्ता और मुंडिया भेड़	पशु और मनुष्यके चित्र
घरमें शिशु-समाधि	

अनवपाषाण-युगमें खेतीके अतिरिक्त पशुओंको पालतू बनानेका भी प्रयास देखा जाता है, यद्यपि हथियारोंमें अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। हत्थेके विना मिट्टीके बर्तन अब भी बनते थे, लेकिन उनको लाल और दूसरे रंगकी रेखाओंसे अलंकृत किया जाता था। तांबेके छुरे का होना संदिग्ध-सा मालूम होता है। कुत्ता, बकरी, ऊँट और विना सींगकी भेड़को इस समय पालतू बना लिया गया था। अनौमें इससे पहलेके स्तरमें भी फीरोजेकी मणियाँ मिली हैं। तरह-तरहके आभूषणोंसे शरीरको सजाना और पहलेसे चला आता था। फीरोजाकी खानें अनौ से थोड़ा ही दक्खिन ईरानके भीतर मिलती हैं। ऊँट शायद पूरबसे लाकर पालतू किये गये।

§३. मानव-जाति

मुस्तेर मानव आजके सपियन मानवसे बहुत भेद रखता था। उसको आजकी किसी जातिसे मिलाना संभव नहीं है। यद्यपि प्रकृतिके और स्थानोंकी तरह प्राणियोंमें भी विकास सर्पकी गतिसे ही नहीं होता, बल्कि कभी-कभी मेढ़ँक-कुदानकी तरह एकाएक जाति-परिवर्तन भी हो जाता है। इस नियमके अनुसार हजारों वर्षोंमें एक मानव-जातिसे विलक्षण शरीर-लक्षणवाली दूसरी मानव-जाति पैदा हो सकती है। इस प्रकार तेशिकताश-मानव ३०-३५ हजार वर्ष बाद मध्यपाषाण-युगके मानवके रूपमें परिणत हो सकता है, किंतु तो भी इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। मध्यपाषाण-युगके अन्तमें जो मानव अपने पालतू कुत्तोंके साथ मध्य-एसियासे पहले-पहल युरोपकी ओर गया, वह हिंदू-युरोपीय जातियोंका पूर्वज था। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए, कि हिंदू-युरोपीय जातियोंके निर्माणमें किसी और रक्तका संमिश्रण नहीं हुआ है। अनौमें मिली नवपाषणयुगकी खोपड़ियाँ दीर्घकपाल थीं। विशेषज्ञ बतलाते है, कि इन खोपड़ियोंमें वही सारे लक्षण मिलते हैं, जिन्हें कि भूमध्यीय जातिकी विशेषता माना जाता है। उनमें मंगोलायित खोपड़ीसे कोई समानता नहीं है। यह खोपड़ियाँ बतलाती हैं, 'भूमध्मीय मानव-जातिकी एक शाखा मध्य-एसियाके भीतर घुस गई थी।'

मध्य-एसियाके भिन्न-भिन्न भागोंमें जिन जातियोंके अवशेष मिले हैं, उनपर एक विहंगम दृष्टि डालनेसे मालूम होगा, कि अन्तिम हिमयुगके बीच तथा उसके कई सहस्राब्दियों पीछे तक मुस्तेर (नेयंडर्थल) मानव यहाँ रहता था। जीवन-निर्वाहका जब तक स्थायी साधन नहीं प्राप्त हो, और जब तक प्रकृति और प्राणि शत्रुओंसे अपनी रक्षा करनेमें सफल नहीं हो जाये, तब तक प्रजननकी अपार क्षमता रहने पर भी मानव-वंश तेजीसे नहीं बढ़ सकता। अपने घातक शत्रुओं पर कुछ हद तक विजय करके ही मानव फल-फूल सकता है। गुहाओंमें रहनेवाला मुस्तेर-मानव मध्य-एसियामें बहुत ही कम संख्यामें रहा होगा, यद्यपि, इसका यह अर्थ नहीं कि उसके अवशेष

अभी जिन दो-चार जगहोंमें मिले हैं, उन्हें छोड़ और स्थानोंमें वह नहीं मिल सकते। मध्यपाषाण-युगीन मानव भी बहुसंख्यक नहीं हो पाया होगा, तो भी मुस्तेरसे उसकी संख्या अवश्य बड़ी होगी। मध्यपाषाण-युगका मानव आधुनिक सपियन-मानव-वंशसे संबंध रखता था और वही शायद हिंदू-युरोपीय जातियोंका पूर्वज था। यह भी बतलाया जा चुका है, कि इसी मानवने नवपाषाण-युगीन संस्कृतिको अपने साथले जाकर युरोपमें इसकी नींव डाली। युरोपमें जो खोजें हुईहैं,उनसे यह बात मान ली गई है, कि मध्य-एसियासे आया यही मानव युरोपकी पुरानी जातियोंको अपनी संस्कृति और शस्त्रसे पराजित करनेमें सफल हुआ, जिसके परिणामस्वरूप पुराने निवासियोंमेंसे कितने ही या तो मर-हर गये, या अपने पुराने निवासस्थानको छोड़कर एस्किमो लोगोंके रूपमें दूर किनारों पर भाग गये, अथवा विजेताओंमें घुल-मिल गये। मध्य-एसियामें मध्यपाषाण-युगीन मानवों (हिंदू-युरोपीय जातियोंके पूर्वजों) के कुछ भाग रह गये या नहीं ? अभी तक जो अनुसंधान हुआ है, उससे यही पता लगता है, कि अगले नवपाषाण-युगमें अनौ या ख्वारेज्मके नवपाषाण-युगीन ध्वंसावशेषोंसे जिस मानवका पता लगता है, वह भूमध्यीय जातिका था। साथ ही यह भी स्वीकार किया जाता है, कि मध्य-एसियासे जानेवाले हिंदू-युरोपीय जातिके पूर्वज युरोपमें जाकर नवपाषाण-युगीन संस्कृतिका प्रचार करते हैं, अर्थात् नवपाषाणास्त्रोंके साथ जौ-गेहूँकी खेती और गाय-भेड़के पालन करनेका काम इन्हीं के द्वारा वहाँ आरंभ होता है, इससे सिद्ध होता है, कि नवपाषाण-युगमें पुरातन हिंदू-युरोपीय मानवका संबंध मध्य-एसियासे था। भूमध्यीय जातिका ख्वारेज्म तक घुस जाना क्या यह नहीं बतलाता, कि पुरातन हिंदू-युरोपीय लोग केवल जलवायुकी प्रतिकूलताके कारण ही पश्चिमकी ओर भागनेके लिए मजबूर नहीं हुए, बल्कि भूमध्यीय जातिके यह मानव-शत्रु भी उनके पीछे पड़े हुए थे ?

मुस्तेर, प्राग्-हिंदू-युरोपीय और दीर्घकपाल भूमध्यीय इन्हीं तीन जातियोंका इस समय तक मध्य-एसियामें होना सिद्ध होता है। इन तीनोंका संबंध किस तरहका रहा, यह अभी अंधकारमें है। नवपाषाण-युगसे भी पहलेसे मध्य-एसियाकी भूमि की अपनी विशेषता चली आती है, जिसके कारण उसके गर्भसे ऐसे प्रकाशके निकलनेकी सम्भावना है,जो मानवके भूले हुए इतिहास-को अँधेरे से उजाले में लादें। अतीतकालमें प्यासी-भूमि, क़िज़िलकुम और कराकुमके विशाल रेगिस्तान मानवके लिए सबसे बड़े शत्रु रहे। इन रेगिस्तानोंके भीतर भूलकर हजारोंने अपने प्राण गँवाये। इतना ही नहीं रेगिस्तान हमेशा मानवकी भूमि पर आक्रमण करता रहा, साल-साल वह खेतीकी भूमि ही नहीं, गाँव और नगरोंको उदरसात् करता रहा। आज केवल ख्वारेज्मके रेगि-स्तानोंमें ही २०० नगरों और बस्तियोंके ध्वंसावशेषोंका पता लगा है। सोवियत इतिहासज्ञ और पुरातत्त्ववेत्ता इन ध्वंसावशेषोंके महत्त्वको समझते हैं। वह जानते हैं, कि जिस तरह बालूने अपनी ध्वंस-लीला दिखलानेमें कोई कसर उठा नहीं रखी, उसी तरह उसने बहुत सी अमोल ऐतिहासिक सामग्रीको अपने नीचे सुरक्षित रक्खा है। सोवियत सरकार दूसरे सांस्कृतिक कार्योंकी तरह पुरातत्त्वके अनुसंधानों पर भी बड़ी उदारतासे पैसे खर्च करती है। पिछले १४-१५ वर्षोंसे ख्वारेज्मके रेगिस्तानमें यह अनुसंधान जारी है। १९४९ ई० में इसके लिए हवाई जहाजोंने १० हजार मीलोंकी उड़ान की। मोटरों, लारियोंका बड़े व्यापक रूपमें उपयोग किया गया। उस साल ७ दर्जनके करीब चर्मपत्र पर लिखे अभिलेख इस मरुभूमिने दिये। यह अभिलेख उस भाषामें लिखे हुए हैं, जो लुप्त हो चुकी है। १७०० वर्ष पुरानी भाषाका नमूना प्राप्त करना पुरातत्त्ववेत्ताओंके

लिए कम प्रसन्नताकी बात नहीं है। पुरातात्त्विक अभियानोंके अतिरिक्त रेगिस्तानकी भूमिमेंसे करोड़ों एकड़ जमीनको खेत और बगीचेके रूपमें परिणत करनेके लिए वक्षु नदीको कास्पियन सागरसे मिलानेवाली महानहरकी खुदाई हो रही है। इससे जहाँ निर्जन मरुभूमि पर मानव बस्तियाँ बसेंगीं, वहाँ पुराने ध्वंसावशेषोंके भीतरसे मानव-इतिहासके रहस्यको ढूँढ़ निकालना आसान होगा।

अनव पाषाण-युगके बाद हम धातु-युगमें प्रवेश करते हैं। कृषि और धातुशिल्प मिलकर ग्रामों और नगरोंको स्थायित्व प्रदान करते हैं, किंतु मध्य-एसियामें घुमन्तू जीवनका सर्वथा उच्छेद हाल तक नहीं हो पाया था। नवपाषाण-युगमें भी घुमन्तू और स्थायी निवासियोंका संघर्ष रहा, जो संघर्ष सोवियत क्रान्तिके बाद ही खत्म हुआ। बीचका सारा मध्य-एसियाका इतिहास घुमन्तूओं और अघुमन्तूओंके संघर्षका इतिहास है। अघुमन्तू दासता, अर्धदासतासे होते समान्तवाद तक पहुँच गये थे, जबकि धुमन्तू जातियाँ बहुत-कुछ जनयुग अथवा जन-सामन्त युग तक ही अपने जीवनको सीमित रखती रहीं।

स्रोत-ग्रंथ :

1. General Anthropology (Boas)
2. Exploration in Turkistan (R. Pumpelly) vols. I, II
3. Progress and Archaeology (V. G. Childe)
4. Le' Humanitie' Prehistorique (J. de Morgar)
5. Our Early Ancesters (M. C. Burkitt)
6. Geology in the Life of Man (Dumcan Leith)
7. The Evolution of Man (G. Elliot Smith, London 1927)
8. The Skeletan Remain of Early Man (G. E. Smith)
9. Antiquity of Man, 2 vols (Arthur Keith 1925)
10. New Discovery relating to the Antiquity of Man (A. Keith, 1931)

भाग २

धातु-युग (३०००-७०० ई० पू०)

अध्याय १

ताम्र-युग (२५००-१५०० ई० पू०)

१. युगकी विशेषता

पाषाण-युग मानवका प्रथम युग है, जो भिन्न-भिन्न विद्वानोंके मतानुसार ३ लाख या १ लाख वर्ष तक रहा। ताम्र-युगके साथ मानव धातु-युगमें प्रवेश करता है, जो आजसे पहिले ७००० से ४५०० वर्ष तक भिन्न-भिन्न देशोंमें चला आया। सभी देशोंमें ताम्रयुग एक साथ नहीं शुरू हुआ। मिस्र और मेसोपोतामियामें उसका आरंभ सबसे पहले (३५०० ई० पू०) हुआ। हो सकता है, भूमध्यीय जाति से मध्य-एसियामें घुस आनेके समय हिंदी-युरोपीय-पूर्वजोंने धातुकी कला सीखी। किसी देशमें ताम्रयुग और पित्तलयुगमें अन्तर रहा है, जैसा कि मध्य-एसियामें २५०० से १५०० ई० पू० तक ताम्रयुग रहा और १५०० से ७०० ई० पू० तक पित्तलयुग; परन्तु कई देशोंमें दोनोंका अन्तर इतना कम रहा, कि पाषाणयुगसे सीधे पित्तलयुगमें मानवका प्रवेश माना जा सकता है।[1] पाषाणयुगके अन्तमें भी कहीं-कहीं प्राकृतिक रूपमें तांबेके कठोर डले (ओहायो भाँति) आदमीको मिल जाते थे, जिन्हें विना आगमें गरम किये वह ठोंक-पीटकर तेज बना लेता था; किंतु ऐसे बनाये हुए हथियारोंके कारण इसे हम ताम्रयुग नहीं मानते। ताम्रयुग तब शुरू होता है, जब कि आदमी तांबेकी धून (धातु-पाषाण) को लेकर उसे कोयलेकी आगमें पिघले द्रव्यको अपने भिन्न-भिन्न उपयोगके हथियारोंके रूपमें ढालने लगा। यह विद्या आदमीको बहुत पीछे मालूम हुई। प्राचीन मानव धधकते लकड़ीके कोयलेको एक गढ़ेकी पेंदीमें रख देता, और उसके ऊपर एकतह धून और एक तह कोयलेको रखता ऊपर तक भर देता। फिर फूँकनेकी फोंफियाँ लगाकर कई आदमी हवा देने लगते, जैसा कि आज भी कहीं-कहीं सोनार करते देखे जाते हैं। पीछे आदमीको मालूम हुआ, कि मुँहसे फूँकने की जगह चमड़ेकी भाथीसे हवा देना ज्यादा अच्छा है। इस प्रक्रियासे वह धूनसे धातु अलग करने लगा। १९ वीं शताब्दीके मध्य तक कुमाऊँ-गढ़वालमें और मध्य-प्रदेशमें आज भी कहीं-कहीं जनजातियोंने धूनसे धातु निकालनेकी यही विधि अपना रखी है। भाथीमें अवश्य इन लोगोंने कुछ विकास किया, और कहीं-कहीं आदमी हाथकी जगह पैरसे चलनेवाली बड़ी-बड़ी भाथियोंका इस्तेमाल करने लगे।[2]

---

[1] किसी-किसीका कहना है कि भारतमें नवपाषाणके बाद सीधे लौहयुग आया (Gen Anth. pp 199, 201) पर ताँबेके हथियार मोहनजोदरो और बहादुरगढ़ (हरद्वार) में मिले हैं।

[2] Our Early Ancestors, pp 185-94

२. ताम्र-उद्योग

ताँबा बनाना पत्थर, हड्डी या लकड़ीको छीलकर हथियार बनाने जैसा नहीं था। ताँबेकी धूनमें ओषिद्, सलफिद् और सिलिकेत (कार्बोनेत) मिला रहता है। उनसे बहुत तेज तापमानमें पिघला कर ही ताँबेको अलग कियाजा सकता है। ताँबा पिघलानेके लिए भारी गर्मीकी अवश्यकता होती है। १०८३° सेंटीग्रेटके तापमानमें ताँबा पिघलकर पानीहो जाता है और अपने अन्य साथियोंकी अपेक्षा अधिक भारी होनेके कारण उसका पानी नीचे चला जाता है, जिसे नीचेके छेद से अलग करते हुए भिन्न-भिन्न प्रकार के सांचों में ढाल लिया जाता है। ताँबे के इस प्रकार के निर्माण के साथ-साथ मानव पाषण-युग से धातु-युग में ही नहीं आया, बल्कि वह अब वैज्ञानिक युग का मानव बन गया। ताँबा बनाना रसायन-शास्त्र का बाकायदा प्रयोग है। इसके साथ मानव के शिल्प में विशेष परिवर्तन हुआ। संस्कृत और पाली के पुराने ग्रंथों में लोह का अर्थ ताँबा होता है सिंहलद्वीप (लंका) में अशोक के पुत्र भिक्षु महेन्द्र के लिये जो महाविहार बनाया गया था, उसमें एक निवास का लोह-महाप्रसाद (लोहे का महल) नाम इसलिए पड़ा था, कि उसकी छतें ताँबे की थीं। इससे पता लगता है, कि आज से २१-२२ सौ वर्ष पहले भी ताँबे के लिए लोह शब्द प्रयुक्त होता था। आजकल लोहार लोहे के काम करनेवाले को कहा जाता है। पहाड़ में ताँबे के बर्तन बनानेवालों को तमोटा या टमटा कहते हैं। नीचे मैदान में ताम्रकार नाम की कोई जाति नहीं मिलती, उनके स्थान पर वहाँ कसेरे हैं, जो काँसे, पीतल के बर्तनों को बनाते हैं। ताम्र-युग में लोहार या लोहकार जैसे शब्द का प्रयोग ताम्रकार के लिए होता था।[1]

इस प्राचीनतम धातु के लिए भारतीय आर्यों की भाषा में अयस् शब्द का भी प्रयोग होता था, जो कि पीछे केवल लोहे के लिए बर्ता जाने लगा। फिर ताँबे और लोहे में भेद करने के लिए ताँबे को लोह-अयस् और ताम्र-अयस् तथा लोहे के लिए कृष्णायस् (काला-अयस्) शब्द का प्रयोग होने लगा। भारत में आने के कई शताब्दियों बाद हिंदी-आर्य असली लोहे से परिचित हुए।

ताम्र के आविष्कार के साथ-साथ हम एक नये उद्योग को स्वतंत्र रूप से स्थापित होते देखते हैं। पत्थर, लकड़ी या हड्डी के हथियार के लिए कच्चे माल को विशेष प्रयत्न से तैयार करने की आवश्यकता नहीं होती, उनको छील-घिसकर किसी हथियार का रूप देना, उस युग का हरएक आदमी थोड़ा-बहुत कर सकता था। हाँ, अधिक कुशल और अभ्यस्त शिल्पी की बनाई चीजें अधिक सुन्दर और उपयोगी होती थीं। इसके कारण भले ही लोग उसकी खुशामद करते रहे हों। लेकिन, वह ऐसी स्थिति में नहीं था, कि शिकार और पीछे कृषि और पशुपालन की जीविका को छोड़कर पत्थर छीलने का ही व्यवसाय करने लगता। यह भी स्मरण रखने की बात है, कि जिस तक्ष (छेदने, छींलने) धातु का प्रयोग संस्कृत में केवल लकड़ी के छीलने-छेदने के लिये ही होता है, वह रूसी भाषा में केवल पत्थर छीलने-छेदने के लिए इस्तेमाल होता है। आरंभिक ताम्रयुग में हिंदी-युरोपीय जाति की वह शाखा पूर्वी-युरोप से मध्य-एसिया में लौट आई थी, जिसके वंशज

---

[1] ४००० और ३००० ई० पू० के बीच नियरऐसिया में ताँबा पिघलाकर ढालने का आविष्कार हुआ। Progress and Archaeology p. 32)

आज आर्य और शक के नाम से प्रसिद्ध हुए, यह संदिग्ध-सा है। किंतु, ताम्रयुग के मध्य या पित्तल-युग के आरंभ में (२००० ई० पू० के करीब) वह अवश्य वहाँ पहुँच गये थे ।

३. व्यापार[1]

ताम्रयुग के साथ लोहारों का स्वतंत्र पेशा स्थापित हुआ। गाँवों में अलग लोहारशाला कायम हुई और कुछ आदमी नियमित रूप से ताम्र-उत्पादन के व्यवसाय में लग गये। इसके साथ ही ताँबे की माँग बहुत बढ़ गई। पत्थर के हथियारों के सामने ताँबे के हथियार उतने ही शक्तिशाली थे, जितने तलवार के सामने बारूद से चलनेवाले हथियार। ताँबे के हथियार केवल युद्ध और शिकार के लिए ही उपयोगी नहीं थे, बल्कि कृषि में भी उनका अधिक और अधिक उपयोग होने लगा। जंगलों और झाड़ियों को साफ करके खेत बनाना पाषाण-युग में मुश्किल काम था, लेकिन ताँबे के कुल्हाड़े उसको बहुत आसानी से कर सकते थे। यदि मनुष्य को अवश्यकता होती, तो जंगलों और झाड़ियों के लिए उस समय खैरियत नहीं थी। हलके फाल और हँसिया में भी ताँबे का उपयोग अधिक होने लगा। इतनी माँग होने के कारण अगर ताँबे ने व्यापार का स्थायी रास्ता निकाला, तो इसमें आश्चर्य करने की अवश्यकता नहीं। ताँबा उस वक्त की बहुत दुर्लभ चीज थी, और उसके बनाने की विद्या तथा आवश्यक कच्चे माल सब जगह सुलभ नहीं थे। ऐसे मँहगे उद्योग का सब जगह जल्दी फैलना आसान काम नहीं था। इसीलिए दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों में ताम्रयुग के फैलने में २५०० ई० पू० से १८०० ई० तक का समय लगा। इससे पहले खाने-पीने की चीजों का आदान-प्रदान भले ही होता रहा हो, किंतु वह बाकायदा व्यापार नहीं था। शिकारी अवस्था में जहाँ आदमी को कभी-कभी शिकार के न प्राप्त होने के कारण भूखे रहना पड़ता, वहाँ शिकार मिल जाने पर मांस को खतम करने की जल्दी भी पड़ जाती थी; जिसमें कि वह सड़ने न पाये। कनौर (किन्नर) तथा कितने ही दूसरे प्रदेशों में आज भी यह प्रथा देखी जाती है: शिकार को मार लेने पर शिकारी जोर से चिल्लाकर पुकारता है—'है कोई यहाँ. है तो आके अपना हिस्सा ले।' आज यद्यपि शिकारी अपनी पलीतेवाली बन्दूक को इस्तेमाल करते हुए वैयक्तिक रूप से शिकार करता है, लेकिन तब भी उसके पुराने संस्कार उसे सामूहिक शिकार के युग का स्मरण दिलाते हैं, इसलिए वह आसपास में खड़े किसी आदमी को भी उसमें भागीदार बनाना चाहता। शिकारी समझता था, कि यदि उसका शिकार बड़ा जानवर है, तो वह और उसका परिवार अकेले जल्दी मांस को खा नहीं सकता, वह सड़ जायगा। ऐसे मांस के साथ क्रय-विक्रय क्या अदला-बदली करने का भी कहाँ सुभीता हो सकता था? इसीलिए व्यापार करने की जगह पर, हमारी पुरानी विवाह आदि प्रथाओं के अवसरों पर न्यौता के रूप में चीजों के भेजने जैसा रवाज था, जिसका यही अर्थ था, कि इस वक्त आपके कार्य-प्रयोजन में हम सहायता करते हैं, हमारे कार्य-प्रयोजन में यदि क्षमता हो, तो आप भी इसी तरह सहायता करें।

कृषियुग और पशुपालन के साथ वैयक्तिक सम्पत्ति की स्थापना हुई। सम्पत्ति भी रोज-रोज के खाने से अधिक जमा होने लगी, इसीलिये उधार देने या अदला-बदली करने का रवाज

[1] वही P. 59

चला। लेकिन, अदला-बदली से, विशेषकर जब कि उतनी ही चीजें मिलती हों, बाकायदा व्यापार-प्रथा स्थापित नहीं हो सकती और न सारे समय व्यापार करनेवाला वणिग्वर्ग स्थापित हो सकता था। ताम्रयुगने व्यापारके लिए सबसे अधिक सुभीता प्रदान किया, क्योंकि ताँबेके हथियार केवल विलास की चीज नहीं थे। वह युद्ध और जीविका दोनों के सबसे उपयोगी साधन थे, उनकी हर जगह मांग थी और माँगके अनुसारही उनका मूल्य भी अधिक था। अब अनाज, मांस या पशुओं का मूल्यांकन ताँबे के टुकड़ों या हथियारों में किया जाने लगा और बराबर के भार के खाद्य को ढोने की जगह छोटे से ताँबे के टुकड़े को ले जा बहुत सी खाद्य-सामग्री लाई जा सकती थी। ताम्रयुग ने देशों की छोटी-छोटी सीमाओं को व्यापार के लिए तोड़ दिया। व्यापार के लिए अब यातायात का सुभीता ढूँढ़ा जाने लगा। मानव-दिमाग सोचने लगा, कि कैसे थोड़े समय में अधिक से अधिक चीजों को दूर से दूर जगहों में पहुँचाया जा सकता है। इसीका परिणाम हुआ, नदियों और समुद्रों का में नौका संचालन और धरती पर गाड़ी या रथ का संचार।

४. हथियार

ताँबे के हथियारों के बनने के पहले पाषाण-युग में भी बहुत तरह के पत्थर, हड्डी या लकड़ी के हथियार बनने लगेथे। काटने के लिए जहाँ कुल्हाड़े बनते थे, वहाँ मांस काटने या छीलने आदि के लिये पत्थर की छुरियाँ भी बनती थीं। तीर और भाले के फल भी बहुत बना करते थे। ताँबे के हाथ में आने पर आदमी पाषाण-युग के हथियारों की नकल करने लगा। ताँबे के कुठारों की शक्ल वही थी, जो कि पत्थर के कुल्हाड़ों की। हाँ, समय बीतने के साथ उसमें और कितने ही भेद शुरू किये गये। भाले और तीर के फल भी पाषाण-युग की नकल पर ही बने। पत्थर का हथियार छुरे या कटारी बनानेके लिए नमूना हो सकता था, लेकिन ताँबेके हथियार को काफी लम्बा बनाया जा सकता था, इसलिए इसी युग में पहले-पहल लम्बी सीधी तलवारें बनने लगीं। पाषाण-युग के मानव को अस्तुरे की अवश्यकता नहीं थी। उसको अपनी दाढी-मूँछ बढ़ानेमें कोई शौक का खयाल नहीं था, बल्कि वह उसे सहजात समझकर बुरा नहीं समझता था। लेकिन, ताम्रयुग में आकर अब इच्छानुसार दाढ़ी-मूँछ बनाने के लिये अस्तुरा भी आन उपस्थित हुआ। हँसिया, फरसा, दोहरा फरसा, बसूला आदि बहुत तरह के हथियार बनने लगे।

मानव को आदिकाल से ही शरीर को सजाने का शौक था। वह पहले फूलों-पत्तों, दाँतों, कौड़ियों, हड्डियों आदि से शृंगार किया करता था। नवपाषाण-युग में मध्य-एसिया का मानव फीरोजा और दूसरे कितनी ही तरह के रंग-बिरंगे पत्थरों के आभूषण बनाता था। ताम्रयुग में अब ताँबे के बहुत तरह के आभूषण बनने लगे। लौहयुग में लोह के आभूषण उतने नहीं बने, जितने कि ताम्रयुग में ताँबे और पित्तलयुग में काँसे-पीतल के। इसमें एक कारण यह भी था, कि ताँबा लोहे की तरह मोर्चा खानेवाली धांतु नहीं थी। ताम्रयुग के बहुत तरह के कंकण, कुंडल, हँसली आदि आभूषण मिले हैं।

५. राज-व्यवस्था

लाखों वर्षों से मनुष्य प्रकृति का स्वतंत्र पुत्र था। उसका सामाजिक संगठन पहले परिवार के रूप में हुआ। परिवार जहाँ अपने व्यक्तियों के आहार को एकत्रित करने के लिए मिलकर

प्रयत्न करता रहा, वहाँ उनके झगड़ों को भी शांत करता था, साथ ही बाहर से आक्रमण होने पर सारे नर-नारी अपनी रक्षा के लिए लड़ने जाते थे। उसी युग में मानव मातृसत्ताके आदिम साम्यवाद से निकल कर जन-युग में पहुँचा, जबकि सामाजिक संगठन कई परिवारोंसे मिलकर बने जन के रूप में हुआ। नवपाषाण-युग में कृषि और पशुपालनने मातृ-सत्ता हटाकर पुरुष-सत्ता स्थापित करते हुए जनके प्रधान नेता महापितर की सृष्टि हुई। यद्यपि वह आगे आनेवाले राजा का अंकुर था, तो भी वह अभी उनसे ऊपर नहीं समझा जाता था, और उसकी प्रतिष्ठा इसीलिए अधिक थी, कि वह योग्य सैनिक नेता और जनके भीतर शांति रखनेवाला योग्य पंच था। ताम्र-युग में अब महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों को आगे बढकर सर्वेसर्वा बनने का अच्छा मौका मिला। कृषि और पशुपालन द्वारा कुछ व्यक्तियों के पास अधिक सम्पत्ति जमा होने लगी। इन्हीं व्यक्तियों ने आरंभिक जनयुग के दासताहीन समाज में दासता का आरंभ किया। पहले यदि जनों में युद्ध होता, तो वह बहुत क्रूर होता था (क्रूरता तो आज भी पूँजीवादी युद्ध की एक विशेषता है, कोरिया में सैनिकों से अधिक गाँव के निरीह नर-नारी बच्चे-बूढे अमेरिकन बमों के शिकार हो रहे हैं)। आदिम जनों के युद्ध में हारे हुए जन को या तो निःशेष नष्ट हो जाना पड़ता, या अपनी शिकार-भूमि को छोड़ बचे-खुचे आदमियों को लेकर दूर भाग जाना पड़ता था। उस वक्त पराजित को दास बनाने की प्रथा नहीं थी, बहुत हुआ तो उनकी कितनी ही स्त्रियों को पकड़कर अपनी स्त्री बना लिया। मातृ-सत्ता-युग में विवाह की प्रथा नहीं थी, इसलिए पिता का पता लगना आसान नहीं था, प. माता को पहचानने में कोई कठिनाई नहीं थी; इससे भी माता का नाम और शासन चल पड़ा, यद्यपि शरीर में उस वक्त की स्त्री पुरुष से अधिक बलवान् नहीं होती थी। आदिम जनयुग में भी विवाह की प्रथा यहीं तक पहुँच सकी थी, कि पुरुषों का एक झुंड पति माना जाय और स्त्रियों का एक झुंड पत्नी। कृषि और पशुपालन के साथ सम्पत्ति का उत्पादन बढ़ चला अधिक हाथों के का होने पर अधिक काम तथा उससे अधिक सम्पत्ति के उत्पादन का रास्ता निकल आया था, इसलिए वैयक्तिक सम्पत्ति के उत्पादन और स्वामित्व के बलपर जहाँ पुरुष समाज का नेता बन गया, वहाँ इस पितृसत्तायुग के युद्धों में पकड़े गये शत्रुओं को मारने की जगह दास बनाकर जीवित रहने का अधिकार दिया गया। युद्ध की पहले की क्रूरता में इसके द्वारा कुछ कमी हुई, इसमें संदेह नहीं। दासों का श्रम अधिक धन उत्पादन करने लगा।

ताम्रयुग में दासता-प्रथा ज्यादा बढ़ चली—दासों की संख्या अधिक बढ़ने लगी, क्योंकि खेती और दूसरे व्यवसायों में उनके श्रम की बड़ी माँग थी। दास वही लोग रख सकते थे, जिनके पास काफी सम्पत्ति थी, जिनके पास काफी काम था। युद्ध रोज-रोज नहीं हुआ करता, कि दास बिना मूल्य के मिलते रहें। इसलिए फुसला-बहका, डरा-धमका, प्रलोभन देकर दास-दासियाँ बनाई जाने लगीं। दासों के श्रमने धनिकों के हाथ में और भी सम्पत्ति एकत्रित कर दीं, वह धन के बलपर और भी लोगों को हाथ में करने लगे। इस प्रकार ताम्र-युग के साथ एक और बड़ी सामाजिक क्रान्ति यह हुई, कि जनयुग के स्वतन्त्र मानव-समाज के स्थान पर सामन्तयुग की घोर विषमता का समाज स्थापित हुआ। ताँबे के हथियार, उस समय ऐसे ही महँगे थे, जैसे कि आजकल के लड़ाई के बारूदी हथियार। जहाँ सामन्त अपनी सम्पत्ति से महँगे हथियारों को खरीद या बनवाकर, उनके चलानेवाले आदमियों को भाड़े पर रखकर शक्तिशाली हो सकता था, वहाँ

साधारण आदमी इसकी क्षमता नहीं रखता था। ताम्रयुग के सामन्तों के सामने उनके पिछड़े हुए स्वच्छन्द जन (कबीले) टिक नहीं सकते थे, क्योंकि उनके हथियार निकम्मे थे, चाहे लड़ने में वह अधिक वीर थे। शस्त्र-बल के अतिरिक्त संख्या-बल भी सामन्तों के पक्ष में था, क्योंकि उनके पास सम्पत्ति-बल अधिक था।

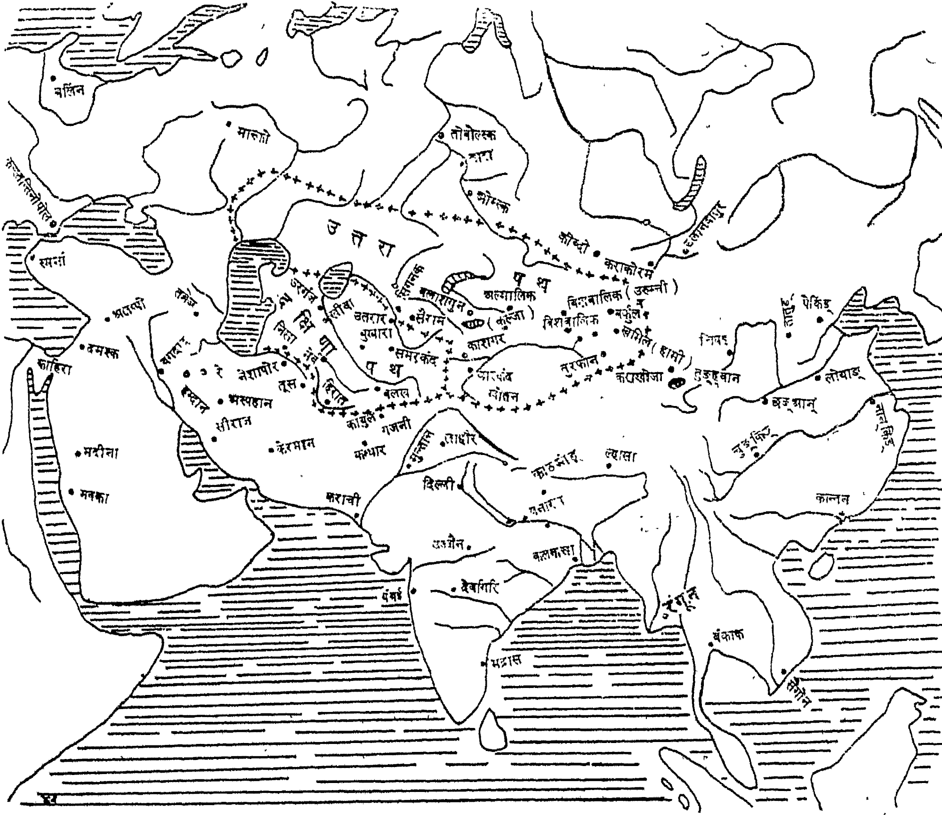
ताम्रयुग ने व्यापार के लिए छोटी-छोटी जन-सीमाओं को तोड़ फेंका और अपने क्षेत्र को व्यापक बनाया। मिस्र कहाँ, मेसोपोतामिया कहाँ, सिन्धु-उपत्यका कहाँ, अनौ और ख्वारेज्म कहां? आजकल नक्शे में देखने से भले ही वह नजदीक-नजदीक मालूम हों, और विमान द्वारा पहुँचने में भी दूर न मालूम होते हों; लेकिन आज से साढ़े चार हजार वर्ष पहले वह दुनिया के छोर पर अवस्थित थे। लेकिन, ताम्रयुग में हम एक जगह की बनी हुई चीजों को समुद्रों, पहाड़ों और रेगिस्तानों को पारकर दूसरी जगह पहुँचते देखते हैं। व्यापारिक एकता की तरह देशों के एकीकरण में भी इस युग ने बड़ा काम किया। अपने ताम्र के हथियारों के बलपर सामन्त दूसरों को अपने अधीन करते जन-सीमाओं को मिटा राज्यों और महाराज्यों की स्थापना करने में सफल हुए। ताम्रयुग ने मनुष्य को बतला दिया, कि अब छोटे-छोटे जन अपनी रक्षा नहीं कर सकते। मध्य-एसिया का दक्षिणापथ इस समय नवपाषाण युग से ताम्रयुग में आकर ग्राम-नगरों में बसे स्थायी निवासियों का देश था, किंतु इसका उत्तरापथ वर्तमान (कज़ाकस्तान) अब भी पूर्णतया घुमन्तुओं की निवास-भूमि था। जैसे पिछली शताब्दियों में हम उत्तरापथिक घुमन्तुओं का दक्षिणापथिक निवासियों के साथ बराबर संघर्ष देखेंगे, वही अवस्था ताम्रयुग में भी थी। उत्तर के घुमन्तू जन (कबीले) अपने सरदारों के नेतृत्व में दक्षिण के समृद्ध नगरों और ग्रामों को लूटने के लिए आते, और पीछे उनमें से कितने ही वहाँ बसकर शासन करते, जातियों के सम्मिश्रण और संस्कृतियों के दानादान का काम करते थे।

६. अनौमें

ऐतिहासिक काल में पश्चिमी मध्य-एसिया को दक्षिणापथ और उत्तरापथ इन दो भागों में विभक्त देखा जाता है। दक्षिणापथ से हमारा मतलब है, सिरदरिया और अराल समुद्र से दक्षिण का भाग, जिसमें आजकल तुर्कमानिस्तान, उज्बेकिस्तान और ताजिकिस्तान के गणराज्य मौजूद हैं। उत्तरापथ में किरगिजिस्तान का कुछ भाग और कजाकस्तान सम्मिलित हैं। दक्षिणापथ में कराकुम और किजिलकुम जैसे दो महान् रेगिस्तान हैं, जिनमें किजिलकुम पुरानी संस्कृतियों की सुरक्षित समाधि-सा है। उत्तरापथ में प्यासी-भूमिका भारी रेगिस्तान है। यहीं पश्चिममें तलस नदी से पूरब में इली नदी तक, फैला सप्तनद भूभाग है। जो उत्तरापथ का सबसे अधिक आबाद तथा ऐतिहासिक महत्त्व की भूमि है। इसिककुल और बलकाश के दो महासरोवर भी इसीमें हैं। त्यानशान् तथा अल्ताई की पर्वतमालाएँ इसके दक्षिण-पूर्वी तथा पूर्वी छोर पर हैं। सप्तनद उत्तरापथ का एक छोटा भाग है। त्यानशान् पर्वतमाला ही इली नदी से टूटकर उत्तर में अल्ताई का रूप ले लेती है, जो कि अपने ताँबे और सोने की खानों के लिए सदा से प्रसिद्ध है। एक समय सारा एसिया इसी के सोने के ऊपर निर्भर करता था—तुर्की और मंगोल भाषा का अल्ताई (सुवर्णगिरि) नाम यथार्थ ही है।

६. अनौमें ताम्रयुग[1]

दक्षिणी कुर्गान की स्थापना के साथ ईसा पूर्व तृतीय सहस्राब्दी के मध्य में यहाँ ताम्रयुग की स्थापना होती देखी जाती है। यह समय मध्य-एसिया के लिए जलवायु के अनुकूल था। अनौके दक्षिण खुरासान में ताँबा मौजूद था, पामीर तथा अल्ताई तो अपने ताँबे की महान् निधियों के लिए प्रसिद्ध हैं ही। अनौ में इस युग में कुम्हार के चक्के का उपयोग दिखाई देता है। मृत्पात्र भी



११. मध्यएसिया (उत्तरा, दक्खिना पथ)

नाना रूप के बनने लगे थे। पात्रों पर मनुष्य, प्राणी और वृक्ष-लता आदि के चित्र होते थे। यद्यपि, आभूषणों में बहुत भेद नहीं हुआ, किंतु अब वह अधिक सुन्दर बनते थे। बहुमूल्य पत्थरों का उपयोग बड़ी कलात्मकता के साथ किया जाता था। पता लगता है; इस युग में अनौवालों का सिन्धु-उपत्यका, और मसोपोतामिया से संबंध था। काल्दिया, असीरिया और सिन्धु-उपत्यका में बहु-पूजित माता-माई का सम्मान यहाँ भी बहुत अधिक था। घर के भीतर अब भी मृत शिशुओं को दफनाया जाता था। इस युग में निम्न चीजों का भाव और अभाव देखा जाता है:

[1] Exploration in Turkistan, pp. 18-19

भाव	अभाव
कुम्हार का चक्का	कलई वाला मृत्पात्र
तांबा और मामूली चित्र	पक्की ईंटें
घर (पूर्ववत्)	बर्तन की मुठिया
किवाड़ की चूल के नीचे पथरी (पूर्ववत्)	धातु या पाषाण का कुल्हाड़ा
गाय, बैल, देवी की मिट्टी की मूर्तियाँ	लोहा
हड्डी के शर-फल	धातु में सीसा का मिश्रण
ताँबे का हँसिया, माला और बाण के फल	लेख
जानकर ताँबे में सीसे की मिलावट	
करवट शव-समाधि	

७. ख्वारेज्ममें ताम्रयुग

ख्वारेज्म की किजिलकुम की मरुभूमि में नवपाषाण युग से लेकर १२वीं-१३वीं सदी ईस्वी तक के बहुत से ध्वंसावशेष मिलते हैं, जिनमें ई० पू० चौथी सहस्त्राब्दी से तीसरी सहस्त्राब्दी के आरंभ तक केल्त मीनार संस्कृति का अस्तित्व पाया जाता है। यह संस्कृति मुख्यतया मत्स्यजीवी तथा शिकारी मानवों की थी। इसके अतिरिक्त यह लोग खेती भी किया करते थे। कई बातों में यह अनौके नवपाषाण-युग से समानता रखते थे। ईसापूर्व तृतीय सहस्राब्दी के मध्य में ख्वारेज्म ताम्रयुग में अथवा स्थानीय पित्तलयुग में चला गया। वस्तुतः सारे मध्य-एसिया में ताम्रयुग और पित्तलयुग का भेद स्पष्ट नहीं पाया जाता।

ख्वारेज्म में पित्तलयुग का परिचय ताजाबागयाब (ई० पू० दूसरी सहस्राब्दी) और अमीराबाद (१०००-६००० ई० पू०) की संस्कृतियों में मिलता है।[1]

अनौ और ख्वारेज्म के रहनेवाले एक ही जाति के मालूम होते हैं, जो उस समय अराल से लेकर सिङकियाङ (पूर्वी तुर्किस्तान) तक फैले हुई थी। रुसी विद्वान् स. प. ताल्सतोफका मत है, कि यह जाति मुण्डा-द्रविड जाति से संबंध रखती थी। ख्वारेज्म की इस संस्कृति का सिन्धु-उपत्यका (मोहनजोउरो) की संस्कृति से इतना सादृश्य है, कि दोनों को आकस्मिक न समझ एक मानना ही अधिक युक्तियुक्त है।

८. लिपि आदि

ताम्रयुग सभी देशों में लिपि के प्रचार का युग है। व्यापार और राज्य के वि तार के कारण लिखित संकेतों द्वारा सूचना देना अत्यावश्यक था। हम मोहनजोउरो में इस युग में लिपि का उपयोग देखते हैं, यद्यपि वह अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। मेसोपोतामिया और मिस्र में तो हजारों अभिलेख मिले हैं। ख्वारेज्म में भी कुछ चिह्न मिले हैं, लेकिन कहा नहीं जा सकता, कि

[1] क्रत्किये सोओबुश्चेनिया vol. 13 pp. 46-50; देखो आगे ४।२

वह लिपि है या शिल्पियों के संकेत मात्र। कुछ भी हो, धातु-युग में प्रवेश करने के बाद किसी तरह की लिपिका होना आवश्यक हो जाता है। उसके साथ ही गणित और नाप-तौल भी राज्य और व्यापार के संचालन के लिए आवश्यक होते हैं; इसीलिए यह कल्पना करना गलत नहीं होगा, कि ताम्र-पित्तलयुग में मध्य-एसिया में इन चीजों का उपयोग होने लगा था।

स्रोत-ग्रंथ :

1. General Anthropology (Francz Boas)
2. Our Early Ancesters (M. C. Burkitt)
3. Exploration in Turkistan 2 vols (R. Pumpelly)
4. क्त्किये सोओब्श्चेनिया vol. XIII (लेनिनग्राद)
5. अर्खेओलोगिचेस्किये रस्कोप्कि व् त्रिअलोति (गुर्जी,त्बिलिसि १९४१)
6. The Most Ancient East (V. G. Childe, London 1928)
7. The Primitive Society (R. H. Lowie, 1920)

अध्याय २

पित्तल-युग (७०० ई० पू०)

१. युग की विशेषता[1]

ताँबे में दशांश राँगा (टिन) मिला देने से पीतल बन जाता है। ईसा पूर्व २००० ई० पू० में मानव को यह सूत्र मालूम हो गया था। राँगा मिला देने से जहाँ धातु का रंग बदल जाता है, वहाँ वह अधिक कड़ी भी हो जाती है। ताँबे में राँगा संभवतः अकस्मात् ही मिला। आजकल टिन पैदा करनेवाले देश मलाया, दक्षिणी अफ्रीका, खुरासान (ईरान), टस्कनी (जर्मनी), चेकोस्लोवाकिया, स्पेन, दक्षिणी-फ्रान्स, कार्नवाल (इंगलैंड) आदि हैं। काकेशस, शाम में भी राँगा मिलता है। काकेशस, चेकोस्लोवाकिया, स्पेन और कार्नवाल में पास ही पास राँगे और ताँबे दोनों की खानें हैं। जान पड़ता है, ताम्रकारों ने कभी गलती से राँगे की धून भी ताम्र-धून के साथ मिला दी, जिससे चमत्कारपूर्ण एक नई धातु तैयार हो गई और फिर काफी तजर्बे के बाद मालूम हुआ, कि दशांश राँगा मिलने से अच्छा पीतल बनता है। शायद राँगे का सुलभ न होना ही मिस्र और मसोपोतामिया में ताम्र युग के देर तक रहने का कारण हुआ। सिन्धु-उपत्यका और सुमेरिया (मसोपोतामिया) में जो ताँबे की चीजें मिली हैं, उनमें निकल का भी अंश है। उसे जान-बूझकर मिलाया नहीं कह सकते, बल्कि उसका कारण इन देशों में उम्माँ की ताम्र-धूनों का उपयोग होना था, जिनमें कि काफी निकल होता है।

पीतल के आविष्कार के साथ धातु-विज्ञान और आगे बढ़ा। यह उस महान् धातु-युग का आरंभ था, जिसका विकास आधुनिक धातु-युग में हजारों तरह के मिश्रित धातुओं के रूप में देखा जा रहा है। काकेशस दक्षिणापथ से कास्पियन समुद्र के परले पार है, जहां पहुँचने के लिए उसके दक्षिण से सुगम स्थल-मार्ग भी था। काकेशस में पीतल बनाने के लिये राँगे की जगह सुर्मे का इस्तेमाल होता था। सुमेरियन लोग सीसा मिलाकर पीतल बनाते थे। यह स्मरण रखना चाहिए, कि जस्ता (ज़िंक) और ताँबे के मिश्रण से तैयार हुआ काँसा बहुत पीछे बनने लगा, जब कि मानव लौह-युगमें पहुँच चुका था। नवपाषाण-युग और ताम्र-पित्तल-युगकी बस्तियोंमें एक और महत्त्वपूर्ण भेद देखा जाता था: नवपाषाण-युगीन बस्तियाँ हर बात में स्वावलंबी देखी जाती थीं, किंतु ताम्र-पित्तल-युग के आरंभ होते ही वह स्वावलंब खतम हो गया, क्योंकि अब धातुओं के हथियारों या उसके कच्चे माल के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता था।

---

[1] The Bronze Age (V. G. Childe) p. 2 (मिस्र, मेसोपोतामिया और सिंधु-उपत्यकाएँ ३६००-६००० ई० पू० तक)

२. ख्वारेज्ममें पित्तल-युग[1]

ताजाबागयाब-संस्कृति पित्तलयुग की संस्कृति मानी जाती है, जो कि ईसापूर्व दूसरी सहस्राब्दी में मौजूद थी। अङका-कला, तेशिककला आदि के ध्वंसावशेष इस संस्कृति से संबंध रखते हैं। इस युग का मानव कृषक और पशुपाल था। उसका समाज मातृसत्ताक जन था। गाँव किस तरह के होते थे, इसका अच्छी तरह पता नहीं लगा, जिसका कारण निर्माण-सामग्री का स्थायित्व-हीन होना हो सकता है। इस समय के मृत्पात्र विना मुठिया के होते थे, लेकिन काले-लाल रंगों के सजाने के अतिरिक्त कच्चे बर्तन पर खोदकर भी उन्हें अलंकृत किया जाता था।

इसी युग में अमीराबाद की संस्कृति (ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी का पूर्वार्ध) भी है, जिसे प्राग्-लौह संस्कृति भी कहा जाता है। यह मानव भी मातृसत्ताक जन-समाज में पहुँचा था। कृषि, पशुपालन इसकी मुख्य जीविका थी। जानबासकला आदि के ध्वंसावशेष इसीके हैं।

३. सप्तनदमें

ईसा-पूर्व द्वितीय सहस्राब्दीके अन्तमें उत्तरापथका सप्तनद प्रदेश भी पित्तल-युगमें पहुँचा। तलस्, चू, इली आदि सात नदियोंके कारण इस प्रदेश का यह नाम पड़ा। हो सकता है सप्त-सिन्धु जैसा ही कोई इसका मूल नाम रहा हो, जिसे कि तुर्की और मँगोल भाषाओं से रूसी में अनुवादित होकर आजकल सेमी-रेच्ये (सात नदी) कहा जाता है। इस प्रदेशको यह भी बड़ा लाभ था, कि अल्ताईकी तांबेके खानें इसके पास थी। आजकल भी बल्काश सरोवरके उत्तरमें अवस्थित करागंदा के कारखाने सोविवत-रूसके ताँबा बनानेंके सबसे बडे कारखाने हैं। हालमें सप्तनदके कितने ही पुराने नगरोंके ध्वंसावशेषोंकी खोदाई हुई है, जिनमें तरज़ (जम्बूल) सरिग तथा बालासगून (दोनों किर्गिजिस्तान की चू उपत्यकामें,), कोइलूक (इली-उपत्यका) खास महत्त्व रखते हैं। १९४१ में महा-चू-नहर तैयार हुई, जो प्राचीनकालकी परित्यक्त बस्तियोंके भीतर होकर गुजरी। यहां खोदते समय हजारों पुरातत्त्व-सामग्री प्राप्त हुई। चू और इलीके द्वाबे में पित्तलयुग का केन्द्र था। यहांके लोग कृषि, मछुवाई और शिकारीका जीवन बिताते थे।

१. अंद्रोनीय—पित्तलयुगमें उत्तरापथमें अंद्रोनी, करासुक और मिनूसून लोगोंकी जिन संस्कृतियोंका पता लगा है, वह भी शिकारी, मछुवाई और कृषिसे जीविका करते थे। अंद्रोनीय संस्कृति का समय १७००-१२०० ई० पू० माना जाता है। यह उत्तरापथके उत्तरी भागमें येनेसेइ नदीसे उराल तक फैली थी। उस्त-एरबाके पास अंद्रोनीय संस्कृतिसे संबंध रखनेवाली कितनी ही चीजें मिली हैं। इसके मृत्पात्रोंमें ज्यामितीय आकृतियोंका अलंकरण देखा जाता है।

२. करासुक—१२००-८०० ई० पू० में उत्तरापथमें हम करासुक संस्कृतिका पता पाते हैं। अल्ताई पर्वतमालाके पश्चिमोत्तरमें इसकी कितनी ही कब्रें मिली हैं, जिनकी चीजें अंद्रोनीय जैसी हैं।

३. मिनूसून—पित्तलयुगमें उत्तरापथमें एक और संस्कृतिका पता लगा है, जिसे मीनूसून कहते हैं। इसकी भी बहुत सी कब्रें मिली हैं, जिनमें मुर्दोंके साथ पीतलके आभूषण, छुरे,

[1] क्रत्किये सोओबृश्चेनिया, XIII, 110-18

तलवार, कुल्हाड़े आदि रखे प्राप्त हुए हैं। येनेसेइ नदीके किनारे तक इसका पता लगता है। शायद इस जाति का केन्द्र उत्तरापथके पूर्वोत्तर था और बेकालके पास तक फले खकासी लोगोंके साथ इसका संबंध था।[१]

उत्तरापथकी उपरोक्त तीन संस्कृतियां जिस समय समाप्त होती हैं, उसके अनंतर ही शक लोगोंका उत्तरापथमें स्पष्ट पता लगता है। इससे अनुमान होता है, कि यही शकोंके पूर्वज थे। नवपाषाण-युग और अनवपाषाण-युगमें दक्षिणापथ ही नहीं उत्तरापथ और सिङ्क्याङ (तरिम-उपत्यका) तकमें हम मुंडा-द्रविड जातिका पता पाते हैं। ईसा-पूर्व ७वीं ८वीं शताब्दीसे देखते हैं, कि सारे मध्य-एसियामें हिन्दू-युरोपीय वंशकी शक-आर्य शाखाका ही पर प्राधान्य है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि मुंडा-द्रविड और हिन्दू-युरोपीय कालके बीचमें उत्तरापथमें रहनेवाली पित्तलयुगकी उक्त तीनों जातियां वही हों, जिन्होंने मध्य-एसियासे मुंडा-द्रविड-वँशके प्राधान्यको खतम किया, और स्वयं उनका स्थान लेकर आगे उत्तरापथ और सिङ्क्याङमें शक और दक्षिणा-पथमें आर्यके रूपमें अपनेको प्रकट किया। इससे यह भी मालूम होता है, कि मध्य-एसियामें हिन्दू-युरोपीय जन ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दीके मध्यसे पहले नहीं थे। ऐसा होने पर उनकी एक शाखा हिंदू-आर्योंका भारतमें पहुंचना ईसा-पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के मध्यमें अधिक युक्तियुक्त मालूम होता है।

४. अनौमें[२]

अनौमें दक्षिणी कुर्गान ताम्र-पित्तल-युगका अवशेष है, तो भी इस स्तरमें हम पित्तलकी जगह ताम्रकी ही प्रधानता देखते हैं। लोगोंके बारेमें भी हम निश्चित नहीं बतला सकते, कि वह नवपाषाण-युगकी तरह मुंडा-द्रविड जातिके थे अथवा हिंदू-युरोपीय आर्य।

५. जातियाँ

मध्यपाषाण-युगसे पित्तल-युगके अन्त तक हमें मध्य-एसियामें चार मानव जातियोंका पता लगता है। मध्य-पुरापाषाण युगमें उत्तरापथकी प्यासी-भूमि, और अल्ताईमें मुस्तेर मानवके अवशेष मिले हैं, इसी तरह दक्षिणापथमें सोग्द और तुखार (मध्य-वक्षु उपत्यका) में भी मुस्तेर मानवका पता लगता है। १२ हजार वर्ष पूर्व मध्य-पाषाण युगीन मानवके अवशेष उत्तरापथमें किपचक (प्यासी-भूमि) और सप्तनदमें तथा दक्षिणापथमें सिर उपत्यका, सोग्द और ख्वारेज्ममें मिलते हैं।

ताम्रयुगमें अनौ, ख्वारेज्मसे सप्तनद तक मुंडा-द्रविड जातिकी प्रधानता थी। पित्तल युगमें आर्यों और शकोंके पूर्वज सारे उत्तरापथ और दक्षिणापथमें फैले। मुस्तेर और मध्य-पाषाण युगीन मानवके संबंधमें हम निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते। मध्य-पाषाण युगीन मानव, हो सकता है, नवपाषाण युगके मुंडा-द्रविडका ही पूर्वज हो, और यह भी हो सकता है, कि

---

[१] "नेकतोरिये इतगी आर्खेआलोगिचेस्किख रवोत् व् सेमिरेच्ये" (अन० बेर्नश्तम) "क्त्किये सोओब्" XIII, 110-18

[२] Expl. in Turk. p. 18-19

वे ही, उन हिंदू-युरोपीयोंके पूर्वज हों, जो कि नवपाषाण-युगके आरंभमें युरोपकी ओर भागनेके लिये मजबूर हुए। ऐसी अवस्थामें मुंडा-द्रविड-वंशके लोग भूमध्यीय वंशके होनेके कारण दक्षिण या दक्षिणपूर्वसे मध्य-एसियामें घुसे होंगे। पित्तलयुगमें मध्य-एसिया खाली करके जानेवाले हिंदू-युरोपीय वंशकी एक शाखाको फिर हम उनके पूर्वजोंकी भूमिमें लौटते देखते हैं। ये ही शकों और आर्योंके जनक थे। इनके आनेके बाद मुण्डा-द्रविड लोगोंका क्या हुआ, शायद वहां भी वही इतिहास पहिले ही दोहरा दिया गया, जो कि भारतमें पीछे हुआ—अर्थात् कुछ मुण्डा-द्रविड पराधीन होकर वहीं रह गये और धीरे-धीरे विजेताओंने उन्हें आत्मसात् कर लिया; कुछ लोग पराधीनता न स्वीकार कर खाली पड़ी हुई भूमिमें आगे खिसक गये। अल्ताईसे सिङ क्याङ तक फैले मुण्डा-द्रविड जातियोंके इन्हीं भागे हुए अवशेषोंको हम आज बोल्गाके उत्तरके बनखंडोंमें रहनेवाली कोमी, बाल्तिकके पूर्वी तट पर बसनेवाली एस्तोनी और फिनलैण्डमें बसनेवाली फिन जातिके रूपमें पाते हैं। किसी समय मास्को और लेनिनग्रादका सारा भूभाग उसी जातिका था, जिसकी शाखायें वर्तमान कोमी, एस्तोनी और फिन है। फिन भाषाका द्रविड भाषासे संबंध भी इसी बातकी पुष्टि करता है, कि शकार्यों और द्रविडोंके संघर्षके ही परिणामस्वरूप उनका एक भाग जो उत्तरकी ओर भागा, वही फिन जाति है। इस प्रकार मुण्डा-द्रविड कहनेकी जगह हम नवपाषाण-युगकी मध्य-एसियायी प्राचीन जातिको फिनो-द्रविड कह सकते हैं। उत्तरकी उक्त तीनों जातियोंमें कोमी दूसरोंके सम्पर्कमें सबसे कम आई। यद्यपि आज इन फिनो-द्रविड जातियोंका रंग युरोपियनों जैसा गोरा ही नहीं होता, बल्कि इनके बाल पिंगल होते हैं—काले केशोंका तो उनमें कहीं पता नहीं लगता। लेकिन, यदि कौमी नर-नारियोंका फोटो देखें, तो मालूम होता है, कि हम दक्षिणके किसी शुद्ध द्रविड व्यक्तिका फोटो देख रहे हैं। कदमें भी यह लोग नाटे और शरीरमें एकहरे होते हैं।

फिनो-द्रविड नृतत्वके अध्ययनके लिये उपयोगी सामग्री भारतमें ही नहीं सोवियत रूसमें भी बहुत है, जिसकी ओर हमारे देशके विद्वानोंका ध्यान ना चाहिये।

स्रोत-ग्रंथ :

1. The Bronze Age (V. G. Childe, Cambridge 1930)
2. ऋत्किये सोओबश्चेनिया Vol. XIII1 (लेनिनग्राड) 1946
3. Exploration in Turkistan (R. Pumpelly)
4. General Anthropology (F. Boas)
5. In the Beginning (G. Elliot Smith) (London 1946)
6. Le' Humanite' Prehistorique (J. de Morgan)

अध्याय ३

लौहयुग (७०० ई० पू०)

ईसापूर्व द्वितीय सहस्राब्दीमें पित्तलयुगमें पहुंचने पर भौगोलिक तौरसे हमें शकों और आर्योंका भेद स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस समय शक यक्सर्त नदी (सिर-दरिया), अरालसमुद्रसे उत्तर रहते थे, उनके दक्षिणमें आर्योंका निवास था। सुग्ध (जरफशां-उपत्यका), ह्वारज्म (ख्वारज्म) से लेकर पहले हिंदूकुश और खुरासानके पर्वतों तक और थोड़े ही समय बाद फारसकी खाड़ी और सिन्धु तथा गंगाकी कछारों तक आर्य पहुंच गये। ग्रीक इतिहासकारोंके अनुसार हम यह भी जानते हैं कि दुनाई (डेन्यूब) से त्यानशान तक फैली घुमन्तू जातिको शक, स्कुथ अथवा सिथ कहते थे।[१] ग्रीक और उसका अनुसरण करनेवाली अंग्रेजी भाषामें उसका चाहे कितना ही बुरा अर्थ हो, किन्तु शक शब्दमें ऐसा कोई बुरा भाव नहीं है। ग्रीक लेखकोंके अनुसार शक लोग अपनेको स्कोल या सकोल कहते थे। दार्योशने अपने बहिस्तूनके अभिलेखमें उन्हें शक नामसे पुकारा है। भारत भी ईरानकी इस रायसे सहमत है। बहुतसे लेखक कालासागरके उत्तरमें रहनेवाले सिथियों और सिरदरियाके उत्तरमें घूमनेवाले शकोंमें अन्तर करना चहते हैं। इतने दूर तक फले हुये घुमन्तू जनमें कुछ स्थनीय भेद हो सकता है, लेकिन इससे उन्हें हम अलग नहीं मान सकते। ग्रीक इतिहासकार ई० पू० ५वीं शताब्दीमें भी यह माननेके लिये तैयार थे, कि कालासागरसे सिरदरिया तकके घुमन्तूओंमें रीति-रिवाज, खान-पान और वस्त्र-भूषा में अन्तर नहीं था। उनके हथियार भी एक तरहके होते थे। दोन नदीको पूर्वी और पश्चिमी शकोंकी सीमा माना जाता था।

१. शकद्वीप

युरेसिया द्वीपमें एक समय दुनाइ (डेन्यूब) से त्यान्शान्-अल्ताई (पर्वत-श्रेणी) तक फैली शक जातिकी भूमिको हम पित्तलयुगके आरंभमें भारतीय परिभाषाके अनुसार शक द्वीप कह सकते हैं, पुराने ईरानी शब्दानुसार शकानवेइजा या पीछेकी भाषाके अनुसार शकस्तान भी कह सकते हैं। लेकिन ई० पू० द्वितीय शताब्दीमें शकोंके बस जानेके कारण ईरानके पूर्वी भागको शकस्तान या सीस्तान कहा जाने लगा। इस भागको हम आदि-शकस्तान कह सकते हैं, इसी परिभाषाके अनुसार हम अराल और सिरदरियाके दक्षिणकी भूमिको आर्यद्वीप, आर्यान-

---

[१] "अल्ताइ व् स्किफ़्स्कोये व्रेमिया" (स० ब० किसेलेफ़), वेस्लिक द्रेव्नेइ इस्तोरिइ १९४७ पृ० १५७-७२, क्रत्कये सोओबश्चेनिया XIII, p 112 में वेर्नश्ताम का लेख भी इसी विषय पर। इसका समर्थन पुनः वेर्नश्तामने किया है "इस्तोरिको-कुल्तुर्नोये प्रोश्लोये सेवेर्नोइ किर्गिजिइ पो मतेरिलियाम् बोल्शवो चुइस्कओ कनाला" में (फ्रुन्जे १९४३)

वेइजा या आर्यस्थान कह सकते हैं। पीछे अवेस्तामें आर्यानवेइजा एक छोटा सा प्रदेश था, जिसे आधुनिक इतिहासकार कभी खुरासान कभी वाह्लीक (बाख्तर), आजुर्बाइजान या, कभी ख्वारेज्म मानते हैं। इसलिये भ्रमसे बचनेके लिये हम इसे आर्यद्वीप ही कहें, तो अच्छा।

शकद्वीप और आर्यद्वीपका यह भेद बहुत दिनों तक नहीं चला। हूणोंके प्रहारसे १७४ ई० पू० से ही शक पूरबके शकद्वीपको छोड़नेके लिये मजबूर हुए, और अगली पौने ६ शताब्दियोंमें शकोंको छिन्न-भिन्न करते हुए हूण और उनके वंशज डेन्यूबके तट तक पहुंच गये। उनके इस महाभियानके कारण ईसाकी चौथी शताब्दी में पूर्वी शकद्वीप हूणद्वीपके रूपमें परिणत हो गया, और दोन नदीसे पश्चिमके शकद्वीपमें भी कालासगरके करीब बसनेवाली गाथ, सरमात (शक-वंशज) जातियोंको अपने पुराने स्थानोंको छोड़कर उत्तर या पश्चिम में भागना पड़ा। हम यह भी जानते हैं, कि पूर्वी शकद्वीपको पूर्णतया खाली करनेका ही परिणाम हुआ—ग्रीक-बाख्तर राज्यका ध्वंस, भारतमें ग्रीक (यवन) राज्यका विनाश और भारतके राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन पर शकोंकी स्थायी छाप।

शकों और आर्योंका भेद आपसमें चाहे कितना ही हो, किन्तु विशाल हिंदू-युरोपीय वंश पर विचार करनेसे वह भेद बहुत नगण्य सा है। मध्य-पाषाण-युगके अन्त अथवा नवपाषाणयुगके आरंभ में, जब प्रकृतिके प्रकोप तथा फिनो-द्रविड (मोहनजोडरो) जातिके प्रहारके कारण हिंदू-



युरोपीय जनगण मध्य-एसिया छोड़कर युरोपकी ओर जानेके लिये मजबूर हुआ, उस समय अभी उनके भीतर केन्तम् और शतम्‌का न भाषा-भेद हुआ था और न शकार्य तथा पश्चिमी हिंदू-युरोपीयका ही भेद। ग्रीक, रोमक, गाथ, केल्ट आदिके सम्मिलित जनगणका कोई एक नाम निश्चित

न होनेसे हम उसे पश्चिमी हिंदू-युरोपीय जनगण कहते हैं। मध्य-एसियासे हिंदू-युरोपीय जनोंका युरोपमें जाना सभी स्वीकार करते हैं, और इसमें भी सहमत हैं, कि वह नवपाषाण-युगमें हुआ। नवपाषाण-युगकी एक विशेषता है कृषि, लेकिन कृषिके हथियारों और धान्योंके लिये एक प्रकारकी शब्दावली हम केन्तम और शतम् भाषाओंमें नहीं पाते। केन्तम् की बात तो दूर शतम् भाषाओंमें भी कृषि-संबंधी एक तरहके शब्द नहीं मिलते, इससे यह कहना उचित नहीं जंचता, कि नवपाषाण-युगमें हिंदू-युरोपीय मध्य-एसियासे पश्चिममें गये, शतम् और केन्तम् का भेद हुआ, शक और आर्य दो स्वतन्त्र जनोंमें विभक्त हुए। यदि हम नव पाषाण-युगसे पहले इन विभाजनोंको मानें तो भाषाशास्त्रके अनुसार इसमें कोई हरज नहीं पड़ता, किन्तु कालके अनुसार बहुत लम्बा समय भाषाओंके परिवर्तनके लिये देना पड़ता है। इस शतम्-केन्तम् और शक-आर्य भेदके समयको निर्धारित करनेके लिये शायद मध्य-एसियाकी मरुभूमि इतिहास-वेत्ताओंकी सहायता करे।

ऊपर कहे आर्यद्वीपमें भूमध्यीय जाति चली आई, यह अनौ (दक्षिणी तुर्कमानिया) और ख्वारेज्मकी पुरातात्विक खोजोंसे सिद्ध है, किंतु शकद्वीपमें भूमध्यीय जातिका कोई इस तरहका हस्तक्षेप दिखाई नहीं पड़ता। मध्यपाषाण युग हो या नवपाषाण-युग, इसी समय पश्चिमकी ओर भागे हिंदू-युरोपीय जनगणकी शाखा शकार्य मध्य-एसियामें पहुँचकर फिरसे अपना द्वीप कायम करनेमें सफल हुई। यहाँ आर्योंका सम्पर्क उसी भूमध्यीय जातिसे हुआ, जिसकी समुन्नत संस्कृतिके अवशेष सिन्धु-उपत्यका और मसोपोतामियामें मिलते हैं। इस सम्पर्कके कारण आगे बढ़नेमें बहुत सहायता मिली और आर्य जल्दी जल्दी पित्तलयुगको पार हो लौहयुगमें पहुँच गये। ऐसे सम्पर्क के अभावके कारण शकद्वीपके शक सामाजिक विकासमें उतने नहीं बढ़ सके। ई० पू० ६ठी ५वीं शताब्दीमें, जब कि आर्योंके स्थानोंमें लोहेका खूब प्रचार था, शकलोग अभी पीतलकी ही तलवारों, वाण और भालेके फलोंको इस्तेमाल करते थे। दारयोशकी सेनामें सम्मिलित ग्रीक लोगोंसे लड़ते इन शक सैनिकोंके बारेमें लिखते हुए ग्रीक इतिहासकार कहते हैं, कि उनके देशमें चांदी और लोहा नहीं होता, इसीलिए इन धातुओंका प्रचार उनमें नहीं है; साथ ही सोने और तांबेकी बहुतायत है, इसीलिए वह हथियारोंके लिये पीतल और सौंदर्यके लिये सोनेका मुक्तहस्त हो उपयोग करते हैं। इस समयके पीछे तथा हूणोंके प्रहारसे पहले ही काला-सागरके तट पर रहनेवाले शक भी पशुपाल-घुमन्तू-जीवनको पूर्णतया या अंशतः छोड़कर कृषिजीवी ग्रामवासी बन गये। शकद्वीपका सारा पूर्वी भाग तब तक अपने पशुपाल-घुमन्तू-जीवनको छोड़नेके लिये तैयार नहीं हुआ, जब तक कि हूण उनको इस भूमिसे भगानेमें समर्थ नहीं हुये। १२८ ई० पू० में चीनी सैनिक-पर्यटक चाङक्यान् जब उनके केन्द्र बाख्तरमें पहुँचता, तो एक विशाल वैभवशाली राज्यके स्वामी होनेके बाद भी अभी शकोंको उसने तम्बुओंमें रहते अपने घोड़ों और भेड़ोंको जगह जगह चराते-घूमते देखा —अर्थात् अब भी वह अपने पुराने जीवनसे चिपके रहना चाहते थे। स्थायी निवासियोंको लड़ाकू घुमन्तू जातियाँ आमतौरसे डरपोक कह कर घृणाकी दृष्टिसे देखती है। डरपोक न होने देनेके लिये तैमूर विश्वविजेता बननेके बाद तथा नवीन समरकन्द जैसी बड़े बड़े प्रासादोंकी नगरीका संस्थापक होते हुए भी घुमन्तू जीवनका अभिनय करता था। यह अभिनय बिल्कुल बेकारकी चीज़ नहीं थी। वस्तुतः घुमन्तू जीवन युद्धके लिये सदा तैयार सैनिक जीवन जैसा है। अन्तर इतना ही है, कि सैनिक जहाँ घूमनेके लिये स्वतन्त्र

होने पर भी स्त्री और बाल-बच्चोंके संबंधसे वंचित रहता है, वहाँ घुमन्तूका सारा परिवार (नर-नारियों और बच्चे-बूढ़ों सहित सारा जन) सेनाका अभिन्न अंग होता है। वह जैसे आक्रमणके लिये एक क्षणकी सूचनामें तैयार हो सकता है, वैसे ही सैनिक अवश्यकता पड़ने पर भागनेके लिये भी तैयार हो सकता है। घुमन्तू विजेताको जहाँ शत्रुके समस्त नगर और गाँव लूटपाटके लिये खुले मिलते हैं, वहाँ उनपर विजय प्राप्त करनेवाले नागरिकोंको कुछ भी हाथ नहीं आता। यही कारण है, जो घुमन्तू लोग सहस्राब्दियों तक अजेय साबित हुए। चीनने हूणोंको बार बार मार भगाते जब सफलता नहीं पाई, तो अपनी प्रतिरक्षाके लिये महा दीवार खड़ी की। कुरव महान् मसागेत घुमन्तूओंके साथ लड़ते लड़ते मारा गया। उसके उत्तराधिकारी दारयोशको भी ५१३ ई० पू० में पश्चिमी शकों पर आक्रमण करके पछताना पड़ा। ग्रीक लोगोंका तजर्बा इससे बेहतर नहीं था।

२. शक लोग

घुमन्तू जीवनमें जहाँ सैनिक और राजनीतिक दृष्टिसे कितने ही सुभीते हैं, वहाँ सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे यह घाटेका सौदा है। दूसरी जातियोंके लौहयुगमें चले जानेके बाद भी शकोंका पित्तलयुगमें पड़ा रहना सामाजिक गतिरोध ही था। हम जानते हैं, सामाजिक विकासके अनुसार भाषाका विकास होता है। शक भाषाके बहुत कम ही नमूने हमारे पास तक पहुँचे हैं, और जो पहुँचे भी है, वह ईसवी सन्के आरंभ होनेके बादके हैं। लेकिन शकोंके उत्तराधिकारियोंकी भाषा देखनेसे मालूम होता है, कि उनकी भाषा जो विश्लेषात्मक न हो, संश्लेषात्मक ही रह गयी, उसका कारण पूर्वजोंका यही सामाजिक गतिरोध था। भारतीय आर्योंकी भाषामें परिवर्तन भारतमें आते ही होने लगा, जब कि अपने सारे शतम् वंशमें अपरिचित टवर्गका ऋग्वेद तकमें प्रयोग होने लगा। हमारी भाषामें मौलिक परिवर्तन (संश्लेषात्मकसे विश्लेषात्मक होना) जहाँ ईसाकी छठीं-सातवीं शताब्दीमें हो चुका, वहाँ शकोंके आधुनिक वंशज स्लावों (रूसी आदि जातियों) की भाषा आज भी संश्लेषात्मक है—उसमें क्रिया तथा शब्दके रूपोंमें प्रत्यय संस्कृत की भाँति अभिन्न अंगके तौर पर प्रयुक्त होते हैं और सहायक क्रियाओंका उपयोग आज भी नहीं देखा जाता। इससे उनमें यह विशेषता देखी जाती है, कि भाषाके ढांचेकी दृष्टिसे स्लाव भाषायें संस्कृतसे जितनी नजदीक हैं, उतनी हमारे यहाँ की कोई भी जीवित भाषा नहीं है।

दारयोश एक आर्य राजा था। उसने ५१३ ई० पू० में युरोपके भीतरसे कालासागरके किनारे किनारे उत्तर में बढ़कर शकोंके ऊपर असफल आक्रमण किया था। ग्रीक इतिहासकारों द्वारा उद्धृत शक परम्पराके अनुसार इस आक्रमणसे १००० वर्षपूर्व शकोंका प्रथम राजा हुआ था। इसमें संदेह है, कि जब तक शकोंकी भूमिमें शक रहे, तब तक कोई उनका वास्तविक राजा हुआ होगा। शक घुमन्तूओंके सरदार या नेताओं को भी दूसरोंकी देखादेखी राजा माना गया होगा। शकोंमें स्त्रियोंका विशेष स्थान था, बल्कि ई० पू० चौथी-पांचवीं शताब्दीमें दोनसे पूर्व रहनेवाले शक जनगणका नाम सरमात या सर्वमात इसीलिए पड़ा था, कि उनमें माता (स्त्री) सर्व-सर्वा होती थीं। स्त्रियाँ मृत जन-पतिका स्थानापन्न ही नहीं होती थीं, बल्कि वह सेना-संचालन भी करती थीं।

इतिहासके आरंभमें शकोंमें जो रीति-रवाज, वेष-भूषा देखी जाती थी, वह बहुत पुराने कालसे चली आई थी। चीनी और ग्रीक दोनों लेखक इस बातमें सहमत हैं, कि शकोंका मुख्य

भोजन मांस और मुख्य पान दूध था। मांसके साथ ताजा खून पीना भी उनमें प्रचलित रहा होगा, तभी तो युद्धमें प्रथम गिरे शत्रुका गरम-गरम खून वह पाण्डव भीमकी तरह पीते थे, शत्रु सरदारकी खोपड़ीका कटोरा बनाकर बड़ी सावधानीसे रखते थे। यह दोनों प्रथायें हूणोंमें भी देखी जाती हैं, यद्यपि वह मंगोलायित थे। चंगेज खानके मंगोल सैनिकोंके इतने सफल होनेमें एक कारण उनका घोड़ा था, जिसपर चढ़कर वाण चलाते हुए जहाँ वह युद्ध कर सकते थे, वहाँ अवश्यकता पड़ने पर घोड़ेकी नसमें छेदकर उसके खूनसे भूखको शान्तकर फिर लड़नेकेलिये ताजा हो जाते थे। विवाह-प्रथा शकोंमें बहुत प्रारंभिक रूपमें थीं। कई भाइयोंकी एक स्त्री हो सकती थी और स्त्रियोंके एक समूहका पुरुषोंका एक समूह पति समझा जाता था, अर्थात् यूथ-विवाह उनमें प्रचलित था। किसी सरदारके मरने पर उसकी एक पत्नीको अवश्य कब्रमें अपने पतिका साथ देना पड़ता था। मिस्री सामन्तोंकी तरह शकोंमें भी शव-क्रिया बड़ी शानसे सम्पन्न होती थी। मृत सरदारके साथ उन सभी चीजोंको कब्रमें रख दिया जाता था, जिनकी कि उसे जीवनमें जरूरत पड़ती थी। सभी तरहके हथियार, आभूषण, खान-पानकी चीजें और घोड़ोंको ही कब्रमें नहीं रखा जाता था, बल्कि दास-दासियोंको भी स्वामीके साथ जाना पड़ता था। पुराने शकोंमें मुर्दे (विशेष कर सामन्तके मुर्दे) को दफनानेका रवाज था। उनकी कब्रें काकेशस्के उत्तरमें मिली हैं, और अल्ताई भी उनसे खाली नहीं है। साधारण कब्रोंमें भी खान-पान-सहित बर्तनोंका रक्खा जाना आवश्यक समझा जाता था। यह प्रथा शकोंकी एक शाखा खसोंमें ईसवी सन्के आरंभसे पीछे तक भी पाई जाती थी, यह लदाखसे कुमाऊँ तक मिलने वाली खस-समाधियोंसे सिद्ध है। दफनानेके अतिरिक्त शक मुर्देको पेड़के ऊपर टाँग देते थे, जिसमें पक्षी मांस खा जायें। उसके बाद हड्डीको इकट्ठा करके गाड़ दिया जाता था। पारसियों में अब भी इसी प्रथा का अनुसरण किया जाता है, और वृक्ष की जगह दख्मा में शव को गिद्धों द्वारा खाने के लिये छोड़ दिया जाता है। यूनानी लेखकों से यह भी मालूम होता है, कि पक्षियों के लिये छोड़ देने की जगह कभी कभी मनुष्य अपने हाथों से हड्डी से मांस को अलग कर देता और इस तरह बिना चिरप्रतीक्षा के ही हड्डी को दफनाने का मौका मिल जाता था। मुर्दा दफनाने के साथ-साथ शकों में मुर्दा जलाने का भी रवाज था। उस समय पत्नी को साथ भेजने के लिये जिंदा जलाने की जरूरत पड़ती। ८वीं ९वीं शताब्दी में, जब कि रूसी लोग अभी ईसाई नहीं हुये थे, उनमें सती प्रथा मौजूद थी, जिसे एक अरब पर्यटक ने अपनी आंखों देखा था। भारत में सती-प्रथा का रवाज शकों के आने के साथ हुआ।

शकों की पोषाक सारे युरेसिया द्वीप में एक सी थी। उनके सिर पर एक नुकीली टोपी होती थी, जो शक-सिक्कों से लेकर मथुरा और अमरावती की २री-३री शताब्दियों की मूर्त्तियों में भी पाई जाती हैं। पैरों में पायजामा और देह पर लंबा चोला, साथ ही घुटने या उसके पास तक पहुँचनेवाला चमड़े या नम्दे का बूट उनकी विशेष पोशाक थी। कमर में कमरबन्द के साथ सीधी लम्बी तलवार लटका करती थी। उनकी लम्बी नाक और भूरेबालों का चीनी लेखकों ने विशेष तौर से उल्लेख किया है। संस्कृत के लेखकों ने शकों, यवनों, पल्हवों और बाह्लिकों को रक्तमुख कहा है। शक सुंदरियां अपने सौन्दर्य के लिये भारत में अधिक विख्यात थीं। हमारे वैद्यों ने उनके सौंदर्य का कारण प्याज अधिक खाना बतलाया है। बागभट्टने अपने "अष्टांगहृदय" (उत्तरतंत्र) में लिखा है—

"यस्योपयोगेन शकांगनानां लावण्यसारादि-विनिर्मितानाम्।"

शकों के परम देवता सूर्य थे, इसका पता ग्रीक पुस्तकों से ही नहीं मिलता है, बल्कि भारत में शकों जैसी बूटधारी सूर्य-प्रतिमाओं का व्यापक प्रसार तथा ईसाई धर्म स्वीकार करने से पहले रूसियों की सूर्य में एकांत-भक्ति भी इसी बात को बतलाती है। सूर्य के अतिरिक्त "दिवु" शकों का पूज्य देवता था, जो कि वैदिक द्यौ और ग्रीक जेउस है। "अपिया" (आप्या) के नाम से पृथ्वी



माता पूजी जाती थी। सूर्य को वह "स्वलियु" कहते थे, जिसमें रके स्थान में लके साथ शकों के अत्यन्त प्रेम को हटा देने पर सूर्य शब्द साफ दिखाई पड़ेगा। स्वलियु देवता दिवू पिता और अपिया माता का (द्यावापृथिवी) पुत्र था। 'पक' भी एक प्रधान देवता था, जो वेद में भग, ईरानी में बग (बगदाद=भगदत्त) और रूसी में बोग के रूप में मौजूद है। राजा या बड़े सरदार को शक लोग पकपूर कहते थे, जो कि भगपूर (भगपुत्र) का ही रूपानन्तर है। फारसी और अरबी में चीन के सम्राट् को फगफूर कहा जाता है, जो कि इसी पकपूर से निकला है। चीनी सम्राट् देवपुत्र (स्वर्गपुत्र) कहे जाते थे, यह हमें मालूम ही है। चन्द्रमा देवता को शक लोग अरतिम्पत (अर्थी-पति) कहते थे। वृन्दू भी उनकी एक देवी थी और थमी-मसद तथा विरोपत (वीरपति) उनके देवता थे। शक भाषा के पुराने नमूने बहुत ही कम मिले हैं। उनमें से कुछ हैं[1]—

[1] Les Scythes p. 539

तविती=अग्नि	स्वलियु=सूर्य
शक=शक	पर्थ=पृथक्कृत
ज़रिना=हरिना	कनग=राजा (रूसी कन्याग)
महकनग=महाराजा	तवितवरू=जनपाल
तमूरी=समुद्रीय (रानी)	स्परोत्र=स्वरएथ्र

स्रोतग्रन्थ :

1. Les Scythes (F. G. Bergmanss, Halles 1860)
2. वेस्लिक द्रेब्नेइ इस्तोरिइ 1947
3. क्रत्कि० सोओब० XIII

भाग ३

उत्तरापथ (६०० ई० पू०-७०० ई०)

अध्याय १

शक (६००-१७४ ई० पू०)

§१. शक-जातियाँ[1]

हम देख चुके हैं, ई० पू० ३री सहस्राब्दी से प्रथम सहस्राब्दी के प्रायः मध्य तक सप्तनद और अल्ताई में क्रमशः अफनास (२५००-१७०० ई० पू०), अन्द्रोन (१७००-१२०० ई०) पू०, करासुक (१७००-८०० ई० पू०) और अन्तिम के समकालीन मिनिसुन जातियाँ रहती थीं। कोई प्रमाण नहीं है, कि यह लोग शकों के पूर्वज छोड़ किसी दूसरी जातिके थे। ईसा पूर्व ७वीं शताब्दी में हम उत्तरी मध्य-एसिया में शक जातियों का प्रसार निम्न प्रकार पाते हैं। (१) दोन से पूरब कास्पियन के उत्तर होते अराल समुद्र और यक्सर्त (सिरदरिया) के मध्य तक मसागित जाति का विस्तार था, अराल समुद्र के पास यह जाति निम्न वक्षु-उपत्यका में अर्थात् ख्वारेज्म में भी फैली हुई थी। इसके दक्षिण में कास्पियन के किनारे दहा घुमन्तू शक जाति थी, जिसने पीछे पार्थ जातिको जन्म दिया। मसागित् से पूरब यक्सर्त की ऊपरी उपत्यका के उत्तरी भाग, नरिम नदी और इसिकुल तक सकरौका (प्राग्-सइवङ) जाति रहती थी। सइवङ जन पीछे इसीसे निकला। अल्ताई में उस समय प्राग्-वूसुन जाति थी, जिससे पीछे वूसून जन पैदा हुआ। इससे पूरब ह्वाङहो नदी के पास कानसु तक यूची जन के पूर्वज रहते थे। तरिम-उपत्यका या सिङकियाङ में शकों की ही एक शाखा खश रहते थे, जो ई० पू० ७ वीं सदी से पहिले ही कराकुरम गिरिमाला को पारकर गिल्गित और कश्मीर में फैल गये थे। फिर आगे चलकर उन्होंने नेपाल तक सारे हिमालय को खशभूमि बना दिया। यह सारी शक-खश जाति ई० पू०.५ वीं सदी तक पित्तल-युग में थी। दारयोश के अभिलेख में तिग्राखौदा, हौमवर्क, त्याई नाम के तीन शक जनों का पता लगता है, किन्तु उनके स्थान के बारे में कुछ कहना मुश्किल है। मसागित् के पूरब में शकरौका का विचरण स्थान सप्तनद का पश्चिमी भाग था। यह जातियां अभी प्रागैतिहासिक काल में विचर रही थीं। इन के बारे में ग्रीक और ईरानी लोगों ने जो कुछ वर्णन किया है, उसके अतिरिक्त और पता नहीं लगता। इनमें से कुछ जातियों के बारे में निम्न बातें मालूम होती हैं—

(१) मसागित्[2]—मसागित् शब्द मसाग या महाशक से निकला है। सचमुच ही उस समय यह शक जनों में सबसे बड़ा जन था। दोन से लेकर यक्सर्त नदी के मध्य तक तथा खारेज्म में फैला यह महाजन महाशक कहे जाने का अधिकारी था। इनका

---

[1] Les Scythes,

[2] वही p.540

सबसे प्रिय हथियार कुल्हाड़ा था। दूसरे शकोंकी तरह यह घोड़े पर चढ़कर तीरका निशाना लगा सकते थे। तीर और भाले के फल ही नहीं इनके कुल्हाड़े और लम्बी सीधी तलवारें भी पीतलकी होती थीं। पशुओं का मांस और दूध इनका मुख्य भोजन था। तम्बू के डेरों को छोड़कर कोई इनका स्थायी निवास नहीं होता था। यह पक्के यायावर थे। इनकी स्त्रियां पुरुषों की भांति युद्ध में लड़ती थीं, और कितनी ही बार सेना का नेतृत्व भी करती थीं। यद्यपि महाशक पुरुष अलग अलग व्याह करते थे, किन्तु तो भी दूसरी स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रखने की स्वतन्त्रता थी। इससे मालूम होता है, कि अभी यह यूथ-विवाह से आगे नहीं बढ़े थे। वृद्ध-वृद्धाओं को मार डालने की प्रथा इनमें प्रचलित थी। एस्किमों लोगों में अभी हाल तक वृद्धा-वस्था में पहुंचने पर बुजुर्गों को मार डालनेका आम रवाज था, जिसका कारण उनका परिवार के ऊपर भारस्वरूप होना था। मसगित् या महाशक जन के साथ अखामनशी (ईरानी) शासकों का बराबर संघर्ष रहा, जिसके बारे में हम आगे कहेंगे। मसगित् के पश्चिमी कबीलों को सरमात भी कहते थे। बल्कि कभी कभी इस सारे कबीले का नाम मसगित्-सरमात बतलाया जाता है। यह बतला चुके हैं, कि स्त्रियों की प्रधानता के कारण ही इस कबीले का सर-मात या सर्व-मात नाम पड़ा। शायद यह यूनानियों का दिया हुआ नाम हो।

(२) सकरौका—महाशक जन से पूरब किन्तु यक्सर्त नदी के उत्तर-उत्तर सप्तनद भूमि के पश्चिमी भाग में यह घुमन्तू जन पशुचारण करता था। सकरौका वस्तुतः शक-ओक (शकस्थान) का ही परिचायक है। इनकी भूमि सोग्द के उत्तर में थी। यह एक समय दारयोश प्रथम की प्रजा थे। इनके दक्षिण में सोग्द लोग सोग्द (ज़रफ़शां) नदी से वक्षु नदी तक रहते थे। इनकी टोपी लम्बी नुकीली होती थी। कुछ विद्वानों का मत है, कि शकरौका और शक-हौमवर्क एक ही थे। दारयोश के समय यह यक्सर्त नदी के दाहिने किनारे पर बसते थे, किन्तु ई० पू० द्वितीय सदी में इनके ओर्दू खोजन्द की पश्चिमी पहाड़ियों में रहते थे। यह भी सन्देह किया जाता है, कि चीनियों ने जिन्हें सइवाङ लिखा है, वह वस्तुतः यही सकरौका थे।

(३) दाहै—यह संभवतः शकरौका और महाशक के बीच में यक्सर्त नदी के पहाड़ियों के निवासी थे, जो पीछे कास्पियन के किनारे ईरान की सीमा तक पहुँच गये। चीनियों ने इनका नाम अनसी बतलाया है। यह अच्छे घोड़सवार धनुर्धर होते थे। इन्हींके एक कबीले पारथी ने २४८-४७ ई० पू० में मामूली राज्य स्थापित करके अन्त में ईरानी-ग्रीकों के सारे राज्य को अपने कब्जे में कर लिया।

(४) खस—इस जनका ग्रीक या ईरानी स्रोतों से पता नहीं लगता। तालमी और दूसरे लेखकों ने हिमालय के खसों का वर्णन किया है, और हमारे लिये जो आज भी यह एक जीवित जाति है। गिल्गित-चित्राल में कसकर, कश्मीर में कश, काशगर में खशगिरि, और कश्मीर से पूरब नेपाल तक खस या खसिया जाति तथा नेपाली भाषा का दूसरा नाम खसकुरा (खस भाषा) यही बतलाते हैं। पित्तल युग में तरिम उपत्यका इनका निवास थी। हूणों से भगाये जाने के बाद जब तक कि लुघुयूची इनकी भूमि में छा गये, तब तक सारी तरिम-उपत्यका खसभूमि थी।

(५-६) वूसुन्, यूची—यह दोनों शक जातियाँ को आगे हम त्यानशान से ह्वाङहो तक देखेंगे। जिस काल के बारे में हम यहाँ लिख रहे हैं, उस समय चाहे जिस नाम से हों, इन्हीं के पूर्वज इस भूमि के स्वामी थे।

सारे उत्तरापथ के शक घुमन्तू पशुपाल थे, इसीलिये उनके अवशेषों में गाँवों, गढ़ों और मकानों का पता मिलना संभव नहीं है। लेकिन घुमन्तू होने पर भी शक सरदारों की कब्रें बहुत शान-शौकत से बनाई जाती थीं, जिनमें उनके उपयोग की कितनी ही सामग्री दफना दी जाती थी। ऐसी कब्रों से उनके बारे में बतलानेवाली कितनी ही सामग्री प्राप्त हो सकती है।

§२. अल्ताई के शक[१]

सोवियत पुरातत्त्व-वेत्ताओं की खोजों से अल्ताई के शकों के इतिहास पर बड़ी रोशनी पड़ रही है। क. मोइसेवा ने अपने एक लेख में[१] लिखा है :—

"साफ-सुथरी और बल खाती हुई सड़क अधिकाधिक ऊंचाई पर चढ़ती चली गई है। चट्टानी कगारों को पाकर मोटरों का एक दल इस सड़क पर से आगे बढ़ रहा है। सोवियत संघ की विज्ञान अकदमी और देश के एक सबसे बड़ी म्युजियम लेनिनग्राद एर्मीतेज ने पाज़ीरिक घाटी में पुरातत्व-सम्बन्धी खोज का संगठन किया है। पश्चिमी साइबेरिया में अल्ताई पहाड़ों के बीच स्थित यह स्तपीय घाटी चालू पथों और बस्तियों से बहुत दूर है।

ऐसा मालूम होता है, मानो अल्ताई पहाड़ों का सारा सौन्दर्य पाज़ीरिक घाटी के इस रास्ते में केन्द्रित हो गया है। सदा मौजूद रहने वाली बर्फ से ढँकी पहाड़ी चोटियां नीले आसमान की पृष्ठ-भूमि में बहुत भली लगती हैं। निस्तब्ध जंगलों के बाद चरागाहों की ताज़ा हरियाली आंखों के सामने आती है। कातूना नदी का हरा पानी धीमी गति से घाटी में से बहता पहाड़ के कगार पर पहुंचता है। वहां से वह जब नीचे गिरता है, तो फुहारों के सिवा और कुछ नहीं दिखाई देता। नदी के किनारे भेड़ों के रेवड़, ढोर तथा घोड़ों के दल चरते रहते हैं।

यह एक समृद्ध और सुन्दर प्रदेश है।

मोटरें इस समय चिबित दर्रे से गुज़र रही हैं, फिर पाज़ीरिक घाटी से जानेवाली घूमती हुई सड़क पर मुड़ जाती हैं। शोध-दल के मुखिया प्रोफेसर रुदेन्को और उनके सभी साथी खुदाई-स्थल पर पहुंचने और अपना काम शुरू करने के लिए उत्सुक हैं। उन्हें पांच बड़े पाज़ीरिक टीलों की खुदाई का काम पूरा करना है। दो की खुदाई और पुरातत्वविदों द्वारा उनका अध्ययन हो चुका है। प्राचीन शकों के जीवन और रीति-रिवाजों के बारे में यहां से अत्यधिक मूल्यवान् सामग्री मिली है।

आखिर महा उलगान नदी के पानी पर सूरज की किरनों की चमक दिखाई देती है। इसके एक बाज़ू भीमाकार कगारों के समूह से घिरी एक तलहटी है। यही पाज़ीरिक घाटी है। इसके रहस्यमय दिखाई पड़ने का कारण शायद यह है, कि यहां कोई नहीं रहता। यहां इस लिए कोई नहीं रहता, कि घाटी में पानी का एकदम अभाव है। यहां पानी कई किलोमीतर दूर से लाना पड़ता है।

पुरातत्वविदों के कैम्प के साथ निस्तब्ध घाटी में मानवीय आवाज़ों तथा हथौड़ियों, कुदालों और लट्ठों की ध्वनियां गूंजने लगती हे। टीलों की बगल में तम्बू लग जाते हैं, और अलावों का धुंआ उठने लगता है। खनक मुर्दों के प्राचीन टीलों पर से पत्थरों को हटाने लगते हैं।

---

[१] "सोवियत् भूमि" (दिल्ली १९५३)

टीलों पर छाई मिट्टी और लट्ठों के साफ हो जाने पर सामने बड़ी चतुराई से बने लकड़ी के तहखाने का दृश्य आ जाता है। यह तहखाना एक बड़े घर के समान मालूम होता है, सिवा इसके कि उसमें दरवाज़े या खिड़कियां नहीं हैं।

तहखाने को खोला जाता है, लेकिन कुछ दिखाई नहीं देता। हर चीज़ पर बर्फ की मोटी तह जमी है। टीले पर से कुछ भी हटाना कठिन है। चिर-आच्छादक बर्फ तहखाने और उसके भीतर की चीज़ों को हज़ारों सालों से सुरक्षित रखे हैं।

क्यों टीलों की प्रत्येक चीज बर्फ-बन्द दिखाई देती है? विद्वान् एक मुद्दत से इस सवाल में दिलचस्पी ले रहे हैं। अल्ताई पहाड़ों की भूमि सदा बर्फ से जमी नहीं रहती। फिर भी चट्टानी टीलों के नीचे उसे अक्सर वैसा देखा गया है। पूरी खोजबीन के बाद विद्वान् इस नतीजे पर पहुंचे हैं, कि टीलों में बर्फ का चिर-जमाव कृत्रिम रूप से पैदा किया गया है। उनका कहना है, कि टीलों का पतझड़ में निर्माण किया गया होगा, ताकि नमी और पाला टीलों में प्रवेश कर प्रत्येक चीज़ को बर्फ से ढँक दे। गर्मी के दिनों में तहखानों पर स्थित चट्टानों के कारण धूप उनमें प्रवेश नहीं कर पाती और बर्फ के पिघलने की नौबत नहीं आती। इस प्रकार बर्फ दीर्घकालीन युगों तक—पुरातत्वविदों द्वारा टीलों की निस्तब्धता के भंग होने तक—जैसी-की-तैसी बनी रही।

अब समस्या यह थी, कि टीलों से चीजों को कैसे हटाया जाय। इसका एक ही तरीका था, कि बर्फ को गर्म पानी से धीरे-धीरे पिघलाया जाय। बर्फ के पिघलने पर पुरातत्वविदों की आंखों में चमक दौड़ गई। कितनी अप्रत्याशित निधि यहां जमा थी? कारु कार्य युक्त चमड़े की चीजें, रेशम और फर से बने महिलाओं के समूचे कपड़े, और प्राचीन योद्धाओं के सिर पर पहनने के कवच। शोध-दल की कलाकार वेरा सुन्त्सोवा ने तुरन्त इन चीजों के चित्र बनाने शुरू कर दिए, ताकि चमड़े, फर और फैल्ट से बनी इन चीजों के सजीव रंगों का रिकार्ड रह सके। बर्फ के चिर-जमाव ने अब तक उन्हें अपने असली रूप में पूर्णतया सुरक्षित रखा था। लेकिन कौन जाने अब, प्रकाश में आने के बाद भी, उनकी पहले वाली शोभा बाकी रह सकेगी?

पुरातत्त्व के इतिहास में ऐसी एक भी मिसाल नहीं मिलती, जहां हजारों साल पुरानी चमड़े, फर, कपड़े या फैल्ट की चीजें सही-सलामत अवस्था में उपलब्ध हुई हों। मिस्र के शाहों के समाधि-स्थलों में अनेक सुन्दर चीजें मिली थीं। लेकिन, वहां के महीन कपड़ों और चमड़े तथा लकड़ी की चीजों को जैसे ही बाहर निकाला गया, वे पुरातत्वविदों के हाथ का स्पर्श पाते ही राख का ढेर हो गईं और उनके चित्र तक नहीं लिए जा सके। लेकिन यहां सभी चीजें इतने अच्छे ढंग से सुरक्षित थीं, कि वे आज भी उतनी ही मजबूत और सुन्दर दिखती थीं, जितनी कि पहले,—लगता था जैसे उन्हें अभी अभी बनाया गया है।

दृढ़ देवदार से बनी शव-पेटिका इतनी भारी थी, कि उसे बिना अलग अलग किए बाहर निकालना असम्भव था। सबसे पहले मजबूती से फिट किए हुए ऊपर के ढक्कन को हटाया गया। पुरातत्वविदों की नजर अल्ताई के प्राचीन निवासियों के शरीरों पर टिक गई। वे इतनी अच्छी हालत में थे, कि लगता था मानों उन्हें अभी कुछ ही दिन पहले शव-पेटिका में रखा गया हो। उनकी संख्या दो थी,—एक शक सैनिक शरीर दूसरा उसकी पत्नी।

सैनिक का रंग सांवला था और गालों पर हड्डियां अपेक्षाकृत ऊंची थीं। स्त्री का चेहरा सफेद और छोटा तथा हाथ कमनीय था। दोनों शरीर मसाले से सुरक्षित थे।

पुरुष की छाती और कंधों पर गोदना गुदा हुआ था, इसकी ओर ध्यान गया। बिल्ली की भांति मालूम होता परदार गिद्ध, और एक हिरन बाज जैसी चोंच वाला और बिल्ली की एक लम्बी दुम का चित्र गोदा हुआ था। यह कल्पनातीत पेचीदा डिज़ाइन सांवली चमड़ी पर साफ नजर आता था। प्राचीन शकों का ख्याल था, कि इस तरह के गोदने क्रूर पिशाचों से उनकी रक्षा करते हैं और साहस तथा ऊंचे वंश के सूचक हैं।

उपलब्ध चीजों की पूर्णतया जांच करने, उनका वर्णन करने तथा चित्र बनाने में कई दिन लग गए। इस बीच तहखाने में भी काम होता रहा। प्रतिदिन अधिकाधिक आश्चर्यकर चीजों का पता लगता था। फैल्ट का एक बहुत बड़ा कालीन मिला। इस पर सम्पन्नता और समृद्धि की देवी का रंगीन चित्र बना था, जो अपने हाथों में जीवन के वृक्ष को लिए थी। उसके सामने काले घुंघराले बालों से युक्त एक घोड़सवार खड़ा था। कालीन के चारों ओर तेज रंग के फूलों की किनारी थी। प्राचीन प्रथा के अनुसार घर की सबसे बढ़िया चीजों को भी मृत व्यक्ति के साथ दफना दिया जाता था।

नम्दे के बराबर में ही एक मखमली कालीन भी मिला, जो बहुत ही मूल्यवान कालीन सिद्ध हुआ। इस पर घोड़सवारों, शेर के शरीर और बाज़ की चोंच वाले विचित्र जन्तुओं और हिरन के चित्र बने थे। कालीन के डिजाइन से पुरातत्वविदों को शक योद्धा के दफनाने की तिथि का पता लगाने में मदद मिली। अल्ताई के मखमली कालीन पर अंकित घोड़-सवार की छवि ईरान की प्राचीन राजधानी के खण्डहरों में से मिली छवियों और मुहरों के डिजाइन से मिलती है। यह खण्डहर ईसवी सन् से पूर्व छटी या पांचवीं शती के हैं, अर्थात् आज से २४०० या २५०० साल पुराने हैं।

टीलों में चीनी कपड़े भी निकले। एक प्राचीन चीनी आईना तथा अन्य कितनी ही चीजें मिलीं, जिनसे पता चलता है, कि टीलों का निर्माण करने वाले अल्ताई के प्राचीन लोग ईसा से पहिले पांचवीं शती के निवासी थे।

अब तक हुई खुदाई से पुरात्वविदों को यह मालूम हो गया, कि कबर की दीवार के पीछे उन्हें घोड़े मिलेंगे। सचमुच उन्होंने एक लकड़ी की दीवार देखी, जिसके पीछे चौदह सुन्दर घोड़े दफनाए हुए थे। ये सब-के-सब, अपने शानदार साज़-सामान के साथ बहुत बढ़िया स्थिति में सुरक्षित थे। लकड़ी पर नक्काशी के काम और सोने के पत्तर से सुसज्जित ज़ीन, विविध रंगों से युक्त घोड़े के लबादे और चीनी रेशम की बनीं ओहारें सभी बहुत सुन्दर थीं।

घोड़ों के विशेषज्ञों को ऐसा मौका शायद ही मिलता है, जबकि उन्हें दो हजार साल से भी ज्यादा पहले मारे गए घोड़ों के सुनहरी ताम-झाम को अपने हाथ से स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हो। हां मारे गए, क्योंकि ये घोड़े युद्ध या किसी दुर्घटना में पड़कर नहीं, बल्कि योद्धा की कब्र में दफनाने के लिए मरे थे।

पाज़ीरिक टीलों की अन्तिम निधियों को बक्सों में पैक करने के बाद शोध-दल घाटी से विदा हो गया। प्राचीन शकों के मृत शरीरों को लेनिनग्राद के एर्मीताज म्युजियम के लिए रवाना कर दिया गया।

सोवियत विज्ञान ने अल्ताई के टीलों के रहस्यों का उद्‌घाटन कर लिया। सुदूर अतीत को उन्होंने फिर से हमारे लिए मूर्त कर दिया। पाज़ीरिक घाटी से मिली चीजें उन लोगों के जीवन, धार्मिक विश्वासों और कला की कहानी हमें बताती हैं, जो किसी जमाने में अल्ताई पहाड़ों में रहते थे। इन्हें देखने से पता चलता है, कि ये लोग चिरकाल से ही संस्कृति में हीन तथा अविकसित नहीं थे। इन चीजों से पता चलता है, कि शक जाति के लोगों की संस्कृति ऊंची थी। ये चीजें प्राचीन शकों के इतिहास में एक नया पृष्ठ जोड़ने में मदद देती हैं।"

स्रोत-ग्रंथ :

1. Les Scythes (F. G. Bergmann)

२. आर्खेआलेगिचेस्किइ ओचेर्क सेवेर्नोइ किर्गिज़िइ (अ. न. वेर्नूश्ताम्, फ्रुन्ज़े १६४१ ई०)

३. इस्तोरिको-कुल्तुर्नोये प्रोश्लोये सेवेर्नोइ किर्गिज़िइ पो मतेरियलाम् वोल्शवो चुइस्कओ कनाला (बेर्न्श्ताम, फ्रुन्ज़े १६४३)

४. अल्ताई व् स्किफ़स्कोये व्रेमियां (स. ब. किसेलेफ़), "वेस्लिक् द्रेव्नेइ इस्तोरिइ" 1947 II pp 157-72

५. श्रल्क० सोओब्० XIII, p112

६. "सोवियत् भूमि" (दिल्ली १९५३ ई०)

अध्याय २

हूण (३०० ई० पू०—३०० ई०)

शकों के उनके मूलस्थान से निकाल कर उसपर अपना अधिकार जमाना हूणों का काम था। यही नहीं, बल्कि मध्य एसिया के उत्तरापथ और दक्षिणापथ दोनों में जो आज सभी जगह मंगोलायित चेहरे देखे जाते हैं, यह भी हूणों की ही देन है। तुर्क हूणों ही से निकले और मंगोल भी हूणों ही की सन्तान हैं।

१. प्राचीन हूण

शकों की तरह हूण भी घुमन्तू पशुपाल थे। मध्य-एसिया में दोनों एक दूसरे के पड़ोसी थे। यूची के निकाले जाने से पहिले शक-भूमि त्यानशान् और अल्ताई से पूरब हूणों की गोचर-भूमि से मिल जाती थी। इसलिये अन्तिम संघर्ष के पहिले भी इनका कभी कभी आपस में युद्ध या वस्तुविनिमय के लिये संबंध हो जाया करता था। चीन के इतिहास से पता लगता है, कि वहां पर भी धातुयुगीन सांस्कृतिक विकास में पश्चिम से जानेवाली जाति का विशेष हाथ रहा। यह जाति शकों से संबंध रखनेवाली थी, इसमें सन्देह नहीं। चीनियों के उत्तर में रहनेवाले हूणों का भी यदि शकों के साथ संबंध रहा और उनके द्वारा वह धातुयुग में आये, तो कोई आश्चर्य नहीं है। तातार और तुर्क यह दोनों शब्द हूणों के वंशजों के लिये इस्तेमाल हुये हैं, लेकिन चीनी इतिहास में ईसा की दूसरी सदी के पूर्व तातार शब्द का पता नहीं है, और ५वीं सदी से पहिले तुर्क शब्द भी उनके लिये अज्ञात था। ग्रीक और ईरानी स्रोत जब सूखने लगते हैं, इसी समय से चीनी स्रोत हमारे लिये खुल जाते हैं। शकों के बारे में चीनी इतिहासकारों ने बहुत कुछ लिखा है। लेकिन अभी तक उसमें से थोड़ा ही युरोप की भाषाओं में आ सका है। रूसी विद्वानों का इस सामग्री को प्रकाश में लाने तथा व्यवस्थित रूप से छानबीन करने का काम बहुत सराहनीय है। किन्तु वह रूसी भाषा में बद्ध होने से हमारे लिये बहुत उपयोगी नहीं हुआ। नवीन चीन और सोवियत-रूस आज सारी शकभूमिका स्वामी हैं। वहां इतिहास के अनुसन्धान में जितनी दिलचस्पी दिखाई जाती है, उससे आशा है, कि उनके बारे में पुरातत्व-सामग्री तथा लिखित सामग्री से बहुत सी बातें मालूम होंगी। त्यानशान् (किरगिजिया) में नरीन् की खुदाई में शकों के विशेष तरह के वाण के फल तथा मट्टी के गोल कटोरे और दूसरी चीजें भी मिली हैं। इस्सि कुल सरोवर के किनारे त्यूप स्थान में भी इस काल की कुछ चीजें मिली हैं, जोकि मास्को के राजकीय ऐतिहासिक म्यूजियम में रखी हुई है। कजाक गणराज्य के बेरका-रिन स्थान में निकली कब्र में भी कुछ चीजें मिली हैं, जो ५वीं-४थीं सदी ई० पू० की मानी जाती है। वहीं कराचोको (इलीपत्यका) में खुदाई करने पर शकों के पीतल के बाणफल मिले।

मिनूसीन और उनके उत्तराधिकारियों से संबंध रखनेवाले हैं। शक-जनों के पीतल के हथियार पूर्वी युरोप (चेरतोम लिक) से बेकाल और मन्चूरिया की सीमा तक हैं, इनकी गोचर भूमि समय-समय पर बहुत दूर तक फैली हुयी थी। डाक्टर बेर्नश्ताम—सप्तनद, अल्ताई और त्यानशान के प्राचीन इतिहास और पुरातत्व के बड़े विद्वान—का कहना है, कि ई० पू० ६वीं शताब्दी में इस सारे इलाके में घुमन्तू शक जनों का निवास था। यह भी पता लगा है, कि शकों ने कुछ खेती का भी काम सीखा था, तब भी वह प्रधानतया पशुपाल थे[1]।

चीन में भी अपने इतिहास को बहुत अधिक प्राचीन दिखलानेका आग्रह रहा है, किन्तु चीनका यथार्थ इतिहास ई० पू० छठीं सदीसे शुरू होता है। उसके पहिलेकी सारी बातें पौराणिक जनश्रुतियोंसे अधिक महत्व नहीं रखतीं। चीनका प्रथम ऐतिहासिक राजवंश चिन (२५५-२०६ ई० पू०) है। इस वंशके संस्थापक चिन-शी-ह्वाङ-ती (२५५-२५० ई० पू०) ने बहुत सी छोटी-छोटी सामन्तियोंमें बंटे चीन को एक राज्यमें संगठित किया। इससे पहिले उत्तरके घुमन्तू हूण चीनको अपने लूटपाटका क्षेत्र बनाये हुए थे। यह अश्वारूढ़, मांसभक्षक, कूमिशपायी लड़ाके बराबर अपने दक्षिणके चीनी गांवों और नगरोंपर आक्रमण किया करते थे। उनकी संपत्ति घोड़ा, ढोर और भेड़ें थीं, और कभी कभी ऊंट, गदहे, खच्चर भी इनके पास देखे जाते थे। वर्तमान मंगोलिया, मंचूरिया तथा इनके उत्तरके साईबेरियाके भूभाग इनकी चरभूमि थे। हूण कबीलोंको चीनी ह्युङ्-नू कहते थे। तुर्क, किरिगिज, मगयार (हुंगर) आदि पीछे इनके ही उत्तराधिकारी हुए। ह्युङ्-नूके अतिरिक्त चीनी इतिहास एक और भी घुमन्तू मंगोलायित जनका पता देता है, जिसको तुङ्-हू कहते थे। इन्हींके उत्तराधिकारी पीछे कित्तन (खिताई), मंचू आदि हुए। विशाल हूण जनके बहुत छोटे छोटे उपजन थे, जिनके अपने अपने सरदार हुआ करते थे। हमारे यहां तथा दूसरे देशोंमें भी ओर्दू (उर्दू) शब्द सेनाका पर्याय माना जाता है। इन घुमन्तुओंमें एक पूरे जन—जिसमें उसके सभी नरनारी बाल-वृद्ध सम्मिलित थे—को ओर्दू कहा जाता था। इनका शासन जनतांत्रिक था, और सरदारको जनके ऊपर अपना स्वतंत्र दर्जा कायम करनेका अधिकार नहीं था। हूण बच्चे जहां बचपन हीसे पशुओं का चराना सीखते थे, वहां उससे भी पहिले वह छोटी छोटी धनु ही से पहिले चूहेका शिकार करते, फिर सियार और खरगोशका। नंगी पीठ पर घोड़सवारी करना भी बचपन ही से इन्हें सिखाया जाता था और अधिक क्षमता प्राप्त करनेपर वह घोड़े पर बैठे-बैठे धनुष चलाने लगते थे। दूध और मांसका भोजन तथा चमड़ेकी पोशाक इन्हें अपने पशुओंके ऊपर निर्भर करती थी। ऊनके नम्दे भी यह बना लेते थे। जवानों अर्थात् योद्धाओंका इनके यहां बहुत मान था, और खानपानमें सबसे पहिले उनकी ओर ध्यान दिया जाता था। बूढ़े और निर्बल सिर्फ जूठ-कांठ पानेके अधिकारी थे। मरे पिताकी रखी या छोड़ी हुई स्त्रियोंके पति बेटे हुआ करते थे। छोटे भाईकी विधवा भी दूसरे भाईकी पत्नी बनती थी। शकों या इनकी स्थितिमें रहनेवाले दूसरे जनोंकी तरह लड़ाईसे पीठ दिखाकर भागना इनके यहां बुरा नहीं समझा जाता था, बल्कि वह युद्ध-कौशलका एक अंग था। दया-मायाकी इनके यहां कम गुंजाइश थी। इनके हथियार धनुष-वाण, तलवार और छुरे थे। सालमें तीन बार इनकी जन-सभा होती थी, जबकि सारा ओर्दू एकत्रित होकर जहां

[1] आर्खे० ओचेर्क० पृष्ठ २४-२५

धार्मिक और सामाजिक कृत्योंको पूरा करता, वहां साथ ही राजनीतिक और दूसरे झगड़े भी मिटाता। बहुत से सरदारोंके ऊपर निर्वाचित राजा को शान्यू कहा जाता था।

अन्दाज लगाया जाता है, कि १४००-२०० ई० पू० तक चीनमें उत्तरके इन घुमन्तुओंकी लूटपाट बराबर होती रहती थी। ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दीमें सान्-शी, शेन्-शी, ची-ह्ली में इनके ओर्दू विचरा करते थे। इसी समय ह्वाङ-हो नदीके मुड़ाव पर भी इनका ओर्दू रहा करता था, जिसके कारण आज भी उस प्रदेशको ओर्दुस् कहते हैं। चिन-शी-ह्वाङ ती (२५५-२०६ ई० पू०) ने चीनके बड़े भागको एक राज्यमें परिणत कर सोचा, कि हूणोंकी लूटमारसे कैसे चीनकी रक्षा की जाय। इसके लिये उसने चीनकी महान् दीवारके कितने ही भागको एक रक्षाप्राकारके तौर पर निर्मित कराया, और ओर्दू तथा शान्-सी आदि प्रदेशोंमें घुस आये हूणोंको निकाल कर उत्तरकी ओर भगा दिया। समुद्र तटसे पश्चिममें लन्चाउ तक की इस दीवारको बनानेमें ५ लाख आदमी मर-मर कर वर्षों तक कोड़ोंके नीचे काम करते रहे। निर्माण-कालसे लेकर हजार वर्षों तक उत्तरके घुमन्तुओं और चीनका जो खूनी संघर्ष होता रहा, उसके प्रमाण स्वरूप लाखों खोपड़ियां दीवारके किनारे जमा होती गईं। चीनके उत्तरमें जहां हूणोंसे मुकाबिला करना पड़ता था, वहां पश्चिममें यूची-पूर्वज शक भी कम खून-खराबी नहीं करते थे।

२. हूण-राजावलि

१.	तूमन शान्-यू	२५० ई० पू०
२.	माउदुन्, तत्पुत्र	१८३ ,,
३.	ची-यू, तत्पुत्र	१७२ ,,
४.	चू-चेन्, तत्पुत्र	१७२-१२७ ,,
५.	इचिसे, तद्भ्रात	१२७-११७ ,,
६.	अच्वी	११७-१०७ ,,
७.	चान्-सीलू	१०७-१०४ ,,
८.	शूली-हू	१०४-१०३ ,,
९.	शूती-हू	१०३-९८ ,,
१०.	हूलू-हू	९८-८७ ,,

(१) तूमन शान्-यू (२५० ई० पू०)[१]—जिस समय चिन-वंशके नेतृत्वमें चीन एकता बद्ध हो रहा था, उसी समय (२५० ई० पू०) हूणोंमें भी एकता पैदा हुई। चीन सम्राट्की मृत्युके बाद जो अराजकता पैदा हुई, उससे हूणोंके प्रथम शान्यू तूमन ने लाभ उठाया और डेढ़ हजार बरस पीछे होनेवाले अपने योग्य उत्तराधिकारी चिंगिज खान्की तरह ओर्दू तथा दूसरे प्रदेशोंपर लूटमार की, और ओर्दूस्को फिरसे अपने जनकी गोचर-भूमि बना लिया। उत्तरसे हूण आकर अब फिर पश्चिमी कान्सूके निवासी यूचियोंके पड़ोसी बन गये। तूमन्का प्रभाव अपने जनपर बहुत था, किन्तु हूणोंका सबसे बड़ा शान्यू उसका पुत्र माउदुन हुआ। बुढ़ापेमें पिताने अपनी

[१] A thousand years of Tatars (E. H. Parker, Shanghai 1895)

तरुणी पत्नीके फेरमें पड़कर ज्येष्ठ पुत्र माउ-दुनको वंचित करके छोटेको राज देना चाहा। माउ-दुनको रास्तेसे अलग करनेके लिये उसने अपने पश्चिमी पड़ोसी (यूची लोगोंके) पास अमानत रखा और फिर उनपर आक्रमण कर दिया। जिसका अर्थ यही था, कि यूची माउदूनको मार डालें। लेकिन, माउ-दून एक तेज घोड़ेपर चढ़कर भाग निकला। पिताने प्रसन्नता प्रकट करनेके लिये उसे दस हजारी सरदार बना दिया; किन्तु, माउदून अपने पिताकी करनीको भूलनेवाला नहीं था। कहते हैं, माउदूनने मिङली (गानेवाले वाण) का आविष्कार किया। वह शब्दवेधी वाणमें अभ्यस्त था, एक दिन उसने बूढ़े पिताको वाणका लक्ष्य बनाकर बदला लिया।

(२) माउदून (१८३ ई० पू०)[1]—शान्-यू बनते ही माउदूनने अपने पिताके परिवारको कत्ल कर डाला और केवल पिताकी एक स्त्रीको अपने लिये जीवित रहने दिया। इस समय तक चीन और यूची ही नहीं, बल्कि पुराने तुंगुस (तुङ हू, ह्वान) भी अपने जनका एक बड़ा संगठन कर चुके थे। हूणोंकी उनके साथ भी लड़ाई होने लगी। गोबीकी बालुका भूमिके बीचमें दोनों जनोंका एक भीषण संघर्ष हुआ। वह माउदूनका मुकाबला कर बुरी तौरसे हारे। बहुतसे तुंगुसोंको हूणोंने अपना दास बनाया। उनमेंसे कुछ भागकर मंगोलियाके उत्तर-पूर्वमें जानेमें सफल हुए, जो आगे धीरे धीरे शक्ति-संचय करके फिर हूणोंके प्रतिद्वन्द्वी बन गये। माउदून एक चतुर सेनानायक था। जनके संगठन और शासनमें भी उसने वैसी ही प्रतिभा दिखलाई। उसने अपने तीन प्रतिद्वन्दी जनोंको परास्त कर हूणोंकी शक्तिको बढ़ाया। उसे कोरोस, दारयोश्, सिकन्दरकी श्रेणीका विजेता माना जा सकता है। तुंगुसोंको उसने परास्त करके उत्तरसे अपनेको सुरक्षित कर पश्चिमी पड़ोसी यूचियोंकी खबर लेनेकी ठानी। यूची भी बड़े वीर योद्धा थे, हूणोंकी तरह ही वह घुमन्तू पशुपाल तथा घोड़सवारीके साथ धनुष चलाना जानते थे। यह बहुत संभव है, हथियार और युद्धकी शिक्षामें हूणोंके गुरु इन्हीं शकोंके पूर्वज थे। यूची माउ-दूनकी सेनासे कितने ही समय तक मुकाबिला करते रहे, किन्तु अंतमें (१७६ या १७४ ई०पू०) उन्हें हूणोंके सामने पराजय स्वीकार कर कोकोनोर और लोबनोरकी अपनी पितृभूमिको छोड़नेके लिये मजबूर होना पड़ा। माउदूनने चीन-सम्राट् वेन्-ती (१६९-५६ ई० पू०) को लिखा था—"जितनी जातियां (तातार) घोड़ेपर चढ़े धनुषको झुका सकती हैं, उन्हें एकताबद्ध कर मैंने एक राज्य कायम कर लिया। यूचियोंको और तरबगताइयोंको भी मैंने नष्ट कर दिया। लोबनोर तथा आसपासके २६ राज्य, अब मेरे हाथमें हैं। अगर तुम नहीं चाहते, कि ह्यु ङ-नू महादीवारको पार करें, तो तुम्हें चीनियोंको महादीवारके पास हर्गिज नहीं आने देना चाहिये। साथ ही मेरे दूतको नजरबन्द न कर तुरन्त मेरे पास लौटा देना चाहिये।"

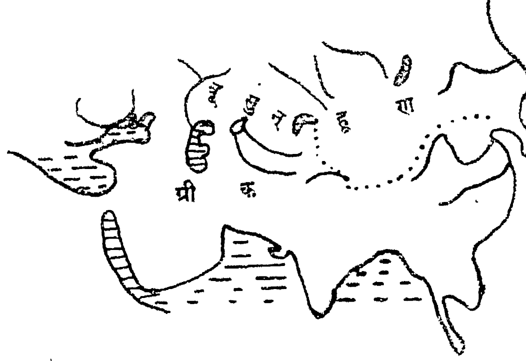
(क) शासन आदि—

माउदूनका राज्य पूरबमें कोरियासे लेकर पश्चिममें बल्काश तक और उत्तरमें बैकालसे दक्षिणमें क्विन्लन् पर्वतमाला तक फैला हुआ था। उसके पिताके समय हूण राज्य केवल अपने कबीले तक सीमित था और दक्षिणमें चीनके भीतर हूण जब तब लूटमार भर कर लिया करते थे। इतने बड़े राज्यके संचालनके लिये पुरानी व्यवस्था उपयुक्त नहीं हो सकती थी, इसलिये माउदूनको

---

[1] वहीं p. 347, वेर्नश्ताम् (आर्खे० ओचेर्क० पृ० ४२)

नई व्यवस्था कायम करनी पड़ी। यह स्मरण रहना चाहिये, कि हूणोंका समाज पितृसत्ताक था, अभी वहां सामन्तशाही नहीं फैली थी। चीनमें किसान अर्धदास और दास जैसे थे। उनके बाल-बच्चे सामन्तोंकी चल सम्पत्ति थे। हूण-शासनयन्त्र निम्न प्रकार था—



१२. माउदुनका हूणसाम्राज्य (१८३ ई०)

(१) शान्-यू—राजावाची चीनी शब्द शान्-यूका हूण भाषाका रूप जेंगी कहा जाता है। शायद इसीका रूपान्तर चंगीज हुआ। राजाकी पूरी उपाधि थी तेंग्री-कुदू शान्-यू (देव-पुत्र महान्)। आज भी मंगोल और तुर्की भाषामें देवताका वाचक तेंग्री शब्द मौजूद है। शान्-यू प्रभावशाली योद्धा और नेता होता, लेकिन उसके ऊपर हूण-ओर्दूका नियंत्रण रहता था।

(२) दूगी—इसका अर्थ है धर्मात्मा या न्यायी। शान्-यूके नीचे दो दूगी हुआ करते थे, जिनमें एकको पूर्व-दूगी और दूसरेको पश्चिम-दूगी कहते थे। पूर्व-दूगीका दर्जा ऊंचा समझा जाता था, और आमतौरसे वह युवराज माना जाता था। हूण साम्राज्यके पूर्व भाग पर पूर्व-दूगीका शासन था और पश्चिम पर पश्चिम-दूगीका। राज्यके मध्य-भाग अर्थात् हूण-जनक्षेत्र पर स्वयं शान्-यू सीधे शासन करता था।

(३) रुक-ले (कुनलू)—यह भी दक्षिण और वाम दो होते थे, जिनमें वामका दर्जा ऊंचा था।

(४) इनके नीचे वाम और दक्षिणके दो सेनापति होते थे।

(५) इनके नीचे वाम दक्षिण के दो दीवान होते थे। आगे भी दो वाम दक्षिण कुतलू जैसे दसहजारी और हजारी तकके चौबीस सैनिक अधिकारी होते थे। हूण-शासनमें सैनिक-असैनिक अधिकारका भेद नहीं था।

इनके अतिरिक्त हूण-शासकों की उपाधि, शृंगोंसे समझी जाती थी, जो शायद समय समय पर उनके शृंगार होते हों। दोनों दूगी और दोनों रुकले चतुःशृंग कहे जाते थे। उनके नीचे षट्-शृंग अधिकारी थे। दोनों कुतलू शासन-प्रबंधकको देखते थे। दूगी आदि २४ श्रेष्ठ अधिकारियोंके अपने क्षेत्र थे, जिनके भीतर ही वह अपने ओर्दू तथा पशुओंको लेकर विचरण कर सकते थे। उनको अपने हजारी, शतिक और दशिक आदि अफसरोंके नियुक्त करनेका अधिकार था।

शान्-यूकी रानीकी पदवी इन्-ची (येङ-ची) थी। हूणोंके तीन-चार ऊंचे कुलोंमें से उसे लिया जाता था। शान्-यूका अपना कुल बहुत ही सम्मानित समझा जाता था। हूणोंने जो श्रेणियां और पदवियां स्थापित की थीं, वह तुर्कों और मंगोलोंके समय तक मानी जाती रहीं। तैमूरने भी हजारी, पंच-हजारी, दस-हजारी दर्जे स्वीकार किये थे, जो कि उसके वंशज बाबरके साथ पीछे भारतमें आये।

(ख) नववर्षोत्सव—

यह उत्सव हूणोंका सबसे बड़ा राष्ट्रीय मेला था, जिसे शान्-यू बड़ी शान- शौकतसे मनाता था। पितरों, तिङरी (देव), पृथिवी और भूत-प्रेतोंके लिये बलि इसी समय दी जाती थी। शरदमें दूसरा महोत्सव मनाया जाता था, जिसमें ओर्दूकी जनगणना, सम्पत्ति और पशुओं पर कर लगानेका काम किया जाता था। हूण-जनोंमें अपराध कम था और उसके दण्ड देनेमें देरी नहीं की जाती थी। वह दोनों महोत्सवोंके समय किया जाता था। महोत्सवमें घुड़-दौड़, ऊंटोंकी लड़ाई तथा दूसरे कितने ही सैनिक और नागरिक मनोरंजनके खेल होते थे। उनके अपराध दण्डमें मृत्यु-दण्ड तथा घुटना तोड़ देना भी शामिल था। सम्पत्तिके विरुद्ध अपराध-का दण्ड था सारे परिवारका दास बना दिया जाना।

नववर्षोत्सव और शरदोत्सव दोनों सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक महा-सम्मेलन थे। इनके अतिरिक्त भी शान्-यूको कुछ धार्मिक कृत्य रोज करने पड़ते थे। दिनमें शान्-यू सूर्यको नमस्कार करता और सन्ध्याको चन्द्रमाकी पूजा और नमस्कार। चीनियोंकी भांति हूण भी पूर्व और वाम दिशाको श्रेष्ठ मानते थे। शान्-यू सभामें उत्तरकी ओर मुंह करके बैठता, जब कि चीन सम्राट का बैठना दक्षिणाभिमुख होता था। चांद्रमासकी तिथियोंको प्रधानता दी जाती थी। सेना अभियानके लिये शुक्लपक्ष और वहांसे लौटनेके लिये कृष्ण-पक्ष प्रशस्त माना जाता था। लूट में सम्पत्ति और बंदी हुए दासोंका स्वामी वही होता था, जिसने दुश्मनसे उन्हें छीना। दुश्मन का सिर काट लेना, बहुत वीरता मानी जाती थी।

जान पड़ता है, शकोंका प्रभाव हूणों पर भी पड़ा था। शकोंकी भांति ही हूणोंमें भी मृत सरदारकी बहुत सी मूल्यवान सम्पत्ति कब्रमें गाड़ दी जाती थी, समाधिके ऊपर कोई स्तूप या वृक्ष आदि चिन्ह नहीं लगाया जाता और न मरेके लिये बहुत रोना-धोना किया जाता था।

(ग) युद्ध—

हूण पशुजीवी ही नहीं आयुध-जीवी भी थे। लूटमार उनका पेशा था। उनकी लड़ाईकी एक बड़ी चाल थी, दुश्मनके सामने पराजित होनेका अभिनय करके भाग पड़ना। जब दुश्मन उनका पीछा करते कुछ दूर निकल जाता, तो सुशिक्षित सुसंगठित जहां-तहां छिपे हूण दस्ते शत्रुकी पीठ पर आक्रमण कर देते। माउदूनने चीनके युद्धमें एकबार इस तरह ३ लाख २० हजार चीनी सैनिकोंको अपने जालमें फंसा लिया था। चीन सम्राट् अपनी सेनाके साथ आधुनिक ता-तुङ-फू (शेनसी) से एक मील दूर एक दृढ़ दुर्गबद्ध स्थान पर पहुंच चुका था, लेकिन उसकी अधिकांश सेना पीछे रह गई थी। माउदून अपने ३ लाख चुने हुए सैनिकोंके साथ चीनियों पर टूट पड़ा और सम्राट् घिर गया। सेना ७ दिन तक घिरी रही। बड़ी मुश्किलसे चीनी अपने सम्राट्को घेरेसे निकाल पाये। समझौतेमें उन्हें कितनी ही अपमानजनक बातें करनी पड़ीं। माउदूनके घेरेका

एक कोना ढीला था। इस निर्बल कोनेसे सम्राट् सेनाके साथ भागनेमें समर्थ हुआ। माउदूनने पीछा नहीं किया। चीनको अपनी एक राजकुमारी, रेशम तथा बहुमूल्य धातु, रत्न, चावल, अंगूरी शराब तथा बहुत तरहके खाद्यकी भेंट देनेके लिये मजबूर होना पड़ा। इस तरह चीनी राजकुमारियोंका शक्तिशाली घुमन्तू राजाओंसे व्याह करनेकी प्रथा चली। समझा गया, राजकुमारीका लड़का मातृकुलका पक्षपाती होगा।

चीन सम्राट् हुङ-तीके मरनेके बाद उसकी विधवा रानी कौ-ठू अपने पुत्र (वेन्-ती) को गद्दी पर बैठा बारह साल (१८७-७६ ई० पू०) तक स्वयं राज करती रही। हूणोंमें पितृ-सत्ताक समाज होनेके कारण कुछ सुभीता था, जिसके कारण कितने ही चीनी भाग कर उनके राज्यमें चले जाते थे। ऐसे ही किसी दरबारीकी बातमें पड़कर माउदूनने रानीको संदेश-पत्र भेजकर अपने हाथ और हृदयको देनेका प्रस्ताव किया। दरबारियोंने युद्धकी आग भड़कानेकी कोशिश की, लेकिन किसी समझदारने रानीको समझाया—"अभी भी लड़के हमारी सड़कों पर सम्राट्के भागनेकी गीत गाते फिरते हैं।" रानीने बहुत नरम सा पत्र लिखा—"मेरे दांत और केश परम-भट्टारक (आप) के प्रेमको प्राप्त करनेके योग्य नहीं हैं।" साथ ही उसने दो राजकीय रथ, बहुत से अच्छे अच्छे घोड़े तथा दूसरी भेंटें भेजीं। माउदून इससे कुछ लज्जित सा हुआ और उसने बहुत से हूणी घोडे भेजकर क्षमा मांगी। माउदूनने बहुत लम्बे काल (३६ साल) तक राज्य किया।

(३) **चो-यू**[1] (**कूयुक् १६२ ई० पू०**) यह माउदुनका पुत्र था, जिसे चीनी लेखक लाऊशान् शान्-यू (महान् वृद्ध जेङ-गी) के नामसे याद करते हैं। सम्राट्ने शान्-यूके लिये नई राजकुमारी भेजी, जिसके साथ वहांसे एक हिजड़ा (ख्वाजासरा) भी आया, जो जल्दी ही शान्-यूका विश्वासपात्र मंत्री बन गया। चीनी भेंटों, राजकुमारियोंके प्रभावमें आकर हूण ज्यादा विलासी होते जा रहे थे। ख्वाजासरा इसे पसंद नहीं करता था। उसने हूणोंको समझाया—"तुम्हारे ओर्दूकी सारी जनसंख्या मुश्किलसे चीनके कुछ परगनोंके बराबर होगी, किंतु तब भी तुम चीनको दबानेमें समर्थ होते रहे। इसका रहस्य है, तुम्हारा अपनी वास्तविक अवश्यकताओंके लिये चीनसे स्वतंत्र होना। मैं देखता हूँ, कि तुम दिन पर दिन अधिक और अधिक चीनी चीजोंके प्रेमी बनते जा रहे हो। सोच लो, चीनी सम्पत्तिका ५वां भाग तुम्हारे सारे लोगोंको पूरी तौरसे खरीद लेनेके लिये काफी है। तुम्हारी भूमिके कठोर जीवनके लिये रेशम और साटन उतने उपयुक्त नहीं हैं, जितना कि ऊनी नम्दा। चीनके तुरन्त नष्ट हो जाने वाले व्यंजन उतने उपयोगी नहीं हो सकते, जितनी तुम्हारी कूमिश और पनीर।" वह बराबर हूणोंको इस तरह सजग करता रहा। चीनके जवाबमें शान्-यूकी ओरसे जो चिट्ठी उसने लिखवाई थी, वह चर्मपत्रकी लम्बाई चौड़ाईमें ही अधिक बड़ी नहीं थी, बल्कि उसमें शान्-यूकी अधिक लम्बी उपाधि भी लिखी गयी थी—"हूणोंके महान् शान्-यू जेंगी, और पृथिवीके पुत्र, सूर्य-चन्द्र-समान आदि" आदि।

चीनी राजदूतने एक बार हूणोंमें वृद्धोंका सम्मान नहीं होता कहकर ताना मारा था, इसपर उसने जवाब दिया—"जब चीनी सेना लड़ाईके लिये निकलती है, तो मैं नहीं देखता, कि उनके संबंधी अपनी सेनाके लिये कितनी ही अच्छी चीजोंसे अपनेको वंचित न करते हों। हूणोंका व्यवसाय

[1] A thousand years of Tatars, p. 348

है युद्ध। बूढ़े और निर्बल युद्ध नहीं कर सकते, इसीलिए सबसे अच्छा आहार लड़नेवालोंको दिया जाता है।" "लेकिन पिता और पुत्र एक ही तम्बूको इस्तेमाल करते हैं, पुत्र अपनी सौतेली मांसे ब्याह करता है। भाई अपनी भ्रातृ-बधुओंके साथ कोई विशेष विचार नहीं रखता।"...यह कहने पर उसने कहा—"हूणोंका रवाज है, अपनी भेड़ों और ढोरोंके मांसको खाना और दूधको पीना। वह ऋतुके अनुसार अपने पशुओंको लेकर भिन्न-भिन्न चरभूमियोंमें घूमा करते हैं। हर एक हूण पुरुष दक्ष धनुर्धर होता है, शांतिके समय भी उसका जीवन सरल और सुखी होता है। उनके शासनके नियम बिल्कुल सरल हैं। शासक और जनताका संबंध उचित और चिरस्थायी है।...यद्यपि पुत्र या भाई अपने पिता या भाइयोंकी स्त्रियोंको रख लेते हैं, किंतु इसका कारण यही है, कि अपने खानदानको सुरक्षित रख सकें। चीनी विचारानुसार यह पाप हो सकता है, लेकिन इससे कुल और वंशकी रक्षा होती है।" यह कहते हुए यह भी कहा—"लेकिन चीनमें दिखावाके लिये चाहे पुत्र या भाई ऐसे पापके भागी न होते हों, किंतु इसका परिणाम होता है विद्रोह, शत्रुता और परिवारका ध्वंस। तुम्हारे यहां आचार और अधिकारकी ऐसी गंदी व्यवस्था है, जिसने एक वर्गको दूसरे वर्गके खिलाफ खड़ा कर दिया है, एक आदमी दूसरे आदमीके विलासके लिए दास बननेके लिये मजबूर है। आहार और कपड़ा केवल खेतके जोतने और रेशम-कीट पालनेसे मिलता है। वैयक्तिक सुरक्षाके लिये प्राकार-बद्ध नगर बनाना पड़ता है। संकटके समय तुम्हारे यहां कोई नहीं जानता, कि कैसे लड़ना चाहिये, और शांतिके समय तुम्हारा हर एक आदमी ऐड़ीसे चोटी तक खून पसीनेको एक करते जीता है। अपने ढकोसलोंकी बढ़-बढ़कर बात मेरे सामने मत करो।"...फिर उसने कहा—"चीनी दूत, तुम्हें बोलना कम चाहिये और अपनेको इतने ही तक सीमित रखना चाहिये, जिसमें अच्छे किसम और अच्छे नापका रेशम, चावल, शराब आदि हमारी वार्षिक भेंटें भेजी जायें। यदि भेंटकी चीजें संतोषजनक हों, तो बात करना बेकार है। हम लोग बात बिल्कुल नहीं करेंगे। यदि हमें संतुष्ट नहीं करोगे, तो हम तुम्हारी सीमाओं पर आक्रमण करेंगे।"

७ साल राज करनेके बाद चीयूको चीनके ऊपर आक्रमण करनेकी अवश्यकता पड़ी। वह १ लाख ४० हजार हूण सेनाके साथ लूटपाट करता वर्तमान सियान्-फ़ु तक चला आया और बड़ी भारी संख्यामें लोगों, पशुओं और धन-सम्पत्तिको अपने साथ ले गया। चीनी बड़ी तैयारी करनेमें लगे थे, किंतु तब तक चीयू अपना काम करके लौट चुका था। कई साल तक यह आतंक छाया रहा, फिर इस बात पर सुलह हुई—"महा-दीवारसे उत्तरकी सारी भूमि धनुर्धरों (हूणों) की है, और उससे दक्षिणकी भूमि टोपी और कमरबन्द वालोंकी।"

यूची-पलायन—चीयूकी सबसे बड़ी विजय थी, कान्सूसे यूची शकोंको भगाना। माउदुन उन्हें सिर्फ परास्तभर कर पाया था। उस समय लोबनोरसे ह्वाङहोके मुड़ाव तक यूचियोंकी विचरण-भूमि थी। लोबनोरसे उत्तर-पूरब स्इगाङ(शक) रहते थे। चीयूने अपनी सुसंगठित सेनासे यूचियों पर लगातार ऐसे जबर्दस्त आक्रमण किये, जिसके कारण यूचियोंकी भारी क्षति हुई और १७६ या १७४ ई० पू० में वह अपनी भूमि छोड़कर पश्चिमकी ओर भागनेके लिये मजबूर हुए। स्इगाङकी भूमिमें थोड़ा जानेके बाद उनका एक भाग तरिम-उपत्यकाकी ओर चला गया और दूसरा इली-उपत्यकाके रास्ते आगे बढ़ा—पहले भागको लघु-यूची कहते हैं और दूसरेको महायूची। लघु यूचियोंके आनेसे पहले तरिम-उपत्यका उन्हीं खसों (कशों) की थी, जो कि उस समय भी कश्मीर

और पश्चिमी हिमालय तक फैले हुए थे। अब कुछ शताब्दियोंके लिये तरिम-उपत्यका लघु-यूचियों की हो गई। महायूचियोंने सइवङको खदेड़ कर उनकी जगह अपने हाथमें ले ली। सइ-वाङ अपने पश्चिमी पड़ोसी तथा त्यानशान और सप्तनद के निवासी यूसुन पर पड़े। महायूचियोंको हूणोंने यहां भी चैनसे नहीं रहने दिया और वह बराबर पश्चिमकी ओर बढ़ते हुए सिर-दरिया और अराल समुद्र तक फैल गये। फिर वहांसे दक्षिणकी ओर घूमे। कुछ समय तक उनका केन्द्र वक्षु नदीके उत्तरमें था। इसी समय ग्रीको-बाख्त्री राजा हेलियोक मरा था। कास्पियन तटवासी पार्थियों और सोग्द-उपत्यकामें पहुंचे यूचियोंने उसके राज्यको आपसमें बांटकर इस यवन-राजवंशको खतम कर दिया। आगे १२८ ई० पू० में, जब चाङक्यान् बाख्तरमें पहुंचा, तो उस समय वह यूचियोंका केन्द्र बन चुका था। आगे हम बतलायेंगे, कि कैसे यूची अपनी शक्तिको आगे बढ़ाते हुए भारत तक पहुंचे।

§३. पीछेके हूण शासक

(४) चूचेन=चीयू (१७२-१२७ ई० पू०)—अपने बापके स्थान पर शान्-यू बना। चीनी हिजड़ा अब भी प्रभावशाली मंत्री था। चीयू के पास भी चीनसे नई राजकुमारी आई। तत्कालीन चीन सम्राट् वू-तीने उसे धोखेसे पकड़ना चाहा, भारी युद्ध हुआ, अन्तमें शान्यू जालमें एक बार आकर भी निकल भागनेमें समर्थ हुआ। अब चीन और हूणोंके निरंतर संघर्ष होने लगे और चीनी सीमांत हूणोंकी आक्रमण-भूमि बना रहा।

(५) ईचिसे[1] (१२७-११७ ई० पू०)—यह ५वां शान्-यू चीयेका भाई था। इसने भी चीन सीमांत पर लूटमार जारी रक्खी, लेकिन वह बहुत दिनों तक चल नहीं सकी। वूती बड़ा शक्तिशाली सम्राट् था। उसने हूणोंका बल तोड़नेके लिये बहुत भारी तैयारी की। इसकी बड़ी बड़ी सेनाओंने एकके बाद हूण-भूमिपर लगातार आक्रमण किये, लाखों हूणोंको बेदर्दीसे मारा और उनकी भेड़ोंको बड़ी संख्यामें पकड़ लिया। इस प्रकार हूण उत्तरकी ओर भगाये जाते रहे। यूचियोंकी भूमि (कान्सू) हूणोंसे खाली करा ली गई। कान्सूमें ही एक नगर चाङ-ये था, जहां कोई हूण सरदार रहता था। इस नगरके विजयके समय चीनी सेनाको एक सोनेकी मूर्ति मिली, जिसकी हूण पूजा किया करते थे। अंदाज लगाया जाता है, कि यह "सुवर्ण-पुरुष" बुद्धकी प्रतिमा थी। तरिम-उपत्यकामें बुद्ध-धर्म अशोकके समयमें पहुंचा बतलाया जाता है, हो सकता है, वहांसे यूचियोंमें होते हुए हूणोंमें पहुंचा हो। यूचियोंकी पुरानी भूमिके विजयके बाद चीनको भारतका परिचय वहां प्रचलित बौद्ध-धर्मके कारण ही मिला। लेकिन बौद्ध-धर्मके चीन में पहुंचनेका प्रमाण अभी और पीछे मिलता है।

यद्यपि चीनी सेना हूणोंको उत्तरमें ढकेलने में सफल हुई थी, किंतु वह उसे सदाकी विजय नहीं समझती थी। इसीलिए सम्राट् वूतीने अपने सेनापति चाङ-क्यान्को अपने शत्रु हूणोंके शत्रु यूचियोंके पास भेजा, कि पश्चिमसे यूची भी उनके ऊपर आक्रमण करें। सम्राट्ने यूचियोंको उनकी पुरानी भूमिमें आकर बसनेका निमंत्रण दिया। चाङ-क्यान् १३८ ई० पू० में अपनी यात्रा पर चला। यह चीनका प्रथम महान् यात्री है, जिसका यात्रा-विवरण

---

[1] A thousand years of Tatar, p. 349

बड़ा ज्ञानवर्धक है। चाङ-क्यान् दस साल हूणोंका बंदी रहा। जब वू-सूनोंने अपनेको हूणोंसे स्वतंत्र कर लिया, तो यह वह हूणोंकी नजरबन्दीसे भागकर वूसून-भूमिमें होते हुए खोकन्द पहुंचा। वहांके निवासी घुमंतू नहीं, बल्कि नगरों और ग्रामोंके निवासी थे। वहांसे समरकन्द होते वह यूचियोंके केन्द्र बाख्तरमें पहुंचा। चाङ-क्यानने यूचियोंको बहुत समझाने की कोशिश की, कि सम्राट् वू-तीने तुम्हारी जन्मभूमि खाली करा ली है, वह चाहते हैं कि तुम लौटकर उसे सम्हाल लो। लेकिन यूची भली प्रकार जानते थे, कि घुमन्तुओंका जीतना वैसा ही अचिरस्थायी है, जैसा कि डेला फेंकने पर काईका फटना। वह बाख्तरके विशाल राज्यके स्वामी हो आनन्दसे जीवन बिता रहे थे, इसलिये हूणोंसे झगड़ा मोल लेनेके लिये तैयार नहीं थे। चाङ क्यान्को बदख्शां, पामीर और सिङ-कियाङ होकर लौटना था, जहां वह हूणोंकी पहुंचसे बाहर नहीं रह सकता था। उसे फिर उनकी कैदमें रहना पड़ा और बारह वर्ष (१३८-१२६ ई० पू०) के बाद चीन लौटनेका मौका मिल। ११५ ई० पू० में फिर उसे वूसुनोंके पास भेजा गया, जो इस्सिकुल महासरोवरके पास त्यान्शान्में रहा करते थे। चीन पश्चिम जानेवाले रेशम पथको सुरक्षित तौरसे अपने हाथमें रखना चाहता था, इसलिये चाङक्यान्को दूसरी बार भेजा गया था। उसने पार्थिया आदि दूसरे देशोंमें पता लगानेके लिये अपने दूत भेजे। लौटकर उसने सम्राट्को पश्चिमी देशोंके बारेमें रिपोर्ट दी। मूल रिपोर्ट प्राप्य नहीं है, लेकिन सूमा-च्याङने ९९ ई० पू० में अपनी पुस्तक "शी-की" और पाङकीने ९२ ई०में "च्यान्-शान्-शूकी"में (अपूर्ण पुस्तक जिसे पीछे उसकी बहिनने पूरा किया) उपयोग किया है। पिछली पुस्तकमें २०६ ई० पू०—२४ ई० तकका वर्णन है। चाङ क्यान् पश्चिमसे लौटनेके बाद ११४ ई० पू० में मर गया। उसके विवरणके जो अंश मिलते हैं, उससे बहुत सी बातोंका पता लगता है। पार्थियन लोग चर्मपत्र पर आड़ी लाइनमें लिखते थे। फर्गानासे पर्थिया तक शक-भाषा बोली जाती थी।

इशी-ज्या (१२७-११७ ई० पू०), अच्वी (११७-१०७ ई० पू०), चान्-सी-लू (१०७-१०४ ई० पू०), शूली-हू (१०४-१०३ ई० पू०), शू-ती-हू (१०३-९८ ई० पू०), हू-लू-हू (९८-८७ ई० पू०) ये हूणोंके ५वेंके बादके शान्-यू हैं, जिनका समकालीन हान्वंशी सम्राट् वू-ती (१४०-८६ ई० पू०) था। चिन्-वंशने हूणोंकी शक्तिको तोड़नेके लिये जो प्रयत्न किया था, उसकी समाप्ति हान्वंश ने की।

(क) वूती और हूण

वू-तीका ५४ वर्ष का शासन हूणों के पराजय, चीन के शक्ति के चरम उत्कर्ष और रेशम-पथ को सुरक्षित करने के लिये बहुत महत्त्व रखता है। १२९ ई० पू०, ११९ ई० पू० और ९९ ई० पू० में चीन ने हूणों के ऊपर तीन जबर्दस्त आक्रमण करके उनके उर्दू को छिन्न-भिन्न कर दिया। जेनरल वेइ-सिन् के आक्रमण १२९ और ११९ ई० पू० में हुये थे। इन आक्रमणों के फलस्वरूप हूणों की सैनिक शक्ति ही नहीं तोड़ दी गई, बल्कि तीन सालों के भीतर चीन को १९ हजार, ७० हजार और १० हजार हूण बंदी मिल गये, जिन्होंने दास बनकर चीन के आर्थिक विकास में भारी काम किया। इधर फर्गाना तकका वणिक्-पथ भी चीन के हाथ में आ गया, इसलिये रोम के साथ खूब व्यापार होने लगा। इससे पहले ही

अल्ताई के उत्तर-पूरब के घुमन्तू तिङली और सप्तनद तथा त्यानशान के वू-सुन हूणों के अधीन थे। वह समय पड़ने पर सैनिक सहायता भी देते थे।

वूती की सफलता का एक कारण यह भी था, कि धीरे धीरे हूण सरदार विलासी होते जा रहे थे और उनमें शक्ति हथियाने के लिये आपस में घोर वैमनस्य था। चीयूने १७६ या १७४ ई० पू० में यूचियों को देश छोड़ने के लिये मजबूर किया। यह हूण-शक्ति के चरम उत्कर्ष का समय था। अब जबकि वू-तीकी शक्तिसे मुकाबला करना था, तो हूणोंका संगठन बहुत खोखला था। चीनके भीतर घुसकर लूटपाट करना हूणों की आजीविका का एक प्रधान साधन था और इसी वजह से कितने ही समय भिन्न-भिन्न सामन्तों के ओर्दू एक हो जाया करते थे। यह एकता स्थायी नहीं होती थी। इसीसे लाभ उठाकर ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दी के अन्त तक फर्गाना तक का सारा मध्यएसिया चीन के हाथ में चला गया। १० वें शान्-यू हू-लू-कू (९८-८७ ई० पू०) के समय इस वैमनस्य ने हूणों में गृह-युद्ध का रूप ले लिया। ९० ई० पू० में चीन ने हूणों पर एक बहुत बड़ा सैनिक अभियान भेजा। इस समय सिङक्याङ के कराखोजा और पीज़ाम् के इलाके चीनियों के हाथ में थे। इतिहास के आरंभ से ही तरिम-उपत्यका में कराशर से काशगर और काशगर से खोतन तक बहुत से समृद्ध नगर बसे हुये थे, जिनमें खस और शक जातीय लोग रहा करते थे। चीनियों ने हूणों को बहुत दूर उत्तर भगा दिया था, किंतु इतने पर भी हूणों की शक्ति बिल्कुल खतम नहीं हुई थी। यह उस जवाब से मालूम होता है, जिसे कि संधि करने के लिये भेजे गये दूत को उन्होंने दिया था—"दक्षिण हान के महान् वंश का है और उत्तर हूणों का। हूण प्रकृति के स्वच्छन्द पुत्र हैं। वह कठिनाइयों तथा छोटी मोटी बातों की परवाह नहीं करते। चीन के साथ एक बड़े पैमाने पर सीमान्ती व्यापार करने के लिये हमारा प्रस्ताव है, कि एक चीन राजकुमारी व्याह करने के लिये आये, प्रति वर्ष १० हजार समूरी चमड़े, उच्च श्रेणी के रेशम के १० हजार थान और इनके अतिरिक्त पहले संधि-पत्रों से मिलने वाली भेंट भी, हमारे पास भेजी जाय। यदि यह कर दिया जाय, तो हम फिर सीमांत पर लूट पाट नहीं करेंगे।"

शान्-यू की मां बीमार थी। शकुन शास्त्रियों ने बतलाया, कि देवता बलि चाहते हैं। खोकन्द के विजेता तथा चीन का सर्वश्रेष्ठ सेनापति स्यान्-बो दरबारी षड्यन्त्र के कारण भाग कर हूणों की शरण में चला आया था, उसी की बलि देवता को दी गई। जान पड़ता है, देवता इससे और रुष्ट हो गये। कई महीने तक लगातार हिम-वर्षा हुई। पशु और उनके बच्चे मर गये, लोगों में महामारी फैल गई। अन्न की फसल जहां होती थी, वहां पकने नहीं पाई। इसके साथ युद्ध-क्षेत्र में भारी पराजय हुई, जिसमें बड़े-बड़े सेनापति मारे गये। इससे हूणों की कमर क्यों न टूट जाती?

(ख) हूण-पराभव

खूखन, हू-हून्-ये या खू-गन्-जा (५९-३१ ई० पू०) १४ वां शान्-यू था। इस समय मंचूरिया से लेकर इस्सीकुल तक की हूण-भूमि में प्रचंड गृह-कलह चल रहा था। एक नहीं पांच-पांच शान्-यू बन गये थे, जिनमें हू-हन्-ये का अपना बड़ा भाई ची-ची उसका जबर्दस्त प्रतिद्वंद्वी था। आपसी संघर्ष तथा चीन के प्रहार के कारण कितने ही हूण सरदार चीन की अधीनता स्वीकार करने में ही कल्याण समझते थे। कराकोरम (मंगोलिया) प्रदेश में हू-हान्-ये ने ची-ची को जबर्दस्त हार दी। हू-हान्-ये का दूसरा प्रतिद्वन्द्वी बो-यान था, जिस पर उसने ५० हजार सेना के साथ आक्र-

मण किया। अन्त में बो-यान को निराश होकर आत्महत्या कर लेनी पड़ी। हू-हान्-ये का शासन बहुत मजबूत हो चला। इतने प्रतिद्वन्द्वियों के खिलाफ हू-हान्-ये के विजय का एक कारण यह भी था, कि सरदारों के प्रभाव के बढ़ने के बाद भी हूणों में अभी सामरिक जनतंत्रता का लोप नहीं हुआ था और वह जननिर्वाचित था। किंतु, भोग और सम्पत्ति ने हूणों में भेद अवश्य प्रकट कर दिया था।

हू-हान्-येने परिषदके सामने चीन की अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव रक्खा। बहुत से सरदारों ने असहमति प्रकट की। उनका कहना था—"हमारा प्राकृतिक जीवन है केवल पशुबल और क्रियापरायणता। अपमानपूर्ण अधीनता तथा सुखी जीवन हमारे लिये उपयुक्त नहीं है, बल्कि उसके प्रति हम घृणा करते हैं। घोड़े की पीठ पर चढ़कर लड़ना यही हमारी राजनीतिक शक्ति का मूलमंत्र है। यही वह चीज है, जिससे कि हम सदा बर्बर जातियों में अपनी प्रधानता कायम रखते आये हैं। युद्ध में मरना हमारे हरेक वीर योद्धा की कामना रहती है। चाहे हम आपस में कभी लड़ भी पड़ें, तो भी कोई परवाह नहीं; क्योंकि यदि एक भाई सफल नहीं होगा, तो दूसरा सफल होगा और इस प्रकार राज्य सदा अपने वंश में रहेगा। असफल भाई भी कमसे कम बहुत सम्मानजनक मृत्यु को प्राप्त करेगा। चाहे चीनी साम्राज्य बहुत मजबूत है, किंतु वह न हमको जीतने की और न अपने में पचा लेने की शक्ति रखता है। हम लोग क्यों अपने पुराने रास्ते को छोड़कर चीनियों के सामने नतमस्तक हों, और अपने पूर्वज शान्-युओं के नाम पर बट्टा लगायें, अपने को दास बनायें और दूसरे लोगों के सामने उपहासास्पद बनें। चाहे ऐसा करने से हमें शान्ति मिल जाय, किंतु दूसरों पर प्रभुत्व करने का हमारा हक सदा के लिये खतम हो जायगा।"

समर्पण के पक्षपाती एक राजकुमार ने कहा—"ऐसा नहीं है। सभी जातियों के सामने कुअवसर और सुअवसर आते रहते हैं। चीन की शक्ति इस समय बहुत उत्कर्ष पर है। कुलजा को लेकर उन्होंने दुर्गबद्ध कर लिया है। उधर के सभी राज्य चीन के विनम्र सेवक हैं। शू-ती-हू (१०३-९८ ई० पू०) के समय से ही हम जो खो रहे हैं, उसे फिर प्राप्त नहीं कर सके। इस सारे समय में हम पिटे हैं। निश्चय ही इस समय हमारे लिये यही इच्छा है, कि थोड़ा सा अपने अभिमान को कम करें, न कि बराबर लड़ते जायँ। यदि चीन की अधीनता स्वीकार करते हैं, तो शांतिपूर्वक हम अपने प्राणों की रक्षा कर सकते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करते, तो बहुत भयंकर तौर से नष्ट होते जायेंगे। ऐसी अवस्था में हमारे लिये कौन रास्ता अच्छा है यह स्पष्ट है।"

चीन ने संधि की शर्तों में यह भी रखी थी, कि शान्-यू का एक पुत्र प्रतिभूति (अमानत) के तौर पर भेजा जाये। हू-हान्-ये ने इसे स्वीकार किया। उसके जेठे भाई ची-ची ने भी वैसा ही किया।

अगले साल (५१ ई० पू० में) हू-हान्-ये ने चीनी दरबार में आने के लिये प्रार्थना की। हूण पराजित होते भी चीनकी जितनी क्षति कर बैठते थे, उससे यह सौदा सस्ता मालूम हुआ। सम्राट् स्वैन्-ती (७३-४८ ई० पू०) ने उसकी अगवानी के लिये एक मजबूत और बड़ा शानदार दस्ता भेजा, हू-हान्-ये के आने पर स्वयं बड़े सम्मान के साथ उसका स्वागत किया। सम्राट् के सभी राजकुमारों तथा दूसरे सामन्तों के ऊपर शान्-यू को माना गया और उसे धरती में सिर छुवा कर कोरनिश करने को नहीं कहा गया। सम्बोधन में भी शान्-यू का नाम लिये बिना "आप मित्र" कहा गया। उसे बहुत मूल्यवान् भेंट दी गईं, जिसमें एक सोने की मोहर, एक राजकीय

खड्ग और कितने ही राजकीय रथ, घोड़े, जीन और दूसरी चीजें थीं। सम्राट् से मुलाकात करने के बाद विशेष दूत ने ले जाकर शान्-यू को निवास-स्थान पर पहुंचाया। कुछ समय बाद शान्-यू को लौटने की अनुमति मिली।[1]

ची-ची ने भी अधीनता स्वीकार करते हुये प्रार्थना की थी, कि उसे महादीवार के बाहर ओर्दुस प्रदेश में रहने की आज्ञा दी जाये, जिसमें कि खतरे के समय वह उधर के दुर्गबद्ध नगरों की रक्षा कर सके। ची-ची के दूत की भी सम्राट् ने बड़ी खातिर की। अगले साल फिर दोनों भाई शान्-युओं के पास दूत आये, जिनमें हू-हान्-ये के दूत की ज्यादा आवभगत की गई। उससे अगले साल (४९ ई० पू० में) हू-हान्-ये जब दरबार में गया, तो उसका पहले ही की तरह सम्मान हुआ, और ज्यादा भेंट भी प्राप्त हुई। इससे ची-ची की ईर्ष्या और भड़क उठी। उसने हू-हान्-ये को निर्बल समझा और अपने सारे ओर्दू को लेकर पश्चिम की विजय पर चल पड़ा। कुलजा के घुमन्तू वू-सूनों को अपनी ओर करने के लिये उसने दूत भेजा। वूसून राजा ने दूत का सिर काटकर युद्ध घोषित कर दिया। वह जानता था, कि चीन उसकी पीठ पर है। ची-ची ने उसे हराया, फिर उत्तर में तरबगतई, वू-चे, च्याङ-कुन्, तिङ-ली आदि घुमन्तूओं को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिये मजबूर किया। चाङ-कुन् से ७ हजार ली दक्षिण-पूरब इस समय ची-ची के ओर्दू का केन्द्र था। उस समय तक वू-सूनों की प्रमुखता में यहां के घुमन्तू बहुत कुछ स्वायत्त शासन कर रहे थे। चीची शान्-यू या उत्तरी हूण-ओर्दूका मुख्य-स्थान कराकोरम (उलान्बातोर) के पास था, जहाँ से किरगिजों का केंद्र २३०० मील और आज का तुर्फान तथा पीजाम २००० मील थे। ४८ ई० पू० में सम्राट् य्वेनती गद्दी पर बैठा। उसने हू-हान्-ये की प्रार्थना पर २० हजार नाप अनाज भेजा। ची-ची इस पर जल मरा। उसका लड़का सम्राट् का प्रतिहार था। उसे उसने बुला भेजा और पहुंचाने के लिये आये हुए दूत को भी मार डाला। दरबार को सूचना मिली थी, कि हू-हान्-ये का ओर्दू बहुत शक्तिशाली और समृद्ध है, वह ची-ची का मुकाबला अच्छी तरह कर सकता है।

४८ ई० पू० से हूण ओर्दू दो भागों में बंट गया—हू-हान्-येका दक्षिणी ओर्दू अब चीन के अधीन था और ची-ची का उत्तरी ओर्दू बिलकुल स्वतंत्र था। हू-हान्-ये और चीन में जो संधि हुई थी, उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"चीन और हूण में सदा के लिये शांति रहेगी। उनमें एक परिवार जैसा मेल रहेगा। दोनों में से कोई पक्ष एक दूसरे पर न आक्रमण करेगा न धोखा देगा। अगर कोई लूटपाट करे, तो उसकी दूसरे पक्ष के सामने शिकायत की जाय। वह दोषियों को दण्ड दे और क्षति-पूर्ति दिलवाये। अगर कोई चढाई हो, तो प्रत्येक पक्ष उसे अच्छी तरह दबाने का प्रयत्न करेगा। जो पक्ष इस संधि को तोड़े, उसके और उत्तराधिकारियों के साथ दैव वैसा ही करे, जैसा कि उसने इस संधि पत्र के साथ किया।"

संधि हो जाने के बाद शान्-यू और चीनी राजदूत एक पहाड़ के ऊपर गये, जहाँ अपनी रत्नजटित तलवार से शान्-यू ने एक सफेद घोड़े की बलि दी, और यूचियों के राजा की खोपड़ी में—जिसे कि विजय के चिन्ह के तौर पर हूणों ने अपने पास रख रखा था—घोड़े के खून में सोना मिला कर चीनी राजदूत के साथ एक एक घूंट पिया।

---

[1] वहीं p. 357

चीनी दरबारी ऐसी शपथ से बहुत नाराज थे। उन्होंने जोर डाला, कि शपथ को लौटा लिया जाय, लेकिन सम्राट् ने इसे पसन्द नहीं किया।

उधर ची-ची चीन के दूत को मार डालने के लिये परेशान था। समरकन्द का (शक) राजा कुलजा के वूसूनों के अत्याचार से उत्पीडित था। उसने किरगिज-प्रान्त में स्थित ची-ची को मदद के लिये बुलाया, और हूणों की अधीनता को फिर से स्वीकार किया। ची-ची उनकी मदद के लिये चला, लेकिन वूसूनों की मदद के लिये चीनी सेना भी आ पहुंची। शान्-यू ची-ची तलस् (तुलाई) नदी के किनारे लड़ते हुये मारा गया, जिसके कारण उत्तर की बर्बर जातियों की एकता खतम हो गई।

३. उत्तरी और दक्षिणी शान्-यू[1]

ची-ची और हू-हान्-ये के द्वारा ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में हूण जन दो भागों में विभक्त हो गया, जिसमें दक्षिणी हूण चीन के साथ रहना चाहते थे। महादीवार से दूर उत्तर गोबी के रेगिस्तान से परे वर्तमान मंगोलिया और बाइकाल के पास घूमने वाले हूण चीन की पहुंच से अपने को दूर समझते परवाह नहीं करते थे, कि चीन रुष्ट होगा, तो हमारी हानि होगी। चीन की अधीनता स्वीकार करने की मनोवृत्ति ५२ ई० पू० में हू-हान्-ये ने जो प्रकट की थी, जान पड़ता है, वह ची-ची के मरने के बाद बिल्कुल लुप्त नहीं हुई। हू-हान्-ये बराबर अपने को चीन का अनन्य-भक्त साबित करना चाहता था, यद्यपि चीन-सम्राट् उसपर पूर्णतया विश्वास नहीं कर सकता था। वह समझता था, ये घुमन्तू हूण—जिनका न किसी खेत से नाता है और न घर से—बे-नकेल के ऊंट हैं। लेकिन साथ ही उसको विश्वास था, कि जबतक उनकी अच्छी तरह भेंट-पूजा होती रहेगी, तब तक वह विरोधी नहीं बनेंगे। उसे यह पता लग गया था, कि हूणों को "आदमी" बनाने के लिये सबसे अच्छा तरीका यही है, कि उनके पास सामन्ती भोग की वस्तुयें पहुंचाई जायं और उनके अन्तःपुर में सुन्दर-सुन्दर चीनी राजकुमारियां प्रवेश करें। ३३ ई० पू० में (मरने से दो साल पहले) हू-हान्-ये फिर दरबार में आया। अबकी भी ४९ ई०पू० की तरह ही उसका स्वागत हुआ। शान्यूको सम्राट् यू-येन्-ती (४८-३२ ई० पू०) ने अपने अन्तःपुर की सबसे सुन्दरी तरुणी चाउ-चुन् (प्रभावती) प्रदान की। सम्राट् के हरम में हजारों सुन्दरियां रहती थीं, जिनमें से चाउ-चुन् की तरह कितनी ही ऐसी भी थीं, जिन्हें सम्राट् ने कभी देखा भी नहीं था। कायदा था : दरबारी चित्रकार सुन्दरियों का चित्र अंकित करता। सम्राट् चित्र देखकर उनमें से किसी को पसन्द कर अपने पास बुलाता। चित्रकारों को इसके लिये खूब रिश्वत मिलती थी। उस समय माउ नामक एक दरबारी चित्रकार था, जो इस काम पर नियुक्त था। अन्तःपुरिकायें अपने सौन्दर्य को बढ़ा-चढ़ाकर चित्रित कराने के लिये खूब पैसा देती थीं। चाउ-चुन् सर्व-सुन्दरी थी, किन्तु वह इस बात के लिये राजी नहीं हुई। माउ ने नाराज होकर उसका बहुत भद्दा चित्र बनाया, इसीलिये सम्राट् ने उसे कभी नहीं बुलाया। चीन के विशाल प्रासाद के एकांत कोने में उसका जीवन बीतने लगा। शरद आता, पत्ते पीले होकर गिरने लगते। वह सोचती मेरा तारुण्य और सौन्दर्य भी इसी तरह खतम हो जायगा। इसी समय हू-हान्-ये ने सम्राट्

[1] वहीं p. 431

से एक राजकुमारी मांगी। राजकुमारियां अपने प्रासाद को छोड़कर बर्बर हूणों के तम्बू में जानेके लिये तैयार नहीं हो रही थीं। लेकिन हूण राजा को एक राजकुमारी अवश्य देनी थी, यदि चीन के जन-धन की रक्षा करनी थी। चाउ-चुनने जाना पसंद किया। सम्राट् ने समझा, कि वह कोई साधारण सी तरुणी होगी, और प्रसन्नतापूर्वक देना स्वीकार किया। लेकिन, जब वह शान्यू के साथ भेजने के लिये सम्राट् के सामने लायी गई और उसकी दृष्टि इस निसर्ग सुन्दरी पर पड़ी, तो वह अपनी बातसे उलट तो नहीं सकता था, लेकिन उसने उसी वक्त चित्रकार माउ को प्राण-दण्ड का हुकुम दिया। चीन के बहुत से कवियों और नाट्यकारों ने चाउ-चुन् के स्वदेश छोड़ने के करुण दृश्य और रेगिस्तान तथा जंगली पश्चिमी देश के भयानक चित्र अंकित किये हैं। हूण-प्रतिहारियां सितार के साथ मधुर संगीत द्वारा उसके मन को बहलाने का बेकार प्रयत्न करती थीं। निर्जन रेगिस्तान में सदाहरित समाधि को खड़ी देख चाउ-चुन सोचती, एक दिन मुझे भी यहीं दफन कर दिया जायगा। कहते हैं इसी समय हूणों का संगीत यंत्र चीन में प्रचलित हुआ।

हू-हान्-ये चीन सम्राट् का बहुत कृतज्ञ हुआ। इसको प्रकट करने के लिय उसने सम्राट् से प्रार्थना की, कि ह्व ङहो से लोबनोर तक की सारी सीमा की रक्षा का भार मैं लैने के लिये तैयार हूं, वहाँ छावनी रखकर व्यर्थ धन खर्च करने की अवश्यकता नहीं। लेकिन एक बूढ़े मंत्री ने सम्राट् को सावधान किया—"शांसी से कोरिया तक जंगलों से आच्छादित पर्वत-श्रेणियाँ खड़ी थीं, तो भी विजेता माउदुन और उसके उत्तराधिकारी भीतर घुसने में सफल होते रहे। वह जहाँ चाहते थे, वहाँ से अपनी इच्छानुसार चीन पर आक्रमण करते थे। वह तब तक ऐसा करते रहे, जब तक कि वू-ती (१४०-८६ ई० पू०) ने उन्हें रेगिस ान के उत्तर में भगा नहीं दिया और सारी महादीवारको दुर्गबद्ध नहीं कर दिया।...सीमांत की छावनियाँ इसीलिये हैं, कि देशद्रोही चीनी भागकर हूणों के देश में न चले जायँ, साथ ही यह भी कि हूण चीन के ऊपर आक्रमण न कर सकें। यह कहने की अवश्यकता नहीं, कि हमारे सीमांत के निवासियों में भारी संख्या हूण-वंशियों की है, जिन्हें कि हम धीरे धीरे हजम कर रहे हैं। हाल में हमने च्याङ (तिब्बत-वंशियों) से संबंध जोड़ना शुरू किया है, जो कि हमारे अफसरों की लोलुपता और लूट-खसूट से बहुत रुष्ट हैं। यदि च्याङ और हूण दोनों घुमन्तू आपस में मिल गये, तो हमारे लिये भारी खतरा पैदा हो जायगा।...एक शताब्दी से थोड़ा अधिक हुआ, जबकि महादीवार बनाई गई। यह केवल मिट्टी का ढूह नहीं है। पहाड़ के ऊपर और नीचे पृथिवी के स्वाभाविक उतार-चढाव पर यह बनाई गई है। इसमें मधु-छत्र की तरह बहुत से गुप्त मार्ग और तहखाने तैयार किये गये हैं, स्थान-स्थान पर दुर्ग बनाये गये हैं। क्या यह सारा विशाल श्रम नष्ट होने के लिये छोड़ दिया जायगा।"

सम्राट् के दूत ने मीठी मीठी बातें करके शान्-यू को समझाने की कोशिश की। क्या रहस्य है, इसे वह भली भाँति समझता था। इसके एक ही साल बाद सम्राट् युवेन्-ती और दूसरे साल शान्-यू हू-हान्-ये भी मर गये।

चाहे उत्तर और दक्षिण का मत भेद भीतर-भीतर रहा हो, लेकिन वह बीसवें शान्-यू हू-तू-एल-शी-ताउ-कू (१८-४६ ई०) की मृत्यु तक प्रकट नहीं हो सका। हूणों में यह नियम नहीं था, कि शान्-यू का बड़ा बेटा उसका उत्तराधिकारी हो। कभी कभी बड़े बेटे की तो बात अलग सारे बेटों को छोड़ कोई सगा या चचेरा भाई शान्-यू बना

दिया जाता था। हू-हान्-येके के बाद उसके पांच बेटे एक के बाद एक शान्-यू बने। २०वें शान्-यू का भतीजा द्वितीय हू-हान ये उत्तराधिकारी समझा जाता था, लेकिन सैनिक जनतंत्रता उसमें बाधक हुई। बहुत संघर्ष के बाद हू-हान् ये द्वितीय (४८ ५७ ईस्वी) यद्यपि शान्-यू चुन लिया गया, किंतु २०वें शान्-यू के पुत्र ने भी अपने को शान्-यू घोषित कर दिया। वह एक तरह अपने चचा ची-ची के अपूर्ण काम को पूरा करना चाहता था।

अब दोनों हूण ओर्दुओं में संघर्ष शुरू हो गया। ४९ ईस्वी में दक्षिणी शान्-यू के भाई ने उत्तरी शान्-यू के भाई को हराकर बंदी बनाया। उत्तरी शान्-यू जानता था, कि चीन के कृपा-पात्र अपने प्रतिद्वंद्वी से मैं सीधे मुकाबला नहीं कर सकता, इसलिये दक्षिण की अपनी चरभूमि से ३०० मील दूर चला गया। भविष्यवाणी थी, कि घुमन्तुओं को अपनी नवीं पुश्त में ३०० मील दूर भागना पड़ेगा। थोड़े समय बाद पाँच असन्तुष्ट सरदारों तथा ३० हजार परिवारों को लिये उत्तरी शान्-यू का भाई बागी हो निकल भागा। सारे दल ने उत्तरी हूण-केंद्र से ७५ मील पर डेरा डाला, जहाँ दोनोंमें लड़ाई हुई। पांचों सरदार मारे गये। उनके पुत्रों ने अपने बचे-खुचे आदमियों के साथ दक्षिणी हूणों के पास जाना चाहा, किंतु उत्तरियों ने उन्हें पकड़ लिया और उनके बचाने के लिये आये दक्षिणियोंको हराकर खदेड़ डिया। सम्राट्ने दणिक्षी शान्-यू को और दक्षिण जानेके लिये कहा और वह लिन्-चाऊ (ल्यू-यूवेन) के इलाके में चला गया। यहीं के रहने वाले हूणों ने तीन शताब्दी बाद चीन के एक राजवंश की स्थापना की।

उत्तरी शान्-यू चीन से झगड़ा मोल नहीं लेना चाहता था। उसने बहुत से चीनी युद्ध-बंदियों को लौटा दिया। लूट-पाट करने के लिये उसका बहाना था : "हम चीन की भूमि पर लूट पाट नहीं करते, हम तो अपने विश्वासघाती सरदारों का पीछा कर रहे हैं।" ५२ ईस्वी में उत्तरी शान्-यू ने संधि के लिये अपना दूत भेजा, लेकिन उस समय दरबार में इस पर मतभेद रहा। अगले साल घोड़ों और समूरी खालों की भेंट भेजकर फिर उसने सुलह करने का प्रयत्न किया, और गायकों की एक मंडली मांगी तथा अपने शी-यू (तुर्किस्तान) के अनुगामी राजाओं को साथ ले आकर अधीनता तथा सम्मान प्रदर्शित करने के लिये आज्ञा माँगी। चीन चाहता था, कि दोनों में से कोई नाराज न हो। बहुत नरमी के साथ स्वीकृति देते हुये चीन दरबार ने उसे लिखा "...अतीत्-काल में हू-हान्-ये और ची-ची गृह-कलह में लगे हुए थे। उस समय देवपुत्र ने अपना कृपापूर्ण संरक्षण दोनों को दिया और उनके पुत्रों को राजसेवा में स्वीकार किया।...हाल के वर्षों में दक्षिणी शान्-यू ने दक्षिण की ओर मुँह फेर कर हमारी अधीनता स्वीकार की। चूंकि वह हू-हान्-ये की अविच्छिन्न संतान में सर्वज्येष्ठ है, इसलिये हमने उसको उचित उत्तराधिकारी माना। लेकिन जब वह अपने अधिकार से बाहर जा हमारी मदद से उत्तरी ओर्दू को नष्ट करना चाहता है, तो हमारे लिये आवश्यक हो जाता है, कि उत्तरी शान-यू की उचित अभिलाषा पर भी ध्यान रखें, क्योंकि उसने भी कई बार हमारे प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।...इसलिये कोई कारण नहीं है, कि क्यों न उत्तरी शान्-यू सी-यू राजाओं को उनका कर्त्तव्य-पथ दिखलाने के लिये उनके साथ आकर अपनी स्वामि-भक्ति का प्रमाण हमारे सामने दें।..."

प्रथम उत्तरी शान्-यू ५२ ईस्वी के बाद किसी समय मर गया। उसका उत्तराधिकारी द्वितीय शान्- यू ५९ ईस्वी में स्वयं महादीवार के पास अधीनता स्वीकार करने के लिये आया।

तो भी वह ३ साल तक बराबर चीन में लूटपाट करता रहा,जिसको हटाने के लिये दक्षिणी ओर्दू ने बड़ा काम किया। ६३ ईस्वी में उत्तरियों ने चीन से व्यापारिक सुविधा प्राप्त करने के लिये प्रार्थना की। दरबार ने अनुमति दे दी, समझा, लूटपाट बंद हो जायगी। दो साल बाद ६६५ ईस्वी में उत्तरी शान्-यू के पास चीन का दूतमंडल गया। दक्षिण ओर्दू को यह पसंद नहीं आया और उनमें से कुछ उत्तरियों में जा मिले। चीन बराबर भेंट भेजता रहा, लेकिन हूण अतिरिक्त लाभ के बिना संतुष्ट नहीं रह सकते थे, इसलिये उनकी लूटपाट नहीं बंद होती थी। सम्राट् मिङ-ती (५८-७६ ई०) ने मजबूर होकर उत्तरियों के ऊपर ७३ ईस्वी में बहुत भारी सेना भेजी, लेकिन हूण अपनी सनातन युद्ध-नीति के अनुसार गोबी रेगिस्तान के पार भाग गये। ८४ ईस्वी में फिर उत्तरी शान्-यू को हम व्यापारी सुविधा पाते देखते हैं, जिस पर दक्षिणियों ने उनके कुछ आदमियों और पशुओं को पकड़ कर अपना असंतोष प्रकट किया।

ईसवी प्रथम शताब्दी का अन्त होते होते उत्तरी हूणों में आपस का वैमनस्य ज्यादा हो गया। साथ ही उनके प्रतिद्वन्द्वियों की शक्ति और संख्या भी बढ़ गई। उनके पूरब (मंचूरिया) के घुमन्तू स्यान्-पी (हू-ह्वान्), जो तुंगूसों की एक शाखा थे, तेजी से शक्ति संचय कर रहे थे और वह समय दूर नहीं था, जब कि वह चीन को एक राजवंश देनेवाले थे। शक्तिशाली स्यान्-पी पूर्व से उत्तरी ओर्दू पर आक्रमण कर रहे थे। दक्षिण में उनके दक्षिणी भाई-बंद जान छोड़ने के लिये तैयार नहीं थे, पश्चिम में सी-यू तुर्कीस्तानी कबीले चोट-पर-चोट कर रहे थे, उत्तर में तिङ-लिङ (कंकाली) भी अपना प्रभुत्व दिखला रहे थे। चारों ओरों के प्रहारों से छिन्न-भिन्न होकर उत्तरी हूण ओर्दू विलुप्त होने लगा। उनमें से कुछ उत्तर की ओर भागे, और कुछ सेलंगा के उपरी धार से होते इर्तिश नदी, इस्सीकुल (सरोवर) की तरफ बढ़कर वूसुनों की भूमि को हथियाने लगे। इतने ही तक संतोष न कर वह कंगों की भूमि अराल-समुद्र से उत्तर-उत्तर शक-वंशीय सर्मातों के उत्तराधिकारी अलानों को कास्पियन के उत्तर से हटाते कालासागर और दुनाइ(डैन्यूब)के किनारे पहुँच गये। अतिला (एत्-ज़ेल) बड़े अभिमान से कहता था : मैं शान्-युओं का वंशज हूँ। मातृभूमि से भगाने के लिये उत्तरी हूणों पर अन्तिम प्रहार स्यान्-पी ने ७७ ईस्वी में किया। उन्होंने शान्-यू को पकड़ लिया और उसके चमड़े को विजय-स्मारक के तौर पर अपने पास सुरक्षित रखा। उत्तरियों के बचे-खुचे आदमियों में से २ लाख ने कई टुकड़ियों में हो महा-प्राकार के भिन्न-भिन्न स्थानों में आकर चीन की अधीनता स्वीकार की। तब से स्वतन्त्र हूण जाति का नाम समाप्त हो गया।

दक्षिणी शान्-यू ४८-१९० ईस्वी तक चीन के सामन्त के तौर पर चीनी जन-समुद्र के कोने में रहे। वह अधिक और अधिक चीनी बनते गये, और अब भी चीन के लिये काफी सैनिक सहायता देते थे। कभी कभी उनमें अपने पूर्वजों का खून जोश मारता, लेकिन उसका परिणाम हजारों के प्राणहानि के सिवा और कुछ नहीं होता था। १७७ ईस्वी में तत्कालीन शान्-यू ने चीन के लिये स्यान्-पी विजेता दर्जे-ग्वेसे लड़ाई की। चीनी हारे। मरने वालों में हूणों का शान्-यू भी था। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र हुआ, जिसे मारकर एक चीनी जेनरल शान्-यू बना। पीछे हूण राजवंश का नाम भी लुप्त हो गया। तुङ-हू (सुअरवाले आदमी) स्यान्-पी के रूप में आगे आये और उनके नेता दर्जे-ग्वेने १६५ ईस्वी के आसपास स्यान्-पी वंश की स्थापना की। हूणों की तरह ये भी सैनिक जनतंत्रता और घुमन्तू जीवन के अनुगामी थे। इस वंश ने

उत्तरी चीन पर ४ थी शताब्दी के अन्त तक अपने शासन को कायम रक्खा। स्यान्-पी के उत्तराधिकारी उन्हींके वंश के तोबा थे, जिनका तृतीय राजा ताउ-वू-ती (३८६-४०९ ई०) बहुत बड़ा विजेता तथा उत्तरी वेई वंश का संस्थापक था। तोबा की एक शाखा उनकुरन ने ज्वेन्-ज्वेन् साम्राज्य को ३५४ ईस्वी के आसपास स्थापित कर उसका विस्तार त्यानशान् से कोरिया तक किया। इन्हींके लौह कमकर तथा उत्तराधिकारी तुर्कों ने तुर्क-वंश और तुर्क-संसार की स्थापना की, जिसका वर्णन आगे आयेगा।

स्रोत ग्रंथ :

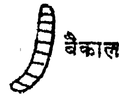
1. A Thousand years of Tatars (E. H. Parker, Shanghai 1895)
२. आर्खेआलोगिचेस्किइ ओचेर्क सेवेर्नोइ किर्गिज़िइ (अ. न. वेर्न्श्ताम्, फ्रुन्जे १९४१)
३. हुन्नु इ गुन्नी (क. इनस्त्रान्त्सेफ़, लेनिनग्राद १९२६)
४. इज़ इस्तोरिइ गुन्नोफ़ १ वेका दो नाशे एरा (अ. न. वेर्न्श्ताम्), सोव्येत् वोस्तोकं वेदेनिये II (1941) पृष्ठ ५१-५७
५. सिरिइस्किये इस्तोच्निकि पो इस्तोरिइ नरोदोफ़ (न. पिगुलेव्स्कया, लेनिनग्राद १९४१)
6. Histoire des Huns (Desqugue, Paris 1756)
७. पेर्वोनचाल्निख कशोफ कं.वृ रा इज़ नोइन-उला (लेनिनग्राद १९४७)
8. Excavation in Northern Mongolia (C. Trever, Leningrad)
9. The Story of Chang Kien (J. of American Oniental Society, Sep. 1917 p. 77)
१०. ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्य (वरतोल्द, १८९८)
11. Histoire d' Attila et de ses successures (Am. Thierry, Paris 1856)
12. History of the Hing-nu in their Relations with China (Wylie, Journal of Anthropological institute, London, vol. III 1892, 3)
13. Sur l'origine des Hiung-nu (Shiratori, Journal Asiatigus CC II no. I, 1923)

अध्याय ३

१. वू-सुन (३००-१०० ई० पू०) अवार

§ १. वू-सुन्

हम शकों के इतिहास के बारे में कह चुके हैं। वू-सुनों के इतिहास के विशेषज्ञ डाक्टर अ० न० बेर्नश्तामका कहना है[1] "वू-सुनों की संस्कृति वही है, जो कि शकों की, अन्तर है केवल उसमें पीतल का अभाव"। इससे साफ है, कि कारपेथियन से कोकोनोर तक फैली हुई पित्तल-युग के आरंभ से चली आती, महान् शक-जाति की बहुत सी शाखाओं में वू-सुन् भी एक थे। वू-सुनों के शरीर-लक्षण के बारे में चीनी कहते हैं "नीली आंखें, लाल दाढी और बानर जैसा साधारण चेहरा।" कू-चा (सिङकियाङ) के पीछे के निवासी भी नीली आंखों और लाल बालवाले थे। ओरेल स्टाइन् तथा लेकाक को तरिम उपत्यका में नीली आंखों और लाल बालों वाले नर-नारियों के चित्रपट भी मिले हैं, जिससे मालूम होता है, ईसा की ४थी ५वीं शताब्दी में अब भी तरिम-उपत्यका में इस तरह के लोग निवास करते थे।





११. वूसुन्भूमि (१ ई०)

ईसापूर्व तीसरी और दूसरी शताब्दी में वू-सुन जाति बहुत शक्तिशाली थी, यद्यपि यही समय था, जब कि हूण एक विजेता के तौर पर प्रकट हुये थे, जिनका शिकार कभी कभी वू-सुनों को भी होना पड़ता था। इन शताब्दियों में भी चीन के रेशम को पश्चिम देशों की

---

[1] आर्खे० ओचेर्क० (बेर्नश्ताम) पृष्ठ ३७

ओर पहुंचानेवाला मध्य-एसिया का वाणिज्य-मार्ग वू-सुनों की भूमि में इस्सीकुल के किनारे से जाता था। यहीं उनका केन्द्र ची-गू था। हूण और चीन दोनों वू-सुनों को अपनी अपनी ओर खींचना चाहते थे। इली-उपत्यका, चू-उपत्यका और त्यान्‌शान् पर्वतस्थली वू-सुन भूमि थी, जो कि उन्हें अपने शक-पूर्वजों से मिली थी। उनके दक्षिण में पहाड़ों से उतरते ही तरिम-उपत्यका थी, जहां बसनेवाली हू-मा जाति से उनका व्यापारिक संबंध था। पश्चिम में तलस्-उपत्यका में कंग जाति का सीमांत उनके साथ आ मिलता था। पश्चिम और दक्षिण में फर्गाना (तावान) की सुन्दर उपत्यका का राज्य उनका पड़ोसी था, जो कि रेशम-पथ के कारण बहुत समृद्ध तथा अपनी उत्तम जाति के घोड़ों के लिये अति प्रसिद्ध था। १२६ ई० पू० में चाङ-क्यान् ने लौटकर जब तावान के घोड़ों की प्रशंसा की, तो राजी खुशी से काम न निकलते देख सम्राट् वू-ती को वहां सैनिक अभियान भेजना पड़ा, जिसके कारण चीनी साम्राज्य की सीमा वहां तक पहुंच गई। वू-सुन लोग घुमन्तू पशुपाल थे। चीनी लेखक उनके बारे में कहते हैं—"वू-सुन् न खेती जानते हैं न बागबानी। वह अपने पशुओं के साथ तृणजल सुलभ एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमते रहते हैं। धनी वू-सुनों के पास चार-चार पांच-पांच हजार घोड़े रहते हैं।"

१. संस्कृति

वू-सुन यद्यपि अपने पूर्वज शकों की तरह अब पीतल नहीं लौह युग में आ गये थे, किंतु अभी उनकी अवस्था आदिम समाज जैसी थी। १९२९ ईस्वी में किर्गिजिस्तानमें जो पुरातात्विक खुदाई हुई थी, उससे पता लगता है, कि मृत्पात्र कला में वह बड़े चतुर थे। धातु, काष्ठ, चर्म और मृत्पात्र का हस्तशिल्प उनके यहां अच्छा विकसित था। उनके काष्ठ या मिट्टी के वर्तन तीन प्रकार के मिले हैं—अन्न रखने के, खाने के और भोजन पकाने के। सोने का आभूषण भी उनके यहां प्रचलित था। हथियारों में भारी वजन का धनुप, वाण, लम्बी तथा सीधी तलवार प्रधान थी। वाण तीन धारा होता था। चाङ-क्यान् अपनी यात्रा (१३८-१२६ ई० पू०) में दो बार आकर वू-सुनों के देश में रहा था। उसीने इस घुमन्तू जाति को चीन की ओर खींचा। आगे बहुत से वू-सुन सामन्तों ने चीन की राजकुमारियां व्याही। एक चीनी राजकुमारी के मुंह से किसी जन-कवि ने घुमन्तुओं के नीरस जीवन का गीत गवाया है[1]—

बन्धुओं ने मुझे दिया, दूर देश में,
वू-सुन के राजा को देकर, भेजा पराये राज्य में।
रहते नमदा ढँकी गोल कुटिया में,
खाते मांस और पीते दूध।

२. इतिहास

वू-सुनों के तीन विभाग थे, जिनके अवशेष निम्न स्थानों में मिले हैं—(१) चू उपत्यका में कराबलती, (२) त्यानशान् में कराकोल, त्युप और कोचकोर तथा (३) इली-उपत्यका में अल्माअता जिले के कई स्थान। २०९ और २०१ ईसा पूर्व में हूणों ने वु-सुनोंको बुरी तरह से

---

[1] क्रिस्कि० सोओब्० xIII, 112 (बेर्नूश्तमका लेख)

ध्वस्त किया था। माउदुन और ची-उचु ने जब (१७४ ई० पू०) यूचियों को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट करके उन्हें मातृभूमि छोड़ने के लिये मजबूर किया, तो तरिम-उपत्यका में आकर लघु-यूची वू-सुनों के पड़ोसी बन गये और महा-यूची इली और चू-उपत्यकाओं के वू-सुनों का भारी नुक्सान करते एसिया, वक्षु-उपत्यकाकी ओर गये। इस समय वू-सुनोंने हूणोंकी अधीनता स्वीकार की, जिसका अन्त चाङ-क्यान्के आनेके बाद चीनका पक्षपाती होनेके साथ हुआ।

वू-सुन्के पश्चिममें कंक (कंग) और फर्गानाके शासक थे, दक्षिणमें उनके नये पड़ोसी लघु-यूची (तुषार) थे, किंतु इनसे उनको डर नहीं था। इनकी अपेक्षा वू-सुन् कहीं सबल थे। उनके भयका कारण पूर्व और पूर्वोत्तरमें था। वहां पूरबसे आते अन्तर्राष्ट्रीय वणिक्-पथको हाथमें रखनेके लिये चीन अपनी सारी शक्ति लगा रहा था, और पूर्वोत्तरमें हूणोंका शान्-यू यह देखनेके लिये तैयार नहीं था, कि उसकी अधीनता स्वीकार करनेवाले वू-सुन् चीन को अपना स्वामी मानें। वू-सुन् समझते थे, कि उनकी भलाई चीनके साथ रहनेमें है। हूणोंका जीवन वू-सुनों जैसा ही था। दोनों ही घुमन्तू पशुपाल थे, और कृषि-जीवनसे उनको कोई मतलब नहीं था। हूणोंके आनेका मतलब था, उनकी चरभूमियोंका छिन जाना और हूणोंकी गुलामी स्वीकार करना। चीनकी कूटनीतिक चालोंमें अपनी राजकुमारियोंसे दूसरे शासकोंके साथ व्याह करना भी सम्मिलित था। माउदुन्के समयसे ही हूण शान्-यू राजकुमारियां पाते रहे। तिब्बती शासक ८वीं-९वीं शताब्दी तक चीन-राजवंशके दामाद होते थे। राजकुमारीका यह मतलब नहीं, कि वह सम्राट्की अपनी लड़की या बहिन हो। मालूम होता है, जैसे भेंट-इनाम देनेके लिये और बहुत सी चीजें राजकीय भंडारमें रक्खी जाती थीं, वैसे ही अन्तःपुरमें जहां तहांसे जमा की हुई सुन्दरियां भी रहती थीं। चाऊ-चुन्की घटना हम कह चुके हैं। इससे कितने ही वर्षों पहले ७३ ई० पू० में चीनी राजकुमारीका बहाना लेकर हूणोंने वूसुनोंके ऊपर आक्रमण किया। एक चीन राजकुमारी वू-सुन् सरदारसे व्याही थी। उत्तरी शान्-यू देख रहा था, कि चीनके साथ मिलकर ये नीली आंखों, लाल दाढ़ी वाले वानर हमारे जूयेको उठा फेंकना चाहते हैं। शान्-यूने क्रोधांध होकर मांगकी "अपनी हान-राजकुमारीको हमारे पास भेज दो, नहीं तो हम तुमसे लड़ाई करेंगे।" वू-सुनोंने हान सम्राट् स्वेन्-ती (७३-४८ ई० पू०)से सहायता मांगी और तुरन्त एक बड़ी चीनी सेना आ भी गई। चीनियों और वू-सुनोंने मिलकर हूणोंको बहुत बुरी तरहसे हराया। कितने ही राजकुमारों और मशहूर सेना-पतियोंके साथ ४० हजार हूण मारे गये, ७ लाख घोड़े, गायें, भेड़ें, खच्चर और ऊंट विजेताओंके हाथ लगे। ११वां शान्-यू हू-यन्-ती (७७-६८ ई० पू०) उस समय उत्तरी और दक्षिणी ओर्दूका भेद न होनेके कारण सभी हूणोंका संयुक्त शासक था। यह संघर्ष इली-उपत्यकामें हुआ था। चीन की एक लाख सेना ६०० मील पश्चिम चलकर मददके लिये आई थी। कुलजाके वू-सुन् राजाने ५० हजार सेना लेकर पश्चिमसे आक्रमण किया था। चीनी सेना हामी और बर्कुल तक पहुंची, लेकिन घुमन्तू हूणोंको पहले ही से पता लग गया था, इसलिये उन्होंने अपने परिवारों तथा बहुतसे पशुओंको उत्तरमें दूर भेज दिया था। पराजयके साथ शान्-यूका चचा, दामाद आदि विजेताओंके बंदी बने थे। जैसा कि अभी हमने कहा, उसी जाड़ेमें हूणोंने वू-सुनोंसे बदला लेना चाहा, लेकिन उस साल बर्फ इतनी पड़ी, कि आक्रमण करनेवाली हूण सेनामेंसे दशांश ही मरनेसे बच पाये। इसी समय हूणोंके उत्तरी पड़ोसी तिङ-लिङ (किरगिज या प्राग्-उइगुर) ने भी उनकी कमजोरीसे फायदा उठाना चाहा और उन पर धावा बोल दिया। मंचूरियाके वू-ह्वान् भी चुप नहीं

बैठे रहे। इस प्रकार हूण चीन राजकुमारीको वू-सुनोंसे कहां छीनते, स्वयं उनके शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई। चीनी इतिहासकार लिखते हैं, कि इस मानवीय और प्राकृतिक संघर्षमें एक तिहाई हूण जन मारा गया, जिनमें युद्धमें भूखसे मरे भी शामिल थे, उनके पशुओंमेंसे भी आधे खतम हो गये।

१९२९ में वू-सुनोंकी भूमिसे एक बड़ा महत्वपूर्ण आविष्कार हुआ था। अल्ताई के ध्वंसावशेषकी खुदाईमें भी एक वूसुन् राजाकी कब्र निकल आई, जिसको ईसा पूर्व ३री शताब्दीका बतलाया जाता है। हूण सरदारोंकी जैसी कब्रें उत्तरी काकेशसमें मिली हैं, वैसी ही यह कब्र भी बड़ी वैभवपूर्ण थी। लेकिन जान पड़ता है, कब्र बननेके थोड़े ही समय बाद कबर-चोरोंको पता लग गया, इसलिये इसका बहुमूल्य सामान उसी समय निकाल लिया गया। यह स्थान अल्ताईके ऐसे भागमें है, जहां नीचे धरती सदा हिमीभूत रहती है। जिस छेदके द्वारा चोर भीतर घुसे, उसी छेदसे पीछे पानी भी भीतर घुस कर बर्फ बन गया। इसलिये २२ शताब्दियों तक हिमके नीचे सभी चीजें दबकर सुरक्षित रह गईं। १० हाथ (४ मीतर) गहरे गड्ढे में पुराने चमड़े, लकड़ी और १० घोड़े सुरक्षित मिले। घोड़े बड़ी जातिके और सुन्दर थे। जान पड़ता है, वह मृत सरदारकी अपनी सवारीके घोड़े थे। घोड़ोंके सजानेके कुछ जेवर और दूसरी चीजें भी मिलीं। भरसक चोरोंने किसी मूल्यवान् चीजको न छोड़ना चाहा, लेकिन तब भी पुरातत्वकी कितनी ही महत्वपूर्ण चीजें प्राप्त हुईं। उरसुला नदीके किनारे शिवेमें भी दो शव मिले, जिनमें १४ घोड़े, ५०० भिन्न-भिन्न प्रकारके सोने और दूसरी तरहके आभूषण , घोड़ों और आदमियोंके ओढ़ने, पहननेकी कितनी ही चीजें मिलीं। अल्ताईका अर्थ ही है सुवर्णगिरि, जिस समयकी यह कब्र है, उस समयका सारा एसिया अल्ताईके सोनेसे सोनेवाला बनता था। पाजिरेक्सकी कब्र के बारे में हम लिख चुके हैं।

३. वू-सुनोंके पड़ोसी

उत्तरापथमें वू-सुन् अल्ताईसे त्यान्शान और तलस-नदी तकके स्वामी थे, जिनके भीतर धीरे धीरे हूण प्रवेश करने लगे और ईसवी प्रथम सदीमें केवल त्यान्शान (इस्सीकुल) का पहाड़ी इलाका वू-सुनोंका रह गया। इली और चूकी उपत्यकायें जब हूणोंकी चरभूमि हो गईं, तब भी वहां कोई कोई शक-वंशीय कबीला उनकी कृपा से रहने पाता था। ४३६ ई० में वू-सुन राजाने चीनको भेंट भेजी थी, जिससे उस समय तक वू-सुन जातिके बने रहनेका पता लगता है। उत्तरके यह घुमन्तू हिम-कन्दुककी तरह दूसरे कबीलोंको अपनेमें हजम कर बढ़ते जानेकी क्षमता रखते थे। हूणोंकी प्रभुताके दिनोंमें हू-ह्वान्, तिङ-लिङ, तुङ-गुस् आदि कबीले उनमें हजम हो गये। यह सभी मंगोलायित जातिके थे, इसलिये चेहरेमोहरेमें कोई अन्तर नहीं था, हां भाषा-भेदको वह भूलते गये। दक्षिणी हूण ओर्दू किस तरह अन्तमें चीनियोंमें हजम हुआ, इसे हम अभी कह चुके हैं। वू-सुन भाषा ही नहीं आकृतिमें भी दूसरी जातिके थे, उनके हजम होने में कुछ अधिक समय जरूर लगा, किंतु वह अन्तमें हजम होकर ही रहे। आज भी इस भूमिके निवासी कज्जाकोंमें सरी-उइ-शुन् नामका एक वंश मिलता हैं, जो शायद वूसुन् वंशका परिचायक है।

वू-सुनोंके पश्चिम उत्तरापथ (सिरदरिया और अराल समुद्रके उत्तर) में कंग जाति रहती थी, जिसका नाम महाभारत और संस्कृतके और कितने ही ग्रंथोंमें मिलता है। इनको

पुराने शकों का ही वंशज होना चाहिये, किंतु कितने ही ऐतिहासिक इनका संबंध सोग्दोंसे बतलाते हैं। कंगोंको कङ-ली (गाड़ीवाले) मंगोलायित जातिसे मिला नहीं देना चाहिये। दोनों का एक समय पता लगता है और आगे चलकर कंगोंका स्थान कंङ्ली और उनके दूसरे हूण-वंशज साथी कबीले लेते हैं, इसलिये इस तरहका भ्रम होना बहुत सम्भव है। कंग दक्षिणापथके इतिहासमें काफी पीछे तक पाये जाते हैं और उनका विनाश ५वीं ६ठीं सदीमें ही हो पाता है, अथवा यह कहिये, कि अन्तमें वह तुर्कों तथा सोग्दियोंमें विलीन हो जाते हैं।

कंगोंके पश्चिममें शकोंकी सरमात् जाति दोनके तट तक फैली हुई थी, यह हम बतला चुके हैं। इन्हींके उत्तराधिकारी आगे आलानके नामसे प्रसिद्ध हुए। डाक्टर बेनादस्कीने अलानों और अन्तोंको एक बतलाया है। उन्होंने पुराने इतिहासकारों का मत देते हुए सिद्ध किया है, कि "स्क्लाव (शकलाव या शकराव) और अन्ती पहले एक ही नामधारी थे तथा यह दोनों बर्बर जातियां प्राचीनकालसे एक ही तरह की जीवन-चर्या और रीतिरवाज रखती थीं।...दोनों ही जातियोंकी एक ही भाषा थी, जो एक अत्यन्त बर्बर बोली थी। वह शकल-सूरतमें भी एक दूसरेसे भेद नहीं रखते हैं। बिना किसी अपवादके दोनों ही जातियोंके पुरुष दीर्घकाय और हट्टे-कट्टे होते। उनके शरीर और केश बहुत साफ या पाण्डु-श्वेत नहीं बल्कि वह कुछ कुछ मैले रंगके होते थ। उनका जीवन बड़ा कठोर था, मसागेतों (महाशकों) की तरह वह भी शारीरिक आरामकी परवाह नहीं करते।"[१] वर्नाद्स्कीने अन्तोंको सरमतियोंसे जोड़ते हुए कहा है, कि सरमात वर्तमान कजाकस्तानसे पश्चिमकी ओर चलकर दक्षिणी रूसमें ईसा-पूर्व दूसरी या प्रथम शताब्दीमें आये। उधरसे आनेवालोंमें यही आलान सरमाती कबीलोंमें अत्यन्त शक्तिशाली थे। इन्होंने ईसाकी प्रथम शताब्दीमें निम्न दोन-उपत्यका और उत्तरी काकेशस्को अपना निवास-स्थान बनाया। अन्तके लिखनेमें चीनी लिपिमें जो संकेत है, उसका उच्चारण अन्-चै होता है। यह भी बतलाते हैं कि अन्तीसे ही अस् या असी शब्द निकला है। १२४६-४८ ई० में पोपके दूत प्लानो कार्पिनीने भी मंगोलोंके द्वारा पराजितोंको "अलानी सिवे अस्सी" बतलाया है, और यह भी कि अलानी और आस् एक ही जाति थी। १२५३-५४ ई० में फ्रेंच राजाने रुकरुकको अपना दूत बनाकर मंगोल खानके पास भेजा था। वह भी कार्पिनीके शब्दोंको दुहराता है। अन्तमें वर्नाद्स्की इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि अन्त, अस् या यास् एक ही जाति है, जिसके वंशज काकेशस्के आधुनिक ओस्सेती हैं और पूर्वी स्लावों (आधुनिक रूसियों) के निर्माणमें इस अस् जातिका बहुत हाथ है। घुमन्तू होनेकी वजहसे यदि इनका पता अराल समुद्रसे निम्न दन्यूब (दुनाई) के पास तक मिले, तो कोई आश्चर्य नहीं। कालासागरके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित अज़ोफ या असोफ सागरका नाम वस्तुतः इन्हींके नामसे पड़ा, जिसका अर्थ है अस-सागर। जान पड़ता है, पूरबसे हूणोंका जैसे-जैसे धक्का इनपर लगता गया, वैसे वैसे आगे बढ़ते हुए वह या तो काकेशस् और रूसमें भगे अथवा उनका बहुत सा भाग हूणों में हजम हो गया।

---

[१] प्रोकोपियस्

वूसून्-राजा (सेन्-चू)

गुन्-मो	१०५ ई० पू०
ग्युन्-च्युइ-मी-के	
नीमी	
क्वान्-वान्	६० ई० पू०
चुइ-ली-मी	
इ-ची-मी	११ ई० पू०-८ ई०

चीनी अभिलेखोंमें उपरोक्त वू-सुन् राजाओंका पता लगता है। उनके नामका उच्चारण समान चीनी शब्दोंके उच्चारणमें लिखा गया है, इसलिये मूल उच्चारण क्या था, इसका समझना आसान नहीं है। सप्तनद उनकी मुख्य भूमि थी, यह उसी समयसे चीनी ग्रंथोंमें लिखा जाने लगा, जबकि ईसापूर्व २री शताब्दीके मध्यमें हूणोंके विरुद्ध शकोंको उभाड़नेके लिये चाङ-क्यान् दूत बनाकर भेजा गया। हूणों द्वारा जो वू-सुन् राजा मारा गया, उसके पुत्रको हूण राजा पकड़कर अपने साथ ले गया। पीछे उसे वू-सुन् जनमें लाकर बापकी जगह पर बैठाया। अपनी मूल भूमिसे भागते हुए महायूची वू-सुनोंकी सप्तनद भूमिसे गुजरे थे, यह हम बतला आये हैं। हूणोंके प्रहारसे त्यानशानमें अपनेको सिकोड़ लेनेसे पहले वूसुन् जन सप्तनदकी समतल सी भूमिमें रहा करता था। ईसापूर्व २री शताब्दीमें वू-सुन् जनमें १२००० परिवार या ६३०००० व्यक्ति थे। वह युद्धमें १८८८०० सैनिक जमा कर सकता था। इनकी राजधानी चि-गु इस्सीकुलके दक्षिण-पूर्वी तट पर थी, जो अक्सू (सिङ क्याङ) से ६१० ली उत्तर-पश्चिम, फर्गाना की राजधानी (खोजन्द) से २००० ली उत्तर-पूर्व और कंग-भूमि की सीमासे ५००० ली पूर्व, कंगोंकी राजधानी फर्गाना (तावङ) से २००० ली उत्तर-पश्चिम थी। रूसी इतिहासकार अरिस्तोफके अनुसार चि-गू इस्सीकुलके तट पर नहीं, बल्कि किजिल्-सू (लोहित नदी) के तट पर था। वू सुन राजाओंके बारेमें निम्न बातोंका पता लगा है :—

गुन्-मो—(१०५ ई० पू०)—इसे ही वह चीनी राजकुमारी मिली थी, जिसके नीरस जीवन-गीतको हम पहले उद्धृत कर चुके हैं। फर्गानाके राजाके श्रेष्ठ घोड़ोंकी बात सुनकर चीन-सम्राट् ने जब माँग की, तो राजाने देना नहीं चाहा, जिसका परिणाम हुआ १०२ ई० पू० में फर्गाना पर चीनकी चढ़ाई। इस चढ़ाईमें गुन्-मो ने २००० सैनिक सहायताके लिये दिये थे, लेकिन उन्होंने युद्धमें भाग नहीं लिया।

ग्युन्-च्युइ-मी—गुन्-मो का पोता था। इसके समय चीनी रानीके कारण चीनी अफसरोंका प्रभाव ज्यादा बढ़ा था।

उङ-गुइ—पिछले सेन-चू के बाद हूण राजकन्यासे उत्पन्न उसका एक छोटा पुत्र नी-मी बच रहा था, जो थोड़े समय तक ही गद्दी पर बैठ सका, और जल्दी ही उसे हटाकर सौतेले भाई उङ-गुइ-मी ने राज्यको अपने हाथमें कर अपने पूर्वके राजाकी रानी (चीनी राजकुमारी) को व्याहा। पूर्व राजाकी पूर्वोक्त विधवा रानी पहले मर गई थी, और यह दूसरी चीन राजकुमारी थी, जिसे उङ-गुइ-मीने अपनी रानी बनाया। उङ-गुइ-मीकी मृत्यु ६० ई० पू० के आसपास हुई थी। व-सुनोंका यह बड़ा शक्तिशाली और प्रतिभाशाली राजा था। देशके भीतर और बाहर सभी

जगह इसने अपने प्रतापका प्रदर्शन किया। ७१ ई० पू० में इसने चीनकी सहमतिसे हूणोंके खिलाफ अभियान किया, और ४० हजार हूणों को मार कर ७० हजार पशुओंको छीना। अपने पूर्वी और पूर्व-दक्षिणी पड़ोसी तरिम-उपत्यकाके लोगोंके साथ भी इसने छेड़-छाड़ की और अपने द्वितीय पुत्रको यारकन्दका शासक नियुक्त किया। कूचा के राजा पर भी इसका प्रभाव था, जिससे इसने अपनी बड़ी लड़की व्याही थी। इसके मरने पर गद्दीसे उतारा भाई नीमी, क्वान्-वान् की उपाधिके साथ गद्दी पर बैठा।

क्वान्-वान् (६० ई० पू०)—अपनी रानी (चीनी राजकुमारी) और प्रजासे इसका विवाद खड़ा हो गया। इसने अपने भाईकी विधवा (चीन राजकुमारी) को अपनी रानी बनाया था। चीनी राजदूतने मारनेका षड्यन्त्र किया। राजा घायल होकर बच गया। इसके लिये जब शिकायत की गई, तो चीनने अपने दूतको बुलाकर उसे दण्ड दिया। अन्तमें हूणोंने वू-सुनों पर आक्रमण किया, जिसमें क्वान्-वान् मारा गया और चीन उसकी कुछ मदद नहीं कर सका।

चुङ्-ली-मी—उसकी जगह वू-च्यू-तूने कनिष्ठ गुन-मो की उपाधि धारण करके राज सम्हालना चाहा। उङ-गुइ-मीके पुत्र य्वान-गुइ-मी भी महागुन्-मो की उपाधिसे अलग राजा बना। ज्येष्ठ गुन्-मो के हाथमें ७०००० वू-सुन परिवार थे, जब कि कनिष्ठ गुन्-मोके पास ४०००० थे। कनिष्ठ गुन्-मो (ऊ-च्यू-तू) ने चीनकी सहायतासे हूणोंके साथ लड़ाई की।

(ज्येष्ठ गुन-मो) य्वान-गुइ-मीका पोता था। इसका समय अपेक्षाकृत शांतिका था। पर यह स्वाभाविक मृत्युसे नहीं मरा।

इ-ची-मी—(११ ई० पू० और ८ ई०)—यह पिछले राजाका पोता तथा एक चीन राजकन्या का पुत्र था। ज्येष्ठ और कनिष्ठ गुन्-मो के संघर्षके समय चीनियोंने ज्येष्ठ गुन्-मोका पक्ष लिया था। कनिष्ठ गुन्-मो अन्-लि-मी चीनकी शहसे गद्दीसे उतार दिया गया। हूणोंने जब उसे मार डाला, तो उसकी जगह इ-ची-मी को चीनने राजा बनाया। ११ ई० पू० में इसका चचा बी-क्वान्-ची ८०००० आदमियोंके साथ उत्तरकी ओर चला गया और वहाँसे दोनों ही गुन्-मोके ऊपर आक्रमण करने लगा। १ ई०पू० में इसने चीनके साथ अच्छा संबंध स्थापित किया। इ-ची-मी चीन दरबारमें गया, राजधानीमें उसका अच्छा स्वागत हुआ। अन्तमें बी-क्वान्-ची चीनियों द्वारा मारा गया।

प्रायः ८ ई० में तरिम-उपत्यका हूणोंके हाथमें चली गई और चीनसे वू-सुनोंका संबंध विछिन्न हो गया, जो ७३ ई० में ही पुनः स्थापित किया जा सका। इस समय भारत और मध्य-एसियामें कुषाण राजा कनिष्क का शासन था। तरिम-उपत्यका भी कनिष्कके हाथमें थी, लेकिन उसने चीनको अपना अधिराज मान लिया था। ६७ ई० में पश्चिमी वणिक्पथको पूरी तौरसे अपने हाथमें करनेके लिये वाङचाऊके नेतृत्वमें एक बड़ी सेना पश्चिमकी ओर चली, जो विजय करती कास्पियन समुद्र तक पहुँच गई। इस समय वू-सुन राजा, फर्गानाके राजा और कंगोंने भी चीनकी अधीनता स्वीकार की थी, यह स्पष्ट ही है। ईसाकी २री शताब्दीके चतुर्थ पादमें उत्तरी चीनमें स्यान्-पी वंशका दृढ़ शासन था। स्यान्-पी तुंगुस् जातिके थे, यह कह आये हैं। १८१ ई० में स्यान्-पी राजा ता-शी-हुईने पश्चिममें वू-सुन भूमि तक अपने राज्यका विस्तार किया। ४थी

शताब्दीके आरंभमें एक दूसरे स्यान्-पी वंशने पुरानी वू-सुन भूमिके कुछ भागको अपने हाथमें किया। ४थी शताब्दीके अन्तमें से ६ठी शताब्दीके मध्य तक मध्य-एसिया पर तू-तान् वंशकी प्रभुता थी, जिन्हें भी तुंगुस् जातिका बतलाया जाता है। इन्हींके आक्रमणके समय वू-सुनोंका सप्तनदकी समतल भूमि परसे अधिकार उठ गया और वह त्यान्‌शान्‌के पहाड़ोंमें ही रह गये। ४२५ ई० में पश्चिमके बहुतसे शासकोंने अपने अपने दूत स्यान्-पी सम्राट्‌के दरबार (उत्तरी चीन) में भेजे थे, इस वक्त उत्तर चीनमें य्वान्-वेई और वेई-वेई (उत्तरी वेई और पश्चिमी वेई) दो राज्य थे। इन दूतोंमें एक वू-सुनों का भी था। ४३६ ई० में वू-सुनोंके पास चीनका दूत आया। अबतक वू-सुन प्रतिवर्ष भेंट भेजते रहे। इसके बादसे वू-सुनोंका नाम चीनी अभिलेखोंमें नहीं मिलता। आज केवल किर्‌गिज-कजाक महा-ओर्दूमें ही उइ-सुन् नामका एक कबीला मिलता है।

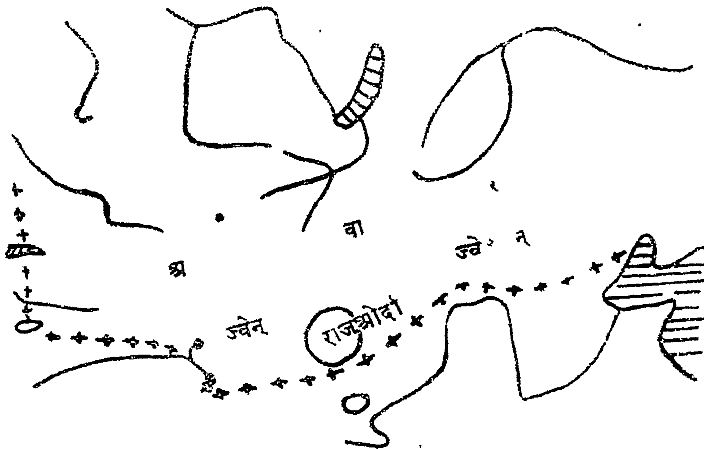
§ २. अवार (४००-५८२ ई०)

हूण फैलते फैलते एक युरेसियाई जाति के रूप में परिणत हो गये। इनके वंशधर हुंगरीके मग्यार आज भी मौजूद हैं। प्रागैतिहासिक कालमें हिंदी-युरोपीय जाति भी इसी तरहकी एक युरेसियाई जाति बनी थी। ऐतिहासिक कालमें हूणोंके बाद तुर्क युरेसियाई जातिके रूपमें परिणत होकर, एक समय मंचुरियासे काकेशश् और क्रिमिया तक फैले, बादमें यद्यपि उनके पूर्वी भूभागको दूसरी मंगोलायित जातियोंने ले लिया, किंतु तब भी वह पूर्वी युरोप तक छाये रहे। आज भी पूर्वी मध्य-एसिया, पश्चिमी मध्य-एसिया, आजुबाईजान और तुर्कीमें किसी न किसी रूपमें तुर्की-भाषी जाति ही निवास करती है।

१. अवार (जू-जुन्, ज्वान-ज्वान)

तुर्कोंके इतिहासमें पदार्पण करनेसे पहिले अवार हूण देशके अधिकारी थे, जिनका ही स्थान तुर्कों ने लिया है पहले हमने संकेत किया था, कि हूणोंके ध्वंसके बाद स्यान्-पी (तुङ-हू) कबीले) ने मंचुरिया, मंगोलिया और चीनके कुछ भागों पर अपना साम्राज्य स्थापित किया। इन्हींका एक प्रभुताशाली राजवंश तो-बा था, जिसकी स्थापना ३१५ ई० के आसपास और समाप्ति ५वीं सदीमें हुई। इसी तोबा वंशसे अवारोंका संबंध था, जिन्हें मुकुरु-तोबा भी कहते हैं। इस हूण-जनका निवासस्थान तिङ-लिङ (कंकाली) के निवास बैकाल सरोवरके नजदीक तथा गोबीके रेगिस्तानसे उत्तर था। तातुङके तोबा राजकुमार इलू को एक बच्चा दास मिला, जो अपना नाम भूल गया था और उसके स्वामीने उसे मुकुरु नाम दे दिया। युद्धमें बहादुरीका काम करनेके लिये मुकुरु को दासता से मुक्त हो स्वतंत्र सैनिकका अधिकार प्राप्त हुआ। पर, किसी सैनिक सेवाके समय उपस्थित न हो सकने के कारण उसे मृत्यु-दण्ड मिलनेवाला था, इसलिये वह गोबी के उत्तरकी ओर भाग गया। वहाँ धीरे धीरे लोगोंको जमा करके वह लुटेरोंका सरदार बन गया। इसके पुत्र शरुकने अपने पिताकी जमातको और बढ़ाकर एक छोटा-मोटा ओर्दू कायम कर लिया, जिसका नाम अवार पड़ा। पहले चीनीमें अवार कबीलेका नाम जू-जुन था, जिसे तोबा सम्राट् ताई-हू-ती (४२४-४५२ ई०) ने ४५१ ई० में बदल कर ज्वान-ज्वान कर दिया। मुकुरुकी ७वीं पीढ़ीमें शक्तिशाली नेता शे-लून् हुआ। इसने काउ-शे (कंकाली) कबीलेको जीता और अपनी सैनिक शक्तिको मजबूत और सुसंगठित करके कगान (खान) की उपाधि धारण की।

कोरियासे अल्ताई तक फैले इसके राज्य में कुछ चीनका भाग भी था। शे-लून् मध्य-एसियाके वणिक्‌पथके कुछ भागका भी स्वामी था। जहाँ तक चीन-साम्राज्यका संबंध था, अवारोंने अब अपने पूर्वज हूणोंका स्थान लिया था। उन्हींकी तरह यह भी कभी चीनको लूटते और कभी अवश्यकता पड़ने पर उसे सैनिक सहायता देते थे। अवारोंकी शक्तिकी समाप्ति ५४६ ई० के आसपास तुर्कोंने की। इनके एक राजाका नाम आमन भी था।



१४. अवार साम्राज्य (४२० ई०)

अवारो पर चीनी संस्कृतिका प्रभाव पड़ा था, साथ ही बौद्ध धर्म भी उनमें बहुत फैला था। तोबा भी बौद्ध सम्राट् थे। अन्तमें अवारोंमें आपसी फूटने भयंकर रूप धारण किया, जिसका लाभ उनके अधीनस्थ तुर्क लोहकारोंने उठाया। अल्ताईके दक्षिणी सानू पर तुर्क अपनी खुशीसे लोहेका काम नहीं कर रहे थे। वह इस गुलामीसे निकलना चाहते थे और इस वक्त उन्हें ऐसा मौका मिल गया।

स्रोत-ग्रंथ :

१. क्लि० सोओब० XIIIpp ११२ (वेर्न्‌श्ताम् का लेख)
२. आर्खेआलोगिचेस्किइ ओचेर्क सेवेर्नोई किर्गिजिया (वेर्नश्ताम्, फ्रुन्जे १९४१)
३. वोस्तोको वेदेनिये II (१९४१) p. 2।

अध्याय ४

तुर्क (५४६-७०४ ई०)

हूण कालमें काउ-शे (कंकाली, तिङ-लिङ तिकालिक) नामकी एक जाति रहती थी। काउ-शे का अर्थ है बड़ी गाड़ी। बहुत बड़ी पहियोंवाली गाड़ियोंमें अपना सामान लादे यह एक जगहसे दूसरी जगह घूमा करते थे, जिसके कारण उनका यह नाम पड़ा। ऐसी गाड़ियोंका रवाज तुर्कों और मंगोलोंके काल तक पाया जाता है। काउ-शे का पता पहले पहल ईसाकी ५वीं सदीमें मिलता है। इनका ज्वान-ज्वानसे बराबर संघर्ष होता रहा। अवार (ज्वान-ज्वान) को पराजित करते समय एक बार तोबा सम्राट् ताइ-वू-ती (४२४-५२ ई०)ने इनके ऊपर भी आक्रमण किया और ५० हजार नरनारियोंको बंदी बनाया। लूटके मालमें कई हजार बड़ी गाड़ियाँ तथा १० लाखसे ऊपर पशु उसके हाथ आये। अवारों (ज्वान-ज्वान) की तरह काउ-शे भी चीनको हैरान करते थे। जब सीधे चीन पर आक्रमण नहीं कर पाते, तो उसके अत्यन्त मूल्यवान वणिक्पथको अपना शिकार बनाते। एक समय तोबा सम्राट्ने इन्हें गोबी रेगिस्तानके दक्षिणमें लाकर बसा दिया। वह समझता था, इस प्रकार हम उन पर काबू रख सकेंगे। लेकिन जल्दी ही वह फिर विद्रोह करके उत्तरकी ओर चले गये। तोबा वंश घुमन्तूओंके दबानेमें अधिक सफल हुआ था। उसकी कोशिश यही थी, कि ज्वान-ज्वानको दूसरे घुमन्तूओंके साथ संबंध जोड़नेका मौका न मिले। तिङ लिङ सरदार पीछे ऊरुम्चीके पास छोटे छोटे राजा या सरदार बनकर रहने लगे। तिङ-लिङ भी अपना बड़ा राज्य कायम करनेमें सफल होते, लेकिन उनमें कभी इस तरहका संगठन नहीं हो पाया। हाँ, खतरेके समय सब एक हो जाते थे। युद्ध करनेकी कोई सुसंगठित व्यवस्था नहीं थी, हर एक व्यक्ति अपना हथियार ले जहाँ चाहता, वहाँ आक्रमण कर देता। अपना पल्ला भारी रहने पर तो कोई हरज नहीं था, किंतु इस व्यवस्थाके कारण न वह डट कर लड़ सकते थे, और न पराजयके समय अपनेको अच्छी तरह सम्हाल सकते थे। व्याहमें इनके यहाँ ढोरों और घोड़ोंका दहेज दिया जाता, अनाजका कोई उपयोग नहीं था और न किसी तरहका नशेवाला पेय ही इस्तेमाल होता था। चमड़ा पहनना, मांस खाना तथा अत्यन्त ठण्डी जगहमें रहना उन्हें और भी गंदा बनाये हुए था। घोड़ों और ढोरोंका पालना यही उनकी जीविका थी। आगे चलकर तिङ-ली तुर्कोंमें हजम हो गये।

१. तुर्क साम्राज्यकी स्थापना

चीनी स्रोतसे[1] पता लगता है, कि तुर्क हूणोंका ही एक कबीला था, जिसका पुराना नाम असूसेना था। ४३३ ई० में तोबा-सम्राट्ने इनके स्थानको छीनकर इन्हें अपने भीतर हजम

---

[1] A Thousand years of Tatars, pp. 365.

कर लेना चाहा। इसी समय ५०० असेना परिवार भागकर ज्वान-ज्वानके राज्यमें चले गये, जहाँ उन्हें अल्ताई (अल्तुनइइश) के दक्षिणी सानू पर लोहा बनानेका काम मिला,[१] इसे हम कह चुके हैं। ये लोग शिरत्राण जैसी नेकीली टोपी पहना करते थे, जिसके कारण इनका नाम दुर्-पो (तू-पू, टोपी) पड़ा, जिसका ही अपभ्रंश तिर्कू (तुर्कू, तुर्क, त्युरोक या तुरुष्क) है।[२] इससे पहले तुर्क ल्याङ जैसे चीनके अत्यन्त सुसंस्कृत क्षेत्रमें काफी समय तक रह चुके थे, किंतु जान पड़ता है, उससे इनको बहुत लाभ नहीं हुआ। ज्वान-ज्वानकी शक्तिके निर्बल होते ही अपनी दासताका अन्त कर जल्दी ही इनके सरदार तुमिनने अपनेको स्वतंत्र घोषित किया। ५४६ई० के आसपास तू-मिनने अपनेको इल्-खाकान घोषित किया। ज्वा-ज्वानके राजा अनाक्वेने व्याहके लिये कन्या देनेसे इन्कार करने पर इनके हाथों प्राणोंसे हाथ धोया। इल्-खान, एल-खान या एल-खाकानसे बना है। खाकान, खगान, खआन, खान वस्तुतः शान्-यूका ही पर्याय है। पहले हम लिख चुके हैं, कि 'शान्-यू' चीनी शब्दानुकरण है। मूल हूण शब्द शायद चिङ-गिस् या जिङ-गिस् रहा हो, जिसे किसी किसी ने जंगी बना देनेकी भी कोशिश की है। पहले ज्वान-ज्वानने खान या खकानकी उपाधि धारण की थी, पीछे तो राजाके लिये तुर्कोंमें यही शब्द बहु प्रचलित हो गया। मंगोल-वंशने भी इसी उपाधिको अपनाया और उन्हींका अनुसरण करते मध्य-एसियामें १६१७ ई० तक खानकी उपाधि केवल राजाके लिये ही सुरक्षित थी और साधारण कुलीन परिवारका मुखिया भी अपने नामके साथ खान नहीं लगा सकता था। लेकिन, मुगलोंके समयसे हिन्दुस्तानमें यह पदवी टके सेर हो गई। यद्यपि आरंभही में इसका मोल इतना नीचे नहीं गिराया गया था, बल्कि खान-खानां (खानोंका खान) तो मुगल दरबारकी एक बड़ी उपाधि थी। अकबरका संरक्षक और प्रधान-मंत्री वैरम खां खाने-खानाँ कहा जाता था। मुगलोंने जब राजाके लिये शाह, शाहंशाह या पादशाह की उपाधि स्वीकार कर ली, तो उन्हें खानकी क्या परवाह हो सकती थी? बाबरके पूर्वज तैमूरने इस पदवीको इतना उच्च समझा, कि उसे चंगेज-वंशज अपने गुड़िया राजाके लिये ही सुरक्षित रहने दिया, और अपने लिये 'अमीर' (सामन्त) की उपाधिको पर्याप्त समझा।[३]

तू-मुन्को इलि-खान तू-मिन कहा जाता है। इलि या एल जनका परियाय है, इल-खान, (एल-खान) का अर्थ है, जनोंका राजा। पहले पहल इसका ओर्दू हाइ-ह्वाङके उत्तरमें था। अपने को एल्-खान घोषित करनेके साथ इसने और भी कई उपाधियां प्रारंभ कीं। हूणोंके समय रानीको येङ-ची कहा जाता था, अब उसे उसने खो-हो-तुन् की उपाधि प्रदानकी, जो पीछे खो-तुन या खा-तुन बन गया। आज भारत और बाहरके मुसलमानोंमें कुलीन महिलाओंके साथ खातूनकी उपाधि आम तौरसे लगायी जाती है। तू-मिन्ने अपने जीवनमें ही तुर्क-शक्तिको बहुत बढ़ा दिया था। जब मार्च ५५३ ई० में वह मरा, तो उसका शक्तिशाली वंश और कबीला, जिसे चीनी पुस्तकोंमें तू-क्यु या तुइकू कहा जाता हैं, बहुत प्रसिद्ध हो चुका था। तुर्कोंमें प्रचलित कुछ पद थे—

---

[१] त्युरोक पृष्ठ ६
[२] वहीं पृ० ३६५
[३] त्युरोक (वेर्न्स्ताम) पृ० ८२-८३।

दे-ले (ते-ले)-मंगोल देरे,	राजकुमार
कुइ-लुइ-चुइ (किलिच या खिलिज)	एक उच्च-पदाधिकारी
अ-पो (अ-पा)	" " "
घे-रे-फा (श्या-लि-फा)	"
तू-तुन्	" " "
जि-गिन् (सू-चिन्)	" " "

नाम रखनेमें तुर्कोंमें वैयक्तिक गुणका ध्यान रक्खा जाता था। जैसे शा-वौ-लि-यो (शा-पो-रो) का अर्थ है विक्रम या पराक्रमी, सन्-द-लो का अर्थ है मोटा, द-लो-बियान = बहुत पीनेवाला। कुछ पुराने तुर्की शब्द हैं—

को-ली (कारी)—बृद्ध
घो-रन्—घोड़ा (यह भारतमें बहु प्रचलित शब्द तुर्की है)
घो-रन्-सुनी—सैनिक अफसर
करा—काला (कृष्ण) इसे काल या (मृत्यु)से मिलाकर भारतीय बना दिया गया।
करा-शू—अति उच्च अधिकारी
सो-को—केश
तू-दुन्—उच्च अधिकारी, राज्यपाल
सो-को तू-दुन— प्रदेशिक राज्यपाल
जे-खान्—एक उच्च अधिकारी
अन्-जन्—मांस
अन्-जन्-कुनी—राज्य-प्रतिहार
लिन्—भेड़िया
लिन्-खाकान—उपराज
यब-गू (जे-गू)—राजकुमार
ई-खकान—गृह-राजा (ई = घर)

२. शव-क्रिया[1]

बहुत जल्दी ही तुर्क घुमन्तू बौद्ध धर्ममें दीक्षित हो गये, जिसका उनके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा और मुसलमान होनेसे पहले तक बौद्ध धर्म आजके मंगोलोंकी तरह तुर्कोंका भी जातीय धर्म रहा। उनके कितने ही जातीय रीति-रिवाज थे, जिनमें अपनी साधारण नीतिके अनुसार बौद्ध धर्मने हस्तक्षेप करना पसंद नहीं किया। मरनेके बाद आदमीकी लाश उसके तम्बूके सामने रक्खी जाती थी। मृत सरदारके बेटे-पोते तथा उसके दूसरे संबंधी एक एक घोड़ा या भेड़ तम्बूके सामने खड़ा करते थे। परिवारके लोग शोक प्रकट करनेके लिये छुरीसे अपने चेहरेको घायल करते, जिसमें रोते समय आंसुओंके साथ रुधिर भी मिश्रित हो जाये। वसंत और पतझड़के समय

[1] A Tthousand years of Tatars

कब्रमें मुर्दे दफनाये जाते। कब्रके ऊपर पत्थरोंको खड़ाकर उनपर शोक-प्रकाशक चिह्न लगा दिये जाते। मृत योद्धाने अपने जीवनमें जितने शत्रुओंको मारा, उतने ही पत्थर गिनकर कब्रके ऊपर खड़े किये जाते। उस दिन कुटुम्बके सारे स्त्री-पुरुष सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणसे सज्जित हो, उसी तरह कब्रपर एकत्रित होते, जैसे तिङ-लिङ लोगोंमें। जमा हुओंमें यदि कोई पुरुष वहां उपस्थित किसी लड़कीको पसन्द करता, तो घर लौटने पर मांगनेके लिये संदेश भेजता, और आमतौरसे लड़कीके माता-पिता उसे स्वीकार करते। यह रवाज स्यान्-पी लोगोंमें भी था।

तुर्क घुमन्तू पशुपाल थे। हूणों की तरह इनकी भी अपनी चरभूमि होती थी। खाकान की चरभूमि तू-चिन पर्वत था। हूणों ही की तरह प्रतिवर्ष वहाँ वह अवश्य जाता और देव-पितर के लिये बलि और श्राद्ध करता। चान्द्र पंचमी (शुक्ल पक्ष) को देव और प्रेतात्माओं के लिये बलि देने के समय ओर्दू के दूसरे लोगों को भी वहां जमा होना पड़ता। तू-चिन् से १५० मील पश्चिम पू-तेङ्ग्री (पृथिवी-आत्मा) नामक वृक्ष-वनस्पतिहीन पहाड़ था। चीनी लेखकों के अनुसार तुर्कों की लिपि हू (सुरियानी) थी। उनका अपना कोई पंचांग नहीं था। तुर्क पुरुष पाशा खेलने के बड़े प्रेमी थे और स्त्रियाँ पादकंदुक (फुटबाल) खेलने की। वह कूमिश (घोड़ी के दूध से बनी शराब) पीते और पीते-पीते मस्त होकर गीत गाते।

३ तुर्क-राजावलि—

१. तू-मिन इलिखान	मृ. मार्च ५५३ ई०
२. इसि-गी, तत्पुत्र	५५३
३. यू-यू	५५३-६४ "
४. तोबा, तत्पुत्र	५६९-८० "
५. शेतू शबोलियो, तत्पुत्र	५८२-८७ "
६. दूलन, तत्पुत्र	५८८-६०० "
७. दातू बुगा	६००- "
८. खेली	
९. तुली, तद्भ्रातृव्य	६२८-३१ "
१०. सिबिली तत्पुत्र	६३१-४७ "
११. चेबी	६४७-८२ "
(१) गुदुलू	६८२-९३ "
(२) मोचो	६९३-७१६ "
(३) मोगिल्यान	७१६-३५ "
(४) ईजान्या	७३५-३९ "
(५) बिग्या गुदुलू	७३९-४२ "
(६) ओजमिशि	७४२-४४ "
(७) वाइमेइ	७४४-४७ "

¹ A Thousand years of Tatars, pp. 365

(१) इल-खान तू-मिुन[1] (मार्च ५५३ ई०)

(मृ-मार्च ५५३ ई०)—६ठीं शताब्दी में घुमन्तू तुर्कों का नया साम्राज्य अल्ताई से आरंभ होकर थोड़े ही समयमें प्रशान्त महासागर से काला सागर तक पहुँच गया। पश्चिमी तुर्क साम्राज्य का केन्द्र वू-सुनों की पुरानी भूमि सप्तनद थी। उसमें मध्य-एसिया भी शामिल था। चीन से पश्चिमी एसिया और युरोप की ओर जानेवाला वणिक्पथ इनके राज्य से होकर जाता था। यह वणिक्पथ त.शकन्द, औलिया-अता होते सप्तनद में चू-नदी के तट पर पहुँच, वहाँ से इस्सिकुल के दक्षिणी तट से होते वेदेल डाँडे को पारकर अकसू (तरिम-उपत्यका) में पहुँचता था। स्वेन्-चाङ अक्सूसे इसी रास्ते पश्चिमी मध्य-एसिया में पहुँचा। चू-उपत्यका उस समय कृषि-प्रधान थी, जिसके अग्रदूत खोजन्द (फर्गाना राज्य) से आये सोग्दी थे। स्वेन्-चाङ के पहले वक्षु से चू-नदी तक की सारी भूमि संस्कृति, वस्त्राभूषण, निवास, लिपि और भाषा में एक थी। इनकी लिपि सुरियानी से निकली हुई ३२ अक्षरों की थी। यह मंगोली की तरह ऊपर से नीचे की ओर लिखी जाती थी। सोग्दियों में मानी के धर्म के मानने वाले बहुत थे। निवासियों में आधे कृषक और आधे व्यापारी थे। सुई नदी के तट पर अवस्थित कास्तेक डांडे से दक्षिण में अवस्थित सुयाव नगर उनका बड़ा वाणिज्य-केन्द्र था। ७ वीं शताब्दी में भी इस नगर में बहुत से विदेशी व्यापारी रहते थे। सुयाब के दक्षिण बहुत से नगर थे, जिनके अपने अपने शासक थे, किंतु सभी तुर्क-कगान को अपना अधिपति मानते थे।

पीछे पश्चिमी कगान का ओर्दू सुयाब के पास ही रहता था।

(२) इसि-गी या इस-ते

वंश-स्थापनक तू-मिुनका पुत्र था, किंतु तुर्क घुमन्तू जन अपने पूर्वज हूणों और दूसरे घुमन्तूओं की तरह उत्तराधिकारी चुनने में जनतंत्रता का अधिक ख्याल करता था। इसीलिये इसिगी ज्यादा दिनों तक नहीं रह सका और तू-मिुनका छोटा भाई कि-गिन मू-यू-खानके नाम से तुर्कों का खाकान बना। इसि-गी की संतान ने आगे चलकर पश्चिमी तुर्क राजवंश को स्थापित करने में सफलता पाई, इसलिये इसिगी खान को तुर्क-इतिहास से भुलाया नहीं जा सकता।

(३) मू-यू-खान (५५३-६४ ई०)—

इसने तुर्क साम्राज्य को काफी मजबूत किया। विशाल राज्य की समृद्धि से लाभ उठानेवाले तुर्क-सामन्तों में अब नागरिक विलासिता जड पकड़ने लगी। महान् वणिक्पथ इनके राज्य के भीतर से जाता था, और अपने हूण पूर्वजों की तरह यह हरदम चीन के भीतर घुसकर लूटपाट करने के लिये तैयार थे। अपनी पुरानी नीति के अनुसार चीन बराबर भेंट और राजकन्या देकर इन्हें शांत रखना चाहता था।[1]

---

[1] वहीं पृष्ठ ३६७

(४) तोबा खान[1] (५६९-८० ई०)—

मू-यु-खान के मरने के बाद इसका पुत्र दालो-ब्यान नहीं बल्कि भाई तोबा तुर्कों का खाकान बना। दालोब्यान ने चचा के राज करते समय छेड़छाड़ नहीं की। तोबा के मरने के बाद ५८० ई० में उत्तराधिकार को लेकर जो झगड़ा हुआ, उसमें तुर्क साम्राज्य पूर्वी और पश्चिमी दो भागों में विभक्त हो गया। पश्चिमी तुर्क-साम्राज्य का संस्थापक दालोब्यान था। हमारे विषय से यद्यपि दालोब्यान और उसके उत्तराधिकारियों का ही विशेष संबंध है, लेकिन हम पूर्वी तुर्कों को छोड़ नहीं सकते, क्योंकि वह भी अप्रत्यक्ष रूप मे पश्चिमी मध्य-एसिया की संस्कृति और इतिहास को प्रभावित करते थे।

तोबा पहले साम्राज्य के पूर्वी भाग का लघु-खाकान तथा लाखों सेनाओं का नायक था। वह स्यान-पी सम्राट् की नाक में दम किये रहता था, जो भय के मारे प्रतिवर्ष एक लाख रेशमी थान और दूसरी भेंटें भेजता था। चीन की पश्चिमी राजधानी में तुर्कों की बड़ी आवभगत होती थी। कभी कभी तीन-तीन हजार तुर्क रेशम पहने मांस की दावत उडाते वहाँ डटे रहते थे। लेकिन तोबा इसके लिये चीन का कृतज्ञ न होकर कहता था—"जब तक मेरे दो पुत्र (चीन के राजा) अपने कर्तव्य का पालन करते रहेंगे, तब तक मुझे किसी चीज की कमी नहीं रहेगी।"

(बौद्ध धर्म का प्रवेश)—

चाङ-क्यान् की यात्रा के समय (१३८-१२६ ई० पू०) तरिम-उपत्यका में बौद्ध धर्म पहुंच चुका था। उसके बाद उत्तर के घुमन्तू यद्यपि इस भूमि पर विजयी होते रहे, किंतु बौद्ध धर्म उनके ऊपर धर्म-विजयी होता रहता था। कहा जाता है, बौद्ध धर्म पहले ईसापूर्व २ री ही शताब्दी में चीन पहुँच चुका था, किंतु इस का ठीक प्रमाण पूर्वी हान वंश के सम्राट् मिङ (५८-७५ ई०) के समय में मिलता है। इस सम्राट् ने बौद्ध पुस्तकों और बौद्ध भिक्षुओं को लाने के लिये अपने दूत भारत भेजे, जिसके साथ काश्यप मातङ और धर्मरत्न दो भिक्षु बहुत सी धर्म-पुस्तकों और मूर्त्तियों के साथ चीन-राजधानी लोयाङ पहुंचे। काश्यप मातङ द्वारा अनुवादित "द्वाचत्वारिंशत्-सूत्र" चीनी भाषा में अब भी मौजूद है। हान्-वंश के बाद चीनी राजवंशों तथा उनके पड़ोसी घुमन्तूओं पर बौद्ध धर्म बराबर प्रभाव डालता रहा। जहाँ चीन अपने रेशम और विलास सामग्रियों को देकर घुमन्तू सामन्तों को चाल-व्यवहार में सभ्य बनाता, वहां उनकी अध्यात्मिक भूख को तृप्त करने के लिये बौद्ध धर्म आगे बढ़ता। ५७० ई० में तोबा खाकान ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। उसके बाद क्रूर घुमन्तुओं को बौद्ध धर्म ने कोमल बनाना शुरू किया। कहते हैं युद्ध-बंदियों में एक बौद्ध भिक्षु था, जिसने खाकान को उपदेश करते हुये बतलाया, कि स्यान्-पी राजवंश की समृद्धि का कारण धर्म है। तोबा को बौद्ध धर्म बहुत अच्छा लगा। उसने एक विहार बनवाया। यह स्पष्ट है ही, कि विहार घुमन्तू शिविर नहीं हो सकता था। यह भी याद रखने की बात है, कि इसी समय से कुछ पहले कोरिया के रास्ते बौद्ध धर्म जापान में पहुँचकर फैलने लगा। तोबा ने बौद्ध ग्रंथों को लाने के लिये ची-वंश की राजधानी (वर्तमान होनान्) में

---

[1] वहीं पृ० ३६७

दूत भेजा। तोबा ने अपने को बहुत शीलवान् बौद्ध उपासक बनाने की कोशिश की। उसने कितने ही स्तूप बनवाये, बहुत से धार्मिक अनुष्ठान कराये। उसको इस बात का बहुत अफसोस था, कि मैं चीन जैसे बौद्ध देश में नहीं पैदा हुआ। चि-वंश का नाश होने लगा, तो वहां का राजा तोबा की शरण में आया। उसकी ओर से तोबा आधुनिक पेकिङ पर आक्रमण करना चाहता था, किंतु चीके प्रतिद्वन्दी चाउ-वंश ने जब अपनी कन्या प्रदान की, तोबा ने उसे उसके शत्रु के हाथ में दे देने में भी आनाकानी नहीं की।

तोबा के मरने पर मू-यू खान का पुत्र दालोब्यान अपने को उत्तराधिकारी समझता था, लेकिन पलडा तोबा के पुत्र ने-तू (शे-तू) का भारी हुआ, जो शाबो-लियो की उपाधि के साथ तुर्कों का खाकान बना। अबसे संयुक्त तुर्क साम्राज्य नष्ट हो गया और तोबा की संतान ने पूर्वी साम्राज्य को अपने हाथ में ले लिया। तोबा के दूसरे भाइयों तू-मिन और मू-यू खान की संतानों ने दालोब्यान के नेतृत्व में पश्चिमी तुर्क-साम्राज्य स्थापित किया।

तू-मिन् राजा का पुत्र नहीं था। उसने अपने तुर्क ओर्दू और भाइयों की मदद से राज्य कायम किया था। तुर्क ओर्दू अभी जन-जातीय अवस्था में था, इसलिये एकतंत्रता को पसन्द नहीं कर सकता था। सभी घुमन्तूओं की तरह तुर्क भी नेता या खाकान को चुनने का अधिकार रखते थे। इसीलिये तुर्कों में पहले कितने ही समय तक उत्तराधिकारी पुत्र नहीं बल्कि वह व्यक्ति होता था, जिसे ओर्दू निर्वाचित करता था। यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं, कि खाकान की इच्छा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इतनी जनतांत्रिकता रखते हुये भी उत्तर के यह घुमन्तू यह मानने के लिये तैयार थे, कि जिस परिवार में उनके खाकान पैदा होते आये हैं, वह कुलीन है। तू-मिन् के कार्य में उसके भाइयों ने सहायता की थी, इसलिये नेपाल के राणा जंगबहादुर की तरह एक के बाद एक उसके भाइयों को उत्तराधिकारी माना गया। तू-मिन् का पुत्र इसिगी कुछ महीनों ही के लिये खाकान रहा और अन्त में जन (ओर्दू) की राय सर्व-मान्य हुई और भाई मू-यू को खाकान बनाया गया। उसके बाद भी उसका भाई तोबा उत्तराधिकारी चुना गया। तोबा ने अपने मरने के समय (५८० ई०) से पहले अपने पुत्र यन्-लो को कहा था—"वस्तुतः सबसे नजदीक का संबंध पिता-पुत्र का होता है, किंतु मेरे बड़े भाई ने अपनी संतान को गद्दी नहीं देना चाहा और गद्दी मुझे मिली। मेरे मरने पर तू दालोब्यान की अधीनता स्वीकार करना।" लेकिन तोबा के पुत्र इसे क्यों मानने लगे?

(५) शेतू शबोलियो[1] (५८२-८७ ई०)—

अपने मृत खाकान की इच्छा के अनुसार जन (ओर्दू) ने दलोबियान को खाकान बनाना चाहा, लेकिन आपत्ति उठाई गई, कि उसकी मां उच्च-वंश की नहीं है। तो भी तोबा का पुत्र यन्-लो उत्तराधिकारी नहीं माना गया और तोबा का दूसरा पुत्र इलि-गुई-लू से-मोखे शबोलियों के नाम से खाकान हुआ, इसे ही ने-तू या शे-तू शबोलियो भी कहते हैं। इसका शिविर तूकिन् पर्वत के पास रहा करता था। हूणों की तरह तुर्कों में भी राजवंशिक उप-खाकान हुआ करते थे। वह अपने प्रदेश के प्रधान सेनापति और प्रधान शासक माने जाते थे। तोबा का दूसरा

[1] वहीं पृ० १६७

पुत्र अमरो तुला-उपत्यका (मंगोलिया) में द्वितीय खाकान था। दलोबियान यद्यपि खाकान पद से वंचित कर दिया गया था, और उसे अ-पो-खाकान बनाके शांत रखने की कोशिश की गई, लेकिन इसमें सफलता नहीं हुई। शबोलियो के शासन के आरंभ के साथ-साथ तुर्क साम्राज्य दो भागों में बँट गया, और शबोलियो पूर्वी तुर्क साम्राज्य का खाकान रह गया। शबोलियो वीर और अपने ओर्दू का बहुत प्रिय नेता था। सुदूर उत्तर के सभी कबीले उसको मानते थे। शबोलियो का अपने सौतेले चचा दातूसे झगड़ा हो गया। उसे मारकर दातू ने बूगा-खां के नाम से अपने को स्वतंत्र खाकान घोषित किया।

शबोलियो के खून में भी अपने पूर्वजों की स्वातंत्र्य-प्रियता भरी हुई थी, लेकिन वह मानता था, कि जिस तरह आकाश में दो सूर्य नहीं हो सकते, उसी तरह दुनिया में दो सम्राट् (चक्रवर्ती) नहीं हो सकते। इसीलिये शिष्टाचार के नाते वह चीन के देवपुत्र को अपना सम्राट् मानने के लिये तैयार था। चीन सम्राट् विन्-ती (५८१-६०५ ई०) ने गलती की। उसने यू‌इ-किङ-ज़े को अपना दूत बनाकर भेजा, कि खाकान को अधीनता स्वीकार करने के लिये कहे। शबोलियो ने पूछा, अधीन किसे कहते हैं? किसी सरदार ने कह दिया—"जिसे हमारे यहाँ दास कहते हैं।" तुर्क खाकान का खून गरम हो गया। उसने कहा—"क्या जैसा हम अपने दास के साथ करते हैं, वैसा ही सुइ-कुल के देवपुत्र भी मेरे साथ करेंगे?" उसने अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। सुइ-वंश ने कुल ३७ वर्ष राज्य किया, किंतु चीन की शक्ति और समृद्धि बढ़ाने में जितना काम इस वंश के पिता-पुत्र दो सम्राटों विन्-ती और याङ-ती ने किया, वैसा किसी एक वंश ने नहीं कर पाया। इसकी बनवाई विशाल नहरों और मार्गों द्वारा देश कृषि और व्यापार से मालामाल होने लगा, जिसका कि पूरा फायदा सुइ के उत्तराधिकारी थाङ-वंश (६१८-६६० ई०) ने उठाया। सुइ जैसे शक्तिशाली राजवंश को नाराज करके शबोलियो कैसे सुखसे रह सकता था? उसके विरुद्ध चीनी सेना (६८० ई०) भेजी गई। तुर्क-खाकान को अपनी समृद्ध चर-भूमि को छोड़ कर उत्तर की ओर भागना पड़ा। इसी वक्त तुर्कोंमें अकाल पड़ा। लोग खाकर फेंकी पशुओं की हड्डियों को पीस पीसकर खाने लगे। चीन दलोबियान की सरकशी को सहन नहीं कर सकता था। उसे चढ़ा आते देख दलोबियान भागकर पश्चिमी तुर्कों के स्वनिर्वाचित खाकान दातू-बुगा-खान के पास चला गया। बुगा खान के पक्ष में तुर्कों के अतिरिक्त कितने ही दूसरे घुमन्तू कबीले थे, जिनमें से तिङ-लिङ एक था। तिङलिङ ने शबोलियो के परिवार को पकड़ कर चीन-सम्राट् के पास भेज दिया था, लेकिन विन्-ती क्षुद्र हृदय नहीं था। वह स्वयं अपनी वीरता से एक राजवंश का संस्थापक बना था, और वीरों की कदर करना जानता था। उसने परिवार को सम्मान-सहित शबोलियो के पास भेज दिया। शबोलिया उसके लिये बहुत कृतज्ञ हुआ और उसने मरुभूमि को चीन और तुर्क साम्राज्य की सीमा मान लिया। शबोलियो की पूरी उपाधि थी "महातुर्कके इलिकु-इ-लू ओर्दू के मो-गो खाकान शे-तू शबोलियो।"

मू-यू खान से रोमन-सम्राट् का दूत ५६८ ई०में मिला था। उस समय खाकान का शिविर अल्ताई पहाड़ में था। यह दलोबियान की फूट से १२ वर्ष पहले की बात है। रोमन इतिहासकार उस समय के तुर्क-साम्राज्य के बारे में लिखते हैं, "अपने शस्त्र-बल तथा हेप्ताल सरदार कतुल-फुस के विश्वासघात के कारण हेपताली महाराज्य को लेते तुर्क नये (सासानी) साम्राज्य की

सीमा की ओर बढ़ रहे हैं। पहले के हेफ्तालों (श्वेत हूणों) के अधीन वक्षु अन्तर्वेद के कबीलों ने तुर्कों की अधीनता स्वीकार कर ली है।"[१]

शबोलियो को चीन-सम्राट् विन्-ती कितनी आदर की दृष्टि से देखता था, इसका पता इसीसे मिलेगा, कि उसकी मृत्यु पर सम्राट् ने तीन दिन दरबार बन्द करके मातम मनाया।

६. दूलन खान[१] (५८८–६०० ई०)

शबोलियो के बाद उसका पुत्र दुलन खानके नाम से गद्दी पर बैठा। उसने ५८८ ई० में १० हजार घोड़े, २० हजार भेडें, ५०० ऊँट सम्राट् के पास भेंट के रूप में भेजे। घुमन्तू तुर्कों की पशु ही सम्पत्ति थे। भेंट के बदले चीन-सम्राट् की ओर से लाखों थान रेशम और दूसरी बहु-मूल्य चीजें मिलती थीं, इसलिये यह कोई घाटे का सौदा नहीं था। विलासिता की चीजों को भेजकर तुर्क सामन्तों को नरम और विलासी बनाने का भी अवसर मिलता था। दूलन खानने भेंट भेजकर सम्राट् से प्रार्थना की, कि सीमांत पर हमारी चीजों के बेंचने के लिये हाट लगाई जाय। सम्राट् ने इसे स्वीकार किया और पुरानी प्रथा के अनुसार नये खाकान के पास एक राजकन्या भी भेजी। दूलन का शिविर उत्तरी शान्शी से नातिदूर तू-किन् की पहाड़ियो में था। प्रतापी हूण शान्-यू मा-दुन का भी शिविर यहीं रहा करता था। दूलन के खाकान बनने में शेतू का दूसरा पुत्र अपने अधिकार की हानि समझता था। उसने दातू वूगा खान से मिलकर भाई के ऊपर आक्रमण किया। दूलन को भागकर चीन में आश्रय लेना पड़ा। सम्राट् विन्-ती ने उसके लिये शान्सी में एक नगर बसा दिया और पहली स्त्री के मर जाने पर उसके लिये दूसरी राजकुमारी भेजी। दूलन को यह स्थान पसन्द नहीं आया, तब उसे ओर्दुस् प्रदेश (हवाङ्हो मुडाव) में रहने के लिये स्थान मिला, जहां लाखों आदमियों को बेगार में लगाकर एक बड़ी नहर बनवा दी गई। चीन ने दूलन का पूरा पक्ष लिया और शे-तू शबोलियो के पुत्र के विरुद्ध एक विशाल चीनी सेना भेजी। अपनी सारी विपत्तियों का उसे ही कारण समझ कर शे-तू-पुत्र को उसके अपने कबीलेवालों ने मार डाला। दूलन के दूसरे शत्रु तू-मिन्-पुत्र और शे-तू-भ्राता इन दोनों सामन्तों को चिङलिङ ने बुरी तरह हराया और तिङ-लिङ तथा दूसरे कितने ही स्यान्-पी कबीले दूलन के झंडे के नीचे चले गये। सम्राट् विन्-तीने दूलन को ची-ज़ेन् की उपाधि दी। उसके उत्तराधिकारी सम्राट् याङ-ती (६०५-१७ ई०) ने दूलन का सम्मान और भी बढ़ाया। उत्तर शान्सी प्रदेश में दूलन ने सम्राट् से भेंट की। उसे सभी सामन्तों के ऊपर स्थान मिला और माउदुनकी बात को स्मरण करके याङ-ती ने भी दूलन को कोर्निश करने से ही मुक्त नहीं कर दिया, बल्कि जूता पहने तलवार लटकाये दरबार में आने की भी स्वतंत्रता दी। उसका वैयक्तिक नाम भी दरबार में नहीं लिया जाता था। सम्राट् ने दूलन के २५०० सरदारों में २ लाख रेशमी थान बंटवाये। यही नहीं, सम्मान-प्रदर्शन में अति करते हुये यह सनकी सम्राट् स्वयं दूलन के शिविर में गया। दूलन ने मद्य चषक हाथ में ले घुटने टेककर सम्राट्-भक्ति की शपथ ली। दूसरे साल जब दूलन दरबार में आया, तो उसका स्वागत पहले साल से भी अधिक हुआ। दूलन ६०० ई० में मरा।

---

[१] वही ३६७

७. दा-तू बुगा खान (६००-)—

दा-तू के खान बनने के साथ तुर्कों में जनतंत्रता का अन्त हो गया। दातू को जनने निर्वाचित करके खाकान नहीं बनाया था। यही परिपाटी आगे भी चल पड़ी। तुर्क अब जनशाही से सामन्तशाही जीवन में प्रविष्ट हो गये। शबोलियो का एक पुत्र दातूसे विद्रोह करके ७ वर्ष (६००-६०७ ई०) तक लड़ता रहा। इस खान के शासन में कई महत्त्वपूर्ण घटनायें घटीं। इसीके समय (६१८-१९ ई०) सुइ-वंश को हटाकर ६१८-१९ ई० में चीन का सबसे प्रतापी थाङ-वंश (६१८-९०७ ई०) स्थापित हुआ, जिसका संस्थापक काउ-चू एक बड़ा दूरदर्शी पुरुष था। थाङ सम्राटों के समय चीनी साहित्य और कला की बड़ी उन्नति हुई। इन सम्राटों में कितने ही स्वयं लेखक और कवियों के संरक्षक थे। साथ ही उनकी राजनीतिक शक्ति भी खूब बढ़ी। थाङ-वंश की राजधानी छाङअन् (सियान्) अपने समय की दुनिया की सबसे समृद्ध नगरी थी। थाङ-वंश ने सुइ-वंश के निर्माण-कार्य तथा चीन की एकता को सुरक्षित रखा। बूगा खानने कतलूक-देले (आनंद कुमार) को दूत बनाकर चीन दरबार में भेजा।

अंतिम ७५ वर्षों में खे-ली खान दू-बी, तूली खान, इमी-नीश सि-बि-ली खान सिक-मो (६४१ ई०) और चे-बी खान (६४७-८२ ई०) पूर्वी तुर्कों के शासक हुये। यद्यपि इनके समय में चीन थाङ-वंश के नेतृत्व में बहुत शक्तिशाली था, किंतु तुर्क घुमन्तू लड़ाकू थे, इसलिये उन्हें दानसे संतुष्ट रखने की कोशिश की जाती थी। खे-ली से पहले के चूलो खान की एक घटना है। चू-लोने थाङ सम्राट् ताइ-सुङ (६२७-५० ई०) की सहायता के लिये २००० सैनिक भेजे थे। वह किसी प्रतिद्वंदी से उस समय लड़ रहा था। चू-लो सीमांत नगर पर गया, तो सम्राट् की ओर से उसकी बड़ी आवभगत हुई, जिसका प्रतिदान उसने सड़क पर मिलने वाली सभी सुन्दरियों का अपहरण करके किया।

८. ख-ली खान

यह पिछले सम्राट् का भाई था, जिसकी पटरानी चीन राजकन्या थी। पटरानी ने स्वयं अपने पुत्र को अत्यन्त दुर्बल और कुरूप कहकर गद्दी से वंचित कर दिया और उसके समर्थन तथा प्रभाव से देवर खे-ली खान के नाम से गद्दी पर बैठा। भाभी नये खान की भी पटरानी बनी। पहले खे-लीने कुछ स्वतंत्र नीति बरतनी चाही, किंतु जल्दी ही उसे थाङ-वंश के फौलादी पंजे का पता लग गया। उसकी भूलों को माफ करके खे-ली को बहुत सत्कृत किया गया। बड़ी बड़ी भेंट और सम्मान को तुर्क खाकान अपना हक समझते थे। वह इसके लिये क्यों कृतज्ञ होने लगे? थाङ के प्रतिद्वंद्वियों की कमी नहीं थी। एक प्रतिद्वंदी के ६००० सैनिकों के साथ अपने १० हजार सवारों को लेकर खे-लीने उत्तरी शान्शी में लूटपाट मचानी चाही। थाङ सेनाने उसे बुरी तरह हराया और "नई मित्रता को दृढ़तापूर्वक जोड़ने" के संकेत के रूप में खानने गोंद का एक टुकड़ा भेज कर शांति की प्रार्थना की। लेकिन चीनी तुर्कों की बात पर इतनी जल्दी विश्वास करने के लिये तैयार नहीं थे। कभी न कभी छोटी बड़ी छेड़-छाड़ होती रहती। ६२२ ई०में तुर्क जनों में अकाल पड़ा हुआ था। इसी समय चीनियों ने धोके से उनपर आक्रमण कर दिया, किंतु वह हार गये। अब खे-ली तु-ली खान को ले कई सालों तक चीन के सीमांत-प्रदेश पर लूटपाट मचाता रहा।

एक बार थाङ राजकुमार ताइ-सुङ ने तुर्क सेना के सामने जाकर खे-ली को ललकारा और कहा, कि लूटपाट करके लोगों को सताने की जगह आओ हम द्वन्द्व-युद्ध या डटकर युद्ध करके फैसला करलें। खे-ली मुस्कुरा कर चुप रह गया। ताइ-सुङ (थाङ-युवराज) ने अपने सामन्तको भेजकर तुली खान (उपखाकान) को भी ललकारा, किंतु वह भी चुप रहा। इस तरह काम बनते न देख उसने भेद-नीतिसे काम लेना चाहा और तुलीको फोड़ लिया। इसकी वजहसे खे-ली कुछ झुका, किंतु फिर दो साल (६२३-२४ ई०) तक कितनी ही बार चीनमें घुसकर लूटपाट मचाता रहा, जिससे राजधानी छाङ-आन् खतरेमें पड़ गई। खे-लीके दूतने चीन दरबारमें जाकर अपने खानकी शेखी बघाड़ते हुए खरी-खोटी कहनी शुरू की। थाङ कुमारने डाटकर कहा—"शायद मुझे सबसे पहले तुझे मारना पड़ेगा" इसपर वह ठंडा हो गया। राजकुमार घोड़े पर सवार हो बिना अधिक शरीर-रक्षकके चल पड़ा। राजधानीके पास छोटी सी छिछिली नदी वेई बहती है, वही थाङ राजा और तुर्क सेनाके बीचमें व्यवधान थी। राजकुमारने खे-लीसे सीधे बात की। तुर्क सेनापति राज-कुमारकी हिम्मत से इतना रोबमें आ गये, कि उन्होंने घोड़ेसे उतर कर उसका अभिवादन किया। इसी बीच चीनी सेना आगे बढ़ आई। खे-ली घबड़ाया। लोगोंके मना करने पर भी राजकुमारने आगे बढ़कर खे-लीसे बातचीत की। दोनों सेनायें देखती रहीं। इस प्रकार ६२६ ई० में खे-लीने संधिका प्रस्ताव किया। अब राजकुमार ताइ-सुङके नामसे सम्राट् बन चुका था। सम्राट्ने तुर्कोंकी हिम्मत बढ़नेका कारण बतलाते हुए कहा था—"तुर्क जो अपनी सारी सेना के साथ वेईके तटपर बढ़ते चले आये, उसका कारण यही था, कि वह जानते थे, हमारा वंश भीतरी कलहके कारण इस समय कठिनाइयोंमें है, और मैं अभी अभी मुकुटका अधिकारी हुआ था। प्रश्न था, आजकी परिस्थिति पर कैसे काबू पाया जाय। मैंने सोचा, मेरा अकेले आगे जाना उन्हें आश्चर्यमें डाल देगा, और यह सोचकर उन्हें बड़ी परेशानी होगी, कि वह अपने अड्डेसे बहुत दूर हैं। यदि हमको अवश्य लड़ना ही है, तो अवश्य जीतना भी चाहिये। यदि हमारी घुड़की काम कर गई, तो हमारी स्थिति बहुत मजबूत हो जायेगी।"

हूंण शान्-यूके समयका अनुकरण करते कुछ दिनों बाद सम्राट् खे-लीको लिये नगरके पश्चिम वाले एक पुल पर गया, जहां एक सफेद घोड़ेकी बलि दी गई। खे-ली और सम्राट्ने संधि न तोड़नेके लिये शपथ ली। छाङ-आन् बाल-बाल बच गया, खे-लीकी सेना लौट गई। कुछ सप्ताह बाद खे-लीने बहुत से घोड़ों और भेड़ोंकी भेंट भेजी। सम्राट् ताइ-सुङने उसे न स्वीकार कर राजाज्ञा निकालकर लौट जानेका हुक्म दिया।

६२७ ई० में खे-लीको उत्तरमें भी हानि उठानी पड़ी। तिङ-लिङ कबीलों—से-यन्-दा, बैंकाल और उइगुर्—ने खे-लीके अत्याचारसे तंग आकर तुर्क अफसरोंको मार भगाया। हूणोंके पतनके बाद ईसाकी २री शताब्दीसे ही यह कबीले दूसरे कितने ही हूण-कबीलोंके साथ बैंकाल-सरोवर, बल्काश-सरोवरसे कास्पियन तक फैल कर शकों और उनके उत्तराधिकारियोंका स्थान ले चुके थे। उइगुर् और बैंकाल तुला नदीके उत्तरमें रहते थे, और से-यन्-दा केरुलोन नदीके दक्षिणमें। उक्त तीनों कबीलोंके विद्रोहको दबानेके लिये खे-लीने अपने उप-खाकान तुलीको भेजा। तु-लीकी सेना पूर्णतयां पराजित हुई और उसने किसी तरह घोड़े पर भागकर जान बचाई। खे-ली ने उसकी कायरतासे नाराज होकर उसे गिरफ्तार कराया। तु-लीने सम्राट्के पास संदेश भेजा।

वह तो ऐसे अवसरसे फायदा उठानेके लिये तुला बैठा ही था। चीनी सेना खे-लीके विरुद्ध भेज दी गई। मरुभूमिके उत्तरमें से-यन्-दाने बिगा खाकानको अपना खाकान बनाया। इसके बाद उसके पुत्र और भतीजोंने खान-पद संभाला। इन तीनोंने कुछ साल तक खे-लीको बहुत दिक किया। बैकाल सरोवरके पूर्वके ८ तिङ-लिङ कबीलों—बैकाल, उइगुर, ची-का-ज (किर्गिज) आदि—ने से-येन्-दाके इस कामको पसन्द नहीं किया और उन्होंने ६२८ ई० में चीन सम्राट्की अधीनता स्वीकार की।

खे-लीके राज्यका एक ओर अंग-भंग हो रहा था, दूसरी ओर वह तड़क-भड़कमें चीनी और ईरानी सम्राटोंका कान काटना चाहता था। उसके कितने ही मंत्री और राज्यपाल हू (अ-तुर्क) थे, जो अपनी स्वेच्छाचारिता और विलासितासे तुर्क जनको नाराज कर बैठे थे। यही समय था, जब कि पश्चिमी तुर्क साम्राज्य अपने यौवन पर था। कई सालसे देशमें हिमवर्षा अधिक हुई थी, जिसके कारण भोजनका अभाव सा हो गया था, ऊपरसे विलासी शासकोंने करको दुगुना-तिगुना बढ़ा दिया था। तुर्क प्रजामें आम विद्रोह हो रहा था। इसी वक्त हान् सिंहासनके किसी दावेदारको उसने सहायता भी करनी चाही। तू-ली और कितने ही दूसरे दे-ले (राजकुमार) हान्की ओर थे ही। जेनरल ली-चिङकी अधीनतामें एक बड़ी सेना चढ़ी और उसने अचानक ही तिङ-स्यान् पर आक्रमण करके खे-लीको घेरना चाहा। वह किसी तरह मरुभूमिको पार कर केरुलोन-उपत्यकामें लोह-पर्वतकी ओर भागा और वहाँसे अपना सारा राज्य सम्राट् को भेंट करना चाहा। सम्राट्ने अपने जेरनलको २० दिनकी रसद ले खे-लीका पीछा करनेके लिये हुकुम दिया, और खे-लीको भी दिलाशा देता रहा। अन्तमें खे-ली करीब-करीब अकेले ही एक तेज घोड़े पर सवार हो, अपने भतीजे शबोलियों सू-नी-सिर की ओर भागा, लेकिन उसे पहले ही पकड़ लिया गया। हान् (चीन) सम्राट्ने उसे क्षमा करके साम्राजीय महलमें रक्खा—यह ६२८ ई० की बात है। खे-लीको यह राजसी जीवन पसन्द नहीं आया, इस पर उसे एक प्रदेशका राज्यपाल बना दिया गया, जिसे भी नापसन्द करने पर उसे प्रतिहारोंका सेनापति बना दिया गया। वहीं ६२४ ई० में खे-ली मरा। राजधानीके पास वेई-नदीके किनारे उसका शव जलाया गया। खे-लीकी मांके दहेजमें आये एक दा-क्वान्ने अपना गला काटकर स्वामीका अनुगमन किया, जिसको सम्राट्की आज्ञासे खे-लीकी समाधिके पास ही दफनाया गया और दोनोंकी प्रशंसामें स्मारक वाक्य पत्थर पर खुदवा दिये गये।

९. तु-ली खान[1] (६२८-३१ ई०)

खे-लीकी हारके बाद ६२८ ई० में उसका भतीजा तू-ली अथवा शबोलियो सिरा गद्दी पर बैठा। पहले वह सिरा-मूरेन् नदीसे उत्तरका शासक और खे-लीके चीन पर आक्रमणोंके समय उसका दाहिना हाथ था। सिरा-मुरेनसे दक्षिण अतुर्क-जातीय खिताई जनका स्वतंत्र राज्य था। इन्हीं खिताइयोंने आगे चलकर चीन विजय किया, जिसके कारण चीनका दूसरा प्रसिद्ध नाम खिताई पड़ा, जिसे कि हम नान-खिताई (चीनी रोटी) के रूपमें आज भी स्मरण करते हैं। तु-लीके अधीन उस समय स्यान्-पीके दो कबीले कुमुक खे-ली और सिब् भी थे। इनमेंसे कुमुक् खे-ली जु-जोन् (अवारों) की पूर्वी शाखाकी संतान थे। सिव् शायद पीछे अपनी संतानको सिवो-मंगोलके रूपमें छोड़ गये। मु-जुङ वंशने कुमुक् खे-ली और खिताइयोंको जुङ्गारिया और

गोबीके बीच भगा दिया था। प्रथम तोबा सम्राट् अपनी विजय-यात्रा (३८८ ई०) में आमूर नदी तक पहुँचा था, जिसके विजयोपहारके लाख जानवरोंमें सुअरोंका भी वर्णन आता है। अगली दो शताब्दियों तक शिर्-वी और मत्स्य-चर्म जातियोंके साथ कुमुक् खे-ली (कुमुक् घेई) चीन दरबारमें अपनी भेंट लाते थे। चीनी लेखानुसार उस समय यह सभी जातियाँ "गंदे सूअर पालनेवाले शिकारी जंगली" थीं और उनका सांस्कृतिक तल तुर्कों और खिताइयोंसे बहुत नीचा था। ५वीं सदीके बाद कुमुक्-खेलियोंने अपने नामसे कुमुक् शब्द हटा दिया और हर बातमें वह तुर्कों जैसे हो गये, लेकिन वे अपने मुर्दोंको लपेटकर पेड़ोंके ऊपर खिताइयोंके भाँति अब भी टांगते थे। खेली और खिताई सरदार खाकान उपाधि धारण करनेसे पहिले तुलीके अधीन थे। तुलीको एक सैनिक राज्यपालका दर्जा मिला था। वह आधुनिक पेकिङके पास सुन्-चान्में रहता था, जहाँ उसकी मृत्यु २९ सालकी उम्रमें ६३१ ई० में हुई। चीन-सम्राट्ने उसे अपना रक्तभाई बनाया था, और उसपर बहुत स्नेह रखता था। सम्राट्ने उसकी समाधि पर स्मृति-वाक्य लगवाये। सिव् और खेली (घेई) कबीले अब खिताइयोंके साथ जुट गये और उन्हींके साथ चीन दरबारमें अपना कर भेजा करते थे।

१०. सि-बु-ली खान (६३१-४७)

इ-वि-नी-शू (तुलीका पुत्र) सु-बि-ली खान[1] सीमा (हो-लो-हू) के नामसे पूर्वी तुर्कोंका खाकान बना। ६३४ ई० में अपने छोटे चचा और दूसरे सरदारोंके साथ षड्यंत्र करके सम्राट्के शिविर पर धावा बोलकर वह स्वतंत्र खाकान बननेमें करीब-करीब सफल हो गया था। किंतु इसी समय चीनी सेना आ गई और सब पकड़े गये। चीनसे स्वतंत्र होनेका प्रयास विफल हुआ। चचा और दूसरोंको प्राण दण्ड हुआ और सि-बि-ली खानको ह्वाङहोके उत्तर निर्वासित कर दिया गया।

चीनसे महापराजयके बाद खानके कुछ आदमी तुर्किस्तान भाग गये, कुछ से-येन्-दाके पास चले गये और कितने ही चीनमें ही रह गये। चीनके लिये तुर्क एक बड़ी समस्या थे। नष्ट कर दिये जानेपर भी कुछ सालोंमें ही वह लाख-दो-लाख हो जाते। उन पर नियंत्रण नहीं रक्खा जा सकता था। विश्वासघातको वह नीति समझते थे। वह घुड़की देने तथा पूंछ हिलाने दोनोंके लिये तैयार रहते थे। चीनके उस समयके अत्यन्त प्रभावशाली राजनीतिज्ञ वेइ-चाङ ने इस समस्याको हल करनेके लिये सलाह दी, कि उन्हें ह्वाङहोके उत्तर भेज दिया जाय। बहुतोंने इसका समर्थन किया। लेकिन ताइ-सुङ चीनका असाधारण सम्राट् था। इतिहासकार उसके बारेमें कहते हैं, कि सभी त्रुटियोंके रहते हुए भी वह चीनके सभी सम्राटोंमें सबसे अधिक उदार और न्यायप्रेमी था। उसने इस सलाहको नहीं स्वीकार किया और कहा[2], "तुर्क चाहे जैसे भी हों, किंतु मानव-अधिकार और सत्यके सिद्धांत सार्वदेशिक हैं, उनमें जाति और वर्णका भेद नहीं डाला जा सकता। एक पराजित जातिके अवशेष यह बेचारे अभागे अपनी चरम विपदावस्थामें हमारे पास प्रार्थना कर रहे हैं। अगर हम उन्हें शरण दें और उचित तथा उपयुक्त मानसिक स्थिति रखनेकी शिक्षा देनेका प्रयत्न करें, तो वे कभी हमारे लिये खतरनाक नहीं हो सकते। ५० ई० में चीनके सीमांत पर हमने हूणोंको स्थान दिया, किंतु उससे हमें कोई हानि नहीं हुई। इसी तरह यदि हम

---

[1] वही पृ० ३६९, [2] वही पृ० ३६८

उन्हें अपने रीति-रवाजोंको कायम रखनेकी इजाजत दें और उनकी सैनिक सेवाओंका उपयोग करें, तो कोई हरज नहीं होगा। इसके विरुद्ध यदि हम तुर्कोंको वास्तविक चीनी पुरुष बनादें या बनाने की कोशिश करें, तो यह भूल होगी, क्योंकि इस तरहका दबाव उनके मन में संदेह पैदा करेगा।"

११. चे-बी खान (६४७-८२ ई०)

खेलीके बाद तुर्क साम्राज्य उच्छिन्न हो गया। उस समय चे-बी इर्तिश्-उपत्यकाका एक स्थानीय खाकान था। इसके राज्यमें इर्तिश् नदीके उत्तर और दक्षिणके किरगिज सम्मिलित थे। चे-बीने अपने पुत्र दे-ले (कुमार) शबोलियोको चीन दरबारमें भेजा और स्वयं भी सलामी देनेके लिये आनेकी बात कही, लेकिन वह खुद नहीं गया। इसपर चीनने नाराज होकर ६४९ ई० में उसके विरुद्ध सेना भेजी। वह पकड़कर दरबारमें लाया गया। तीनो करलोक कबीलोंने तर्बगताई प्रदेश पर अधिकार कर लिया। कभी वह पूर्वी तुर्कोंको अपना अधिराज मानते थे और कभी उत्तरी तुर्कोंको। अब उन्होंने चीन की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इसी साल ताइ-सुङ मर गया और उसके स्थान पर कौ-सुङ थाङ सम्राट् हुआ। कौ-सुङ नाबालिग था, इसलिये राज्यकी बागडोर भूतपूर्व भिक्षुणी तथा ताइ-सुङ की प्रेयसी वूके हाथोंमें चली गई। २० साल तक चीनमें शांति रही। ६७९ ई० में तुर्कोंने चीनके विरुद्ध जबर्दस्त विद्रोह किये।

तुर्क राजकुमार हू-पेइ ने अपनेको सि-बि-ली खानका उत्तराधिकारी घोषित किया। यद्यपि वह खेली खानके रक्तका था, मगर उसका रंग और तुर्कोंकी भाँति साफ न होकर श्याम था, इसीलिए ओर्दू (उर्त) ने उसे सच्चा असेना न स्वीकार कर हू (सुरियानी, ईरानी या हिंदू) जातिका माना। उसे ह्वाङ-हो नदीके उत्तरी मुड़ाव और गोबीके बीचकी जगह मिली। हूपेइके उर्तकी संख्या एक लाख बतलाई जाती है, जिसमें ४० हजार सैनिकोंका काम कर सकते थे। भीतरी विद्रोह अब भी दबा नहीं था। थाङ वंश कोरियाको जीतनेकी कोशिश कर रहा था। उसके प्रति अपनी भक्ति दिखलानेके लिये हू-पेइ स्वयं युद्धमें शामिल हुआ। कोरिया पर यह चीनकी पहली विजय थी। हू-पेइ घायल हुआ। ताइ-सुङने स्वयं उसके घावसे खून चूसकर फेंका, लेकिन तुर्क सरदारके प्राण बच नहीं सके। सम्राट्ने अपने बापकी समाधिके पास उसकी समाधि बनवाई और उसके पहलेके राज्यमें पे-ताउ नदीके किनारे एक स्मारक निर्मित कराया। हू-पेइ तोबा खाकानके वंशजोंका अंतिम खाकान था।

यह सारे पूर्वी तुर्कोंका खाकान नहीं माना जाता था, बल्कि जैसा कि ऊपर बतलाया, इर्तिश उपत्यकाका एक स्थानीय ख़ाकान था।[1]

४. अशेना-निशी

इस समय तुर्कोंकी हालत कहाँ तक पहुँच गई थी, इसका कुछ पता हमें अशिना वंशकी नई शाखा अशना-निशीके तृतीय खाकान मो-गि-ल्यान् और उसके भाई क्युल-तेगिनके शिलालेखसे लगता है, जिसमें तुर्क जातिकी हीनावस्थाका चित्र खींचा गया है—

[1] वही पृ० ३७०

"उस (तुमिन)के बाद उसके छोटे भाई (मू-यू और तोबा) कगान हुए, फिर उसके पुत्र। (तुर्कोंमें) चूंकि हरेक छोटा भाई बड़ेको पसंद नहीं था, पुत्र पिताके अनुकूल नहीं था और सभी कगान बेसमझ थे, सभी कगान भीरु थे, उनके सभी बू-यू-रुख बेसमझ थे, भीरु थे; जिसका परिणाम हुआ बेगों और जनताका कगान पर अविश्वास। परिणाम हुआ चीनी लोगोंको भड़काने और भेद लगानेका सुभीता, तथा परिणाम हुआ संदेहमें पड़ना, तथा उसका परिणाम यह हुआ, कि उन्हों (चीनियों)ने छोटे भाइयोंको बड़ेसे लड़वाया और जनता तथा बेगों से एक दूसरेके खिलाफ हथियार उठवाया। तुर्क जनताने अपने जन-जातीय संघकी वर्तमान अव्यवस्थाका स्वागत किया, जिसके द्वारा अपने ऊपर तथा तत्कालीन कगानोंके राज्यके ऊपर महानाशको बुलाया। वे (तुर्क) अपने सुदृढ़ पुत्रों और विशुद्ध पुत्रियोंके साथ चीनियोंके दास हो गये। तुर्क वेगोंने अपना तुर्क नाम छोड़ चीनी वेगोंका नाम अपनाया, तथा चीनी कगान (सम्राट्) की अधीनता स्वीकार की। ७५ वर्षों तक उन्होंने चीनियोंको अपना श्रम और बल प्रदान किया।. . .

"ऐसा हो गया था हमारा जनजातीय संघ और ऐसी दिखाई देती थी हमारी शक्ति। ओ तुर्की बेगों और जनता! सुनो तुम्हें ऊपरके आकाशने क्यों दाब नहीं दिया, नीचेकी भूमि तुम्हारे लिये फट क्यों नहीं गई? ओ तुर्क लोगों, किसने तुम्हारे शासन और कानूनको नष्ट किया? तुमने स्वयं अपराध किया। ऊपर उठानेवाले गुणों और कामोंमें अपने मनीषी कगानोंके साथ तुमने मूर्खता की। कहाँसे आये वे शस्त्रधारी, जिन्होंने तुम्हें छिन्न-भिन्न किया? कहाँसे आये भालादार, जिन्होंने तुम्हारा अपहरण किया? हे जनता. . .तू पूर्व गई, पश्चिम गई और ऐसे देशोंमें जहाँ भी गई, तेरा भला क्या हुआ? तेरा खून पानीकी तरह बहा, तेरी हड्डियाँ पहाड़की तरह पड़कर खड़ी दिखाई पड़ीं, तेरे वेगों सामन्तोंके पुरुष-संतान दास बने, तेरी कुलीन स्त्री-संतानें दासियाँ बनीं। तेरी बेसमझी और तेरी नीचतासे मेरा चचा (मो-चो) खाकान उड़ (मर) गया।"

१२. गु-दु-लू कगान (६८२-९३ ई०)

इलतेरेस अशेना वंशी राजकुमार था। खाकानों (कगानों)के वंश अशेनाका होनेके कारण उसकी कुलीनतामें क्या संदेह हो सकता था? वह खेलीका दूरका संबंधी और एक बहुत बड़ा सरदार था। तुर्कोंके असंतोषसे उसने फायदा उठाया। चीनके प्रति जहां रोष था, वहां तोबा-वंशके खाकानोंके प्रति भी लोगोंकी आस्था नहीं रह गई थी, जैसा कि ऊपर उद्धृत अभिलेखके वाक्योंसे मालूम होता है। इलतेरेस गरम दलका नेता बन कर, रिश्वत और अपनी राजनीतिक चालोंके कारण कई तुर्क कबीलोंको अपने साथ मिलानेमें सफल हुआ। तुर्क घुमन्तू दुनियाके अन्य लड़ाकू घुमन्तूओंकी तरह लूटको अपना उचित पेशा समझते थे। इलतेरेसने अपने उर्तके साथ कई सफल अभियान किये। तुर्कोंके तम्बुओंमें लक्ष्मी आकर फिर वास करने लगी। जल्दी ही उसने अपनेको कगान घोषित कर एक भाईको शाह, दूसरेको जेब्-गूकी उपाधि दे उप-कगान बना दिया। इलतेरेसका नाम अब गु-दु-लू (कुतुलुक) कगान हुआ। गु-दु-लूकी बढ़ती हुई शक्ति खतरेकी बात थी। सम्राज्ञी वूने उसके विरुद्ध १३ हजारकी सेना भेजी, गुदुलूने सबको नष्ट कर दिया। फिर पश्चिमी तुर्कोंकी एक शाखा तुर्‌गिसकी ओर उसने मुंह किया, जो कि सूजिया, इली और इस्‌सिकुलमें रहती थी। इन्हींके साथ लड़ते हुए वह मारा गया। उस समय पश्चिमी तुर्कोंकी राजधानी चू नदीके किनारे जू-जी थी। गुदुलू कगानका विश्वस्त सलाहकार तोन्-यू-कुक्

तुर्कोंके पुराने दिनके लौटा लानेका स्वप्न देख रहा था। चीनियोंने शर्तके साथ उसे जेलसे मुक्त करके आशा रक्खी थी, कि अब वह तुर्कोंके खिलाफ जाकर अपना पराक्रम दिखलायेगा। लेकिन तोन्-यू-कुक्ने वहां जाकर चीनको छोड़ गुदुलूका साथ दिया। तोन्-यू-कुक्का प्रभाव गुदुलूके उत्तराधिकारीके समय नहीं रहा।

(१)मो-चो (६९३-७१६ ई०)

गुदुलूके भाई मो-चोके शासनमें तुर्क-साम्राज्य फिर एक बार उन्नतिके शिखर पर पहुंचा। गुदुलूने तुर्कोंकी सैनिक जनतंत्रताके सहारे सफलता प्राप्त की थी, लेकिन मो-चोको जनतंत्रता नहीं तानाशाही पसंद थी। नये कगानने उसी साल शान्सीमें घुसकर लूटपाट की। सम्राज्ञी वूने मो-चोके खिलाफ एक, बौद्ध भिक्षुको सेनापति और उसके अधीन १८ सेनापतियोंको भेजा। अभियान असफल रहा। बहुतसे सैनिक और सेनापति पकड़े गये, । मो-चोने भिक्षुको कोड़े मरवाते मरवाते मौतके घाट उतारा। चीनियोंको बहुत आश्चर्य हुआ, जब ६९४ ई० में मो-चो स्वयं दरबारमें पहुंचा। सम्राज्ञी बहुत प्रसन्न हुई। उसने कुङ (ड्यूक) बना, उसे ५ हजार बहु-मूल्य रेशमी थान देकर विदा किया। इसके बाद मो-चोने संधि करनेके लिये अपने दूत भेजे। इस प्रकार अब थाङवंशको एक सबल सहायक मिला। ६९६ ई० में खिताई शासकने विद्रोह कर अपनेको "सर्वोपरि कगान" घोषित किया। उसके विरुद्ध भेजी गई चीनी सेनायें हार कर लौट आईं। मो-चोने बीड़ा उठाया। उसने चीनके शत्रु खिताइयोंको पूरी तौरसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और उनके राज्यको—जो कि भयंकर बनता जा रहा था—अपने राज्यमें मिला लिया। उइगुरोंके अधिकांश कबीले मो-चोके अधीन थे। जिन्हें यह स्वीकार नहीं था, वह उससे बचनेके लिये गोबीके दक्षिणमें चले गये। मो-चोके प्रहारसे पश्चिमी तुर्क साम्राज्य खतम हो गया। उनका अंतिम खाकान असिन्-सिन् ७०८ ई० में कुलान (आधुनिक तर्मी स्टेशन के पास) मारा गया। आगे उनका स्थान तुरगिस् शाखाने लिया। चीन में मोचोका बड़ा सम्मान और रोबदाब था। दरबारमें उसके दूतको सबसे ऊपर स्थान मिलता था। उसके उत्तराधिकारी मोगिल्यानके दूतने झगड़ा किया, जब तुरगिस कगानके दूतको उससे प्रथम रखनेकी कोशिशकी गई। मो-चोको साम्राज्ञीने "महा शान्-यू, धार्मिक कगान" की उपाधि दी थी[1]।

७९८ ई० में राजमाताके पास मोचोने प्रार्थनाकी, कि मुझे अपनी कन्या प्रदान कर अपना दत्तक पुत्र स्वीकृत करें, चीनमें जितने तुर्क रह गये हैं, उन्हें मेरे पास भेज दें और खेती करनेके लिये बीज और हथियार देनेकी कृपा करें। तुर्क अभी तक घुमन्तू जीवन ही पसन्द करते थे। मोचोकी दूरदर्शिता उसे बतला रही थी, कि बिना खेतसे चिपकाये इन बेनकेलके ऊंटोंको काबूमें नहीं रक्खा जा सकता। राजमाताने अपना दूत भेजा। हिचकिचाहटकी बात जानकर मो-चो आग-बगूला हो गया और चीनी दूतको मारनेकी भी धमकी देने लगा। सम्राज्ञीको मजबूर होकर मो-चोकी बातें माननी पड़ी। उसके पास कई हजार तुर्की परिवारोंको जबर्दस्ती भेजा गया और बीजके लिये एक लाख मन अनाज तथा तीन हजार खेतीके हथियार भेजे गये; जिनके कारण मो-चोकी शक्ति और संपत्ति और बढ़ गई। मो-चोने अपनी कन्या किसी थाङ-राजकुमारसे ब्याहनेकी

[1] वही पृ० ३७०

इच्छा प्रकट की। साम्राज्ञीने अपने सौतेले भतीजेको व्याह करनेके लिये भेजा। मोचो उसे देखकर जल भुन गया और साथ आये महासेनापतिसे कहा—"मैंने ली-कुलके थाङ-सम्राट् वंशज राजकुमारसे अपनी कन्याका व्याह करनेका प्रस्ताव किया था, और तुम मेरे पास लाये हो वू-परिवारकी पौधको। हम तुर्कोंने कुछ पीढ़ियोंसे ली-कुलकी श्रेष्ठताको स्वीकार किया है और मुझे मालूम है, कि ली सम्राट्का कोई पुत्र अब भी जीवित है। इसलिये मैं अब अपनी सेनाके साथ कूच करके ऐसे राजकुमारको ढूंढ़नेमें सहायता कर उसके उचित सिंहासन पर बैठाऊँगा।" उसने वू-कुमारको गिरफ्तार करा लिया और कलगन तथा पेकिङ प्रदेश पर चढ़ाई कर दी। उसके विरुद्ध साढ़े ४ लाख चीनी सेना भेजी गई, लेकिन सब बेकार। मो-चोने शान्सीके कितने ही नगरोंको जला डाला और बिना दया-मायाके अपने रास्तेमें आई हरेक वस्तु हरेक जीवित प्राणीको नष्ट किया या लूटा। साम्राज्ञीने धार्मिक खाकानकी जगह उसका नाम चन्-चुच (कसाई, रक्त-चूषक) रख दिया। लेकिन इससे मो-चोकी आंधी थोड़े ही रुक सकती थी? उसने और भी नगर लूटे, और भी अफसर मारे। राजमाताने अपने बकलोल सौतेले पुत्रको—जिसे राजकुमारका दर्जा देकर नीचे गिरा दिया गया था—सेना देकर लड़नेके लिये भेजा, किंतु नये प्रधानसेनापतिके अभियानके पूर्व ही मो-चो ९० हजार बूढ़े जवान, नर-नारियोंको मौतके घाट उतार चुका था। वह सेनाके सामनेसे साफ निकल गया। जाते वक्त भी रास्तेमें सभी लोगोंको बड़ी निर्दयतापूर्वक मारता गया। अगले साल मो-चोने अपने दो पुत्रों तथा गुदुलूके एक पुत्रको उच्च सेनापति बना ८० हजार सेना दे लगातार चीनमें लूटपाट करनेका हुक्म दिया। वह पूर्वी कान्‌सूकी अश्वपालनभूमिसे १० घोड़े लूटकर ले गया। तुरगिसोंके भीतर घुसकर मो-चोने पश्चिममें भी अपने राज्यको बढ़ाया।

७३० ई० में मो-चोने दूत भेजकर राजमातासे अपनी लड़कीसे व्याह करनेके लिये फिर एक थाङ राजपुत्र मांगा। राजमाता भीगी बिल्ली बन गई। उसने दोनों राजकुमारोंको दूतके सामने खड़ा कर दिया, जिनमेंसे एक मो-चोका दामाद बना। राजमाताके दिन अब खतम हो रहे थे। उसके विरुद्ध षड़यंत्र हुआ, जिसके फलस्वरूप सम्राट् कौउ-चुङ (६५०-८४ ई०) ने सीधे राजशासन संभाला। मो-चो इसी समय चीनी सेनाको हराकर लिङ-चाउ (आधुनिक निङ-ह्या) को लूटता, शाही चरभूमिसे १० हजार घोड़े छीन ले गया। ७११ ई० में तुर्गिसोंको हराकर उसके कगान सकाको उसने मारा। अब उसका राज्य कोरियासे मध्य-एसिया तक ३००० मील लम्बा था। उनके पूर्वज स्यान्-पी जिस तरह तुर्कोंके पूर्वज हूणोंको कर देते थे, उसी तरह खिताई और वेई (खे-ली) मो-चोको कर देने लगे। ८वीं शताब्दीके आरंभमें मो-चोकी शक्ति अद्वितीय थी, चीन उसकी दयाका पात्र था। अरबोंकी शक्ति अवश्य इसी वक्त बड़ी तेजीसे बढ़ी थी, जिस साल मो-चोने सकाको मारा, उसी समय अरब साम्राज्य सिंधसे स्पेन तक एसिया, अफ्रीका और यूरोपके तीन महाद्वीपोंमें फैला हुआ था। लेकिन इन दोनों महाशक्तियोंको कभी बल-परीक्षाकी अवश्यकता नहीं पड़ी। दोनोंके अतिरिक्त इस समय कोई उतनी बड़ी राज्यशक्ति युरोप और एसियामें नहीं थी। मो-चोकी सेनामें ४ लाख घोड़सवार धनुर्धर सदा तैयार रहते थे। ७१४ ई० में उसे उरुम्-ची (सिङक्याङ) पर सेना भेजनी पड़ी थी। आजकी तरह उरुम्ची (पी-तिङ) उस समय भी सिङक्याङका शासन-केन्द्र था, जहां चीनी महा-आयुक्तक रहता था। उरुम्ची उत्तरके घुमन्तुओंके केन्द्रमें पड़ती थी, जिनपर नियंत्रण रखने और रेशम-पथको सुरक्षित करनेके लिये

चीनने उसे शासन-केन्द्र बनाया था। यहांसे तुर्गिस् राजधानी सू-जि-या ७०० मील पश्चिम थी, किरगिज ओर्दू १२०० मील उत्तर, उइगुर ओर्दू १००० (४० दिन ऊंटकी यात्रा) उत्तर-पूरब था। हामी यहांसे ३०० मील दक्षिण-पूरब और कराशर ४०० मील दक्षिण-पश्चिम था।

मो-चो अंत तक अपराजित रहा। घर और बाहर सब जगह वह पहले ही सा उद्दण्ड था। लगातारकी विजयोंने उसके दिमागको फिरा दिया, जिससे पहलेके कई हित-मित्र उसे छोड़कर भाग गये, जिनमें स्वयं उसका एक दामाद भी था। चीन ऐसे भगोड़ोंको अपनी शरणमें लेके ओर्दुस्-प्रदेशमें बसाता रहा। ७१५ ई० में मो-चोका सफल अभियान गोबीके उत्तर नौ-भाई (नौ कबीले) तिङ-लिङके विरुद्ध हुआ था। साइबेरियाके पास रहनेवाले यह दुर्धर्ष कबीले मो-चोके लिये भी समस्या थे। ७१६ ई० में बैकाल घुमन्तुओंके साथ लड़नेके लिये उसने उत्तरकी यात्राकी और उन्हें करारी हार दी। विजयके नशेमें मत्त उसे आत्मरक्षाकी भी परवाह नहीं रहती थी। कुछ ऐतिहासिकोंका कहना है, कि जब उन पर विजय प्राप्त करके मो-चो लौट रहा था, तो एक जंगलमें बैकालोंने उसे घेर लिया और उसका शिर काटकर चीन-राजधानीमें भेज दिया। दूसरे स्रोतोंसे पता लगता है, कि उसके भतीजे बैगूने उसे मारा। मोगिल्खानके अभिलेखमें चचाके मारे जानेका कारण तुर्क जनकी पारस्परिक ईर्ष्या मालूम होती है। शायद बैकालोंने ही मारा हो, और उसमें मो-चोके भतीजे बै-गूका भी हाथ रहा हो। मो-चोके पुत्र वो-गू (वी-गा) के गद्दी न पानेकी बात भी कही जाती है और कोई कोई इतिहासकार मो-चोके बाद वी-गाको तुर्कोंका कगान मानते हैं।

क्युल-तेगिन्ने चचाको मार या मरवाकर अपने बड़े भाई गुदुलूके पुत्र को मोगिल्खानके नामसे ७१६ ई० में तुर्कोंका कगान बनाया। गु-दु-लूके कालमें सैनिक जनतंत्रताका मान था। बल्कि, इसीका जो अभिमान तुर्कोंमें पाया जाता था, उसको उभाड़कर गुदुलूने सफलता पाई थी। मो-चो इस तरहकी जन-तंत्रताके साथ सहानुभूति नहीं रखता था। वस्तुतः तुर्क समाज जनयुगसे सामन्त-युगकी ओर बढ़नेके लिये परिपक्व हो गया था और मो-चोके महान् साम्राज्यकी स्थापनाके बाद तो शासन-संबंधी कठिनाइयां और बढ़ गई, जब कि हर एक तुर्क जनतंत्रताकी दुहाई देनेके लिये तैयार हो जाता था। सेनामें भले ही तुर्कोंका प्राधान्य हो, किंतु शासनमें समुन्नत शासित जातियोंमेंसे योग्य व्यक्तियोंको आगे बढ़ानेके लिये मो-चो मजबूर था। उनपर वह जितना विश्वास कर सकता था, उतना स्वच्छन्दता-प्रेमी तुर्कोंपर नहीं कर सकता था। तुर्क जनका घुमन्तू जीवन बिताना खतरे का कारण था, इसीलिए मो-चो उन्हें कृषिजीवी बनाकर बसा देना चाहता था। लेकिन सैनिक जीवन सैनिक लूटके सामने कृषि जीवन कैसे किसी तुर्कको पसन्द आता? साधारण लोगोंमेंसे कितने ही इसे पसन्द भी करते, किंतु वेगों (सरदारों) को क्यों यह पसन्द आने लगा? इन सैनिक लूटोंमें लाखोंकी तादादमें दास-दासी भी हाथ आते थे, जो जहां तुर्कोंके पशुपालन और दूसरे कामोंमें सहायता देते, वहां खेती में भी काम करते थे। तुर्कोंकी सुख और समृद्धिके बड़े स्रोत ये युद्ध-बंदी दास थे। मो-चोके २३ सालके तूफानी शासनमें फिर सैनिक जनतंत्रता दब गई, फिर तुर्क वेग अपनेको खुशामदी दरबारीके रूपमें परिणत होते देख रहे थे। मो-चोके भतीजे गुदुलू-पुत्र, क्युल-तेगिन् ने फिर उसी हथियारको अपने चचाके विरुद्ध उठाया, जिसे की उसके पिताने तोबा-कुलके विरुद्ध उठाया था।

(२) मो-गि-ल्यान्[1] (७१६-३५ ई०)

मो-चोकी हत्याके बाद राज-विधाता क्युल्-तगिन्ने तुर्क ओर्दू (तुर्क सरदारोंकी सभा) बुलाया, उसने मो-चोके सभी अपराधोंको बढ़ा चढ़ाकर कहते हुए लोगोंको उसके खानदानके विरुद्ध कर दिया। इस प्रकार वह मो-चोके पुत्रों, उसकी पुत्र-वधुओं, बहुतसे संबंधियों तथा अनुचरों-को मरवानेमें सफल हुआ। क्युल-तेगिन्का बड़ा भाई मोगिल्यान (मेरक्नि) "छोटा शाह"के नामसे एक प्रदेश-शासक था। वह बहुत नरम स्वभावका आदमी था। वह अपने भाईके पक्षमें कगान-पदको छोड़ उप-कगान ही रहना चाहता था, लेकिन परिस्थितियां ऐसी थीं, जिनके कारण क्युल-तेगिन् स्वयं गद्दी संभालना नहीं चाहता था। लाचार हो मोगिल्यान्को खान बनना पड़ा। इसी समय पश्चिमी तुर्कोंकी शाखा तुरगिसके सुलू कगानने अपनेको मो-चोके कुलसे स्वतंत्र घोषित किया। मो-चोका सबल हस्त न रहनेके कारण पूरब (मंचूरिया)के खिताइयों और घेरियोंने भी तुर्कोंकी अधीनता छोड़ चीनको कर देना शुरू किया। यही नहीं तुर्गिसकी शक्ति इतनी आगे बढ़ गई थी, कि उसके दूतको चीन दरबारमें प्रथम स्थान दिया गया, मोगिल्यानके दूतने जिसका विरोध किया। इसके बाद तुर्क फिर कभी पूर्वकी जातियोंके ऊपर अपना आधिपत्य नहीं जमा सके।

गुदुलूके पहले तुर्कोंकी जो भारी हत्या चीनियोंने की थी, उस समय एक तुर्क राजकुमार तोन-यू-कुक् (तुरंगू) बच गया, किंतु वह चीनका बंदी बना। चीनने उसे गुदुलूसे लड़नेके लिये जेलसे निकालकर भेजा था, और उसने पक्ष परिवर्तनकर गुदुलूका प्रभावशाली सलाहकार बननेमें सफ-लता पाई थी, यह बात हम कह आये हैं और यह भी, कि मो-चोके जमानेमें उसकी पूछ नहीं रह गई थी। मोगिल्यान्के शासनारंभके समय वह ७० वर्षका बूढ़ा था। वह नये कगानका ससुर भी था। मोचोके समय भागकर उसने चीनमें शरण ली थी। लोगोंने उसे बुलानेकी मांग की। भागे हुए तुर्कोंको ओर्दूस् प्रदेशमें बसाया गया था। अब चीनने हथियार छीनकर उन्हें ह्वाङहो (ह्वु ङ्इ) पार भेज दिया। हथियार बिना वह बेचारे न शिकार करके जीविका पैदा कर सकते थे, न आत्मरक्षा ही। जब उन्होंने विरोध प्रदर्शित करना चाहा, तो चीनी सैनिकोंने उनमेंसे बहुतोंको मार डाला। उनमेंसे कुछ मोगिल्यानके राज्यमें भाग जानेमें सफल हुए। मोगिल्यान (छोटे शाह) ने इस अत्याचारका बदला चीनमें लूट मार मचाकर लेना चाहा, लेकिन वृद्ध तोन्-यू-कुकने उसे समझाया "फसल इस साल अच्छी है। चीन महाबलशाली राज्य है। हमारे नये एकत्रित हुए ओर्दूको विश्रामकी अवश्यकता है।" वह मोगिल्यानको रोकनेमें सफल हुआ। मोगिल्यान (बुद्धके प्रधान शिष्य) नाम ही बतलाता है, कि नये कगान पर बौद्ध धर्मका बहुत प्रभाव था। शायद उसी कारण उसका स्वभाव इतना नरम था। कगानने कुछ दुर्गबद्ध नगर और बौद्ध विहार बनानेकी इच्छा प्रकट की, तो तोन्-यू-कुकने कहा—"नहीं, तुर्कोंकी जनसंख्या बहुत कम है, वह चीनकी जन-संख्याकी शतांश भी नहीं है। हम चीनके मुकाबिले जो अभी तक अपनेको दृढ़ साबित कर सके, उसका एक ही कारण है, कि हम सब घुमन्तू हैं, हम अपनी रसदको अपने साथ अपने पैरोंपर ले जा सकते हैं, और हमारे सभी लोग युद्धकलामें निपुण हैं। जब हम अपनेमें क्षमता

[1] वही पृ० ३७२

देखते हैं, तो लूट मार मचाते हैं, जब नहीं देखते, तो ऐसी जगह भागकर छिप जाते हैं, जहां चीन हमें पकड़ नहीं सकता। यदि हम नगर बसाने लगे और जीवनके पुराने ढरेंको हमने बदल दिया, तो एक समय हम अपनेको बिलकुल पराधीन पायेंगे। विशेष कर इन बौद्ध विहारों और मंदिरोंका मुख्य सार है आदमीके स्वभावको नरम बनाना। लेकिन मनुष्य जातिपर वही आधिपत्य कर सकता है, जो भयंकर और लड़ाकू है।" तोन्-यू-कुकके इस भाषणकी सारी तुर्क राजसभा और स्वयं छोटे शाहने बहुत तारीफ की। तोन्-यू-कुक तुर्कोंकी सनातन रीति—सैनिक जनतंत्रता और बर्बरता—का परम पक्षपाती था।

मोगिल्यान चाहे कितना ही शांति-प्रेमी हो, लेकिन वह उन तुर्कोंका कगान (राजा) था, जिनके खूनमें युद्धकी भावना बसी हुई थी। उनके कारण चीनको नींद हराम हो गई थी। ओर्दूसूके चीनी महाआयुक्तकने ७२० ई० में सलाह दी, कि हामी नगरके नजदीक केरा नदी (चंला हो) के तटपर अवस्थित तुर्क ओर्दूपर आक्रमण किया जाय। इस अभियानमें पूरबके खिताई और घेई तथा पश्चिमके बसिमिर (पशिमी) ने भी सहयोग दिया। बसिमिर नजदीक थे, इसलिये वह पहले पहुंचे। उधर उरुमचीसे ७५ मील पर पहुंच कर तुर्कोंने अपनी सेनाके एक भागको शहर पर अधिकार करनेके लिये भेजा और दूसरेको बसिमिर पर आक्रमण करनेके लिये। लेकिन परिणाम प्रतिकूल निकला। शत्रुके ओर्दूके नर-नारी बंदी बने। उन्होंने ल्याङ चौको भी लूटा। इस सफलतासे मोगिल्यान् मो-चोके राज्यके बहुतसे भागको लौटानेमें सफल हुआ। उसने थाङ दरबारमें दूत भेजा, कि मुझे सम्राट् अपना पुत्र स्वीकार करें तथा ब्याहके लिये एक राजकन्या दें। दरबारने पहली बात स्वीकार की, दूसरी बातका कोई जवाब नहीं दिया।

स्वेन्-चाङकी भारत-यात्रा इससे प्रायः एक शताब्दी पहले हुई थी, जब कि खे-ली खकान (मृत्यु ६२८ ई०) पदच्युत हो चुका था और उसके साथ ही पूर्वी तुर्कोंकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। पश्चिमी तुर्कोंके संबंध में कहते हुए हम स्वेन-चाङकी यात्राके बारेमें आगे लिखेंगे। स्वेन्-चाङकी यात्राकी भूमिका चीनके एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और लेखकने लिखी थी। उसने ७५५ ई० में सलाह दी, कि तुर्कोंसे खबरदार रहनेके लिये सेना बढ़ानी चाहिये और यह भी कि गुदुलूका स्वार्थहीन लड़ाकू ज्येष्ठ पुत्र, बुद्धिमान तोन-यू-कुक और उदाराशय छोटा शाह, इन तीनोंकी गुट चीनके लिये बड़े खतरेकी चीज है। ऐसे समय सम्राट् स्वेन्-चुङ (७१३-५६ ई०) को थाई-शान् शिखरपर बलि-पूजाके लिये पूरबकी ओर जाना अच्छा नहीं है। दूसरे मंत्रियोंने सलाह दी, कि प्रमुख तुर्क नेताओंको भी इस यात्रामें सम्मिलित करके उन्हें फंसा लिया जाय, तो सब ठीक होगा। चीनी राजदूत उनके पास संदेश लेके गया। उसके साथ बातचीत करते छोटे शाह मोगि-ल्यान, उसकी खातून (रानी), ससुर, गुदुलू-पुत्र सब तम्बूमें बैठे थे। उन्होंने चीनको उलाहना देते हुए कहना शुरू किया—"चीनने उन दुष्ट तिब्बतियोंके साथ विवाह संबंध किया है। घेई और खिताई एक समय तुर्कोंके आज्ञाकारी सेवक थे, उन्हें भी चीनी राजकुमारियोंसे ब्याह करने दिया जाता है। क्या बात है, कि बारबार प्रार्थना करने पर भी हमारे साथ ब्याह संबंध नहीं करने दिया जाता।" चीनी दूतने जवाब दिया—"खाकानने सम्राट्से पुत्र बननेकी प्रार्थना की थी। भला पिता और पुत्र कैसे एक दूसरेके परिवारमें शादी कर सकते हैं?" इसका उत्तर था "घेइयों और खिताइयोंके लिये भी तो यही बात है। फिर हम यह भी जानते हैं, कि ब्याह में सम्राट्की अपनी पुत्रियां नहीं दी जातीं।"

यहां तिब्बत[1] (थुबुत) के साथ चीनी राजकन्याके व्याह ७१० ई० का जो संकेत है, वह चीन-सम्राट् जुङ-पुङकी एक पोष्य पुत्री थी, जिसे तिब्बतके राजाको देना था। उसीका उत्तराधिकारी यही स्वेन्-चुङ था, जिसके दूतसे बात हो रही थी और जिसने अपने वंशकी कन्यायें घेई और खिलाई राजाओंको दी थीं।

दूतने विश्वास दिलाया कि, मैं सम्राट्से जाकर सब बातें कहूँगा। लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं निकला।

तिब्बतवाले भी चीनकी दोहरी चालसे संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने तुर्कोंके सामने प्रस्ताव रक्खा, कि दोनों मिलकर चीनपर आक्रमण करें, लेकिन मोगिल्यानने इस प्रस्तावको ठुकरा ही नहीं दिया, बल्कि तिब्बती पत्रको सम्राट्के पास भेज दिया। यह याद रखना चाहिये, कि इस समय तरिम-उपत्यका (सिङक्याङ) पर तिब्बतवालोंका दृढ़ अधिकार था। सम्राट्ने बहुत प्रसन्नता प्रकट करते हुए व्यापार-संबंध स्थापित करनेका हुक्म दिया और वार्षिक पैसा भी देना स्वीकार किया। इसी समयके अभिलेखमें पहले पहल घोड़ोंके बदले चाय देनेकी बात लिखी मिलती है, अर्थात् ८वीं शताब्दीके प्रथम पादमें चाय पीनेका रवाज चीनसे बाहर इन घुमन्तू तुर्कोंमें भी हो चुका था।

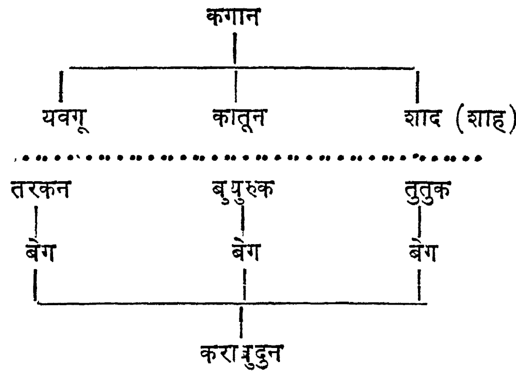
सब तरहसे देखनेपर मोगिल्यानका शासनकाल तुर्कोंके लिये बुरा नहीं कहा जा सकता। मो-चोके साम्राज्यकी पूर्वकी मंचूरिया और पश्चिमकी इलि-चू उपत्यका तुर्कोंके हाथसे निकल गई थी, तो भी अभी तुर्क-शक्ति क्षीण नहीं हुई थी। छोटे शाहके मरनेके बाद उसका बहुत शीघ्रतासे ह्रास होने लगा। उसके बाद साम्राज्यके पतनके काल में निम्न खाकान हुए—

(४) ईज्रान्या (७३५-३९ ई०) मोगिल्यानका पुत्र।
(५) विग्र गुडुलू (७३९-४२ ई०) इजान्याका भाई।
(६) ओजमिश (७४२-४४ ई०) पूर्वी शाहका पुत्र।
(७) वाइमेइ खान खूतुग्-फू (७४४-४७ ई०)

जैसा कि शीघ्र पतिष्णु राजवंशमें अक्सर देखा जाता है, यह समय खानोंकी हत्याओं और षड्यंत्रोंसे भरा था। विलासी सामन्तशाहीके खिलाफ "सीधे सादे, काले लोगों" (जनसाधारण) को फिर उभाड़ा जाने लगा। उइगुर, करलोक और बसिमिर कबीले एक साथ उठ खड़े हुए, जिनका नेतृत्व एक उइगुर सरदार मोयुन्-चुराने किया। उइगुरोंने वाइमेइको मार डाला। कुतुलुक-पुत्र जो इतने दिनों तक पीछे रहकर खानोंको बनाता बिगाड़ता रहा, अब भी तुर्कोंके अंतिम दिनोंके देखने और संघर्षमें भाग लेनेके लिये बचा था। बसिमिरके कगानकी कुछ ही समय तक प्रधानता रही, उसके बाद उइगुरोंका पलड़ा भारी हुआ। मोगिल्यानकी खातूनने भागकर चीनमें शरण ली।

इस प्रकार अपने स्वामी आवारों (जूजूनों) से स्वतंत्र हो, तुर्कोंने दो शताब्दियों तक एक विशाल साम्राज्यपर शासन किया। ७४३ ई० में उनके पतनके बाद उइगुरोंने उनका स्थान लिया, किंतु इससे जहां तक जनसाधारणका संबंध है, कोई भेद नहीं हुआ, बल्कि वही ओर्ढू, जो पहले तुर्क कहा जाता था, अब उइगुर-ओर्ढू के नाम से पुकारा जाने लगा। वस्तुतः भाषा और जातिके तौरपर तुर्कों और उइगुरोंमें बहुत भेद नहीं था।

तुर्क एल (कबीले)का संगठन निम्न प्रकार था—



स्रोत-ग्रंथ :

१. सोत्सिअल्नो एकोनोमिचेस्किइ स्त्रोइ ओर्खोनो-येनिसेइस्किख त्युरोक VI-VIII वेकोफ (अ. बेर्नश्ताम्, लेनिनग्राद १९६४)

2. A Thousand years of Tatars (Parker)

3. Inscription de l'Orkhon recueillies par l' expedition Finnoise. 1890. S. F. O,, Helsingfors 1892.

4. Dechiiferment des inscription de l' Orkhon et de l'lenissei. Bull. de l' Acad. Royal des sciences et de lettre de Dannemark, No. 3, Copenhague, 18, pp. 285-299. (V. Thomsen)

५. पाम्यात्निक व् चेस्त् क्वुल्-तेगिना, जावाशो, XII, 2-4

6. Die Kokturkischen Grabins chriften aus dem Tale des Talas in Turkistan. ZfΓFuVGKCsA, Bd. II, Lief. 12, Budapest, 1926(J. Nemeth)

७. द्रेव्ने तुरेत्स्किये नाद्ग्रोबिया स् नाद्पिस्यामि बास्सेइना र. तलस् (स० ये० मालोफ़ इ० अ० न० १९२९)

८. किर्गिजी (व० बर्तोल्द, फ्रुन्जे १९२७)

9. Histoire générale des Huns, des Turcs, des Mongoles et de Autre Tartares Occidentaux (J. De. Guignes, Paris 1756-1758)

10. Migration des Peoples et Perticulerement celles Touraniens. (Ujfaly, Paris 1873)

अध्याय ५

पश्चिमी तुर्क (५८०-७०४ ई०)

पश्चिमी मध्य-एसिया (उत्तरापथ और दक्षिणापथ दोनों) का सीधा संबंध पश्चिमी तुर्कोंसे रहा। दक्षिणापथमें शकोंकी शक्तिको खतम करनेवाले श्वेतहूण (हेफ्ताल) थे, जो अराल समुद्रके उत्तरसे आये थे। इन्होंने प्रायः एक शताब्दी तक पश्चिमी अरालसे नर्मदा तट तक शासन किया। मध्य-एसिया और अफ़गानिस्तानमें श्वेत-हूणोंकी शक्तिको तुर्कोंने खतम किया, तो भी भारतमें वह श्वेत-हूणोंके उत्तराधिकारी नहीं हो सके। इस्लाम (अरबों) से लोहा लेनेवाले यही पश्चिमी तुर्क थे। इन्होंने ईरानकी तरह जल्दी हथियार नहीं रख उनके छक्के ही नहीं छुड़ाये, बल्कि अरबोंके अधीन हो जाने पर इस्लाम धर्म स्वीकार करके वह फिर तुर्क शासकोंके रूपमें प्रकट हुए। महमूद गजनवी तुर्क था। भारतके प्रथम मुस्लिम राजवंश (गुलाम, खलजी और तुगलक) भी पश्चिमी तुर्क थे, इस प्रकार पश्चिमी तुर्कोंका महत्व मध्य-एसियाके ही नहीं भारतके इतिहासके लिये भी बहुत है। कगान पदके लिये शबोलियों और दालोब्यानका जो झगड़ा हुआ, उसमें दालोब्यानको एक स्थानीय कगानका पद देकर फुसलानेका प्रयत्न किया गया, पर दालो-ब्याननें पश्चिमी तुर्क साम्राज्यकी नींव डाली।

१. दालोब्यान (५८०-. . .ई०)

दालोब्यान निम्न-कुलीन माताका पुत्र होनेके कारण कगान निर्वाचित नहीं हो सका, यह बतला चुके हैं। वह अन्तमें उस प्रदेशमें चला गया, जहाँ पहले वू-सुन् रहा करते थे। वहां उसने एक राज्यकी नींव डाली, जिसे पश्चिमी तुर्कोंका साम्राज्य कहा जाता है। दालोब्यानके शासन-कालमें उसकी पश्चिमी या पश्चिमोत्तरी सीमा बल्काश सरोवर था। उत्तरमें अल्ताईके परेका रेगिस्तान सीमापर पड़ता था। हराशर् (कराशर) से उत्तर-पश्चिम सात दिनके रास्तेपर कुल्जाके आसपास उसका दक्षिणी ओर्दू रहता था और उत्तरी ओर्दू आगे आठ दिनके रास्तेपर एमिलके पास था। काशगर उसके राज्यमें था और संभवतः चाच (आधुनिक ताशकन्द) का इलाका उसीका था। उसके अधीन तिङ-लिङ, करलोक, तुर्किस कबीले थे। हामीके उत्तर-पश्चिमके रेगिस्तानी तुर्क भी उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। इनके अतिरिक्त कू-चा (तरिम-उपत्यका) के तुखार और चू, तलस आदिके उपत्यकाओंके सोग्दी भी इसके राज्यमें थे। कूचा और सोग्दकी जातियोंको छोड़ बाकी सभी जातियाँ भाषामें थोड़े भेदके साथ रीति-रवाज और समाजमें तुर्कों जैसी थीं।

तुर्क कगान—

१.	दालोब्यान	५८०...ई०
२.	नीली	
३.	चुलो कगान	–६०५-१८ ,,
४.	शेगुइ	६१८-१० ,,
५.	तुन् शेखू, तद्भ्रात	६१०...,,
६.	क्युली, तत्पुत्र	
७.	सि शेखू, तुनशेखू-पुत्र	
८.	निशू दुलू	
९.	शबोलो खिलिश, तद्भ्रात	६३४-३८ ,,
१०.	इबी दुलू	—६४१ ,,
११.	इबी शबोलो शेखू	६५१—
१२.	अशिका शिन्	७०८ ,,
१३.	शोगे	७०८-९ ,,
१४.	सुलू	७१६-३८

कगानके नीचे जेब्गू (यब्गू, सेखू, उप-कगान या उपराज) होता था। राजपुत्रोंको "देरे" और "शाह"की उपाधियाँ भी दी जाती थीं। बाकी उपाधियाँ उस समय प्रचलित पूर्वी तुर्कों जैसी ही थीं। चूला खेऊ (शबोलियो कगानका भाई तथा प्रथम दूलन का बाप) दलोब्यानके विरुद्ध भेजा गया था। युद्धमें दलोब्यान बन्दी बनाया गया।

२. नीली

प्रथम तुर्क कगान तू-मिन्का पुत्र इस्सिगी थोड़े ही समय कगान रह सका था। उसका पुत्र यान्-सो दे-ले अब दालोब्यानकी जगह नीली नामसे पश्चिमी तुर्कोंका कगान बना। नीलीके समय पश्चिमी तुर्कोंकी अवस्थामें कोई भेद नहीं हुआ। उसके मरनेपर उसका पुत्र दामो (धर्म) कगान बना।

३. चुलो कगान[1] (६०५ ई०)

पहले इसका नाम दमन नेग्यू था, लेकिन कगान बननेपर चूलो खानके नामसे प्रसिद्ध हुआ। चुलो कगानके शासनारंभके समय ही उसकी विधवा माँ (जो चीनी राजकुमारी थी) अपने देवरकी पत्नी बन उसके साथ चीन राजधानी छाङआन्में रहने लगी। उस समय चूलो कगान अधिकतर इलि-उपत्यका में कुल्जाके आसपास रहता था। उसके कितने ही और उप-कगान या यब्गू थे, जैसे (१) चाच (ताशकन्द) का यब्गू हू (सोग्द) लोगों पर शासन करता था। (२) दूसरा कूचामें रहता था। तुकू-हुन (पश्चिमी तुर्कों) पर सम्राट् यङती आक्रमण करना चाहता

[1] A Thousand Years of Tatars पृ० ३७५

था, जिसमें तिङ लिङ सहायता देनेके लिये आये, किंतु चूलो तैयार नहीं हुआ। यही कारण था, जो याङतीने ६०५ ई० में चूलोको परास्त करनेकी कोशिश की। तलसमें तुर्कोंकी भारी पराजय हुई। चुलो कगानने चीनकी अधीनता स्वीकार की और आगेका अपना जीवन चीनमें बिताया, जहाँ कोरियाके साथ चीनकी ओरसे लड़ते हुए मारा गया। उसकी अनुपस्थितिमें शे-गुइ (शे-क्वी) स्थानापन्न कगान था। शेगुइने यब्गू रहते चीनसे राजकन्या माँगी थी। कहते हैं, चीनने इस शर्तपर इसे स्वीकार किया, कि वह चूलोको दबाये। शेगुइने अचानक उस पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने परिवारके साथ कराहोजाकी ओर भागना पड़ा। सेनापति जूमेनके साथ जो तीन लाख सेना भेजी गई थी, उसमें चूलोने भी शामिल होकर अच्छा काम किया। वहीं पूर्वी तुर्कोंके सिविर (सूबिली) कगानके भेजे हुए हत्यारे ने चूलोको मार डाला। चूलोके साथ चीन दरबारमें देरे दमो और होस्सना उप-कगान भी आये थे। इन दोनोंने भी कोरियामें चीनकी सैनिक सेवा की। सुई वंशके समाप्तिके बाद सेनापति कौ-सू द्वारा थाङ-वंशकी स्थापनामें भी इन दोनोंका काफी हाथ था। देरे दमो ६३८ ई० में मरा, लेकिन होस्सनाको सनकी सम्राट् याङतीने जाने नहीं दिया, इसलिये पश्चिमी तुर्कोंने शेगुइको अपना कगान चुना।

४. शे-गुइ (...६१८-१९ ई०)

शे-गुइ पश्चिमी तुर्कोंका पहला कगान था, जिसने साम्राज्यके विस्तारमें भारी काम किया। इसके समयमें राज्यकी उत्तरी सीमा अल्ताई-ताग और पश्चिमी सीमा कास्पियन समुद्रसे मिलने लगी। पूरबमें चीनकी महादीवारके पश्चिमी छोरपर अवस्थित प्रसिद्ध सीहाउ-घाटी तक उसका साम्राज्य फैल गया। पश्चिमकी सारी घुमन्तू जातियाँ उसकी अधीनता स्वीकार करती थीं। शे-गुइका ओर्दू कूचासे उत्तर शायद कुल्जा प्रदेश की सनृमी पर्वतमालामें रहता था। वह अधिक समय तक राज नहीं कर पाया।

५. तुन्-शे-खू[1] (६१९-...ई०)

शे-गुइका छोटा भाई तथा पहले का एक महा-यब्गू अपने बड़े भाईकी जगह गद्दीपर बैठा। इसने पश्चिमी तुर्क-साम्राज्यके विस्तारमें अपने बड़े भाईसे भी ज्यादा काम किया। ६१९ ई० में सुइ-वंश खतम होकर थाङ-वंशकी स्थापना हुई, जिससे यह कभी सुलह और कभी लड़ाई करता रहा। इसके बारेमें इतिहासकारोंने लिखा है, कि वह बड़ा बहादुर महान् सेनासंचालक था। इसका शिर बहुत लम्बा था। उसने उत्तरमें तिङ-लिङोंको अधीनता स्वीकार करनेके लिये मजबूर किया, पश्चिममें ईरानियोंको मार भगाया और श्वेत-हूणों (हेफतालों) के विस्तृत राज्यको लेकर अपने राज्यकी सीमा काबुल (अफगानिस्तान) तक पहुँचा दी। ईरानमें इसका समकालीन शाह खुसरो द्वितीय था, जो अवारोंके कगानसे मेल करके पतनोन्मुख सासानी साम्राज्यकी रक्षाका जबर्दस्त प्रयत्न कर रहा था। ईरानके प्रतिद्वन्द्वी विजन्तीय (ग्रीको-रोमक) सम्राट् हेराक्लियस खजारोंके शक्तिशाली कगानसे सांठ-गांठ करके ईरानको परास्त करनेकी कोशिश कर रहा था। हूणोंके वंशज अबार और खजार उस वक्त बोल्गा और कास्पियनके पश्चिम तटके शक्तिशाली शासक थे। तुन्शेखूसे पहले ही ५८९-५९९ ई० में बलख और हिरातके कुषाण और श्वेत-हूण शासकों ने तुर्कोंकी अधीनता स्वीकार कर ली थी और वह तुर्कोंकी सहायतासे अर्मनियों और

ईरानियों पर आक्रमण करते थे। ६४२ ई० में ईरानका अरबोंके हाथों पतन अब नजदीक था। पहिले शेखू कुल्जामें रहकर पश्चिमी प्रदेशका शासन करता था। पीछे उसने शी-कू (ताश कंद) से ३०० मील उत्तर (तरस नदी पर) अपना केन्द्र बनाया। तुर्किस्तानके सारे राजा उसके अधीन थे। पश्चिमी तुर्कोंका इतना उत्कर्ष कभी नहीं हुआ। थाङ वंशकी स्थापना होने पर उसने मसोपोतामिया (ताउ-ची) से शुतुरमुर्गका अंडा मंगवाकर चीनके पास भेंटके रूपमें भेजा था, जैसा कि उससे ८०० साल पहले पार्थियोंने किया था। सम्राट्ने खेली खाकानके विरुद्ध उसकी सहायता चाही। तुन् शेखूने ६२२ ई० के जाड़ोंमें सेना तैयार करनेका बचन दिया। खेलीने घबड़ाकर तुन्शेखूको अनुनय विनय करके तटस्थ रखा। पूर्वी तुर्कोंके कगान खेली और थाङ-सम्राट् सुङसे जिस वक्त घोर संघर्ष हो रहा था, उस समय तुन्शेखूका संबंध चीनसे टूट गया था। ६२७ ई० में थाङ-सुङके अभिषेकका निमंत्रण देनेके लिये आये चीनी दूतके साथ तुन्-शेखूका अधिकारी महाजिगिन सम्राट्के लिये १० हजार सुवर्ण मेखोंसे जटित कटिबंध और ५ हजार घोड़े ले गया। खेली नहीं चाहता था, कि पश्चिमी तुर्क कगानका चीनी राजवंशसे विवाह-संबंध हो। उसने रास्ता काट देनेकी धमकी दी।

स्वेन-चाङ[1] (६००-६४ ई०)—इस महान् पर्यटकने अपनी यात्रा ६२९ ई० में आरंभकी थी और ६४५ई० में १६ वर्ष बाद वह चीन लौटा। अपने यात्रा-विवरणका पहला मसौदा उसने ६४६ई० में लिखा, ६४८ ई० में वह तैयार हुआ। संभवतः इस सारे समयमें तुन्शेखू जीवित रहा। स्वेन्-चाङ अपनी यात्रामें उसके राज्यसे गुजरा था। कराशर (अग्निनी) में वह ६३० ई० के आसपास पहुँचा था। अभी वह चीनके हाथमें नहीं था और ६४३-४४ई०में ही चीनका उसपर अधिकार हो सका। कराशरसे २०० ली दक्षिण-पश्चिम कूचा (कूची) का प्रसिद्ध नगर था, जो कि तुन्शेखूके राज्यमें था। स्वेन्-चाङ लिखता है : वहां गेहूं, चावल, अंगूर और अनार बहुत होते हैं। नास्पाती और खूबानी भी काफी होती हैं। इस प्रदेशमें सोने, तांबे, लोहे, सीसे और रांगेकी खानें हैं। कुछ परिवर्तनके साथ भारतीय (गुप्त-ब्राह्मी) लिपि यहां प्रचलित थी। कूचाके लोग वीणा, वेणु जैसे वाद्य-यंत्रोंमें बड़े चतुर थे। उनके चोगे ऊनी कपड़ोंके होते थे। शिरपर वह पगड़ी बांधते थे। वहां सोने, चांदी और तांबेके सिक्के चलते थे। कूचाके लोगोंमें अपने बच्चोंके शिरको चिपटा करनेका रवाज था। स्वेन्-चाङके समय कूचा प्रदेशके सौ बौद्ध बिहारोंमें ५ हजार सर्वास्तिवादी भिक्षु रहते थे, जो त्रिकोटि-परिशुद्ध मांस खानेमें परहेज नहीं करते थे। तुन्शेखू शासित कूचाके बारे में बतलाते हुए स्वेन्-चाङने लिखा है—"राजधानीके पश्चिमी द्वारके बाहर ९० फुट ऊंची दो खड़ी बुद्ध-मूर्तियां सड़ककी दोनों बगलमें अवस्थित हैं। यह इसी स्थानपर स्थापित हैं, जहां बौद्ध अपना पंचवर्षीय समागम करते हैं। यहीं पर भिक्षु और उपासक शरदके अंतमें महाप्रवारणा की वार्षिक सभा किया करते हैं। यह महाप्रवारणाका मेला दस दिनोंतक रहता है, जबकि देशके सभी भागोंके भिक्षु उपस्थित होते हैं। जिस वक्त भिक्षु अपना संघ-सन्निपात करते हैं, उसी वक्त राजा-प्रजा उत्सव मनाते हैं। इस समय वह काम नहीं करते, उपोसथ रखकर धर्मोपदेश श्रवण करते हैं। उत्सवके समय सभी बिहार अपनी अपनी बुद्ध-मूर्तियोंको मोती और

[1] वही पृ० ३७५

[1] On Yuan Chwang's Travel in India (Thomes Watters,)

रेशमी कमखाबसे सजाकर जलूस निकालते हैं। मूर्त्तियाँ रथोंपर रखी रहती हैं। पहले जो जलूस हजारसे शुरू होता है, वह मिलन स्थानपर पहुंच कर भारी मेलेमें बदल जाता है। इस मिलनस्थानसे उत्तर पश्चिम तथा नदीके दूसरी पार 'अद्भुत विहार' है। इस विहारमें कई विशाल शालायें और बहुत ही कलापूर्ण बुद्ध मूर्तियां हैं। यहांके भिक्षु विनय-नियमोंको बड़ी दृढ़ताके साथ पालन करते तथा शिक्षा और बौद्धिक योग्यतामें बहुत बढ़-चढ़कर होते हैं। इस विहारमें दूर-दूर देशोंके प्रसिद्ध विद्वान् आकर रहते हैं, जिनका राजा उसके अधिकारी तथा जनता बहुत स्वागत-सत्कार करते हैं।"

स्वेन्-चाङ यहांसे पामीर (चुङलिङ, पलाण्डुगरि) की ओर चला। वह लिखता है "पो-लू-का (अक्सू) से ३०० ली उत्तर-पश्चिम लिङशान् (हिमगिरि) है। यहाँसे चुङलिङ (पामीर) का उत्तरी भाग आरंभ होता है।...यहाँकी अधिकांश नदियाँ पूरबकी ओर बहती हैं। मार्ग खतरनाक है। बड़े जोरकी ठंडी हवा बहती है। ..४००ली जानेपर महासरोवर तप्तसागर (इस्सिकुल) मिला, जिसका घिरावा १००० ली है। यह पूरबसे पश्चिम लम्बा है और इसके चारों ओर पहाड़ खड़े हैं। सरोवरका पानी खारा है।...इसमें मछलियाँ बहुत हैं।"

यहाँसे स्वेन्-चाङ संभवतः चू-नदी (शू-त्से) की उपत्यकासे होकर आगे बढ़ा। ५०० ली उत्तर-पश्चिम जाने पर उसे शू-से नगर मिला (शूसे नगर ६७९ ई० से पहले नहीं था, जान पड़ता है, यात्राके सम्पादकने इसे पीछेसे जोड़ दिया)। यहांके निवासी अधिकांश भिन्न-भिन्न देशोंके व्यापारी थे। पैदावार गेहूँ, अंगूर आदि होती है। वृक्ष कम और हवा सर्द है। लोगोंकी पोशाक ऊनी होती है। इससे पश्चिम दसियों नगरियाँ हैं, जिनके अपने-अपने राजा हैं, किंतु सभी तुर्कोंके आधीन हैं।

"शूसे (चू नदी) तट से कासन्ना देश तकके लोग सूली (सोग्दी) कहे जाते हैं। इनकी लिपिमें २० अक्षर होते हैं, और वह ऊपरसे नीचेकी ओर पढ़ी जाती है। इनके चोगे पट्टू या जमाऊ ऊनी कपड़ोंके होते हैं, जिसके भीतरकी ओर चमड़ा या कपास रहता है। (सोग्दी लोग) बाल कटाकर शिरके ऊपरी भागको नंगाकर देते हैं, कोई कोई सारे बाल मुंड़ा लेते हैं। अपने ललाटपर वह एक रेशमी पट्टी बाँधते हैं। कदमें लम्बे होते हैं, किंतु वह कायर, विश्वासघाती, धोखेबाज होते हैं। वह बड़े झगड़ालू बड़े लोभी होते हैं। लोभके पीछे पिता और पुत्र एक दूसरेको ठगनेकी कोशिश करते हैं।" धन ही यहाँ बड़प्पनका चिह्न है, इनमें कुलीन और नीच-वंशिकका कोई भेद नहीं। इन लोगोंमें आधे व्यापारी और आधे खेतीपर गुजारा करते हैं। अत्यन्त धनी होनेपर भी वह बिल्कुल साधारण भोजन खाते तथा मोटे-झोटे कपड़े पहनते हैं।

वहाँसे ४०० ली पश्चिम जानेपर पिङ-यू (बिङगुल) सरोवर मिला। यहाँ केवल दक्षिण की ओर हिम-पर्वतमाला (अलेक्-सान्दरगिरि) है, बाकी तरफ मैदानी भूमि है। वसंतमें यहाँ तरह-तरहके फूल खिले हुए थे। "यहाँकी भूमि बड़ी उर्वर है, चारों तरफ वृक्ष ही वृक्ष दिखाई देते हैं। वसंतके अंतिम भागमें यह स्थान, मालूम होता था, जैसे फूलोंका कसीदा काढ़ा हुआ है। यहाँ १००० चश्मे और पुष्करिणियाँ हैं, इसीलिए इसका नाम लिङ-यू (सहस्रधारा) पड़ा।" तुर्कोंका खाकान गर्मी से बचनेके लिये हर साल गर्मियोंमें यहाँ आया करता था। घण्टी और छल्ला पहने पालतू हिरन कगानको बहुत प्रिय थे, जिनको मारनेवाले अपराधी को प्राणदण्ड मिलता था।

गद्दीपर बैठते ही तुन्शेखू अपना शासन-केंद्र यहाँ लाया। स्वेन्-चाङ उससे ६३१-३२ ई० में मिला था। मुलाकातके बारेमें चीनी पर्यटकने अपने यात्रा-वर्णनमें लिखा है—"शेहू-कगान

उस समय शिकारमें जा रहा था। उसके सैनिक सामान बहुत ही विशाल थे। कगान हरे शाटनका चोगा पहने हुए था। उसके बाल खुले हुए थे। उसके ललाटपर चारों ओर बँधी सफेद रेशमकी पट्टी पीछेकी ओर लटकी हुई थी। उसके २०० से अधिक अमात्य वहाँ उपस्थित थे। सबके ही चोगे कसीदेदार और बाल पट्टेदार थे। वह कगानके दाहिने बायें खड़े थे। बाकी सैनिक अनुचर समूर, पट्टू या बारीक ऊनी कपड़े पहने हुए हाथोंमें भाले, ध्वजा और धनुष लिये ऊंटों या घोड़ों पर सवार हो वह बहुत दूर तक फैले हुए थे। कगान चाङसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपनी अनुपस्थितिमें—जो कि दो तीन दिन ही की थी—अपने शिविरमें रहनेको निमंत्रित किया। उसने अपने हजूरी-मंत्री हा-मी-सी-चीको स्वेन्-चाङकी सेवाका काम सौंपा। तीन दिन बाद खाकान लौटा और स्वेन्-चाङ उसके तम्बूमें ले जाया गया। विशाल तम्बूपर कढ़े सोनेके कसीदेको देखकर आँखें चकाचौंध हो जाती थीं। दरबारी दोनों बगल दो लम्बी पांतियोंमे कालीनपर बैठे हुए थे। सबके चोगे बड़े सुन्दर कमखाँबके थे। बाकी परिचारक पीछेकी ओर अपने काममें मुस्तैद खड़े थे।...खाकान अपने तम्बूसे निकल ३० कदम आगे बढ़कर स्वेन्-चाङ से मिलने आया। (पर्यटक) लगातार प्रणाम करते हुए तम्बूके भीतर गया। चूंकि तुर्क अग्निपूजक (जर्थुस्त्री या मानी धर्मी) थे, इसलिए काष्ठका आसन नहीं इस्तेमाल करते, क्योंकि काष्ठ अग्निका आधार है। उसकी जगह वह दोहरे कालीन या दरीको आसनके तौरपर इस्तेमाल करते हैं। लेकिन तीर्थाटकके लिये कगानने लोहेके ढांचेवाले बेंचपर कालीन बिछवा रक्खा था। उसने अपने लिये मद्य और संगीतकी आज्ञा दी और यात्रीके लिये द्राक्षारस मँगवाया। इसके बाद सभी परस्पर मद्य चषक भरने, आगे बढ़ाने और उड़ेलनेमें व्यस्त हो कोलाहल मचाने लगे। इसी समय भिन्न-भिन्न यंत्रोंके स्वरसे मिश्रित संगीत ध्वनित होने लगा। दूसरोंके लिये भुना हुआ ढेरका ढेर गोमांस और मेषमांस परोसा जा रहा था, और यात्रीके सामने रोटी, दूध, मिश्री, मधु और अंगूर परोसे गये।" कगानकी भारतके प्रति अच्छी धारणा नहीं थी। उसने स्वेन्-चाङ को काले असभ्य घृणास्पद लोगोंके देशमें जानेसे मना किया। उसकी सेनामें घोड़सवार ही नहीं बल्कि हाथीसवार सैनिक भी थे।

कुछ इतिहासकारोंने शेहू खानको तुली खानका संबंधी बतलाया है; जिसकी मृत्यु ६३५ ई० में हुई थी, लेकिन शेहू तुनशेखूका ही नाम मालूम होता है।

अन्तमें तुनशेखू भी प्रभुता पाकर बौराये बिना नहीं रहा, इसपर करलोक जैसे कितने ही घुमन्तू कबीले उसके विद्रोही हो गये। स्वयं उसके अपने चचा मो-खे-दूने ही उसे मार डाला।

६. क्यू-ली सि-बि खान[1]

चचाको तुर्क ओर्दू कगान माननेके लिये तैयार नहीं हुआ और जिसको वह कगान बनाना चाहता था, वह कांटोंका ताज लेनेके लिये तैयार नहीं था; इसलिये तुनशेखूके पुत्रको कगान बनाया गया, जिसने कि समरकन्द में भागकर शरण ली थी। उसे बुलाकर क्यू-ली सि-बि-खान (अथवा इल्वी शापोरो चतुर्थ जेबगू खकान) के नामसे गद्दीपर बैठाया गया। फिर भी गृह-युद्ध नहीं रुका।

---

[1] A Thousand years of Tatars p. 376

तिङलिङों और तुर्किस्तानकी रियासतोंने विद्रोह किया। सेयेन्द्रा और तिङ लिङों (कंकालियों) से हार खानी पड़ी। इसीके समय किप्चक (अराल समुद्रसे उत्तरका प्रदेश), अफगानिस्तान तथा ईरानी इलाके पश्चिमी तुर्कोंके हाथसे निकल गये। निशूमोखे खान (शाद)? और तुनशेखूका पुत्र शिली देले (तेगिन्) कंगोंमें जाकर सि-बिका विरोध करने लगे, जिसमें उसके प्रतिद्वंद्वी सिुशेखूको सफलता मिली और क्रोधी, क्रूर, हठी सि-बि खानको फिर समरकन्द भागना पड़ा।

७. सि शे-खू

सि शेखू तुन् शे-खूका पुत्र था। इसके समय तलसके सेयन्दोंसे युद्ध हुआ। इसके घरू प्रतिद्वंद्वियोंकी कमी नहीं थी, जिनमें सेनि-शूके साथ जबर्दस्त संघर्ष हुआ। उसने कराशरकी हरितावलीमें जाकर पनाह ली थी, लेकिन अन्तमें उसीकी विजय हुई।

८. निशू दुलु-खान, ९. शबोलो खिलिश खान (६३४-३७ ई०)

निशू दुलू खानके राज्यशासन-कालका निश्चय नहीं है। ६३४ ई०के आसपास यह रहा होगा। इसका छोटा भाई तुन्-बो-शे उसके बाद (६३४-३८ ई० में) शबोलो खिलिश् खानके नामसे गद्दीपर बैठा। उसने अपने शासित प्रदेशमें कुछ शासन संबंधी सुधार किये, और चू-नदीसे पूर्वमें पांच और पश्चिममें पांच—दस ऐमकोंमें अपने राज्यको विभक्त किया। इसे ही "दस शे और दस वाण" कहते हैं। चीनी लेखकोंके अनुसार दुलू-खान जनप्रिय नहीं था, उसके शासनमें बहुत गड़बड़ी रही। पारस्परिक कलहके कारण अवस्था अनिश्चित थी। दुलू खानके अनंतर एकके बाद एक तीन कगान हुए।

१०. इबी दुलू-खान (६४१ ई०)

इसे अराल समुद्रके पासके कंगोंसे कई लड़ाइयां लड़नी पड़ीं, पर यह उनकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करनेमें सफल हुआ। पराजित कंग बहुत भारी संख्यामें दास बने। दास जंगम संपत्ति थे। घरमें रखकर उनसे काम लिया जा सकता था, बाहर या घरके खरीदारोंके हाथ उन्हें अच्छे दामोंमें बेचा जा सकता था। दुलूने सभी दासोंको अपने लिये रखना चाहा, जिससे उसका सेनापति निशू-चो नाराज हो गया और उसने अपना हिस्सा ले लिया। इसपर इबीने सबके सामने उसका शिर कटवाकर लोगोंके देखनेके लिये टांग दिया। इबीका सारा समय भीतरी कलहमें बीता।

११. इबी शबोलो शे-खू[1] (६५१- ई०)

शायद इसे ही खे-लू शबोलियो या अशिना खे-लू (शे-गुइ) कहते हैं। चीनकी सहायतासे यह खान बना था, इसलिये चीनकी हर एक मांगको पूरा किये बिना कैसे रह सकता था? पहिले ही ६४६ ई० में इसने कूचा, काशगर, खोतन, चू-जुई-बो और चुङ-लिङ (पामीर) को चीनको दे दिया था। ६५१ ई० में बाइ-सुन्-खू सहित दुली खानकी सारी भूमिको हस्तगत कर यह

[1] वही पृ० ३७८

बाकायदा शबोलो नाम से तुर्कोंका कगान बना। थाङ-सम्राट्की राज्यविस्तार लिप्सा कम नहीं हो रही थी। वह चाहता था, कि शबोलो एक छोटा सा सामन्त होकर रहे, लेकिन तुर्क अभी भी घुमन्तू थे, अतः सैनिक जीवनको छोड़ नहीं सकते थे। उनका कगान कितने दिनों तक दबता रहता? शबोलोका चीनसे संघर्ष छिड़ गया, जिसका परिणाम चीनके अनुकूल हुआ और कुछ समयके लिए तुर्कोंका राज्य चीनका प्रदेश बन गया। जो प्रदेश अवशिष्ट रहा, वह भी गरलोक (गे़लोलू), खुबू और सुनिशी इन तीन वंशोंमें विभक्त हो गया।

१२. अशिना-शिन् (-७०७ ई०)

यही तुमिन वंशका अंतिम कगान था। यह मालूम ही है कि पश्चिमी और पूर्वी दोनों तुर्क राजवंशोंका मूल कुल अशिना था। इस वंशके कगानोंने इधर अपनेको बिल्कुल अयोग्य साबित किया था, इसलिये वंश अन्तमें देर नहीं हो सकती थी। ७०८ ई० में कुलान (तर्ती स्टेशन) में अशिना-शिन मारा गया और उसके प्रतिद्वंद्वी सोगेने तुर्गिस शाखा की स्थापना की।

१३. सोगे (७०८-७०९ ई०)

एक तरफ तुर्कोंकी शक्ति इस तरह क्षीण हो रही थी, दूसरी तरफ अरबोंकी शक्ति बढ़ती जा रही थी। कुछ ही समय पहले पश्चिमी तुर्कोंके राज्यमें सारा अफगानिस्तान और ईरानके कितने ही भाग सम्मिलित थे, जिनमें अब अरब घुस रहे थे। ६८९ ई० में बक्षु (आमू-दरिया) से उत्तर बढ़कर अरब सेनापति मूसा बिन्-अब्दुला बिन्-हाज़िम्ने तिरमिज़को अपना शासन-केंद्र बनाया, जहाँ ७०४ ई० तक वह सर्वेसर्वा रहा। ७०५ ई० में पामीरके पहाड़ोंसे आनेवाली सुर्खान नदीकी उपत्यका पर भी अरबोंका अधिकार हो गया। ७१२ ई० में उसके पासके प्रदेश शगानियानको ही अरबों ने नहीं ले लिया, बल्कि ख्वारेज्मके प्राचीन देश पर भी इस्लामकी ध्वजा फहराने लगी। ७१२ ई० में समरकन्दपर तुर्गिस वंशका अधिकार था, किंतु अगले साल सोग्द् देश छोड़कर वह चले गये। अरब सेनापति कुतैबने और आगे बढ़ उनके प्रदेश शाश (ताशकंद) और फर्गाना पर आक्रमण किया। इसी साल बुखारामें उसने पहली मस्जिद बनवाई।

तुर्गिस् (त्युर्गेम्) पूर्वी तुर्कोंका ही एक कबीला था, जो पहले दुलूके ओर्दू (उर्त)में शामिल था। इसकी चरभूमि चू और इली नदियोंके बीचमें थी—बड़ा कबीला सुयाबमें और छोटा इलीके किनारे रहता था। पहले इसका सरदार बू-चिनु-पुत्र था, जिसके अत्याचारोंसे तंग आकर इन्होंने उसे छोड़ दिया। बूचिनु-पुत्र अपने पुत्र सोगाके साथ चीन दरबारमें चला गया। बीचमें कबीलेने अपना एक और सरदार बना लिया। इनके उत्तर-पूरबमें उत्तरी तुर्क, पश्चिममें दूसरे बहुतसे तुर्क-कबीले और उत्तरमें किर्गिज रहते थे। पश्चिमी प्रदेशका चीनी राज्यपाल उरूम्चीमें रहता था, सोगाने चीन दरबारमें रहकर अपनी शक्तिको बिल्कुल खो नहीं दिया था। उसने काश्गर प्रदेशको लौटा देनेके लिये कहा। चीन दरबार शायद इसे मान लेता, लेकिन तुर्गिसोंके भाईबंद ओचिर् कबीलेवालोंने चीनके युद्ध मंत्रीको १७०० तोला सोना रिश्वत देकर सोगाको काश्गरसे बंचित करना चाहा। सोगाको जब यह भनक लगी, तो उसने ओचिर्के आदमीको मरवा दिया। सोगाने अशिना-शिन्को पराजित कर अब पश्चिमी तुर्कोंका स्थान लिया। लेकिन अधिक

दिनों तक शासन नहीं कर पाया, और अगले ही साल ७०९ ई० में पूर्वी कगान मो-चो द्वारा मारा गया, जिसमें उसके भाईका भी हाथ था।

१४. सू-लू (७१६-३८ ई०)

इसे तुर्कोंका अंतिम तथा बहुत शक्तिशाली कगान कहना चाहिये। अरबोंने इसे अबू-मुजाहिम् (झगड़ेका बाबा) नाम दिया था। सू-लूको अपनी शक्तिके अतिरिक्त एक और अच्छा मौका यह मिला था, कि ईरान और मध्य-एसियाके स्वामी अरब उत्तरी-दक्षिणी दो दलोंमें विभक्त होकर आपसमें लड़ने लगे थे। ७२४ ई० में बरूकानमें उनका घोर संघर्ष हुआ। उमैया वंश (६७३-७४८ ई०) की शक्ति पहले जैसी मजबूत नहीं थी। वह अपने अनुयायियोंको खुलकर लड़नेसे मना न कर सका। इतना अच्छा मौका सु-लूको कब मिल सकता था? लेकिन उससे जितना फायदा उठाना चाहिये, उतना उसने नहीं उठाया।

सुलू जानता था, कि उसके पूरबमें चीनकी प्रबल शक्ति है और दक्षिणमें अरब कालकी तरह बढ़ते चले आ रहे हैं। उसके पूर्वके भाईबंध मो-चो और बगू खानके नेतृत्वमें अपने पुराने प्रतिद्वंद्वी पश्चिमी तुर्कोंको फूटी आंखों भी देखना नहीं चाहते। ऐसी अवस्थामें उसे बड़ी सावधानीसे कदम रखना था। उसने चीनके साथ मित्रताका हाथ बढ़ाया। सम्राट् स्वेन्-चुङ (७१३-५६ ई०) ने प्रसन्न होकर उसे "चुङ-सुङ"की उपाधि (राजकुमारका पद) दे बू-चिन्की प्रपौत्रीको वधूके लिये भेजा। बधू चीन राजवंशका अभिमान रखती थी और साथ ही अपने पतिके बलका भी उसे कम गर्व नहीं था। उसने अपने एक अफसरके साथ हजार घोड़े दूसरी चीजोंसे बदलनेके लिये कूचाके वार्षिक मेलेमें भेजे। किसी बातमें बिगड़कर चीनी महाआयुक्तको "संबोधित करते समय अशिना स्त्रीने जो भाव दिखलाया" उसे वह बर्दाश्त नहीं कर सका। उसने अफसरको बहुतसे कोड़े लगवा राजकुमारीके घोड़ोंको भूखे रखवाया। जब यह समाचार सुलूको मिला, तो वह अपनी सेना ले आ धमका और चतुर्हट्ट नगर (शू-चेन्)—काशगर, खोतन, कूचा और सू-ज्या (शायद कराशर)—में जो भी आदमी या वस्तु हाथ लगी, सबको लूटकर ले गया। ये चारों शहर पिछले कगान अशिना खेलूने चीनको दे दिये थे। चीनमें इतनी ताकत नहीं थी, कि सूलूसे बदला लेता। सूलू अपने लोगोंमें बड़ा प्रिय था। उसे चीजोंका लोभ नहीं था। युद्धकी लूटमें जो कुछ मिलता, उसे ठीक तौरसे लोगोंमें बांट देता। जनतासे बहुत अच्छा संबंध होनेके कारण वह पूरी तौरसे उसकी सहायता करती थी। अरबोंके खतरेको समझता था। तिब्बतियों और पूर्वी तुर्कोंसे मिलकर उसने अरबोंके विरुद्ध समरकन्द पर आक्रमण किया। तिब्बत, पूर्वी तुर्क और चीनकी राजकुमारियोंसे उसने व्याह किया था। यह बड़ा महंगा सौदा था, क्योंकि तीन रनिवासोंके ठाटबाटको कायम रखनेके लिये बहुत धनकी आवश्यकता थी। सुलू कितने दिनों तक उदारता दिखलाता? उधर उसका एक हाथ भी बेकार हो गया था, जिससे युद्धमें पहले जैसी क्षमता नहीं रखता था। हूण जाति कमजोरोंके लिये दया नहीं दिखलाती, इसलिये धीरे-धीरे वह अपनी जनप्रियता खोता गया। तो भी ७३० ई० में अभी उसका प्रताप सूर्य ढला नहीं था, जब कि उसका दूत चीन दरबारमें प्रथम स्थान पानेके लिये झगड़ पड़ा। दरबारने पूर्वी तुर्कोंके प्रतिनिधिको पूर्वी महलमें और तुर्गिस दूतको पश्चिमी महलमें स्थान दे कर झगड़ा निपटाया। पीत (तुर्क) और कृष्ण (किर्गिज) कबीलोंकी लड़ाईमें सुलू (७३८ ई० में) मारा गया।

उसके पुत्रों (१५) तुखो-सुन-गेचो और (१६) मोखे दगानके साथ तुर्गिस (अशिना) वंशकी ७६६ ई० में समाप्ति होगई।

७४२ ई० में फिर तुर्गिस् और किर्गिज ओर्दू उरुम्चीके क्षत्रपके आधीन हो गये, तो भी कृष्णों (किर्गिजों) और पीतों (तुर्कों) का झगड़ा रुका नहीं। चीन इस वक्त एक विशाल साम्राज्य था, जिसकी सीमा दक्षिणमें इन्दोचीन और पश्चिममें पामीर तक फैली हुई थी। लेकिन उसके सीमांतोंपर तिब्बत और शान (प्राचीन स्यामी) जैसी शक्तिशाली जातियाँ रहती थीं, जिन्होंने खास चीनकी शांतिको खतरेमें डालकर उसे परेशान कर रक्खा था। ऐसी अवस्थामें चीन कहाँ तक अपने पश्चिमी सीमांतकी जातियोंमें शांति स्थापित करनेका प्रयत्न करता ?

७८० ई० तक किर्गिजों और तुर्कोंको पीछे छोड़कर कर्लोक आगे बढ़ गये और उन्होंने तुर्कोंको अपने अधीन बना लिया। बूकिन् (सुलूके पूर्वज) के ओर्दूके अवशेषको उइगुरोंने हज़म कर लिया। उइगुर राज्यके छिन्न-भिन्न होनेपर बूकिन्के अवशेषोंने हराशरको दखल किया और थाङ-वंश को अंतिम समय (९०७ ई०) तक आराम नहीं लेने दिया।

(तुर्क जातियां[1])—

७६६ ई० में पश्चिमी तुर्कोंका स्थान कर्लोक और ७४७ ई० में पूर्वी तुर्कोंका स्थान उइगुरोंने लिया, इस प्रकार ८वीं सदीके उत्तरार्धमें सारा तुर्क-साम्राज्य लुप्त हो गया। वैसे पश्चिमी तुर्क साम्राज्यकी स्वतंत्र सत्ता ७५७ ई० में ही खतम हो गई, जब कि उन्होंने चीनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

बुक्कू, पुकू, तरङ्कल (तोलङ्को), तुङ्लो, बैकाल, गुसेर, अदिर, किबिर (चिपियू), कुक (चू), उगड् (यूबी), सिब्, घेड्, खिताई कबीले तुर्किसोंसे संबंध रखते थे, जिनका अस्तित्व पीछे भी रहा। इनके बारेमें निम्न बातें मालूम हैं—

बुक्कू—यह सबसे उत्तरमें रहते थे। एक समय ये १० हजार सैनिक प्रस्तुत कर सकते थे। सामाजिक स्थितिमें बहुत पिछड़े हुए थे। पहले घेरीके अधीन रहे, फिर सेयेन्दाके, अन्तमें ७२५ ई० के करीब चीन राज्यमें मिल गये।

तरङ्कल—बुक्कूसे पश्चिममें रहते थे। इनके पास भी १० हजार जवान तैयार रहते थे। ६४८ ई० से पहिले ये चीन दरबारमें कभी नहीं आये थे।

थुङ्लो—सेयेन्दाके उत्तर पूरबमें रहते तथा १५००० भटोंकी शक्ति रखते थे। पहले घेरीके आधीन थे, अन्तमें उइगुरोंने इन्हें अपनेमें मिला लिया। तुला-उपत्यका इनकी विचरण भूमि थी।

बैकाल—इन्हींके नामपर साइबेरियाका प्रसिद्ध महासरोवर है, किंतु उस समय वह बुक्कूसे पूरब शायद अंगारा नदीके आसपास रहते थे। इनकी ३०० मील लम्बी भूमिके बारेमें यह चमत्कार देखा जाता था, कि वहां लकड़ी दो वर्षमें पथरा जाती थी। इनकी भाषा दूसरे तिङलिङोंसे बहुत कम अन्तर रखती थी।

गुसेर् और अदिर् तरङ्कलसे उत्तरमें रहते थे और किबिरस तरङ्कलके दक्षिणमें। कुक

[1] वही ३८२

बैकालोंसे १७० मील उत्तर-पूरबमें रहते बारहसिंगे पालते तथा काई-सेवार खाते थे। इनके मकान लकड़ीके बे सूलसाल बनाये जाते थे।

उ-गाइ कुकोंसे १५ दिनके रास्तेपर पूरबमें रहते थे।

सिब्, घेई और खिताई इनसे और भी पूरब (आधुनिक मंचूरिया) में रहते थे।

उपसंहार—

उत्तरापथके ऐतिहासिक रंगमंचपर किस तरह शक, हूण और चीन इन तीन जातियोंके संघर्ष द्वारा इतिहासने प्रगतिकी, इसे हमने इस भागमें बतलाया। जहाँ तक उत्तरापथ और सिङ्-कियाङका संबंध है, आरंभमें वहाँ शक जाति रहती थी। उन्हींके वंशज यूची, तूखार, सइवङ् और बू-सुन् थे। कंग, अलान या उनके पूर्वज सरमात और मसागेत सभी शक-वंशी थे। ई० पू० द्वितीय शताब्दीमें शकोंकी भूमिपर हूण फैलने लगे और जैसे-जैसे शताब्दियां बीतती गईं, उनके वंशजों—अवारों, जूजुनों और तुर्कों—के अनेक कबीले शक-वंशजोंका स्थान ले इस विशाल भूमिको तुर्क-भूमिमें परिणत करने लगे। तो भी अभी उसे शुद्ध तुर्क-भूमि नहीं कह सकते थे। तरिम-उपत्यका अब भी शकवंशी तुखारों और भारतीय उपनिवेशिकोंकी भूमि थी। इस समयके बहुतसे अभिलेख तकला मकानकी मरुभूमिमें मिले हैं, जिनसे पता लगता है, कि अभी वहां तुखारी, प्राकृत भाषा तथा भारतीय लिपिकी प्रधानता थी। शताब्दियोंसे चला आया बौद्ध धर्म अब भी प्रधानता रखता था, यद्यपि वहां आकर बसे सोग्दियों तथा दूसरे व्यापारियोंमें नस्तोरी ईसाई और मानीके जर्थुस्ती धर्मोंका भी प्रचार था। ये तीनों धर्म मतभेद रखते हुए भी आपसमें बड़े प्रेमसे रहते थे, इसे लेकाक और ओरेल स्टाइनकी खोजोंने सिद्ध कर दिया है। इस्लामी तलवारके सामने इन भिन्न-भिन्न धर्मवाले साधुओंने एक जगह प्राण दिये, और जब तरिम-उपत्यकाका छोड़ना अनिवार्य हो गया, तो वहांके बौद्ध अपने साथ नेस्तोरी साधुओंको भी लिये लदाख पहुंचे।

लेकिन यह काफी पीछेकी बात है। तरिम-उपत्यकाके नगरोंको पहिले तुर्कोंके आधीन रहना पड़ा। ६९२ ई० में वह तिब्बतके आधीन हो गये। काश्गर, खोतन, अक्सू तक तरिम-उपत्यकाके सारे ही अष्ट नगरों पर तिब्बतका शासन था। इस समय अक्सू और काश्गरसे नेपाल और कश्मीर तक तिब्बतकी विजयध्वजा फहरा रही थी। आज जो तरिम-उपत्यकामें मंगोलायित मुख-मुद्राकी प्रधानता है, उसका आरंभ इसी कालमें हुआ।

सप्तनद—जो किसी समय शकों और उनकी संतानोंकी विचरण भूमि थी, अब पूरी तरह तुर्कोंके हाथमें चला आया था; यद्यपि वहाँकी जनतामें कृषि और व्यापारसे जीविका करनेवाले अब भी शकों-सोग्दियोंकी संतानें थीं। ७वीं शताब्दीके अन्त तक शक वहां वस्तुतः नामशेष हो गये थे। स्वेन्-चाङ ७वीं शताब्दीके मध्यमें सप्तनद और चू-उपत्यकासे आमू-उपत्यका तक एक ही सोग्दी भाषा और लिपिके प्रचारका उल्लेख करता है, जिसका यही अर्थ है, कि शक कोई अपना अलग अस्तित्व नहीं रखते थे। सप्तनदमें बौद्ध धर्म भी इस समय प्रचलित था और कुछ नेस्तोरी ईसाई भी रहे होंगे, किंतु जर्थुस्ती धर्म, उसमें भी मानी धर्मका प्रचार सबसे अधिक था। पश्चिमी तुर्क कगान भी अग्निपूजक थे। स्थिर-निवासवाले लोगोंमें शक-मिश्रित सोग्द जातिही अधिक थीं, किंतु तुर्कोंके घुमन्तू ओर्दू भी नगण्य नहीं थे, जोकि आगे चलकर इस भूमिको पूरी तौरसे मंगोलायित बनाकर यहांके लोगोंको आधुनिक क़ज़ाक और किर्गिज जातियोंमें परिणत करनेमें सफल हुए।

सप्तनदसे पश्चिमके उत्तरापथका भाग (पीछे किपचक भूमि) पहले मसागतों-सरमातोंकी भूमि थी, जहाँ उनके वंशज कंग और अलान रहते थे। आधुनिक पश्चिमी कजाक़-स्तान (किप्चक) भूमि भी हूणों तथा उनके वंशजों (अवारों और तुर्कों) के हाथमें चली गई। धीरे-धीरे वहाँके प्राचीन निवासी तुर्क जातियोंमें विलीन होने लगे। कंग और अलान हूणों और तुर्कोंकी तरह ही घुमन्तू थे, इसलिये उनमेंसे कितने ही चोट खा कर अन्यत्र भागनेके लिये भी तैयार हो गये। किप्चक-भूमि के निवासी तुर्कोंके साम्राज्यके अन्त होते समय बहुत कुछ मंगोलायित हो गये थे। तुर्क यहां इतने प्रवल हो गये, कि पहले के चले हूणिक ओर्दू और पश्चिम भागनेके लिये मजबूर हुये। किप्चककी पड़ोसी भूमिमें बुल्गार, अवार और खज़ार तीन हूण-जातियां रहती थीं। खज़ारोंने कास्पियन समुद्रको अपना नाम दिया, जिसे मुसलमान लेखकोंने पीछे खज़ार समुद्रकी जगह खिजिर समुद्र (बहीरा खिज्र) बना दिया। बुल्गारोंका नाम रूस की बड़ी नदी बोल्गासे जुड़ गया। प्रथम हूण लहर दन्यूब (इर्तिल) के किनारे ४थी सदी ही में पहुँच गई थी, जिसने सरमाती कबीलों (स्लावों) और गाथोंको कालासागर तटसे उत्तरकी ओर भागनेके लिये मजबूर किया। पीछे अवार भी अपने बंधुओंके पास हुंगरीमें जा पहुँचे।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि ७वीं सदीके मध्यमें तुर्क-साम्राज्यके अन्त होते समय तक सारा ऐसियाई शक द्वीप (प्राचीन शकस्तान) तुर्क द्विपी या तुर्किस्तान बनने के लिये तैयार हो गया।

स्रोत-ग्रन्थ :

1. A Thousand Years of Tatars (Parker)

2. Histoire gěněrale des Huns, des Turcs......, (J. De-Guignes)

3. Altturkische Studien, IV. S. 310 (W. Radloff)

4. Introduction à l' Histoire de l'Asie. Turks et Mongols des origines à 1405 (L. Cahun, Paris 1896)

5. The Turks of Central Asia in History and at the Present Day (M. Czaplicka, Oxford 1918)

6. Oughous-Name (Riza Nour, Alexandrie, 1928)

7. Westturken, "Turcica" p. 9 (V. Thomsen)

8. Manuscripts in turkisch 'runic' Script from Miran and Tunhuang, J RAS, 1912 January (Dr. M. A. Stein)

9. Documents sur les Tou-Kiue (Turcs) Occidentaux सबतओए, सपब, १६०३

10. A Study on the titles Kaghan and Katun. (Shiratori Kurakichi, Memoirs of the research department, Tokyo 1926,)

भाग ४

दक्षिणापथ (५५०ई० पू०—६७३ ई०)

अध्याय १

अखमनी (ई० पू० ५५०-३२६)

ई० पू० छठी शताब्दीसे हम मध्य-ऐसियाके दक्षिणापथ (हिंदूकुश पर्वतमालासे सिर-दरिया तथा पामीरसे कास्पियन समुद्र तकके भूभाग) के ऐतिहासिक कालमें आ जाते हैं, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं कि हमें इस समयकी ऐतिहासिक सामग्री काफी परिमाणमें मिलती है। इतना अवश्य है, कि जहाँ हम भारतके इतिहासपर प्रकाश डालनेवाले शिलालेख को ई० पू० ३री शताब्दी में अशोककी धर्मलिपियोंके रूपमें पाते हैं, वहाँ मध्य-ऐसिया के दक्षिणापथका प्रथम स्मरण बुद्धके समकालीन दारयवहुके शिलालेखोंमें मिलता है। इस प्रकार यद्यपि जनश्रुति तथा समय-समयपर परिवर्तित परिबर्धित ग्रंथोंके आधारपर भारतके इतिहासको और पहिले ले जा सकते हैं, किंतु उसकी ठीक पुरातात्त्विक सामग्री ई० पू० तृतीय शताब्दी से ही निश्चित रूपसे मिलने लगती है, जबकि यहां उससे ढाई शताब्दी पूर्वके दक्षिणापथसे संबंध रखनेवाले अभिलेख मिलते हैं। दक्षिणापथ भारतकी तरह ही बराबर बाहरसे आनेवाले जातियोंका रणक्षेत्र और क्रीड़ाक्षेत्र रहा है। दोनोंमें फर्क इतना ही है, कि जहां भारतमें पुरानी संस्कृतियां तहपर तह जमनेके बाद भी ऐसी स्थितिमें पड़ी हैं, कि उनको पहचाना जा सकता, वहाँ मध्य-ऐसियाके इस भागमें संस्कृतियाँ इतनी मिल-जुल गई हैं, कि उनका अलग-अलग परिचय मिलना मुश्किल है। और स्पष्ट करते हुए कहना पड़ेगा, भारतमें पिछले ५००० वर्षों की संस्कृतियां, तिल-तंडुलकी तरह मिली-जुली मौजूद हैं, जब कि मध्य-ऐसिया में वह नीर-क्षीरकी तरह घुल-मिल गईं। जातियोंका संम्मिश्रण भी वहां इसी तरह हुआ।

धातुयुगके आरंभसे हम देखते हैं: पहले सिर और वक्षु (आमू) दरिया के द्वाबामें भूमध्यीय जातिका आर्योंके साथ समागम हुआ। दोनों जातियोंकी संस्कृतियाँ मिल गईं, पीछे उस समयकी भूमध्यीय जाति और उसकी संस्कृतिका वहाँ पता मुश्किलसे मिलता है। आर्योंने दो सहस्राब्दियों तक वहाँ अपनी प्रधानता रक्खी। आखामनी कालमें जिस सोग्द जातिकी यहाँ प्रधानता थी, वह ईरानी आर्योंकी ही एक शाखा थी। आगे ग्रीक और शक आये, किंतु अब पुरानी ईरानी जातिने अपने अस्तित्वको खो नहीं दिया, बल्कि इन दोनों हिन्दू-यूरोपीय जातियोंको वह अपनेमें हजम कर गई। ईसाकी ५वीं-६वीं शताब्दीमें हूण वंशज तुर्क आये। उन्होंने अपने मंगोलायित रक्तको देकर वंश-परिवर्तन करना शुरू किया, जो समयके साथ बढ़ता ही गया। यद्यपि द्वाबेकी तुर्क जातिने ईरानी संस्कृतिको स्वीकार किया, किंतु उसने साथ ही स्थायी तौरसे लोगोंकी मुख-मुद्राको बदलना भी शुरू किया। तुर्कोंके दो शताब्दी बाद इस्लाम आया। उसने प्रयत्न किया, कि पुरानी संस्कृतिका चिह्न भी न रह जाये। हाँ, तुर्कोंके साथ उसने यह समझौता अवश्य किया, कि राजनीतिक शक्ति वह अपने हाथमें रख सकते हैं। आज मध्य-ऐसियामें इस्लामिक संस्कृति और मंगोलायित जाति ही देखनेमें आती है। पुराने अवशेषोंको ढूंढ़नेके लिये धरातलके भीतर

घुसनेकी अवश्यकता है। साम्यवादी होनेसे पहले मध्य-ऐसियाकी सभी तुर्क-जातियां (तुर्कमान, उज्वेक, किरगिज, कजाक) प्राग्-इस्लामिक जगतसे अगर कोई अपना संबंध स्वीकृत करती थीं, तो वह था तुर्की खून। सोवियतकालमें बड़े व्यापक परिमाणमें मध्य-ऐसियामें पुरातात्विक अनुसंधान हुए हैं। इसके कारण प्राग्-इस्लामिक कालके पुराने नगर, हस्तलेख तथा कलाके नमूने प्राप्त हुए हैं। अब वहाँकी जातियां अपने सारे लंबे इतिहासके लिये अभिमान करती हैं।

यहां ई० पू० छठी शताब्दीमें पड़ोसी जातियोंके सांस्कृतिक विकासपर एक दृष्टि डाल लेना अच्छा होगा। भारत और ईरानमें आर्योंकी दो शाखायें करीब-करीब एक ही समय (ई० पू० २री सहस्राब्दीके मध्यमें) पहुंची थीं। घुमन्तू होते हुए भी कृषिका थोड़ा सा ज्ञान उनके पास था। भारतमें सिंधु-उपत्यकाकी पुरानी संस्कृति के घनिष्ठ संपर्क में आकर आर्योंका सांस्कृतिक विकास तेजीसे हुआ। १२०० ई० पू० के आसपास की सप्त सिंधु उपत्यकाओं (पंजाब) में पहुँचकर एक समद्ध जातिके रूपमें परिणत होते हुए उसने अपने जनयुगके अवशेषोंको छोड़कर सामन्त युगमें प्रवेश किया, गणतंत्रकी जगह राजतंत्रको अपना लिया। इसी समय राजा दिवोदास और सुदास्के समयमें वेदोंके प्राचीनतम ऋषियों (भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र,) ने वेदकी ऋचायें रचीं। आगे विकास होते-होते ई० पू० ७वीं-८वीं शताब्दीमें हम प्राचीन उपनिषद्के तत्वज्ञानियों (प्रवाहण, यज्ञवल्क्य आदि) को होते पाते हैं। इतने समयमें भारतीय आर्य प्राकृतिक शक्तियों तथा मृतपितरोंको देवता मानकर पूजनेकी अवस्थासे सर्वांतर्यामी एक ब्रह्मकी ओर बढ़ते हैं, उसीके अनुसार गणोंकी बहुतंत्रतासे वह राजाकी एक-तंत्रताको भी स्वीकार करते हैं—वस्तुतः बाहरके राजनीतिक परिवर्तनका ही प्रतिविम्ब हम उनके धर्म और दर्शनमें पाते हैं।

कुरव[१] (कौरोश)ने जिस समय (ई० पू० ५५०ई० में) गद्दीपर बैठकर संसारके सर्वप्रथम महान् साम्राज्यकी स्थापना की, उस समय १३ वर्षके सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) शाक्योंके गणमें वाल्य बिता रहे थे। उस समय वर्तमान उत्तर-प्रदेश और बिहारकी सीमाओं और पंजाबमें गणराज्योंकी प्रधानता थी। मध्य-एसियाके द्वाबोंमें किस तरहका शासन था, इसके बारेमें इतना ही कह सकते हैं, कि कुरवके शासन-कालमें वह बहुत कुछ राजतंत्रके प्रभावमें था। हो सकता है, तत्कालीन शकोंकी अथवा भारतीय गणोंकी भाँति वहाँ भी गण-शासन रहा हो। अगली दो शताब्दियोंमें मध्य-ऐसियाका जो इतिहास हमें मिलता है, वह अखामनी इतिहासके एक अंगके तौरपर ही। मध्य-ऐसियाई और ईरानी जातिके रूपमें उत्तरके विशाल शकद्वीपके मुकाबले हम भूमिको आर्यद्वीप कह सकते हैं। अवस्तामें आर्योंकी प्रथम भूमिको ऐरयानम्वैजा कहा गया है। इसके बारेमें ऐतिहासिकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई उसे वक्षु और यक्सर्तके बीचकी भूमि मानते हैं, कितने ही पामीरको और कुछ ख्वारेज्मको ही ऐरयानम्वैजा कहते हैं। ईरानमें जो आर्योंकी शाखा गई थी, भारतकी तरह धीरे-धीरे उसके कई जन हो गये, जिनके नामपर उनके अनेक जनपद बने। मद्र या मिद जाति काकेशसके पहाड़ोंसे दक्षिणकी ओर गई पर्वत श्रेणियोंमें बसी, जिससे उसका नाम मिदिया पड़ा। इस जातिका सीधा संबंध ववेरु (बाबुल) की संस्कृति और

---

[१] Histoire Ancienne (G. Maspero) pp. 649-95), इस्तोरिया द्रेव्नेओ वोस्तोका (व० व० स्त्रूवे, लेनिन ग्राद १६४१) पृ० ३६८-७५

साम्राज्यसे हुआ, जिसके कारण ईरानी आर्यों को जन-अवस्थासे सामन्तवादी अवस्थाकी ओर बढ़नेका अवसर मिला। अभी भी यह जाति पहाड़ी लड़ाकुओंकी थी। अपनी बिखरी हुई स्थितिमें यद्यपि उसने बवेरुके जुयेको मान लिया, किंतु धीरे-धीरे उसे पता लगने लगा, कि जब तक भिन्न-भिन्न जनोंमें विभक्त भद्र लोग एक सूत्रमें संबद्ध नहीं हो जाते, तब तक हम स्वतंत्र नहीं हो सकते। अपनी एकताका परिचय उन्होंने ७८८ ई० पू० में बवेरु की राजधानी निनवेको पराजित करके दिया। इसी समय मद्र-राज्यकी स्थापना हुई। ७०८ ई० पू० में मिदिया और भी एकताबद्ध हो गई और जब कि फरवर्त-पुत्र देइओक् (देवक) मिदियाका राजा हुआ। उसने अपनी जाति को बबेरुओं से बिलकुल स्वतंत्र ही नहीं कर लिया, बल्कि सभी ईरानी जनों को मिलाकर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करने में सफलता पाई। देवकने अखवतन (वर्तमान हमदान) मिदियाकी राजधानी को विशाल प्रासादों और सुदृढ़ दुर्ग से सुसज्जित कर निनवे का प्रतिद्वन्दी बना दिया। देवक का शासन सोग्द (आमू और सिरदरिया के द्वाबे) तक था, इसका कोई प्रमाण नहीं है। ६५५ ई० पू० में उसके मरने के बाद फरवर्त उसका उत्तराधिकारी हुआ। मिदिया का राज्य ५५० ई० पू० तक कायम रहा, लेकिन आगे उसने कोई विशेष प्रगति नहीं की। इसी मिदियाका स्थान अखामनी (अखामनशी) वंश ने लिया।

१. कुरव (५५०-५२९ ई० पू०)

अखामन दक्षिणी ईरान (पारस) के कबीलोंमेंसे एक का मुखिया था, जिसके कारण उसका जन अखामनी या अखामनशी कहा जाने लगा। इसीकी ७वीं या ८वीं पीढी में कुरव पैदा हुआ। कुरव पिता की ओर से पारसीक था, किंतु माता की ओर से मद्रों का खून उसकी नसों में बह रहा था। देवक के उत्तराधिकारी धीरे धीरे विलासप्रिय होकर कमजोर होते गये। कुरव को अच्छा मौका मिला और उसने अंतिम मद्र राजा को हराकर ५५० ई० पू० में अपने को सारे मिदिया का राजा घोषित किया। इससे पहले कुरब अनशन का शासक था। यद्यपि अब मद्रों के स्थान पर पारसीकों की प्रधानता हो गई, किंतु कुरवने मद्रकुल को नीचे करना नहीं चाहा। कुरवके विशाल साम्राज्य में शासक जाति के तौर पर पारसीकों और मद्रों दोनों का स्थान था—मद्र पारसीकों से कुछ ही कम समझे जाते थे; दूसरी जातियों के सामने मद्रों और पारसीकों में कोई अंतर नहीं था। कुरवने अखवतन को ही अपनी राजधानी रखा। मिदिया के राज्य को हस्तगत करके कुरवने संतोषन कर ५४६ ई० में लिदिया (क्षुद्र-एसिया) को जीत अपनी पश्चिमी सीमा भूमध्यसागर तक पहुँचा दी। लिदिया बहुत ही समृद्धदेश था। वहाँ पर रहनेवाली जाति ईरानियों से कुछ समानता रखती थी। उसके मिल जाने पर कुरवकी शक्ति और बढ़ गई और उसने बबेरु पर हाथ फेरना चाहा। वह जानता था, कि बबेरु का जीतना उतना आसान नहीं होगा, इसलिये उसने बड़ी तैयारी के साथ आक्रमण का श्रीगणेश किया और तिग्रा तथा फ़ुरात की विशाल नदियों के वणिक्पथ को छेंक दिया। संघर्ष जबर्दस्त हुआ, लेकिन ५३८ ई० पू० में कुरवने बवेरु पर पूर्ण विजय प्राप्त की। कुरव और दारयबहु दोनों महान् विजेतों की नीति थी, कि हर एक विजित जाति की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये उसके धर्म, रीति-रिवाज, संस्कृति को छेड़ा न जाय। यही नहीं, बल्कि कुरव अहुरमज्द का परमभक्त था, पर बबेरु जीतने के बाद वह वहाँ के देवता मर्दुक का भी पूजा सम्मान किये बिना नहीं रहा। उसके अभिलेख में लिखा

है[1]—"देवातिदेव मर्दुक ने मुझे यह राज्य प्रदान किया।" अपने दिग्विजय के बारे में वह लिखता है "मैं कुरव विश्वराज, बृहत् राज, महाराज, ववेरु, शुमेर, अक्कदका राजा, चतुर्दिशाओं का राजा हूँ। जब मैं शांति-पूर्वक ववेरू नगरी में पहुँचा, तो. . .वहाँ के राज्य-निवास पर अधिकार किया। उस समय महान् प्रभु मर्दुक ने . . . मेरे हाथ में बवेरू निवासियों को समर्पित कर दिया।" बवेरू जीतने के बाद कुरव का अगला कदम मिस्र (मुद्रिक) था। फिर उसने पूरब में अपनी सीमा बढ़ाते हुये सिंधु तटतक पहुँचायी। इसी समय सबसे पहले सप्तसिंधु (हफ़्त-हिंदू) का उल्लेख मिलता है। अब नील और भूमध्यसागर से सिंधु-तट तक कुरवका साम्राज्य विस्तृत हो चुका था, इसी समय सोग्द भी उसके हाथ में आ गया, लेकिन दन्यूब (दुनाई) से लेकर ह्वाङ्हो तक फैले उत्तर के घुमन्तू पशुपाल शक कुरवका रोब मानने के लिये तैयार नहीं थे। वह पशुपालन के साथ साथ पड़ोसी बस्तियों की लूट-पाट करना अपना अधिकार समझते थे। कुरवको शकों से लड़ने के लिये मजबूर होना पड़ा, और इसी लड़ाई में महान् विजेता को अपना प्राण देना पड़ा। काकेशस के उत्तर के शकोंसे भी छेड़छाड़ होती रही। काकेशस पर्वतमाला जहाँ कास्पियन समुद्र के अति नजदीक पहुँच जाती है, उस जगह दरबंद (द्वारबंध) को दुर्गबद्ध करना पड़ा था, किंतु मुख्य संघर्ष अराल समुद्र से कास्पियन समुद्र तक के घुमन्तू मसागेत (महाशक) जातिसे हुआ। इसमें पहले ही कुरवने एक्सर्त तट पर कुरेखत नगर और दुर्ग बसाया। शकों के राजा अर्मोग ने जबर्दस्त मुकाबला किया, लेकिन अंत में वह मारा गया। उसकी रानी ने अधीनता नहीं स्वीकार की। शकों में स्त्रियोंका स्थान उतना नीचा नहीं था, यह हम कह आये हैं। शकरानीने हथियार नहीं रखा। ५२९ ई० में कुरवने मसागत की रानी तोमुरी से व्याह करने की मांग की। उसने बनावटी स्वीकृति देदी। कुरव एक्सर्तकी ओर बढ़ा। संघर्ष आरंभ हुआ। रानीका लड़का बंदी बनाया गया, जिसे किसीकी असावधानी के कारण मार डाला गया। इसपर उसकी मां तोमुरीने अपने सारे कबीले के योद्धाओं को जमा कर कुरवकी सेना पर आक्रमण कर दिया। माँ बेटेका बदला लेनेके लिये तुली हुई थी, उसने अंत तक लड़ने का निश्चय कर लिया था। शकों और हूणों की एक पुरानी युद्ध नीति थी, हार का बहाना करके भाग पड़ना और जब दुश्मन असावधानी के साथ पीछा करे, तो चुनी हुई सेना के साथ उसपर आक्रमण कर देना। तोमुरी की सेना ने ऐसा ही किया। ईरानी सेना ने पीछा किया और मसागेतों के हाथों बुरी तरह पराजित हुई। कुरव मारा गया।[2] रानी ने उसकी लाश को खुजवाया, लेकिन ईरानी सेना उसे पहले ही हटा चुकी थी।

इस प्रकार मिस्र और भारत तक विजय-पताका फहरानेवाले कुरव का अन्त हम मध्य-एसिया की इसी भूमि में होते देखते हैं। तो भी इसमें शक नहीं, कि ख्वारेज्म और कास्पियन तट के शक घुमन्तूओं को छोड़कर बाकी प्रदेश के निवासी सोग्दियों पर कुरव की विजय ने स्थायी प्रभाव डाला। वह उसी नागरिक संस्कृति में आगे बढ़े और उसी कला-कौशल की वहाँ दृढ़ नींव पड़ी, जो महान् कुरवके विशाल साम्राज्य की देन थी। इस प्रभाव को पीछे तुर्क और अरब विजेता भी मिटा नहीं सके।

---

[1] इस्तोरिया देव्नओ बोस्तोका पृ० ३७१

[2] Historic Ancienne (G. Maspero) p. 672)

२. दारयबहु (५२१-४८५ ई० पू०)

कुरव का पुत्र कम्बुज (५२९-२१ ई० पू०) उसके विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। मिस्र में विद्रोह हो गया, जिसको दबाकर उसने फिर से मिस्र-विजय किया। उसने अपने पिता के विजयफल को कायम रखने का प्रयत्न किया। उसके मरने के बाद विरोधी शक्तियों ने जोर पकड़ा। मद्र अपने पुराने जमाने को भूले नहीं थे। उनके जातीय-धर्म के पुरोहित मग पसंद नहीं करते थे, कि उनका शाहंशाह दूसरी जातियों के धर्मों का सम्मान करें, और उनके देवताओं को अहुर-मज्द के बराबर माने। सबसे जबर्दस्त विरोध मद्रों की ओर से हुआ। उनका नेता गौमाता छ महीने तक कुरब के सिंहासन का स्वामी रहा। अखामनी खानदान के भी कितने ही राजकुमार झगड़ रहे थे, लेकिन अंत में सफलता हुर्कनिया के क्षत्रप तथा विस्तास्प के पुत्र दारयवहु को मिली। १० रगयादिस (मार्च-अप्रैल) ५२१ ई० पू० में अखबतन के सिक्यावती राजप्रासाद के भीतर उसने गौमाता को मारा। दारयबहु ने अपने बहिस्तून के शिलालेख में इसी घटना की ओर इशारा करते हुये लिखा है :

"अहुरमज्द ने मुझे शाह बनाया। हमारे वंश के हाथ से राज निकल गया था। मैंने लौटाकर उसे जैसा पहले था, वैसा स्थापित कर दिया। मगों द्वारा ध्वस्त पूजा-स्थानों को मैंने पुनः स्थापित किया। गौमाता द्वारा उत्पीड़ित जनता. . .को मैंने पूर्ववत् बनाया। उन्हें उसी पहली परिस्थिति में लौटाया, जिसमें कि वह पारस में थी, जिसमें मिदिया में थी, जो मेरे दूसरे देशों में थीं।. . . मैंने अहुरमज्द की इच्छापर चलने का इस तरह प्रयत्न किया, मानो गौमाता ने हमारे कुल को ध्वस्त ही नहीं किया हो।"

गौमाता के अतिरिक्त उसे और भी कितने ही प्रादेशिक क्षत्रपों से लड़ना पड़ा। मिदिया और अरमेनिया शासक फ्रावार्तस ने क्षत्रिय उपाधि धारण कर अपने को राजा घोषित किया। मरगिया (मर्ग या मेर्व) का फ्राद स्वतंत्र शासक बन गया। हुर्कानिया में भी स्वतंत्र शासन घोषित किया गया था। दारयबहु के पिता विस्तास्प ने जुलाई ५१९ ई० पू० में हुर्कानिया को अपने पुत्र की ओर से जीता। उससे अगले साल दारयबहु के क्षत्रप दादर्शिश (जो कि बाख्तरी का क्षत्रप था) ने फ्राद को परास्त कर मर्गपर अधिकार किया। ५१२ ई० पू० तक दारयबहु के साम्राज्य की सीमा थी—उतर में कालासागर, काकेशस, कास्पियन और चीन की सीमा तक फैला शक प्रदेश, पूर्व में हफ्त-हिंदू (सप्त-सिंधु), पश्चिम में भूमध्यसागर और मिस्र की पश्चिमी सीमा, दक्षिण में अरब और अफ्रीका का सहरा।

एसिया और अफ्रीका में अपने राज्य का विस्तार करके दारयबहु को यूरोप में ग्रीस की ओर ध्यान देने की लिये मजबूर होना पड़ा। शायद उसे इधर ध्यान देने की अवश्यकता न पड़ती किंतु यूनानी राजनीति इसके लिये मजबूर कर रही थी। एसिया के तटपर बसे यूनानी उपनिवेश ईरान के अधीन थे। आपसी झगड़ों के कारण अथेंस गणराज्य के भगोड़े इन बस्तियों में आकर शरण लेते थे। ईरान को उनके कारण एकका समर्थन करना था। उधर ईरानियोंके विरोधी एसिया से भागे यूनानियों की अथेंस में पीठ ठोकी जा रही थी। ईरानी क्षत्रप इसे यूनान के क्षुद्र गणराज्य की भारी गुस्ताखी और अपमान समझता था। वस्तुतः यूनान के साथ युद्ध की जिम्मेवारी शाहंशाह की अपेक्षा उसके क्षत्रप पर अधिक थी। दारयबहु थ्रेस (युरोप) को अवश्य अपने हाथ में

करना चाहता था। उसने थ्रेस पर आक्रमण किया। थ्रेसकी रक्षा के लिये उत्तर के लड़ाकू शकों को दबाना आवश्यक था, जिसके लिये वह उनकी ओर बढ़ा। ५०८ ई० पू० में उसने दन्यूब नदी को पार कर शकों के इलाके पर आक्रमण किया। ईरान की भारी सेना का वह डटकर मुकाबला नहीं कर सकते थे, इसलिये अपनी जिन चीजों को वह साथ नहीं ले जा सकते थे, उन्हें फूंक-जलाकर भीतर की ओर भागते गये। दारयबहु को इन भागते शकों के ऊपर आक्रमण करके कोई लाभ नहीं हुआ। यह वही प्रदेश है, जिसे बहुत पीछे रूस कहा जाने लगा। घर-फूंक युद्ध नीति रूसियों ने अपने पूर्वज इन्हीं शकों से सीखी। रूस की दुर्दम्य प्रकृति ने दारयोश के विजय को ही पराजय में नहीं परिणत कर दिया, बल्कि उसीने नवें चार्ल्स तथा नेपोलियन के विजय को भी घोर पराजय में परिणत किया। हिटलर की पराजय का आरंभ भी उसी भूमि में हुआ, यद्यपि उसमें केवल-घर-फूंक नीति ही नहीं, बल्कि रूसियों की अद्वितीय वीरता और युद्ध-कौशल का भी हाथ था। ५०६ ई० पू० में थ्रेस और मकदूनिया दारयबहु के करद राज्य थे।[१]

जैसा कि पहले बतलाया, यूनानियों की छेड़-छाड़ के कारण दारयबहु को उनकी ओर ध्यान देना पड़ा। पहले ईरान को कुछ सफलता मिली। ४९४ ई० पू० में लेदके सामुद्रिक युद्ध में यूनानी बुरी तरह से हारे। एसिया तट के यूनानी उपनिवेशों ने जो विद्रोह किया था, उसे भी दबा दिया गया। लेकिन मुख्य ग्रीस भूमि अपने पड़ोसी मकदूनिया की हालत को देखकर भी ईरान के सामने झुकने के लिये तैयार नहीं थी। ४९० ई० पू० में दारयबहु को उस ओर मुंह फेरने के लिये मजबूर होना पड़ा। छोटी-मोटी लड़ाइयों का कोई निर्णयात्मक फल नहीं मिला। अंत में सबसे बड़ी लड़ाई मराथोन में हुई, जिसमें ईरानी सेना हार गई। दारयबहु ने ४९० ई० पू० के बाद के अपने अंतिम पांच वर्षों को शासन और सुव्यवस्था में लगाया और ३६ साल के सुदीर्घ शासन के बाद अपने मरने के समय (४९५ ई० पू० में) उसने एक सुव्यवस्थित और समृद्ध साम्राज्य छोड़ा, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं, कि उसका सुफल सभी वर्गों और जातियों को समान मिला। दासों की दयनीय दशा के बारे में तो कुछ कहना ही नहीं—यह ऐसा समय था, जब कि विश्व के सभी सभ्य देशों में दासता की क्रूर प्रथा का अकंटक राज्य था।

(१) शासन-व्यवस्था

दारयबहु को कुरव का महान् साम्राज्य प्राप्त हुआ था, जिसमें उसने भी वृद्धि की थी। सिंध से लेकर नील तट तक विस्तृत कुरवके साम्राज्य का प्रबंध पहले से भी केन्द्रित रूप में होता चला आया था, इसलिये यह कहना मुश्किल है, कि शासन-व्यवस्था में कितनी नई बातें कुरवने कीं और कितना दारयबहु ने उसमें सुधार किया था। ईरानी साम्राज्य से पहले भी बबेरू और मिस्र के विशाल बहुजातिक राज्य मौजूद थे। इतने बड़े राज्य के प्रबन्ध के लिये कितनी ही नई बातें अवश्य हुई होंगी। दारयबहु ने शासन का नये ढंग से केन्द्रीकरण किया। पहले के महाराज्यों में अधीन जातियों के ऊपर प्रायः उन्हीं में से वंश-परंपरा से चला आता कोई राजा (शासक) बना दिया जाता था, जो केंद्रीय शक्ति के निर्बल होते ही स्वतंत्र हो जाता था। दारयबहु ने खानदानी राजाओं को मांडलिक बनाना पसंद नहीं किया। उसने अपने क्षत्रप

[१] वही पृ० ६९७-७१०

नियुक्त किये, जो कि शाही या तत्संबंधी खानदानों के होते थे और शाह की इच्छा रहने तक अपने पद पर स्थित रहते थे। क्षत्रप के हाथ में बहुत ज्यादा ताकत न हो जाय, इसलिये हर एक प्रदेश का सेनापति क्षत्रप से अलग होता था, जिसकी नियुक्ति भी शाह करता था। इन दोनों के अतिरिक्त एक राजामात्य शाह की आंख था, जो कोश तथा दोनों के कामों को देखता रहता था। एक ही प्रांत में तीन-तीन स्वतंत्र अधिकारियों का रहना क्षत्रप को इस योग नहीं रहने देता था, कि वह केन्द्र के विरुद्ध स्वतंत्र होने की हिम्मत करे। इनके ऊपर भी केन्द्र से समय समय पर शाही महामात्य घूमा करते थे, जिनके अधिकार बहुत अधिक होते थे। शिकायत ही नहीं, बल्कि वह स्वयं प्रांतीय पदाधिकारी को पदच्युत कर सकते थे। शाही हुकुम के आने पर तुरंत क्षत्रप का शिर उतारा जा सकता था, यह पहले कह चुके हैं। भिन्न-भिन्न जातियों के धार्मिक अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों में ईरानी शाह कोई दस्तंदाजी नहीं करते थे। वह प्रियदर्शी अशोक की तरह हर पाषंड (धर्म) की मान्यताओं को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। बल्कि अशोक की उदारता से भी ईरानी सम्राट् आगे बढ़ अहुरमज्द के भक्त होते भी बबेरू (बाबुल) वालों को खुश करने के लिये उनके महान् देवता मर्दुकको भी देवातिदेव कहते और अपने अपार वैभव को मर्दुकका का प्रसाद बतलाते थे।

दारयबहु के समय सारा राज्य निम्न २३ प्रदेशों में बँटा था, जिनके शासक क्षत्रप कहे जाते थे[1]—

१. पर्शा—दक्षिणी ईरान अर्थात् आधुनिक फारसका सूबा,
२. ऊवजा (एलम)—इसीमें दारयबहु की एक राजधानी सूसा थी,
३. बबीरु (कलदान)—उत्तरी मसोपोतामिया,
४. अथुर (असिरिया)—जिसमें जगरोस पर्वत और खबुर (दजला) थे
५. अरबया—मसोपोतामिया का वह भाग जो कि खबुर और हूफ़रात (फुरात) के बीच में पड़ता है,
६. मुद्र (मिस्र)—नील उपत्यका,
७. सागरजन—जिसमें सिलिसिया और विशरिओत जैसे द्वीप थे,
८. यवुना (यवन)—इनमें युनियन, एवलियन और दोरियन आदि जातियां शामिल थीं,
९. स्पर्दा—लिदिया और मुसिया आदि क्षुद्र-एसिया के प्रदेश,
१०. मिदिया—हमदान के पास का प्रदेश, जो ईरानी जाति का सर्वप्रथम नेता बना,
११. अरमेनिया,
१२. कत्पतूक—क्षुद्र-एसिया का मध्य भाग तौरस आदि,
१३. पार्थव—पार्थिया और हुर्कानिया,
१४. जरंगिया,
१५. हरेयव (आर्य),

[1] Historic Ancienne (G. Maspero) pp. 704-5

१६. उवरज्मिया—ख्वारेज्म,
१७. बाख्त्रिया—वाह्लीक (बल्खका प्रदेश),
१८. सुग्दा—ज़रफ़शां-उपत्यका,
१९. गंदार—पेशावर और तक्षशिला का प्रदेश,
२०. शक—चीन की सीमा से काकेशस के उत्तर तक फैला शकद्वीप
२१. सप्तगिद—थतगुस, हेलमन्द उपत्यका का ऊपरी भाग,
२२. हरउवती—(ग्रीक अर्खोशिया),
२३. मक—ओर्मुज्द के पास का प्रदेश

दारयबहु विश्वका पहला शासक है, जिसने राजा की मूर्ति (रूप) के साथ सिक्के चलाये। इससे पहले भिन्न-भिन्न चिन्हों से अंकित धातु के टुकड़े सिक्के की तरह चलते थे। मुद्राकला को पराकाष्टा तक ग्रीक राजाओं ने पहुंचाया—चाहे सिकंदर के सिक्कों को ले लीजिये या ग्रीक-बाख्तरी राजाओंके सिक्कों को, सबमें ही बड़ी भावपूर्ण, सुन्दर वास्तविक आकृति मिलती है। मिनांदर आदि ग्रीक राजाओं ने भी अपने भारतीय राज्य के लिये रूपलांछित सुन्दर मुद्रायें चलाईं। शकों और पार्थियों ने ग्रीक-सिक्कों की नकल की। शकों की नकल हमार यहाँ गुप्तों और पीछे के राजवंशों ने की। गुप्तकालीन मूर्तिकला और चित्रकला बहुत उन्नत थी, लेकिन जब हम उस समय के सिक्कोंको ग्रीक सिक्कोंसे तुलना करते हैं, तो वह बहुत दरिद्र मालूम होते हैं। इसका कारण हमारे यहाँ पोर्त्रेत चित्रकलाका अभाव है। दारयबहुका सोनेका सिक्का दरिक कहा जाता था, जिसपर हाथ में हथियार लिये राजाकी मूर्ति होती थी। दरिकका सोना बिल्कुल खरा होता था। शुल्क या भूमिकरका हिसाब जहाँ दरिकमें होनेसे आसानी होती थी, वहां व्यापारमें भी इसके कारण बहुत सुभीता हुआ।

दारयबहुकी शासन-व्यवस्था इतनी अच्छी साबित हुई, कि उसकी बहुत सी बातोंको सिकंदर और उसके उत्तराधिकारियोंने अपनाया। पश्चिमी एसियामें तो वह आदर्श व्यवस्था मानी गई। भारतका मौर्य साम्राज्य उसके बाद स्थापित हुआ, जिसके पहले नंदोंका विशाल साम्राज्य स्थापित हो चुका था। उसने अपने केन्द्रीकृत शासनके लिये कितनी ही नई बातें बनाई होंगी। ईरानी साम्राज्यके उत्तराधिकारी ग्रीक-राज्योंसे सीधे संबंध रखनेवाले मौर्य साम्राज्य ने यदि दारयबहुकी शासन-प्रणालीसे कुछ बातें ली हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। शासनकी सुव्यवस्थाके लिए संचार और यातायातका अच्छा प्रबन्ध अनिवार्य है। मौर्यकालमें पटनासे तक्षशिला, उज्जयिनी और दूसरे शासन या व्यापार-केंद्रोंको राजपथ गये थे, जिनपर पांथशालायें तथा छायादार वृक्ष भी लगे हुए थे। सबसे पहले यह व्यवस्था बड़े विस्तृत रूपमें दारयबहुने की। उसके राजपथ राजधानी पर्शूपुरी (पर्सेपोलि) से मकदूनिया, मिस्र, भारत और मध्य-एसिया तक गये हुए थे, जिनमें डाकके घोड़े बराबर तैनात रहते थे। साधारण जनताको चाहे इस डाक-व्यवस्थासे लाभ न हो, किंतु केन्द्रको राज्यके भिन्न-भिन्न भागोंमें क्या हो रहा है, इसका समाचार बहुत जल्द लग जाता था। ग्रीक लेखक बतलाते हैं, कि राजपथमें यातायातका बहुत सुभीता था, २५ किलोमीतर (चार योजन) पर अतिथिशालायें थीं, जहाँ ठहरनेका इंतिजाम था।

२. धर्म[१]

ईरानी शाह मज्दयस्नी अर्थात् भगवान् अहुरमज्दको माननेवाले थे। ज़र्थुस्त्रको कोई-कोई विद्वान् ६६० ई० पू० अर्थात् बुद्धसे प्राय: १०० वर्षपूर्व काकेशसके आजुरवाइजान प्रदेशमें पैदा हुआ मानते हैं और कुछ विद्वानोंका मत है कि दारयबहुका पिता विस्तास्प जर्थुस्त्रका संरक्षक और अनुयायी था। ऐसा होनेपर वह और बुद्ध समकालीन हो जाते हैं। ज़र्थुस्त्रसे पहलेके ईरानी धर्ममें क्या-क्या विशेषतायें थीं और उनमेंसे किन-किन बातोंको ज़र्थुस्त्रने छोड़ दिया, इसे बतलाना मुश्किल है। इतना तो कहा जा सकता है कि जर्थुस्त्रके सुधारके पहले का ईरानी धर्म, और उसके क्रियाकलाप ऋग्वेदिक धर्मके बहुत समीप थे। सारे शतम्-वंशमें ही नहीं, बल्कि हिंदू-यूरोपीय वाङमयमें 'देव' शब्द अच्छे अर्थोंमें प्रयुक्त होता रहा। उसको राक्षसका पर्यायवाची बनाना ज़र्थुस्त्रका काम था। कितने ही अंशोंमें फर्क रखते हुए भी यज्ञ, सोम आदि कर्मकांडोंमें मज्दयस्नी और वैदिक धर्ममें समानता थी। अहुरमज्द और अंग्रमेन्यू (अह्रेमान) के नामसे येहोवा और शैतानकी तरहके भलाई और बुराईके दो स्रोतोंकी कल्पना शायद ज़र्थुस्त्रने यहूदियोंसे ली। जर्थुस्त्रके उपदेश पहले बहुत रहे होंगे, लेकिन उनमेंसे थोड़ी सी गाथायें ही आजकल अवेस्तामें मिलती हैं। सामीय पैगंबरोंकी तरह ज़र्थुस्त्रका भी दावा था, कि अहुरमज्दाने मुझे लोगोंका पथ-प्रदर्शक बनाकर भेजा है। जहां ज़र्थुस्त्रके (पार्सी) धर्मकी कुछ बातें सामीय धर्मसे मिलती हैं, वहां उसकी मुख्य शिक्षा हुमत (सुमत), हुख्त (सूक्त) और हूर्स्त (सुकृत) सम्यग ज्ञान, सम्यग्-वचन और सम्यक् कर्म अथवा मनसावाचा, कर्मणा सत्य पर कायम रहना पुरानी परंपराको ही बतलाती है। कहते हैं, ज़र्थुस्त्र को अपनी जन्मभूमि (आजुरब्राइजान) में धर्मप्रचारमें सफलता नहीं मिली, तब वह पूर्वी ईरानके खुरासान प्रदेशमें चले गये, जहाँका राजा या क्षत्रप उस समय विस्तास्प (शाहनामाका गुस्तास्प) नये धर्ममें दीक्षित हुआ।

शाह, क्षत्रप, राजकर्मचारी और पुरोहित ये सब आरामका जीवन बिताते थे। साहित्य और कलाका आनंद वही ले सकते थे। साधारण जनता दास और कर्मकरके तौरपर पशुवत् जीनेका अधिकार रखती थी। दासताका तो उस वक्त सारे सभ्य जगत्में अखंड राज्य था।

३. क्षयार्श[२] (४८५-४६६ ई० पू०)

दारयबहुकी मृत्युके बाद उसका पुत्र क्षयार्श प्रथमने १९ वर्षों तक राज्य किया। वह अपने सुंदर रूप और सुपुष्ट शरीरके लिये बहुत प्रसिद्ध और प्रशंसित था, किंतु उसमें अपने पिता जैसी प्रतिभा और योग्यता न थी। तो भी उसकी महत्वाकांक्षा पितासे कम न थी। पिताने ग्रीक लोगोंसे पराजय प्राप्त की थी। क्षयार्श चाहता था कि उस कलंकको धो दिया जाय। वह उसके लिये तैयारी करने लगा। ग्रीसपर आक्रमण करनेसे पहले मिस्रमें बगावत हो गई और क्षयार्श उसे दबानेके लिये स्वयं वहाँ गया। उसको दबा देनेके बाद ४८१ ई० पू० में उसने ग्रीसपर अभियान किया। कहते हैं, इस अभियानमें १२०० जंगी जहाज तथा २३,१०,००० सैनिक (१७,००,००० पैदल १,००,

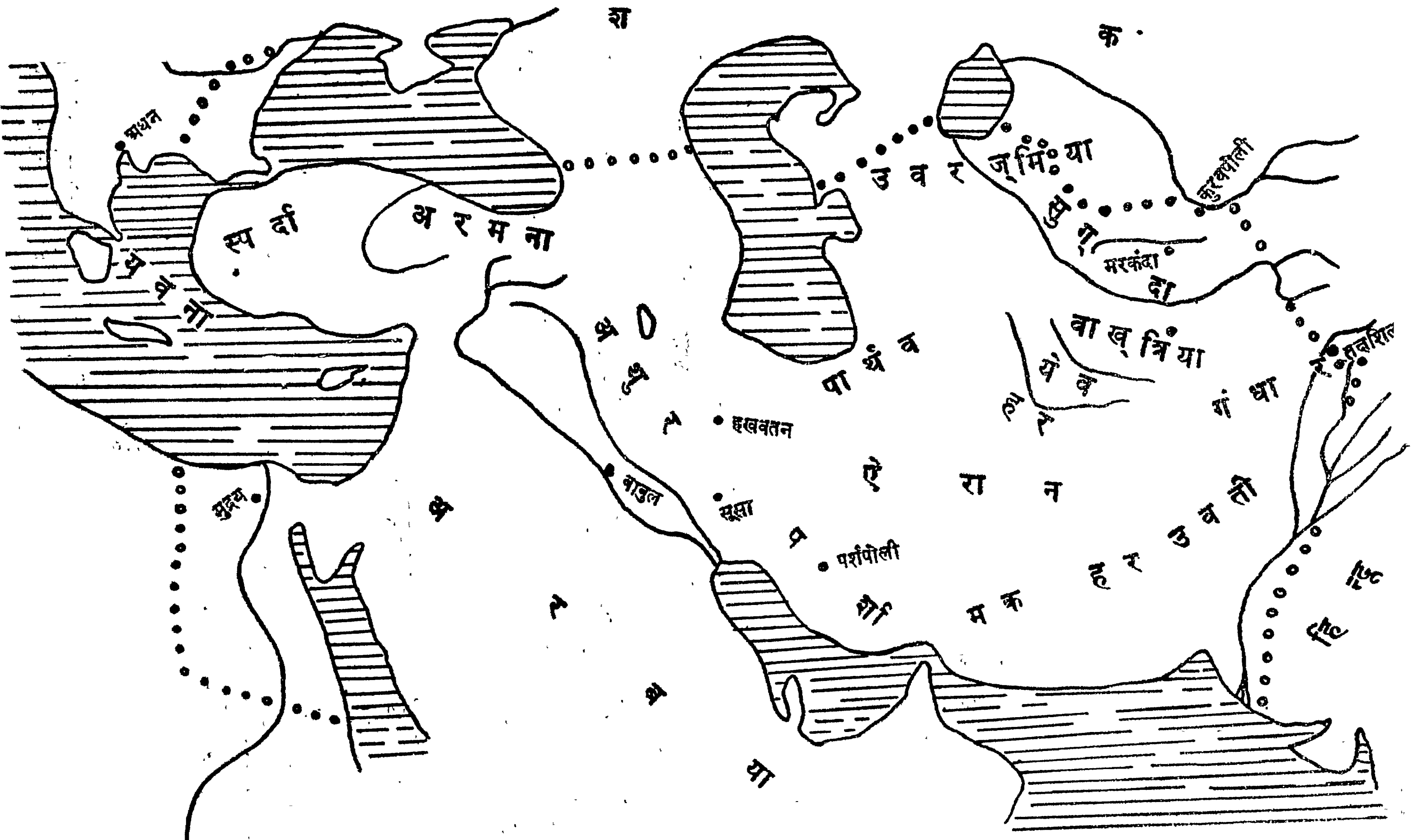
---

[१] इस्तोरिया (स्त्रूवे) पृ० ३८४-४५

[२] Historic Ancienne (G. Maspero) pp. 721

०००सवार बाकी नौसैनिक) थे। युरोपके भिन्न-भिन्न भागोंसे जो सहायता मिली थी, उसे शामिलकर लेने पर सेना-संख्या ५० लाख पहुँच जाती है। उस समय तक दुनियामें इतनी बड़ी सेना किसी अभियान में नहीं शामिल हुई। इतनी बड़ी सेना को रसद-पानी पहुँचाना और संचालन करना आसान काम नहीं था। जरूरतसे अधिक सेना भी अपनी कर्मण्यताको खो देती है, यह इस युद्धमें पता लगा। ग्रीस जातिने भी ईरानके आक्रमणको अपने जन्म-मरणका सवाल समझा और मुकाबला करनेके लिये सारी हेलेनिक (ग्रीक) जाति एक हो गई। अथेंसवालोंने जाना, हम अपने नगरकी रक्षा नहीं कर सकते, इसलिये उन्होंने अपने बाल-बच्चोंको दूसरी जगह भेज दिया और वह स्वयं भी नगरको खाली कर गये। शाही सेनाको मकदूनिया और थेसेली होकर गुजरनेमें कहीं बाधा नहीं हुई। उत्तर और मध्य ग्रीसके सभी हेलेनिक राज्योंने पहली ही मुठभेड़में ईरानकी अधीनता स्वीकार कर ली। थर्मापोलीमें पहला जबर्दस्त संघर्ष हुआ, जिसमें ग्रीक योद्धाओंने अपनी वीरताका अद्भुत परिचय दिया। ईरानी इस रास्ते पहाड़ी घाटीको पार कर नहीं बढ़ सके। लेकिन उन्हें दूसरे रास्तेका पता लग गया और वह उधरसे आगे बढ़ गये। कितने ही छोटे मोटे युद्धोंमें यूनानियोंको परास्त करते हुए ईरानी सेनाने अंतमें अथेंसको विजय कर लिया। अथेंसके काष्ठ प्राकार और उसकी मुट्ठी भर सेना ईरानियोंका क्या मुकाबला कर सकती थी? अत्तिका और अथेंसके विजयसे शाहने समझ लिया कि अंतिम विजय उसके हाथमें आना ही चाहती है; किंतु अथेंसवालोंने हथियार नहीं रखा। वह सलामी द्वीपमें लड़नेके लिये तैयार बैठे थे। अंतिम निर्णय सामुद्रिक युद्धमें होनेवाला था। सलामीकी तंग खाड़ीमें दोनों पक्षोंका युद्ध हुआ। यहाँ जगह बहुत कम थी, जिसमें ईरानके भारी भरकम सैनिक पोत फुर्तीसे काम नहीं कर सकते थे। यूनानी युद्धपोत हल्के और फुर्तीले थे। दिन भरकी लड़ाईमें ईरानके २०० जहाज डुबा दिये गये। ईरानियोंको विजयकी आशा नहीं रह गई। यूनानी शंकित हृदयसे सबेरे के वक्त आक्रमणकी प्रतीक्षा कर रहे थे, किंतु देखा, समुद्रमें शत्रुका एक भी पोत नहीं है। क्षयार्श खुद विजयका मुख देखे बिना लौट गया। लेकिन अभी उसने आशा नहीं छोड़ी थी, और अपने सेनापति मर्दोनियसको ग्रीस-विजयका भार सौंपा था। मर्दोनियसको एक दो सफलतायें मिलीं, जिनमें अथेंस पर फिर एक बार ईरानी ध्वजाका गड़ना था, किंतु वह स्थायी नहीं रही। अंतमें पलातियाके मैदानमें ग्रीक सेनाने ईरानी सेनाको बहुत बुरी तरह परास्त किया। मर्दोनियसको मरा देखकर शाही सेनामें भगदड़ मच गई।

इस असफलताके बाद १३ वर्ष और क्षयार्श जीता रहा, किंतु उसका वह जीवन बहुत ही जघन्य और विलासितापूर्ण था। अंतमें अपने महाप्रतिहार (शरीर-रक्षक अफसर) के हाथों उसे अपना प्राण खोना पड़ा। क्षयार्शके बाद और आठ अखामनी शाहंशाह हुए, जिन्होंने जैसे-तैसे नील तट तक फैले साम्राज्यको कायम रखनेकी कोशिश की। अखामनी शाहंशाहोंके नाम और काल निम्न प्रकार हैं:—



१७. दारयवहुका पारसीक साम्राज्य (४८५ ई० पू०)

१. कुरव ५५०-५२९ ई० पू०
२. कम्बुज ५२९-५२१ ई० पू०
३. गौमाता ५२१
४. दारयबहु (१) ५२१-४८५ ई० पू०
५. क्षयार्श (१) ४८५-४६६ ई० पू०
६. अर्तक्षथ्र (१) ४६६-४२५ ई० पू०
७. क्षयार्श (२) ४२५-४२४ ई० पू०
८. ... ...
९. दारयबहु (२) ४२४-४०५ ई० पू०
१०. अर्तक्षथ्र (२) ४०५-३५९ ई० पू०
११. अर्तक्षथ्र (३) ३५९-३३३ ई० पू०
१२. ... ...
१३. दारयबहु (३) ३३३-३३० ई० पू०

यद्यपि क्षयार्श (१) के बाद ही से आखामनी साम्राज्यकी वृद्धि रुक गई, किंतु अलिकसुन्दर से पहले उसका कोई सबल प्रतिद्वंदी नहीं हुआ। अर्तक्षथ्र (२) के समय (४०५-३५९ ई० पू०) मिस्रमें विद्रोह हुआ। ईरानके प्रतिद्वंद्वी ग्रीक मिस्रका समर्थन कर रहे थे, किंतु आपसी विरोधके कारण उतनी मदद नहीं कर सकते थे। मिस्रको दबना पड़ा, । अर्तक्षथ्र (३) (३५९-३३३ ई० पू०) ने राजवंशके सभी राजकुमारोंको मरवा डाला। इसके समय फिर मिस्रने स्पार्ता और अथेंसकी मददसे ईरानी जूयेको उतार फेंकना चाहा, किंतु फिर उसे दबना पड़ा। ईरानी शासन-केंद्रके एक छोरपर अवस्थित इस प्राचीन देशको यदि अभी भी ईरान दबा सकता था, तो सोग्दके भी ईरानी शासनसे स्वतंत्र होने की आशा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वह जातितः ईरानी था। संभवतः गंधार भी ईरानकी परतंत्रता किसी न किसी रूपमें स्वीकार करता रहा। ख्वारेज्म के लड़ाके अर्ध-घुमन्तू कंग ईरानकी शक्ति क्षीण होते ही स्वतंत्र हो गये—यही मसागेतोंके वंशज अब ख्वारेज्मके निवासी थे।

४. दारयबहु (३) (३३३-३३० ई० पू०)

यह अखामनी वंशका अंतिम और १३ वां शाह था। कुलबध होते होते कुलोच्छेद सा हो गय था, जब कि इसे गद्दीपर बैठाया गया। इसे वीर और उदार बतलाया जाता है, लेकिन सवा दो सौ वर्षोंके पुराने राजवंशमें बहुत सी खराबियां आ गई थीं। शासनयंत्रमें ताजगी नहीं रह गई थी, उसके पुर्जे इतने निकम्मे हो गये थे, कि दारयबहुकी वीरता और उदारता बहुत मदद नहीं कर सकती थी और उसका मुकालिबा भी हुआ विजयी अलिकसुंदर से।

५. अलिकसुंदर (३३६-३२३ ई० पू०)

दारयबहु (१) ने थ्रेस और मकदूनिया जीत लिया था, यह हम पहले कह आये हैं। मकदूनिया कुछ समय पीछे तक ईरानी साम्राज्यका अंग रहा, किंतु ग्रीक के अभियानमें जो करारी

हार खानी पड़ी, उससे मकदूनियाको हाथमें रखना संभव नहीं हो सका। ३५९ ई० पू० में जब कि अर्तक्षथ्र (३) भारी कुलबधके बाद गद्दीपर बैठा, मकदूनियाका राजमुकुट फिलिपके शिरपर रक्खा गया। बड़े ही योग्य सेनानायक और अच्छा शासक होने के साथ ही वह बहुत महत्वाकांक्षी भी था। उसने राज्यशासन और सेना-संगठनमें ग्रीस और ईरान दोनोंसे बहुत सी बातें सीखीं। यद्यपि मकदूनीय भी ग्रीस जाति ही के थे, लेकिन अथेंस और स्पार्तावाले अपने इन उत्तरी भाइयोंको बर्बर और असभ्य समझते थे। फिलिपका २३ वर्षका शासन भारी तैयारीका था। ३३६ ई० में घरेलू झगड़ेके कारण उसे प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा, नहीं तो दो वर्ष बाद उसके पुत्रका ईरानपर महाभियान शायद पिता ही द्वारा होता। अथेंसको जीतते समय उसने ऐसे राजनीतिक कौशलका परिचय दिया, कि अभिमानी अथेनीय उसे हेलेनिक वीर मान उसके सहायक बन गये। अथेंस के महान विचारक अरिस्तातलको अपने साथ ला उसे उसने अपने पुत्र अलिकसुन्दरका शिक्षक बना दिया। ३३६ ई० पू० में पिताके मरनेके बाद २० वर्षकी उम्रमें अलिकसुन्दर मकदूनियाकी गद्दीपर बैठा। इस छोटी उम्रमें भी वह दो युद्धोंमें वीरता दिखा चुका था। ईरानी ढंगपर शिक्षित घुड़सवार सेना और अथेंसके ढंगपर शिक्षित पैदल सेना बापके दायभागमें उसे मिली थी।

पिताके बाद उसके उत्तर और दक्षिणके पड़ोसी शिर उठाने लगे, जिसके कारण अलिकसुन्दरको दो वर्ष तक उन्हें दबानेमें लगा रहना पड़ा और ३३४ ई० पू० में ही वह अपने महान् दिग्विजयके लिये प्रस्थान कर सका[१]। उसका लक्ष्य ईरानी साम्राज्य था, जो सिंध तक फैला हुआ था। अलिकसुन्दरकी सारी विजितभूमिको देखनेसे मालूम होगा, कि पंजाबमें थोड़ासा आगे बढ़नेकी बात छोड़कर, उसने केवल ईरानी साम्राज्यको ही ग्रीक-साम्राज्यमें परिणत किया, इसलिये उसे कुरव और दारयबहुसे भारी विजेता नहीं कहा जा सकता। हां, यदि ईरानी साम्राज्यके जन-धनसे मुकाबिला किया जाय, तो प्रस्थानके समय वह ईरानके सामने कुछ नहीं था। एसियाके सारे यूनानी ईरानके साथ थे। ईरानका समुद्री बेड़ा भी बहुत विशाल और सुदृढ़ था। यद्यपि भीतरी कमजोरियोंके कारण ईरानको हारना पड़ा, किंतु ईरानी सेना जिस बहादुरीके साथ लड़ी, उससे उसकी प्रशंसा उसके शत्रु भी करते थे। ईरानकी सबसे बड़ी गलती यह थी, कि उसने अलिकसुन्दरके एसियामें घुसनेके समय ही मुकाबला नहीं किया। वह बिना रोकटोक समुद्र पार हो एसियाकी भूमिमें आ गया। प्रस्थानके समय अलिकसुन्दरके पास ३०,००० पैदल और ५००० सवार सेना थीं। ईराननें पहली लड़ाई ग्रनिकुसके तटपर की। ईरानी सेनाका सेनापति तथा शाहका दामाद मिथ्रदात अलिकसुन्दरके हाथों मारा गया। ईरानी सेनामें भगदड़ मच गई। पहली ही हारसे शाही सेनाकी हिम्मत इतनी टूट गई, कि सारे क्षुद्र-एसियामें अलिकसुन्दरको संगठित संघर्षका मुकाबला नहीं करना पड़ा। देशको उसके कायर क्षत्रपने बिना विरोधके अर्पण कर दिया। दारयबहुने जो तीन तीन प्रकारके अधिकारी क्षत्रप, सेनापति और राजामात्य हर प्रदेश में नियुक्त किये थे, केंद्रीय शासनके निर्बल होते ही बाकियोंको हटाकर क्षत्रपोंने दूसरे दोनों पद भी अपने हाथमें कर लिये। क्षत्रपके निर्बल होनेपर कोई दूसरा बचावका सहारा नहीं रह गया था। ईरानी साम्राज्यके प्रदेशोंको जीतनेके साथ अलिकसुन्दरके सामने भी शासनकी समस्या आई। उसने तीनकी जगह हर प्रदेशमें सैनिक और नागरिक दो प्रधानअधिकारी नियुक्त किये, साथ ही हर जगह सैनिकछावनियाँ

---

[१] वहीं पृ० ७५९-६१

कायम कीं, जिनमेंसे कितने ही उसीके नामपर अलिकसन्दरिया (अलसन्दा) नामसे विख्यात हुई। दिग्विजयका पहला साल अलिकसुन्दरने भूमध्यसागर-तटवर्ती प्रदेशोंको जीतने तथा क्षुद्र-एसियाको अकंटक बनानेमें लगाया। वह जानता था, अभी ईरानकी असली शक्तिसे मुकाबला नहीं हुआ है, इसलिये पृष्ठभूमिको मजबूत करके ही आगे बढ़ना उचित है। ३३३ ई०पू० में वह फिर आगे चला। दारयबहु (३) छ लाख सेनाके साथ इसुसमें उससे लड़नेके लिये तैयार था। युद्ध-क्षेत्र छ लाख सेनाके लड़नेके लिये पर्याप्त नहीं था, जिसके कारण ईरानी अपने संख्या-बलका लाभ न उठा घाटेमें रहे। इसुसका युद्ध अलिकसुन्दरके लिये निर्णायक साबित हुआ। दोनों ओरकी सेनाओंमें भीषण संघर्ष हो रहा था। अभी यह नहीं कहा जा सकता था कि जीत किसकी होगी, इसी समय दारयबहु भयभीत हो युद्ध-क्षेत्रसे भगा। उसे भागते देख सेनाकी हिम्मत टूट गई और चारों तरफ भगदड़ मच गई। ग्रीक सेनाने भगोड़ोंके साथ जरा भी दया-माया नहीं दिखलाई। इस लड़ाईमें एक लाख ईरानी सैनिक काम आये। युद्ध-क्षेत्रमें भी अपनी शानके साथ ही ईरानका शाह जा सकता था। उसके साथ रनिवास और नौकर-चाकरोंकी भारी पलटन रहती थी। भागत वक्त शाहको इतना होश-हवास कहाँ था, कि अपने रनिवासको साथ ले जाता। य.नोंको दारयबहुके सारे हरमके साथ शाही खजाना भी हाथ लगा। अलिकसुन्दरने रनिवासके साथ बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण बर्ताव किया।

अलिकसुन्दरने इस विजयके बाद मिस्र और पश्चिमी एसियाके दूसरे प्रदेशोंको विजय करके आगे कदम बढ़ाया। अरबेला (मसोपोतामिया) में दारयबहुने फिर एकबार मुकाबला करना चाहा। यहाँ उसके साथ दस लाखसे ऊपर सेना थी। यहाँ भी निपटारा होनेसे पहले ही दारयबहु भाग खड़ा हुआ। उसे जमकर लड़नेकी फिर कभी हिम्मत नहीं हुई। अलिकसुन्दरने दो दिन उसका पीछा किया, किंतु उसे पकड़ नहीं सका। स्थान-स्थानपर अच्छी तरह नागरिक और सैनिक व्यवस्था करते वह राजधानी सूसामें दाखिल हुआ, जहां उसे शाही खजाना हाथ लगा। आगे अब ईरानके गर्भमें उसने प्रवेश किया। पहाड़ी इलाके के दर्रों और संकरे मार्गोंमें ईरानियोंने थोड़ा बहुत मुकाबिला किया, किंतु अब ग्रीकोंकी चारों ओर धाक जम गई थी। अपने दिग्विजयके चौथे साल (३३० ई० पू०) अलिकसुन्दर मुख्य राजधानी पर्शुपुरी (परसेपोलि) में दाखिल हुआ। यहाँ उसे अकूत खजाना हाथ लगा, जिसके ढोनेके लिये दस हजार खच्चर-गाड़ियों और पाँच हजार ऊँटोंकी जरूरत पड़ी। विजय मदोन्मत्त अलिकसुन्दरने राजधानीमें कत्लआम जारी कर दिया। दारयबहु (१) के बनाये विशाल स्तम्भोंवाले भव्य प्रासाद तथा दूसरी इमारतें जलने लगीं। क्षणभरमें वह वैभवपुरी अपनी अद्भुत कलाकृतियोंके साथ भस्मावशेष रह गई। पर्शुपुरीका यह निष्ठुर ध्वंस बतलाता है कि मकदूनिया सचमुच ही अभी बर्बर युगसे आगे नहीं बढ़ी थी। इस नृशंसताके ऊपर टिप्पणी करते हुए एक पश्चिमी इतिहासकारने लिखा है: "जो कलाके विरुद्ध युद्ध करता है, वह कुछ राष्ट्रोंके विरुद्ध ही नहीं, बल्कि सारी मानवताके विरुद्ध युद्ध करता है।"

अलिकसुन्दरको मालूम हुआ, कि दारयबहु हयतान (हम्दान) में युद्धकी तैयारी कर रहा है। वह तुरंत उधर दौड़ पड़ा। दारयबहु अपनी जान बचाता इधरसे उधर भागने लगा। अलिकसुन्दर जानता था, कि जब तक अखामनी शाह जिन्दा है, तब तक खतरा दूर नहीं होगा। शाह के मध्य-एसियाकी ओर भागनेका पता पाकर वह उस ओर बढ़ा। दमगानके पास रास्तेमें।

दारयबहुकी परित्यक्त ताजी लाश मिली। अलिकसुन्दरने शवको बड़े सत्कारके साथ पर्शुपुरीमें दफनाया, दारयबहुकी कन्या रोक्सानासे विवाह किया, जिससे एक पुत्र भी हुआ, किंतु जीते हुए देशोंको भोगनेका भाग्य उसके सेनापतियोंके संतानोंको प्राप्त हुआ।

स्रोत-ग्रंथ :

1. Persia (P. M. Sykes, 2 vols)

2. Histoire ancienne de peuples de l' Orient 3 vols. (G. Maspero Paris 1905)

3. The Ancient History of Near East (H. Hall, 1936)

4. Cambridge Ancient History (1928)

5. Histoire de l' Orient, 2 vols (A. Moret)

६. इस्तोरिया व् द्रेव्यानि विगाख हेरोदोतस, अनुवादक फ० मिश्रेंको I, II (1885-1856), G. Rawlinson: Herodotus,

7. Ancient Empires of the East. (P. M. Syckes)

8. The Five great Monarchies (G. Rawlinson)

9. Eranische Alterthumskunde (Spiegel on the rock at Behistun)

10. Inscription of Darius, (H. Rawlinson,)

11. Le Peuple et la langue de Medes (Oppert)

अध्याय २

कंग[१] (ई० पू० ५वीं शती—ई० १ली शती)

अलिकसुन्दरके मध्य-एसिया विजय और वहांके ग्रीक शासनके बारेमें कहनेके पहले ख्वारेज्म पर एक दृष्टि डालनेकी आवश्यकता होगी। कुरव और दारयबहुके समय (५५०-४८५ ई० पू०) वहाँ मसागेत (महाशक) रहते थे, यह हम पहले कह आये हैं। यद्यपि सिर(एवसर्त) दरिया, अराल समुद्र और कास्पियन समुद्र एक स्वाभाविक सीमा है, जिसके दक्षिण मध्य-एसियाका दक्षिणापथ है। लेकिन इस दक्षिणापथके पश्चिमी भागको भी रेगिस्तान ने स्वतंत्र प्राकृतिक प्रदेशका रूप दे दिया है। ख्वारेज्मके उत्तर तरफ सिरदरिया और अराल समुद्र प्राकृतिक सीमा हैं। उसके पूरबमें किजिलकुम (रक्तमरु) का महान् रेगिस्तान है, जो शत्रुके लिये किसी दुरारोह पर्वत-शृंखलासे कम कठिन नहीं है। ख्वारेज्मको दक्षिणमें कराकुम (कृष्ण मरु) मर्ग (मेर्व) प्रदेशसे अलग करता है। यद्यपि दक्षिणकी ओरसे वक्षु (आमूदरिया) ख्वारेज्ममें प्रवेश करती है, और जोही इसकी समृद्धिका कारण भी है, किंतु एक जगह नदीके दोनों किनारोंपर पहाड़ और रेगिस्तानके कारण मार्ग इतना संकरा हो जाता है, कि वहां शत्रुको आसानीसे रोका जा सकता है। इस प्रकार ख्वारेज्म राजनीतिक तौरसे ही नहीं बल्कि प्राकृतिक तौरसे भी एक अलग इकाई है, जिसे हम इसी रूपमें कुरवके राज्यारंभसे पहले भी पाते हैं। बहुत कम अपवादोंके साथ वह सोवियत क्रांतिके समय (१९१७ ई०) तक अपनी अलग सत्ता को कायम रक्खे रहा। आज वह उज्बेकिस्तान गणराज्यका एक भाग है।

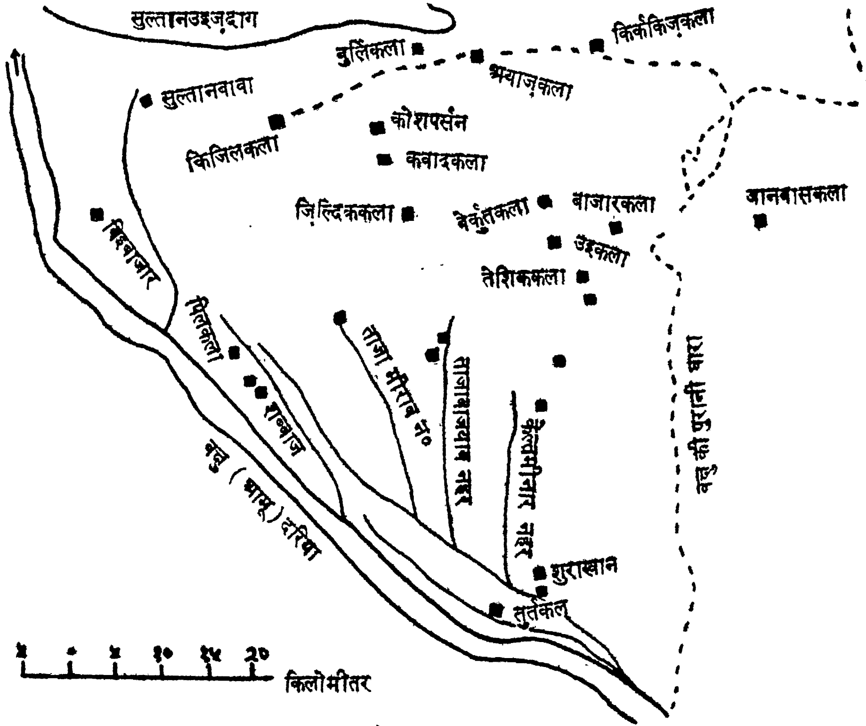
१. केल्तमीनार संस्कृति (ई० पू० ४-३ सहस्राब्दी)

यदि हम ख्वारेज्मके पुराने इतिहासपर एक बार फिर दृष्टि डालें, तो नवपाषाण और अनवपाषाण युग (ई० पू० चौथी और तृतीय सहस्राब्दी) में यहाँ एक संस्कृतिको पाते हैं, जिसे सोवियत इतिहासवेत्ताओंने 'केल्त मीनार' संस्कृति नाम दिया है। केल्त मीनार निम्न वक्षु नदीसे उत्तरकी ओर जानेवाली पुरानी नहरोंमेंसे एक है, जिसके नाम पर इस संस्कृतिका नाम पड़ा। आजकल किजिलकुम (लाल रेगिस्तान) में इसी परित्यक्त नहरके उत्तरमें 'जाँबासकला' का ध्वंसावशेष है, जहाँ नवपाषाणयुगीन पाषाणास्त्र और मिट्टीके बर्तन मिले हैं। पुरातात्विक वस्तुओंसे तुलना करने के बाद सोवियत पुरातत्त्वज्ञ इस परिणामपर पहुँचे हैं, कि उस काल में जो संस्कृति यहाँ पर थी, उसके अन्दर दक्षिणी उराल, सिरदरियासे पूर्वी तुर्किस्तान से लेकर

---

[१] "नोविये मतेरिअली पो इस्तोरिइ कुल्तुरि द्रेव्नओ खोरेज्मा" (स० प० ताल्स्तोफ) वेस्तुनिक द्रेव्नेइ इस्तोरिइ १९४६ (१) पृ० ९०-१००

दक्षिण में हिन्द महासागरके तट तक अेक ही प्रकारकी संस्कृति मौजूद थी। भाषाके विचारसे मुण्डा-द्रविड भाषा जहाँ एक ओर इस संस्कृतिवाले लोगोंकी भाषा रही, वहाँ दूसरी ओर उइगुर भाषाकी मातृस्थानीया प्राचीन बोली बोली जाती रही।



१८. ख्वारेज़्म मरुभूमि की पुरानी संस्कृतियाँ

२. ताजाबागयाब संस्कृति (ई० पू० २ सहस्राब्दी)

द्रविड या केल्तमीनार संस्कृतिके बाद ई० पू० दूसरी सहस्राब्दी में ख्वारेज्ममें उसका स्थान एक दूसरी संस्कृति लेती है, जो उसी नामकीएक परित्यक्त नहरके पास होनेके कारण ताजाबागयाब संस्कृति कही जाती है। यह संस्कृति उसी तरह अपने पहलेकी द्रविड संस्कृतिका स्थान लेती है, जैसे सिंधु-उपत्यकामें पुरानी संस्कृतिवालों का स्थान आर्य लेते हैं। अेक तरह कहा जा सकता है, कि द्रविड संस्कृतिका स्थान-विनिमय पहलेपहल ख्वारेज्मकी भूमिमें आर्यों ने किया था। केवल हिंदू-आर्य और ईरानी-आर्य यही दो जातियां अपनेको आर्य कहती हैं, शक अपने लिये आर्य शब्द का प्रयोग करते थे, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। हो सकता है, ख्वारेज्ममें शक नहीं उनके भाईबंध आर्य ही द्रविडोंका स्थान लेनेमें सफल हुए हों। पुरातात्त्विक अवशेषों की तुलना करनेसे पता लगा है, कि ताजाबागयाब संस्कृति ताम्रयुगकी अंद्रोनोफ संस्कृतिसे घनिष्ठ संबंध रखती थी, जो कि सिबेरियाके दक्षिणमें वोल्गासे अल्ताई तक फैली हुई थी। इस संस्कृतिके लोग

कुछकुछ आदिम कृषि भी जानते तथा, अधिकतर नदीके किनारे रहते और तांबे के हथियारों का प्रयोग करते थे। मध्य-अेसियामें आया यह पहला हिंदू-युरोपियन जन था। जिस वक्त यह लोग ख्वारेज्ममें रहते थे, उस वक्त कराकुम रेगिस्तानके पार दक्षिणमें अनौकी संस्कृति मौजूद थी। इसके लोग शिकारी, मछुवाही और कुछ आदिम ढंग की खेती करते थे। शायद उनका संबंध ताजाबा गयाब संस्कृतिके लोगोंसे न होकर भमध्यसागरीय जातियों अर्थात् केल्तमीनारसे अधिक था, जब कि ताजाबागयाब संस्कृतिके लोगोंका संबंध पूर्वी यूरोप में थ्रेस और किमेरी तथा क्षुद्रएसियामें हित्ताइत जातिसे था।

३. ताजामीराबाद संस्कृति (ई० पू० १ सहस्राब्दी)

ताज़ामीराबादकी परित्यक्त नहरके उत्तरमें जांबास-कला में इस संस्कृतिके अवशेष मिले हैं। पहले लोगोंके बारेमें हम नहीं कह सकते, कि वह शकोंसे संबंध रखते थे या आर्यों से, किंतु ताज़ामीराबाद संस्कृतिके लोगोंका संबंध शकोंसे था। इनकी संताने आगे आलान और फिर ओसेतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं। ओसेती जाति आज भी अपनी भाषाके साथ काकेशसकी एक घाटीमें मौजूद है। ताजामीराबाद संस्कृति भी ताम्रयुगकी संस्कृति थी। यह लोग मिट्टीकी दीवारोंवाले लंबे घरोंमें रहते और आजीविकामें ताज़ाबागयाब संस्कृतिसे बहुत ज्यादा आगे नहीं बढ़े थे।

४. आदिम कंग (७००-५५० ई० पू०)

ई० पू० प्रथम सहस्राब्दीके प्रथम पादसे जब द्वितीय पादमें हम बढ़ते हैं, तो ख्वारेज्मकी भूमिमें नहरोंका एक जाल सा बिछा देखते हैं—यह नहरोंका युग था। छोटी-छोटी इकाइयोंमें बँटे कबीले ऐसी प्रगति नहीं कर सकते थे। ५५० ई० पू० में कुरव अखामनी साम्राज्य कायम करने में सफल हुआ, लेकिन दो दशाब्दियों बाद उसे यहांके मसागेतोंको पराजित करने में आंशिक ही सफलता मिली और आगे भी शताब्दीसे अधिक अखामनी शासनको कंगोंने नहीं माँगा। नहरोंके युगके प्रवर्तक कंगोंके पूर्वज मसागत (प्राचीन कंग) ही रहे होंगे। ई० पू० ७वीं सदीमें उनका केंद्रीय शासन स्थापित हो चुका था। नहरोंके युगमें बहुत से नगर बसे थे, जो कि आजकल किज़िलकुमकी मरुभूमिके पेटमें पड़े हुए हैं। केल्तमीनारसे उत्तर कुमवसनकला, तेशककिला, बेर्कुतकला और उइकला, तथा ताजाबागयाब के उत्तरमें उल्लीगुलदरसुन, किचिकगुलदरसुन, नारीजानबाबा भी उसी कालके नगरोंके ध्वंस हैं। जान पड़ता है, ताजाबागयाब नहरका पानी जिल्किकला तक जाके खतम होता था।

पिछले १३-१४ वर्षोंसे लगातार सोवियतके पुरातात्विक अभियान हर साल किज़िलकुमके ध्वंसावशेषोंकी जाँच-पड़ताल कर रहे हैं। वहां बहुत सी महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई हैं, लेकिन इसे अभी खोजका आरंभ ही समझना चाहिए।

५. कंग (५-१ सदी ई० पू०)

कुरबकी विजय ख्वारेज्मपर स्थायी नहीं हुई थी। वह यदि राजनीतिक विजय न भी हो, तो भी अखामनी युगकी ईरानी संस्कृतिकी विजय तो अवश्य हुई। यदि सोग्द किसी न किसी

रूपमें अलिकसुन्दरके मध्यऐसिया-विजय तक अखामनी साम्राज्यका अंग था, तो ख्वारेज्म ईरानके सांस्कृतिक साम्राज्यका भी अंग अवश्य रहा। ई० पू० चौथी सदीके आरंभमें उवारेज्म (ख्वारेज्म) के कंग स्वतंत्र हो गए, और कितने ही समय तक दुर्बल अखामनी साम्राज्यके प्रदेश पार्थिया (मेर्वसे कास्पियन तक), आरियन (हिरात प्रदेश) और सोग्द कंगोंके लूटमारके क्षेत्र बने रहे। आगे जब अखामनी साम्राज्यको अलिकसुन्दरने नष्ट करके विशाल यवन-राज्यकी स्थापना की, और बाख्त्रियाको लेते हुए सोग्दपर अपनी विजय-ध्वजा गाड़नी चाही, तो अपने वीर नेता स्पिता-माके नेतृत्वमें सोग्दियोंने ग्रीकोंके साथ संघर्ष किया। उस समय कंग उनके सहायक थे। ख्वारेज्म यवन-साम्राज्यके विरोधियोंका केन्द्र अलिकसुन्दरके समय ही नहीं रहा, बल्कि उसके उत्तरा-धिकारियों सेलूकियों और ग्रीक-बाख्त्रियोंके साथ भी कंगोंका संघर्ष बराबर जारी रहा। इन्हींके नेतृत्व और सहायतासे ई० पू० तृतीय शताब्दीके मध्यमें शकोंके एक जन पार्थियोंको आगे बढ़नेका मौका मिला। १६० ई० पू० के आसपास तो कंग इतने दृढ़ हो गये थे, कि उन्होंने सोग्दसे बाख्त्रिया-का प्रभाव हटा दिया। लेकिन उनकी सफलता देर तक नहीं रही, क्योंकि थोड़े ही समय बाद यूची शक अपनी जन्मभूमिसे भागते हुए इस ओर आये। यूची सैलाबमें सोग्द और बाख्त्रिया बह गये और १३० ई० पू० के बाद हम ग्रीको-बाख्त्री राज्यका पता नहीं पाते। इस कालमें ख्वारेज्म स्वतंत्र रहा। कंग भी उसी तरह शकोंकी एक शाखा थे, जैसे कि यूची और पार्थिय। साथ ही उनपर विजय प्राप्त करना आसान काम नहीं था, इसलिए ई० पू० प्रथम शताब्दीके अन्त तक वह स्वच्छन्द बने रहे।

कंग-कुषाण (ई० १-३ सदी)

ईसाकी प्रथम शताब्दीके आरम्भमें कुषाणोंने अपने भाई-बंधु यूचियोंके राज्यको ले जहाँ पूरबमें पंजाबसे पूर्वी भारत तक अपना राज्य विस्तार किया, वहाँ पश्चिममें वह कंगोंको लेते हुए अराल समुद्र तक पहुँच गये। इस समय ख्वारेज्मकी समृद्धि अक्षुण्ण रही, यह उस कालकी नहरों और बढ़े हुए नगरोंसे पता लगता है। कुषाण समय में शकवंशी होनेके कारण, जान पड़ता है, अधीन करनेके बाद भी कंगोंके साथ कुषाणोंका वर्ताव बहुत कुछ समानताका था। अखामनी साम्राज्यके कायम होनेपर मिदियावालोंके साथ जैसा वर्ताव अखामनियोंने किया, वही बात यहां भी मालूम होती है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि भारत के लोग भारतमें आये कंगोंको कुषाण-शासकोंमें ही गिनते हों। पोशाक, रीति-रवाज और खान-पान में सभी शक जातियाँ समानता रखती थीं। गोरा रंगरूप भी कंगोंका कुषाणों जैसा ही था, जिसे कि हमारे वैद्य उनके अधिक पलांडु-भक्षणके कारण बतलाते थे।

ईसा की ३-४थी शताब्दीमें कंग फिर स्वतंत्रसे हुए दीख पड़ते हैं। इस समय वह कुषाण और सासानी साम्राज्योंके मध्यवर्ती तटस्थ राज्यका पार्ट अदा करते हैं। पांचवीं शताब्दीमें हेफ़ताल (एफ़ताल, श्वेत हूण) कुषाण-राज्यको मध्य-एसिया और पंजाबसे खत्म करते हैं। इसी समय एफ़ताल-राजा पेइकंद कंगोंको दबानेमें सफल होता है। एफ़तालोंके लिये लड़ाकू कंग बड़े सहायक साबित हुए, इसलिए एफ़ताल घुमन्तुओंका—जिन्हें लोग शकोंका वंशज न समझ हूण कहनेकी गलती करते हैं—बर्ताव कंगोंके साथ अच्छा था। जान पड़ता है, कुषाणों और दूसरे शक

शासकोंका जब नेतृत्व बदला, तो एफ़तालों (हेफ़्तालों) ने उनका स्थान लिया। तभी उनको कुषाणों, कंगों और दूसरे शकोंकी भारी घुमन्तू सेना अनायास मिल सकी।

जानबासकला, कोई-क्रिलगानकला, लघुक्रिकिज़, क्यूनेर्ली-कला, अकतेपे कंगोंके ई० पू० ४-५ सदी और प्रथम शताब्दीके बीचके ध्वंसावशेष हैं, जिनसे उनकी संस्कृतिका पता लगता है। कललीगिरके ध्वंसावशेषोंमें बहुतसी मूर्तियाँ, सिक्के और तरह-तरहके मिट्टीके बर्तन मिले हैं। मिट्टीके बर्तनोंमें सिंहमुख वाले हत्थे लगे हुए हैं। जानवास-कलाके ध्वंसावशेषसे पता लगता है, कि ई० पू० चौथी सदीमें कंग संस्कृति बहुत उन्नत थी। ई० पू० तृतीय शताब्दीमें तो उनके सिक्कोंमें ग्रीक सिक्कोंकी नकल करनेकी कोशिश की गई और उनपर ग्रीक अक्षर अंकित किये गए। कुषाण-कालीन अयाज़कला, जिल्दिक, तोप्रककला जैसे ध्वंसावशेष और भी अधिक समृद्ध हैं। कुषाणोंका शासन भारतमें भी था, और वहाँ उनके लेख तथा मूर्तियाँ भी मिली हैं, लेकिन कुषाण वास्तुकलाके अच्छे नमूने हमें हालकी ख्वारेज्मकी खुदाइयोंमें मिले हैं। ग्युरकला (चैमेनपाब नहरके ऊपर) और बाज़ारकला इस समयके बड़े सुन्दर नमूने हैं। अभी भी, जान पड़ता है, पीतलके तिकोने शर-फल कंग लोग इस्तेमाल करते थे। ई० पू० छठी शताब्दीमें अखामनी सेनामें होकर लड़नेवाले शक पीतलके हथियारोंको इस्तेमाल करते थे, यह हमें मालूम है।

६. कुषाण-अफ्रीग (ई० ३—५ सदी)

ईसाकी ३री से ५वीं शताब्दीकी ख्वारेज्मकी संस्कृति कुषाण-अफ्रीग संस्कृति कही जाती है। इस संस्कृतिके आरंभके साथ कंगोंका वैभव नष्ट हो जाता है। एक तरहसे इसे प्राचीन तथा अर्वाचीन ख्वारेज्मका संधिकाल कह सकते हैं। इस समय नहरें टूटने लगती हैं, नगरोंको रेगिस्तान निगलने लगता है और धीरे धीरे बालूमें अन्तर्धान होती सी उनकी मिट्टीकी मोटी दीवारें बनी रहती हैं। वर्षाके नाममात्र होनेके कारण डेढ़ हजार साल बाद भी किज़िलकुमकी मरुभूमिने इन नगरोंकी ऐतिहासिक महत्वकी बहुत सी चीजोंको सुरक्षित रक्खा, जिनसे उस समयके मानव-जीवनपर बहुत प्रकाश पड़ता है। इन पुराने नगरोंकी पिछली १३-१४ सालोंकी खुदाईमें बहुतसे सिक्के और मूर्तियां ही नहीं, बल्कि चर्मपत्रपर लिखे कंग-भाषा के अभिलेख मिले हैं। अफ्रीग कालके आरंभिक समयके ध्वंसावशेषों—तोप्रककला, यक्केपर्सन और लघु-कवादकला—ने कितनी ही ऐतिहासिक महत्वकी चीजें दी हैं। कवादकलाके ध्वंसावशेषकी खुदाईसे ताल्स्तोफ़के सहायक पावलोफ़ने उसकी असली आकृतिका जो चित्र अंकित किया है,[१] उससे मालूम होता है, कि इस समय के ख्वारेज्मकी संस्कृति पिछड़ी नहीं कही जा सकती। यक्के-परसन[२] में एक पुराने अग्नि मंदिरका ध्वंसावशेष मिला है, जिससे प्राचीनकालकी जर्थुस्त्री अग्निशालाका परिचय मिलता है। तोप्रककलाके नगर को देखनेसे कुषाणकालीन नगरों का अच्छा ज्ञान होता है।

७. अफ्रीग संस्कृति (६—५ सदी)

अफ्रीग संस्कृतिके अवशेष बेर्कुत-कला तथा तेशिक-कलामें मिले हैं। ख्वारेज्मकी संस्कृति

---

[१] वेस्त० द्रे० १९४६ पृष्ठ० ८३;

[२] वहीं पृष्ठ ७७,

[३] वहीं ७३

अपने इसी रूपमें सबसे पहिले अरब विजेताओंके संपर्कमें आती है, लेकिन ख्वारेज्मका दुर्गम मार्ग सोग्द-विजयके बाद भी कितने ही समय तक अरबोंको अपने भीतर घुसने नहीं देता। इस्लामिक प्रभाव अंततः सामानी कालमें ही ख्वारेज्ममें पहुँच पाता है। दसवीं सदीके अंतमें ख्वारेज्मका प्रसिद्ध विद्वान् अबूरेहाँ अलबेरूनी पैदा हुआ। वह भारतकी विद्या और संस्कृतिका इतना सम्मान क्यों करता है? इसीलिए कि वह कंग और अफ़ीग संस्कृतिका उत्तराधिकारी था। अरबों और बादमें गजनवियोंके हाथमें पराधीन होनेके बाद भी उसे ख्वारेज्मके प्राचीन वैभवका स्मरण था। ११वीं शताब्दीके आरंभ में भारतके नगरों और वैभवपूर्ण देवालयोंको ध्वस्त होते देखकर उसे प्राग्-इस्लामिक ख्वारेज्म याद आता था।

स्रोत-ग्रंथ :

१. खोरेज्म्स्कया एक्स्पेदित्सिया १९३९ (स० प० तालस्तोफ़)
२. नोवियें मतेरिअली पो इस्तोरिइ कुल्तुरि द्रेव्नओ ख्वारेज्मा (स० प० ताल्स्तोफ़,
३. वेस्त० द्रे० इस्तोरि, १९४६ (१) पृ० ६०-१००
४. इस्तोरिया द्रेव्नओ वोस्तोका (व० व० स्त्रूवे, १९४१)
5. Greeks in Bactria and India (W. W. Tarn, Cambridge 1938)
6. Les Scythes (F. G. Bergrmann)

अध्याय ३

ग्रीक-वाख्त्री (३३०-१३० ई० पू०)

यद्यपि अलिकसुंदर ने गंगमेला (अरबेला) के युद्ध में ईरानियों की कमर तोड़ दी, तो भी अखामनी साम्राज्य को पूर्णतया विजय करने में उसे तीन साल (३३४–३३१ ई० पू०) लगाने पड़े। वह पर्शुपुरी और पसरगदै के भव्य नगरों की होली जलाकर अख्वतन की ओर होते दारयवहु (३) को पकड़ने के लिये उसका पीछा कर रहा था। इसी समय वाख्त्रिया का क्षत्रप-सेनापति वेस्सुस नामक एक राजवंशी पुरुष था। अभागा दारयवहु अपने भाईबंद के पास शरण लेने जा रहा था। वेस्सुस ने उसे भेंट दे अलिकसुंदर का कृपापात्र बनना चाहा। वह शाह को बांधकर एक ढंके रथ पर बैठा अखबतन की ओर चला। उस समय अलिकसुंदर कास्पियन के किनारे पहुँचा था। जब उसे खबर लगी, तो वह इस कारवां की ओर दौड़ पड़ा। रथ धीरे-धीरे चल रहा था, इसलिये वेस्सुस् ने दारयवहु को घोड़े पर चढ़ाकर जल्दी ले जाना चाहा। शाह ने उसकी बात मानने से इन्कार कर दिया। वेस्सुस् ने आखिर में उसे घायल करके मरता छोड़ दिया। मरने से कुछ ही क्षण पहले अलिकसुंदर वहां पहुँचा। उसने अपने शत्रु के दुर्भाग्य पर आंसू बहाया, और उसके शरीर को मोमियायी बना बड़े सम्मान-प्रदर्शन के साथ पर्शुपुरी में दफनाया। वेस्सुस् ने बाख्त्रिया लौट कर अर्तक्षथ्र चतुर्थ के नाम से अपने को प्राची का शाह घोषित कर चार वर्षों तक (३३३–३२९ ई० पू०) शासन किया।

१. अलिकसुंदर (३३४-२३ ई०पू०)

अलिकसुंदर ने क्रमशः आजकल के खुरासान, सीस्तान, बिलोचिस्तान, कंधार और काबुलिस्तान को जीता। काबुल से ३२९ ई० पू० में वह अन्दराप पर चढ़ा। फिर २५०० सवारों के साथ जा उसने ओरनो (गोरी या खुल्म) और बाख्तर (बलख) को ले लिया। बेस्सुस् के विश्वासघात से बाख्त्री लोग इतने चिढ़े हुए थे, कि उन्होंने उसका साथ छोड़ दिया। उसने वक्षु पार भागकर नदी की नौकायें नष्ट कर दीं, कि अलिकसुंदर पार न हो सके, लेकिन यवनोंने चमड़े की मशकों और बोरों में पुवाल भर कर उन्हें नावों की तरह इस्तेमाल किया और फिर अपने शत्रु का पीछा किया। बेस्सुस् ने अपने को बिल्कुल कायर साबित किया। पहले सोग्दीय नेता स्पितामा उसका प्रधान सहायक था, लेकिन जब उसकी कायरता देखी, तो उसे बांधकर

---

[1]Histoire Ancinne des Peoples de l'orient (G. Maspero) pp. 759-61
इस्तोरिया द्रेव्नेओ वोस्तोका (व० व० स्त्रूवे) पृ० ३८७-३८८

अलिकसुंदर के पास ले गया। अलिकसुंदर ने इस विश्वासघाती को दंड देने के लिये ईरानियों के पास अखबतन भेज दिया, जहां उसे कतल कर दिया गया।

अलिकसुंदर की विजयिनी सेना वक्षु के दाहिने तट से आगे बढ़ती गई। स्पितामा के भक्ति दिखलाने पर भी जब सोग्दों को यवनों की बुरी नीयत का पता लगा, तो उन्होंने भी तलवार म्यान से निकाल ली। अलिकसुंदर ने अपने घोर पशुरूपका परिचय दिया और आसपास के इलाकों को लूटमार कर बर्बाद कर दिया। ग्रीक सेना मरकंदा (समरकंद) को जीतती यक्सर्त (सिरदरिया) के किनारे पहुँची। उन्हें युरोप से ही मालूम था, कि शकों के देश में तनाई (दोन) नामक बड़ी नदी है। यहां उन्हें सोग्द से उत्तर शकों की भूमि का पता लगा, तो उन्होंने यक्सर्तको भी तनाई समझ लिया। सिरदरिया के तट पर शायद खोजन्द (वर्तमान लेनिनाबाद) के पास उसने अलिकसुंदरिया के नामसे नगर बसाना चाहा। सोग्दियों ने इसे अपनी चिर-दासताकी बेड़ी समझकर भीषण विद्रोह कर दिया, जिसमें वाह्लीक (बाख्तरी) भी उनके सहायक हुए। थोड़े ही दिनोंमें लोगोंने कुरवपुरी (किरोपोलिस) और दूसरी जगहकी ग्रीक छावनियोंपर अधिकार कर लिया, लेकिन अलिकसुंदरने बड़ी क्रूरता दिखलाते हुए कुछ ही दिनोंमें विद्रोहको दबा दिया। इसी समय उसने सुना, कि यक्सर्तके पार शक लोग आक्रमण करनेके लिये इकट्ठा हो रहे हैं और मरकंदाकी ग्रीक छावनीको स्पितामाने घेर लिया है। उसने एक बड़ी सेना मरकंदाके उद्धारके लिये भेजी और स्वयं यक्सर्त नदीके तटपर जा १७ दिनोंमें अलिकसुन्दरिया नगरी बसाई। नगरीका घेरा ६० स्तदिया (१२००० या ६.८२ मील) था। उस समय अलिकसुंदर शत्रुओंसे घिरा था, बीमारीने उसे दुर्बल बना दिया था, लेकिन तो भी उसने हिम्मत नहीं छोड़ी और नदी पार होकर शकोंसे लड़ना चाहा, किंतु ग्रीक सेना नदी पार जानेके लिये तैयार नहीं हुई। इसीलिये नदीके बायें तटपर अलिकसुन्दरिया नामक नये नगरको बसानेकी अवश्यकता पड़ी। नगरके बस जानेपर बेड़ेसे नदी पार हो ग्रीक सेनाने शकोंको पूर्ण पराजय दी और उन्होंने दूत भेजकर अधीनता स्वीकार की। ये शक कंग और वू-सुन रहे होंगे—इस समय फर्गाना और ताशकन्द इलाकेमें शकोंकी आबादी थी।

मरकंदाके उद्धारके लिये जो सेना भेजी गई थी, उसे स्पितामाने पोलितिमेतस् (बहु-रत्न) उपत्यकामें नष्ट कर दिया। खबर मिलते ही अलिकसुन्दर दौड़ा और चार दिनमें मरकंदा (समरकंद) पहुंच गया। स्पितामा बाख्तरकी ओर भगा। अलिकसुन्दरने खिसियानी बिल्ली की तरह सारे सोग्द देशको बर्बाद कर दिया। स्पितामाका पीछा करते हुए जारिअस्पा (हजारास्प, बैकंद) में उसने ई० पू० ३२९-३२८ का जाड़ा बिताया। स्पितामा के रक्षक ख्वारेज्मके शक्तिशाली कंग थे, इसलिये उसको परास्त करना आसान नहीं था। वसंतमें १६००० नई ग्रीक सेनाकी कुमक अलिकसुन्दरके पास पहुंच गई, जिसकी मददसे उसने ३२८ ई० पू० के वसंतमें मर्गियाना (मेर्व) प्रदेशको जीता। मध्यएसियामें अलिकसुन्दरको दुर्धर्ष शत्रुओंसे मुकाबला पड़ा था। पेत्रा-ओक्सियाना (मशहदसे उत्तर-पूरब कलानादरी,) इतना सुदृढ़ साबित हुआ कि उसे अलिकसुन्दर दो साल तक सर नहीं कर सका। यहांका सोग्दीय सेनापति अरिमज उसके लिये लोहेका चना साबित हुआ। अंतमें इस वीर दुर्गपालने आत्मसमर्पण किया। अलिकसुंदर वीरोंका कितना सम्मान करता था, इसका पता उसने अरिमजको नहीं बल्कि उसके संबंधियों तथा दूसरे प्रधान सरदारोंको दारपर खिंचवा करके दिया। अलिकसुंदरकी रानी रोक्सानाको कोई कोई

२०. अलिकसुन्दर का साम्राज्य (३२३ ई० पू०)

इतिहासकार दारयबहुकी कन्या बतलाते हैं और किसी किसीका कहना है कि वह सोग्दीय सामन्त ओक्सार्तकी दुहिता थी, जिसे यहींपर अलिकसुंदरने पाया। मरग्याना (मेर्व) नगरके दक्षिणमें उसने दो छावनिया या दुर्ग बनाकर वहां अपनी सेना रक्खी। शायद यह छावनियां सरक्स (हरी-रुदके किनारे) और मेरुचक (मुर्गाब तटपर) में थीं।

इस विजयके बाद अलिकसुंदर बाख्त्रिया पहुंचा। वहां उसने चार यवन छावनियां स्थापित कीं, जो संभवतः मेमना, अंदकुई, शाबूरगान और सरीपुलमें थीं। वहांसे वह फिर मरकंदा लौट आया। स्पितामा अब भी बहादुरीसे लड़ रहा था, लेकिन धीरे धीरे यवनोंका पल्ला भारी हो रहा था। अलिकसुंदर भी अपने शत्रुको न पाकर देशवासियोंसे बदला ले रहा था, इसलिए घुमन्तुओंने स्पितामाका सिर काटकर अलिकसुंदरके पास भेज दिया। ३२८-३२७ ई० पू० के जाड़ोंको अलिकसुंदर नौतकामें बिता रहा था। इसी समय उसे अपने वीर तथा विश्वासपात्र सेनापति क्लेइतकी हत्याकी खबर मिली। ख्वारेज्मके सिवाय अलिकसुंदर सारे पश्चिम मध्य-एसिया (यक्सर्तके दक्षिण) को जीत चुका था। अब उसका ख्याल भारत-विजयके लिये हुआ। ३२७ ई० के वसंतमें भारतकी ओर प्रयाण करते समय उसके साथ १०००० पैदल और ३०००सवार सेना थी। गंधार-विजय करते व्यास तटपर वह नंदसाम्राज्यके पास पहुंच रहा था, जब कि उसकी सेनाने आगे बढ़नेसे इन्कार कर दिया और ३२६ ई० पू० में उसे वहांसे लौटना पड़ा। उसने सेनाके एक भागको समूद्रपथसे बाबुल भेजा, और दूसरेको साथ लिये स्थल मार्गसे लौटा। ३२४ ई० पू० में वह ओपिस (बगदादके पास) पहुंचा। यूनानी वैसे भी अलिकसुंदरके शाहाना ठाटको पसंद नहीं करते थे, । पूर्वी लोगोंको यूनानियोंके बराबरका स्थान देनेसे वह और असन्तुष्ट हो गये। यहां सभी यूनानियोंने पंचायत कर घर जानेकी मांग पेश की। अलिकसुंदर सरगनोंको उसी समय प्राणदंड दिलवा सेनाको खूब फटकार कर महलमें चला गया। अब उसने खुलकर ईरानियोंको शरीररक्षक, दरबारी तथा दूसरे बड़े बड़े पद देने शुरू किये। यूनानियोंने अन्तमें उससे क्षमा मांगी। अलिकसुंदर फिर विजययात्रा की धुनमें लगा, किंतु ३२३ ई० पू० में जब वह बबेरु (बाबुल) में पहुंचा, तो बीमारीने धर दबाया और ३३ वर्षकी उमरमें उसका देहांत हो गया।

अलिकसुंदरकी मृत्युके समय बाख्तर और सोग्दका यवन राज्यपाल (स्त्रतेगोस) अमिन्तस था। मृत्युकी खबर बाख्तर पहुंची, तो यवन-सेनाने विद्रोह कर दिया, मगर उसे जल्दी दबा दिया गया। अमिन्तस्की जगह फिलिप (एलिमेयसीय) साल भर राज्यपाल रहा। फिर उसे पर्थियाका राज्यपाल बनाकर भेज दिया गया और उसकी जगह स्तपनोर आया, जिसने २१ साल (३२१-३०१ ई० पू०) तक बाख्तर-सोग्दका शासन किया।

२. सेल्युक १ (३१२-२८१ ई० पू०)

अलिकसुंदरकी मृत्यु (३२३ ई० पू०) के होते ही विशाल ग्रीक साम्राज्यके बंटवारेके लिये उसके सेनापतियोंमें ४२ वर्ष (३२३-२८१ ई० पू०) व्यापी संघर्ष छिड़ गया। अलिकसुंदरने अपने सेनापति सेल्युकत्सलूकको सिरिया (शाम), बबेरु और पूर्वी देशोंका शासक बनाया था, जो अलिकसुंदरके मरनेके बाद उसीके हाथमें रहे। अलिकसुंदरके स्थानपर उसके भाई अलिकसुंदर (२) को सिंहासनपर बैठाया गया। वह ३२३ ई० पू० से ३१२ ई० पू० तक सेनापतियोंकी प्रति-

द्वन्द्वितामें नाममात्रका शासक रहा। ३१२ ई० पू० के बाद तो दूसरोंकी तरह सेल्युक बिल्कुल स्वतंत्र शासक हो गया। अन्तिगोनकी सहायतासे उसने अपने पहलेके शासित प्रदेशमें सूसियानाको भी मिला लिया। अन्तिगोनसे झगड़ा होनेपर सेल्युकसको ३१६ ई० पू० में मिस्र भाग जाना पड़ा, लेकिन चार वर्ष बाद (३१२ ई० पू० में) वह फिर बाबुलका स्वामी बन गया। इस सफलताके उपलक्ष्यमें तभी (३१२ ई० पू०) उसने सेल्युकीय संवत चलाया। तो भी अभी तक उसने सेनापतिकी उपाधि ही रक्खी और राजा (वसीलेउस्) की उपाधि ३०६ ई० पू० में ही धारण की। बख्त्रिया और सोग्दको उसने फिरसे जीतकर अपने राज्यमें मिलाया।अलिकसुंदरकी मृत्युके बाद जो अव्यवस्था हुई, उसमें पंजाब और काबुल स्वतंत्र हो गये। सेल्युकसने फिरसे इस भागको जीतना चाहा, जिसके कारण ३०५ ई० पू० में चंद्रगुप्त मौर्यसे उसकी मुठभेड़ हो गई जिसमें "विजेता, राजा, सेल्युकस" को बुरी तरहसे हारना पड़ा। सिंधु और परोपनिसदै (हिंदूकुश) के बीचका सारा प्रदेश चंद्रगुप्तने ले लिया और सेल्युकसको अपनी लड़की देकर भीषण पराजयपर मोहर लगानी पड़ी। यवन विजेताओं की यह पहली भीषण पराजय थी। २८० ई० पू० में सेल्युकस अपने एक अफसरके हाथ मारा गया और उसका उत्तराधिकारी अंतियोक प्रथम (२८१-६२ ई० पू०) हुआ। सेल्युकसका तीसरा उत्तराधिकारी उसका पौत्र अंतियोक द्वितीय (२६२-३४७ ई० पू०) था। सेल्युकी वंशकी राजधानी दजला (तिग्रा)नदीके किनारे थी, जिसे सेल्युकसने अपने नामपर बसाया था। यह पीछे सासानी (२२६-६४२ ई०) राजधानी तस्पोन का एक भाग रही।

३. ग्रीको-बाख्तरी (२४५-१३० ई० पू०)

अंतियोक (२) के शासनकाल (२६२-२४७ ई० पू०) में बाख्तर सहस्रनगरीका राज्यपाल दियोदोत था, जिसने केंद्रीय शक्तिको क्षीण देखते हुए २५६ ई० पू० में धीरे धीरे स्वतंत्र होना चाहा। मगर उसके सिक्कोंसे साबित नहीं होता, कि उसने वसेलियुसकी पदवी धारण की। उसके नामके सिक्के वस्तुतः उसके पुत्र दिवोदोत (२) (२३०-२२५ ई० पू०) ने चलाये।

तुलनात्मक बाख्तरी ग्रीक वंश

ई० पू०	भारत	चीन	दक्षिणापथ	उतरापथ
	(मौर्य)			
२५०	अशोक २७२-२३२	स्याउवेन् वेङ्	दिवोदात I २४५-२३०	१. तूमन २५०
२३०	दशरथ २२४		दिवोदात II २३०-२२५	
			एउथुदिम २२५-१८९	
२१०		(हान् वंश)		
		काउ-त्ती २०६		
१९०	वृहद्रथ १९१-१८५	हुइ-ति १९४	देमित्रि १८९-१६७	
	(शुंग) पुष्य मित्र १८५-१४८			
		वेङ् ती १७९		२. माउदुन १८३
१७०			एउक्रतिद १६७-१५९	३. चीयू १६२
			(मेनान्दर १६६-१४५)	४. चुनचेन १६२-१२७
		चिङ् ती १५६	हेलियोकल १५९-१३०	
१५०	अग्निमित्र १४८-१४०			
		बूती १४०		
१३०	वसुमित्र १२३-११३		अंतियालिकद १३०	५. इशीज्या १२७-१७
				६. अच्वी ११७-१०७
११०				७. चान्सीलू १०७-१०४
				८. शूतीहू १०४-१०३
				९. शूलीहु १०३-९८
				१०. हूलीहू ९८-८७
९०	देवभूति ८२-८७ (कण्व)	चाउनी ८६	(मोग ७७-५८)	हूहान् ये ८२-५२
७०	वसुदेव ७२—	स्वेन्-ती ७३	(मोग ७७-५८)	

१. दिवोदोत[1] प्रथम (२४५-२३० ई० पू०)

इसीको ग्रीको-बाख्तरी राज्यका संस्थापक माना जाता है, लेकिन इसमें संदेह है, कि दिवोदोतने अपनेको राजा सेल्युक (२) (२४७-८० ई० पू०) से स्वतंत्र राजा (बसीलेउस्) घोषित किया। इसका सिक्का मिलता है, लेकिन कुछ विद्वानोंका मत है, कि उसे इसके पुत्र दिवोदोत (२) ने बापके नामसे ढलवाया। दिवोदोत केवल सेल्यूकीय राज्यपाल (स्त्रतेगो) ही नहीं था, बल्कि अन्तियोक (२) (२६२-४७ ई० पू०) की पुत्री भी इसे व्याही थी, जिससे हुई पुत्रीको एउथुदिमने व्याहा था। पीछे बेटा-दामादका जो संघर्ष हुआ, उसमें दामादको सफलता मिली। अन्तियोक (२) के मरनेके बाद उसका पुत्र सेल्यूक (२) राजा बना। उसने अपनी बेटी दिवोदोत (१) के पुत्र दिवोदोत (२) को दी। बहन-बेटी देकर शक्तिशाली सामन्तोंको अपने पक्षमें करना कोई नई नीति नहीं है।

जिस वक्त यह ग्रीको-बाख्तरी नया वंश स्थापित हो रहा था, उसी समय शकोंकी एक शाखा दहै (ता-हि-या) भी अपना राज्य स्थापित करनेके प्रयत्नमें थी, जिसमें कंगोंका पूरा सहयोग था, यह हम कह आये हैं। मूलतः दहै यक्सर्त नदी (सिरदरिया)के पासके रहनेवाले थे। पीछे इन्होंने कास्पियन समुद्रके पास तक फैली दारयबहुकी पुरानी क्षत्रपी पार्थिया पर अधिकार कर लिया, इसीलिए आगे चलकर यह पार्थिव (पार्थियन) नामसे प्रसिद्ध हुए। २५६ ई० पू० में एक प्रदेशके शासक होनेके बाद धीरे धीरे १४१ ई० पू०में मिथ्रदात (१)ने सेल्युकीय वंशको खतम कर दिया। पार्थियोंने प्रायः ४०० वर्षों (२४६ ई० पू०—२२६ ई०) तक ईरान पर शासन किया। इस वंशका स्थापक अर्शक (१) (२४६-२४७ ई० पू०)दिवोदोत(१) (२४५-२३० ई० पू०) का समकालीन था। उसके बाद अर्शक (२) तीरदात (२४७-२१४ ई० पू०) शासक हुआ, जो कि दिवोदोत (२) (२३०-२२५ ई०पू०) और एउथुदिम (२२५-१८६ई० पू०) का समकालीन था। सेल्यूकीय सम्राट् यह आशा रखता था, कि दिवोदोत (१) तीरदातके पक्षमें नहीं जायेगा। दिवोदोत (१) ने ऐसा ही किया भी। पार्थिव वंशमें आगे अर्शक (३), अर्तबान (२१४-१८१ ई० पू०), फ्रात (१) (१८१-१७० ई० पू०) के बाद ५वां राजा मिथ्रदात (१) (१७०-१३८ ई० पू०) बड़ा मनस्वी शासक था, इसीने सेल्युकीय वंशका उच्छेद किया। तबसे पार्थिव वंश ईरान और मसोपोतामियाका शासक तथा रोम और शक साम्राज्यका प्रतिद्वंद्वी बना।

२. दिवोदोत[2] द्वितीय (२३०-२२५ ई० पू०)

प्रथम दिवोदोतका पुत्र दिवोदोत (२) पिताका प्रतिनिधि बनकर सेल्युकीय दर्बारमें गया। सेल्युक (२) उससे इतना प्रभावित हुआ, कि उसने अपनी लड़की उसे व्याह दी। लेकिन दिवोदोत (२) अपने पिताके राज्यको अधिक दिनों तक नहीं संभाल सका। उसका बहनोई एउथुदिम उसका भारी प्रतिद्वंद्वी था। सेल्युक (२) ने अपनी स्थिति मजबूत करनेके लिये जहां

---

[1] Greeks in Bactria and India (W. W. Tarn)

[2] वहीं; पाम्यात्निकि ग्रेको-बाकृत्रिइस्कओ इस्कुस्स्त्वा (क० व त्रेवर) पृ० ५-७

एक लड़की दिवोदोत (२) को दी थी, वहां दूसरी दो लड़कियां पोन्त और कपादोकियाके राजाओंको दे रक्खी थीं। इन दोनों दामादोंसे वह आशा करता था, कि वह पश्चिमके सीमांतकी रक्षामें सहायता करेंगे। अलिकसुन्दरके साम्राज्यके भिन्न-भिन्न भागोंके उत्तराधिकारी एक दूसरेके राज्यकी छीना-झपटी करते ही रहते थे। मिस्रके राजा तालमी (तुरमाय) (३) ने २४६ ई० पू० में राजधानी सेलूकियाको छीन लिया और सेल्युक (२) को भाग जाना पड़ा। ऐसी डांवाडोल स्थितिमें बड़े सावधान रहनेकी अवश्यकता थी। दिवोदोत (१) ने उत्तरके दहै को मदद नहीं दी, लेकिन उसके पुत्रने इस नीतिको छोड़ दिया और सेल्यूकीय साम्राज्यपर आक्रमण करनेवाले तीरदातके साथ मेल कर लिया। सेल्यूकीय विधवा रानीने अपने पक्षको मजबूत करनेके लिये अपने प्रभावशाली स्त्रतेगस (क्षत्रप) एउथुदिमको अपनी कन्या व्याह दी। एउथुदिमने दिवोदोत (२) को मार डाला, जिसपर अन्तियोक (३) उससे बहुत प्रसन्न हुआ।

३. एउथुदिम[1] (२२५-१८९ ई० पू०)

एउथूदिम और उसके पुत्र दिमित्रियका शासन ग्रीको-बाख्तरी राजवंशके बड़े वैभवका समय है। उस समय राज्यमें बाख्त्रिया, सोग्दियाना, मर्गियाना, फर्गाना, द्रंगियाना, अरखोसिया, परोपनिसदैके प्रदेश तथा भारतके कितने ही भाग थे। आजकल ये प्रदेश ताजिकिस्तान, उज्बेकिस्तान, तुर्कमानिस्तान, किर्गिज़िस्तान और कजाकस्तानके सोवियत गणराज्यों, सीस्तान (पूर्वी ईरान), अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारतमें हैं। एउथुदिम मैन्दर नदीके तटपर अवस्थित मग्नेसिया महानगरीके युद्धमें १८९ ई० पू० में मारा गया। उसके मारे जानेके बाद बाख्त्रियाका राज्य दिवोदोत (२) के हाथमें आया। उसने भी अपने संरक्षक सेल्युकीय वंशके साथ वही बर्ताव किया, जो कि उसके मृत प्रतिपक्षीने किया था। उत्तरके घुमन्तू दाहै से सेल्यूकीय राज्यको बड़ा खतरा था, जिससे रक्षा पानेके लिये एउथूदिमको प्रसन्न रखना आवश्यक था, लेकिन एउथुदिम अपने प्राप्त राज्यसे संतुष्ट रहनेवाला नहीं था। उसकी इस महत्वाकांक्षासे अन्तियोक (३) भी अपरिचित नहीं था। उसने इसे रोकनेके लिए २०८ ई० पू० में एउथुदिमपर आक्रमण किया। इस समय बाख्त्रिया राज्यकी सीमा पूर्वमें हिंदूकुश और पश्चिममें निम्न आर्यू (हरीरूद) नदी तक थी। अन्तियोकके आक्रमणको रोकनेके लिए एउथुदिम १०००० सवारोंके साथ आर्यू नदीपर गया, किंतु उसे हार खाकर लौट आना पड़ा। इसके बाद अन्तियोकसे एकके बाद एक हार खाते अंतमें उसे बाख्तर (बलख) की अपनी दुर्गबद्ध राजधानीमें शरण लेनी पड़ी। अन्तियोक (३) ने उसे दो साल तक घेरे रक्खा। दुर्ग बहुत दृढ़ था, तो भी अधिक काल तक डटे रहना संभव नहीं था। एउथुदिमने जब उत्तरके घुमन्तुओं (कंगों) को बुलानेकी धमकी दी, तब अन्तियोक उससे संधि करके लौट गया। एउथुदिमने कुछ हाथी प्रदान किये। अन्तियोकने अपने प्रतिद्वन्द्वीके पुत्र दिमित्रियको अपनी कन्या देनेका वचन दिया। अन्तियोकके लौट जानेपर एउथुदिमने सेना और कोश बढ़ाते अपने राज्यको शक्तिशाली बनाना चाहा। पश्चिममें अन्तियोक (३) के होनेसे वह उधर बढ़ नहीं सकता था। उत्तरमें उसका राज्य सोग्द

---

[1] Greeks in Bactria

और फर्गाना तक था। (यही फर्गानाकी उपत्यका पीछे बाबरकी जन्मभूमि हुई, जिसने १५वीं सदीके अन्तमें वहां की जो समृद्धि देखी थी, उसे भारतका सम्राट् होनेके बाद भी वह भूल नहीं सकता था।) फर्गाना उपत्यका फलों और खेतीके लिए बहुत प्रसिद्ध थी, लेकिन इससे भी अधिक उसकी समृद्धिका कारण चीनका रेशमपथ था, जो कि इसके भीतरसे गुजरता था।

बाख्त्रिया (वाह्लीक) आजकी तरहका मरुकांतार जैसा देश नहीं था। अपनी उर्वरताके कारण इसे "पोलितिमेतस" (बहुमूल्यवान्) कहा जाता था। अपनी हजारों नहरों से सहस्रभुज और हजारों नगरोंके कारण सहस्र नगर भी इसका नाम था। राज्यके भीतर बदख्शांकी लाल (पद्मराग)की खानें, खुरासानमें फीरोजेकी खानें और यमगानमें वैडूर्य जैसी मूल्यवान् खानें थीं। बदख्शांमें तांबा और लोहा भी निकलता था।

चीनसे पश्चिमकी ओर आनेवाला रेशमपथ इसी राज्यसे होकर गुजरता था, इसके कारण भी एउथुदिम बहुत संपत्तिशाली था। रेशमपथ तरिम उपत्यकासे पामीर पार करनेके बाद इकिश्तामसे एक रास्ता तेरक डांडा पार हो फर्गाना पहुंचता, और दूसरा अलई उपत्यका होते बाख्त्रिया में। फर्गाना और बाख्त्रियाका स्वामी तरिम-उपत्यकाकी ओर जानेवाले रास्तेका भी स्वामी था। हां, तब भी एक रास्ता तरिम-इस्सिकुल (सरोवर) रह जाता था, जिसके स्वामी वू-सुन (सेरेस) थे।

एउथुदिमके समय अभी हूण अपनी पुरानी भूमिमें थे, यूची शक भी कन्सूकी अपनी जन्मभूमिमें चीनके पड़ोसी थे। इस रास्ते होने वाला चीनका व्यापार आयका भारी स्रोत था। अफगानिस्तान (कपिशा-उपत्यका) होकर भारतका व्यापार भी बाख्तरसे बहुत होता था। चीनी दूतने १२८ ई० पू० में जहां भारतकी बहुत सी पण्य वस्तुयें वहाँ देखीं, वहां भारतके रास्ते आई चीनकी भी कितनी ही चीजें पाईं।

व्यापारके इतने विकाससे एउथुतिम सोनेके महत्वको समझता था। सोना प्राप्त करनेकी ओर उसका ध्यान गया। उसके राज्यके उत्तर-पूरबमें वूसुन (शक) रहते थे, जिनका प्रदेश अल्ताई तक फैला हुआ था। अल्ताई स्वयं अपने नामके अनुसार सुवर्णगिरि है। उसके उत्तरमें पुरानी सोनेकी खानोंमें आज भी काम होता है। उनके और उत्तरमें कई खानें हैं, जिनमें साइ-बेरियामें लेनाकी सोनेकी खानें दुनियामें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। पहले अल्ताई और साइबेरियाकी खानोंका सोना ही मध्य-एसिया, भारत और ईरानमें जाता था। लेकिन, दारयबहु (५२१-४८५ ई० पू०) के समय और उसके बादसे वहांसे सोना आना बंद हो गया। एउथुदिमने चाहा, कि तीन शताब्दियोंसे रुके इस सुवर्णपथको फिरसे खोला जाय, जिसमें रेशमपथकी तरह सुवर्णपथ भी बाख्त्रियाकी समृद्धिको और बढ़ा सके। सिबेरियाके सुवर्णपथके ऊपर आकर किसी घुमन्तू जातिने रास्तेको काट दिया। ऐसी जाति हूणोंके कबीले ही हो सकते थे, जिनका संबंध चीनसे अधिक घनिष्ट था। उन्होंने सिबेरियाके सोनेकी धाराको उधर फेर दिया। ई० पू० द्वितीय सहस्राब्दीमें लेना नहीं भी हो, तो भी अल्ताई और कजाकस्तानकी दूसरी सोनेकी खानोंमें शकोंके पूर्वज काम करते थे, लेकिन, अब शक-वंशज वूसुन—जो बिचवई होकर सोनेको मध्य-एसिया पहुंचा सकते थे—हूणोंके हस्तक्षेपके कारण असमर्थ थे। एउथुदिमने सोचा, यदि अपने इन उत्तर-पूर्वी पड़ोसियोंको अधीन कर लिया जाय, तो सोनेका रास्ता खुल जायेगा। रोमन इतिहासकार प्लीनीने

सिंहलवालोंसे सुनकर सेरेस (वूसुन) लोगोंके बारेमें लिखा है—"यह बडी कद्दावर जाति है। इनके बाल लाल और आंखें नीली होती हैं। यह हेमोदो (हिमवान्) पर्वतके उत्तरमें रहते हैं।" पीछे चीनियोंने भी इन्हें रक्त-केश और नील-नेत्र लिखा है। एउथूदिम फर्गानासे त्यानशान्की पहाड़ियोंमें घुसकर इस्सिकुल सरोवर तक गया, किंतु स्वर्णपथको खोल नहीं सका।

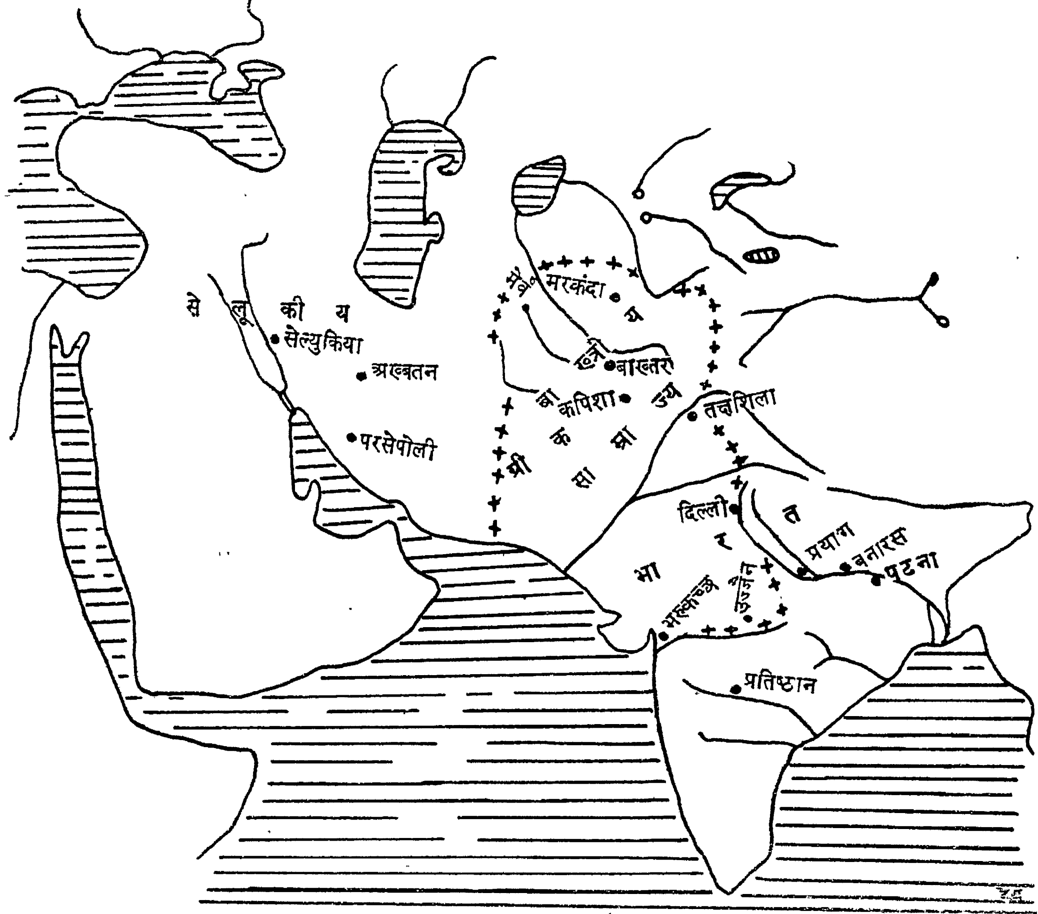
सेरेस् (वूसुन) स्वयं सुवर्णके उद्गमके साथ संबंध नहीं रखते थे। येनीसेईके ऊपरी भाग तथा दूसरी जगहोंकी सोनेकी खानोंके स्वामी हूण थे। उत्तरके घुमन्तुओंका विजय करना सदा टेढ़ी खीर थी, इसलिए एउथूदिमको खाली हाथ लौटना पड़ा। यह अभियान २०६ ई० पू० में हुआ था। यह याद रखनेकी बात है, कि ग्रीको-बाख्तरी राजाओंके सिक्के सोनेके नहीं थे। उनके बड़े ही सुन्दर तेत्राद्राख्म चांदीके होते थे। मुद्रामें सुंदर रूप अंकित करना एउथूदिमके समय जहां पहुंचा, वहां फिर नहीं पहुंच सका। २०६ ई० पू० के बाद उत्तरसे लौटकर उसने पार्थियोंको परास्त कर उनके कुछ प्रदेश छीन लिये। मर्गियाना और निम्न आर्यू (हरी रुद) उपत्यकाका उपराज उसने अपने द्वितीय पुत्र अन्तिमाखूको बनाया, मर्ग (मेर्व) उसकी राजधानी बनी। अन्तिमाखू जिस तरह बापका उपराज रहा, उसी तरह अपने बड़े भाई दिमित्रिका भी था। सेल्युकियोंमें गद्दीके उत्तराधिकारीको उपराज कहते थे। उपराज बनानेकी यह प्रथा ग्रीको-वाख्त्रियोंने भी स्वीकार की। हमें मालूम है, कि हूणों और दूसरे घुमन्तू कबीलोंमें भी प्रदेशोंके राज्यपालोंको उपराजकी अधिक सम्मानित उपाधि दी जाती थी। दाहै (पार्थियों) में भी यह प्रथा थी। शायद उनसे ही एउथूदिमने इस को लिया। उपराज अपने सिक्के भी चलाते थे। बहुधा उनकी साधारण प्रजाको यह मालूम नहीं होता था, कि हमारे राजाके ऊपर और भी कोई राजा है। इस तरहका भ्रम ग्रीको-बाख्त्री राजाओंके ही संबंधमें नहीं, बल्कि यूची, कुषाण, एफ़्ताल (श्वेतहूण) और तुर्कोंके बारेमें भी देखा जाता है। हम यह निश्चित तौरसे नहीं बतला सकते, कि तोरमान अधिराज था, या उपराज। अन्तिमाखूने अपने सिक्कोंपर 'थेव' खुदवाया। थेव या देव राजाको कहते हैं, यह हमें संस्कृत साहित्यमें मालूम है। पार्थिव राजा अर्तबानु (२१४-२८१ ई० पू०) अपनेको थेव-पातुर (देवपुत्र) लिखता था।

इस कालमें उत्तरी घुमन्तू फिर जोर पकड़ने लगे। अलिकसुन्दरके समय बाख्त्रिया और सोग्दके गांव-नगर खुले होते थे, लेकिन ग्रीको-बाख्त्रिय शासनके अंतमें, जब चाङक्यान् (१२८ ई० पू०) इस प्रदेशमें आया तो उसे समरकंद और बाख्तर जैसे महानगर ही दुर्गबद्ध नहीं मिले, बल्कि वहांके गांव भी प्राकार-बद्ध थे। उत्तरके घुमन्तूओंका बहुत डर जो था।

४. दिमित्रि (१८९-१६७ ई० पू०)

यह एउथूदिमका ज्येष्ट पुत्र था। इसके दूसरे भाई अन्तिमाखूके बारेमें कह चुके हैं। शायद अपोलोदोत भी इसका छोटा भाई था। बापके अपूर्ण कामको इसने पूरा करना चाहा। इसकी भारत में विजय-यात्रा हमारे इतिहासके लिए विशेष महत्व रखती है। समकालीन व्याकारणकार पतंजलिने "अरुणद् यवनः साकेतं" (यवनने अयोध्याको घेर लिया) कहते हुए दिमित्रिकी ओर ही इशारा किया। बाख्त्रियाके ग्रीक शासकोंका भारतसे घनिष्ठ संबंध था। सेल्युक (१) (३२३-२८१ ई० पू०) ने चंद्रगुप्तको पुत्री देकर जो संबंध स्थापित किया था, उसे उसके वंशजोंने भी

कायम रक्खा। सेल्युक (१) का राजदूत मेगस्थनी मौर्य-राजधानी (पाटलिपुत्र) में वर्षों रहा, और उसने भारतका जो वर्णन छोड़ा, उसका उपलब्ध भाग आज भी हमारे इतिहासकी ठोस सामग्री है। सेल्युक (१) के पांचवें उत्तराधिकारी अन्तियोक (३)—ने एउथूदिमको



२१. देमित्रिका ग्रीक साम्राज्य (१६७ ई० पू०)

दो साल (२०८-२०६ ई० पू०) तक बलखमें घेरे रक्खा, और स्वयं मौर्य राजा सुभगसेन से परोपनिसदै कपिशा-उपत्यकामें आकर मिला तथा अपनी वंशागत मित्रताको फिरसे दृढ़ किया।

(भारत-विजय[१] १७३-१६७ ई० पू०)

कुरव और दारयबहु (१) के सिंधु-विजयकी बात हम कह चुके हैं। जान पड़ता है, अर्त्तक्षथ्र (२) (४०४-३५८ ई० पू०) के समय सिंध और गंधार अखामनी राज्यसे निकल गये।

---

[१] Greeks in Bactria, पाश्चात्तिकि० पृ० ६

इसके बाद पंजाबमें छोटे-छोटे गणराज्य तबतक मौजूद रहे, जबतक कि अलिकसुन्दर कपिशा से पंजाबकी ओर बढ़ते व्यासके तट तक नहीं पहुँचा। अलिकसुन्दरकी विजययात्राका फल स्थायी नहीं हुआ। इसमें चंद्रगुप्त मौर्य (३२१-२९७ ई०पू०) भारी बाधक हुआ। अब मौर्यवंश खतम हो रहा था। अंतिम मौर्य राजा को मारकर सेनापति पुष्यमित्रने राज्य अपने हाथ में कर लिया। दिमित्रि उसी सेल्यूक के नाती का दामाद होने का अभिमान रखता था, जिसका संबंध मौर्य वंशसे भी था। अभी तक ग्रीक शासक स्थानीय लोगों से अलग रहकर अपना शासन करना चाहते थे। दिमित्रि ने स्थानीय सामन्तों को भी सहभागी बनाना चाहा। मौर्य वंश के उच्छेत्ता पुष्यमित्र के विरुद्ध जो भाव देश में फैला हुआ था, उसने उससे लाभ उठाना चाहा और १८३—१८२ ई० पू० में हिन्दूकुश को पार किया। अन्तिमाखू अपने प्रदेश का उपराज था, दिमित्रिने अपने ज्येष्ठ पुत्र अेउथुदिम (२) को बाख्तर और सोग्दका शासन सौंपा, और अपने द्वितीय पुत्र दिमित्रि (२) छोटे भाई अपोलोदोत तथा सेनापति मेनान्दर के साथ भारत-विजय के लिये प्रस्थान किया। संभवतः परोपनिसदै (कपिशा) बाप के समय से ही उसके हाथ में था।

आगे बढ़ते गंधार (पेशावर और तक्षशिला) प्रदेश को विजय करना था। मौर्य साम्राज्य के उत्तरा-धिकारी पुष्यमित्र को अकंटक राज्य नहीं मिला था। कलिंगराज खारवेल उसके विरुद्ध पाटलि-पुत्र तक चढ़ आया और पुष्यमित्र को राजधानी छोड़कर मथुराकी ओर भागना पड़ा था। दक्षिण में शातवाहन भी उसके प्रतिद्वंदी थे। मौर्य साम्राज्य के पश्चिमी भाग को वह कभी अपने हाथ में नहीं कर सका। उस समय अभी दर्रा खैबर का रास्ता खुला नहीं था। इसके खोलनेवाले कुषाण थे, जिनके आने में अभी प्रायः दो शताब्दियों की देर थी। दिमित्रि को आलिकसुन्दरवाला रास्ता लेना पड़ा, जो कि कुनार-उपत्यका से होकर बाजोर, स्वात, बुनेर, युसुफजई और पेशावर होकर सिंधु तटपर पहुंचता था। सिंधु नदीके पश्चिम पुष्कलावती (आधुनिक चारसद्दा) एक प्रसिद्ध नगर था, जिसे ग्रीक राजाओंकी राजधानी बन-नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कश्मीर और गंधार अब तक बौद्ध देश बन चुके थे। तक्षशिलाका व्यापारिक और सांस्कृतिक गौरव अभी नष्ट नहीं हुआ था, बल्कि मौर्य उपराजकी राज-धानी रहनेसे उसका महत्व और भी बढ़ गया था। दिमित्रिने तक्षशिला में एक नये नगर की स्थापना की, जिसे आजकल सिरकपका ध्वंसावशेष कहते हैं। कपिशाका शासन उसने अपने पुत्र दिमित्रि (२) को दिया, शायद गंधार को भी उसीके हाथमें दिया। इसकी राजधानी अलक-सन्दारिया-कपिशा थी, जिसके ध्वंसावशेष आज भी काबुलसे थोड़ा पश्चिम कोहदामन-उपत्यकामें वेग्रामके नामसे मौजूद हैं। दिमित्रि के सिक्केपर उसका जो रूप अंकित है, उसमें शिरके ऊपर हाथीके सूंड़ और दांत जैसा मुकुट उसके भारत-विजेता होनेका सूचक है। उसने ही अपने सिक्के पर पहली बार ग्रीक भाषाके साथ प्राकृत भाषा और पश्चिमी भारतमें चालू खरोष्ठी लिपिको अपनाया। दिमित्रिने वर्तमान सिंध को जीता और वहांपर अपने नामकी नगरी बसाई, जिसे हमारे संस्कृत लेखकोंने दत्तामित्रि बना दिया। शायद इससे पहले वह वक्षुके किनारे भी अपने नामका नगर बसा चुका था, जो दिमित्रिसे तेरमिज बनकर आज भी मौजूद है। यवन सेना मेनान्दरके नेतृत्वमें गंधारसे सागल (स्यालकोट) लेते व्यास और सतलुज पार हो मथुरा पहुंची, वहांसे पंचालको लेते उसने साकेतको जा घेरा (अरुणद् यवनः साकेतं)। फिर जाकर राजधानी

पाटलिपुत्रपर भी आक्रमण किया। उधर दिमित्रिके भाई अपोलोदोतने सिंधके डेल्टा पाटलाको ले सौराष्ट्र-विजय किया, फिर भरुकक्षको अपनी राजधानी बना चित्तौड़के पास माध्यमिका नगरी को जा घेरा (अरुणद् यवनः माध्यमिकां)। शायद अपोलोदोतने उज्जैनको भी ले लिया। इस प्रकार दिमित्रिके दो सेनापतियोंमें मेनांदर पाटलिपुत्र तक विजय करनेमें सफल हुआ और अपोलोदोत अपनी विजय यात्रामें उज्जैन तक पहुंचा। दिमित्रि स्वयं तक्षशिलामें था। वह समझ रहा था, अब मैं फिर मौर्य साम्राज्यके वैभवको पुनर्जीवित कर सकता हूँ। अलिकसुन्दरके लिये—और वही बात अखामनी राजाओंके बारेमें भी है—वह इन्दु या हिंदु का अर्थ सिंधु-उपत्यकावाला देश समझते थे। ग्रीक राजाओंने उसे मौर्य साम्राज्यका पर्याय माना था। दिमित्रि जिस इन्दु या इन्दियाका राजा था, वह यक्सर्त नदी (सिरदरिया) से सौराष्ट्रके तट तक और ईरानी मरुभूमिसे पाटलिपुत्र तक फैली हुई थी। भारतमें दक्षिणी कश्मीर, पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार, मालवा, राजस्थान, उत्तरी गुजरात, काठियावाड़, कच्छ और सिंध उसके अधीन थे।

दिमित्रि केवल आक्रमण द्वारा धन जमा करनेके लिये नहीं आया था, बल्कि उसकी मनसा इस देशका स्थायी शासक बननेकी थी। मध्य-एसिया और मगध के बीचमें होनेसे तक्षशिलाको उसने अपनी राजधानी बनाया। प्रदेशोंमें उसके उपराज (राज्यपाल) शासन करते थे। उसका पुत्र अगथोकल परोपमिसदै (कपिशा) का उपराज था। इसने भारतके पुराने चौकोर (पंचमार्क) सिक्कोंकी नकलपर अपना सिक्का चलाया था, जिसमें ग्रीक लिपि और भाषाको बिल्कुल हटाकर केवल भारतीय (ब्राह्मी) लिपि और भारतीय भाषा (पाली) का प्रयोग किया। यही एकमात्र ग्रीक राजा है, जिसने अपने सिक्केका पूर्णतया भारतीकरण किया। उसके चौकोर सिक्केकी एक ओर मौर्य सिक्कोंकी तरह पर्वत बना रहता और दूसरी ओर पाषाण बंधनीके बीचमें खड़ा वृक्ष है, जो संभवतः बोधि वृक्षका संकेत है। साथ ही उसने अपने सिक्के पर "दिकइओस" (धार्मिक) लिखा है। "धम्मिको धम्मराजा" पालीमें एक प्राचीन प्रशंसावाचक शब्द है। कपिशा (परोपमिसदै) उस वक्त बौद्ध प्रधान देश था। अगथोकलके बड़े भाई तथा अपने तृतीय पुत्र पन्तलेओनको दिमित्रिने सीस्तान और अरखोसिया (बलोचिस्तान) का उपराज बनाया था, और अपने छोटे भाई अपोलोदोतको गंधारका, जो साथ ही अपोलोदोत भरुकच्छ (गुजरात) का भी शासक था। जान पड़ता है, पेशावर-तक्षशिलासे सिंध डेल्टा (पाटला) होते गुजरात तक इसके हाथमें था। एक समय इसने उज्जैनको भी ले लिया था, लेकिन जल्दी ही पुष्यमित्रने उसे खाली करवा लिया। झेलम (बितस्ता) नदीके पूरबमें मिनान्दरका शासन था। गर्गसंहितामें दिमित्रिके विजयका वर्णन करते हुए लिखा है—

ततः साकेतमाक्रम्य पंचालान् कुसुमध्वजम्।
यवना दुष्ट-विक्रांताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्।।

ग्रीक राजाओंके सुन्दर सिक्कोंमें दिमित्रिके पिताका सिक्का और भी सुन्दर माना जाता है।[१] अनुमान किया जाता है, कि इसके पिताके समयका कलाकार इस वक्त भी मौजूद था। इसके तेत्राद्राख्म चांदी के सिक्कोंमें एक ओर गजमुख-मुकुट धारण किये गंभीर-आकृति दिमित्रिका

[१] पम्यात्लिकि ग्रोको-बाक्त्रिइ इस्कओ इस्कुस्त्वा, फलक ३६

अर्धदेह है, और दूसरी ओर बायें हाथमें दण्ड और सिंह चर्म लिये दाहिने हाथ को कानके पास रखकर हेरकल खड़ा है। मूर्तिकी दाहिनी ओर "बसिलेउस्" अंकित है और दाहिनी तरफ पैरोंके पास "कं" तथा "दिमित्रिओस्" अंकित है। उसके भारत-विजयके उपलक्षमें निकाले सिक्कोंमें अंकित है "वसिलेउस् अनिकितोस् दिमित्रिओस्" (राजा अजेय दिमित्रि)। उसके तांबेके सिक्कों पर भारतका प्रतीक गजमुण्ड बना रहता है, और दूसरी तरफ "बसीलेउस् दिमित्रिओस्"। यह उल्लेखनीय बात है, कि यद्यपि ग्रीक राजाओंका शासन ईरान, वत्रेरु और मिश्रमें रहा, किंतु उन्होंने कहीं भी स्थानीय लिपि और भाषाका प्रयोग अपने सिक्कोंपर नहीं किया। भारतका संपर्क होते ही मुद्रा-नीतिमें यह परिवर्तन विशेष महत्व रखता है। दिमित्रि (२) ने अपने पिता दिमित्रि (१) के सिक्कोंपर ग्रीक अभिलेखके साथ खरोष्ट्री लिपिमें पाली भी लिखवाया।

ग्रीक और भारतीय दोनों उल्लिखित परंपराओंसे पता लगता है, कि पाटलिपुत्र और उज्जैन तक एक बार पहुंचकर, मथुरा और भरोच तक अपनी स्थिति को मजबूत करके भी स्वदेश पर संकट उपस्थित होनेके कारण दिमित्रिको भारतसे जाना पड़ा। जिस शत्रुके कारण दिमित्रि (धर्ममित्र) को भारत छोड़कर बाख्त्रियाकी ओर दौड़ना पड़ा, वह था सेल्यूकीय जे-नरल एउक्रतिद। इसकी मां लओदिका सेल्यूक (२) (२४७ ई० पू०) और सेल्यूक (३) (२२६-२२३ ई० पू०) की भी पुत्री थी। दिमित्रि और सेल्युकियोंका झगड़ा चला जा रहा था। सेल्यूकीय राजा अन्तियोक (४) बाख्त्रियाको अपनी क्षत्रपी मानता था, और बाख्त्रिया शासक अपनेको स्वतंत्र। परिणाम सैनिक संघर्ष के रूपमें होना आवश्यक था। अन्तियोक (४) (१७५-६३ ई०पू०) का संघर्ष अपने पश्चिमी पडोसियोंके साथ भी था। उसके सेनापित अेउक्रतिदने मिस्रको जीता था। अब युरोप में एकऔर भी नई दुधर्ष शक्ति पैदा हो गई थी—रोमन साम्राज्यका विस्तार हो रहा था। १८६ ई०पू० में रोमने धमकी दी, जिसपर सेल्यूकियों को जीते हुए मिस्रको छोड़कर चला आना पड़ा। उत्तरमें पार्थिव मिथ्रदात (१) (१७०-१३८ ई० पू०) भी बडा ही प्रबल और महत्वाकांक्षी शासक था। तो भी उसने अन्तियोक (४) की मृत्यु तक अपनेको रोके रक्खा। सेल्युकीय राजपरिवारमें आपसी संघर्ष भी चल रहा था। अन्तियोक (४) के मरने के समय (१६३ ई०पू०) उसके पूर्वाधिकारी अन्तियोक (३) (मृत्यु १५३ ई० पू०) का तृतीय पुत्र रोम-दर्बारमें जामिन के तौरपर रह रहा था। जब उसका भाई सेल्युक (४) १७५ ई० पू० में मरा, तो उसने अन्तियोक (४) के नामसे प्रतिद्वंद्वियोंको हराकर स्वयं शासनसूत्र अपने हाथमें संभाला और अपने भतीजे बालक राजाकी मां अन्तियोक (३) की पत्नी लओदिका से ब्याह किया। लओदिकाने क्रमशः अपने तीनों भाइयोंसे शादी की थी—पहले ज्येष्ठ अन्तियोक (३) (मृत्यु १६३ ई० पू०) से, फिर द्वितीय भाई सेल्युक (४) से, फिर तीसरे भाई अन्तियोक (४) से। उस समय बहिन भाईका ब्याह ईरानियोंकी तरह ग्रीक राजाओंमें भी होता था। शायद यह अंतिम ब्याह उसने अपने पुत्रको गद्दीका हकदार बनाये रखनेके लिए किया। १७०-१६६ ई० पू० में उसके लड़केकी हत्या हो गई। अब तक अन्तियोक (४) राज का साझीदार भर था, अब वह अपने भतीजेके हत्यारेको प्राणदंड दे स्वयं एकाधिप राजा बन गया। १८६ ई० पू० में अन्तियोक (३) और रोमका मगनेसियामें भीषण युद्ध हुआ, जिसमें रोमकी विजय हुई और क्षुद्र- एसियाके सभी राजा रोमके करद हो गए।

अन्तियोक (४) ने अपने आरंभिक जीवनके बहुत से वर्ष रोममें बिताये थे, इसलिए रोमकी शक्तिसे वह अच्छी तरह परिचित था और बड़े भाईकी गलतीको दोहराना नहीं चाहता था। उसके राज्यके उत्तरमें मिथ्रदात (१) (१७०-१३८ ई० पू०) था, जिसे छेड़ा नहीं जा सकता था। ईरानी रेगिस्तानके पूर्वके भाग (सीस्तान और बलोचिस्तान) को दिमित्रिने ले लिया था। यदि अन्तियोक (४) राज्यविस्तार कर सकता था, तो इसी ओर। इस समय दिमित्रि भारत-विजयमें लगा अपने पश्चिमी सीमांतसे दूर था। यह मौका बड़ा अच्छा था। अन्तियोकने मिस्र-विजय करके १६९ ई० पू० में उसकी राजधानी मेम्फीमें अपना अभिषेक कराया था, लेकिन रोमकी लाल-लाल आंखोंको देखते ही (१६८ ई० पू०) उसे मिस्रको छोड़ देना पड़ा।

५. एउक्रतिद (१६६-१५९ ई० पू०)

एउक्रतिद[१] अन्तियोक (४) (१७५-१६३ ई० पू०) का फुफेरा भाई था। उसके जिम्मे अन्तियोकने दिमित्रिके राज्यको जीतने का काम सौंपा और स्वयं पश्चिमके विजयके लिये प्रस्थान किया। पश्चिममें उतनी सफलता नहीं मिली, लेकिन एउक्रतिदने १६७ ई० पू० तक हिंदूकुशके पश्चिमके प्रदेशको जीत लिया। सीस्तान, अरखोसिया (बलोचिस्तान), अरिया (हिरात), बाख्त्रिया और सोग्द एउक्रतिदके हाथमें चले गये। अब दिमित्रि कैसे तक्षशिलामें चैन के साथ बैठ सकता था? वह फौरन भारतसे अपनी सेना ले बाख्त्रियाकी ओर दौड़ा। उसने अपने सेनापति मिनान्दरको भी ऐसा करनेके लिये हुक्म दिया, जिसे उसने नहीं माना। एक जगह दिमित्रिने एउक्रतिदको घेर लिया था, लेकिन वह निकल भागनेमें सफल हुआ। हिंदूकुशके पास ही एक युद्ध में दिमित्रि मारा गया। अलिकसुन्दरकी तरह दिमित्रिने भी ग्रीक और अग्रीक के भेदको अपने शासन और सेनासे मिटाना चाहा था। शायद इसीके कारण ग्रीक सैनिक उससे प्रसन्न नहीं थे। उधर सेल्यूकीय राजा शुरूसे ही ग्रीक रक्त के पक्षपाती थे।

१६६ ई० पू० में एउक्रतिदका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं रह गया था। अन्तियोक (४) उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। १६६ ई० पू० में एउक्रतिदने अपनेको राजा (बसीलेउस्) ही नहीं, "महाराज" (बसीलेउस् मेगलोस्) घोषित किया। एउक्रतिदने बाख्त्रिया में अपने नामकी एक नगरी (एउक्रतिदेइया) बसाई। उसके पुत्र हेलिओकलने अपनी राजधानी बाख्त्रिया ही रक्खी। एक चांदीके सिक्केमें एउक्रतिदका एक तरफ हैट पहने चेहरा है। ग्रीक-बाख्त्री राजाओंमें इसे और उपराज अन्तिमाखूको छोड़ किसीने हैट सहित चित्र नहीं बनवाया। उसके सिक्केकी दूसरी ओर ग्रीक लिपिमें दो दौड़ते घोड़ों पर हाथमें लंबे भाले और पत्तेवालीशाखा लिये दो सवार दौड़ रहे हैं। इसके ऊपरकी ओर अर्धगोलाकार पाँतीमें लिखा है—"बसीलेउस् मेगलोस्" और नीचे "एउक्रतिदोस्"। एक दूसरे सिक्के (चांदी के तेत्राद्राख्मा) पर एक ओर उसका फीता बंधा नग्नशिर है और दूसरी ओर ग्रीक देवता अपोलोन दाहिने हाथमें धनुष और बायेंमें वाण लिये खड़ा है। उसके तीन तरफ गोल पंक्तिमें लिखा है "वसीलेउस् सुतिरोस् एउक्रतिदोस्" (राजा त्राता एउक्रतिद)।

---

[१] Greeks in Bactria

एउक्रतिदने १६६ ई० पू० को बाख्त्रियामें बिताया, फिर १६५ या १६४ ई० पू० में उसने भारतकी ओर अभियान किया। एउक्रतिद जिस समय बाख्त्रियामें अपनी दिग्विजय कर रहा था, उसी समय ग्रीको-बाख्त्री शासनके उच्छेत्ता यू०ची० हूणोंके प्रहारके कारण अपनी मूल भूमि कान्सू को छोड़ बालबच्चों, घोड़ों-भेड़ों और तम्बुओंको लिये चल पड़े, शायद फर्गानामें वह तब तक पहुंच भी चुके थे। एउक्रतिद हिंदूकुश पारकर पहले कपिशा पहुंचा, जहां दिमित्रिके पुत्र अगथोकलसे उसकी भिड़न्त हुई। अगथोकल युद्धमें मारा गया और कपिशा नये ग्रीक शासकके हाथोंमें आई। अगथोकलके गिलट के सिक्केपर एक ओर राजाका शिर है और दूसरी ओर सामने वृक्षकी ओर मुंह किये एक सिंह खड़ा है। सिंहके ऊपरकी पांतीमें "वसीलेउस्" लिखा है और नीचे "अगथोक्लेओउस्"। जिस समय एउक्रतिद भारतकी दिग्विजयमें लगा था, उसी समय (१६३ ई० पू० में) अन्तियोक (४) अपने पश्चिमके अभियानमें क्षयरोगसे मर गया। अब एउक्रतिद सर्वस्वतंत्र था। एउक्रतिदकी विजयके बारेमें अनुमान किया जाता है, कि उसने गंधार जीता। उसी युद्धमें वहांका राजा अपलोदोत (१६३ या १६२ ई० पू० में) मारा गया। झेलम तक उसे बढ़नेमें रुकावट नहीं हुई। शायद अपलोदोतके प्रदेश सिंधको भी उसने ले लिया। झेलमसे मिनान्दरकी सीमा शुरू होती थी। मिनांदरने उसे आगे बढ़ने नहीं दिया। अपने भारतीय सिक्कों-पर एउक्रतिदने "रजतिरज" लिखवाया है। १६० ई० पू० में दिमित्रिकी तरह एउक्रतिदको भी घरपर संकट आनेकी खबर पाकर भारत छोड़ना पड़ा।

अन्तियोक (४) के मरने (१६३ ई० पू०) के बाद उसका बड़ा भाई देमित्रि (१), जो रोममें जामिनके तौरपर रहता था, भागकर स्वदेश लौटा। इस बीच अन्तियोक (१) का पुत्र अन्तियोक (५) गद्दीपर बैठ गया था। चचाने उसे हटाकर स्वयं राजगद्दी संभाली। एउक्रतिदने उसे राजा स्वीकार नहीं किया। अब सेल्यूकीय साम्राज्यके नाशका समय आ गया। मिदियाका स्त्रतेगोस (राज्यपाल) तिमार्खुशने (१६२ई०पू० में) अपनेको "वसीलेउस् मेगलोस्" (महाराज) घोषित कर दिया, लेकिन पार्थिव राजा मिथूदात (१) ने १६१-१६० ई० पू० में उसे हराकर सारी मिदियाको अपने राज्यमें मिला लिया। इसके बाद मिथूदातने एउक्रतिदके राज्यके हिरात नदीके पश्चिमके भागको छीन लिया। यही खबर सुन कर एउक्रतिद भारतको छोड़कर लौटनेके लिये मजबूर हुआ। १५९ ई० पू० में मिथूदात तथा तत्सहायक दिमित्रि (२) से लड़ते हुए एउक्रतिद मारा गया। दिमित्रि (१) के पुत्र दिमित्रि (२) ने अपने पिताके शत्रुको मारकर बदला लिया, लेकिन इससे वह अपने वंशकी राजलक्ष्मीको लौटा नहीं सका। अब पार्थिवोंका सितारा ओज पर था।

६. हेलियोकल[1] (१५९-१३० ई० पू०)

प्रतापी विजेता एउक्रतिदका पुत्र हेलियोकल अपने ही नहीं ग्रीको-बाख्त्रीय राजवंशके भाग्यसूर्यको डूबनेसे बचानेके लिए बाख्त्रियाका शासक बना। इस समय तक सोग्दका ऊपरी भाग यूचियोंके हाथ में चला जा चुका था। शायद उसका निचला भाग और मेर्व भी अभी हेलियोकलके हाथमें था। मिथूदातने सीस्तान, अरखोसिया और गेदरोसियाको यवनोंसे छीन लिया था। फ्रात

---

[1] वही

सीस्तानका गवर्नर था। पार्थिव शक-वंशी थे, इसलिए उन्होंने सीस्तानमें हेलमन्द नदीके निम्न भागमें शक घुमन्तुओंको ले जाकर बसा दिया। इसीके कारण इस प्रदेशका नाम ११५ ई० पू० के आसपास से शकस्तान (सीस्तान) पड़ गया। पीछे शकोंके भारतकी ओर बढ़नेके समय सीस्तान उनके अड्डेका काम करने लगा। थोड़े समय बाद ये शक पार्थिवोंसे स्वतंत्र हो गए। मिथूदात (२) (१२४-८८ ई० पू०) ने अपने सेनापति सूरेनको इन्हें दबानेके लिये भेजा। वह ११५ ई० पू० के आसपास सीस्तानको पार्थिव साम्राज्यमें मिलानेमें सफल हुआ। ११५ ई० पू० में पार्थिवोंसे स्वतंत्र होकर अपना राज्य स्थापित करनेके उपलक्षमें शकोंने अपना एक (पुराना) शक-संवत चलाया और प्रथम शक राजा ने "रजतिराज" (राजाधिराज) की पदवी धारण की।

हेलियोकल बाख्त्रियाका अंतिम ग्रीक राजा था। उसने भी पिताका अनुकरण करते हुए दिग्विजय करना चाहा। उसके राज्यमें शायद परोपमिसदै (कपिशा) थी। पिताको मिनांदरके सामने जिस तरह असफल होना पड़ा था, उसके कारण वह मिनांदरकी मृत्यु तक चुप रहा। इसके बाद उसने गंधार पर चढ़ाई की। मिनांदर-पुत्र स्त्रात (१) से संघर्ष हुआ । हेलियोकलने झेलम तक ले लिया और अब स्त्रातके पास सागल (स्यालकोट) से मथुरा तकका राज्य बच रहा। हेलियोकलने अपने भाई एउक्रतिद (२) को अपने स्थानपर शासक नियुक्त किया था। उसने अपने सिक्केपर "वसीलेउस् सूतिरोस एउक्रतिदोस्" (राजा त्राता एउक्रतिद) उत्कीर्ण करवाया। जिस समय हेलियोकल भारतकी ओर दिग्विजयमें लगा हुआ था, इसी समय मिथूदात (१) ने अपना राज्य कास्पियन तटसे फारसकी खाड़ी तक फैला दिया। १४२ ई० पू० में वह बाबुलका स्वामी था। १४१ ई० पू० में सेल्यूकीय राजा देमित्रि (२) हेलियोकलसे मिलकर मिथ्रदातपर चढ़ाई करना चाहता था । शायद वह अभी भी हेलियोकलको अपना सामन्त समझता था। दोनोंका प्रयत्न विफल गया। मिथ्रदात ने दोनों पार्श्वोंपर लडनेकी नीतिको अच्छा नहीं समझा और दिमित्रिके सेनापति को ववेरु ले लेने दिया, फिर भारतसे लौटकर पार्थियापर आक्रमण करने-वाले हेलियोकलकी ओर बढ़ा और दिसंबर १४१ ई०पू० में हुर्कानियामें उसे पराजित कर बबेरुकी ओर लौटा। १४०-१३९ ई०पू० में दिमित्रि पराजित होकर बन्दी बना और उसके ही साथ ईरान और मसोपोतामियामें सेल्युकी वंश का स्थान पार्थिव वंशने लिया। हेलियोकल राजा वाख्तरका अंतिम ग्रीक राजा था। उसके सिक्कोंकी नकल यूची-शकोंने की, इससे मालूम होता है, कि इसीसे यूचियोंने वाख्त्रियाको छीना था।

हेलियोकलका चतुष्कोण तांबेका सिक्का मिलता है, जिसकी एक तरफ ग्रीकमें "वसीलेउस दिकइओस एलिओक्लेओस" (राजा धार्मिक हेलियोकल) और, दूसरी तरफ हाथी है, जिसके तीन पार्श्वों में खरोष्ठी लिपिमें "महरजस ध्रमिकस हेलियक्रेयस" लिखा हुआ है।

७. अन्तियलिकिद

यह कहना मुश्किल है, कि इसका हेलियोकेलसे क्या संबंध था। मालूम होता है, यह कपिशा और गंधार (हिंदु कुश)से झेलम तकका राजा था। शायद बाख्त्रियासे भी इसका कुछ संबंध रहा। इसके सिक्केपर लिखा रहता है "वसीलेउस निकितोरस अन्तिअल्किदोस्" (राजा विजयी अन्तियलिकिद)।

१४१ ई०पू० में बाख्त्रियाके इतिहास पर जो अंधकार छा जाता है, वह १२८ ई०पू० में ही हटता है, जब-कि चीनी जेनरल और पर्यटक चाङक्यान् बाख्तरमें पहुंच वहां यूचियोंको सर्वप्रभुत्वसंपन्न पाता है।

४. भारतमें

१. मेनान्दर (१६६-१४५ ई० पू०)

अच्छा होगा यदि मेनान्दर और उसके उत्तराधिकारियोंके बारे में भी कुछ कह दिया जाय, क्योंकि वस्तुतः यह बाख्त्री राज्यके ही भारत-दिग्विजयके अवशेष थे। भिक्षु नागसेन और राजा मिलिन्दका जो प्रश्नोत्तर, "मिलिन्दप्रश्न" में मिलता है, वह यही राजा मेनान्दर है। इस ग्रंथ से पता लगता है, कि उस समय मेनान्दर की राजधानी सागला (स्यालकोट) थी। उससे यह भी मालूम होता है, कि मिलिन्दका जन्म अलसन्दामें हुआ था। अलसन्दा या अलेक-सन्दरिया बहुत सी थीं, इसका जन्म कौन सी अलकसन्दरियामें हुआ था, यह नहीं कहा जा सकता। यह तो निश्चित है, कि वह अलकसन्दरिया कपिशा नहीं हो सकती, क्योंकि सागल से उसकी जो दूरी बतलाई गई है, उतनी दूर कपिशा (कोहदामन-उपत्यका) नहीं है। मेनान्दर किसी प्रभावशाली कुलमें पैदा हुआ था, या अपने सैनिक कौशलसे ऊपर उठा, इसे भी जानने के लिये हमारे पास साधन नहीं है। उसने देमित्रि[१] की पुत्री अगथोक्लेइयाको व्याहा था और इस प्रकार राजजामाता था। पहिले वह झेलमसे पूरबके ग्रीक-राज्यका शासक बनाया गया था, लेकिन एउक्र-तिदके देशकी ओर भागनेपर यह गांधार, सिंध और गुजरात तकका भी शासक बन गया। इसकी राजधानी सागला थी, लेकिन मथुरा और भरौच में भी उसके स्त्रेतोगोस (राज्यपाल) रहते थे। मेनान्दरने "सोतेरोस (त्राता)" और "दकिइओस्" (धार्मिक) की उपाधि धारण की थी।

२. स्त्रात (१)

मेनान्दरकी मृत्यु (१४५ ई०पू०) के बाद स्त्रात हिंसासनपर बैठा, लेकिन जैसा कि ऊपर कहा, उसे हेलियोकलसे मुकाबला करना पडा, जिसके कारण गंधार (खैबर से झेलम) उसके हाथसे निकल गया। तो भी स्यालकोटसे मथुरा तक की भूमि अबभी उसकी थी। उसके आरंभिक शासनकालमें उसकी मां अगथोक्लेइया अभिभाविका रही, जिसका नाम सिक्कों पर भी मिलता है। स्त्रातका शासन दीर्घकाल-व्यापी था।

३. स्त्रात (२)

पौत्र सिंहासनपर बैठा। सिक्केपर यह एक दाढ़ीवाला मध्यवयस्क पुरुष दिखलाई पड़ता है। आगेके अपोलोदोत, फिलोपातोर, दियोनिसिलोउस्, जोइलुस् (२), सोतेर, और लिक्सेनुस इन पांच यूनानी राजाओंके सिक्के मिलते हैं, जिन के शासन काल, शासित भूभाग या राजधानीके बारेमें कहना मुश्किल है। यह ग्रीकराजा भारतीय हो गये थे, और शकोंसे भी इनका वैवाहिक संबंध था। उन्होंने अपोलोदोत (२) के सिक्कोंकी नकल की है, शक

राजा अजेस्‌ने भी अपोलोदोत (२) के सिक्केपर अपना ठप्पा लगाया, जिससे अपोलोदोत (२) के तुरन्त बाद ही उसका होना मालूम होता है। अपोलोदोत (२) ३० ई०पू० के आसपास मौजूद था। हमें मालूम है, कि मिथ्रदात (२) (१२४-८८ ई०पू०) के सेनापति सोरेनने शकोंको सीस्तानसे भगाया था, जिसके कारण उनमेंसे कितने ही बोलन (मुल्ला) दर्रेसे भारतकी ओर आये। इन्होंने सिंध ,कच्छ और सौराष्ट्र ले लिया। सिंधका वह भाग अभीरिया कहा जाता था, जिसे शकों ने पहले लिया। आभीर भी यवन विजेताओंके साथ आये मध्य-असियाके घुमन्तू शकोंकी ही एक शाखा थी। प्रथम शक सिंध, गुजरातमें ११०-८० ई०पू० के बीच शासन करते थे।

५. राज्य-व्यवस्था[१]

बाख्त्रियाके ग्रीक शासनका ढांचा वही था, जो कि अलिकसुन्दरने दारयबहु (१) द्वारा निर्धारित ईरानी शासन व्यवस्थासे कुछ सुधार करके लिया था। दारयबहुने क्षत्रप, सेनापतिके अतिरिक्त उन्हींके समान राजामात्यका एक तीसरा पद भी क्षत्रपियोंमें स्थापित किया था, किंतु अलिकसुन्दरने राजामात्यका पद हटा दिया था। क्षत्रपीका शासक अब स्त्रतेगोस् कहलाता था दारयबहुकी क्षत्रपियां बहुत बड़ी थीं। सेल्यूकीय साम्राज्यसे कहीं बड़ा होनेपर भी दाराके साम्राज्य में वह तेंतीस ही थीं, जबकि सेल्यूकीय राज्यमें उनकी संख्या ७२ हो गई। क्षत्रपीके नीचे एपारची थी और उसके नीचे हिपारची। एपारचीको जिला और हिपारचीको तहसील या सब-डिवीजन कह सकते हैं। बाख्त्रियाने एपारची ही को उपराज द्वारा शासित प्रदेश बना दिया। एपा-रचियां प्रायः प्राकृतिक विभाजनके आधारपर बनी थीं। इनके अतिरिक्त कितनी ही ग्रीक बस्तियां (पुरियां) थीं, जिनमें ग्रीस की पोलियोंके अनुकरण करनेकी कोशिश की जाती थीं। अलिकसुन्दरने ७० के करीब पोलिस (पुरियां) बसाई थीं। सेल्यूकीय पोलिस सैनिक उपनिवेश जैसी थीं। ग्रीक पोलीका प्रबंध एक परिषद् और एक सभा द्वारा होता था। तिग्रा तटपर अवस्थित सेलूकियाकी परिषद्‌के ३०० सदस्य होते थे, सभामें और भी अधिक सदस्य होते थे। इनकी मासिक और वार्षिक बैठकें हुआ करती थीं। नगर सभाका काम केवल नगरकी व्यवस्था ही करना नहीं बल्कि नागरिकोंके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके विकासको भी देखना था। इसके लिए क्रीड़ा-क्षेत्र, अखाड़े, नाट्यशालायें हुआ करती थीं। पोलियों तथा देशकी राजकीय भाषा ग्रीक थी। नगरके देवता भी ग्रीक देवावलीसे लिये गये होते थे। पोलीके मजिस्ट्रेटको एपसितल कहते थे। एपसितलका नाम परिषद् पेश करती थी। नगरका एक जननिर्वाचित कोषाध्यक्ष भी होता था। निर्वाचन प्रायः तीन सालों बाद होता था। बाख्त्रिया (बलख) और पुष्पकलावती (गंधार) की गणना प्रधान ग्रीक पोलियोंमें थीं। सेल्यूकीय साम्राज्य में ग्रीक और अग्रीकका बहुत भेदभाव रक्खा जाता था, इसलिए वहांकी पोलियोंमें शासितों और शासकोंका संबंध कुछ कुछ वैसा ही था, जैसा कि अंग्रेजी शासनकालमें हमारी छावनियोंमें गोरों और कालोंका। इसका यह अर्थ नहीं, कि दोनों जातियोंमें विवाह-संबंध नहीं होता था। दिमित्रि (१) जैसे राजाओंने अनुभव किया, कि इस तरहका भेद-भाव अच्छा नहीं है। उसके समय

[१] Greeks in Bactria

पोलियोंके भेदभावमें कुछ कमी अवश्य हुई। दिमित्रिने अपने उच्च पदोंके लिये भी स्थानीय लोगों को लिया था और पार्थिवों (पह्लवों) और शकोंके लिये भी क्षत्रप बननेका रास्ता खोल दिया था। मौर्योंने विदेशियोंको अपना राज्यपाल तक बनाया था, जैसा कि सौराष्ट्रके मौर्य गवर्नर के उदाहरणसे मालूम होता है। सौराष्ट्र, अवन्ती, मथुरा और तक्षशिलाके शक (पल्लव) क्षत्रपोंकी परंपराका आरंभ ग्रीक राजाओंके समयमें हुआ। ग्रीक शासनके अवशेष के तौरपर दशपुर और दूसरे भारतीय नगरोंमें ग्रीकोंका होना ईसाकी पहली-दूसरी शताब्दियोंके उनके अभिलेखोंसे मालूम होता है, वही अवस्था बाख्त्रिया और सोग्दमें भी रही होगी। संभव है, ग्रीक लोगोंका भारतीकरण हमारे यहां जितनी तेजीसे हुआ, उतना मध्य-ऐसियामें न हुआ हो। वहांके घुमन्तू शक भी अपनी मूलभूमिके सभी समाजिक रीति-रवाजोंको कायम रखना चाहते थे। कुछ पश्चिमी विद्वानोंका विचार है, कि यवन (ग्रीक) के नामसे जिन दाताओंके अभिलेख नासिक, कार्ला आदिकी गुफाओंमें मिलते हैं, वह वस्तुतः यवन-जातिक नहीं, बल्कि यवन-नागरिक हो सकते हैं। हम देख चुके हैं, कि अपोलोदोत जैसे ग्रीक राजाने अपने सिक्कोंका इतना भारतीकरण किया, कि उनसे ग्रीक लिपि और भाषा तकको हटा केवल भारतीय लिपि और भारतीय भाषा ही को रहने दिया। ई० पू० द्वितीय शताब्दी में भारतीय ग्रीक राजाओंने भारतीय देवताओंको अपने सिक्कोंमें स्थान दिया। मिनान्दरने खुलकर भारतीय (बौद्ध) धर्मको अपनाया, दिमित्रि (१) (१८९-१६७ ई० पू०) से ही बहुतसे ग्रीक राजाओंने "धार्मिक धर्मराजा" बननेका प्रयत्न किया, इसलिए जहां तक भारतका संबंध है, यहां यवन-जातिक और यवन-नागरिककी कल्पना निराधार मालूम होती है। यहांके यवन कहे जानेवाले नागरिक वस्तुतः यवन-जातीय थे। भारतमें भेदभाव हो भी नहीं सकता था, क्योंकि अलिकसुन्दरके मरनेके थोड़े ही दिनों बाद ग्रीक छावनियां नहीं रह गई थीं, और उसके बाद जब दिमित्रि (१) भारत में शासन करनेके लिये आया, तो उसकी नीति बदल चुकी थी।

ग्रीको-बाख्त्रीय राजाओंके सिक्कोंसे मालूम होता है, कि वहांकी पोलियोंके प्रधान देवता ग्रीक देवावलीमेंसे ही लिये गये थे। जिस तरह ग्रीस देशमें नगर देवता होते थे, वैसे ही ऐसियाई पोलियोंमें भी उन्होंने देवता स्थापित किये थे। ये ग्रीक देवता भारतमें भी आये थे, जिनकी कितनी ही मूर्तियां हमें गंधार कलाके सुन्दर नमूनोंके रूपमें मिली हैं। हेरेकल एक प्रधान ग्रीक देवता था। पौरुषको प्रकट करनेके लिये इस देवसेनानीका बहुत सम्मान था। एउतिदिमके सिक्कों पर इसकी सुंदर मूर्ति मिलती है। दूसरे ग्रीक देवताओंमें ज़ेउस् दिवोदात (१) और दिवोदात (२), हेलियाकेल के सिक्कों पर मिलता है। यह देवताओंका पिता (देउस्पितर) माना जाता था, लेकिन सैनिक प्रभुत्वपर अधिक श्रद्धा रखनेवाले ग्रीक शासकोंके सिक्कोंपर उसकी उतनी प्रधानता नहीं देखी जाती। पोलियोंमें इसकी पूजाका विशेष स्थान रहा होगा, इसमें संदेह नहीं। अपोलोन तीसरा ग्रीक देवता था, जिसका चित्र एउक्रतिदके सिक्के पर मिलता है। इस संगीत-प्रिय देवता की मिट्टीकी भी मूर्तियां मिली हैं। अथिना अथेन्सकी महान् देवी दिवोदात (२) के सिक्केपर मिलती है। दिमित्रि, अपोलोदोत, मेनान्दर और दूसरे ग्रीक राजाओंने भी अपने सिक्कोंपर स्थान देकर अथिना का सम्मान किया है। ग्रीस देशकी सबसे सम्माननीय पुरीकी अधिष्ठात्री का ज्यादा सत्कार होना ही चाहिये। पल्लदा अथिना ही का दूसरा नाम है।

विजय की देवी निका अन्तिमाख, एउक्रतिद, मिनान्दर और दूसरे राजाओंके सिक्कोंपर मिलती है। दिवोनिस् देवताकी भी पूजा होती थी। बाख्त्रिया, फर्गाना और कपिशाकी द्राक्षावलय भूमिमें इस द्राक्षाके देवताको कैसे भूला जा सकता था? कपिशामें दिवोनिस्का विशेष सम्मान था, यह अगथोकलके सिक्केसे मालूम होता है। मेगस्थेनके कथनानुसार भारतमें पहाड़ोंमें दिवोनिस और मैदानोंमें हेरेकलकी पूजा होती थी, किंतु जान पड़ता है, मेगस्थेनने शिव और वासुदेवको दिवोनिस और हेरेक्ल समझ लिया। ई० पू० द्वितीय शताब्दीके आरंभमें भारतमें इतने ग्रीक लोग कहां थे, कि पहाड़ों और मैदानोंमें देवानिस और हेरेकलकी पूजा होती?

ग्रीक देवताओंके अतिरिक्त ईरानी देवी अनाहिता भी ग्रीक पूजामें स्थान पा चुकी थी। कहा जाता है, मूलतः जिस तरह सोग्द (जरफशां) नदीकी अधिदेवता दइत्ई, यक्सर्त (सिर दरिया) की अधिदेवता तनइस् थी, उसी तरह वक्षुकी अनाहिता। अखामनी कालमें भी अनाहिता की महिमा थी। कुछ विद्वानोंका मत है, कि यह मूलतः बाबुली देवी थी, जिसे ईरानियोंने स्वीकार कर लिया। सासानी कालमें तो अनाहिता परमेश्वरी बन गई। रोमन इतिहासकार क्लेमेन्त अलेकसन्द्रीय (ईसाकी दूसरी-तीसरी शताब्दी) मे पता लगता है, कि उसके समय बाख्त्रिया नगरीमें अफ्रोदिता तनइस्की पूजा होती थी। रॉलिन्सनने तनइका ईरानी नामोच्चारण तनता बतलाया है। मित्रके नामसे सूर्यदेव ग्रीक भक्तोंको अपनी ओर ज्यादा खींचनेमें सफल हुए थे। कहा जाता है, ईसाकी आरंभिक सदियोंमें मित्र-सम्प्रदायने ग्रीसदेशपर इतना प्रभाव डाला था, कि वहां यह सवाल पैदा हो गया था कि ग्रीस और रोमका धर्म मित्रवाद होगा, या ईसाइयत। मित्र जान पड़ता है, शतम्-परिवारका एक जातीय देवता था। ईरानी-आर्य भी मित्रके नामसे सूर्यकी पूजा करते थे। यद्यपि जर्थुस्त्र के सुधारने अहुरमज्दको प्रथम स्थान दिया, लेकिन मिथ्र को वह पदच्युत नहीं कर पाया। भारतीय आर्य भी मित्र नामसे सूर्यकी पूजा-प्रार्थना करते थे। वह ऋग्वेदके प्रधान देवताओंमें हैं। आरंभिक समयमें ईरानी या भारतीय आर्य मूर्ति बनानेकी आवश्यकता न समझ प्रत्यक्ष सूर्यकी ही पूजा करते थे; लेकिन पीछे सूर्यकी मूर्तियां भी बनने लगीं। बाख्त्रियामें ई० पू० तृतीय और द्वितीय शताब्दीमें मिथ् और अनाहिताका बहुत ऊंचा स्थान था। इसी समय उसकी मूर्ति बनी, जो सिक्कोंपर मिलती है। शकोंके समयसे मिथ् (मिहिर) की पूजा भारतमें भी बहुत बढ़ी। शकोंने जल्दी ही भारतके धर्म और संस्कृतिको अपना लिया। एक दो शताब्दियों तक ही वेषभूषा, खानपान आदिमें अपने पृथक् अस्तित्वको कायम रखते पीछे भारतीय जनसमुद्रमें इतना घुल-मिल गये, कि उनका पता लगना तक मुश्किल हो गया, किंतु, अपनी सूर्यकी मूर्तियोंके रूपमें उन्होंने भारतमें अपना स्थायी चिन्ह छोड़ा। इनके सूर्य देवता द्विभुज और शकोंकी तरह ही घुटने तक बूट पहनते थे। वही बूट, जिसे आज भी रूसी लोग जाड़ोंमें पहनते हैं, और जिसे हम कनिष्ककी मूर्तिमें भी देख सकते है। ई० पू० ५वीं ६ठीं शताब्दीमें भी इसी तरहके बूट अल्ताईसे लेकर कार्पेथीय पर्वतमाला तकके शक पहना करते थे।

भारतीय देवताओंमें धिषणा देवीको बाख्त्रिय-ग्रीक राजाओंके पूज्य देवताओंमें बतलाया जाता है। लेकिन धिषणा देवी भारतमें उतनी प्रसिद्ध नहीं थी। वैदिक देवी होते वह केवल किसी प्राकृतिक शक्तिकी प्रतिनिधित्व करती होगी, इसलिए उसकी मूर्तिका यहां पता नहीं लगता। धिषणा देवीकी द्विभज तथा अर्धनग्न मूर्ति एक धातुके कटोरेपर मिली है। इसके दोनों

तरफ दो पुरुष (अश्विनी कुमार द्वय) दिखलाये गये हैं। बुद्धकी मूर्ति गंधार-कलासे ही शुरू होती है, जिसका उद्गम ग्रीक और भारतीय कलाका संमिश्रण है। ई० पू० द्वितीय शताब्दीमें अभी बुद्धकी मूर्तियां बन नहीं पाई थीं, इसलिए भरहुतकी तरह ग्रीक और मिनान्दर, अगथोकलके सिक्कों पर बौद्ध चिह्न, स्तूप या बोधिवृक्षको ही रखकर सन्तोष कर लिया गया। शिवको भी नादियाके संकेतसे चित्रोंपर प्रकट किया गया है। ग्रीक लोग अपने उत्तराधिकारी शकोंकी तरह धर्मके बारेमें बड़े उदार थे। वह ईरानी अहुर-मज्दको भी पूज सकते थे, और उसके विरोधी भारतीय इन्द्रको भी। जेउस, बुद्ध, अनाहिता, पल्ला, वृत्रेघ्न, हेरेकल सभीसे वह वरदान माँगनेके लिए तैयार थे।

६. कला[1]

ग्रीको-बाख्त्रीय कलाका एसियाकी कलामें बहुत ऊँचा स्थान है। ग्रीक कला सेल्यूकीय पोलियोंमें भी बहुत आदृत थी, किंतु वह वहाँ बँध्या ही रह गई। बाख्त्रियामें पहुँचकर उसने भारत, अफगानिस्तान और उभय मध्य-एसियाकी कलापर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा। भारतके संपर्कमें आकर यही कला गंधार कलाके नामसे प्रसिद्ध हुई। हम बतला चुके हैं, कि एउथुदिम, दिमित्रि और एउक्रतिदके सिक्कोंके रूपमें पोर्त्रेत कला इतनी ऊँची उठी, जहाँ पीछे उसका प्रतिद्वंद्वी कोई नहीं हुआ। भारतमें उसके बाद मथुराकी कुषाणकला विकसित हुई, जिसकी उत्तराधिकारिणी गुप्त-कला है, जिसके रूपमें भारतीय कला अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँची। यद्यपि मथुराकी कला गंधार कलाकी नकल नहीं है, किंतु उसकी उन्नतिमें उस कलाका हाथ अवश्य रहा है। मथुरा-कलाके पैदा होने और फलने-फूलनेका वही समय है, जब कि मथुरा ग्रीक और शक क्षत्रपोंकी राजधानी रही। ग्रीक और शक क्षत्रपोंकी छत्रछायामें ही उसकी उन्नति हुई, फिर वह गंधार-कलासे कैसे प्रेरणा लेनेसे रुकती? लेकिन ग्रीक कलाने भारतीय कलाके लिए जो कुछ किया, प्रेरणा देनेमें जितना हाथ बँटाया, वही बात मध्य-एसियाके बारेमें नहीं कही जा सकती। कंग लोगोंके सिक्कों और कलापर उसका कुछ प्रभाव ख्वारेज्ममें अवश्य देखा जाता है—ख्वारेज्ममें मिले कलाके नमूनोंपर उसका प्रभाव देखा जाता है, यद्यपि जहाँ तक राजनीतिक प्रभावका संबंध है, ख्वारेज्म न अलिकसुन्दरके अधीन हुआ, न उसके उत्तराधिकारियों—सेल्यूकीय तथा ग्रीको-बाख्त्रीय राजाओंके। मध्य-वक्षु-उपत्यकामें उसके अवशेष तेरमिज आदिकी खुदाइयोंमें मिले हैं, लेकिन उसका प्रसार जल्दी ही खतम हो गया। ७ वीं शताब्दीके अंतमें पहुंचते-पहुंचते इस्लामसे इस भूमिका संबंध होने लगा, ८ वीं, ९ वीं, १० वीं—इन तीन-शताब्दियोंमें तो मूर्ति-ध्वंसकोंका प्राधान्य हो जानेके कारण मूर्तिकलाके पनपनेकी गुंजाइश नहीं रही। अब वहां ही भारतकी गंधार कला और उसकी उत्तरवर्ती कलाओं की तरह मध्य-एसियामें कोई प्रवाह प्रचलित नहीं रह सका। तुर्फान और दूसरे स्थानोंसे मिले नमूनोंसे पता लगता है, कि ग्रीको-बाख्त्रीय कलाने पूर्वी मध्य-एसिया और चीनके पश्चिमी भागमें अपना प्रभाव फैलाया था।

---

[1]वहीं, पाम्यात्निकि० फलक १-५०, इस्कुस्सत्वो स्रेद्निइ आज़िइ (ब० व० वेइमार्न, मास्को १९४०) पृ० ९-१४।

स्रोत-ग्रंथ :

१. पाम्यत्निकि ग्रेको-बाक्त्रिइइस्कओ इस्कुस्स्त्वो (क० व० त्रेवर, लेनिनग्राद १९४०

2. Greeks in Bactria and India (W. W. Tarn, Cambridge 1938)

३. इस्कुस्स्त्वो स्रेद्नेइ आज़िइ (ब० व० वेइमार्न, मास्को १९४०)

4. Memoire Sur l' Asie Centrale (Girard de Rialle, Paris 1875)

५. आर्खेआलोगिचेस्किइ ओचेर्क सेवेर्नोइ किर्गिज़िइ (अ० न० बेर्नश्ताम्, फ्रुन्जे, १९४१)

6. L'Asie Ancienne Centrale et Sud-Orientale d'apre's Ptolome'e (A. Berthelot, Paris 1930)

7. Catalogue of Coins in the British Museum (P. Gardner 1886) —Greek and Scythian Kings of Bactria and India

8. Coins of Ancient India (J. Allen, 1936)

9. The Story of Chang Kien (Fr. Hirth, J A O S. 1917 xxxvii). pp. 89

10. Hellenistic Civiliasation (W. W. Tarn, 1930)

11. Selucid-Parthian Studies (W. W. Tarn 1937 Proc. Brit. Acad. 1930)

12. Heart of Asia (E. D. Ross, London 1899)

अध्याय ४

शक (ईसा पूर्व १३०–४२५ ईसवी)

१. यूची

१७६ (या १७४) ई० पू० में चीनके प्रहारके कारण भगे हूणोंने अपने पश्चिमी पड़ोसी यूचियोंके स्थानको छीननेके लिये उनपर आक्रमण किया[१], जिससे उन्हें अपनी भूमि छोड़ पश्चिमकी ओर भागना पड़ा। सइवाङ शकोंकी भूमिमें प्रवेश करनेपर उनका एक भाग—लघु-यूची —तरिम-उपत्यकामें जाके बस गया, और दूसरा—महायूची—सप्तनद और त्यानशानके वू-सुनोंको पीटता-पाटता पश्चिमकी ओर बढ़ते यक्सर्त (सिरदरिया) की उपत्यकामें पहुँचा। इस महाप्रवासमें उन्होंने अपने रास्तेमें पड़नेवाली सभी बाधाओंको कठोरतापूर्वक हटाया, यह वू-सुनोंके साथके उनके संघर्षसे मालूम होता है। त्यान्शान्के पहाड़ोंसे हो कर वह फर्गाना की भूमिमें पहुंचे, जहां उस समय ग्रीको-बाख्त्री राजा क्रमशः एउक्रितिद (१६६-१५६ ई० पू०) और हेलियोकल (१५६–२३०ई० पू०) का शासन रहा। संभव है, हेलियोकलके आरंभिक शासनमें उन्हें फर्गानाको हड़पनेका मौका मिला। १४१ ई० पू० में ग्रीको-बाख्त्री इतिहासपर परदा पड़ जाता है। १७४ ई० पू० के आसपास अपनी मूलभूमि कन्सूको छोड़नेके बाद वू-सुनोंके साथके संघर्षकी थोड़ी सी भनक मिलनेके सिवा यूची शकोंका अंतमें पता १२४ ई० पू० में ही लगता है जबकि चाङ क्यान् उन्हें यक्सर्त और वक्षु नदीकी उपत्यकाओंकी भूमिका स्वामी पाता है। चाङ-क्यान्को हान् सम्राट् वू-तीने १३८ ई० पू० में यूचियोंको इस बातके लिए राजी करनेको भेजा था, कि वह हूणोंको ध्वस्त करनेमें पश्चिमकी ओरसे आक्रमण करके चीनका हाथ बँटाये। चाङ-क्यान्की यात्राके बारेमें हम पहले बतला चुके हैं। जब वह फर्गाना (तावान) पहुँचा, तो वहां शकोंका शासन था। उन्होंने चाङ-क्यान्को अच्छी तरह यूची शासकोंके पास पहुंचा दिया, जो कि उस समय सोग्द (जरफ़शाँ) और वक्षु (आमूदरिया) के बीचमें रहते थे। चाङ-क्यान्के लेखसे मालूम होता है, कि काङ-किन् (यक्सर्त, सिरदरिया) के उत्तरमें हूणोंका राज्य था और दक्षिणमें यूचियोंका। चाङ-क्यान्ने यूचियोंको उर्वर और समृद्ध ग्राम-नगरोंकी भूमिमें घुमन्तू जीवन बिताते देखा। यूची कृषि और वाणिज्यको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे और सैनिक तथा तदनुरूप घुमन्तू जीवनको ज्यादा पसंद करते थे। चाङ-क्यान्के पहुंचने तक वह बाख्त्रियाको जीत चुके थे। अपने पशुओं और तम्बुओंको लिए हुए यूची लोग ता-वान (फर्गाना), ताहिया (बाख्तर) और अन्-सी (पार्थिया) में घूमा करते थे।

---

[१] Greeks in Bactria and India (W. W. Tarn), Memoire sur l' Asie Centrale (Girard de Rialle, Paris 1875)

अपोलोदोतके बाख्त्रीय राज्यके विजेता यूचियोंके चार कबीलोंमें एक था असि-ई (यूची, अर्सी), जो किसी किसीके मतमें तोखारी (थोगुरोई) है। इनका केंद्रीय स्थान थोगोरा नगर रेशम-पथपर था। चीनी लेखकोंके अनुसार ई० पू० द्वितीय शताब्दीमें यूचियोंकी मूलभूमिमें तोगारा का अवशेष मौजूद था। बाख्त्रिया-विजयके समय चारों कबीलोंमें असिई अधिक शक्तिशाली थे। कुषाण इन्हींका एक प्रभुताशाली भाग बतलाया जाता है, यद्यपि इसकी भी संभावना है, कि कुषाण लघु-यूचीसे संबंध रखते हों। तरिम-उपत्यका का कूचा नगर उसी कुषाण नाम को बतलाता है। तोखारी भाषाके नमूने हमें मध्य-एसियाकी मरूभूमिसे मिले हैं, यद्यपि वह उस समयके नहीं हैं, जब कि यूची बाख्त्रियाके स्वामी थे। बाख्त्रियाका नाम पीछे जो तोखार पड़ा, वह इन्हीं तोखारियोंके प्रभुत्वके कारण ही। स्वेन्-चाङने भी दरबंदसे हिंदूकुश पर्वत-मालातक वक्षुके दोनों तरफकी भूमिको तुखार (तुषार) कहा। अरब इसके कितने ही भागको तुखारिस्तान कहते थे। पीछे तुर्कोंकी प्रधानताके कारण अफगानिस्तान और ईरानवाले इसे तुर्किस्तानका एक अंग मानने लगे। तोखारी भाषा, जो मध्य-एसियाके हस्तलेखोंमें मिली है, कुषाणोंकी भाषा थी, जिसका संबंध शक-भाषासे था। इसमें हिंदी-युरोपीय भाषाके केन्तम परिवारकी (पश्चिमी यूरोपीय) भाषाका कुछ कुछ रूप मिलता है, जब कि ईरानी, संस्कृत और पुरानी शक भाषा शतम-परिवारसे संबंध रखती थी। कुछ युरोपीय पुरातत्ववेत्ताओंने तो कूचाकी स्त्रियोंमें अपनी पुरानी नारियोंकी वेष-भूषा और चित्रोंमें उनकी नीली आंखोंको देखकर यह निर्णय कर डाला, कि यह यूरोपसे आई कोई जाति थी, जो एसियाटिक शक-समुद्र के भीतर एक द्वीपकी तरह कूचा और उसके आसपासमें बस गई। केंतम भाषाके लक्षण कितनी मात्रामें है, यह एक विचारणीय बात है, नहीं तो नीली आंखें और भूरे बाल शकोंमें ही नहीं, बल्कि वैदिक आर्योंमें भी पाये जाते थे। बुद्धकी आँखें अतिसी (अलसी) के फूलकी तरह नीली थीं। महाकवि अश्वघोषकी माँ सुवर्णाक्षी (पीली आंखोंवाली) थीं। मेनान्दरके समकालीन पतंजलि ब्राह्मणके शरीर लक्षण कपिल वर्ण और पिंगल केश बतलाते हैं। कूचाकी स्त्रियोंसे कुछ मिलता-जुलता कोट हिमालयमें जौनसार और जौनपुरकी स्त्रियोंमें आज भी देखा जाता है (यहाँ जौन शब्दका ग्रीक यवनोंसे कोई संबंध नहीं है, यह यमुनाकी उपत्यकाका परिचायक है)।

१२८ ई० पू० में चाङ-क्यान्ने[१] यूचियोंको समरकंद और वक्षु नदीके बीचमें डेरा लगाये देखा था। ता-वान् (फर्गाना) में उस समय शकोंका शासन था। संभव है, पहिलेसे ही यहाँ शक-शासन रहा हो, और उन्होंने यूचियोंको अपना अधिराज स्वीकृत कर लिया हो। यह हमें मालूम ही है, कि उनके पूरब और उत्तरके पर्वतोंमें वू-सुनोंका निवास था। हेलियोकल जिस समय भारत-विजयमें लगा हुआ था, उसी समय यूचियोंको मौका मिला और उन्होंने ग्रीको-बाख्त्रीय शासनका खातमा कर दिया। यूची शक-भाषा-भाषी थे। वू-सुन्, सइ-वाङ, कंग और पार्थिव (पार्थियन या पह्लव) यह सभी भाषायें शक-भाषाकी ही भिन्न-भिन्न बोलियां थीं। इसीलिए चाङ-क्यान् लिखता है,[१] कि फर्गानासे पार्थिया तक एक सी ही भाषा बोली जाती है। रोमन इतिहासकार स्त्रावो जब शकोंके बाख्तर जीतनेकी बात करता है, तो उसका अभिप्राय यूचियोंसे है। ग्रीक लेखकोंने बाख्तर-विजेता चार घुमन्तू जातियोंका नाम लिया है—(१)

---

[१] The story of Chang Kien (Fr. Hirth, J A O S 1917, pp. 89)

असिई, (२) पसिउनी, (३) तोखारी और (४) सकरौली। इनमें असिई या अर्सी यूची मालूम होते हैं। कुछ लोग तोखारियोंको यूची बतलाते हैं। कुषाण-वंश तोखारी था, इसलिए लघु-यूचीके अन्तर्गत था। पीछे कदफिस् (१) के रूपमें पांच शक-जातियोंके संघर्षमें हम कुषाणोंको सफलता प्राप्त करते देखते हैं। हो सकता है, रोमन इतिहासकारोंकी चार शक जातियाँ भी इन्हींके अन्तर्गत हों। पूर्वी मध्य-एसियामें तुखारी भाषाकी ए और बी दो बोलियोंके अभिलेख मिले हैं, जिनमें ए बोली कराशर (तुर्फान) की थी और बी बोली कूचाकी। बी बोली के साथ कुषाणोंका संबंध स्थापित किया जा सकता है, लेकिन इन दोनों बोलियोंके कराशर और कूचाके जो नमूने मिले हैं, वह शकोंके बाख्तर-विजयके कई शताब्दी पीछेके हैं। कूचाकी भाषामें केन्तमका प्रभाव देख कर यहांके लोगोंको यूरोपसे आई जाति साबित करनेकी जो कोशिश की गई है, वह विचारणीय अवश्य है, किंतु हम यह भी जानते हैं, कि भाषा सर्वत्र रक्तकी परिचायिका नहीं होती।

यूची लोगोंमें शकोंकी परंपराके अनुसार स्त्रियोंका स्थान काफी ऊँचा था, पति घरसे बाहरके काम-काजमें भी पत्नीकी राय लिया करता था। हमें मालूम है, कि कुरव जिस लड़ाईमें मरा, उसकी संचालिका एक शक-स्त्री थी। ऐसे दुर्धर्ष शत्रुके सामने, जिसके घोड़सवार-धनुर्धरोंकी संख्या एक लाख बतलाई जाती है, यवनोंके लिये ठहरना मुश्किल था। तब भी उनमें दिग्-विजयकी एक सनक सवार थी। अपनी शक्तिको छिन्न-भिन्न होते देखकर भी हेलियोकल हिंदूकुश पार दिग्विजयके लिये जानेसे अपनेको नहीं रोक सका। उसके सामने जहाँ यूची उत्तरसे सैलाब की तरह बढ़ते चले आ रहे थे, वहाँ उत्तर-पूर्वमें पार्थिव शक्तिशाली हो गये थे। पार्थिव जैसी एक छोटी सी शक जाति सेल्यूकीय और बाख्त्रीय प्रतिद्वन्द्विता तथा कंगोंकी सहायतासे ईरानके उत्तरमें कास्पियन तटवर्ती (पार्थिया) प्रदेशको हाथमें करके अब एक विशाल राज्यका रूप ले चुकी थी। उसने सेल्यूकियोंको दबाते हुए एक और काम यह किया, कि यूची शकोंमेंसे कुछको ले जाकर पूर्वी ईरान (सीस्तान) में बसा दिया। लेकिन स्वच्छन्दता-प्रिय घुमन्तू शक भला किसके होते? छठें पार्थिव राजा फ्रात (२) (१३८-१२४ ई० पू०)—जो कि प्रतापी मिथ्रदात (१) (१७०-१३८ ई० पू०)का उत्तराधिकारी था—इन्हीं शकोंकी एक बड़ी सेना लेकर अन्तियोक (सेल्यूकी) से लड़ने गया था। किसी बात पर शकोंसे पार्थियोंका झगड़ा हो गया और युद्ध क्षेत्र हीमें शक बिगड़ उठे। फ्रात इसी लड़ाई में मारा गया और तब (१२६ ई० पू०) से शकों (यूचियों) और पार्थियों (पह्लवियों या पल्लवों) का झगड़ा स्थायी हो गया। फ्रातका उत्तराधिकारी अर्तवान मिथ्रदात (२) (१२४-८८ ई० पू०)भी इन्हींके कारण युद्धमें मारा गया। मिथ्रदात (२) ने अंतमें समझ लिया, कि शकोंसे मध्य-एसियाको छीना नहीं जा सकता, इसलिए मसोपोतामियासे बाख्त्रिया तक एक पार्थिव साम्राज्यको स्थापित करनेके स्वप्नको उसे छोड़ देना पड़ा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि पार्थिवोंने अपने दो शाहोंकी मृत्युका बदला यूचियोंसे नहीं लिया। बाख्त्रियाके यूचियोंका वह बहुत बिगाड़ नहीं सके, किंतु सीस्तान के शकों पर मिथ्रदात (२)के सेनापति सोरेन ने १२४ ई०पू० से ११५ ई० पू० तक लगातार जबर्दस्त प्रहार किये और ११५ ई०पू० के आसपास अर्थात् जब कि यूची बाख्त्रिया पर अपने शासन को मजबूत कर चुके थे, शकों को शकस्तान छोड़कर भागने के लिये मजबूर किया। शक ११५ ई०पू० के आसपास वह बलोचिस्तान और सिंध की ओर भागे। वहाँ उन्होंने अपना शासन स्थापित किया। उनके पश्चिमी भाइयों की समृद्धि जिस समय बढ़ रही थी, उसी समय

इन शकों ने सिंध को लेकर सौराष्ट्र, अवन्ती और मथुरा तक अपने राज्य का विस्तार किया और इन्होंने क्षहरात वंशी अपने नेता मोग के नेतृत्व में ७७ ई०पू० के आसपास गंधार से कपिशा तक को भी विजय करने में सफलता पाई।

(१) क्षहरात वंश

यूची बाख्त्रिया के शासक थे, और मोग तथा उनका कबीला धीरे धीरे बलोचिस्तान, सिंध, सौराष्ट्र, अवन्ती, मथुरा, कपिशा और गंधार तक का शासक बन गया। इन दोनों का आपस में क्या संबंध था, इसका स्पष्ट पता नहीं लगता। बहुत से कबीले होने के कारण, हो सकता है, वह अलग अलग शासन करते हों। हूणों के समय से ही हम जानते हैं, इन कबीलों का संघ उतना मजबूत नहीं होता था। इनके उपराजों को यदि साधारण शासित प्रजा स्वतंत्र राजा समझती हो, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं। बाख्त्रिया के यूची के शासकों के बारे में भी हमें मालूम नहीं है। पहिले आनेवाले यूचियों का पता उनके सिक्कों से कुछ स्पष्ट हो जाता है। तक्षशिला मोग की राजधानी थी और बाख्त्रिया की राजधानी शायद बामियान में थी। मोग क्षहरात वंश का था। अवन्ती सौराष्ट्र का शासक इपान भी क्षहरात-वंशी था। मथुरा का शक रजूबुल भी क्षहरात वंशी था, इसलिये हम कह सकते हैं, कि यूचियों की जो शाखा भारत की ओर आई, उनके सामन्तों का वंश क्षहरात था।

(२) मोग (७७-५८ ई० पू०—

भारत में आये शकों (क्षहरातों), बल्कि सारे यूचियों में भी मोग प्रथम शक राजा था, जिसका हमें पता है। और जगहों में भी इसके उपराज रहते थे, मथुरा और उज्जैन में क्षहरात वंशी क्षत्रपों का होना इसी बात को साबित करता है। शायद मोग उनका प्रधान था। मोग ने सिंध से उत्तर की ओर बढ़कर गंधार (तक्षशिला) को जीत उसे अपनी राजधानी बनाया। इसके सिक्कों पर पहले राजा मोग लिखा रहता था, किंतु पीछे अधिक राज्यवृद्धि के कारण "रजतिरजस महतस मोअस" '(राजाधिराज महान् मोग) लिखा जाने लगा। "महत" का अलग प्रयोग केवल ग्रीक राजाओं के सिक्कों के 'मेगोलस' का ही अनुकरण जान पड़ता है। मोग झेलम तक ही ले सका। इसके आगे मिनान्दर के वंशज अब भी शासन करते रहे। मिनान्दर-पुत्र स्त्रात (१) उसका पौत्र स्त्रात (२) और तद्वंशी दूसरे राजा भी पंजाब की कुछ भूमि पर अपने अस्तित्व को कायम रक्खे रहे। हां, पश्चिमी सीमांत पर मोग जैसे प्रबल शत्रु को देखकर रावी से यमुना तक के भाग पर कुणींद्र, आर्जुनायन, यौधेय आदि जातियों ने स्वतंत्र हो गणराज्य कायम कर लिये। यवनों के शासन से पहले भी यहाँ की जातियों के अपने गणराज्य थे, जो कि मिनान्दर और उसके पुत्र के शासन में दब से गये थे। मथुरा ६० ई०पू० के आसपास शकों की हो गई। सौराष्ट्र और अवन्ती के विजय के बाद मोग ने मथुरा को जीता होगा। यहाँ के क्षत्रप पहले हगाम और हगान थे, जिनके बाद महाक्षत्रप रंजुबुल (राजुल) हुआ। मोग के मर जाने

[1] Greeks in Bactria; प्राचीन भारत का इतिहास (भगवत शरण उपाध्याय) पृ० २०५।

के कारण शकराज्य छिन्न-भिन्न हो गया, इसी समय रजुबुलने महाक्षत्रप बनकर अपने को स्वतंत्र घोषित किया। क्षहरातवंशज हगाम का शासन ५८ ई०पू० अर्थात् विक्रम संवत का आरंभ समय था। हगाम ४० ई० पू० और रजुबुल ४० ई०पू० के बाद शासन करता रहा। उसके उत्तराधिकारी सोडास का शासन १० ई०पू० आसपास खतम हुआ।

मोग के सिक्कों पर ग्रीक लिपि में पहले "वसीलेउस् मउओस्" लिखा रहता था। जिस सिक्के पर मोगका नाम है, उसी पर हर्मेयस का भी नाम मिला है। हरमेयस् शायद ग्रीको-बाख्त्रीय राजा कपिशा(काबुल)का भी राजा था, जो कि गंधार (मोग के राज्य)के पश्चिममें थी। शायद गंधार लेने के बाद मोग ने इसे भी ले लिया। मोग की मृत्यु (५८ ई०पू०) के बाद भारत में शक राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। मध्य एसिया में स्थिति क्या थी, इसका पतानहीं लगता। भारत में विशेष कर कपिशा और गंधार में उनका स्थान पह्लवों ने लेलिया। बाख्त्रिया में संभवत: पह्लवों (पार्थियों) का बल उतना नहीं बढ़ा। यह हमें मालूम है, कि पह्‌लवों के साथ के संघर्ष के कारण सोरेन पह्‌लव ने शकों को सीस्तान से भगाया था। पह्लवों के बारे में याद रखना चाहिये कि ईसा की ३री से ७वीं सदी तक यद्यपि शाही वंश ईरानी (सासानी) था, किन्तु कई शताब्दियों तक शासन करने में पह्लव (पार्थिव) इतने स्वदेशी और सम्मानित हो गये थे, कि सासानियों ने पार्थिवों के जिन सामन्त-वंशों की शक्ति और सम्मान को बनाये रक्खा। उनमें सोरेन पह्लव वंश प्रमुख था। सोरेन पह्लवों की भूमि रे (वर्तमान तेहरान) के आसपास थी। पह्लवों ने सीस्तान से शकों को भगाने में सफलता पाकर ही संतोष नहीं किया, बल्कि उन्होंने अपने प्रति-द्वंदियों को भारत में आके फूलते-फलते देख उनपर बराबर आंख रक्खी। घुमन्तू यूची अपने कितने ही वर्षों के पार्थिव संबंध तथा सीस्तान के निवास से पार्थिवों अर्थात् ईरानी संस्कृति और शासन व्यवस्था से इतने प्रभावित थे, कि उन्होंने अपने शासन में बहुत सी बातें ईरानियों से ले लीं, जिनमें क्षत्रप और महाक्षत्रप की उपाधि भी है। मोग के मरने के बाद क्षत्रप उपाधि के ही नहीं, बल्कि स्वयं पह्लवों को भारत में आने का मौका मिला और आगे करीब पौन शताब्दी (५८ ई०पू०-२५ ई०) तक हम पश्चिमोत्तर भारत पर पह्लवों का शासन देखते हैं।

(३) पह्लव[1] (४८ ई०पू०-२५ ई०)—

मोग और दूसरे शक राजाओं के शासन का पता जिस तरह उनके सिक्कों से ही लगता है, उसी तरह पह्लवों का पता भी हमें उनके सिक्के ही देते हैं। पह्लव, पल्लव, पार्थिव और पार्थियन एक ही जाति के वाचक शब्द हैं। पह्लव वंशने ईरानपर २४९ ई० पू० से २२६ ई०) तक शासन किया,। इसके राजाओं की संख्या २९ थी। ईरान में इन्होंने सेलूकीय (ग्रीक) राज्य का स्थान बड़े संघर्ष के बाद लिया। ईरानी संस्कृति के बाद जिस संस्कृति का सबसे अधिक प्रभाव पह्लवों पर पड़ा था, वह थी ग्रीक संस्कृति। शक, पह्लव, ग्रीक (यवन) आरंभिक काल में भारत और बाहर आपस में राजशक्ति के लिये चाहे कितने ही लड़े हों, किंतु वह शान्ति के समय अपने को भाई-भाई समझते रहे। ई० सन् के बाद इन्होंने भारत के बहुत से राजवंशों को

---

[1] यही हिन्दू-पार्थिव, श्री भा० शं० उपाध्याय के अनुसार (प्राचीनभारत का इतिहास पटना १९४९)

दिया, यहां के राजाओं के साथ विवाह संबंध किया, बड़े बड़े नागरिक और सैनिक पदों को प्राप्त किया और अंत में राजपूत बनकर भारत की पुरानी क्षत्रिय जाति में मिल गये। विवाह-संबंध के कारण पह्लव सातवाहनों के संबंधी बने। सातवाहनों की एक शाखा (इक्ष्वाकु) जो धान्य कटक ((जि. गुन्तूर) से शासन कर रही थी, जिसके बनवाये (ईसा की २री-३री शताब्दी के) स्तूप और विहार श्रीपर्वत (नागार्जुनी कोण्डा) और दूसरे स्थानों में अब भी मिलते हैं। इनके शिला-लेखों और मूर्त्तियों से पता लगता है, कि उज्जैन के शकों के साथ इनका वैवाहिक संबंध था। इन्हींके उत्तराधिकारी दक्खिन के पल्लव राजा थे, जो ३री शताब्दी में कांची में अपना एक शक्तिशाली राज्य स्थापित करने में सफल हुये है। कांचीके पल्लव राज्यने चार शताब्दियों तक दक्षिण में एक सबल और समृद्ध शासन का ही रूप नहीं लिया, बल्कि भारतीय कला और साहित्य के विकास में उसने वही पार्ट अदा किया, जो कि उत्तर में गुप्तों ने किया। यही नहीं, जावा, कम्बोज आदि में भारतीय संस्कृति और कला के विस्तार में सबसे अधिक हाथ पल्लव संस्कृति का है। इस प्रकार हम जान सकते हैं, कि पौन शताब्दी का पह्लव शासन भारत के लिये कोई नगण्य घटना नहीं है। स्वतंत्र पह्लव शासकों की राजधानी तक्षशिला थी। इनके सिक्कों से हमें निम्न पह्लव राजाओं का पता लगता है: [१]—

बोनान ७-१६ ई०
स्पलहोर
स्पलरिश १५ ई०
स्पलगदम
अय १६-१७ ई०
अयिलिस १७-१८ ई०
गुंदफर २५ ई०

दूसरा और कोई साधन न होने के कारण हमें सिक्कों की सूचना पर निर्भर रहना पड़ता है, किंतु उससे वंश-परंपरा साफ तौर से नहीं जानी जा सकती। एक बात तो स्पष्ट मालूम होती है, कि हमारे इतिहासकार बोनान को जो प्रथम पह्लव शासक मानते हैं, उसमें वह ईरान के पार्थिव राजवंश के इतिहास को देखने का प्रयत्न नहीं करते। बोनान या बनाना १६ वां पार्थिव राजा था, जिसने ७ ई० से १६ ई० तक शासन किया था। जान पड़ता है, उसीके समय में पह्लवों का शासन एक स्वतंत्र राज्य के तौर पर स्थापित हुआ। स्पलहोर बोनान का पुत्र था। बोनान के सिक्के, मालूम होते हैं, भारत के लिये नहीं, बल्कि सारे पार्थिव-राज्य के लिये ढाले गये थे। स्पलहोर के सिक्के की एक तरफ लिखा रहता है "वसीलेउस् वसीलेउन" और दूसरी ओर "महाराज भ्रातस ध्रमिअस स्पलहोरस। इससे मालूम होता है, कि स्पलहोर बोनान का भाई था। "धार्मिक" का अर्थ है, बौद्ध धर्म का अनुयायी। लेकिन मोग के मरने (५८ ई० पू०) और बोनान (१) के राज्यारूढ (७ई० होने के बीच में ६५ वर्षों का अन्तर है। यदि हम बोनान को पार्थिव सम्राट् न मानें, तो मोग की मृत्यु के बाद ही इसको हम शकों का उत्तराधिकारी मान सकते हैं। बोनान के सिक्के में एक ओर ग्रीक

[१] भारतीय सिक्के (श्रीवासुदेवशरण उपाध्याय, प्रयाग १९४८ पृ० ११९-२५)

लिपि में "राजाओं का राजा बोनान" लिखना सारे पार्थिव साम्राज्य की दृष्टि से है, और दूसरी ओर उसके भाई स्पलहोर का केवल महाराज-भ्रात लिखा जाना यही बतलाता है, कि वह पार्थिव सम्राट् का उपराज मात्र था। भारतीय पह्लवों ने अपने सिक्कों में उसी तरह ग्रीक-लिपि, देवताओं और पदवियों का अनुकरण किया, जैसा कि मोग ने किया था। इनके कुछ सिक्के चौकोर भी हैं, जिनमें एक ओर ग्रीक देवता हेरकल की मूर्ति और ग्रीक लेख होता है, और दूसरी ओर ग्रीक देवी पल्लस की मूर्ति। कुछ सिक्कोंमें स्पलहोर और उसके पुत्र स्पलगदम का भी नाम प्राकृत भाषामें अंकित मिलता है। स्पलगदम को भी "ध्रमिअ" लिखना उसके बौद्ध होने का परिचायक है। इन सिक्कों में प्राकृत भाषा खरोष्ठी लिपि में लिखी हुई है, जो कि पश्चिमोत्तरीय भारत में अशोक के समय से ही प्रचलित लिपि चली आती थी। पह्लवों और शकों का पश्चिमोत्तर भारत से संबंध और ग्रीकों के अनुकरण की प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी, कि उन्होंने सौराष्ट्र और अवन्ती जैसे ब्राह्मी-लिपि के क्षेत्र में पहुँच कर भी ग्रीक लिपि का उपयोग अपने सिक्कों में किया। बोनान का एक दूसरा भाई स्पलरिश था, जो शायद स्पलहोर के बाद शासक बना। इसके एक सिक्के में अयका नाम भी मिलता है, जिससे मालूम होता है, कि जिस तरह बोनान और स्पलहोर, स्पलगदम, और बोनान से स्पलरिश का संबंध था, उसी तरह का संबंध अय से स्पलरिश का भी रहा होगा। स्पलरिश के सिक्के पर त्रिशूलधारी राजा की खड़ी मूर्ति है। सिक्के की एक ओर ग्रीक अक्षरों में राजा की उपाधि और स्पलरिश नाम लिखा हुआ है, दूसरी ओर ग्रीक देवता जेउस की सिंहासन पर बैठी मूर्ति तथा खरोष्ठी लिपि में लेख "महरजस महतस स्पलरिश।" स्पलरिश जान पड़ता है, बोनान की अधीन नहीं बल्कि अब स्वतंत्र शासक बन गया था। इस अकेले नामवाले सिक्के के अतिरिक्त उसका दूसरा भी सिक्का मिलता है, जिसमें एक ओर ग्रीक लिपि में स्पलरिश का नाम खुदा रहता है, और दूसरी ओर खरोष्ठी में अय का नाम। इन सिक्कों में एक ओर राजा घोड़े पर सवार और दूसरी ओर उसकी मूर्ति के साथ अय का नाम रहता है। यह बतलाता है, कि अय अभी स्पलरिश के उपराज या क्षत्रपकी तरह शासन करता था। जब अय स्वतंत्र शासक हो जाता है, तो एक ओर उसकी घोड़सवार मूर्तिके साथ ग्रीक लिपिमें उसकी राजोपाधि और नाम रहता है, और दूसरी ओर किसी ग्रीक देवी देवता की मूर्ति के साथ खरोष्ठी लिपि में "'महरजस रजरजस महतस अयस" लिखा रहता है। किसी सिक्के पर एक ओर मोअका नाम और दूसरी ओर अय का नाम भी उत्कीर्ण देखा जाता है, जिससे संदेह होने लगता है, कि अय मोअ के बाद शासनारूढ हुआ। लेकिन साथ ही हम अय की अधिराजी परंपरा अय-स्पलरिश-बोनान को भी जानते हैं, इसलिये इस सिक्के के बारे में कहा जा सकता है, कि अय ने मोअ के सिक्के की एक ओर अपने नाम का ठप्पा लगवा दिया। यदि हम अय को प्रथम मानें, तो स्पलरिश के साथ उसके लघुशासक होने की संगति नहीं स्थापित कर सकते। स्पलहोर बोनान का भाई था और स्पलरिश भी; लेकिन स्पलगदम, स्पलहोर और स्पलरिश का अय के साथ किस प्रकार का रक्त-संबंध था, इसे जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है।

पह्लव (विशेषकर अय के) सिक्कों पर पीछे कुछ भारतीय देवताओं की भी मूर्त्तियाँ मिलने लगती हैं। अय के दस प्रकार के चांदी के और कई प्रकार के तांबे के सिक्के मिले हैं। दोनों में यूनानी देवी-देवताओं की प्रधानता पार्थियों के "फिलहेल" (यवन-पुत्र) के भाव को प्रगट करती है। कुछ और सिक्कों के कारण अय का उत्तराधिकारी अयलिश बतलाया जाता है, जिससे ही

एक नये पह्लव राजा द्वितीय अयस का अनुमान किया जाता है। इसके राज्यपाल अस्पवर्मा के सिक्केकी एक ओर घोड़े पर सवार चाबुक लिये राजाकी मूर्ति तथा अत्यन्त भद्दे यूनानी अक्षरोंमें उपाधि के साथ अय का नाम है और दूसरी ओर यूनानी देवी पल्लस की मूर्त्ति तथा खरोष्ठी लिपि में "इंद्रवर्मपुत्रस अस्पवर्मस स्त्रतगस जयतस" लिखा है। हम जानते हैं, कि ग्रीक शासनकाल में क्षत्रपी (प्रदेश) के शासक को "स्त्रतेगोस" कहते थे। सेलूकीय साम्राज्य में ७२ स्त्रतेगोस थे। पह्लव सिक्कों के देखने से पता लगता है, कि उनके सिक्के का प्रथम पार्श्व अधिराज की मूर्ति उसके नाम और उपाधि के लिये सुरक्षित था और दूसरा पार्श्व उसके स्त्रतग (उपराज, राज्यपाल) के लिये। अस्पवर्मा में अब भी ईरानी शब्द का रूप "अस्प" मौजूद है, किंतु उसका पिता इन्द्र-वर्मा शुद्ध भारतीय नाम रखता है। दक्षिण के पह्लवों में तो आगे चलकर वर्मा सभी राजाओं की साधारण उपाधि हो गई, जो अभी भी त्रिवांकुर और कोचीन के राजाओं के नाम के साथ देखी जाती है।

जिस अंतिम पह्लव राजा को कुषाण कुजुल ने हराकर अपने वंश की स्थापना की, उसका नाम पकारे कहा जाता है। ईरानी पार्थिव वंश का २२वां राजा पकोर २७७ ई० के आसपास हुआ था, जिसका और अर्दवान (४) का संघर्ष रहा। इसके पहले पकारे (पाकुर) प्रथम हुआ, जो अर्दवान (१६-४२ ई०) का ही दूसरा नाम या प्रतिद्वंद्वी रहा होगा। गुंदफर का भी एक विशेष स्थान है। कितने ही लोग गुंदफर को गर्दभिल्ल राजा बनाना चाहते हैं। यूनानियों के काल से अब ईरान और भारत इतने दूर हो गये थे, कि उनके सिक्कों पर लकीर पीटते हुये यूनानी लिपि और भाषा का उपयोग बहुत ही भद्दे और अशुद्ध रूप में ही होता था। प्रो० राखालदास बनर्जी का मत है, कि गुन्दरफर कनिष्क और हुविष्क के समय (७८-१५२ ई०) राज करता था। गुन्दरफरके सिक्कों की एक तरफ घुड़सवार राजा की मूर्ति, ग्रीक लिपि में उपाधि और नाम तथा दूसरी ओर जेउस या पल्लसकी मूर्ति तथा खरोष्ठी अक्षरों में "महरजस रजतिरस त्रतरस देवव्रतस गुदफरस" (महराज राजाधिराज त्राता देवव्रत गुंदफरका) होती है। बाद के सिक्कों से यह भी पता लगता है, कि उसके भाई अथग्नि और भाई के पुत्र अवगद ने भी गुन्दरफर के उपराज के तौर पर शासन किया था। गुंदफर के एक सिक्के पर जहां एक ओर घोड़सवार मूर्ति और ग्रीक लिपि में उत्कीर्ण राजाकी नामोपाधि मिलती है, वहां दूसरी ओर विजय देवी को हाथ में लिये जेउस की मूर्ति तथा खरोष्टी में "महरजस रजतिरजस गुदफर भ्रतपुत्रस अवगदस" (महाराज राजाधि-राज गुंदफर के भाई के पुत्र अवगदका) [१] इनके अतिरिक्त सनवर तथा पकुर आदि पह्लव शासकों के और भी सिक्के मिलते हैं, जो इस वंश के अंतिम शासक रहे।[१]

---

[१]भारतीय सिक्के (वासुदेव शरण उपाध्याय) पृ० १२७

२. तुलनात्मक शक-पह्लव-वंश

ई०	भारत	चीन	दक्षिणापथ	ईरान
१	(शातवाहन)	पिङ्ती १-६	बोनान ७-१६	(पार्थिव)
			बोनान ७-१६	उरुद II २-६
			अय १६-१७	अर्दवान् १६-४२
			गुंदफर १८-२५	
२०		क्वाङ्वूती २५-५८	कुजुल I २५-५०	
४०	हाल			वारदान४२-४६
			बीम ५०-७८	वल्गश (I) ५१-७७
६०		मिङ्ती ५८-७६		
		चाङ्ती७६-८९	कनिष्क ७८-१०१	पाकुर ७७-१०५
		होती ८९-१०६		
१००	गौतमीपुत्र-१०६-१३०	अन्-ती १०७-१२६	वसिष्क १००-१०६	खुस्रव१०५-११३
			कनिष्क II ११९	
१२०		शुन् ती १२६-१४५	हुविष्क १२०-५२	
				वल्गश II, III १३३--१९१
१४०	पुडुमावि १५५	ह्रान्ती १४७-१६८	वासुदेव १५२-१८६	
१६०	यज्ञश्री १६६-१९६	लिङ्ती १६८-१८९		
१८०		स्यान् ती १८९-२२०		वल्गश १९१-२०८

२. कुषाण (२५-४२५ ई०)

यूची (ऋचीक) जन के मध्य-एसिया पर अधिकार करने की बात हम कह चुके हैं, और यह भी, कि पार्थिवों (पह्लवों) के प्रहार के कारण उनके एक कबीले को सीस्तान प्रदेश में कुछ वर्षों तक रह वहाँ अपना नाम छोड़ भारत की ओर भागने के लिये मजबूर होना पड़ा। इस कबीले का नाम मालूम नहीं। उसे केवल शक कह देने से बात और भी अस्पष्ट हो जाती है, क्योंकि ईसा की प्रथम शताब्दी में बहुत सी शक-शाखायें थीं—त्यानशान् और सप्तनद में वू-सुन, उनके उत्तर में सइवाङ, और दक्षिण (तरिम-उपत्यका) में लघु-यूचियों के वंशज, तुषारके पश्चिम (वर्तमान ख्वारेज्म कराकल्पकिया और उज्बेकिस्तान) में कंग, जिनके पश्चिम में वोल्गा की ओर अलान (ओसेत), जिनके दक्षिण-पश्चिम में पार्थिव (पुराने दहै, जो पारस की खाड़ी तक के स्वामी

थे), बाख्त्रिया के यूची वंशज, और शकस्तान (सीस्तान) से निकलकर बिलोचिस्तान, सिंध, पंजाब, सौराष्ट्र और अवन्ती में फैले शक। सीस्तान से आनेवाली पहली शक बाढ़ के सरदारों का वंश क्षहरात था। यह तक्षशिला, सौराष्ट्र, अवन्ती और मथुरा के शक-शासकों के वंश के नाम से सिद्ध होता है। हम इस पहली बाढ़ को उनके सरदारों के कुल के नाम पर क्षहरात कह सकते हैं। घुमन्तू जातियों का नाम अपने शासक के कुल या प्रतापी शासक के नाम पर पड़ जाना अक्सर देखा जाता है। मध्यएसिया के आजकल के उज्बेकों का नाम मंगोल-वंशीय एक पुराने राजा उज्बेक खान[1] के नामपर पड़ा, जो कि सुवण-ओर्दू मंगोलोंका खान था, जिसने सबसे पहिले इस्लामको स्वीकार किया। क्षहरात वंशकी राजलक्ष्मीको लूटनेवाले उनके पुराने शत्रु पह्लव थे, जिनकी बात हम कह चुके। इसके बाद जो इतिहासमें अत्यन्त प्रतापी शकवंश आता है, उसे कुषाण कहा जाता है। कितने ही ऐतिहासिकों का मत है, कि यह मूलतः लघु-यूचियोंके वंशज तरिम उपत्यकाके तुखारोंकी ही एक शाखा थी, जिनका नाम वहाँके कूचा नगरमें अब भी मिलता था। जिस वक्त उनके बड़े महायूची बाख्त्रिया और कपिशा-गंधार-सिंधके शासक बने, उसी समय इन्होंने पामीर और गिल्गितकी पर्वतमालाओंमें अपने पैर फैलाये। यह याद रखनेकी बात है, कि पहलेके हूणों और तुर्कोंकी भाँति शक घुमन्तू भी तम्बुओंमें रहते घुमन्तू जीवन बिताना अपना धर्म समझते थे। गृहवासी लोग उनकी दृष्टिमें कायर और दब्बू थे। पाँच शक-कबीलोंमें शक्तिके लिए प्रतिद्वन्द्विता हुई, जिसमें कुषाण कबीलेने अपने सरदार कुजुलके नेतृत्वमें सफलता प्राप्त की। उस समय सभी कबीले गंधार और कपिशाके उत्तरके पहाड़ोंमें रहते थे। कुजुलने अपने बाकी चार कबीलोंको ही ढकेलकर अपने कबीलेको आगे नहीं बढ़ाया, बल्कि उसीने भारत में पह्लव वंशका उच्छेद किया।

कुषाण राजा—

१. कुजुल कदफिस	२५-५० ई०
२. विम कदफिस	५०-७४ ई०
३. कनिष्क (१)	७४-१०१ ई०
४. वाशिष्क	१०१-६ ई०
५. कनिष्क (२)	११९ ई०
६. हुविष्क	१२०-५२ ई०
७. वासुदेव	१५२-८६ ई०
पिरो	चौथी सदीका अन्त

(१) कुजुल कदफिस्[2] १ (२५-५० ई०)

कुजुलके विजय प्राप्त करनेके समय कपिशा (काबुल) में ग्रीक राजा हरमेयसका शासन था, जो संभवतः पह्लव शक्तिके निर्बल होनेके समय कपिशाका स्वामी बन गया था। उसने

---

[1] देखो मध्यएसिया का इतिहास (२) पृष्ठ ३०-३२ (१३०३-४० ई०)

[2] प्राचीन भारतका इतिहास (भ० श० उपाध्याय, पटना १९४८ ई०) पृ० २१३ भारतीय सिक्के (वा० श० उपाध्याय) पृ० १२९, Coins of Ancient India (J. Allan 1936); Coins of ancient India (Rapson)

कपिशाको जीता, या पुराने यवन-वंशकी किसी शाखाने पह्लवोंकी निर्बलतासे लाभ उठाया और उसी वंशका अंतिम राजा हरमेयस था, यह निश्चित तौरसे नहीं कहा जा सकता। इतना मालूम है, कि हरमेयसके सिक्के में उसके साथ कुजुलका भी नाम मिलता है। कुजुलके एक सिक्केपर जिस ओर ग्रीक अक्षरोंमें "वसिलेउस कुषानो कोजोलो कदफिजोयुस" लिखा रहता है, उसी तरफ हरमेयस का आधा शरीर भी चित्रित है, दूसरी ओर ग्रीक देवता हेरकलकी आकृति तथा खरोष्ठी लिपिमें "कुजुलकसस कुषाण यवगस ध्रमठिदस" रहता है। हम पह्लवोंके उदाहरणसे जानते हैं, कि उस वक्त सिक्केकी एक तरफ अधिराजका चित्र और नाम होता, और दूसरी ओर शासकका खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में नामोपाधि उत्कीर्ण होती। यदि यह बात यहाँ भी ठीक है, तो हो सकता है, हरमेयस अधिराज था और कुजुल उसका क्षत्रप या अधीन-शासक था। कुजुल कुषाण-वंश का यवगू था। यवगू या जेब्बू पीछे मध्य-ऐसियाके तुर्कोंमें उपराजकी एक प्रचलित साधारण उपाधि थी। इस उपाधि का सबसे पहला उल्लेख इसी कुजूल कदफिसके सिक्के में मिलता है। ध्रमठित (धर्मस्थित) पाली धम्मिय (धार्मिक) का ही पर्याय है और जो आम तौरसे बौद्ध राजा ही अपने लिये इस्तेमाल करते थे। ईसाकी प्रथम शताब्दीमें तरिम-उपत्यकामें निश्चय ही बौद्ध धर्म का प्रचार था। इस प्रदेशके दक्षिणी भाग में उस समय भारतीय लिपि और भारतीय भाषा का प्रयोग होता था। नाम आदिसे मालूम होता है, कि भारतसे जाकर बस गए लोगोंका वहाँ प्राधान्य था। तरिम्-उपत्यकाके उत्तरी भागमें शक-जातियों (तुषारों) का निवास था। यद्यपि भाषा, जाति और रीति-रिवाजमें उत्तर दक्षिणका अंतर था, तो भी वहाँ दक्षिण में कराकुरम और क्वेनलन पर्वतमालाके अन्तरमें बढा हुआ भारत मान सकते थे। वहाँ से उत्तर शक-तुषारोंका देश था। जहाँ तक बौद्ध धर्मका संबंध है, दोनों प्रदेश एकही धर्म और संस्कृतिके माननेवाले थे। इसलिये कुषाणोंके यबगु कुजुलका बौद्ध राजा होना कोई असाधारण बात नहीं थी। आगे सिक्कों परसे हरमेयसका नाम हट जाता है,और उसकी जगह शिरस्त्राण पहने राजाका सिर या दूसरे संकेत के साथ ग्रीक भाषा और लिपिमें कुजुलका नाम मिलता है और दूसरी ओर बैठे हुए राजा, ऊंट या देवता आदि की मूर्तिके साथ "कुषाण यवुगस ध्रमठिदस" या "महरयस रयरयस देवपुत्रस", अथवा "महरजस महतस कुषाण" के साथ "कुजुल-कुश महरयस रजतिरजस यवगुस ध्रमठिदस" मिलता है। हरमाउसके अधीन शासकके तौरपर कुजुल अपना शासन आरंभ करता है। यह भी हमें मालूम है, कि यूचियों द्वारा बाख्त्रियासे यवन-शासनके उच्छेद होनेके समय पुराने यवन राजवंशके लोग दुर्गम पहाडों की ओर भाग गये, जहाँ उन्होंने अपनी प्रजाकी श्रद्धा और भक्ति का लाभ उठाकर अपने छोटे-छोटे राज्य कायम कर लिये। पामीर (इमाओस), और चित्रालके पहाडों में ऐसे बहुतसे छोटे-छोटे राजवंशोंका अभी हालतक अस्तित्त्व था, जो अपनेको सिकन्दर अर्थात् ग्रीक राजाओंका वंशज मानते थे। कुजुलको कुछ इतिहासकार मोगका वंशज मानते हैं, किंतु ऐसा होनेपर फिर वह न तुषारी रहेगा और न क्षहरात छोड़कर कुषाण वंश नाम देनेकी उसे आवश्यकता रहेगी। चीनी ग्रंथोंमें भी कुजलका नाम आता है। जान पडता है, कुजुलको कुषाण वंशकी नींव डालने के लिये अपने सारे जीवन भर संघर्ष करना पडा। चीनी लेखकोंके अनुसार वह ८० वर्षकी आयु में मरा।

(२) विम कदाफिस[1] (५०-७८ ई०)

विमके ओएम और दूसरे उच्चारण भी मिलते हैं। चीनी लेखकोंके अनुसार यही भारतका विजेता था। इसने अपने राज्यको कपिशा-गंधारसे और आगे बढ़ाया। संभवतः इसने ही यमुनाके पूरब भी अपनी राज्य सीमा पहुँचाई और बाख्त्रियाको भी अधीन किया। बिहारसे ख्वारेज्म तक फैले कनिष्कके विशाल राज्यके विस्तारमें उसके पूर्वाधिकारी विमका बहुत हाथ था, इसमें संदेह नहीं। विमके शासनकी एक सबसे महत्वपूर्ण घटना यह है, कि इसीने भारतमें सबसे पहले सोनेका सिक्का चलाया। यवनोंके पहले हमारे यहाँ तांबे या चाँदीके चौकोर (पंचमार्क) सिक्के चलते थे यवनोंने अपने सिक्कोंको गोल तथा राजाकी मूर्ति या दूसरी आकृतियोंके साथ अलंकृत करके निकाला, जिसका भद्दा अनुकरण क्षहरात और पार्थिव भी करते रहे, किंतु,इनमेंसे किसीने सोनेका सिक्का नहीं चलाया। विमने अपने सोनेके सिक्केमें रोमन सिक्केकी तौल आदि का अनुकरण किया है, और उसीकी तरह यह १२४ ग्रेनका होता है। अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यमें सोनेके सिक्केका बड़ा महत्व है, शायद इसीलिए विमने भारतमें सोनेके सिक्कोंका प्रचार किया। भारतका अंतर्राष्ट्रीय व्यापार इससे पहले भी ग्रीस, रोम, अफ्रीका, जावा, चीन और मध्य-एसिया तक था। उस वक्त जल या स्थलका सार्थ (कारवां) अपने साथ भारतीय माल ले जाता और बदलेमें दूसरा माल ले आता था। अब भी इस तरहका व्यापार होता था,किंतु माल ढोकर लेजानेकी जगह व्यापारी थोड़ेसे सोनेके सिक्कोंको ले जाकर बहुतसा माल खरीदकर ला सकते थे। विमके सोनेके सिक्के पर एक ओर शिवकी मूर्ति होती है। किसी किसीपर राजाके नामके साथ "महिश्वर" भी लिखा है, जिससे मालूम होता है, कि कुजुल जहाँ धर्मस्थित (बौद्ध) था, वहाँ विम माहेश्वर (शैव) था। इसके सिक्कोंपर एक ओर मुकुट-शिरस्त्राणधारी राजा हाथमें गदा और शूल लिए खड़ा है, तथा वहीं ग्रीक लिपिमें "बसिलेउस विमकदफिसस" उत्कीर्ण होता है, और दूसरी ओर "महरजस राजाधिरजस सर्वलोग इश्वरस महिश्वरस विमकदफिसस"। 'ईश्वर' और "महीश्वर" राजा और महाराजाके पर्याय हैं, इसलिए हो सकता है, "महीश्वर" (माहेश्वर) शैवका द्योतक न हो। इसके दूसरे तांबेके सिक्केकी एक ओर लंबी टोपी और लंबा लबादा पहने राजा खड़ा है। उसकी दाहिनी ओर हवन कुंड है। राजाके बांये हाथमें परशु है। इसी तरफ ग्रीक लिपिमें "बसिलेउस बसिलेउन सेतरमेगस विमकदफिस" लिखा हुआ है। सिक्केकी दूसरी ओर नंदीके साथ त्रिशूलधारी शिवकी मूर्तिके पास खरोष्ठी लिपिमें लिखा रहता है "ईश्वरस महीश्वरस विमकद-फिस"। "ईश्वर महीश्वर" ग्रीक "बसिलेउस बेसिलियोन" (राजाओंका राजा) का अनुवाद मालूम होता है। कुषाणोंको बौद्ध या शैव आदि धर्मोंके साथ संबद्ध देखकर उन्हें भारतमें आकर हिंदू-संस्कृति और धर्मको ग्रहण करनेवाला समझनेकी गलती इसी कारणकी जाती है, कि हम यह नहीं जानते, कि उनका मूल-स्थान (तुषार-देश, तरिम-उपत्यका) इससे पहिले ही से ही धर्म और संस्कृतिमें हिंदू था।

---

[1] वही

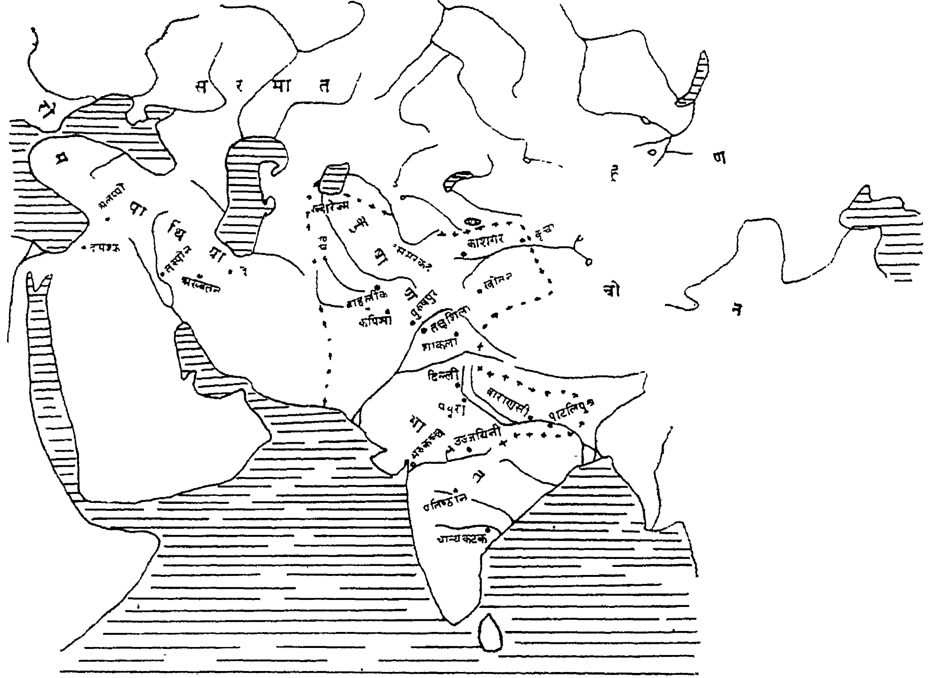
(३) कनिष्क (७६-१०६ ई०)

विमके उत्तराधिकारीके रूपमें हम भारत ही नहीं एसियाके एक महान् शासक, महान् निर्माता कनिष्कको पाते हैं। जिस तरह विम और कुजुलका पारस्परिक संबंध हमें नहीं मालूम है, उसी तरह कनिष्क और विमका भी संबंध भी अज्ञात है। कुजुल कुषाणोंका यवगू (जवगु) था, इससे वह घुमन्तुओंकी प्रथाके अनुसार विम कुजुलका भाई भी हो सकता है और बेटा भी। वही बात विम और कनिष्कके संबंधमें भी कह सकते हैं। विमने जहाँ गंगासे वक्षु तक फैले अपने राज्यको कनिष्कके लिये छोड़ा, वहाँ सोनेकी मुद्राकी प्रतीकवाली विशाल व्यापार लक्ष्मीका भी उसे स्वामी बना दिया। कनिष्कके सिंहासनारूढ़ होनेके समयसे वह सन् आरंभ होता है, जिसे हम आजकल शक-शालिवाहन संवत् कहते हैं। शालिवाहन सातवाहनका रूपांतर है, जो आंध्र राजाओंकी पदवी सा बन गया था। सातवाहनोंका शकोंके साथ संघर्ष और विवाह-संबंध भी बहुत रहा है, शायद इसी कारण पीछे शक-शालिवाहन (शकसातवाहन) जोड़ा शब्द बोला जाने लगा। कनिष्क जहाँ अशोककी तरह एक उदार "धार्मिक धर्मराजा" बौद्ध था, वहाँ दूसरी ओर वह एक बड़ा बहादुर योद्धा और कुशल शासक भी था। सारनाथमें उसके तीसरे राज्यवर्ष (८१ ईस्वी) का एक अभिलेख मिला है, जिससे जान पड़ता है, कि गद्दीपर बैठनेके तीन वर्षके भीतर ही वह सारे उत्तर-प्रदेशका स्वामी बन गया था। ख्वारेज्मकी मरुभूमि (करा-कुम) से कनिष्कके समयके नगर मिले हैं और उसीके कारण ईसाकी आरंभिक तीन शताब्दियोंकी वहाँकी संस्कृतिको कुषाण-संस्कृति कहा जाता है। अयस-कला, जिल्दिक और तोप्रक-कलाके ध्वंसावशेष इसी कालके हैं। वहाँ जो चीजें उस कालकी मिली हैं, उनमें कनिष्कके सिक्के भी हैं। अभी भी वहाँकी खुदाई जारी है। जो चीजें वहाँ मिली हैं, उनके बारेमें अभी ग्रंथ नहीं लिखे गये हैं। कुछ छोटे-मोटे लेख रूसी अनुसंधान-पत्रिकाओंमें ही छपे हैं, जो भाषाके कारण ही बाहरवाले विद्वानोंके लिए ज्ञात नहीं है, बल्कि पत्रिकायें बाहर मिलती नहीं। हमारे दूतावास जितनी शान-शौकतसे अपने कमरोंको सजाने और ठाट-बाटसे रहनेकी फिकर करते हैं, उतना वहाँ साइन्स, कला और इतिहास-संबंधी जो खोजें हो रही हैं, उनके बारेमें ध्यान देनेकी अवश्यकता नहीं समझते। १९४९ ई० की खुदाईमें वहाँ तीसरी शताब्दीके महत्वपूर्ण भित्ति-चित्र मिले हैं। एक कमरेमें तो इतने अधिक कुशल कारीगरोंके बनाये हुए धनुष, वाण और दूसरे हथियार मिले हैं, जिसके कारण उसे उस कालका शस्त्रसंग्रहालय कहा जा सकता है। इन पुराने कुषाणकालीन नगर-ध्वंसोंमें संभव है उस समयके अभिलेख भी मिलें। हाल ही में उससे कुछ ही पीछेके चर्मपत्रपर लिखे पुरानी भाषाके बहुतसे अभिलेख मिले हैं। यदि कनिष्कके मनों सिक्के हमें उत्तर प्रदेशके आजमगढ़ जैसे एक जिलेमें मिल जाते हैं और कनिष्कके लेख पेशावर, रावलपिंडीके जिलों, बहावलपुर रियासत, मथुरा, श्रावस्ती, कौशाम्बी, सारनाथ आदिमें मिले हैं, तो संभव है, कि कराकुम, किज़िलकुम की मरुभूमि कनिष्क कालके बारेमें जाननेके लिये विशेष सहायक हो।

कनिष्कके राज्यकालका निर्णय उसके और उसके उत्तराधिकारियोंके अभिलेखों द्वारा ही

Notes on Indo-Scythian Chronology, (Sten-Kono), Early History of India (V. Smith)

किया गया है। कनिष्कका सबसे अंतिम अभिलेख उसके राज्यके २३वें वर्ष (१०१ ई०) का मिला है। मथुरा और सांचीमें शक-संवत् २४ और २८ के दो अभिलेख मिले हैं, जिनमें वसिष्कका नाम आता है, जिसका अर्थ हुआ—१०२ और १०६ ई० में वसिष्क कुषाणोंका राजा था। वैसे पेशावर जिलेके आरा स्थानमें शक-संवत् ४१ (११९ ई०) का भी एक लेख मिला है, जिसमें "वसिष्क पुत्र महाराज राजातिराज देवपुत्र . . . कनिष्कके राज्यका ४१ वर्ष" लिखा हुआ है। जिससे संदेह होता है कि कनिष्कने ४१ वर्ष राज किया। लेकिन वसिष्कका पुत्र कनिष्क था, इसका कोई पता नहीं है।



२८. कनिष्क का कुषाणसाम्राज्य (१०० ई०)

और दूसरे २४वें और २८वें शक-संवत्में वसिष्क और ३१वें से ६०वें (१०९, १४८ ई०) में हुविष्कके अभिलेख मिले हैं, जिसके कारण हमें यह मानना पड़ेगा कि वसिष्क और हुविष्क या तो कनिष्कके क्षत्रप थे, अथवा यह वसिष्क-पुत्र कनिष्क दूसरा कनिष्क था, जिसने वसिष्क और हुविष्कके बीचमें राज्य किया। अस्तु। यह तो निश्चित ही मालूम होता है कि कनिष्कने २३ साल (७८-१०१ ई०) तक अवश्य शासन किया था। ख्वारेज्मकी खुदाईसे मालूम होता है, कि कनिष्कका शासन मध्य-एसियामें आजके सारे उज्बेकिस्तान और ताजिकिस्तानमें फैला हुआ था। साथ ही कनिष्क अपनी पितृ-भूमि पुराने तुषार-देश (तरिम-उपत्यका) को भूला नहीं था। चीनने १११ ई० में तावान (फर्गाना) तकको जीतकर सारी तरिम-उपत्यका लेते हुए फर्गाना तकके रेशमपथको अपने हाथमें कर लिया था। तरिमके उत्तरके वू-सुन चीनके बड़े विश्वासपात्र अधीन शासक थे, जिन्हें विवाह-संबंधसे भी चीनने अपने साथ घनिष्ट सूत्रमें बांध रक्खा था। हम अन्यत्र देख चुके हैं, किस तरह वू-सुन राजा चीन राजकुमारियोंको ब्याह लाते थे, जो बेचारी

घुमन्तू जीवनके कष्टको बर्दाश्त करते अपने नैहरके सुखोंके लिये आंसू बहाया करती थीं। कनिष्क अपनी अपार अजेय सेनाका नेतृत्व करते हुए चारों ओर अपनी विजय-दुन्दुभी बजा रहा था, उस समय चीनमें लोयाङ के हान-वंश (२५-२२० ई०) का शासन था। वू-ती (२५-५८ ई०) चाङ ती (७६-८९ ई०) और हो-ती (८९-१०६ ई०) इस वंशके प्रतापी सम्राट् कनिष्कके समकालीन थे। इस वंशका संस्थापक वाई याङवान् (२३-२५) ई० था। पुराने हान-वंशकी राजधानी छाङ-आन्में २०८ ई० पू० से २५ ई० तक शासन किया था। तरिम-उपत्यकाकी ओर बढ़नेमें कनिष्कके लिये सबसे बाधक चीन था, जिसके सेनापति पान्-चाउकी वीरता और रणकुशलताकी बड़ी धाक थी। उसने तरिम-उपत्यकाको ही अपने हाथमें नहीं कर रक्खा था, बल्कि उसके कारण कनिष्कका कश्मीर और उसके उत्तरका प्रदेश भी खतरेमें पड़ गया था।

कनिष्ककी यह कोई गुस्ताखी नहीं थी, यदि उसने चीन सम्राट्से राजकन्या मांगी। हम जानते हैं वू-सुन राजा, जो पीढ़ियोंसे चीन सम्राट्के दामाद होते आये थे, बल और वैभवमें कनिष्कके मथुराके क्षत्रप खरपल्लान या काशीके क्षत्रप वनस्पर क्या इन क्षत्रपोंके तीसरी श्रेणीके सरदारोंके बराबर भी नहीं थे। लेकिन जब कनिष्कका दूत पान्चाउके पास अपने राजाके लिये चीनी राजकुमारी माँगने गया, तो उसने कनिष्कके दूतको जेलमें डाल दिया। इस तरह पान्-चाउने कनिष्कको युद्धके लिये आह्वान किया। बंगालसे ख्वारेज्म तकके प्रतापी सम्राट्के लिये यह बड़े अपमानकी बात थी। कनिष्क एक बड़ी सेना लेकर पान्-चाउसे बदला लेनेके लिये गया, किंतु उसे पामीर और हिमालय के दुर्गम मार्गोंको पार करके अपनी सेनाको लेजाना था, जब कि चीनी सेना अपने हूण और वू-सुन सहायकोंके साथ वहां पहलेसे मौजूद थी। फलतः कनिष्कको बुरी तौरसे हारकर चीन सम्राट्का करद बनना पड़ा। खूनके घूंट पीकर उस वक्त तो वह रह गया, लेकिन कुछ वर्षों बाद उसने फिर उस पराजयके कलंकको धोना चाहा। उस समय पान्-चाउ मर चुका था और उसका पुत्र पान्-चाङ चीनकी पश्चिमी सेनाका सेनापति था। कनिष्कने चीनी सेनाको बुरी तरह पराजित किया और तरिम-उपत्यकाके अपने पूर्वजोंके देशको प्राप्त करनेमें सफलता पाई। तरिम-उपत्यका और उसके उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में बहुतसे चीनके करद राज्य थे। हूण भी अब दो भागोंमें बंट गये थे, और उनका एक शक्तिशाली (दक्षिणी) भाग चीनके साथ था। इसमें संदेह नहीं, कनिष्क की सेनाको इन सबकी सम्मिलित शक्तिसे भुगतना पड़ा होगा। कनिष्कने चीनको हराकर ही सन्तोष नहीं किया, बल्कि मध्य-एसियाई या चीनी राजकुमारोंको जामिन (युद्धके लाभ) के रूपमें अपने साथ ले आया। इन राजकुमारोंके आराम की ओर उसने बहुत ध्यान दिया। इससे एक बड़ा उपकार यह हुआ, कि उन्होंने भारतमें नासपाती और आड़ूके फल पहले पहल लगाये। हमारे यहाँ पहिले से ही कपिशाका अंगूर मशहूर था। उनके रहनेके लिये उसी कपिशा (कोहदामन) उपत्यकामें स्थान बनवाया गया था, जिसे शे-लो-क-विहार कहते थे। स्वेन्-चाङने अपनी यात्रामें ७वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें उसे देखा था। पूर्वी पंजाब (जलन्धर) के जिस इलाकेमें उन्हें जागीर मिली थी, उसका नाम ही चीनभुक्ति (चीन जिला) पड़ गया था। स्वेन् -चाङके जीवन चरित्रके लेखक हुइ-लीने लिखा है, कि राजकुमारोंने विहार बनवाकर उसकी मरम्मतके लिये इतना रुपया गाड़के रख दिया था, कि उसे प्राप्त कर स्वेन्-चाङने विहारकी फिरसे मरम्मत करवा दी।

कनिष्क बौद्धोंकी परिभाषाके अनुसार सचमुच ही "धम्मियधम्मराजा" (धार्मिक धर्म-

राज) था। उसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। इसके पहले गंधारके इस नगरको कोई प्रधानता नहीं मिली थी। गंधारकी प्रसिद्ध नगरी और राजधानी तक्षशिला थी, जो कि सिंधु नदीके पूरबमें राववलपिंडी जिले में कालासरायले स्टेशनके पास शाहजीदीढेरीके नामसे मौजूद है। गंधारका प्राचीन देश (पख्तूनिस्तान) पाकिस्तान और स्वतंत्र कबीलोंमें बंटा हुआ था। लेकिन आजकल पख्तून (पठानोंका देश) रावलपिंडी तक नहीं है। पश्चिमी गंधारमें



चित्र २३—कनिष्क

पुष्कलावती (चारसद्दा) को ग्रीक राजाओंने कुछ समय अपनी राजधानी जरूर बनाया था। गंधारके महत्वका बढ़ानेवाला कनिष्क था। उस समय राजधानी पुरुषपुर बहुत समृद्ध रही होगी, यह तो उससे तीन और पांच शताब्दियों पीछे आनेवाले फा-शीन और स्वेन्-चाङके यात्रा-विवरणोंसे मालूम होता है। कनिष्कके समय पाटलिपुत्रका वैभव पुरुषपुरको मिल गया था। बाख्त्रिया भी एक क्षत्रपकी राजधानीसे अधिक महत्व नहीं रखती थी। फर्गानाकी उर्वर और समृद्ध उपत्यका ही नहीं कनिष्कके हाथमें थी, बल्कि सिङक्याङके पूर्वी सीमासे लेकर पार्थिव

(ईरानी) सीमा तक का रेशमपथ कनिष्क के हाथ में था। फर्गाना तथा सोग्द के समरकन्द आदि व्यापारिक नगर, उसके हाथ में थे। सोग्द नदी के किनारे आज भी कुशानिया कस्बा है, जो बतला रहा है, कि कुषाणोंने इस भूमि को और समृद्ध करने की कोशिश की थी। ख्वारेज्म में निम्न-वक्षु की उत्तर तरफ किज़िलकुम के रेगिस्तान में तोप्रक-क्लाका नगरध्वंस हाल में खोदकर निकाला गया है, जिसके आकार-प्रकार को देखते[1] ही से मालूम होता है, कि घुमन्तू शक अब नागरिकता में आगे बढ़ गये थे। कश्मीर में भी कनिष्क ने कनिष्कपुर नामसे एक नगर बसाया था, जिसका उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी में किया है। तक्षशिला में उसका बसाया नगर आजका सिरसुख है।

व्यापार के महत्त्व को, तो जान पड़ता है, कुषाणों ने खास तौर से समझा था, इसीलिये उन्होंने व्यापार-पथों की ओर विशेष तौर से ध्यान दिया था। बड़ी नदियाँ ही नहीं, बल्कि ऐसी नदियों का भी उन्होंने इस्तेमाल किया था, जिनमें वर्षा के दो ढाई महीनें ही नावें चल सकती हैं। इसका उदाहरण आजमगढ जिले के दक्षिण में अवस्थित मँगई (मार्गवती) नदी है। छोटी नदी होने पर भी वह गाजीपुर जिले में सीधे गंगामें जाकर मिलती है। इसी छोटी नदी के दाहिने किनारे पर मेरे पितृग्राम (कनैला) से मील भरपर ही सिसवा का विस्तृत ध्वंसावशेष है, जहाँ वर्षों से ढेरों कनिष्क के सिक्के मिलते आ रहे हैं, । शिंशपा ग्राम कुषाणों के वक्त एक अच्छा व्यापारिक केन्द्र रहा। मंगई नदी में वर्षा खतम होते ही इतना कम पानी रह जाता है, कि लोग जगह-जगह बाँध बाँधकर पशुओं के लिये पानी जमा करते हैं। कनिष्क के विशाल साम्राज्य में ऐसी न जाने कितनी मंगइयों को व्यापारपथ के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा होगा।

तोप्रक-कला का निर्माण कुषाणों की सुरुचि और उपयोगिता दोनों को प्रदर्शित करता है। यह चौकोर दुर्गबद्ध बस्ती चारों ओर मजबूत प्रकार से घिरी थी। इसकी एक तरफ दक्षिण में दुर्ग का सुदृढ द्वार था। द्वारके भीतर एक प्रशस्त पथ उत्तरसे दक्षिण चला गया था। दक्षिण के छोर पर जान पड़ता है, शासक का महल (अंतःपुर) था। प्रधान सड़क से दाहिने और बांयें समकोण पर चार और सड़कें निकली थीं, जिनके किनारे बाजार और घर बसे हुये थे। नगर की लंबाई प्रायः हजार गज और चौड़ाई ६०० गज थी। खुदाई के संचालक प्रोफेसर न. त. ताल्स्तोफ का कहना है, कि क्लासिकल प्राची की वस्तुकला का यह सुंदर नमूना है। भारत में शकों के शासन और कला का स्थान भारशिवों और बाद में गुप्तों ने लिया।

कुषाणों से पहले वाख्त्रीय ग्रीकों ने कला को बहुत प्रोत्साहन दिया, लेकिन वह भारतीय रंग में तब तक रंग न पाई, जब तक कि कनिष्क के सर्वतोमुखीन प्रगति वाले शासन ने उसे वैसा नहीं कर दिया। बुद्ध की प्रथम मूर्ति कनिष्क के समय में बनी, जिसके चीवर के चुन्नट और केश-विन्यास पर ग्रीक प्रभाव दिखाई पड़ता है, यद्यपि बहुत ही सूक्ष्म और मधुर रूपमें ही। बाख्त्रीय ग्रीक कला को गंधार-भारतीय शैली में परिणत करने का काम कनिष्क के शासन में हुआ। ग्रीक और पह्लव शासन काल से ही मथुरा क्षत्रपों की राजधानी चली आई थी। शासन के समय मथुरा समृद्ध रही होगी, इसमें संदेह नहीं। तक्षशिला, पाटलिपुत्र और दक्षिणापथ के

[1] वे. द्रे. १९४६,१ पृष्ठ ७१, ७२, ७३

व्यापारपथ भी यहीं पर मिलते थे। उस समय के राजस्थान का भी मार्ग यहीं से फूटता था। आज यह सारा-सुभीता आगरा को प्राप्त है। बहुत संभव है, इसीके कारण अकबर अपनी राजधानी दिल्ली से आगरा ले गया। १९४७ ई० के बाद भी बिना पहले से सोचे-समझे ऐसी घटना घटित होती देखी गई। पहले थोड़े से सिंधी या पंजाबी शरणार्थी आगरा में पहुँचे। कितने ही विस्थापित सिंधी राजस्थान के जोधपुर आदि नगरों में बसना चाहते थे, क्योंकि सिंध के वह समीप थे, लेकिन जल्दी उन्हें मालूम हो गया, कि यदि ऐसे स्थान में रहना है, जहाँ जीविका के साधन भी आसानी से प्राप्त हो सकें, तो आगरा ही वैसा स्थान है। आज आगरा में बहुत बड़ी संख्या में सिंधी आकर बस गये हैं। आगरा आज जहाँ कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, बनारस तथा पूरब के नगरों के साथ रेल द्वारा संबद्ध है, वहाँ बम्बई, दिल्ली, अमृतसर, जयपुर अजमेर आदि से भी वह रेल द्वारा संयुक्त है। अकबर की दूरदर्शिता ने पहले ही आगरा को महत्व दे दिया था, इसलिये अंग्रेजों ने रेल का चतुष्पथ भी वहीं बनाया। कुषाणों के वक्त ये सारे सुभीते मथुरा को प्राप्त थे। इनके अतिरिक्त मथुरा में बुद्ध जाकर रहे थे, बौद्धोंका एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय सर्वास्तिवाद—जिसका कि कनिष्क अनुयायी था—का तत्कालीन प्रधान केन्द्र भी यहीं था। इस धार्मिक संबंध को लेकर मथुरा कुषाण वास्तुकला और मूर्तिकला की अति समृद्ध नगरी बन गई। मथुरा को वासुदेव कृष्ण के जन्मस्थान होने से उतना महत्व नहीं मिला था, यह बुद्धकालीन जनपद और उसकी राजधानी मदुरा के उपेक्षापूर्ण वर्णन से मालूम होता है। बुद्ध के समय सूरसेन जनपद का राजा अवन्तिनाथ चंडप्रद्योत का एक दौहित्र सामन्त था।

मथुरा जैसे कितने ही और समृद्ध नगर कनिष्क-शासित उभय मध्य-एसिया और भारत के बहुत से भागों में मौजूद थे।

कनिष्क और बौद्ध धर्म—बौद्ध धर्म के इतिहास में अशोक के बाद ऊंचा स्थान जिस राजा को है, वह कनिष्क है। पाटलिपुत्र जीतने पर वह अपने साथ अश्वघोष को ले गया। अश्वघोष कालिदास के पहलेके महान् कवि हैं। इनकी कविताकी कितनी ही समानता कालिदास के काव्य में भी मिलती हैं। उनके "बुद्धचरित" और "सौंदरनंद" दो महाकाव्य हैं। संस्कृतमें "बुद्धचरित" खंडित मिलता है, किंतु उसके चीनी और तिब्बती अनुवाद पूर्ण हैं। "सारिपुत्र प्रकरण" (नाटक) की खंडित संस्कृत प्रति तरिम-उपत्यका के रेगिस्तान से मिली है, और उनके एक दूसरे नाटक "राष्ट्रपाल" का पता भी लगता है, यद्यपि वह अभी तक कहीं अनुवाद या मूलरूप में नहीं मिला है। अश्वघोष हमारे पहले नाटककार हैं, जिन्होंने पर्दों और दृश्यों के साथ नये ढंग के अभिनय और रंगमंच का सूत्रपात किया। मथुरा की कला के रूप में जैसे गंधार-कला भारतीय रूप धारण कर विकसित हुई, उसी तरह और उसी समय अश्वघोष के नाटकों के रूप में ग्रीक नाटकों का सुन्दर भारतीकरण हुआ। यह हम बतला चुके हैं, कि एसिया की ग्रीक पुरियों (पोलिस) के नागरिक जीवन और प्रबंध में भी ग्रीस की भांति नाट्यकला का एक विशेष स्थान था। इसलिये भारत की ग्रीक पुरियों में रंगमंच अवश्य रहे होंगे, जो ग्रीको-बाख्त्री कला की तरह बिलकुल ग्रीक रूप और ग्रीक भाषा में होंगे।

कनिष्क के सम्माननीय आचार्यों में अश्वघोष से भी प्रमुख स्थान पार्श्व और वसुमित्र का था। वसुमित्र की अध्यक्षता में कनिष्क ने बौद्धों की एक बड़ी सभा (संगीति) बौद्ध पिटक के संशोधन और संग्रह के लिये बुलाई थी। यह संगीति कश्मीर-उपत्यका (कुंडलवन विहार) में बैठी

थी, जिसके प्रमुख पार्श्व, वसुमित्र और अश्वघोष थे। इसी समय सर्वास्तिवाद के अंतिम रूप मूल-सर्वास्तिवाद के त्रिपिटकका पाठ-निर्णय और संग्रह हुआ था। इससे भी बढ़कर इस संगीति का काम था, तीनों पिटिकों की विभाषाओं (भाष्यों) की रचना। इन विभाषाओं में से एक भी अब मूल संस्कृत में नहीं मिलतीं। मूल-सर्वास्तिवाद के विनयपिटक का अनुवाद तिब्बती संग्रह (कन्जूर) में मिलता है, चीनी भाषा में मूल तथा उसका भाष्य (विनय-विभाषा) भी प्राप्य है। विनयपिटक भारत के बुद्धकालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन पर बहुत प्रकाश डालता है। उसके भाष्य के रूप में बनी विनय-विभाषा तो और भी अधिक ज्ञातव्य बातों की खान है। इन्हीं विभाषाओं के कारण सर्वास्तिवादी पीछे वैभाषिक कहे जाने लगे। कश्मीर और गंधार कुषाण-वंश की समाप्ति के बाद भी वैभाषिकों के केन्द्र बने रहे, यह हम वसुबंधु के लेखों से जानते हैं। कनिष्क की राजधानी पुरुष-पुर को ही चौथी सदी में वसुबंधु तथा उनके अग्रज असंग को पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह दोनों भाई अद्वितीय बौद्ध दार्शनिक हैं। इस समय काव्य-कला, मूर्तिकला, नाट्यकला में ग्रीक और भारतीय धारा का सुंदर समागम हुआ, इसी तरह ग्रीक और भारतीय विचारों के मिलनका भी यही समय है। भारतीय न्याय, वैशेषिक, ज्योतिष आदि अनेक शास्त्रों में ग्रीक विचारकों की देन जो हमें स्वीकृत करनी पड़ती है, उसका भी समय कनिष्ककाल है। कनिष्कके समकालीन और सम्मानित आचार्यों में आयुर्वेदशास्त्र के विधाता चरक भी हैं। मातृचेट बौद्धों के एक सुंदर साहित्यकार थे, जिनका "अध्यर्ध-शतक" जहां एक ओर बुद्ध की स्तुति का काम देता था, वहां साथ ही उसके द्वारा तरुण विद्यार्थी को बुद्ध के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का ज्ञान सरलता से हो जाता था। मातृचेट और अश्वघोष को तिब्बती परंपरा एक बतलाती है। मातृचेट का अर्थ है माता का सेवक। अश्वघोष अपनी कृतियों में हर जगह अपने नाम के साथ "सुवर्णाक्षीपुत्र साकेतक" लगाते हैं। माता सुवर्णाक्षी और मातृनगरी साकेत (अयोध्या) के साथ अश्वघोष का बहुत प्रेम था, यह तो स्पष्ट है। मातृचेट का मुख्य नाम क्या था, यह हमें मालूम नहीं है। पर, अश्वघोष और मातृचेट को एक कहना ठीक नहीं है। कनिष्क ने और आचार्यों को बुलाने के समय मातृचेट को भी बुलाया था, किंतु बुढ़ापे के कारण न आ उन्होंने 'अध्यर्ध-शतक" को अपनी सेवा के रूप में भेजा। वस्तुतः उस समय कला और विद्या के नवरत्नों का कनिष्क की राजधानी में जो समागम हुआ था, उसीका अनुकरण तीन शताब्दी बाद चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने किया।[१]

सिक्के[२]—कनिष्क के सिक्के विहार से लेकर अराल समुद्र तक बहुतायतसे मिलते हैं। भारतीय मुद्रा के विद्वान् तथा पुरातत्व वेत्ता श्री परमेश्वरीलाल गुप्त (आजमगढ़) ने उन्हें धडियों जमा किया है। इसके सिक्के के अग्रभाग पर लम्बा चोगा, नुकीली टोपी, घुटनों तक का शकीय जूता पहने भाला, अंकुश लिये कनिष्ककी मूर्ति अंकित रहती है, जिसमें ग्रीक लिपि और भाषामें "वेसीलियोस वेसीलियोन शाओननो शाओ कनिष्को कुषाणो" (राजाओं का राजा शाहानुशाह कनिष्क कुषाण) लिखा रहता है। इसके पृष्ठ भाग पर हेरकल, सेरापी आदि ग्रीक देवताओं, अतशो

---

[१] Coins of Ancient India (J. Allen, Rapson),

[२] भारतीय सिक्के (वा० श० उपाध्याय)

(अग्नि) जैसे ईरानी देवताओं, मीरो (मित्र), सूर्य जैसे शक देवताओं या बोदो (बुद्धकी मूर्ति) के साथ ग्रीक में देवताओं के नाम अंकित होते हैं। हम कह चुके हैं, कि कनिष्क के लिये बौद्ध धर्म या भारतीय संकृति कोई नई चीज नहीं थी,क्योंकि उसके पिता-पितामहके समयसे ही नहीं, बल्कि कुषाणों के मूल स्थान तरिम-उपत्यका में रहते समय भी बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति की प्रधानता थी। उसने अपने पूर्वगामी राजाओं का अनुकरण करके खरोष्ठी लिपि और प्राकृत भाषा को यदि सिक्कों पर स्थान नहीं दिया, और ग्रीक भाषा और लिपि का ही उपयोग किया, तो उसका कारण ग्रीक संस्कृति के प्रति अंध भक्ति नहीं कहा जा सकता, जैसा कि उसके समकालीन ईरान के पार्थिव राजा अपने को "फिलहेलन" कहकर करते थे। सिक्कों और कनिष्क के पुरुषपुर (पेशावर), तक्षशिला में बनवाये स्तूपों से भी उसकी बौद्ध धर्म में भक्ति स्पष्ट है। चौथी संगीति कश्मीर के कुंडलवन-विहार में हुई थी, वहाँ पर उसने विहार और स्तूप बनवाये। विभाषाओं को ताम्रपत्रों पर खुदवाकर वहीं के स्तूप में कनिष्क ने रखवा दिया था, किंतु अभी तक न कुंडलवनविहार का पता लगा है, न विभाषा-स्तूप का ही। कनिष्क के समय बौद्ध धर्म में महायान कोई मुख्य स्थान नहीं रखता था। वैपुल्य (वेथुल्ल), रत्नकूट आदि वर्ग के सूत्रों की रचना गांधार में नहीं बल्कि धान्यकटक और श्रीपर्वतके (आंध्र) प्रदेश में हुई। उसका प्रभाव गांधार पर तब पडा, जबकि ४थीं सदीमें वसुबंधु के अग्रज असंग गांधार में उसके प्रबल पक्षपाती हुये और प्लातोनके विज्ञानवाद में क्षणिकवाद की पुट देकर उन्होंने योगाचार दार्शनिक संप्रदायका प्रवर्त्तन किया। योगाचार से अनुप्राणित हो ८वीं सदी में शंकराचार्य ने वेदांत का महल खड़ा किया। लेकिन जहाँ तक कनिष्क के काल या राज्य का संबंध है, अभी महायान ने प्रधानता नहीं प्राप्त की थी। तक्षशिला में अपने स्तूप का दान कनिष्क ने सर्वास्तिवाद के आचार्यों को दिया था, यह भी इसी बात को पुष्ट करता है।

कनिष्क के ४१वें राजवर्ष का भी अभिलेख मिला है, इसका हम जिक्र कर आये हैं, लेकिन वह शायद द्वितीय कनिष्क का है, जो उसके उत्तराधिकारी वसिष्क और तदुत्तराधिकारी हुविष्क के बीच में कुछ समय स्वतंत्र शासक रहा। अधिकतर यही ठीक लगता है, कि कनिष्क ने २३ वर्ष तक शासन किया। यह भी कहावत मात्र है, कि बराबर के दिग्विजयों से तंग आकर शक सरदारों ने कनिष्क को मार डाला। कनिष्क के शिर को हम उसके सिक्कों पर देख सकते हैं। उसकी खड़ी मूर्ति प्रायः पुरुषमात्र मथुरा जिलेके माट नामक स्थानमें पाई गई और आज-कल मथुरा-म्युजियम में रक्खी है (चित्र २३)। इस मूर्ति में कनिष्क अपने दाहिने हाथ को एक सीधे दंड से हथियार पर और बांये हाथ को अनग्न खड्ग की मुट्ठी पर रक्खे हुये है। उसके पैरों में वही लंबा शक बूट है, जो भारत की अनगिनत द्विभुज सूर्य-प्रतिमाओं मे देखा जाता है और जिसे आज भी शकों के वंशज रूसी लोग जाड़ों में पहनते हैं। उसके शरीर पर घुटनों से नीचे तक लटकनेवाला एक अंगरखा है, जिसके ऊपर उससे भी नीचे तक जानेवाला चोगा है। मूर्ति के पैरों पर कनिष्क का नाम खुदा हुआ है, इसलिये उसके कनिष्क की होने में संदेह नहीं किया जा सकता।

(४) वशिष्क (१०१-१०६ ई०)

वशिष्क या वशुष्कके बारेमे इतना कम मालूम है, कि कितने ही विद्वान् उसे कनिष्क और हुविष्कके बीचमें हुआ राजा नहीं गिनते ; किंतु शक-संवत् २४और २८के उसके दो अभिलेख मथुरा और सांची में मिले हैं। इसमें संदेह नहीं, उसने थोडे ही समय तक राज्य किया, जिसीके कारण उसके सिक्के नहीं मिले। यह भी हो सकता है, कि वह सिंहासनकी विवादास्पदताके समय में शासक बना। कनिष्क का साम्राज्य राजधानी पुरुषपुरसे जितना पूरबमें फैला हुआ था, उससे कम उसका विस्तार पश्चिममें नहीं था। संभव है, हुविष्कका जोर पहले गांधारसे ख्वारेज्म तक रहा, उसी समय कुछ सालों तक वशिष्कने शासन किया, अथवा कनिष्कके उपराज होते हुए भी उसके शासित प्रदेशमें उसे अधिराज लिख दिया गया। इस समय करीब करीब सारा मध्य एसियायी दक्षिणापथ कुषाण-राज्यमें था, चाहे उस समय कनिष्कके बाद वाशिष्क और कनिष्क, (२) वहां शासन करते रहे या हुविष्क।

(५) कनिष्क (२) (११९ ई०)

पेशावर जिलेमें अर्थात् कुषाण राजधानीसे नातिदूर आरा गाँवमें संवत् ४१ (११९ई०) का निम्न अभिलेख मिला है—

"२, महरजस रजतिरजस देवपुत्रस क(इ)सरस वझेष्कपुत्रस कनिष्कस संवत्शरअे अेकचपर (ई)शई सम् २० २० १ ...."[1]

इस लेखसे मालूम होता है, कि कनिष्क (२) वशिष्कका पुत्र तथा स्वयं महाराज राजातिराजदेवपुत्र था। वशिष्कका पुत्र कनिष्क [1] नहीं हो सकता। इसलिये यह शक संवत् ४१ का कनिष्क दूसरा है। इसके बारेमें भी यही कहा जा सकता है, कि या तो हुविष्कके शासनारूढ होनेपर राज्यके लिये झगडा चला, उसमें यह स्वतंत्र हो गया था, अथवा हुविष्कका क्षत्रप था।

(६) हुविष्क (१२०-१५२ ई०)

हुविष्क निश्चयही कनिष्कका शक्तिशाली उत्तराधिकारी था। वह कनिष्कके प्रायः सारे साम्राज्यको अपने हाथमें कायम रख सका। इसका एक शिला-लेख शक संवत् २८ (१०६ ई०) का गिरधरपुर (जिला मथुरा) के एक कूयें (लाल कुआ) से मिले खंभे पर उत्कीर्ण है। यह कुआँ ८४ जैन मन्दिर और गिरधरपुरके डिहके बीचमें पडता हैं। आजकल खंभा मथुरा म्युजियम में है। अभिलेख इस प्रकार है [1]—

१. सिद्ध संवत्सरे २०८ गुरुप्पिय दिवसे १ अयं पुण्या
२. शाला प्राचीतीकनस रनकमानपुत्रेण खरासले
३. र पतिन वकनपतिना अक्षयनीवि दिन्न गुतो वृद्वे
४. तो मासानुमासं क्षुह्लवस्य चातुदिशे पुण्यशाला

---

[1] प्राचीन भारत का इतिहास पृ० २२२ हि० २

५. यं ब्राह्मणशतं परिविषितव्यं दिवसे दिवसे
६. च पुण्यशलाये द्वारमूले धारिये सर्वं सवसत्वनां आ
७. ढका ३ लवुण प्रस्था १ शक्र प्रस्था १ हरितकलापक
८. घटक ३ मल्लक ५ अेतं अनाधनां कृतेन दतव्य
९. बुभक्षितान पिवसितानं य च तु पुण्य तं देवपुत्रस्य
१०. षहिस्य हुविष्कस्य ये च देवपुत्रो प्रियः तेषामपि पुण्य
११. भवतु सर्वापि च पृथिवीये पुण्य भवतु आक्षयनिवि दिन्न
१२. . . . . . . .क श्रेणीये पुराणशत ५०० ५० सस्तिकर श्रेणी
१३. . . . . . . .पुराणशत ५०० ५० "

इस लेखमें अेक दानका उल्लेख है, जिसमें देवपुत्रशाही हुविष्क तथा जिनके वह प्रिय हैं, उनके पुण्यके लिये रुकमानपुत्र खरासलेरपति वकनपतिने ११०० पुराण (सिक्कों) की अक्षयनीवि इसलिये स्थापित की, कि प्रतिमास शुक्ल चतुर्दशीके दिन पुण्यशालामें १०० ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय। जान पडता है, ११०० पुराण (+५६ ग्रेन चांदी) के सूदसे प्रतिमास अेक भोजके लिये तीन अढइया[१] सत्तू, एक प्रस्थ नमक, एक प्रस्थ शक्कर, तीन घटक और पांच मल्लक हरितकलापक (अरहर) मिल जाता था। इस लेखसे यह पता लगता है, कि २८ वें शक संवत् (१०६ ई०) में हुविष्कका मथुरापर शासन था, और मथुरा की क्षत्रपी (जो कि प्रायः सारे उत्तर प्रदेशकी क्षत्रपी थी) हुविष्कके हाथमें थी। हुविष्कका शासन उत्तर प्रदेश, पंजाब, कश्मीर, गांधार, कपिशा, तक ही नहीं, बल्कि बाख्त्रिया और ख्वारेज्म तक था। शायद अभी मूल तुखार देशभी कुषाणोंके हाथ से गया नहीं था। हुविष्कने मथुरामें अेक बौद्ध विहार और चैत्य बनवाया था। कश्मीरमें उसने अपने नामसे एक नगर बसाया था, जो हुष्कपुर, या उष्कुर (जुकुर) के नामसे मौजूद है। उसके अभिलेख २८ से लेकर ६० वें शक संवत् तकके मिलते हैं, जिससे जान पडता है कि वह ईसवी सन् १०६ से १३९ ई० तक अवश्य शासन करता रहा। ऐसी अवस्थामें कनिष्क (२) स्वतंत्रशासक नहीं रहा होगा। ख्वारेज्ममें कुषाण कालके नगर और बहुतसी चीजें निकली हैं, लेकिन अभी उनका पता रूसी विशेषज्ञों के अतिरिक्त और किसी को नहीं हैं। ख्वारेज्मपर कनिष्कके भी बहुत समय बाद तक कुषाणोंका प्रभाव रहा, यह रूसी विद्वान् स्वीकार करते, और ईसाकी २री ३री शताब्दीके ख्वारेज्मकी संस्कृतिको "कुशान्स्कया कुलतुर"[१] (कुषाणीय संस्कृति) कहते हैं।[१]

हुविष्कके भिन्न-भिन्न प्रकारके तांबे और चांदीके सिक्के मिलते हैं, जिसके अग्रभागपर राजाका चित्र, ग्रीक लिपि में नाम और उपाधि सहित अंकित होता है। सिक्केके पृष्ठभाग पर ग्रीक, ईरानी या भारतीय देवी देवताओंकी मूर्तियाँ ग्रीक लिपिमें लिखे नामके साथ होती हैं। केवल ग्रीक लिपि का स्वीकार करना बतलाता है, कि अभी कुषाण राज्य केवल भारत तक ही

---

[१] अल्बेरूनी (ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध) के अनुसार—४ कर्ष (सुवर्ण, तोला) = १ पल, ४ पल (= १६ तोला) = १ कुडव, ४ कुडव (= १४ तोला) = १ प्रस्थ, ४ प्रस्थ (२५६ तोला, ३ सेर २६ तोला = आढक (अढइया) ७३।२. क्र० सो० XIII पृ० १४८।

सीमित नहीं था। हुविष्कके एक तांबेके सिक्केके अग्रभागपर हाथीपर सवार, शिरपर मुकुट पहने, हाथमें शूल-अंकुश लिये देवपुत्रकी तस्वीर है, और पृष्ठभाग पर किसी देवताकी खड़ी मूर्ति। इसके सोनेके सिक्कोंमें तांबे के सिक्कोंसे कुछ भेद पाया जाता है।

हुविष्कके शासनकालमें साम्राज्यकी समृद्धिमें कोई अंतर नहीं पड़ा। उस समय फर्गाना सोग्द, बाख्त्रिया और ख्वारेज्म बहुत समृद्ध थे। पश्चिममें पार्थिव साम्राज्य भी बहुत विशाल और, शक्तिशाली था। इच्छा होनेपर कुषाण अपने वणिक्पथ को कास्पियनके उत्तरी तट से आलानों और सर्मातोंके भीतरसे रोम-साम्राज्य और युरोपमें अपनी वस्तुओंको पहुँचा सकते थे।

(७) वासुदेव (१५२-१८६ ई०)

जैसा कि नामसे प्रकट होता है, अब कुषाण केवल भारतीय संस्कृतिसे प्रभावित नहीं रह गए थे; बल्कि पूरी तौरसे भारतीय हो गए थे। कुजुल, वीम, कनिष्क, वशिष्क, हुविष्क यह सभी शक नाम हैं, और वासुदेव शुद्ध भारतीय तथा ब्राह्मणिक नाम है। इसके पूर्वाधिकारी हुविष्कका कोई ऐसा सिक्का नहीं मिला है, जिसपर बुद्धकी प्रतिमा हो, इसके विरुद्ध शिव विशाख आदि की मूर्त्तियाँ उसके अनेकों सिक्कोंपर मिलती हैं, जिससे यही जान पड़ता है कि उसकी आस्था ब्राह्मण-धर्मपर अधिक थी, इसीसे उसके उत्तराधिकारीका नाम वासुदेव पड़ा। वासुदेवके अभिलेख संवत् ७४ (१५२ ई०) से लेकर ९८ (१७६ ई०) तकके मिले हैं, जिससे मालूम होता है, कि उसने कमसे कम २४ वर्ष तो अवश्य शासन किया। उसके लेख केवल मथुरा जिलेमें और सिक्के पंजाब और उत्तर प्रदेशमें मिले हैं। शायद अब उसका शासन केवल भारतमें ही रह गया था। कपिशा, बाख्त्रिया, सोग्द, ख्वारेज्म आदिमें नाना देवी की पूजा होती थी, जिसकी मूर्ति पहलेके सभी कुषाण-सिक्कोंपर मिलती है, किन्तु वासुदेवके सिक्कोंपर वह बहुत कम मिलती है। इसके सिक्कोंपर शिव और नंदीकी प्रधानता बतलाती है, कि अब कुषाण-राजवंश ब्राह्मण धर्मी हो चला था। वासुदेवका शासन मध्य-एसियामें नहीं था, लेकिन अब भी मध्य-एसिया कुषाणोंका था। वासुदेवके किसी-किसी सिक्केपर नानाकी मूर्ति मिलती है। उसके सिक्के अधिकतासे नहीं मिलते, जिससे जान पड़ता है, कि भारतमें भी कुषाण-शक्ति निर्बल होती जा रही थी। मध्यएसियाके कुषाणोंसे संबंध रखनेवाली सामग्री अभी-अभी मिलने लगी है। यह निश्चित मालूम होता है, कि ३री शताब्दीके अंतमें ख्वारेज्म तक कुषाणोंका शासन था। ३री से ५वीं शताब्दीमें अफ्रीग उनका स्थान लेते हैं, जिनके नगरावशेष तोप्रककला, यक्केपरसान और लघु कबात-कलाके ध्वंसावशेषोंके रूपमें शताब्दियों तक किजिलकुमके बालूमें ढंके रहकर अब बाहर आये हैं। बाख्त्रिया, सोग्द और पामीर (ईमाओस्) में भी कुषाणों ही का शासन था। कुषाण अपने मूल स्थानके नामसे तुखारी भी कहे जाते थे, अब इनका प्रधान स्थान मध्य-वक्षुके दोनों तरफकी विस्तृत भूमि थी, जिसे इसी समय तुखारिस्तानका नाम मिला। इस प्रदेशको आरंभिक अरब लेखक इसी नामसे याद करते हैं।

भारतमें वासुदेवके बाद द्वितीय वासुदेव, द्वितीय या तृतीय कनिष्क भी हुए, जिनका पता उनके सिक्कोंसे मिलता है। अंतिम कुषाण शासक किदारके नामसे पुकारे जाते थे। ये कुषाण शाहके नामसे सासानियोंके में अधीन थे। प्रथम किदार कुषाण शाहकी राजधानी पेशावरमें थी। किदारने कश्मीर तथा मध्य पंजाबको जीतकर अपनेको शक्तिशाली बनाया, और सासानी

जूयेको अपने ऊपरसे उठा फेंका। लड़ाईमें विजयी हो किदारने अपने स्वतंत्र सिक्के चलाये। यह सिक्के सासानी ढंगके हैं। इनके अग्र भागपर राजाका आधा शरीर तथा ब्राह्मी अक्षरोंमें राजाका नाम खुदा मिलता है। राजाके शिरपर पगड़ी मुकुटकी तरह बँधी रहती है। बाल शिरपर बिखरे तथा मुखपर दाढीका अभाव देखा जाता है। लेख ब्राह्मी अक्षरोंमें "किदार कुषाण" होता है। सिक्केके पृष्ठभागपर अग्निकुंडके दोनों तरफ दो परिचारक खड़े दिखाई पड़ते हैं।

पिरो (४ थी शताब्दीका अन्त)

किदार अंतिम प्रभावशाली कुषाण राजा था। अब समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्तका समय आ गया था, जिनके विक्रमके कारण कुषाणोंको बहुत धक्का लगा। चंद्रगुप्त (२) (३७५-४१४ ई०) ने पिरोको हराया। पश्चिममें शापूर (३) (३८३-८८ ई०) से भी हार खाकर उसे सासानी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार ५वीं शताब्दीके आते आते कुषाण शक्ति बहुत क्षीण हो गई। मध्य-एसियामें भी उसकी वही हालत हुई। किंतु, जिस प्रकार कुषाणोंका स्थान हेफतालों (श्वेत हूणों) ने लिया, इसके जाननेका हमारे पास साधन नहीं है। हमें यह भी मालूम नहीं है कि वह कौन सा श्वेत-हूण सरदार था, जिसने मध्य-एसियासे कुषाण-शासनको उठाया।

स्रोत-ग्रंथ :

1. Greeks in Bactria India (W. W. Tarn)
२. प्राचीन भारतका इतिहास (भगवतशरण उपाध्याय, पटना, १९४९)
३. भारतीय सिक्के (वासुदेव शरण उपाध्याय, प्रयाग, सं० २००५)
4. Coins of Ancient India (J. Allen, London 1936)
5. Coins of Ancient India (Rapsor, London)
6. Catalogue of Coins in the British Museum; Greek amd Scythian kings of Bactria and India, History of Ancient India (V. Smith)
7. History of Ancient India (v. Smith,
8. History of Ancient India (R. S. Tripathi)
9. Memoire Sur l' Asie Centrale (Girarard de Rialle, Paris 1875)
10. The Story of Chang Kien (F. Hirth J A O S. 1917, p. 89)
11. Notes on Indo-Scythian chronolgy, (Sten Kono)
१२. क्लिक० सोओब्, XIII पी० १४८,
१३. किताबुल्-हिन्द (अबूरैहाँ अल्बेरूनी, अनुवादक सै० असगरअली, दिल्ली १९४१)

अध्याय ५

हेफताल (४२५-५५७ ई०)

१. राजा

भारत और ईरानमें भी हेफ़ताल हूण कहे जाते थे, किंतु वह वस्तुतः हूण नहीं थे। हूणों के साथ उनका इतना ही संबंध था, कि हूण-प्रहारके बाद मध्य-एसियाकी अपनी भूमि को छोड़कर जहाँ यूची और दूसरे शक दक्षिणकी ओर चले आये थे, वहाँ पश्चिमी छोर पर कुछ शक-संतानें अब भी रह गई थीं, जो हूण संस्कृतिसे काफी प्रभावित हुईं; इसलिए उन्हें हूणिक शक कहा जा सकता है। उत्तरापथ अब भी घुमन्तुओं और अर्ध-घुमन्तुओंका देश था। घुमन्तू चाहे शक हों या हूण, उनके रहन-सहन और कितनी ही और बातोंमें समानता होती है। फिर देर तक हूणोंके शासनमें रह जाने वालों पर अधिक प्रभाव पड़ना ही चाहिये। जान पड़ता है, जिस संहारके कारण हूण वंशजोंको उत्तरापथ छोड़ धीरे-धीरे पश्चिममें दन्यूबकी-उपत्यकता तक भागना पड़ा, उसी तरहके प्रहारसे हेफ़ताल भी दक्षिणकी ओर भागनेके लिये मजबूर हुए। हेफ़ताल (एफ़ताल) पश्चिमी शकोंकी संतान तथा अलानोंके भाई-बंध थे। संभवतः वर्तमान ताशकंद प्रदेशके उत्तरमें वहीं इनका कबीला रहता था, जहाँ पर कि वू-सुनों और कंगोंकी सीमायें मिलती थीं। ईस्वी ५वीं शताब्दीमें ख्वारेज्ममें अफ्रीगोंकी प्रधानता हुई। यह अफ्रीक (अफ्रीग) ५वींसे ६वीं शताब्दी तक ख्वारेज्ममें अपनी स्वतंत्रता बनाये रखे। अरब विजेता उसी तरह इनकी स्वाधीनताका अपहरण नहीं कर सके, जिस तरह इनसे पहले बाख्त्रीय ग्रीकोंने कंगोंकी। श्वेत-हूण (हेफ़ताल) अपनी दक्षिणाभिमुख विजय-यात्रा ताशकंदके द्वारसे सोग्द और बाख्त्रियाकी ओर कर सके। एक बार बाख्त्रिया और सोग्दसे कुषाणों के शासनको हटाकर अपनी प्रभुता जमा लेनेपर कपिशा और गांधारके कुषाण राजाओंको वह छोड़ नहीं सकते थे। इस प्रकार हेफ़ताल भारत तक चले आये। हेफ़तालोंका मूल-निवास वक्षु-उपत्यका नहीं थी। इनके आनेके समय वक्षु तुषारों (कुषाणों) के हाथमें थी। भारतमें वह अवश्य ६० वर्ष पीछे आये, जब कि बाख्त्रिया इनका केंद्र बन गया था। बाख्त्रीय कुषाण संस्कृतिमें दीक्षित होनेके बाद भारतकी ओर आनेसे उनका प्रथम निवास वक्षु-उपत्यका कहा जाता था। सोवियत विद्वानोंकी हालकी खोजोंसे पता लगता है, कि हेफ़तालों (श्वेत हूणों) का शासन-केंद्र बाख्त्रिया नहीं, सोग्द-उपत्यका थी। बुखाराके पास वरखशामें इनकी राजधानीके अवशेष मिले हैं। बालूसे ढँके ध्वंसावशेषोंकी दीवारोंपर कितने ही भित्ति चित्र मिले हैं, जिनपर भारतीय चित्रकलाका काफी प्रभाव है।

३. तुलनात्मक हेफताल-अवार वंश

ई०	भारत	चीन	दक्षिणापथ	उत्तरापथ
		(चिन्)		
३००		हुइ-ती २९०-३०७	(कुषाण-४२५)	(हूण)
	(गुप्त)	मिन्ती ३०७-१३		

३२०	चंद्र I ३१९-३४०	मिङ्-ती ३२३-२६		
		चेङ्-ती ३२६-४३		
३४०	समुद्र ३४०-७५	खङ्-ती ५३०		
		मु-ती २७५-६२		(आवार)
३६०		ऐ-ती ३६२-६६		मुकुरु
		ती-ई ३६६-७१		
		स्याङ्-वू-ती ३७३-९७		
३८०	राम गुप्त ३७५	(तोवा) ताङ्-वू-ती		चारूक
	चंद्र II ३७६-४१४	३८६-४०९) अन्-ती ३९७-४१९		
४००		(तोबा)		
		मिङ्-य्वान ४०९-२४		शे-लुन्-३९४
४२०	कुमार I ४१५-५५	ताइ-कू ४२४-५२	(हेफताल ४२५)	दादर-४२९
४४०				
४६०	स्कन्द ४५५-६७	वेन्-चेङ् ४५२-६६		
	नरसिंह ४६८	स्यान्-वेन् ४६६-७१		तुगोचिर
	कुमार II ४७३	स्याङ्-वेन् ४७१-५००		तुगोचिर-पुत्र ४६-७०
४८०				
५००		स्वान्-वू ५००-१६	तोरमान५१०	
	भानु ५१०-	स्याङ् मिङ ५१६-२८	मिहिरकुल-	चेउनो-५१६-
५२०		स्याङ् च्वाङ् ५२८-३०		ब्रह्मन्
		स्याङ् वू ५३०-३५		
५४०	(मौखरी)			
	ईशान वर्मा ५५५			अनक्के-५४६-

ग्रीक और अरमनी लेखक इन्हें हेफताल, अेप्तालित, या अेफथाल कहते हैं[१]। साथ ही इन्हें हूण और श्वेतहूण भी कहा जाता रहा। इतिहासकार प्रोकोपने इन्हें "श्वेतपारसीक" भी कहा है। श्वेतहूण कहनेका कारण पुराने इतिहासकार यही बतलाते हैं, कि इनकी संस्कृति हूणोंसे अधिक उन्नत और रंग अधिक सफेद था। ६ठीं शताब्दीमें यह चीन और सासानी साम्राज्यके विभाजक थे। हेफ्ताल वंशीय राजा तोरमान और मिहिरकुलका शासन भारतमें भी रहा, और यहाँ उनके सिक्के भी मिले हैं। उनके सिक्कोंके देखनेसे ही पता लग जाता है, कि वह हूण जातिके नहीं थे। मंगोलायित होने से हूणोंको दाढ़ी और मूछ नहीं-सी होती थी, जब कि सिक्कोंपर तोरमान और मिहिरकुलके चेहरे दाढीसे भरे मिलते हैं। तोरमानके सिक्केके अग्रभागमें राजा का शिर तथा गुप्तलिपि में "विजितावनिरवनिपतिः श्रीतोरमान" लिखा रहता है, और दूसरी ओर पंख सहित मोरकी आकृति। तोरमानके सिक्केमें गुप्तमुद्राका पूर्णतया अनुकरण किया गया है, जिससे स्पष्ट है, कि भारतमें वह अपनेको गुप्तोंका उत्तराधिकारी मानता था। उसके पुत्र मिहिरकुलके सिक्कोंके अग्रभागपर राजाकी खड़ी मूर्ति तथा "शाही मिहिरकुल" अथवा घोड़ेपर सवार राजाकी मूर्तिके साथ मिहिरकुल अंकित रहता है। पृष्ठभागपर लक्ष्मीकी मूर्ति रहती है।

तोरमान और मिहिरकुल दो ही हेफ्ताल शासकोंके नाम हमें मालूम हैं। जिस वक्त तोरमान का शासन भारतमें था, उसी समय सासानी कवाद (१) (४८७—४९८,५०१—

[१] सिरिइस्किये इस्तोचनिकि पो इस्तोरिइ नरोदोफ़ ससर (न० पिगुलेव्स्कया)

कि सारे हेफ्तालोंका प्रधान नेता तोरमान था। हेफतालोंका संघर्ष केवल भारतमेंही (गुप्तोंसे) नहीं हुआ, बल्कि वह सासानियोंके भी भयंकर शत्रु थे। कवादका पिता पीरोज (४५९—८३ई०) हेफतालोंसे लड़ते मारा गया। इससे पहले वह अपनी पुत्री हेफ्ताल राजाको देकर संधि कर चुका था। ईरानी साम्यवादी मज्दक के प्रभावमें आनेके कारण कवाद को विस्मृति-दुर्गमें बंदी होने और फिर वहाँसे भागनेका जब मौका मिला, तो वह अपने बहनोई श्वेत-हूणोंके राजाके पास गया। इस हेफताल राजाका जो नाम (अखशुनवर) अरबी लिपिसे होकर हमारे पास पहुंचा है, उसे तोरमान नहीं पढ़ा जा सकता।

वरख्शा (बुखारासे नातिदूर) को सोवियतके विद्वान् हेफ़तालोंकी राजधानी बतलाते हैं।[1] इसकी खुदाई १९३७ ई० में प्रोफेसर व० अ० शिश्किनने कराई थी। वहां ५०० घन-किलोमीतरके क्षेत्रमें पुराने नगरके बहुतसे ध्वंसावशेष मिले हैं। यह अवशेष उस समयके हैं, जब कि अभी बुखारा को प्रधानता नहीं मिली थी। खुदाईमें एक बड़ा हाल मिला है, जो शायद दरबार-हाल या मंदिर रहा हो। इसकी दीवारोंमें मनुष्य, पशु आदिके बहुतसे चित्र (शिकारके दृश्य, भारतीय वेषभूषामें किसी भारतीय राजाका चित्र आदि) मिले हैं। प्रोफेसर शिश्किनका ख्याल है, कि इन हेफ़्तालों पर भारतीयताका बहुत प्रभाव पड़ा था, जो तोरमानके ग्वालियरमें बनवाये सूर्य मंदिरके अभिलेखसे भी मालूम होता है।

२. ईरानी और हेफताल[2]

मध्य-एसियाके रंगमंचपर आरंभ ही से बराबर एकके बाद एक घुमन्तू जातियाँ लूट मार करती राजा बन जाती रहीं, फिर कुछ दिनों तक पास-पड़ोसमें उथल-पुथल मचातीं कभी कभी हिंदूकुशके पार हो भारत तक चली आतीं, यह हम अनेक बार देख चुके हैं। हेफ़तालोंकी शक्ति इतनी बढ़ी चढ़ी थी, कि ईरानके सासानी शाह कितनीही बार उनके दयाके भिखारी बने। बहराम गोर (४२१-४३८ ई०) के समय कुषाणोंको हटाकर वह ईरानके पड़ोसी बने। बाख्त्रिया लेकर उन्होंने खुरासानमें लूटमार मचाई। बहराम ७००० सवारोंको लेकर उनके ऊपर चढ़ा और उसने युद्धमें हेफ़ताल राजाको अपने हाथों मार वक्षु पार जा शत्रुको अपनी शर्तों पर संधि करनेके लिये मजबूर किया। लेकिन हेफ़ताल घुमन्तुओंपर इसका स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। बहरामके पुत्र यज्दगर्द (२) (४३८-४५७ ई०) के १९ सालके शासनमें भी संघर्ष जारी रहा। उसके उत्तराधिकारी होरमुज्द (३) (४४७-४५८ ई०) और उसके भाई पीरोज (४५९-४८४ ई०) गद्दीके लिए झगड़ पड़े। पीरोज भागकर हेफ़तालोंके राजा अखशुनवरके पास वक्षु पार गया और हेफ़ताल सेना लेकर लौटा। होरमुज्दने राज्य और प्राण दोनों खोये। हेफ़ताल पीरोजको अपने हाथमें रखना चाहते थे। उनसे मुक्ति पानेके लिये पीरोजने ४८० ई० में हेफ़तालोंसे युद्ध ठाना। हेफ़तालोंको अपने पड़ोसी अवारों (जुनजुन) और सासानियोंसे बराबर संघर्ष करनेके लिए तैयार रहना पड़ता था। उसी तरह ईरानके भी दोनों ओर हेफ़ताल (येथा) और रोमन

---

[1] क्रत्किये सोओब्श्चेनिया x p 3

[2] ईरान दर ज़मान सासानियान (अर्थर क्रिस्तियान्सन, फ़ारसी अनुवादक रशीद यासमी तेहरान १३१७) पृ० २०४, ४८, २६२, २९२

५३१ ई०) ईरानपर शासन करता था। हेफ्तालोंकी शक्ति दुर्धर्ष थी। यह नहीं कहा जा सकता, दो शक्तियाँ थीं। रोमन सम्राट् हेफ़तालोंको प्रेरित करते रहते और हेफ़ताल भी ईरानको लालच भरी दृष्टिसे देखते रहते थे। पीरोजने अखशुनवरके पुत्रपर आक्रमण किया, जो कि शायद बाख्त्रियाका उपराज था। पीरोजको कई बार बुरी तरह हारना पड़ा और अन्तमें बड़ी अपमानपूर्ण शर्तों के साथ संधि करनी पड़ी—अपने पुत्र कवादको हेफ़ताल दरबारमें जामिनके तौरपर रखना और राजाको अपनी कन्या दे, वार्षिक रुपया स्वीकार कर हेफ़तालोंका करद बनना पड़ा। रुपयोंको पीरोज अदा नहीं कर सका, इसपर हेफ़तालोंने ४८० ई० में पीरोजपर आक्रमण किया। इसी लड़ाईमें वह मारा गया। अब सासानी साम्राज्य पूरी तौरसे हेफ़तालोंकी दया पर निर्भर था। राजधानी तस्पोन (मसोपोतामिया) तक को खतरा हो गया।

आर्मेनिया राजनीतिक ही तौरसे नहीं, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक तौरसे भी ईरानका भाग चला आता था, लेकिन पड़ोसी रोमन उसे उकसाया करते थे, जिसके कारण ईरानको आर्मेनिया के लिए बराबर संघर्ष करना पड़ता था। इस राजनीतिक संघर्ष का एक यह भी कारण हुआ, कि आर्मेनियाने जर्थुस्त्री धर्म छोड़कर ईसाई धर्म स्वीकार कर रोमके साथ और भी घनिष्ठता स्थापित की। जिस समय पीरोज मारा गया, उस समय ईरानी सेनापति जेरमेहर (सुखरा) आर्मेनियाके ऊपर अभियानके लिये गया हुआ था। हेफ़ताली खतरेको सुनकर वहांसे जल्दी जल्दी राजधानीमें लौट उसने पीरोजके भाई बलाश (४८४-४८७ ई०) को गद्दीपर बैठाया। तीन ही सालके शासनके बाद उसे उतारकर पीरोज-पुत्र कवाद (४८७ ई०) गद्दीपर बैठाया गया। कवाद हेफ़ताल राजाका साला और दामाद दोनों ही था। मज्दकके साम्यवादी तथा कुछ-कुछ धर्म-विरोधी विचारोंको स्वीकार करनेके लिये पीरोजको गद्दीसे उतार दिया गया (४९८ ई०)। अपने बहनोई के पास जा हेफ्ताल सेनाकी मदद ले वह फिर (५००ई०) सिंहासनपर बैठा। इससे स्पष्ट है, कि हेफ्तालोंका ईरान पर भारी प्रभाव था। कवादके उत्तराधिकारी खुसरो अनौशिर्वान (५३१—५७९ई०) को भी हेफ्तालोंसे कम संघर्ष नहीं करना पड़ा। लेकिन छठी शताब्दीके मध्यतक पहुँचते-पहुँचते अपने सवासौ वर्षोंके राजत्वकालमें हेफ्ताल अधिक सभ्य और नागरिक बन गये, जिसमें भारत और ईरान दोनोंने सहायता की। मध्य-एसियाके सनातन नियमके अनुसार अब उन्हें किसी दूसरे घुमन्तू वंशके लिये अपना स्थान खाली करना था। अवारों (ज्वेज्वेन) को हटाकर ५४० के आसपास तुमिन इलीखान (मृत्यु ५५३ ई०) ने अवार साम्राज्यकी जगह तुर्क साम्राज्यकी स्थापना की। उसने पूरबमें चीनके कारण आगे बढनेका स्थान न पा, पश्चिमकी ओर विजय-यात्रा आरंभ की। उसका उत्तराधिकारी इस्सिगी थोडे ही समय तक शासन कर सका, फिर इलीखानका भाई मुयूखान गद्दीपर बैठा, जिसने अपने ज्येष्ठ भाई के अपूर्ण कामको पूर्ण करना चाहा। मुयूखानने सिर और सोग्दकी उपत्यकाओंसे हेफ्तालोंको खदेड़नेके लिये ईरानी शाह अनौशेरवान के साथ संबंध स्थापित किया। अनौशेरवान और मुयूखानने मिलकर हेफ्तालोंको खतम करनेका निश्चय किया। दोनोंने हेफ्तालोंपर आक्रमण कर दिया। इस लड़ाई का परिणाम था हेफ्तालोंके राज्यकी समाप्ति और ५५७ ई० के आसपास उनके राज्यका तुर्कों और सासानियों द्वारा बांट लिया जाना—बलख (बाख्त्रिया), तुखारिस्तान ईरानियोंके हाथ आये और वक्षुपारका हिस्सा तुर्कोंने ले लिया। अनौशिरवानने मुयूखानकी लड़कीसे ब्याह किया। रोमन नहीं

चाहते थे, कि तुर्क और सासानी मिल जायें, इसलिये उन्होंने तुर्क खाकानके पास दूत भेजकर उसे सासानियोंके खिलाफ भड़काना चाहा।



१५ हेफताल (श्वेतहूण) साम्राज्य (५१० ई०)

स्रोतग्रंथ :

1. Heart of Asia (E. D. Ross)

२. सिरिइस्किये इस्तोच्निकि पो इस्तोरिइ नरोदोफ़ ससर (न० पिगुलेव्स्कया, मास्को १६४१)

3. Memorie Sur l' Asie Centrale (G. de Rialle, Paris 1875)

4. Sur les Huns Blanc ou Ephtalites (Vivien de Saint-Martin)

5. Histoire generale des Huns, des Turcs, des Mongols et des autres occidenteux (J. Degingnes')

६. क्रत्कि० सोओब्० vII

7. Terracottas From Afrasiab (C. Trever, Leningrad 1936)

८. ईरान दर ज़मान सासानियान (अर्थर क्रिस्तियान्सन, अनुवादक रशीद यासमी, तेहरान १३१७)

अध्याय ६

तुर्क (५५७-७०४ ई०)

तुर्कोंका तृतीय खान मुयू (मृत्यु ५५३ ई०) जिस समय दक्षिणापथका स्वामी बना, उस समय तुर्क साम्राज्य अभी पूर्व और पश्चिम दो राज्योंमें नहीं विभक्त हुआ था। उसके भाई तथा उत्तराधिकारी तोबाखान (५६६-५८० ई०) के राजगद्दी संभालनेके समय मुयू खानके पुत्र दलोबियानने उत्तराधिकारके लिये झगड़ा किया, जिसमें उसे सफलता नहीं हुई। उसने चचाके मरनेके बाद (५८० ई० में) तुर्क-साम्राज्यको दो भागोंमें विभक्त कर पश्चिमी तुर्क-साम्राज्यकी नींव डाली, यह हम कह आये हैं। तोबा कगानके समय तुर्कोंपर बौद्ध धर्मकी छाप पड़ी, जो आगे बढ़ती ही गई। इसके पहलेके हेफ़तालोंपर बौद्ध धर्मका कितना प्रभाव पड़ा, यह नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक तोरमानका संबंध है, ग्वालियरमें सूर्य मंदिरके बनवानेसे जान पड़ता है, वह शकोंके पुराने देवता सूर्यका भक्त था। उसके पुत्र मिहिरकुलको बौद्धोंका शत्रु बतलाया जाता है। अपने पूर्वगामी कुषाणोंकी तरह हेफ़तालोंका बौद्ध धर्मसे विशेष अनुराग नहीं था, किंतु तुर्कोंके समय फिर बौद्ध धर्मकी प्रतिष्ठा बढ़ी।

(१) दालोबियान (५८०-)

तोबाके समय तक अविभाजित तुर्क साम्राज्यका ही अंग दक्षिणापथ भी था, किंतु उसके भतीजे दालोबियानने पश्चिमी तुर्क साम्राज्यकी नींव डाली। इसीके राज्यमें पश्चिमी मध्य-एसिया था, किंतु इसके समयमें साम्राज्यकी सीमा और आगे नहीं बढ़ी। उसके उत्तराधिकारी नीलीने थोड़े ही समय तक शासन किया।

(३) चुलोकगान (६०५ ई०)

नीलीके पुत्र दामो (धर्म) का नाम ही बतलाता है, कि उसका वंश बौद्ध धर्मसे कितना प्रभावित था। वह अधिकतर कुल्जा (इली-उपत्यका) में रहा करता था। प्रदेशोंका शासन यवगू (उपकगान) करते थे। कुषाणोंके सिक्कोंपर भी इस उपाधिको हम देख चुके हैं। चुलो कगानका एक यवगू शाश (ताशकंद) के पास रहता था, जो दक्षिणमें वक्षु तट (सासानी सीमांत) तकका शासक था। नौशेरवानका पुत्र और उत्तराधिकारी होर्मुज्द (४) (५७९-९० ई०) मुयू खानका नाती था। लेकिन इससे क्या संघर्ष मिट सकता था? कभी उसे रोमसे लोहा लेना पड़ता था और कभी तुर्कोंके दबावसे छुटकारा पानेके लिये उनसे भिड़ना पड़ता था। चुलो कगानका यवगू शाव (शबोलियो) तीन लाख सेना लेकर सासानी साम्राज्यके भीतर घुसकर हिरात तक पहुँच गया। उधर रोमन सम्राट्ने ८० हजार सेनाके साथ सिरियापर चढ़ाई कर दी। कास्पियनके पश्चिम ईरानी साम्राज्यकी सीमा पर हूणोंके वंशज खजार उत्तरसे प्रहार कर रहे थे, जिसके

२८

१. तुलनात्मक तुर्क वंश

ई०	भारत (कन्नोज)	चीन	पू० तुर्क	प० तुर्क	ईरान
५४०	यशोवर्मा-५३२-	(लियाङ्)	तूमिन-५५३	तूमिन-५५३	(सासानी)
		वू-ती ५०३-४९			खुस्रो नौशेरवाँ ५३१-७८
५६	हरिवर्मा	च्यान्वेन्५४९-५५१	इसिगी ५५३	इसिगी ५५३	
		वेङ्ती ५६०-६७	मुयू-५५३-६९	मुयू	
		स्वेन् ती ५६९-८३	तोबा ५६९-८०	तोबा	
५८०		(सुइ)	शेतू ५८२-८७	दालोव्यान ६८०-	होर्मुज्द ५७८-५९०
		वेङ ती ५८१-६०५	दूलन ५८७-६००		खुस्रो पर्वेज ५९०-६२८
६००	हर्ष ६०६-६४८	याङ्ती ६०५-१७	दालू बुगा ६००-६०५	चूलो-६०५	
		कुङ ती ६१७-१८	खेली-६२८	शेइगुइ६१८-६१९	
६२०		(थाङ)		तुनशेखू ६१९-	
		काउचु ६१८-२७	तुली ६२८-६३१		कवाद II ६२८-२९२
		ताइचुङ ६२७-५०	सिविली ६३१-६४७	निशिदुलू-६५१	यज्दगर्द III ६३४-४
६४०					(अरब)
	अर्जुन ६४९	काउचुङ ६५०-८४	चेबी ६४७-८२	इबीशबोलो ६५१	उमर ६४२-४४
					उस्मान ६४४-५६
					अली ६५६-६१
६६०					म्वाबिया ६६१-८०
६८०		वूहू (रानी) ६८४-७०५	गुदलू ६८२-६९३		यजीद I ६८०-७१७
			मोचो ६९३-७१३	अशिनाशिन-७०८	
७००		चुङ् चुङ् ७०५-१०		सोगे ७०८-७०९	
		स्वेन् चुङ् ७१३-५६	मोगिल्यान ७१६-७३३	सुलू ७०९-७३८	उमर II७१७-२०
७२०	यशोवर्मा ७२५-५२				

कारण वहांके दरबन्दपर खतरा हो गया था। खुद राजधानीके पास दक्षिणकी ओर से अरब सरदारोंने फुरात-उपत्यका (इराक) पर चढ़ाई कर दी थी। तुर्क सेनापति शावने होरमुज्दके पास धृष्टतापूर्ण संदेश भेजा "देखना पुल और सड़कें ठीक-ठाक रहें। मैं रोमनोंसे मिलनेके लिये ईरानको पार करना चाहता हूं"। होरमुज्दने अपने प्रसिद्ध सेनापति (तेहरान के) सामन्त बहराम चोबीं को १२००० चुने हुए योद्धाओंके साथ तुर्कोंका मुकालिबा करनेके लिये भेजा। बहरामने तुर्कोंको बुरी तरह हराया और उसीके वाणसे शाव मारा गया। शावका पुत्र बंदी हुआ। बहरामको तुर्क-ओर्दूसे अपार संपत्ति मिली, जिसे ढाई लाख ऊंटोंके साथ उसने शाहके पास भेज दिया। वहांसे बहराम रोमनोंके विरुद्ध भेजा गया, लेकिन वहां उसकी पूर्ण पराजय हुई। होर्मुज्दने गुस्सेमें आकर बहरामको पदच्युत कर दिया, जिसके कारण उसे विद्रोही बनना और होरमुज्द को तख्तसे हाथ धोना पड़ा। उसके उत्तराधिकारी खुसरो ii परवेज (५९०-६२८ ई०) के समय भी तुर्कोंसे संघर्ष चलता ही रहा, जिसमें उसका विद्रोही चचा छ साल तक तुर्कों (चुलो कगान) की मददसे लड़ता रहा। लेकिन खुसरोको रोमके विरुद्ध कुछ सफलतायें प्राप्त हुईं। ६१३ ई० में उसने दमश्क ले लिया। ६१४ ई० में येरुशिलम उसके हाथमें था, जिसे १६ वर्ष बाद ६२९ ई० में ही हिराक्लियस लौटा पाया।

४. शे-गुइ (६१८-६१९ ई०) और ५. तुन-शे-खू (६१९ ई०)[१]

इन दोनों भाइयोंके कगान होनेके समय तुर्क साम्राज्यका विस्तार अधिक हुआ, यद्यपि उनका समकालीन खुस्रो परवेज (५९०-६२८ ई०) भी निर्बल शासक नहीं था। शे-गुइने अपनी पश्चिमी सीमाको कास्पियन समुद्रतक पहुँचा दिया, पूरबमें वह चीनकी महादीवारके पश्चिमी छोरपर अवस्थित प्रसिद्ध सीहै घाटा तक थी। उसके छोटे भाई तुन-शे-खूने भी अपने सैनिक कौशलका परिचय देते सासानियोंको मार भगा तथा अफगानिस्तान तक अपनी सीमा पहुँचा दी। इस समय ईरानके तीन शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी थे : पूरबमें तुन-शे-खू कगान, काकेशसके उत्तरमें खजार कगान और पश्चिममें विजन्तीय सम्राट् हिराक्लियस्। ये चारों शक्तियाँ जिस वक्त आपसमें गुत्थम-गुत्था कर रही थीं, इसी समय अरबके रेगिस्तानमें एक नई शक्ति पैदा हो रही थी। जिस समय (६२९-६४५ ई०) स्वेन्-चाङ भारत यात्रा करते तुन्-शे-खूसे ६३१-६३२ ई० में मिलकर नालंदा निवास और सम्राट् हर्षवर्धनका स्वागत प्राप्त कर रहा था, उसी समय खुस्रोके तृतीय उत्तराधिकारी यज्दगर्द iii (६३४-६४२ ई०) को खतम कर अरबोंने विशाल सासानी साम्राज्यको अपने हाथमें कर लिया, और तुन्-शे-खू के शासनकालमें ही अरब उसके पड़ोसी हो गये।

तुन्-शे-खूके उत्तराधिकारियों में उसका पुत्र तुन-वो-शे (६३४-६३८ ई०) शवोलो खिलिश खान के नाम से गद्दी पर बैठा। इसके नाममें खिलिश शब्द वही है, जो कि भारत के खिलजी सुलतानों के वंश के साथ संबद्ध है। अभी तुर्कों की शक्ति उतनी क्षीण नहीं हुई थी, और न अरब अपने को उतना मजबूत देखते थे, कि वह तुर्कों से छेड़-छाड़ करते। ११वें पश्चिमी तुर्क कगान इवी शवोलो शेखू (६५१-..) या असिना खेलू चीन के सामने बराबर दबनेवाला कगान था। उसके उत्तराधिकारी असिनासिन (मृत्यु ७०८ ई०) के समय भी तुर्क साम्राज्य पतनोन्मुख

होने से बचाया नहीं जा सका। इसका एक सबूत यही है, कि इसीके शासनकाल (७०४ ई०) में सिर, जरफशां और आमूदरिया की उपत्यकायें तुर्कों के हाथ से निकलने लगीं।

तुर्कों में हूणों, अवारों, कुषाणों, हेफ्तालों की तरह ही घुमन्तू कबीलाशाही शासन-प्रथा चली आती थी, जिसके कारण कगान के भाई-भतीजे यवगू होकर अपने प्रदेश में बहुत कुछ स्वतंत्रता-पूर्वक शासन करते थे। जिस वक्त कगान कमजोर होता, उस वक्त प्रदेशों में यवगुओं और तेगिनों (राजकुमारों) का शासन इतना स्वच्छन्द होता, कि वहां की साधारण जनता उनके सिवा कगान को जानती ही नहीं थी। शवोलो शेखू और असिनासिनकी कगानता ऐसी ही थी। अरबों से इनके यवगुओं का संघर्ष था, इसीलिये अरब लेखक कगानको नहीं, बल्कि उसके प्रादेशिक शासक (तेगिन) को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझते थे।

(स्वेन्-चाङ का देश-वर्णन[1])

स्वेन्-चाङ ६३१-६३२ ई० में तुर्कों द्वारा शासित दक्षिणापथ से गुजरा था। इस भूमि में प्रविष्ट होने से पहले ही वह तुर्क कगान तुन्-शे-खूसे मिल चुका था। तुर्क कगान ने उसकी बड़ी आवभगत की थी। मिलन-स्थान से आगे (तरस से वामियान तक) का उसका वर्णन तत्कालीन दक्षिणापथ के परिचय के लिये विशेष महत्त्व रखता है, इसलिये हम यहाँ उसके वर्णन का संक्षेप देते हैं।

तरस्—यह बिङ-गुल (सहस्रधारा) से पश्चिम १४० या १५० ली (आजकल औलिआता से दक्षिण-पश्चिम में कुछ दूर) पर है। तरस से १० ली दक्षिण चीनी बंदियों का एक गाँव था। इनका वेष तुर्कों जैसा था, किंतु भाषा अब भी वह चीनी बोलते थे।

मनकन्द——आधुनिक चिमकेंत से १५ मील उत्तर-पूरब, जिसे स्वेन् चाङ ने पाइ-शुङ-शेङ (फारसी इस्फिद-याब = श्वेत जल) है। यह चीनी बंदियों के नगर से २०० ली दक्षिण-पश्चिम था। स्वेन्-चाङ ने इसकी भूमि को तरस से अधिक उर्वर बतलाया है।

नूजकंद—मनकंद से ४० या ५० ली दक्षिण नू-ची-कान की अत्यन्त उर्वर भूमि थी। यहाँ बहुत प्रकार के फल फूल होते थे। अंगूर बहुत ही अधिक थे। यहाँ का एक अलग शासक था, जिसके अधीन सौ से ऊपर ग्राम-नगर थे।

ताशकंद—नूजकंद से २०० ली पश्चिम चेसी (ताशकंद) का इलाका पड़ा। (तुर्की भाषा में ताश पत्थर को कहते हैं।) यहाँ भी एक अलग तुर्क शासक था।

फर्गाना—ताशकंद से हजार ली दक्षिण-पूरब फङ-हान का प्रदेश था, जहाँ स्वेन्-चाङ स्वयं नहीं गया। लोगों से पूछने पर उसे मालूम हुआ: "वह चारों ओर पहाड़ों से घिरा है। भूमि बड़ी ही उपजाऊ है। वहां बहुत तरह के फल-फूल पैदा होते हैं। लोग भेंड़ें और घोड़े पालते हैं। सर्दी और हवा का बहुत जोर है। लोग दिल के मजबूत होते हैं। इन की भाषा दूसरे देशों से भिन्न है।...दस साल से इसका कोई राजा नहीं है। स्थानीय सरदार प्रधान बनने के लिये आपस में लड़ रहे हैं। इस जिले और नगरों की प्रतिरक्षा और सीमा नदियां तथा प्राकृतिक वस्तुयें हैं।"

---

[1] On Yuan chwang's Travel (Thomas Watters,) vol I p. p. 71-122)

चीनियों ने चाङ क्यान् के समय (ई० पू० १३६–१२४) में ही फर्गाना के बारे में परिचय प्राप्त कर लिया था, लेकिन उस समय चीनी भाषा में इसका नाम शा-वाङ और राजधानी उइ-शान् (कुषाण) थी। ७७४ ई० में चीनी इसे निङय्वान कहते थे, और आजकल हुवो-हान् (फोक्-हान)

सुतुलिसे—ओश्रूशनाका यह चीनी नामांतर है। आजकल इसे उरात्यूबे कहते हैं। फर्गाना से एक हजार ली पूरब शे (सिर) नदी के पूर्व में यह स्थान अवस्थित है। शे नदी को स्वेन्-चाङ सुङ-लिङ (पामीर) से निकली बतलाता है। उस समय इसकी धारा मटमैली थी। इसीलिये स्वेन् चङाने इसे मटमैली द्रुतगामी महान् धारा लिखा है। यहाँ का राजा भी तुर्क-कगान के अधीन था।

समरकंद—सम-जी-कान के उत्तर-पश्चिम में जल-वनस्पतिहीन एक रेगिस्तान (किज़िल-कुम) का होना स्वेन्-चाङ ने बतलाया है। वह लिखता है: "यह बिल्कुल निर्जन भूमि है, जहां केवल पहाड़ों का अनुगमन करते तथा कंकालों को देखते चला जा सकता है।" इसप्रदेश का पुराना नाम सू-ही (सोग्द) था। स्वेन्-चाङ के समय भी यह प्रदेश बड़ा उर्वर था। वृक्ष और फूल बहुतायत से होते थे। यहां बड़े सुन्दर घोडे पाये जाते थे। यह बहुत बड़ा व्यापारिक नगर था। लोग शिल्प-चतुर, उद्योगपरायण और चुस्त थे। सारा तुर्क-राज्य इसे अपने देश का केन्द्र मानता था और सभी लोग यहां के सामाजिक रीति-रवाजों को आदर्श मानते थे। यहां का राजा बड़ा हिम्मती और उदार था। पड़ोसी राजा इसके आज्ञाकारी थे। इसके पास बड़ी अच्छी सेना थी। यहाँ के योद्धा इतने बहादुर थे, कि मृत्यु को बंधुओं के पास जाने से बढ़कर नहीं समझते थे। युद्ध में शत्रु इनके सामने खड़ा नहीं हो सकते। यह अवस्था दक्षिणापथ की उस समय थी,जब कि अरब ईरान की ओर बढ़ने की तैयारी कर रहे थे। धर्म के बारे में स्वेन्-चाङ ने लिखा है, कि समरकंद के लोग अग्निपूजक हैं। ६वीं ७वीं सदी में हमें मालूम है, कि बौद्ध दूसरे स्थानीय देवताओ को भी पूजते थे। स्वेन्-चाङ के समय समरकंद में बौद्धों के साथ विद्वेष और अत्याचार भी होता था। स्वेन्-चाङ के समय दो विहार थे। स्वेन्-चाङ के साथी तरुण भिक्षु पूजा करने के लिये गये, तो लोगों ने उन्हें मार भगाया और विहार में आग लगा दी। समरकंद के राजा ने उन्हें दंड दिया और स्वेन्-चाङ को बुलाकर धर्मोपदेश सुना। स्वेन्-चाङ लिखता है, कि यहां का राजा शौ-वू खानदान की वेन् शाखा का है। रानी एक तुर्क राजकुमारी है। ६३१ ई० में यहां के राजा ने चीन सम्राट् ताइ-सुङ (६२७-६५० ई०) के पास अधीनता स्वीकार करने के लिये अपना दूत भेजा था, लेकिन जान पड़ता है, वैमनस्य मोल न लेने के ख्याल से उसने स्वीकार नहीं किया।

मेमेग्—समरकंद से दक्षिण-पूर्व यह इलाका था, जिसे स्वेन्-चाङ ने मि-मो-हा लिखा है। यहां के लोग समरकंद जैसे ही थे।

मी-तान् (कि-पू-ता-ना)—मी-मो-हा से उत्तर यह स्थान मिला। रमीतान् वस्तुतः समरकंद से ३० मील उत्तर-पश्चिम है।

कुशानिया (कुशोङहिका)—कुषाण शासकों का यह चिह्न आज भी मौजूद है। इसे स्वेन्-चाङ ने मितान् से ३०० ली (६० मील) पर बतलाया है।

हो-हान् (कर्मीना)—कुशानिया से २०० ली (४० मील) है।

पू-हो (बुखारा)—४०० ली (८० मील) पश्चिम।

फा-ती (पैकंद ?)—बुखारा से ४०० ली (८० मील) पश्चिम।

ह्वो-ली-सी-मी-का (ख्वारेज़मिया)—फा-ती से ५०० ली (१००मील) दक्षिण-(? उत्तर) पश्चिम, वक्षु नदी के दोनों किनारों पर यह प्रदेश २० या ३० ली(४ या ६ मील) चौड़ा तथा उत्तर से दक्षिण ५०० ली (१०० मील) लम्बा है।

समरकंद से ख्वारेज़्म तक की बातें स्वेन्-चाङ ने सुनकर लिखी हैं। वह सीधा समरकंद से केश (शहरशब्ज) गया था।

का-श्वाङ-ना (केश)—समरकंद से ३०० ली (६० मील) दक्षिण-पश्चिम यह प्रदेश है। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ और निवासी समरकंद जैसे (सोग्दी) हैं। (शहरशब्ज जिस नदी के किनारे है, उसका नाम आज भी कश्क-दरिया है।

दरबन्द (लौहद्वार)—केश से २००ली (४० मील) दक्षिण-पश्चिम जाने पर स्वेन्-चाङ पहाड़ियों में घुसा। "पगडंडी बहुत संकरी तथा खतरनाक है। वस्ती नहीं है। घास पानी भी बहुत कम है।...पहाड़ों के भीतर दक्षिण-पश्चिम की ओर ३०० ली (६० मील) से अधिक जाकर आदमी लोहघाटे में प्रविष्ट होता है। लोहघाटे की दोनों तरफ बिल्कुल सीधे खड़े ऊँचे पर्वत हैं। ...चट्टानें लोहे के रंग की हैं। यहाँ फाटक लगाये गये हैं, जो लोहे से मजबूत किये गये और उनके ऊपर बहुत सी छोटी छोटी लोहे की घंटियाँ लटकाई गई हैं। अपनी दुर्धर्षता के कारण ही इस घाटे का यह नाम (लौहद्वार) पड़ा।" यह आजकल का बुज़गल्ला (अजगृह) है...जिसकी चौड़ाई प्रायः दो मील तक ४० से ६० फुट तक है। इसके बीच से एक नदी (सुलाख) बहती है। इसमें एक गाँव है।

तारीख रशीदी में लिखा है "प्रसिद्ध लौहद्वार की नदी ऊंचे पहाड़ों के बीच से टेढ़ी-मेढ़ी होकर दर्बन्द से पश्चिम प्रायः १२ फर्सख जाती है। यह संकरा मार्ग ५ से ३६ कदम तक चौडा और दो फर्सख लंबा है।" बुज़गला खाना के इस दर्रे का पूर्वी छोर समुद्र तल मे ३५४० फुट और पश्चिमी छोर ३७४० फुट ऊंचा है।

तुखार (तु-हु अी-लो)-लोहद्वार के बाहर आते ही तुखार देश आ जाता है। इसकी सीमा पूर्व में चुङ-लिङ (पामीर) पर्वत, पश्चिम में ईरान, दक्षिण में महाहिमवंत (हिंदूकुश) पर्वत और उत्तर में लोहद्वार है। तुखार देश के बीच में पूरब से पश्चिम की ओर वक्षु नदी बहती है। यह देश २७ सामंतों में बँटा है, जो सभी तुर्कों के अधीन हैं। गर्मियों में यहाँ बहुत बीमारी (मलेरिया) होती है। जाड़े के अन्त और बसंत के आरंभ में लगातार वर्षा होती रहती है।...यहाँ के भिक्षु लोग बारहवें मास की सोलहवीं तिथि से तीसरे मास की पन्द्रवीं तिथि तक वर्षावास मनाते हैं। इस प्रकार वह अपने धार्मिक नियमों को ऋतु के अनुकूल मानते हैं। यहाँ के लोग...विश्वास-पात्र होते हैं, धोखेबाज नहीं। यहाँ की एक विशेष भाषा और २५ अक्षरों की वर्णमाला है, जो कि ऊपर से नीचे तथा बाँयें से दाहिने लिखी जाती है। ऊनी कपड़ों की अपेक्षा यहाँ सूती अधिक पहने जाते हैं। यहाँ के सोने चांदी और दूसरी धातु के सिक्के दूसरे देश से भेद रखते हैं। यह देश गर्मी में गरम होता है, लेकिन गर्मियों के इस्तेमाल के लिये जाड़ों में वर्फ को जमा कर लेते हैं।

तेर्मिज (ता-मी)—"तुखार देश की यह राजधानी चौड़ी की अपेक्षा अधिक लंबी, २० ली (४ मील) के घेरे में बसी है। यहाँ दो विहार है, जिनमें हजार से अधिक भिक्षु रहते हैं। यहाँ के स्तूप और मूर्त्तियाँ बहुत सुन्दर हैं।

शुग्नान (शी-गा-येन्-ना)—यह तेर्मिज से पूरब है, जहां पांच विहार हैं, किंतु भिक्षु बहुत कम हैं।

हू-लू-मो (खुल्म ?)—यह प्रदेश शुग्नान से पूरब में है। यहां का राजा एक हि-सू तुर्क है। यहां दो विहार और सौ से ऊपर भिक्षु रहते हैं।

सू-मान ( )—हु-लू-मोसे पूरब में है, जहां दो विहार और थोड़े से भिक्षु रहते हैं।

कू-येन्-ना ( )—यह प्रदेश वक्षु से दक्षिण-पश्चिम अवस्थित है, जहां तीन विहार और सौ से अधिक भिक्षु रहते हैं।

हू-शा ( )—पूर्वोक्त से पूर्व में अवस्थित है।

को-तू-लो (खुत्तल)—पूर्वोक्त से पूरब में है, जो पूरब में चुङ-लिङ (पामीर) के भीतर कु-मि-ते प्रदेश तक पहुंचता है।

कु-मि-ते ( )—यह चुङ-लिङ (पामीर) पर्वत-माला में उसके दक्षिण-पूर्व में वक्षु के पास अवस्थित है। इसका दक्षिणी पड़ोसी देश शि-कि-नी है।

वक्षु के दक्षिण में निम्न प्रदेश हैं :—त-मो-सि-तिये-ति, पो-तो-च्वाङ-ना, यिन्-पो-कान्, कु-लङ-ना, हि-मो-त-ला, पो-लि-हो, कि-लि-सो-मो, को-लो-हू, अलि-नि, मेङ-कान्।

हु-ओ (कुंदुज) से दक्षिण-पूर्व में कु-ओ-सि-तो, और अन्त-ल-फो (अंदराब) है। हु-ओ से दक्षिण-पश्चिम फो-क-रङ देश है। इससे दक्षिण कि-लु-सि-मिन्-किन् है, जिसके उत्तर-पश्चिम हू-लिन् देश है, जहां दस विहार और ५०० भिक्षु रहते हैं।

हु-ओ (कुंदुज)—यहां शे-हू खान का ज्येष्ठ पुत्र तथा सेनापति (क्षत्रप) तातू (तर्दुश, तर्दू) रहता है, जो कि काउ-शाङ (कुषाण) राजा का साला भी है। सेनापति को उसकी स्त्री ने जहर दे दिया। उसका पुत्र ते-मिन् (ते-किन्) और सौतेली मां राज्य के मालिक हैं।

फो-हो (बलख)—हु-लिन् से पश्चिम "लघु राजगृह" नामक प्रसिद्ध राजधानी प्रायः २० ली (५ मील) के घेरे में बिखरी हुई बस्तियों का नगर है। यहां १०० विहार तथा ३००० हीनयानी भिक्षु रहते हैं। "राजधानी के बाहर दक्षिण-पश्चिम में नव (नफो) विहार है, जिसे इस देश के एक पुराने राजा ने बनवाया था। महाहिम (हिंदूकुश)-पर्वत के उत्तर यही एक बौद्ध विहार है, जहां लगातार अविच्छिन्न परंपरा से ऐसे आचार्य चले आते हैं, जो कि त्रिपिटक के व्याख्याकार होते हैं। विहार के संघाराम में एक बड़ी कलापूर्ण रत्नजटित बुद्ध-मूर्त्ति है। इसकी शालायें बड़ी मूल्यवान् वस्तुओं से सजाई हुई हैं, इसलिये भिन्न-भिन्न राजाओं ने बार-बार इसे लूटा। तुर्क शे-हू (शे-खू) या एक राज्यपालके पुत्र स्वयं राज्यपाल स्सू-जो ने संघारामको लूटनेकी कोशिश की। 'बिहारकी बुद्धशालाके दक्षिणमें बुद्धका प्रक्षालनपात्र है, जिसमें प्रायः २८ मन (एक टन) की जगह है। यह बड़ा ही चमकीली है। नहीं कहा जा सकता, कि वह धातुका है या पत्थरका। ८/१० इंच लंली सवा अंगुल चौड़ी बुद्धकी दाढ़ (दांत) और दो फुट लंबा तथा ७ इंच मोटा भूरे रंगका काशा (दंड) भी यहां है, जिसकी मूठ मुक्ता-जटित है। इन वस्तुओंकी दर्शन-पूजा उत्सवके दिनोंमें होती है।

नवविहारके उत्तर २०० फुट ऊंचा एक स्तूप है, जो वज्रलेपसे गच किया तथा बहुमूल्य वस्तुओंसे सजाया है। नवविहारसे दक्षिणमें एक संघाराम है, जिसे बहुत पुराने समयमें

अर्हत् और आर्य भिक्षुओंके लिये बनाया गया था। यहां रहते हुए जितने भिक्षु अर्हत् पदको प्राप्त हुए, उनकी संख्या (गिनी) नहीं जा सकती। सौसे ऊपर अर्हतोंके यहां स्तूप बने हुए हैं। इस स्थानमें जो भिक्षु रहते हैं, कहा नहीं जा सकता, इनमें कौन अर्हत् हैं कौन नहीं।

यु-मेइते (युमेद)—बलखसे दक्षिण-पश्चिम हिमपर्वतके एक कोनेमें यह प्रदेश है।

हु-शि-कान (अशगान्)—यूमेधइसे दक्षिण-पश्चिम यह पर्वतीय प्रदेश है, जहां बहुत-सी उपत्यकायें हैं। यहांके घोड़े अच्छे होते हैं।

तलकान (त-ल-कान्)—अशगानसे उत्तर-पश्चिममें तलकान है, जिसके पश्चिममें पो-ल-सू (पर्शु, ईरान) है।

का-शी (गज)—बलखसे सौ ली (२० मील) दक्षिण यह देश है। यह बहुत पहाड़ी इलाका है। फल-फूल कम होता है, लेकिन गेहूं और मटर बहुत होती है। बहुत गर्म जगह है। लोग कठोर और रूखे हैं। यहांके दस विहारोंमें ३०० सर्वास्तिवादी भिक्षु रहते हैं।

बामियान (फान्-सेन्-ना)—महाहिमगिरि (हिंदूकुश) में गजसे दक्षिण-पश्चिम यह ऊंचे तथा गहरे खड्डोंका प्रदेश है। यहां आंधी और बरफ एकके बाद एक आती रहती हैं। गर्मीके मध्यमें भी सर्दी रहती है।...लुटेरोंके दल यहां बने रहते हैं, जिनका पेशा है नर-हत्या। (गजसे) ६०० ली (१२० मील) चलनेपर तुखार देश पार हो बामियान देशमें पहुंचा जाता है। यह महाहिमगिरिके भीतर है। राजधानी एक खड्डके पार सीधे खड़े पहाड़ोंके घेरेमें है, जिसके उत्तर ओर एक ऊंची चट्टान है।...देश बहुत सर्द है। यहांकी उपज गेहूं और थोड़ा सा फल-फूल है। यहां भेड़ों और घोड़ोंके लिये अच्छी चरागाहें हैं। लोग कठोर और रूखे होते हैं। वह घरके बने ऊनी पट्टू और पोस्तीन पहनते हैं। यहांके रीति-रवाज और सिक्के तुखार जैसे हैं। लोगोंकी आकृति भी वैसी ही है, किंतु भाषामें कुछ अन्तर है। अपने पड़ोसियोंसे ये कहीं अधिक ईमानदार हैं। इनमें त्रिरत्नके उपासक (बौद्ध) और देवताओंके पूजक (हिंदू) भी हैं। यहांका राजा शक वंशी है। यहांके दस विहारोंमें हजारों लोकोत्तरवादी भिक्षु रहते हैं।

अरब भूगोलवेत्ता इब्नहौकल (दसवीं सदी) ने लिखा है "बामियान शहर बलखसे आधा एक पहाड़पर अवस्थित है। इसके पहले एक नदी मिलती है, जो बहकर गुर्जिस्तान प्रदेश में जाती है। यहां कोई बाग-बगीचा नहीं है।"

राजधानीके उत्तर-पूर्वमें सुनहले रंगकी खड़ी बुद्धमूर्ति (सुर्खबुत) है, जो १७३ फुट ऊंची है, जिसके पूरबमें एक बौद्ध विहार है। इसके पूरबमें शाक्यमुनि बुद्धकी १२० फुट ऊंची खड़ी मूर्ति (सफेद बुत) है। यह मूर्ति पहलीसे सवा मील दूर है। इससे १२ या १३ ली (दो ढाई मील) पूरब एक हजार फुट लंबी निर्वाण बुद्धमूर्ति (अज्दहा) है, जो कि एक अकेली सी शिलाके चौरस तलपर बनी है। इसी विहारमें बुद्ध-शिष्य आनंदके प्रशिष्य शाणवासकी संघाटी रखी है।

स्वेन्-चाङ बामियानसे अन्-त-लो-फो (अंदराब) होते अफगानिस्तान और भारतकी ओर आया। हिंदूकुशके उत्तरके कुछ और स्थानोंके बारेमें उसने लिखा है—

कुओ-सि-तो (खोश्त)—अंदराबसे ३०० ली (६० मील) उत्तर-पश्चिम यह स्थान है, जो पहले तुखारदेशमें था, किंतु अब तुर्कोंके हाथमें है। यहां की भूमि समतल है, जहाँ खेती बाकायदा होती है। फल-फूल बहुत होते हैं। जलवायु नरम है। यहां के लोग ईमानदार हैं, लेकिन

जल्दी उत्तेजित हो जाते हैं। इनकी पोशाक ऊनी कपडोंकी होती है। अधिकांश निवासी बौद्ध हैं। यहां दस विहार हैं, जिनमें महायान और हीनयान दोनों यानों के भिक्षु रहते हैं। राजा तुर्क है, जोकि लोहद्वारके दक्षिणके छोटे-छोटे राज्योंपर शासन करता है। उसके स्थायी निवासका कोई नगर नहीं हैं। वह एक जगहसे दूसरी जगह घूमता रहता (घुमन्तू) है।..इससे पूर्वमें चुङ-लिङ (पामीर) है, जो कि जंबूद्वीपके केन्द्रमें हैं। दक्षिणकी ओर इसकी पर्वतश्रेणी महाहिमगिरि (हिंदुकुश) से मिली हुई है। उत्तर में यह तप्तसागर (इस्सिकुल) और सहस्रधारा (बिङ-गुल) तक पहुंचती है। पश्चिममें यह हु-ओ (कुंदूज) देश तक तथा पूरबमें वू-शा (वोलोरताग) तक फैली है।......यहांकी भूमिमें प्याज बहुत पैदा होती है, इसीलिये चुङ-लिङ (प्याजका पहाड़) नाम पड़ा, अथवा इसकी चट्टानोंके प्याजी रंग होने के कारण यह नाम दिया गया।

मेन-कान् (मेङ-कान्, मुन्-जान्)—खोस्तसे १००ली (२० मील) पूरव है। यहांके लोग हू-ओ (कुंदुज) जैसे हैं।

अ-लि-नी ( )मेङ-कान् से उत्तरमें यह प्रदेश वक्षु नदीके दोनों तरफ अवस्थित है, लोग कुंदुज जैसे हैं।

हो-लि-हू ( )वक्षुके उत्तर तरफ अलि-नि से पूरबमें यह प्रदेश हैं, जहांके लोग कुंदुज जैसे हैं।

कि-लो-शे-मे- (कृष्णनिम्न, वखान)—मेन्-कानसे ३०० ली (६०मील) पूरबमें यह प्रदेश है, जो पहिले तुखार देश में था। लोग मेन्-कांन जैसे हैं।

पो-लि-हो—उपरोक्तसे उत्तर-पुरब है, जहां के लोग भी पहले ही देश जैसे है।

हि-मो-तोलो (तुखार)—कि-ली-शे-मोंसे ३०० ली (६०मील) पूरबमें यह प्रदेश है, जहां लगातार पहाड और उपत्यकाएं चली गई हैं। भूमि उपजाऊ है। गेहूं पैदा होता है, वनस्पति बहुत देखी जाती है, फल प्रचुर परिमाणमें पैदा होते हैं, जलवायु बहुत ठंडा है। लोग बडे क्रोधी तथा चंचल होते हैं, आचार-विचारका ख्याल नहीं रखते। वह कदमें छोटे तथा कुरूप होते हैं।..इनका परिधान तुर्कोकी तरह मोटाझोटा ऊनी कपडा, नम्दा, पोस्तीन और पट्टू का होता है। इनमें विवाहिता स्त्रियां शिरपर तीन फुटसे अधिक ऊंची लकडी की सींग टोपीके तौरपर पहनती हैं, जिसकी दो शाखायें एकके ऊपर एक सामनेकी ओर होती है। ऊपरी की ओर निकली शाखा सासकी मानी जाती है। उसके मर जानेपर शाखा हटा दी जाती है। सास ससुर दोनों के मर जानेपर सींगकी टोपी नहीं पहिनी जाती। पहले यहां शक-वंशी राजा थे, जिनके हाथमें चुङ-लिङ (पामीर) के पश्चिमके अधिकांश भाग थे। पीछे यह तुर्कोके हाथमें चले गए। लोगों पर तुर्कोके रीति-रवाजका प्रभाव बहुत है। लूटपाट सदा होती रहती है, इसलिए लोग जाकर दूसरे देशोंमें घुमक्कड़ी करने लगे।...यह लोग नम्देके तम्बुओंमें रहते हैं, और एक जगहसे दूसरी जगह घूमते पश्चिममें कि-लि-शेमो (कृष्ण) देश तक जाते हैं।

पो-तो-शङना (बदख्शां)—२०० ली (४० मील) और पूरब जानेपर यह प्रदेश मिलता है, जो कि पूर्वी तुषार देश है। पहाड़ियों और घाटियोंवाला यह प्रदेश अधिकतर बालू और पत्थरोंका है। मटर, गेहूं, अंगूर, अखरोट, नास्पाती, खूबानी जैसे मेवे यहां पैदा होते हैं। देश बहुत ठंडा है। लोग शिष्टाचारहीन और शिक्षाहीन होनेपर भी बहादुर होते हैं। नम्दा

या पट्टूका कपड़ा पहनते हैं। यहां तीन-चार बौद्ध विहार हैं, जिनमें थोड़ेसे भिक्षु रहते हैं। राजा बौद्ध है।

यिन्-पो-क्यान् (इन्वकान्, वखान)—बदख्शांसे २०० ली (४० मील) दक्षिण-पश्चिम प्राचीन तुखार देशमें यह इलाका है। इसके पहाड़ोंकी उपत्यकायें संकरी हैं, जिनमें खेतींकी भूमि है। जलवायु तथा लोग बदख्शांकी तरह है, लेकिन भाषा भिन्न हैं। यहांका राजा दुष्ट और क्रूर है।

कु-लङ-ना (कोरन, कोक्चा उपत्यकाका उपरी भाग)—३००० ली (६० मील) दक्षिण-पूरबमें प्राचीन तुखार देशका यह भाग है। थोड़ेसे बौद्ध भी हैं। यहां पत्थरोंको तोड़कर सोना निकाला जाता है। थोड़ेसे विहार और भिक्षु हैं। राजा भी यहांका त्रिरत्न-भक्त (बौद्ध) है।

त-मो-सी-ती (धर्मस्थिति, वखान)—कुलङनासे ६०० ली (१०० मील) उत्तर-पूरब यह प्रदेश प्राचीन तुखारका ही एक भाग पो-शू (वक्षु) पर अवस्थित है। पहाड़ी जगह है।... वर्फीली ठंडी हवा चलती रहती है। मटर और गेहूं पैदा होता है। वनस्पति नाममात्र है। यहांके घोड़े अच्छे होते हैं। लोग नाटे और झगड़ालू होते हैं। पोशाक नम्दा और पट्टूकी है। "इनकी आंखें दूसरे लोगोंसे भिन्न फीरोजेकी तरह नीली होती हैं।" यहां दस विहार है, जिनमें थोड़ेसे भिक्षु रहते हैं। राजधानी हुन्-ते-तोमें एक विहार है, जिसमें एक पत्थरकी बुद्ध-मूर्ति है। मूर्तिके ऊपर स्वतः घूमनेवाला छत्र है।

शि-किन (शगनान)—उत्तरी पहाड़ोंको पार करने पर यह प्रदेश मिलता है। यहां मटर और गेहूं बहुत होता है, दूसरी फसलें बहुत कम होती हैं। वृक्ष दुर्लभ हैं, और फल-फूल भी बहुत कम होते हैं। जलवायु बहुत ठंडा है। लोग लुटेरे और हत्यारे हैं, सामाजिक या आचारिक भेदभाव नहीं मानते।...इनकी पोशाक पोस्तीन और पट्टूकी होती है। भाषा भिन्न है, लेकिन लिपि तुखार जैसी है।

शाङमीर (   )—शगनानसे दक्षिणमें है, यहां मटर, गेहूं और अंगूर बहुत होता है।...जलवायु ठंडा है।...लिपि तुखारी, किंतु भाषा भिन्न है। यहांका राजा बौद्ध तथा शकवंशी है।

पो-मी-लो (पामीर)—शङमीसे ७०० ली (१४० मील) उत्तर-पूरब, दो हिमपर्वत-मालाओंके बीचमें यह उपत्यका अवस्थित है। वसंत और गर्मियोंमें यहां हाड़ चीरनेवाली भयंकर हवा तथा बर्फानी तूफान आते हैं। मिट्टी नमकीन तथा बहुत कंकरीली है। खेती नहीं होती, मुश्किलसे कहीं वनस्पति देखनेको मिलती है। बिलकुल निर्जन तथा केवल बेकार पड़ी भूमि हैं। यहां एक बड़ा नाग सरोवर है, जो पूरबसे पश्चिम ३०० ली (६० मील) लंबा और उत्तरसे दक्षिण ५० ली (१० मील) चौड़ा है। सरोवर चुङ-लिङ (पामीर) के भीतर एक बड़े ऊंचे स्थानपर है। इसका जल बहुत ही निर्मल और शुद्ध है। पानी अथाह और नीले रंगका है, स्वाद भी अच्छा है।...जलतलपर बहुत जातिके जलपक्षी रहते हैं।...इस सरोवरसे एक धारा पश्चिमकी ओर जाती है, जो धर्मस्थितिमें जा पूरबमें वक्षुसे मिलती है। सभी धारायें यहांसे पश्चिमकी ओर बहती हैं।

क्या-पान्ते (सरिम्-गोल)—ताश कुर्गानके पास है।

पो-लु-लो ( ) पामीर-उपत्यकाके दक्षिणमें यह इलाका है, जहां बहुत सोना-चांदी निकलता है।

६. अंतिम तुर्क

जब ६३१-६३२ ई० में स्वेन्-चाङ इस प्रदेशमें घूम रहा था, बलख, बामियान, महाहिमगिरि (हिंदूकुश), बदख्शां और बखान ही नहीं बल्कि मेर्व भी तुर्कोंके हाथमें था। इस समय पश्चिमी तुर्क कगान तुन्-शे-खूका शासन था, तो भी हूण पूर्वजोंकी तरह तुर्क राजवंशी अपने अपने शासित प्रदेशमें स्वतंत्रसे थे। तुन्-शेखूके बाद केंद्रकी शक्ति क्षीण हो गई, और सामन्त स्वतंत्र हो गये। सोगे (७०४-७१७ ई०) और सूलू (७१७-७५७ ई०) ने तुर्क राज्यको पुनः दृढ़ अवश्य किया, किंतु मध्य-एसियाका दक्षिणापथ अब उनके हाथसे निकल गया। अरब शक्ति वहां प्रबल होती जा रही थी। तुखारिस्तानमें तुर्कोंने अरबोंसे बहुत जबर्दस्त मुकाबिला किया, उसी तरह बुखारा और सोग्दमें भी मुकाबिला हुआ। तुर्कोंके ही समय उनकी बौद्ध-धर्म-भक्तिका प्रतीक एक विशाल विहार सोग्द (जरफ़शां) नदीके किनारे बना। विहारको तुर्को और मंगोल भाषामें बुखार कहते हैं। उक्त बौद्ध बिहारके कारण वहां बना नगर बुखारा कहा जाने लगा। इससे पहले हेफ़तालोंके समय बरख्शा प्रधान केंद्र था, लेकिन अरबोंके आक्रमणके समय बुखारा प्रसिद्ध नगर बन चुका था। यहां का शासक बुखारा (वर्दन)-खुदात कहा जाता था। तुर्कोंके कुछ सामन्त इससे पहले तर्कमरूद, बेर्वाने, अस्वाने और नूरमें बस गये थे। केंद्रसे स्वतंत्र होनेके बाद इन सरदारोंने अवेरजी को अपना राजा चुना, जो कि वेइकन्द (राज्य-नगर) में रहता था। उस समय अभी बुखारा नहीं बसा था। अवेरजो बहुत ही अत्याचारी शासक था, विशेषकर धनी व्यापारियों और देहकानों (ग्रामपतियों) को बहुत लूटता था। इसके कारण बहुतसे धनी व्यापारी वहांसे तुर्कोंके प्रदेशोंमें चले गये, जहां उन्होंने जेमकेत (चिमकंद?) नगर बसाया। राजा कराजुरिन गरीबोंका पक्षपाती था। मदद मांगनेपर उसने अपने पुत्र शेरे-किश्वरको भेजकर अवेरजी को बंदी बना कांटोंसे भरे बोरेमें बंद करके बुरी तरहसे मरवाया शेरेकिश्वर ने राजा बनकर देश छोड़कर भागे लोगोंको बुलवा मंगाया।

(१) शेरेकिश्वर, सेकेजकेत

शेरेकिश्वर (देशसिंह) ३० साल तक राज्य करता रहा। उसके उत्तराधिकारी सेकेजकेतने समीतन और दूसरे नगर बसाये। फेरख्शा (बरख्शा) पहिले ही श्वेत-हूणोंकी राजधानी थी। सेकेजेत उस तुर्क खानवंशका था, जिसको चीन राजकुमारियां व्याहके लिये मिला करती थीं। कहते हैं: एक चीन राजकुमारी व्याह करके आई, जो अपने साथ बुद्ध-मूर्ति लाई थी। इसी मूर्तिके लिये विहार (बुखार) बनाया गया, वही बुखारा नगरके नामका कारण हुआ। शायद यह घटना स्वेन्-चाङकी यात्राके पहिलेकी है, अर्थात् ६३० ई० से पहिले विहार बना।

(२) बेनदून

यह मुस्लिम संवत्के आरंभ (६२२ ई०) के आसपास था। इसके समय बुखाराकी और उन्नति हुई। इसने लोहेकी तख्तीपर अपना नाम लिखवाकर अपने बनवाये महलके द्वारपर लटकवा

दिया था, जो पांच शताब्दियों बाद तक भी वहां मौजूद रहे जबकि ११ वीं शताब्दीके अरब ऐतिहासिकोंने उसका जिक्र किया।

(३) तुग्शादे[१]

यह बुखाराका अंतिम तुर्क राजा था। नाबालिक होनेके कारण राज्यका कारबार उसकी मां करती थी, जिसे अरब इतिहासकार खातून कहते हैं—तुर्कीमें खातूनका अर्थ रानी है, इसलिये यह वैयक्तिक नाम नहीं हो सकता। खातूनने ५० सालतक शासन किया। जान पड़ता है, पुत्रके वयस्क हो जानेके बाद भी मां का प्रभाव बहुत अधिक रहा। प्रतिदिन सूर्योदयके समय उठकर वह घोड़ेपर चढ़ अपने महलसे निकल रेगिस्तान (बुखाराके एक मैदान) के फाटकपर आ सिंहासनपर बैठती। नगरके व्यापारी, सार्थवाह और छोटे-मोटे दूकानदार दर्बारमें हाजिर होते। उसके अफसर और सामन्त चारों ओर घेरे रहते। खातून यहीं राजकाज तथा न्याय करती। जिस वक्त वह दरबारमें रहती, सुनहले कमरबंद, कीमती चोगा पहने तलवार लिये २०० तरुण शरीर-रक्षक सेवामें तैयार रहते। उन्हें एक दिन ही ड्यूटी देनी पड़ती, दूसरे दिन दूसरे २०० जवान आ जाते। हर एक तुर्की कबीला एक-एक दिनके लिये अपने तरुणोंको इस कामके लिये भेजता। कबीलोंकी संख्या इतनी अधिक थीं, कि सालमें प्रत्येक कबीलेकी बारी एक बार पड़ती थी। इन कबीलोंमें ६० परिवार ऊंचे समझे जाते थे।

अंतमें तुगशादेको अरबोंकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और वह मुसलमान होकर ३० साल तक बुखाराका शासक बन अपने पड़ोसी वर्दनके राजासे अरबोंके लिये लड़ता रहा।

सोग्द (समरकंद) और भी अधिक महत्व रखता था। वहांका तर्खून आखिरी समयतक लडता रहा। जबतक उसे परास्त नहीं कर दिया, अरबोंको चैनसे शासन करनेका मौका नहीं मिला। तरखूनने चीनसे मदद मांगी थी, अपने जाति-भाई तुर्कोंसे भी सहायता पाई थी, किंतु आखिरमें उसे देश छोडकर भागना पडा। समरकंदसे पूरबमें अपने दुर्ग मग पर्वत में उसने अपने बहुतसे चर्मपत्रपर लिखे अभिलेखोंको छोडा, जिनमेंसे अधिकांश (७वीं सदीकी) सोग्दी भाषामें तथा कुछ अरबी और चीनीमें भी हैं। सोवियत पुरातत्त्ववेत्ताओंने इन्हें हाल में खोद निकाला।

---

[१] History of Bokhara (A. Vambery, 1973)

स्रोत ग्रन्थ :

1. Heart of Asia (E. D. Ross, (London 1899)

२. सिरिइस्किये इस्तोच्निकि पो इस्तोरिइ नरोदोफ सससर (न. पिगुलेस्कया, मास्को १९४१)

3. Turkistan down to the Mongol Invasion (W. Barthold), 1928

4. On yuan Chwangs Travel in India (Thomes Watters, 1904)

5. Memoir Sur les Contre'es Occidentales (Hiuen Tsang, अनुवादक Júlien)

6. The Turko-Scythien Tribes (E. Parkar in China Review, XX 1892, 3, pp. 125)

7. History of Bokhara (Arminus Vambery, London 1873)

8. Introduction a l' histoire de l' Asie (Paris 1895)

9. Early History of the Turks (Washborn, Contemporary Review, LXXX, pp. 249-63)

१०. सोग्दिइस्कया कलोनिजात्सिया सेमिरेच्या (अ० न० वेर्नश्ताम)

भाग ५

उत्तरापथ (७६६–९४० ई०)

अध्याय १

आगूज़, उइगुर

१. आगूज़

आगूज एक पुरानी तुर्क जाति थी, जिसका स्मरण मोगिलियानके अभिलेखमें आया है। मोगिलियानने आगूजोंको हराकर चीनकी ओर भगा दिया था। मोइनचुरा (उइगुर खान) के सहायक किपचकोंके पूर्वज आगूज़---आगूजोंके पांच विभागोंमें एक किपचक थे। किपचकका अर्थ वृक्षकोटर है। शायद किसी समय किसी पूर्वजने वृक्ष कोटरमें छिपकर प्राण बचाया हो। गूज या आगूज़ तुर्कोंके तीन विभाग थे—किपचक, कंकाली और करलुक (गरलोक)। किपचकोंके ही वंशधर सलजूक, तथा आधुनिक तुर्कमान, उसमानली और कजाक हैं। कोई कोई आगूजोंके उत्तराधिकारी किपचकोंको कंकालियोंका पूर्वज मानते हैं। इन्हीं कंकालियोंके उत्तराधिकारी वायन तुर थे। कंकाली (कङ्ली) यायिक (उराल) नदीके पूर्वमें अपनी गाडियोंके साथ घूमा करते थे, इसीलिये इनका नाम कंङकाली या तिङली (गाडीवाला) पडा। ९ वीं सदीके अंतमें किपचक वोल्गाके पश्चिममें पहुँच गये थे, और १३ वीं सदीमें आधुनिक रूसियोंके पूर्वज स्लावोंको परेशान कर रहे थे। किपचकोंसे ही सलजूक-वंश निकला, जिसने कितनेही समय तक मध्य-एसिया और ईरानपर शासन किया। आजकलकी तुर्की के तुर्क उसमानली शाखाके वंशधर हैं। ७वीं ८वीं सदीमें कालासागरसे उत्तर पेचनगा घुमन्तु घूमते थे, जिनके पूर्वोत्तरमें किपचक, दक्षिण-पश्चिममें खज़ार, पूर्वमें गूज़ और पश्चिममें स्लाव रहते थे। गूज़ या आगूज़ ७वीं ८वीं सदीमें चीन की सीमासे लेकर कास्पियन तक फैले घूमन्तु जीवन बिताते थे। सामानियोंके सारे शासनकाल (८९२-९९३ई०) में ये उनके उत्तरी पडोसी थे। खोकन्द और पूर्वी तुर्किस्तान से वक्षु तटकी ओर इनका प्रवाह चल रहा था। सामानियोंकी शक्ति के पतनके बाद बुखारा प्रदेशमें भी ये घुस आये और वहां एक सरदार तकमक-पुत्र सलजूक के कारण एक शाखा सलजूक कही जाने लगी। सलजूक पहलेपहल मुसल्मान बना। उसके पहले गूज अधिकतर बौद्ध या ईसाई धर्मोके माननेवाले थे। सल्जूक और सुवास एक गूज़ सरदार पेगूके सेनापति थे। उसका पेगू नाम ही बतलाता है, कि वह बौद्ध था। पेगू बोगू (भगवान) का ही रूपान्तर है, पारसी बुद्धको पेगू कहते थे।

आगूज जब मंगोलियामें थे, तब ही वह इस नामसे प्रसिद्ध थे। पश्चिममें आनेपर उनमेंसे कुछको तुर्कमान कहा जाने लगा। दूसरी सदी ई० पू० के चीनी यात्री आन-साई (आलान्-या) की भूमिको जानते थे, जहां के निवासी ईरानी जातिसे संबंध रखते थे। ग्रीक लोग आलान (आवोर-

सोग) को दोन नदी और कास्पियनके बीचके निवासी जानते थे। पीछे भी अलान वोल्गाके पूरबमें रहते थे। ३७४ ई० आसपास के हूण अलानोके ऊपर पड़े, जिसके कारण वह अपनी भूमि छोड़नेके लिये मजबूर हुए। ८वीं सदीमें तुर्क खाकानने अपने अभिलेखमें आगूजों अथवा ताकुज-आगूजोंके खानका जिक्र किया है। नौकी गिनती में आगूज कहनेका मतलब यही है, कि उनके नौ कबीले थे—कभी कभी तुर्क और आगूज दोनों शब्द साथ साथ आते हैं। आगूज वही तुर्क जनता थी, जो कि छठी सदी ई० में चीन की सीमासे ईरान और विजंतीन (पूर्वी रोम) की सीमा तक घुमन्तू जीवन बिताती थी। रूसी विद्वान व० व० बर्तोल्द के कथनानुसार[१] तुर्क उनका राजनीतिक नाम था और आगूज़ नृवंशीय। अरब भूगोलज्ञ आगूजों का रहना पूर्वी कास्पियनसे इस्फिजाब तक और ताकूज-आगूजोका तरिम-उपत्यकामें कूचा और तुर्फान तक बतलाते हैं—तुर्फान उनका केंद्र था। १३ वीं सदीके भूगोलज्ञ इब्न-असीरने लिखा है, कि आगूज कभी भी ताकूज-आगूजोंके नीचे नहीं रहे। अरब ताकूज़-आगूजोंका रहना जहाँ बतलाते हैं, चीनी वहींपर उसी समय उइगुरोंका निवास बतलाते हैं। ८६६ ई० में तुर्फानको उइगुरोंने लिया था। इससे जान पड़ता है कि अरब जिनको ताकूज-आगूज कहते हैं, चीनी उन्हींको उइगुर नाम देते हैं। अरबोंके अनुसार ८२० ई० (२०४ हिं०) में तोगुज़ उश्रूसनाको ले खोजंदसे जीजक तकके स्वामी बन गये। विजंतीय (रोमक) ऐतिहासिकोंके अनुसार छठीं सदीमें वोल्गासे पश्चिमका इलाका तुर्क-राजाके हाथमें चला गया। ५७६ ई० में बिजंतियों द्वारा ध्वस्त होनेपर किमेरियोंके बासपोर (केर्च) को तुर्कोंने ले लिया।

५९० ई० में वहां विजंतीय शक्तिसे विद्रोह हुआ। तुर्कोंकी इस अल्पकालिक सफलताके समय ६२५ ई० में इस प्रदेशपर खजारी कगानका अधिकार था। ८वीं और ९ वीं सदीके मध्यमें निम्न वोल्गोंमें खजार और बोल्गार रहते थे। इन्हीं तुर्कोंसे आत्मरक्षाके लिये सासानी ईरानियोंने छठीं सदीमें दरबंद और गुर्जीके रक्षा-प्राकार बनवाये। छटीं सदीमें तुर्क (चोल, सुल) के राज्यमें कास्पियनसे पूर्व के प्रदेश तथा गुर्‌गानमें जर्थुस्ती देहकान रहते थे। अब्बासी खलीफाके ऊपर आगूज जार्जिया से चिमकंद (सिर-उपत्यका) तक प्रहार करते थे। बोल्गा (इतिल) के ऊपरी और निचले भागमें आगूज़ रहते थे, जिनके उत्तरी पड़ोसी किमाक थे। अरब भूगोलज्ञ इब्न-फ़ज़लान ने अपनी यात्रा के समय (९२२ ई० के वसंत में) आगूज़ों को केवल उस्तउर्द में पाया था, उस समय एम्बा नदी से पूर्व में तुर्क-वंशी बाश्किर रहते थे। इस समय कस्पियन के पश्चिम में ख़ज़ार, पूर्व में आगूज़, जिनके पूर्व में करलुक घुमन्तू रहते थे। आगुज़ों के सरदार को खान नहीं यवगू कहा जाता था, यही बात करलुकों में भी थी। यबगू को मोगोलियान के शिला लेख में जब्गू कहा गया है—११वीं शताब्दी के लेखक महमूद काशगरी ने भी ज की जगह य का प्रयोग किया है। यब्गू जाड़ों में निम्न सिर-उपत्याका में रहता था। सामानी सीमांत सैराम से सिर के मुहाने तक उसकी गोचर-भूमि थी। आगूज़ों की भूमि से जाते वणिक्पथ पर जहां-तहां मुसल्मानों के भी नगर थे। इन्हीं में एक यंगीकेंत (देहनव) था, जो कि सिरदरिया से छ-सात किलोमीतर हटकर बसा था। फारेलसे १० दिन और फराब से १२ दिन में वहां पहुंचा जाता था। यहां आगूज़ों का एक राजा रहता था।

---

[१] "ओचेर्क इस्तोरिइ तुर्कमेन्स्कवो नरोद", History of Bokhara (A. Vambery)

इसी के पास दो और नगर जंद और तमरउत्कुल थे। इब्न-खल्दूनके अनुसार आग़ूज़ बड़े समृद्ध थे, किन्हीं किन्हीं के पास एक-एक लाख भेडें थीं। वह ख्वारेज्म व्यापार करने जाते थे। जब सोग्द और तुखारिस्तान में शांति रहती, तो आमू-दरिया के दक्षिण तट पर अवस्थित पारातगिन नगर में भी हो जाते थे, जो कि अराल से एक दिन के रास्ते पर था। गुर्गंच (उर्गंज) वणिक्पथ पर था। वहाँ सामान की ढुलाई और व्यापार दोनों काम आगूज़ करते थे। ९२२ ई० में इब्न-फ़ज़लान ने आगूजों को काफिर पाया था, वैसा ही जैसा कि वह ८वीं सदी में मंगोलिया में थे। फ़ज़लान ने एक आगूज राजा का नाम कुचुक यनाल बतलाया है, जो कि मुसल्मान होकर फिर काफिर हो गया था। आगूज़ों में इस्लाम के अतिरिक्त ईसाई धर्म का भी प्रचार था, यह १३ वीं सदी के लेखक जकरिया क़ज़वीनी के लेख से मालूम होता है।

२. उइगुर

(१) उइगुर—यह बतला चुके हैं, कि अरबों के ताकुज़-आगूज़ और चीनियों के उइगुर वस्तुतः एक ही हैं। उइगुर शुरू में आधुनिक मंगोलिया में ओरखोन नदी की उपत्यका में रहते थे। इनका पहला राजा वुकू खां बतलाया जाता है। कहते हैं, बुकूखां ने स्वप्न में देखा, कि वह सारी दुनिया का राजा होगा। उसने अपने पड़ोसियों—किरगिज, चीन, तंगुन (अम्दो) के विरुद्ध अभियान किया और अपार संपत्ति के साथ लौटा तथा उर्दूबालिक नगरी बसाई। दूसरे स्वप्न में उसे एक जेड़ (अकीक पत्थर) का टुकड़ा मिला, जिसके पास रहने तक संसार पर उसका शासन रहेगा। इस पर उसने पश्चिम की ओर अपनी सेना चलाई और तुर्किस्तान (सप्तनद) में दाखिल होकर बलाशगून (सूजिया) नगर बसाया। चीनी इतिहास बतलाता है, कि उइगुर ७वीं सदी में मंगोलिया के उत्तर-पश्चिम में रहते थे। ८वीं सदी में उनका स्थान वही प्रदेश था, जहां पर कि उर्गा (उलानबातुर) के पास पीछे मंगोल राजधानी कराकोरम नगर बसाया गया। ९वीं सदी में उनके राज्य को किरगिजों ने ध्वस्त कर दिया, और वह दो भागों में विभक्त हो गये, जिनमें पूर्वी भाग का संपर्क पीछे चिंगीस से हुआ। इन्हीं को पीछे वेइ-वूर या (हुइ-हो, पूर्वी तुर्क) कहा जाने लगा। मुस्लिम इतिहासकारों ने उइगुर नाम पहले पहल १३वीं सदी में लिया, इससे पहले वह उन्हें ताकुज़-आगूज़ कहते थे।

मंगोलों के राजनीतिक और सांस्कृतिक गुरु उइगुर थे।[१] चिंगिस और उसके उत्तराधिकारियों के समय वह बड़े बड़े पदों पर थे, यह हम देखेंगे। उइगुर नाम आज भी उज्बेकों के चार विभागों में मिलता हैं:—उइगुर-नइमन, कङ-ली-किपचक, कियत-कुंग्रद, नोखुस-मंगित। इनमें चौथा विभाग बुखारा के आखिरी राजवंश का था।

(२) उइगुर उत्पत्ति—पुराने हूणों ने अपने उत्तर की तिङलिङ (गाड़ी वाली) जाति को जीता था। सियन्-पी शासनकाल (३८६-५३४ ई०) में तिङलिङ चीन की ओर से लड़े थे। चीनियों को पीछे यह सुनकर आश्चर्य हुआ, कि पश्चिम में भी इस जाति के लोग रहते हैं। तिङलिङ और सभी किरगिज ऊंचे पहियेवाली गाड़ियां इस्तेमाल करते थे। कंकालियों की भी यही बात

1. A thousand years of Tatars (Parker)
2. Turkistan Down to Mongol Invaison

थी। चीनी लेखकों ने साफ लिखा है, कि उइगुर और किरगिज एक ही भाषा बोलते हैं। जब तिङलिङ शब्द लिखने का रवाज नहीं रहा, तो चीनी लेखक उनके लिये चिर-के अथवा तेरक (चीले, हीले) लिखने लगे। ६४८ ई० में तुर्कों और खित्तनों की भूमियों के बीच में रहने वाली जातियों ने थाङ सम्राट् ताइ-सुङ (६२७-६५० ई०) की अधीनता स्वीकार की, वह इसी तेरक (तुर्क) नाम से पुकारी जाती थीं। तुर्क से तेरक में इतना ही अंतर बतलाया जाता है, कि विवाह के समय तुर्क पुरुष अपनी स्त्री के पास चाहे तब तक रहता था, और उसी समय लौटता था, जब कि एक पुत्र पैदा हो जाता था। लेकिन, तेरकों के बारे में कहा जाता है, कि वह ऊंची गाड़ीवाले लोग थे। तेरकों का ही एक छोटा कबीला उइगुर था, ऐसा किन्हीं-किन्हीं विद्वानों का मत है। तेरक कास्पियन तक फैले हुये थे, जहां पर कि मंगोल-विजय के समय कंकालियों को रहते पाया गया। तुर्की भाषा में कंकाली गाड़ी को कहते हैं, चंगेज (चिंगिस) काल में इसी का चीनी उच्चारण कङली हो गया—छठी सदी में कङली सिविर खकानका एक देरे भी था। इस प्रकार गोबी के रेगिस्तान, इस्सिकुल और सिर-दरिया के उत्तर गाड़ी रखनेवाले हूण और तुर्क तिङलिङ कहे जाते थे। यही जाति प्रधानता प्राप्त कर उइगुर के नाम से मशहूर हुई। हूणों की शासक जाति (राजवंशी कबीले) पश्चिम की ओर चली गई, जो बच रहे, वह आसेना तुर्कों और किरगिजों को छोड़ उइगुर कहे जाने लगे। ये अपने पूर्वजों की तरह ही बड़े साहसी और मजबूत घुमन्तू थे, लूटपाट इनका पेशा था, और घोड़े पर बैठे तीर चलाने में बड़े कुशल होते थे। चूला खाकान ने जबर्दस्ती तेरकों को आधीन करके अपने और उइगुरों के बीच शत्रुता का बीज बोया और क्रुद्ध होकर उनके कितने ही सरदारों को मार डाला। इस पर उइगुर, कुंकिर्त, तुला और बैकाल जातियों ने विद्रोह कर औ अपने अलग अलग जिगिन स्थापित किये। इन्हींके जिगिनों का संमिलित जातीय नाम उइगुर पड़ा। मुख्य उइगुर कबीले को योकर कहा जाने लगा। उस समय ये सेयन्दा नदी के उत्तर में रहते थे। सेलिगा नदी पर उनका एक लाख ओर्दू था, जिसमें आधे लड़ाई में भाग ले सकते थे।

३. उइगुर-खाकान[१]

१. **जिकेन, जिगिन या जिकेन** उइगुरों का प्रथम राजा था।

उइगुरों के दो भाग थे: नैमन उइगुर (आदि उइगुर) जो चिंगिसखां के समय जुंगारियां में रहते थे, तोगुज़-उइगुर (नव-उइगुर) जो ओरखोन और तुला की उपत्यकाओं में रहते थे। यह स्मरण रखना चाहिये, कि ८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ९वीं शताब्दी के अंत तक पूर्वी-एसिया में उइगुर बहुत शक्तिशाली रहे और एक आधुनिक लेखक के अनुसार "पुराने समय में पूर्वी-एसिया के यह सबसे अधिक संस्कृत जाति थी।" इनकी राजधानी कराकोरम (मंगोलिया) थी, किंतु इनका ओर्दू घूमा करता था। पीछे इनका केन्द्र बिशबालिक हुआ। इनमें बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार था। इनकी भाषा में अनुवादित कितने ही बौद्ध ग्रंथ तकलामकान की मरुभूमि में प्राप्त हुये हैं। बौद्धों के साथ साथ नेस्तोरीय (ईसाई) धर्म का भी इनमें बहुत प्रचार था। ८४० ई० में इनके खान खैसा का शिर काटा गया, और ८४८ ई० में यह अपनी जन्मभूमि आधुनिक मंगोलिया छोड़ने के लिये मजबूर हुये। नेस्तोरियों के संपर्क में आ उइगुरों ने सुरियानी लिपि से अपनी वर्ण-

---

[१] वहीं

माला तैयार की, जो कि उनके द्वारा चंगिस खां के समय में जाकर मंगोलों में आज भी प्रचलित है।

(उइगुर-राजावलि)

जिगिन उइगुरों का प्रथम राजा था, किन्तु उगुरो को प्रधानता तब प्राप्त हुई, जब कि पूर्वी-तुर्कों को समाप्त कर मोइनचुर ने मध्य-एसिया में अपनी शक्ति का विस्तार किया। मोइनचुर से पहिले उइगुरों के नौ राजा हो चुके थे, आगे आठ राजाओं के समय तक उइगुर शक्तिशाली रहे। इनकी राजावली निम्न प्रकार है—

(१) जिगिन.....
(२) बोसत (बोधिसत्व)...६२९-...ई०
(३) सुमेत
(४) बोरुन
(५) बीरुत
(६) तु-खेली
(७) बुक्तेवर ७१७
(८) ......
(९) कुतलुक बिगा—७५६ ई०
१ (१०) मोइनचुरा (मोयुनचुर ७५९-६०)
२ (११) यितिकिन ७६०-७८
३ (१२) दुरमोगो ७७८-७९
४ (१३) तरस ७८९......
५ (१४) आचो —७९५
६ (१५) कुतलुग—७९५—
७ (१६) कौसंग ८०८—२१
८ (१७) गुदलुग जिगिन ८२१-२४
९ (१८) ...८२४-३२
१० (१९) ...८३२—
११ (२०) ......
१२ (२१) आ-के
१३ (२२) आनेन।

२. बोसत् (६२९-)

बोसत बोधिसत्व का अपभ्रंश है, जिससे पिता लगता है कि वंश के आरम्भ में ही बौद्ध धर्म का उसमें कितना प्रचार हो चुका था, इसलिए उनके राजा ने बौद्धधर्म के आदर्शवाद के प्रतीक बोधिसत्व का नाम अपने लिये स्वीकार किया। वह जिगिन का पुत्र था। उइगुरों से दक्षिण में

रहने वाले सेइंदों के सहयोग से उसने अपनी शक्ति को बढ़ाया। उइगुरों को आगे बढ़ते देखकर तुर्क कगान (खान) खेली के उपराज जेली ने एकाएक सेना लेकर आक्रमण किया, लेकिन उइगुरों ने बहुत बुरी तरह से हराया, और उसे सजीव पकड़ कर घेरेफ़ा (ह्वोसी-ली-फ़ा) की उपाधि पाई। बोधिसत्व का उर्दू (सेना) तुला नदी की उपत्यका में रहता था। उसने ६२६ ई०से पहिले चीन-सम्राट के पास भेंट भेजी थी। यह थाङ वंश के आरम्भ और समृद्धि का समय था। बोधिसत्व के साथ साथ सेइंदा का सरदार भी इस भूभाग में शक्तिशाली था।

३. तुमेत

बोधिसत्व के बाद उइगुरों का एक सरदार तुमेत उनका खाकान हुआ। इसने सेइंदा को हराकर उनके उर्दू को अपने में मिला लिया, किन्तु कुछ ही समय बाद वह फिर स्वतंत्र हो गये। तुमेत की शक्ति को बढ़ते हुए देखकर दूसरी तेरक जातियों—उइगुर, तरंकल, बैकाल, बुक्कू, तुला, गुसार, आदिर, किविर, घेई, किर, स्वतेसिर, शेकिर और किरगिज़—ने चीन की अधीनता स्वीकार की, यह चीनी अभिलेखों से मालूम होता है। इसी समय किर्गिजों का नाम पहिले पहल तेरेक जातियों में गिना गया है। इनके सरदारों (राजाओं) की थाङ-सम्राट ने बड़ी आवभगत की, और वह सम्राज्य के सहायक बन गये। इन घुमन्तू जातियों की प्रार्थना पर चीन ने डाकगृहों के साथ साथ अच्छे रास्ते बनवाये। छाङआन (चीन राजधानी) से उइगुरों और दूसरी तुर्की-जातियों के राजनीतिक केन्द्रों तक रास्ते तैयार किये गये। उइगुरों का कगान तुमेत यद्यपि बाहर से अपने को चीन के अधीन दिखलाता था, किन्तु अपने राज के भीतर वह नायक कागान (स्वतंत्र राजा) के तौर पर ही प्रसिद्ध था। उसके बारह मंत्री थे, जिनमें छ भीतरी भू-भाग के शासन में सहायता करते और छ बाहरी भूभाग के। यह संगठन तुर्क-सरकार के नमूने पर किया गया था। किसी कारण से उइगुरों ने तुमेत से नाराज हो उसे मार डाला।

४. बोरुन, ५ बीरुत (पीली), और ६. तु-खे-ली

यह तीनों कग़ान तुमेत के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र थे। यह उस समय हुये, जबकि असेना तुर्क की एक शाखा तेर्किश का प्रतापी कगान मे-चो शासन कर रहा था। उसने पुरानी तुर्क भूमि को जीत लिया, जिसके कारण उइगुर, सिबिर, सिकिर आदि हूणीय जातियां दक्षिण की ओर भागकर पुरानी तुर्क भूमि में खाङ-चउ-फू के पास चली गईं। इसी समय तिब्बतियों का भी बहुत जोर बढ़ा। वह तरिम उपत्य का को लेकर चीन के ऊपर भी आक्रमण किया करते थे। उइगुर लोग चीन के सहायक होते थे।

७. बुखतेवर (७१७)

७१७ ई० में तुखेली के पुत्र बुखतेवर ने मे-चो के युद्ध में चीन की सहायता कीऔर इसी संघर्ष में में मोचो मरा। मोचो के पुत्र पर झूठा अपराध लगा कर उसे दक्षिण चीन में निर्वासित कर दिया गया।

८. पुत्र

उसके स्थान पर उसका पुत्र बैठा। उस समय इन घुमन्तू जातियों पर काबू रखने के लिये उइगुर भूमि (उरुमची) में चीन का एक राजामात्य रहता था, जिसकी शिकायत पर मोचो-पुत्र को दक्षिण में निर्वासित कर दिया गया, और वहीं जाकर वह मर गया। इस पर उइगुर जाति के नेता राजामात्य के विरुद्ध हो गये और उन्होंने उसको मार डाला। इसके कारण राजामात्य के स्थान (बर्कुल) से राजपथ द्वारा चीन का संबंध टूट गया। विद्रोहियों का सरदार तुर्कों के राज्य में भाग कर वहीं मरा। मरकिरिन के शासन के बाद तुर्कों की राजशक्ति छिन्न-भिन्न हो गई यह कह आये हैं। उससे उइगुर लाभ उठाये बिना कैसे रह सकते थे ?

९. कुतुलिग बिगा (-७५६ ई०)

तुर्कों की इस अवस्था से फायदा उठानेवाला तथा पिछले विद्रोही सरदार का पुत्र कुतुलिग बिगा था। इसे करलिक, वीरा, बसिमिर, और करलुग से मुकाबिला करना पड़ा। बसिमिर राजा होने का दावा करता था, जिसपर बिगा ने उसका सिर काट लिया। संघर्ष में सफल होकर उसने चीन के पास दूत द्वारा संदेश भेजा, कि इस तरफ की शान्ति और व्यवस्था कायम रखने की जिम्मेवारी मैं लेता हूं। उसने अपने राज्य को निष्कंटक बनाकर कुतुलिग बिगा खान की उपाधि धारण की। चीन ने भी "राजकुमार" की उपाधि प्रदान की और उसे वहां भेज दिया, जहां पहिले ओर्खोन नदी के तट पर तुर्कों की राजधानी थी। यह चीन को अर्पित की गई तीन-नगरियों के पश्चिमी छोर से पांच सौ मील उत्तर में थी। मरने से पहले यहीं पर मरचो (६६३-७१६ ई०) नौ कबीलों के जीतने में सफल हुआ था। इन्हीं कबीलों में से एक क-स (खजार) भी थे, जिन्होंने पीछे कास्पियन के पश्चिमी तटपर अपना राज्य स्थापित किया था। कुतुलिग बिगा ने करलुकों और बसमिरों को भी जीत लिया। इस सफलता पर चीन-सम्राट् ने बिगा को कगान की उपाधि स्वीकृत की। मरकरिन के वंशजों के लिये तुर्क अब भी विरोध कर रहे थे, जिन्हें बिगा ने कई बार हराया। चीन-सम्राट् ने और भी सम्मान की आशा दी। बिगा ने अपने राज्य को बढ़ाते हुए पूर्व में पूर्वी मंचूरिया के मत्स्यचर्मबाले तातारोंकी भूमि से लेकर पश्चिम में अल्ताई तक बढ़ा लिया। दक्षिण में उसकी सीमा गोबी की महामरुभूमि थी—अर्थात् उसके मरने के समय ७५६ ई० में सारी पुरानी हूण-भूमि उइगिरों के अधीन थी।

१०. मोइनचुरा (७५६-७६० ई०)

बिगा खान के बाद तेगिन काले उइगुरों का कगान हुआ, जो पुराने अभिलेखों में मोइन-चुरा के नाम से प्रसिद्ध है। तुर्कों से संघर्ष अब भी चल रहा था, जिसका नेतृत्व अमरोशर कर रहा था। अमरोशर पहिले चीन की ओर से खित्तनों के साथ लड़ता रहा, फिर अपने ही स्वामी के विरुद्ध हो गया। इसीके मुंह की कहावत है—"तुर्क पिता से पहिले माता का ख्याल करते हैं।' मोइनचुरा के प्रसिद्ध सेनापति क्वो-जी (नेस्तोरीय) के सहायक के तौरपर भी अमरोशर ने अच्छा काम किया था। इस समय पुराने यू-ची देश के स्वामी तिब्बती थे और चीन की दोनों राजधानियां

(छाङ-आन, लोयाङ) विद्रोहियों के हाथ में थीं। राजधानियों को फिर थाङ-वंश के हाथ में देने में उइगुरों ने भारी मदद की। पहिले उन्हें पूर्वी राजधानी लो-याङ (आधुनिक होनान्-फू) को लूटने का भी अधिकार दे दिया गया, किन्तु पीछे वार्षिक दस हजार थान रेशम भेंट देकर पिण्ड छुड़ाया गया। ७५८ ई० में चीन दरबार में अब्बासी खलीफा और उइगुरों के दूतों का बराबर के स्थान के लिये झगड़ा हुआ। सम्राट् किसी को नाराज नहीं करना चाहता था, इसलिये उसने दोनों दूतों को भिन्न-भिन्न दरवाजों से एक ही साथ आस्थान-मंडप (दरबार हाल) में आने का प्रबन्ध किया और दूत के निर्बंध पर भी सम्राट् के सम्मान के लिये काउ-तु (दण्डवत्) करने की अनुमति नहीं दी।

१९०९ ई० में ऊपरी सेलिंगा में रुन्नी-लिपि में एक शिलालेख मिला, जो सेलिंगा के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें उइगुर राजवंश के प्रथम खान मोइनचुरा का नाम आता है। अभिलेख में तुर्क राजवंश के पिछले खान आज़मिश (७४५ ई०) की मृत्यु से लेकर मोइनचुरा की मृत्यु (७५९ ई०) तक की बातें लिखी हैं। इससे मालूम होता है, कि क्युलँ विलगा (कुतुलुग बिगा) कगान के मरने के बाद मोइनचुरा गद्दीपर बैठा। "उसके बाद मेरे पिता का अन्त हुआ, तो काली (साधारण) जनता ने (मुझे नेतृत्व) प्रदान किया, किन्तु कुछ लोग ताइ-बिलगा-कुतुग के समर्थक हुये, और उन्होंने उसे कगान बनाया। मैंने सेना एकत्रित की, उसके विरुद्ध अभियान किया और उसे जीत लिया। मै जब विजयी हुआ, मेरे हाथ में नभ (दैव) ने राज दिया। किन्तु मैंने उसके पक्षपाती काली (साधारण) जनता (कारा इगित) को नहीं सताया और न उसके उर्दू, घर...को जप्त किया। मैंने केवल उसे दण्डित किया और पद से हटा दिया।"

इस अभिलेख से पता लगता है, कि मोइनचुरा साधारण जनता की सहायता से सफल हुआ था, उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी को दबाया। उइगुर घुमन्तूओं में जनतांत्रिकता प्रचलित थी, जिसके कारण साधरण (काली) जनता अपने अधिकारों को इस्तेमाल करने का मौका पाती थी। यद्यपि इस जनतांत्रिकता का यह अर्थ नहीं था, कि युद्धबंदियों को उनके यहां दास नहीं बनाया जाता था। घुमन्तू सरदारों और उनके लड़ाकू उर्दू की समृद्धि तो बहुत कुछ इन्हीं दासों के श्रमपर निर्भर थी।

मोइनचुरा के समय उइगुर-वंश ने तुर्कों का स्थान लिया। उसका पिता तुर्कों का एक उच्चअधिकारी (शाद) था। उसने पहिले तुर्कों के विरुद्ध बगावत की, और मोइनचुरा को हजारपति का स्थान दिया। तुर्कों के विरुद्ध हुई बगावत में ताकूज़-आगूज़ ने भी सहायता की। ताकूज़-आगूज़ के बारे में मोइनचुरा कहता है "मैंने अपने सहायक नौ आगूज़ जनता को एकत्रित और संघटित किया। मेरा पिता क्युल विलगा कगान...सेना के साथ गया और मुझे भी उसने हजार का नेता बनाकर दक्षिण-पूर्व में भेजा।" तुर्कों के मोगलियान खान के अभिलेख में हम पढ़ चुके हैं, कि उसने तागुज़-आगुज़ जनता को उनकी भूमि और पानी से निकालकर चीन की ओर भेज दिया, जैसा कि उसी अभिलेख की सैंतीसवीं पंक्ति में लिखा है "मैंने (उनकी सेना को) ध्वस्त कर दिया...बहुत से उनमें मरे। सेलिंगाके नीचे उन्हें धकेल कर मैंने (अपना मोर्चा बनाया,) और उनके घरों को नष्ट कर दिया।... उइगुर उर्दू में सौ परिवार रह गये थे। तुर्की जनता उस वक्त भूखी थी, तब मैंने उस सामान को अपने लोगों को सहायता देने के लिये जमा किया। जब मैं चौंतीस वर्ष का था, तब आगूज़ भागे और चीन की ओर गये।"

मोगलियान खान के इस अभिलेख से मालूम होता है, कि आगूज़ (उइगुर) लोगों पर तुर्कों ने बहुत अत्याचार किया था, जिसका बदला मोइनचुरा ने लिया। उसने तुर्कों के अंतिम कगान अज़मिश को लड़ाई में हराकर बंदी बनाया और उसके कथानुसार उसी के साथ "तुर्क राजवंश उच्छिन्न हो गया।"

११. यितिकिन (७६०-७७७ ई०)

मोइनचुरा के बाद उसका दूसरा पुत्र यितिकिन गद्दी पर बैठा। चीन का थाङ-वंश उस वक्त बड़ी बुरी अवस्था में था। चीन को इस अवस्था में डालने में भारी कारण तिब्बती थे। इस समय सिंहासन के भी कई दावेदार थे, जिनमें से एक का पक्ष लेकर यितिकिन भी शान्सी तक लूटने के लिए गया। लोगों ने कुछ दे-दिवाकर अपनी जान बचाई, किन्तु यह सब तब जबकि उसने एक दो दूत-मंडलों को कोड़े लगवा कर मरवा डाला, क्योंकि दूतने उइगुर खाकान और खातून (रानी) के सामने ठीक सम्मान प्रदर्शन नहीं किया। थांङ वंश उइगुरों की मदद चाहता था। उन्हीं की मदद से ही सम्राट् की सेना ने शान्सी के दक्षिण-पश्चिम कोने में लड़कर विद्रोहियों को हटाया। फिर सेना वहां से पूर्वी राजधानी लोयाङ् को लेने के लिये उधर बढ़ी, जहां एक दूसरे विद्रोही को सी-चाइ-ई (पेकिङ) के समीप हराया। उइगुर सेना और छ सौ मील तक खून के समुद्र में कूच करती गई। अपमान की तो बात ही किया, वह रास्ते में सभी लोगों को लूटती, लड़कियों को पकड़ती, प्रलय की लीला मचाती आगे बढ़ती गई। तो भी विद्रोह और दमन के सहायक उइगुरों को बहुत भारी भेंट, उपाधि और जागीरें दी गई।

७६५ ई० में यितिकिन के एक सेनापति बुकक् ने बनावटी विद्रोह का बहाना बना सेना ले तिब्बतियों को लूटने और तरिम-उपत्यका से तिब्बतियों के शासन को खतम करने का प्रयत्न किया। लेकिन बुक्कू अपने संकल्प को पूरा करने से पहले ही मर गया। यितिकिन ने क्वो-ज़ी से यह कह कर निपटारा किया, कि सब अपराध बुक्कूका था, उसने मेरी आज्ञा के बिना ही यह अत्याचार किये। साथ ही यितिकिन ने सम्राट् को यह भी वचन दिया, कि यदि बुक्कू के पुत्र (जो कि खातून का भाई भी था) को क्षमादान दिया जाय, तो मै तिब्बतियों पर आक्रमण करूंगा। खातून ७६८ में मरी। उसके बाद उसकी छोटी बहन चीनी अन्तःपुर से भेजी गई, जिसने बड़ी बहन का स्थान लिया। यह हम देख ही आये हैं, कि मध्यएसिया के सफल घुमन्तू सरदार चीन-सम्राट् का दामाद बनना अपना हक समझते थे। खातून खाकान की भेंट के लिये सम्राट् की ओर से अपने साथ बीस हजार थान रेशम लायी। उइगुर अपनी शक्ति को जानते थे, फिर शान दिखाने से क्यों बाज आते? चीन के सीमान्तों की मंडियों में वह अपने घोड़ों और दूसरे जानवरों को बेंचने के लिये ले गये। उन्होंने प्रत्येक घोड़े का ४० थान रेशम मांगा। बीस से तीस हजार तक घोड़े वहां आ चुके थे। यह मांग बहुत ही अन्यायपूर्ण थी, लेकिन चीन मजबूर था। उसे दस हजार और घोड़े लेने पड़े। अभागे सम्राट् ताइ-चुङ ने पहिले ही से उत्पीड़ित प्रजा से अत्याचार-पूर्वक और अधिक पैसा जमा करना पसंद नहीं करना चाहा, इसलिये वह सुलह करने के लिये मजबूर हुआ। लड़ाई का सबसे बड़ा कष्ट तो लोगों को ही भुगतना था। उइगुर चीनी प्रजा और उनके शासकों को बड़ी नीची निगाह से देखते थे। एक उइगुर ने किसी चीनी को मार डाला। उसे उइगुरों के डर के मारे मुकद्दमा चलाये बिना ही माफ कर दिया गया, जबकि उसके दूसरे

साथी उसे जबर्दस्ती छुड़ा ले गये। ७७८ ई० में उइगुरों ने फिर लूट-मार मचायी। उनके विरुद्ध आई सेनाको हार खाना पड़ी। नाहक में १० हजार आदमी जबह हुये। दूसरी सेना भेजी गई, जिसे कुछ सफलता मिली। इसी समय सम्राट् ताइ-चुङ (७६३-८०) मर गया। उइगुर कगान के पास सूचना देने के लिये एक हिजड़ा दूत भेजा गया। उस समय कगान अपनी सारी सेना लिये महाप्राकार की ओर जा रहा था। उसने दूतके सलामको भी लेने की परवाह नहीं की। कगान के एक मंत्री दुर्मोगो ने इसका विरोध किया, किन्तु उसकी राय को भी यितिकिन ने ठुकरा दिया। इस पर दुर्मोगो ने नाराज होकर कगान, उसके संबंधियों तथा दो हजार दूसरे अनुयायियों को मारकर "संयुक्त कुतुलुग विगा कागान" के नाम से अपने को उइगुरों का राजा घोषित किया।

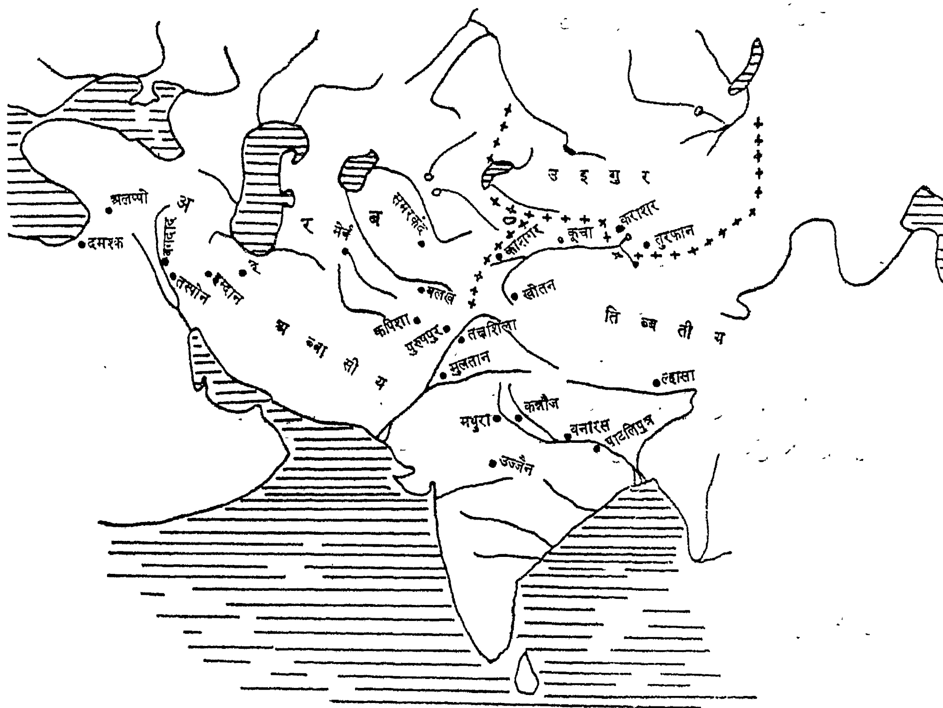
१३. दुर्मोगो संयुक्त कुतुलुग (७७७-७९ ई०)

नये कगान (खाकान) को नये चीन-सम्राट् तें-चुंग (७८०-८०५ ई०) ने बड़ी खुशी से तुरन्त दूत भेज कर कगान स्वीकार किया। उइगुरों के नौ कबीले थे, जिनमें मुख्य उइगुर कहे जानेवाले कगान के संबंधी अपने को बड़ा समझते थे। कुछ समय बाद कितने ही उइगुर और नौ कबीलों के सरदार चीन राजधानी में एकत्रित की हुई संपत्ति को ले उत्तर में अपने देश को लौट रहे थे। उनकी ऊंटों की जमात में बड़ी चतुराई से कुछ लूटी हुई लड़कियां छिपाई गई थीं। सीमान्त के अफसर ने बरछी से कोंचकर छल को पकड़ लिया। अपराधी नौ कबीलों ने कुछ करना अच्छा नहीं समझा, क्योंकि उन्होंने अभी सुना था, कि दो हजार अनुयायियोंके साथ पहिले कगान को मार कर दुर्मोगो कगान बना है। उधर जाने पर उनपर भी आफत आती, इसलिये अपने सभी उइगुर सरदारों को मार कर उन्होंने ताइ-चाऊ में स्थिति सीमान्त राज्यपाल चाङ-क्वाङ-सेंग के पास जाकर चीन की अधीनता स्वीकार की। सरदारों का यही कसूर था, कि वह उनका ऐसा करना पसंद नहीं करते थे। राज्यपाल ने इसे पसंद किया और सम्राट् के पास स्वीकृति के लिये सिफारिश करते लिखा—इन नौ कबीलोंके हट जानेपर उइगुरोंकी शक्ति मजबूत नहीं रह जायगी। साथ ही उसने दुर्व्यवहारके साथ पेश आनेके लिये अपने एक अफसरको उइगुर-कगानके चाचाके पास भेजा। चचाने उसे मारनेके लिये कोड़ा उठाया। चीनी सेना घात लगाये तैयार थी। उसने उइगुरों और दूसरे तातारों (तुर्कों) को मार डाला, और एक लाख थान रेशम, कई हजार ऊँट और घोड़े अपने हाथमें कर लिये। अफसरने सम्राट्को सूचित किया—"कि उइगुरोंने एक अफसरको कोड़े मारे। उन्होंने सएर (आधुनिक उलान्‌चेप, मंगोलिया) की भूमि लेनी चाही, इसलिये मजबूरन हमको ऐसा करना पड़ा। अब मैं लौट आ रहा हूँ।" सम्राट्ने तुरन्त उस अफसरको बुला लिया और राजधानीमें बराबर रहनेवाले उइगुर-दूतके पास सब बात समझाने के लिये एक दूत भेजा।

खाकानके पास खाकान पदकी स्वीकृति ले जानेके लिये एक खास दूत भेजा गया, किन्तु वह दूसरे साल पहुंच सका। खाकानने दूतको पचास दिन तक बिना देखे ही नजरबन्द रखा। इस बीच मंत्रियोंसे सलाह होती रही। अन्तमें दुर्मोगोंने संदेश भेजा—"मेरे सारे लोग तुम्हारी जान लेना चाहते हैं, मैं ही केवल अपवाद हूँ। लेकिन मेरा चचा और उसके साथी अब मर चुके हैं, इसलिए तुम्हें मारना केवल खूनसे खून धोना होगा, जो कि सदा के लिये और भी मलिनता पैदा करनी होगी। मैं पानीसे खून धोना अच्छा समझता हूँ। मेरा कहना है, कि

मेरे अफसरोंके छीने गये घोड़े बीस लाख (थान रेशम) के मूल्यके बराबरके हैं। अच्छा है कि तुमइस क्षति-पूर्तिको तुरन्त भेज दो।" इस संदेशके साथ दुर्मोगोने चीनी दूतको उसके आदमियोंके साथ लौटा दिया। सम्राट्ने कड़वी घूंट पी ली और चुपचाप क्षतिपूर्ति भेज दी।

तीन साल बाद (७८३ ई०) खाकानने चीन-सम्राट्से राजकन्या मांगी। सम्राट्ने इनकार करना चाहा, इस पर महामंत्रीने समझाया—"निश्चय ही परमभट्टारक हमारे राजदूतके कोड़े लगानेके बादकी घटनाको ध्यानमें नहीं ला रहे हैं, जो कि बुक्कूकी रानी (खातून) के सामने हुई थी?" आखिर राजकन्या भेजी गई। वह ऐसी सौभाग्यवती निकली, कि उसने चार खाकानोंकी सेवा की। राजकन्याके आनेपर खाकानने कृतज्ञता प्रकाशित करते पश्चिमी तुर्कोंके



२४. उइगुर राज्य (७६० ई०)

विरुद्ध अपनी सेवायें अर्पित कीं। इस समय पश्चिमी तुर्कोंके कुछ कबीले उइगुरोंके साथ थे। इसी समय करलोग बालाशगून (सूजिया) में छाये हुए थे। दुर्मोगोने सम्राट्से आज्ञा लेकर अपनी जातिका नाम बदल हूइहू (उइगुर) रख दिया। कुछ दिनों बाद तातारोंमें मुसलमानोंको उइगुर कहा जाने लगा, संभवतः इसका कारण यही था कि उन्होंने अपने यहां सर्वप्रथम उइगुरों को ही मुसलमानके रूपमें देखा। इस तरहकी घटना और जगहोंपर भी हुई है, सर्वप्रथम ईसाई बने एक छोटेसे फ्रेंच कबीलेके नामसे देशका नाम फ्रान्स पड़ गया, फ्रेंकोकी प्रजा कैल्टो को फ्रेंक, फिर भारतमें अंग्रेजोंको भी फिरंगी कहा जाने लगा। ७८९ ई० में दुर्मोगो मर गया।

४. तरस (७८९ –)

दुर्मोगोके बाद उसका भाई तरस कगान हुआ। ७५१-७६६ ई० में तिब्बती भी इतने शक्ति-संपन्न थे, कि उन्होंने कांसू से उरुमची और बर्कुल लेते हुए सारी तरिम-उपत्यकाको अपने हाथमें कर लिया। इस समय रेशमपथ उनके हाथमें चला गया और चीनसे पश्चिमका संबंध उइगुर भूमिके रास्ते रह गया। उइगुर मनमानी कर वसूल करके काफिलोंको जाने देते। शादो तिब्बतियोंके हाथमें चला गया था। उइगुरोंने उरुमची लेनेकी बहुत कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हुए। उनके पश्चिममें करलुग सप्तनदमें बलवान होते जा रहे थे, इसलिए उइगुरोंको दक्षिणकी ओर ही बढ़नेका रास्ता था।

५. आचो (-७९५ ई०)

तरसके मरने पर उसका भतीजा आचो गद्दीपर बैठा। करलोग इस वक्त बहुत सबल हो गये थे। चूनदी के ऊपरी भागमें उनकी राजधानी इसिबालिक थी, जहां उनके यबगूकी गोचर-भूमि थी। आचो करलुगों और दक्षिणमें तरिम-उपत्यकाके स्वामी तिब्बतियोंसे भी संघर्ष करता रहा। ७९५ ई० में वह निस्संतान मरा।

६. कुतुलग (७९५-८०८ ई०)

हूणों, तद्वंशज अबारों, तुर्कों, उइगुरों तथा दूसरी घुमन्तू जातियोंमें राजशक्ति व्यक्तिमें नहीं उर्दू (जन) में केन्द्रित होती थी, इसलिए उनके कगान (खान) के मरने या पकड़े जानेसे जातिका सर्वनाश नहीं हो सकता था। चीनने कितनी ही बार उन्हें उछिन्न सा करके छोड़ा, किन्तु वह चरी हुई दूबकी तरह कुछ ही समयमें फिर हरे-भरे हो जाते थे। आचोकी जगहपर उर्दूने उसके मंत्री कुतुलुगको कगान चुना। इस कगानका चीनमें अच्छा स्वागत हुआ। इसके समय मानी-धर्मके प्रचारक राजधानी कराखोजामें आये। कगानने उनका अच्छा स्वागत किया। दो सौ बरस बाद भी राजधानीमें मानी-धर्मके मंदिर मौजूद थे।

७. काउ-साङ (८०८-८२१ ई०)

८०८ ई० में उइगुरोंका यह नया खाकान था, जिसने चीनसे ब्याहके लिये राजकन्या मांगी। चीन-दरबार ने सोचा, इस तरहके संबंधसे हमारे लाभ की बात यह होगी, कि उइगुरों और तिब्बतियोंका झगड़ा चलता रहेगा, और तिब्बती हमारी तरफ मुंह उठाकर नहीं देख सकेंगे। लेकिन इस सलाहको सम्राट् स्यान्-चुङने नहीं माना। ८२१ में राजकन्याके लिये और दबाव पड़ा, इसपर नये सम्राट् मूं-चूंङ (८२१-२५ ई०) ने राजकन्या भेजी, किन्तु तबतक काउ-साङ मर चुका था, इसलिए यह भेंट उसके उत्तराधिकारीको मिली।

८. गुदुलग जिगिन (८२१-२४ ई०)

घुमन्तुओंको हाथमें रखनेके लिये जहां चीन-दरबार उनके पास रेशमके थान और सोना भेजता था, वहां राजकन्या देकर दामाद बनाना भी उसकी एक पुरानी नीति

थी। ऐसी कन्यायें अधिकतर सम्राट्की पुत्री क्या सम्राट्-वंश की भी नहीं होती थीं। इसके लिये सारे देशसे सुन्दर तरुणियां एकट्ठा करके रखी जाती थीं। किंतु अबके राजकन्या असली सम्राट्-पुत्री थी। इसके लिये धन्यवाद देने और राजकन्याको लानेके लिये अभूतपूर्व साज-सज्जा के साथ दूत-मंडल भेजा गया। इस स्वागत-मंडलीमें कबीलोंके दो हजार सरदार सम्मिलित थे। वह अपने साथ बीस हज़ार घोडे एक हजार ऊंट भेंटके लिये लाये थे। इतनी बडी पल्टनको राजधानीमें आनेकी इजाजत नहीं मिली, केवल पांच सौ बराती पहुंचे, बाकी ताइयुवान फू (शानसी) में रह गये। कगानको सम्राटने एक और भी ऊंची पदवी "महामहिम धार्मिक," की दी। खित्तन अभी इतने शक्तिशाली नहीं हुए थे। उनपर चीन और उइगुरों की संयुक्त शक्तिका दबाव पड़ा और अन्तमें उन्होंने दोनोंकी अधिराजता स्वीकार की। थोड़े समय बाद फिर सीमान्तके लिये खित्तनोंसे झगड़ा हुआ, पर, सम्राट् को फिर उइगुर सेना की मंहगी मदद लेनेकी इच्छा नहीं हुई। सम्राट् और कगान दोनों ८२४ई० में मर गये —कगान हत्यासे।

१९. भाई (८२४-३२ ई०)

मृतकगान के स्थानपर उसका छोटा भाई गद्दीपर बैठा, जिसकी ८३२ ई० में हत्या हो गई।

२०. भतीजा (८३२)

निहत कगानकी जगह पर उसका भतीजा गद्दीपर बैठा, किन्तु एक उइगुर सरदारने शादो सरदार गिज़िया (सत्यवादी) से मिलकर कगानपर हमला करना चाहा, इसपर कगान ने आत्म-हत्या कर ली। अब उइगुर राजवंशके अंतिम दिन आ गये थे, जल्दी जल्दी कगानो के मारे और बदलते जानेसे उसकी शक्ति बहुत निर्बल हो गई।

२१. . . . (८४० ई०)

इस कगानका नाम और समय मालूम नहीं। संभवतः वह ८४० के आसपास रहा। यह पिछले कगानका संबंधी नहीं था। उइगुरोंकी राजशक्ति शीघ्रतासे क्षीण होती जा रही थी, दूसरी ओर उस साल भारी हिमवर्षाके कारण उनके पशु मारे गये, फिर सूखा पड़ा, जिससे पशुओंके चरने के लिये काफी तृण नहीं रह गया। अन्तमें महामारीने अपना काम शुरू किया। उनका सबसे बड़ा धन घोडा, ऊंट भेड़-बकरियां-अधिकांश मर गये। इसी समय किर-गिज़ोंसे मिलकर एक उइगुर सरदारने सेना ले राजकीय उर्दू पर आक्रमण कर कगानको मार डाला और सारे उर्दूको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। चीन-राजकन्या (कगानकी खातून) विजेताके हाथमें पड़ी। एक देरे (राजकुमार) बचे-खुचे पन्द्रह कबीलोंके साथ अपने पच्छिमी पड़ोसी करलुकोंकी शरणमें चला गया, बाकीमेंसे कुछ तिब्बतियोंके साथ मिल गये और कुछ करकुलके आस-पास बिखर गये। राजकीय उर्दूके पासवाले तेरह कबीले दक्षिणमें शानसीकी ओर चले गये और उन्होंने देरे ओकेको अपना कगान चुना।

२२. ओके

उइगुरोंके इधर-उधर भटकनेका समय आगया विजेताके हाथमें आई चीन कुमारीको किरगिज़ चीन भेजना चाहते थे। इसी बीच ओकेने अवसर पा राजकुमारीको पकड़नेमें सफलता पाई। इस सफलताके बाद आगे बढ़ते वह कुकुखाते (तियां-ते अथवा क्वो-ह्वाचङ : वर्तमान तेंदुस) के पास गया, लेकिन उसका आक्रमण विफल गया। मंत्रियोंकी इस सलाहको सम्राट्ने मान लिया कि किर्गिजोंको प्रोत्साहन न दिया जाय, और उसकी जगह जांचके लिये आयोग भेजा जाय। राजकुमारीने भी संदेश भेजा—चूँकि अब ओके कगान है,इसलिए मैं उसकी खातून (रानी) होना चाहती हूँ। चीनियोंमें शायद इसी समय स्त्रियोंके पैर बांधनेका रवाज हुआ, जिसमें चीनी स्त्रियोंको "तुर्कोंके साथ भागने" का मौका न मिले। सम्राट्ने नये कगानको अपना दामाद माना, फिर उसके उर्दूकी तकलीफ दूर करना भी आवश्यक था, इसलिये उसके पास पांच-हजार टन अनाज भेजा। ओकेने प्रार्थना की—हमें ताइ-चू (तेंदुस और पेकिंगके बीच) में रहनेकी आज्ञा दी जाय, जिसे स्वीकार नहीं किया गया। उइगुरोंके कितने ही कबीले खित्तन कबीलोंमें जाके मिल गये। ओकेने अपने उर्दूको ता-तुंग-फूके उत्तरी पर्वतोंमें रक्खा। अब भी उसके पास लाख आदमीसे कम नहीं थे। अपनी गुजर-बसरके लिये कगानने सम्राट्से तंदुस नगर उधारके तौर पर मांगा। इन्कार करनेपर उसने सारे प्रदेशमें लूटमार मचा दी। लेकिन उइगुरोंमें अब पूरी फूट थी। एक उइगुर सरदार ऊमुज़ने ओकेको दबानेमें चीनकी सहायता की। रातको कगानके उर्दूपर आक्रमण कर तीस हजार बंदी बनाये, जिसमें चीनी राजकुमारी भी थी। ओके ने निकल भागने में सफल हो जाकर करा-किरगिज़ कबीलेंम शरण ली, जिसने रिश्वतके लोभमें उसे मार डाला।

२३. ओ-नेयन (८४७)

यह ओकेके स्थानपर नया कगान हुआ, किन्तु उसके उर्दूमें सिर्फ पांच हजार लोग थे। घेई (खेली) ने धोखा दे उसे अपना कगान बनाना चाहा, लेकिन ८४७ ई० में चीनने घेइयोंको तहस-नहस कर दिया। बचे-खुचे घेई अपने बंधु खित्तनोंके पास चले गये, जो एक नये साम्राज्यकी नींव डाल रहे थे। अब इस प्रदेशमें बहुत कम उइगुर थे, उच्च वर्गके केवल तीन सौ परिवार बचे हुए थे। उन्होंने जाकर शिरवी कबीलेके पास शरण ली। सम्राट्ने शिरवियोंसे कगानको समर्पण करनेकी मांग की; इसलिये कगान अपने लोगोंको उनके भागपर छोड़ स्वयं अपनी खातून, पुत्र और दूसरे नौ सवारोंके साथ भाग कर करलुकोंमें चला गया। शिरवी बाकी बचे उइगुरोंको अपना दास बनाना चाहते थे, लेकिन किरगिज़ दावेदार सत्तर हजार सेना लेकर चढ़ आये और उइगुरोंको पकड़कर गोवीके उत्तरकी ओर ले गये। वहांसे वह दूसरे छोटे-मोटे कबीलोंकी लूट-मारसे जीते, छोटी-छोटी टुकड़ियोंमें बँट अन्तमें अपने कबीलेकी दूसरी शाखामें जा मिले, जो उस समय तुर्कोंकी पुरानी जन्मभूमि (खाङ-चाउ-फू) के आसपास रहती थी।

§४. अन्तिम उइगुर

पश्चिमी तुर्क जब छिन्न-भिन्न हो गये, तो बूकिनके उर्दूके कुछ लोग भागकर उइगुरोंमें जा मिले। जब किरगिज़ोंने उइगुरोंको ध्वस्त किया, तो इन्होंने बरकुल के आसपासकी भूमिमें

जाकर शरण ली। यह कुछ समय हरासर (कराशर) में रहे। फिर अपने देरे (राजकुमार) के साथ फां-ते-ले ((खाङ चाउ) पहुँचे। इनकी हीन अवस्था देखकर सम्राट् स्वेन-चुङ (८४७-६०) को दया आई और उसने इनके सरदारको कगानकी उपाधि देनेके लिये दूत भेजा।

स्वेन्-चुङके उत्तराधिकारी ई-चुंग (८६०-७४ ई०) के समय यह पश्चिमी उइगुर इतने मजबूत हो गये, कि ८६६ ई० मे इनके सेनापति बुक्कूने उइगुर तथा दूसरे कबीलोंकी सेना ले तिब्बतियोंको कान्सू और कूचा आदि नगरोंको छोड़कर भागनेके लिये मजबूर किया, और तिब्बती राज्यपाल (क-लोन) के सिरको काटकर सम्राट्के पास चीन भेज दिया। लेकिन अब थाङ-वंश भी समाप्तिपर आया था, और ९०४ ई० में उसकी जगह पांच राजवंश लेनेवाले थे। यद्यपि ८६६ ईसवीमें कूचा और उसके आसपासके नगरोंसे तिब्बती भगा दिये गये, किन्तु कोको-नोर प्रदेशमें वह कई सदियां पीछे तक रहे।

८६६ की इस भारी विजय—जिसमें उन्होंने दीर्घकालसे तरिम-उपत्यकाके शासक तिब्बतियोंको हराकर भगाया—के बाद इतिहासमें उइगुरोंका नाम बहुत कम सुनाई देता है। नवीं सदीके अंतके चीनी अभिलेखोंसे पता लगता है, कि वह इस सदीके अन्तमें सैनिक सेवा करते थे, कभी कभी चीनके सीमान्ती नगरोंमें घोड़ों और बहुमूल्य रत्नोंको चाय और रेशम आदिसे बदलनेके लिये आते थे। पंचवंशी कालमें वह कर भेंट देनेके लिये दरबारमें आते थे और चीनको मामा कहते; क्योंकि थाङ-वंशने अपनी कई कन्यायें उइगुर कगानोंको दी थीं। नवीं शताब्दीमें उइगुरोंका प्रभुत्व तुरफानसे ह्वाङ-होके मुड़ावके पास तक था, किन्तु अब इनके दो केन्द्र थे—(१) पीयाङ जो कि तुर्फानके पास पूरबमें था और (२) खाङ-चाउ, जो कोकनोरके उत्तरमें था। खाङचाउवाले नजदीक पड़ते थे, इसलिये वह चीनमें अधिक पहुंचते थे। चीनी अभिलेखोसे पता लगता है, कि ९११ ई० में उइगुरोंने दरबारमें भेंट भेजी थी। फिर एक उइगुर सरदारने भेंट भेजी, जिसका चीनी नाम वाङ-चेंङ-में था। उसे कगानकी पदवी देनेके लिये चीनसे दूत भेजा गया, किन्तु पहुँचनेके समय तक वह मर चुका था और उसकी जगह उसका छोटा भाई चाङ-तेगिन शासन कर रहा था।

आतुर्युक (९२६ ई०)

९२६ ई० में आतुर्युकको कगान देखा जाता है। ९२७ ई० में एक दूसरा स्थानापन्न कगान वाङ-चेन्-यू ने अपनी भेंट भेजी, जिसे माउ-किरे (द्वितीय शादो सम्राट् मांगचुंग ९२६) ने कगानकी उपाधि प्रदान की। यह स्थानापन्न ९६० ई० तक शासन करता रहा। ९६२ में उसके पुत्रने भेंट भेजी थी। यह कगान जिस प्रदेशमें रहते थे, उसके बारेमें चीनियोंने लिखा है, कि वहां बहुमूल्य पाषाण, जंगली घोड़े, एक कोहानी ऊँट, हरिन, सोहागा, हीरा, कपास, घोड़ेके चमड़े, अनाज में गेहूं, जौ, पीली भांग, (सोम) प्याज आदि होता है। वह लोग खेतकी जोताई ऊँटसे करते हैं। खान ऊँचे महलमें रहता है। उसकी पत्नीको देवी (दिव्य कुमारी) कहा जाता है और मंत्रीको मेयलुक। दरबारमें सिर नंगा करके जाना पड़ता है—हूणोंमें भी यह रवाज था। इनकी स्त्रियां सिरके ऊपर पांच-छ इंचका जूड़ा चांदपर बांध लाल रेशमी थैलेमें समेटकर रखती हैं। विवाहिता स्त्रियां सिरपर नमदेकी टोपी लगाती हैं।

९६४, ९६५ में उइगुरोंने चीन (सुङ) दरबारमें भेंटके साथ दूत भेजा था। भेंटमें रत्न, अम्बर, चमरीकी पूंछ और समूर थे।

९७७ ई० में उइगुर कगानका राज्य कोकोनोर और लोबनोर सरोवरोंके उत्तरमें तुर्फानसे खङ-सा-चाउ तक था अर्थात् यूचियोंकी पुरानी भूमि अब उइगुरोंके हाथमें थी। चीन सम्राट्ने इसी समय हुक्म दिया था, कि हमारे दामाद उइगुर खाकान खान्-सा-चाउको पैसा भेजना चाहिये, जिसमें वह अच्छे घोड़ों और बहुमूल्य रत्नोंको हमारे उपयोगके लिये भेजे।

९८८ ई० में कुछ उइगुर परिवार राजाको मार उच्च अफसरोंके साथ आलाशान-पर्वतके पास बसनेके लिये आये, किन्तु उनके पास उर्दू नहीं था।

९९६ ई० में खान्-चान कगानने हिया के तंगूतों (अमदुओं) के विरुद्ध लड़नेके लिये अपनी सेवायें चीन-सम्राट्को पेश कीं। तोबा (मियन्पी) राजवंशकी संतान हिया-राजवंशने ८९० से तब तक अपने स्वतंत्र अस्तित्वको कायम रखा, जब तक कि चिङगिस खान्ने उसे १३ वीं सदीके आरम्भमें बड़ी क्रूरताके साथ नष्ट नहीं कर दिया। ९९६ ई० के थोड़े ही बाद हियाने खान्-चान्को खतम कर ले लिया।

१००१ ई० में उइगुर खाकानकी भेंट चीन आयी। उसके दूतने कहा था—हमारा राज्य ह्वाङ-होके पश्चिममें सुइ-सांङ (इस्सिकुल से पूरबके हिमपर्वत) तक अवस्थित है—अर्थात् पश्चिममे सुइ-सानसे पूरबमें ह्वाङ-हो तक उस वक्त उइगुर शासन करते थे, किन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि इस विशाल प्रदेशमें सैकड़ों छोटी-छोटी अधीन रियासतें नहीं थीं। शायद यह कगान बोगरा खान हारून रहा हो। उइगुरों, करलुकों और कराखानियोंका संबंध ऐसा था, जिसके कारण कोई भी अपनेको उइगुर या गूज कह सकता था। बोगरा खानकी राजधानी बलाशागुन (सूजिया) थी। वह काशगरसे चीनके सीमान्त तक शासन करता था। १००४में भी चीन में भेंट पहुंची थी। १००७ में भेंट लेकर जो दूत-मंडल गया था, उसके साथ एक बौद्ध भिक्षु भी था, जो चीन राजधानीमें सम्राट्की दीर्घायु-प्रार्थनाके लिये एक बौद्ध मंदिर बनाना चाहता था। लेकिन आरम्भिक सुङ सम्राट् बौद्ध धर्मको प्रोत्साहन नहीं देना चाहते थे, इसलिये स्वीकृति नहीं मिली। इस समय सुङ-वंशके उत्तरमें मंगोलिया, मंचूरिया और उत्तर-पूर्वी चीन लिये हुए खित्तनोंका शक्तिशाली साम्राज्य कायम था। इसी वंशके कारण चीनका दूसरा नाम खिताई पड़ा। खित्तनके लेखानुसार १००१ ई० में एक भारतीय भिक्षु फाङ-साङ (संस्कृत-भिक्षु)—जो एक प्रसिद्ध वैद्य भी था—को उइगुरोंने खित्तन दरबारमें भेजा था। १००८ ई० में फिर भेंट आई और १०११ ई० की भेंट भेजते हुए उइगुरोंने शानसी प्रदेशके आधुनिक ऊ-चाउ-फू (नगर) में एक बौद्ध मंदिर बनानेकी प्रार्थना की थी। इससे पता लगता है कि ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भमें पूर्वी मध्य-एसियामें बौद्धधर्म प्रभाव रखता था। १०१८ और १०२१ में भी उइगुर चीन दरबारमें भेंट भेजते रहते थे। संभवतः ग्यारहवीं सदीमें भी वह घुमन्तू जीवन बिताते थे। बारहवीं सदीमें वह स्थायी निवासी बनकर रहने लगे और शानसी प्रदेश तथा आसपासमें व्यापार करनेके लिये अपना वणिक्-मंडल भेजते थे। उन्हें तंगूतों (अमदुओं) के राज्यसे गुजरना पड़ता था। खित्तन सम्राट् कंचाऊ, शाचाऊ, हाचाऊ और असाला (अरसलन) के निवासी उइगुरोंको अपनी प्रजा कहते थे।

स्रोत-ग्रन्थ :

१. ओचेर्क इस्तोरिइ तुर्कमेन्स्कवो नरोद (व० व० बरतोल्द, १९२४)

२. कत्कि० सोओब् श्चेनिये

३. ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्या (व०व० बरतोल्द, वेर्नी १८९८)

4. A thousand years of Tatars (E. H. Parker, Shanghai 1895)

5. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Bartold)

6. Tibetan Documents concerning Chinese Turkistan, (F. W. Thomes. J R A S 1934)

7. History of Bokhara (A. Vambery)

अध्याय २

करलुक (७३९-९४० ई०)

१ करलुक (करलोग) जाति

करलुकका अर्थ है हिम-पुरुष[1] या हिमालका ,राजा। यह भी आगूज़ोंके पांच तुर्कोंमेंसे एक तथा उइगुरोंकी तीसरी शाखा थे,जो अल्ताई और त्यान्‌शान्‌के हिम-पर्वतोंमें रहनेके कारण इस नामसे मशहूर हुये। इनकी राजधानी अल्मालिक थी। ७६६ ई० में करलुकोंने सुयाबको अपने हाथमें कर लिया। करलुकों और उनकी ज्येष्ठ शाखा उइगुरोंमें संघर्ष चलता रहता था,यह हम बतला चुके हैं। पश्चिमी तुर्क साम्राज्यके पतनके बाद तुर्कवंश छिन्न-भिन्न हो गया। इसी वक्त तुर्कोंके अलग अलग कबीलोंने अलग-अलग नाम स्वीकार किये, जिन्हें ही मोगिल्यानके शिलालेख में नौ आगूज़ कहा गया है। चीनके अभिलेखोंमें पश्चिमी तुर्कोंकी दस शाखायें बतलायी गई हैं। शातो वह तुर्क थे,जो पथरीली भूमिमें रहते थे। एक शाखाने पूर्वी-तुर्किस्तानमें स्थान ग्रहण किया था, इनको चीनियोंने तुर्क या दूसरे नामसे याद किया है, और इन्हींको अरब-इतिहासकार ताकुज़-आगूज़ कहते हैं। इनकी एक शाखाने दक्षिण में अपना राज्य स्थापित किया,जिसका केन्द्र निम्न-सिर-दरिया तक था। आज भी किरगिज़ोंमें याफेतके पुत्र त्युर्ककी पौराणिक कथा मशहूर है, जो इस्सिकुलके किनारे रहता था। सप्तनदमें त्युर्गिश शाखाके दो वंश तख्ती और आज़ी रहते थे।

८ वीं सदीके उत्तरार्धमें सप्तनदमें करलुकोंकी प्रधानता थी, जो कि अल्ताई की हिम-पर्वतमालासे यहां आये थे। ७६६ ई० में इन्होंने सुयाबको लेकर वहां अपनी एक राजधानी बनाई। करलुकोंने अपने राजाकी उपाधि जबगू स्वीकार की थी, जो ही ओर्खोनके अभिलेखका यवगू है।

जिस वक्त तुर्क साम्राज्यका पतन हुआ, उस समय पूर्वमें चीनी और पश्चिम-दक्षिणमें अरब उसके ऊपर नजर गड़ाये हुए थे, किन्तु तुर्कोंका साम्राज्य इन दोनोंके हाथमें न जाकर तुर्क जातिके ही हाथमें रहा। इनके पूर्वी भागपर उइगुरोंका अधिकार हुआ,जिनके बारेमें हम अभी कह आये हैं,और पश्चिमी भाग करलुकोंके हाथ में चला गया। चीन और अरबके बीच तुर्कोंकी भूमिके लिये तलस नदीके तटपर जुलाई ७५१ ई० में भारी लड़ाई हुई। अरब सेनापति जियाद सालेह-पुत्रने तराज तक धावा मारा, जो कि अतलस (तलस) नदीके बायें तटपर था। चीनी सेनापति

---

[1] A thousand years of Tatar (Parker)

हाउ-स्यान्-चीने तलस पर्वतपर अपनी छावनी डाली थी---आजकल तलस नदीके पुराने नगरोंके ध्वंस किरगिज़िस्तान गणराज्यमें पाये जाते हैं। चीनियोंकी हार हुई, जिसके कारण जहां चीनका उभय मध्य-एसिया पर अधिकार न हो पाया, वहां अरबोंकी शक्ति भी इतनी क्षीण हो गई, कि वह तलससे आगे नहीं बढ़ सके। दोनोंके झगड़ेमें करलुक अपना राज्य स्थापित करनेमें सफल हुए। हां, इतना जरूर हुआ कि अरबोंने फरगाना-उपत्यकासे करलुकोंको भगा दिया। सोग्दियोंका व्यापारिक प्रभाव तब भी अक्षुण्ण रहा। उन्होंने पहिले से ही चीनके पश्चिमी सीमान्त से सारे रेशमपथपर अपना अधिकार जमा रखा था। जगह जगह उनके अपने उपनिवेश थे। तुर्क, उइगुर या करलुक लोग अरबोंकी तरह धर्मान्धताके शिकार नहीं थे, इसलिये उनके यहां सोग्दी लोग, जर्थुस्ती, मानी या दूसरे धर्मको स्वतंत्रतापूर्वक मान सकते थे। मुसलमान प्रचारक भी वहां पहुंचते थे। दसवीं शताब्दीके एक फारसी भूगोलज्ञ के कथनानुसार कास्तिक जोत से उत्तरमें अवस्थित बेकलिग (बेकलीलिग) सोग्दियोंका एक अच्छा नगर था, जिसे सोग्दी भाषामें सेमिकना कहते थे।[1]

करलुक जबगुओंके नाम अधिकतर मालूम नहीं हैं। चीनके साथ इनका कोई संबंध नहीं था। अरबोंसे प्रतिद्वंद्विता जरूर थी, किन्तु वह स्थानीय शासक को ही करलुकोंका राजा मान लेते थे।

२. धर्म

करलुक भूमिमें करलुक तुर्कोंके अतिरिक्त सोग्दी भी रहते थे। बूसुन और शकोंके अवशेष सोग्दियोंको अपना नजदीकी समझकर उन्हींमें मिल गये और अब सभी सोग्दी नामसे प्रसिद्ध थे। सोग्दियोंके अतिरिक्त घुमन्तू करलुक और दूसरे तुर्क भी उनके राज्यमें रहते थे। तुर्कोंमें बौद्ध अधिक थे, पर नेस्तोरियों और मानी धर्मानुयायियोंकी भी कमी नहीं थी। उनके बहुतसे नगरोंमें ईसाइयों (नेस्तोरियों) का होना मुसलिम लेखकोंके ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है। इस्सिकुलके पास जिकिलया घुमन्तू रहते थे, जिनमें ईसाई धर्मके अनुयायी काफी थे। वस्तुतः इस्लामके पहुंचनेसे पहिले इन जातियोंमें अपनी जातीयता और धर्मको एक नहीं किया गया था। मुसलमान लेखकोंके कहनेसे पता लगता है, कि तत्कालीन करलुक जबगूने खलीफा मेहदी (७७५-८५ ई०) के पास पहिले-पहल इस्लाम स्वीकार किया, लेकिन यह संदिग्ध है। तो भी दसवीं सदीमें तलस नदीसे पूर्व अर्थात् करलुकोंकी भूमिमें जामामस्जिदें मौजूद थीं। करलुक पहिले पशुपाल, शिकारी घुमन्तू थे, अब कुछ खेती-किसानी भी करने लगे थे। दसवीं सदीमें ताकुज़-आगुज़ोंकी शाखाओंमें करलुक बड़े शक्तिशाली थे। उस समय उनके कगान (यबगू) सरदार तथा लोग अधिकतर मानीका धर्म मानते थे, किन्तु उनके भीतर नेस्तोरी, बौद्ध और मुसलमान भी थे। करलुकोंका नगर वर्सखान पीछे दसवीं सदीमें ताकुज-आगुजों (कराखानियों) के हाथमें चला गया। उनके अतिरिक्त पेन्चुल (आधुनिक आकसू) भी करलुकोंके हाथमें, पीछे कमजोर होनेपर कराखानियोंके अधीन, पीछे इसे किरगिजोंने ले लिया। यह याद रखना

---

[1]ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्ये (व० बरतोल्द)

चाहिये कि इससे पहिले किरगिज़ ऊपरी एनेसेइ उपत्यकामें रहते थे, जहां आठवीं सदीमें भी उनके पूर्वज घुमन्तुओंका निवास था। दसवीं सदीमें हर तीसरे साल इनका कारवां रेशमके व्यापारके लिये कूचासे होकर गुजरता था। यहीं किरगिज़, अरब, करलुक और तिब्बती व्यापारी इकट्ठा होते थे। आखिरमें किरगिज़ ताकुज़-आगुज़ोंके विरोधी बन करलुकोंके साथ हो गये, जिसके फलस्वरूप सप्तनदका एक भाग किरगिज़ोंको मिल गया। यदि कराखानियोंके समय किरगिज़ सप्तनदमें आये, तो दसवीं या ग्यारहवीं सदीमें उन्होंने इस्लाम धर्मको स्वीकार कर लिया था, जिसके अनुयायी आज भी उनके वंशज कजाक़ और किरगिज़ हैं। लेकिन सोलहवीं सदीमें भी उनके भीतर काफिरोंका होना मुस्लिम लेखक बतलाते हैं।

अन्तिम समयमें करलुकोंका केन्द्र चू-उपत्यका ९४० ईसवी के आस-पास उनके दुश्मन "काफिर तुर्कों" (कराखानियों) के हाथमें चला गया, जिनका ग्यारहवीं और बारहवीं सदीमें बड़ा प्रभाव था। चू-उपत्यकामें बलाशागून (सूजिया) इनकी राजधानी रही।

३. करलुकोंके नगर

करलुक शासक यद्यपि अधिकतर घुमन्तू जीवन बिताते थे, किन्तु उनके लिये आमदनीके और भी रास्ते खुले हुए थे, विशेषकर वणिक्-पथपर बसे उनके नगर बड़े ही महत्वके थे। चीनसे पश्चिमी एसिया और यूरोपकी ओर जानेवाला एक वणिक्-पथ सप्तनद होकर जाता था, जिसके ऊपर निम्न नगर करलुकोंके अधीन थे।

जुल्—यह आधुनिक पिसपकके आस-पास था। रेशम-पथ यहां तराज़ (तलश, जिला औलियाअता) और आसीकित (नमंगान ज़िला) होते कराकुल डांडेसे आता था। चुल या जूल तुर्की भाषामें मरुभूमि को कहते हैं।

नेवाकित्—यह चू-उपत्यकाका सबसे बड़ा व्यापारिक नगर था। यहांसे एक रास्ता जिल-अरिक होता इस्सिकुलके तटपर पहुंचता था, और दूसरा उत्तर की ओर स्याव जाता था। जुलसे नेवाकित पन्द्रह फरसख[1] था। नेवाकित् वहां था, जहांसे रास्ता चू-नदीके बायें किनारे हो करावुलकको जाता था। इस्सिकुल सरोवरके किनारे करलुक लोगोंके निवास और गोचर-भूमियां थीं।

किरमिनकित् (कुंवैरकित्)—नेवाकित् और दर्रेके बीच यह बड़ा व्यापारिक नगर था। यहां करलुकोंका लवान कबीला रहता था, जिसके शासककी उपाधि कु-तेगिन-लवान और दर्रेका नाम जुल (संकीर्ण दर्रा) था।

यार—जुलसे बारह फर्सख (प्रायः सत्तर मील) दक्षिणमें यह नगर था, जहां पर तीन हज़ार करलुक सैनिक रहते थे। यहीं शायद इस्सिकुलके दक्षिण तट पर जिकिल के शासक तैवसनकी राजधानी अवस्थित थी।

तोन्—यारसे पांच फर्सख (प्रायः तीस मील) इसी नामकी नदीपर यह नगर अवस्थित था।

बरसखान—तोन्से तीन दिनके रास्तेपर यह बड़ा नगर था। इन दोनों नगरोंके बीचमें जिकिल

---

[1]फर्सख = ६ वर्स्त = ६ मील = १६०० हाथ (?)

कबीलेके लोगोंके तंबू होते थे। इस नगरका नाम आज भी बरसकोन नदीके नाममें सुरक्षित है। इस नगर के आस-पास चार बड़े और पांच छोटे गांव थे। नगरमें ६ हजार सैनिक रहा करते थे। यहांके शासककी उपाधि मनक (तेविन) बरसखान थी। दसवीं शताब्दीके अरब भूगोलज्ञोंके अनुसार बरसखानका मनक करलुक-वंशी था, किन्तु पीछे यह ताकुज-आगुज़ोंके पक्षमें हो गया। पूर्वी और पश्चिमी तुर्किस्तानके वाणिज्यके लिये इस नगरका बड़ा महत्व था। इस खानके पुत्रका नाम भी बरसखान था। उजगेंद (फरगाना) से वणिक्-पथ यासी (जासी) जोत पार हो अरपा और करा-कोइन, अतबास तथा नरिनकी उपत्यकाओंमें होते यहां आता था। नेवाकत्से सुयाब होते हुए भी एक रास्ता यहां पहुंचता था।

अतवास—कराकोइन और अतवास नदियोंके संगमके पास पहाड़में यह नगर अवस्थित था। आजकल इसे कोशोइ-कुरगान कहते हैं। यह फरगाना, बरसखान और पूर्वी तुर्किस्तानकी सीमासे छ दिनके रास्तेपर था। तिब्बती शासित इलाकेका रास्ता तुरुगर्त जोत पार होकर जाता था। अतबास और बरसखानके बीच कोई बस्ती नहीं थी। सप्तनदका दक्षिणी भाग ताकुज-आगुजोंकी लड़ाईमें यागमा लोगोंके हाथोंमें चला गया, जिनके ही हाथमें काशगर भी था। करलुक और यागमा लोगोंकी सीमा नरिन नदी थी।

सुयाब—यह करलुक-भूमिका बड़ा ही महत्वपूर्ण नगर चू-नदीसे उत्तर नेवाकत्से तीन फरसख (१८ मील) पर अवस्थित, आजकलका करावुलक है। यहांका शासक करलुक कगानका भाई होता था, जिसकी पदवी यानाल्शा थी। उसके पास बीस हजार सैनिक थे।

पंजीकत्—सुयाबके रास्तेपर नेवाकत्से एक फरसख (६ मील) पर यह नगर अवस्थित था। यहां आठ हजार करलुक सैनिक रहते थे।

बैकलिग—इसे बैकलीलिग भी कहते हैं। कस्तिक जोतसे उतरकर यहां पहुंचते थे। यहांके शासक की उपाधि वदान-शंगु, दूसरी उपाधि यनल-तैमिना भी थी। इसके पास तीन हजार सैनिक और नगरके भी सात हजार सैनिक रहते थे। बणिक्-सार्थ (कारवां) सुयाबसे बरसखान पन्द्रह और डाक तीन दिनमें पहुंचती थी। कस्तिक द्वारा जानेवाला रास्ता इली पार होते अलाताउ और किज़िलकिया जोत से कराकोल, जहांसे इस्सिकुलके उत्तरी तटसे होकर जिकलोंकी भूमिमें पहुंचता था।

सिकुल—करलुकोंकी भूमिके सीमान्तपर यह बड़ा व्यापारिक नगर था। शायद यह तैमूरके समयका इस्सिकुल नगर हो।

स्रोत-ग्रन्थ :

१. ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्या (व० बरतोल्द, वेर्नी १८१९)
2. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Barthold' 1928)
3. A thousand years of Tatars (Parker)
४. आर्खेआलोगिचेस्किइ ओचेर्क सेवेर्नोइ किर्गिज़िइ (अ० न० बेर्नश्ताम, फ्रुन्ज़े १९४१)

भाग ६

दक्षिणापथ (६७३–९०० ई०)

(आरम्भिक इस्लाम)

अध्याय १

अरब (६७३-८१८ ई०)

§१. पैगम्बर मुहम्मद

छठी सदी के अंत में अरब के लोग बिल्कुल संस्कृति-शून्य नहीं थे। मक्का (बक्का) और मदीना के नगर व्यापारियों और सामन्त-पुजारियों के निवासथे। मक्का में एक पुराना मंदिर था, जिसे काबा कहते थे। मंदिर की प्रधान पूजा-मूर्ति मूर्ति नहीं, बल्कि किसी समय आकाश से गिरे उल्का-पाषाण का टुकड़ा था, जिसे हज्र-अस्वद (कृष्ण-पाषाण) कहा जाता है। इसकी उस समय बड़ी पूजा होती थी। जान पड़ता है, इसकी कीर्ति भारत तक पहुंच चुकी थी, जहां के हिंदू इसे शिव का एक प्रसिद्ध लिंग मानते थे। इसके अतिरिक्त काबा के मंदिर में लात, मनात, सूर्य (शम्श) आदि बहुत सी मूर्त्तियां थीं। हर साल एक बहुत बड़ी यात्रा भरती थी, जिसमें अरब के कोने-कोने के लोग दर्शन-पूजा के लिये आते थे,और इसी समय एक बड़ा व्यापारिक मेला लग जाता था। मुहम्मद जिस कुलमें पैदा हुये, उसे हाशिमी खान्दान कहा जाता था, क्योंकि मुहम्मद के पिता अब्दुला के पिता और दादा अबुल मोतल्लब और परदादा हाशिम थे। हाशिम के पिता का नाम अब्दुल-मनात (मनातदास) था, जिससे स्पष्ट है, कि पांच ही पीढी पहले मुहम्मद के पूर्वज एक काफिर देवता को परमपूज्य मानते थे। हाशिम के भाई का नाम अब्दुल शम्श (सूर्यदास) था।

कुरेश वंश काबा के पंडों में बहुत ऊंचा स्थान रखता था। इसी वंश में ५७० ई० में मुहम्मद का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम अब्दुल्ला और मां का नाम आमना था। अभी मुहम्मद गर्भ ही में थे, कि उनके पिता मर गये। उनकी पर्वरिश का भार दादा अब्दुलमतल्लब के ऊपर पड़ा। मक्का के खानदानी परिवारों की रीति के अनुसार शिशु मुहम्मद को भी पालने के लिये एक बद्दू स्त्री हलीमा को दे दिया गया। मक्का मदीना जैसे शहरों के लोग नागरिक हो गये थे,पर आज की तरह उस समय भी बहुत से अरब कबीले घुमन्तू थे, जिन्हें बद्दू कहा जाता था। घुमन्तूओं के तम्बुओं में पलना शायद पौरुष और हिम्मत बढ़ाने वाली शिक्षा का अंग समझा जाता था। कहा जाता है, मुहम्मद आजन्म अनपढ़ (उम्मी) रहे। यद्यपि इसपर विश्वास कम होता है, क्योंकि वह कितने ही वर्षों तक अपनी भावी पत्नी तथा मक्का की एक बहुत धनी स्त्री खदीजा के कारवां के सरदार होकर दूसरे देशों में व्यापार करने जाते थे। उस समय यद्यपि अरब लोगों का धर्म मूर्तिपूजा था, किन्तु मक्का जैसे शहरों में मूर्तिविरोधी यहूदी और ईसाई भी रहा करते थे, और जिन देशों में व्यापार करने के लिये मुहम्मद को जाना पड़ा, बहां तो इन धर्मों

की प्रधानता थी। मुहम्मद को यहूदी और ईसाई धर्म के विद्वानों के सम्पर्क में आने का मौका मिला और मूर्तिपूजा पर उनकी श्रद्धा नहीं रह गई।

वह खदीजा के पति होकर अब मक्का के एक धनी व्यक्ति हो चुके थे, जब कि ४० वर्ष के हो जाने पर उन्होंने पैगंबर होने का दावा किया। उन संप्रदायों में दीक्षित न होकर भी वह यहूदियों और ईसाइयों के धर्म में श्रद्धा रखते थे। मुहम्मद का उद्देश्य केवल धार्मिक नहीं था। यहूदी पैगंबरों के बारे में भी वह जानते थे, कि धर्म और शासन दोनों को वह अपने हाथ में रखते थे। इसके अतिरिक्त वह अपनी अरब जाति की दुर्दशा से भी खिन्न थे। अरब वीर और परिश्रमी होते हुये भी आपस में खूनी लड़ाइयां लड़ते अपने को तबाह करते रहते थे। अरब के रेगिस्तान में बिखरी हुई शक्ति के महत्व को उन्होंने जल्दी समझ लिया, और यह भी देख लिया कि यहूदी पैगंबरों की तरह ही एक धार्मिक-राजनीतिक व्यवस्था के आधीन एक उन्हें एकत्रित किया जा सकता है। ४० साल की उम्र तक पहुंचते उन्हें मालूम हो गया था, कि यहूदी या ईसाई जैसे पराये धर्म की सहायता से अरबों को एकता के सूत्र में नहीं बांधा जा सकता, न अरबों की राजनीतिक और सामाजिक निर्बलताओं को दूर किया जा सकता। यह प्रधान कारण था, जो कि यहूदी और ईसाई धर्म को प्रमाण मानते हुये भी मुहम्मद ने एक नये धर्म (इस्लाम) का प्रचार किया।

उसकी मुख्य शिक्षा थी मूर्ति-पूजा के खिलाफ जहाद। मक्का के पंडे भला इसे कैसे सहन करते? काबा का मंदिर उनके लिये जीविका का साधन था। उनके देवताओं को बुरा-भला कहकर मुहम्मद उनकी श्रद्धा को ठेस लगा रहे थे। विरोध होने पर भी उन्हें सफलता मिलने लगी। उनके अपने हाशिम वंश के नौजवान उनके साथ चलने के लिये तैयार हुये। मुहम्मद के चचेरे भाई तथा आबूतालिब के पुत्र अली विशेष तौर से उनके अनुरक्त थे। हाशिम के भाई अब्दुश् शम्श के पुत्र उमैया की संतानें भी मुहम्मद का साथ देने के लिये तैयार हुई। उनके खास चचा अब्बास के तीनों पुत्रों ने भी जल्दी ही इस्लाम को मान लिया। हाशिम वंश के अनुकूल होने पर भी मक्का में विरोध इतना बढ़ा, कि मुहम्मद और उनके मुट्ठीभर अनुयायियों को मृत्यु का डर लगने लगा और ६२२ ई० में ५२ वर्ष की उमर में उन्हें चुपके से हिजरत (प्रवास) करके मदीना में शरण लेनी पड़ी। इसके बादका जीवन उनका मदीने से संबंध रखता है।

मदीना का पुराना नाम यस्रिब था, किंतु नबी (पैगंबर) के बस जाने के कारण उसका नाम मदीनतुन्ननबी (पैगंबर का नगर) पड़ा, जिसका ही संक्षेप मदीना है। पैगंबर मुहम्मद की कबर मदीना में है। मक्का के काबा मंदिर की मूर्त्तियों को यद्यपि तोड़-फोड़कर फेंक दिया गया, किंतु वहां के कृष्णपाषाण के साथ अरब लोगों का इतना अधिक पूज्य भाव था, कि उसे तोड़ने या फेंकने की हिम्मत नहीं पड़ी और आज भी मुहम्मद का अनुकरण करते हुये हर एक हाजी मुसलमान उस काले पत्थर को चुम्बन देकर सम्मान प्रकट करता है। मदीना में रहने के अंतिम दस वर्ष धर्म-प्रचार के लिये ही महत्व नहीं रखते, बल्कि इसी समय मुहम्मदने उस राजनीतिक और सामरिक शक्ति का विकास किया, जिसने पौन शताब्दी के भीतर ही सिंधु तट से स्पेन तक, सिर दरिया से नील नदी तक फैले एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर दी। अपने जीवन में ही मुहम्मद अरब के भिन्न-भिन्न कबीलों को इस्लाम के झण्डे के नीचे लाने में सफल हुये थे।[१]

---

[१] दर्शन-दिग्दर्शन पृ० ४७-५४

(नई आर्थिक व्याख्या)[1]

चाहे तिब्बत हो या अरब, प्रायः सभी कबीला-प्रथा रखनेवाली जातियों में पशुपालन, कृषि या वाणिज्य के अतिरिक्त लूट की आमदनी (माले-गनीमत) भी वैध जीविका मानी जाती है। माले-गनीमत को बिल्कुल हराम कर देने का मतलब था, अरबों के पुराने भावपर ही नहीं, उनके आर्थिक आय के साधन पर भी हमला करना। चाहे इस तरह की आय से सभी परिवारोंको सदा फायदा न पहुंचे, किंतु जूये के पासे की भांति कभी अपनी किस्मत के पलटा खाने की आशा को तो वह छोड़ नहीं सकते थे। हजरत मुहम्मदने 'माले-गनीमत' नाम रखते हुये भी उसे छोटी-मोटी लूट से ईरान और रोम के देश-विजय की 'भेंटों' जैसे विस्तृत अर्थ में बदलना चाहा, तो भी मालूम होता है, अरब प्रायद्वीप में यह प्रयत्न कभी सफल नहीं हुआ। वहां के लोगों ने माले-गनीमत का वही पुराना अर्थ माना, इसका ही परिणाम यह था, कि अरब से बाहर अन्-अरबी लोग जहां लूट और छापा मारी के धर्म को हटाकर शांति (इस्लाम) स्थापित करने में बहुत हद तक सफल हुये, वहां अरबी कबीले तेरह सौ वर्ष पहिले के पुराने दस्तूर पर हाल तक कायम रहे। जो भी हो, माले-गनीमत की नई व्याख्या थी—विजय से प्राप्त होनेवाली आमदनी में से $\frac{1}{5}$ सरकारी खजाने (बैतुल-माल) को मिलना चाहिये, और बाकी योद्धाओं में बराबर बांट देना चाहिये। विस्तृत राज्य स्थापन करने की इच्छावाले एक व्यवहार-कुशल दूरदर्शी शासक की यह सूझ थी, जिसने आर्थिक लाभ की इच्छा को जागृत रखकर, पहिले अरबी रेगिस्तान के कठोर जीवन वाले बद्दू तरुणों और पीछे हर मुल्क के इस्लाम लानेवाले समाज में प्रताडित तथा कठोर जीवी लोगों को इस्लामी सेना में भर्ती होने का भारी आर्कषण पैदा किया, और साथ ही बढ़ते हुये बैतुल्-मालने एक बलशाली संगठित सैनिक-नागरिक शासन की बुनियाद रक्खी। माले-गनीमत के बांटने में समानता तथा खुद अरबी कबीले के व्यक्तियों के भीतर भाई-चारे और बराबरी के ख्याल ने इस्लामी "समानता" का नमूना लोगों के सामने रखा।

माले-गनीमत की इस व्याख्याने आर्थिक वितरण के एक नये रूप को पेश किया, जिसने कि अल्लाह के स्वर्गीय इनाम तथा अनन्त जीवन के ख्याल से उत्पन्न होने वाली निर्भीकता से मिलकर दुनिया में वह उथल-पुथल पैदा की, जिसे कि हम इस्लाम का सजीव इतिहास कहते हैं। यह सच है, कि माले-गनीमत की यह व्याख्या कितने ही अंशों में दारयबहु, सिकन्दर, चन्द्रगुप्त मौर्य ही नहीं दूसरे साधारण राजाओं के विजयों में भी मानी जाती थी; किंतु वह उतनी दूर तक न जाती थी। वहां साधारण योद्धाओं में वितरण करते वक्त उतनी समानता का ख्याल नहीं रखा जाता था; और सबसे बढ़कर कमी यह थी, कि विजित जाति के साधारण निःस्व लोगों को उसमें भागीदार बनने का कोई मौका न था। अरबों ने विजित जाति के अधिकांश धनी और प्रभु-वर्ग को जहां पामाल किया, वहां अपनी शरण में आनेवालों—खासकर पीड़ित वर्ग—को विजय-लाभ में साझीदार बनाने का रास्ता बिल्कुल खुला रक्खा। स्मरण रखना चाहिये, इस्लाम का जिससे मुकाबिला था, वह सामन्तों-पुरोहितों का शासन था, जो सामन्तशाही शोषण और दासता के आर्थिक ढांचे पर आश्रित था। यह सही है, कि इस्लाम ने इस मौलिक आर्थिक ढांचे को बदलना

---

[1] वहीं पृ० ५१

अपना उद्देश्य कभी नहीं माना, तो भी उसके मुकाबिले में अरब में अभ्यस्त कबीलाशाही भ्रातृत्व और समानता को अन्-अरबों के साथ भी जरूर इस्तेमाल किया, इसीसे उसने अल्पसंख्यक शासक वर्ग के नीचे की साधारण जनता के कितने ही भाग को आकृष्ट और मुक्त करने में सफलता पाई। यद्यपि इस्लाम ने कबीले के पिछड़े हुये सामाजिक ढांचे से यह बात ली थी, किंतु परिणामतः उसने एक प्रगतिशील शक्ति का काम किया; और सडांद फैलाने वाले बहुत से सामन्त परिवारों और उनके स्वार्थों को नष्टकर, हर जगह नई शक्तियों को सतह पर आने का मौका दिया। यह ठीक है कि यह शक्तियां भी आगे उसी "रफ्तार-बेढंगी" को अख्तियार करनेवाली थीं। पर दासों-दासियों को मालिक की सम्पत्ति तथा युद्ध की लूट को उचित माल बताने के लिये अकेले इस्लाम को दोष नहीं दिया जा सकता, उस वक्त का सारा सभ्य संसार—चीन, भारत, ईरान, रोम—इसे अनुचित नहीं समझता था।

§२. आरंभिक खलीफा

मक्का के निवास तक मुहम्मद एक धार्मिक प्रचारक या सुधारक मात्र थे, किंतु मदीना जाने पर उनको अपने अनुयायियों के लिये आर्थिक, सामाजिक व्यवस्थापक एवं सैनिक नेता भी बनना पड़ा, इसका ही यह परिणाम हुआ, कि उनकी मृत्यु के समय (६२२ ई०) पश्चिमी अरब के कितने ही प्रमुख कबीलों ने इस्लाम को स्वीकार किया, तथा अपनी निरंकुशता को कम करके एक संगठन में बंधना चाहा। उस समय तक सारे अरबी-भाषी लोगों में इस्लाम घर कर चुका था।

हजरत मुहम्मद स्वयं राजतंत्र के विरुद्ध न थे। ईरान और रोम के शाहंशाहों की प्रसिद्धि उनके कानों तक ही नहीं पहुंची थी, बल्कि व्यापार के सिलसिले में उनके राज्यों में वह जा भी चुके थे। मुहम्मद ने जर्थुस्ती ईरानी शाह और ईसाई रोमन कैसर को इस्लाम लाने के लिये दावत दी, लेकिन वह अरब के रेगिस्तान के संदेश को अवहेलना छोड़ और दूसरी दृष्टि से देख ही कैसे सकते थे? अरब में उस समय कबीलाशाही सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था चल रही थी, जिससे सादगी और जनतंत्रता अरबों के नस-नस में इतनी व्याप्ती थी, कि मुहम्मद भी उसके आकर्षण को मानने के लिये मजबूर थे। एक देश (पश्चिमी अरब, हेजाज) के शासक हो जाने के बाद भी मुहम्मद का जीवन बहुत ही सरल था। वस्तुतः मुहम्मद ने अरब के राजनीतिक विकास में यही काम किया, कि अरबीभाषी छोटे-छोटे कबीलों को विशृंखलित और संघर्ष-मय जीवन से उठाकर एक बड़े कबीले के रूप में परिणत कर दिया। लेकिन, यह संभव नहीं था, कि अरब से बाहर पैर रखने के बाद वहां की भिन्न-भिन्न भाषाओं और जातियों के लोगों को एक महान् कबीले के रूप में परिणत किया जाय, अथवा सामन्तशाही युग में बहुत आगे बढ़ गये लोगों को फिर से कबीलाशाही (जन-व्यवस्था) में लौटाया जाय। यह कैसे हो सकता था, कि सिंध से स्पेन तक फैले विशाल साम्राज्य पर उसके शासक बनी-उमैया कबीलाशाही शासन द्वारा राज्य करते?

पैगंबर के मरने के बाद ही झगड़ा शुरू हो गया। हाशिम खानदान के लोग पैगंबर के उत्तराधिकारी या खलीफा बनना अपना अधिकार समझते थे, लेकिन इस्लाम में तो केवल हाशिमी (अली आदि) लोग ही नहीं थे, इसलिये जिन चार खलीफों (पैगंबर के उत्तराधिकारियों) के

समय प्राचीन इस्लाम अपने कबीलाशाही जनतांत्रिक रूप को थोड़ा बहुत कायम रख सका, उनमें प्रथम अबूबकर अ-हाशिमी थे।

१. अबू-बकर (६३२-६४२ ई०)

मुहम्मद की कई बीबियों में से एक के यह बाप और अधिक वृद्ध भी थे। इन्हीं को मुसल्मानों के बहुमत ने खलीफा चुना। अबू-बकर दस साल तक शासन करते रहे। इन्हींके समय खालिद के नेतृत्व में अरब-सेना ने रोम को हराकर दमिश्क ले लिया और पहिली बार अरब के रेगिस्तानी लोगों को रोम जैसे समृद्ध और अत्यन्त संस्कृत राज्य के एक भाग पर शासन करने का मौका मिला। तभी से कबीलाशाही सादगी के स्थान पर विलासिता का आरंभ हुआ। अबू-बकर के जमाने में सिरिया (दमिश्क) ही नहीं, बल्कि फिलस्तीन भी अरबों के हाथ में आ गया। इसी काल (६३९ ई०) में ईरान के साथ नहाबंद के युद्ध में मुठभेड़ हुई, जिसमें ईरान की जबर्दस्त हार हुई। यज्दगर्द iii सासानी वंश का अंतिम शाह उसी तरह अरबी सेना के सामने से भागता फिरा, जिस तरह हजार वर्ष पहले दारयवहु iii अलिकसुन्दर की सेना से भागता रहा। वह सीस्तान गया, वहां से खुरासान की ओर भागा, फिर मेर्व में शरण लेनी चाही। मेर्व तुर्कों का था। खाकान ने सुना कि सासानी शाह उसके राज्यकी ओर भाग आया है, तो वह स्वयं उसे पकड़ने या शरणमें लेनेके लिये आगे दौड़ा। शायद उसे भी अरबोंका भय होगया। यज्दगर्दने मेर्वके बाहर एक पन-चक्की घरमें छिपकर जान बचानी चाही, लेकिन चक्कीवालेने उसके पास धन-जेवर देखा, उसके मुंहमें पानी भर आया और उसने उसे मारकर पनचक्कीकी धारमें फेंक दिया। उस वक्त मेर्वके लोग आजकी तरह तुर्क नहीं, बल्कि धर्म और भाषा दोनोंसे ईरानी थे, जो तुर्कोंके राज्यमें रहते भी अपनेको सासानियोंका सगा मानते थे। जब उन्हें चक्कीवालेके इस विश्वासघातका पता लगा, तो वह बिगड़ उठे और उन्होंने उसकी बोटी-बोटी नोंच कर मार डाला। यज्दगर्दके शरीरकी मोमियाई बनाकर इस्तख्र भेजा, जहां जरथुस्ती प्रथाके मुताबिक उसे दफनाया गया। नहावंद और उसके बादकी दो एक झड़पोंसे ही ईरानकी कमर टूट गई। वस्तुतः ईरानका सामाजिक ढांचा इतना निर्बल और राजनीतिक ढांचा इतना नीच स्वार्थपूर्ण था, कि वह जीनेपर राज्य और मरनेपर बहिश्तपरपूर्ण विश्वास रखनेवाले अरब-योद्धाओंका मुकाबिला नहीं कर सकता था। भारतकी तरह वहांपर भी मुट्ठी भर पुरोहित और सामन्त सर्वेसर्वा थे, दूसरे लोग नीच समझे जाते थे और उन्हें दासता या अर्धदासताका जीवन बिताना पड़ता था। दासों और अर्धदासोंके लिये इस्लामकी सामाजिक समता बहुत ही आकर्षक थी। सामन्त इतने विलासी थे, कि उनमें योद्धाकी हिम्मत नहीं रह गई थी, अथवा आपसी फूटके मारे संगठित होकर अरबोंका मुकाबिला नहीं कर सकते थे। अन्तमें उन्हें अरबोंके सामने हार स्वीकार करनी पड़ी, जिन्हें ईरानके लोग मानते थे, कि सभ्यता और संस्कृतिमें हमारे सामने गिरगिटखोर अरब निरे जंगली हैं।

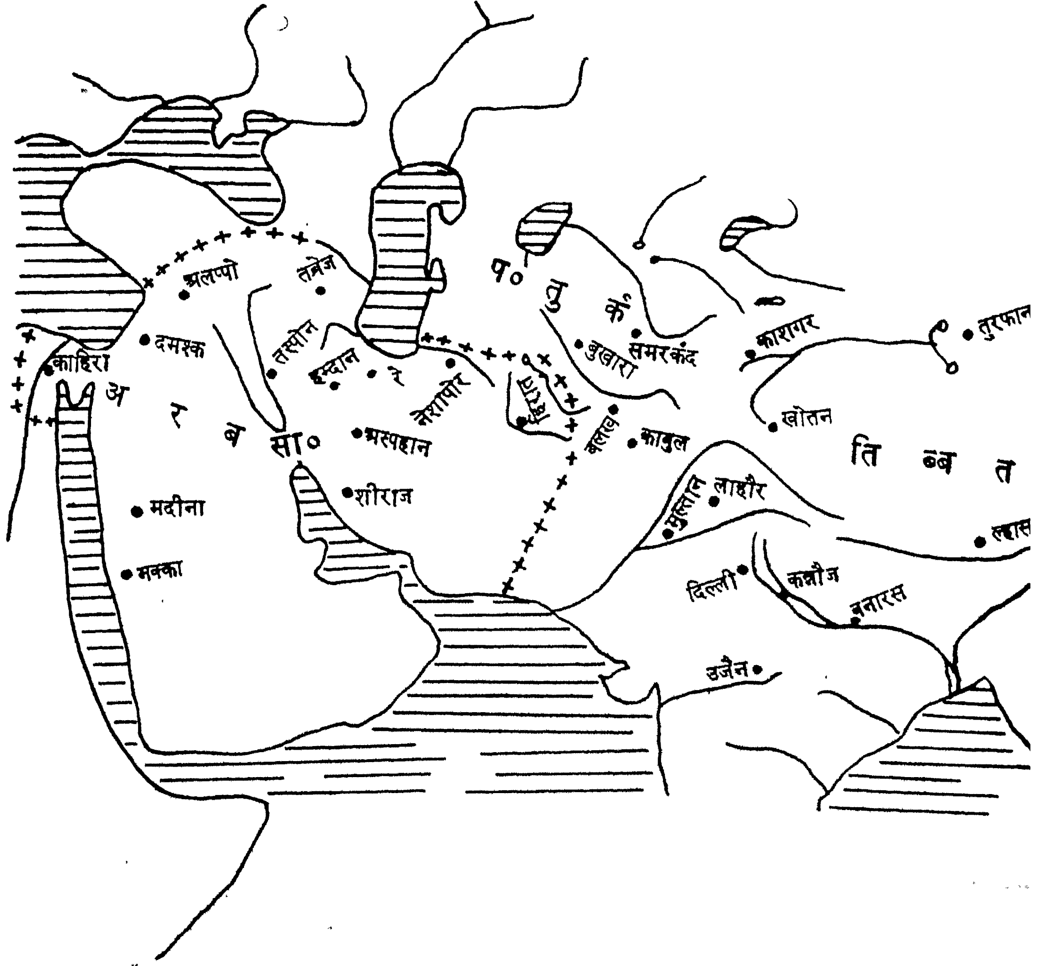
२. उमर[1] (६४२-६४४ ई०)

उमर इस्लामके दूसरे खलीफा थे। इनकी भी लड़की पैगंबरको ब्याही थी।

---

[1]Heart of Asia (E. D. Ross), दर्शनदिग्दर्शन पृ० ५४, ५५

पैगंबरके धर्म और शासनको आगे बढ़ानेमें इनका काफी हाथ था। इसीलिये पैगंबरकी अत्यन्त प्रिय पुत्री फातिमाके पति तथा चचेरे भाई अली को फिर वंचित कर उमरको खलीफा बनाया गया। अब इस्लामका शुद्ध धार्मिक रूप लुप्त हो चुका था, और वह विश्व-विजयिनी एक जबर्दस्त सैनिक संगठनका रूप ले चुका था। हरेक अरब को पहले भी लड़नेके लिये तैयार रहना पड़ता था। एक कबीलेके किसी आदमीके मारे जानेपर दोनों कबीलोंमें बदला



२६. अरबसाम्राज्य (६२२ ई०)

लेनेकी आग भड़कती पीढ़ियों तक चली जाती। इस्लामने उसी मरने-मारनेकी भावनाको एक नई धारामें प्रवाहित कर दिया था, जिसमें अरबोंका हर एक कबीला दिल खोलकर भाग ले रहा था। यह बतला चुके हैं, कि दुनियाके और घुमन्तू कबीलोंकी भांति अरब कबीले भी लूटना अपना धर्मसिद्ध अधिकार मानते थे, और यह उनकी जीविकाका साधन भी था।

इस्लामिक धर्म-विजयके नामसे वह और भी नफेमें थे, क्योंकि अब उन्हें बड़े-बड़े धनी मुल्कोंको लूटनेका मौका मिलता था——उन्हें धन मिलता, युद्धकी वंदिनी स्त्रियां दासीके रूपमें मिलतीं और गुलाम तो इतने मिलते थे, कि राजधानी मदीनामें जिधर देखो उधर ईरानी, तुर्क या रोमन गुलाम बड़ी भारी संख्यामें दिखाई पड़ते थे। उनमेंसे बहुतसे मुसलमान भी हो जाते थे। अब इस्लाम पैगंबरके जमानेका इस्लाम नहीं था, जब कि इस्लाम स्वीकार करते ही आदमी सामाजिक समानताका अधिकारी माना जाता था। यदि अरब योद्धा लड़ाईमें जीते दास-दासियों से कलमा पढ़ लेने मात्रसे हाथ धो बैठते, तो भला वह गाजी और जहादी होकर प्राणोंको खतरेमें डालना क्यों पसंद करते? जिन जातियोंसे गुलाम आते थे, वह अरबोंसे बहुत अधिक सभ्य थीं। पद-पदपर अपमानित होना उन्हें असह्य था, लेकिन तलवारके डरके मारे कुछ बोल नहीं सकती थी। उमर दो ही साल तक शासक रहे। इसी २४ महीनेके शासनकी बहुत सी कहानियां सुनी जाती हैं, जिनसे उमरके सादा जीवन और न्याय-प्रियताका परिचय मिलता है। लेकिन, वह सब केवल अरबोंके लिये था, विदेशी या विजातीय मुसलमान उसके अधिकारी नहीं थे। जिन जातियों और परिवारोंके साथ अरब जहादियोंने घोर अत्याचार किया था, उनके खूनसे हाथ रंगा था; उनके आदमी भला कैसे बदला लिये बिना रह सकते थे। एक ईरानी दासने अपने परिवार या अपनी जातिपर किये गए अत्याचारका बदला लेनेके लिये उमरको मार डाला। इसकी बड़ी घोर प्रतिक्रिया हुई। अरबोंने इसका बदला सारी ईरानी जातिसे लेना चाहा, लेकिन सारी जातिको तो मारा नहीं जा सकता था। हां, उन्होंने सारे ईरानसे जर्थुस्ती धर्मको मिटानेका संकल्प कर लिया, और उसमें बहुत दूर तक सफलता भी पाई। यह वही समय था, जब कि स्वेन्-चाङ भारतकी यात्रा करके अभी अभी चीन लौटा था, और दस ही साल पहले अपनी यात्रामें मध्य-एसियाकी सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक समृद्धिको अपनी आंखों देख चुका था।

३. उस्मान[१] (६४४-६५२ ई०)

ईरानी दास द्वारा मारे गये द्वितीय खलीफाका बदला लेना नये खलीफाके लिये जरूरी था। उसने ऐसे सेनापतिको राज्यपाल बनानेका इनाम घोषित किया, जो कि खुरासान (पूर्वी ईरान) में घुसनेमें सफल हो। उस्मानके समय सिरिया (भूतपूर्व रोमन-प्रदेश) का शासक बनाकर उमैया-वंशी सरदार म्वाविया दमिश्क भेजा गया। दमिश्क रोमन क्षत्रपकी राजधानी थी। वहांका राज-प्रबंध रोमक कानूनके अनुसार होता था। म्वावियाके सामने प्रश्न था—देशका शासन कैसे किया जाय? उसने देखा, वहांपर कबीलोकी राज-व्यवस्था लागू नहीं की जा सकती, सामन्तशाहीसे कबीलाशाहीकी ओर लौटा नहीं जा सकता। यदि वह ऐसा करनेके लिये तलवारका सहारा लेता, तो भी सारे सामाजिक और आर्थिक ढांचेका बदलना संभव नहीं था। म्वावियाकी व्यावहारिक बुद्धिने समझ लिया, कि ऐसा करनेके लिये सिरियाके लोगोंको पहले बद्दू या अर्ध-बद्दू के रूपमें परिणत करना होगा, जो असंभव है। उसने रोमन सामन्ती ढांचेको रहने दिया,

---

[१] वही

और अरबी हकूमतको मनवा तथा अधिकसे अधिक आदमियोंको मुसलमान बना अपने शासनको मजबूत करनेका प्रयत्न किया। म्वावियाने रोमक राज्य-प्रणालीको स्वीकार किया। इस्लाम और कबीलाशाही सादा जीवनको जो लोग एक समझते थे, उन्हें यह बुरा लगा। जिन्होंने पैगंबरके सादे जीवन, कबीलोंकी विलास-शून्य, भ्रातृत्वपूर्ण समानताको देखा था, उन्हें म्वाविया का शाही दबदबा और शान-शौकत बुरी लगी। यदि गाढ़ेकी चादर ओढ़े खजूरके नीच सोन वाला अथवा दासको ऊंटपर चढ़ाये विजित येरुशिलममें दाखिल होनेवाला उमर अब भी खलीफा होता, तो म्वाविया ऐसा न कर सकता। समय बदल चुका था। पैगंबरके दामाद और परमविश्वासी अनुयायी अलीको जब यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने इसकी सख्त निन्दा की। वह चाहते थे : हमारी सल्तनत चाहे रोमपर हो या ईरानपर, वह अरबी कबीलोंकी सादगी और समानताको कभी न छोड़ें। अलीकी आवाज अरण्यरोदन थी। सफल शासक म्वावियापर खलीफाको नाराज होनेकी जरूरत न थी। हां, म्वाविया और अलीमें स्थायी वैमनस्य हो गया।

६३९ ई० में नहावंदके युद्धमें ईरानियोंकी पराजय हुई थी, किंतु १३ वर्षों (६५२ई०) तक ईरानियोंका विद्रोह शांत नहीं हो सका। उसमानके शासनमें खुरासान ही नहीं, बल्कि तुर्कोंके राज्यपरभी अरबोंने प्रहार किया। ६५२ई० में अब्दुल्ला अमीरपुत्रने ख्वारेज्म को हराया। इसी समय बलखके लोगोंने अधीनता स्वीकार की। उसमानके शासनके समयसे इस्लामिक आदर्शवाद का रहासहा रूपभी खतम होने लगा। उसमानने अपने परिवारके धन-वैभवको खूब बढाया, जिससे अरबों में भीतर ही भीतर वैमनस्य होने लगा, जिसका परिणाम हुआ उसमान का कतल।

४. अली[1] (६५२-६६१ ई०)

२४ वर्षोंकी प्रतीक्षाके बाद उस आदमीको खलीफा बननेका मौका मिला, जो शिया मुसलमानोंके अनुसार मुहम्मदका एकमात्र उत्तराधिकारी था। अली अपने गुणोंके कारण पैगम्बर के बहुत प्रिय थे। पैगम्बरकी कोई पुत्र-संतान नहीं थी। उनकी प्रिय पुत्री फातिमाके पति अली तथा नाती हसन-हुसेन पैगम्बरके बहुतही प्रेमपात्र थे, इसमें संदेह नहीं। अलीको बहुत देर करके पद मिला था, किंतु दमिश्का राज्यपाल म्वाविया उन्हें फूटीं आंखोंभी नहीं देखना चाहता था। वह समझता था, अली हमें शाहंशाही या कैसरी शानके साथ चैनसे नहीं रहने देगा। अली चाहे कितनाही म्वावियाको न पसंद करते हों, किंतु म्वावियाका खान्दान बनी-उमैया एक शक्तिशाली अरब वंश था। म्वावियाके ऊपर प्रहार करनेका मतलब था, बनी-उमैयाको दुश्मन बनाकर गृह-युद्ध आरंभ करना। अलीका सारा समय म्वावियाके विरोधमें ही बीता और उसीमें उन्हें बलि चढना पडा। यहीं नहीं, म्वावियाके षड्यंत्रमें उनके बडे बेटे हसनको विष खाकर मरना पडा, और म्वावियाके पुत्र यज़ीदने अलीके दूसरे पुत्र हुसेन को करबलामें तडपा-तडपा कर मारा। करबलामें हुसेन और उनके ६९ साथियोंकी मौत बडी दर्दनाक घटना है। इसने इस्लामके भीतरी फूटको सदाके लिये स्थायी बना दिया। इस्लामके पैगम्बरके प्रिय नातीका कटा हुआ शिर जब यज़ीदके सामने रखा गया, तो उसने उसको छडीसे ठोकर मारकर हिलाया। उस समय एक

[1] दर्शनदिग्दर्शन पृष्ठ ५७-५९

अरब बूढ़ेके मुंहसे दर्दभरी आवाज निकली—"अरे, धीरे-धीरे, यह पैगम्बर का नाती है। अल्लाहकी कसम, मैंने खुद इन्हीं ओठोंको हज़रत के मुंहसे चुंबित होते देखा था।" लेकिन अरबोंके लिये अब इस्लाम या उसका पैगंम्बर विश्व-विजयके साधन मात्र रह गये थे। उन्हें पैगम्बर और उनके नातीसे क्या लेना-देना था? अच्छा यही हुआ, कि अलीको अपने दोनों पुत्रोंकी मृत्यु अपनी आंखों देखनेका दुर्भाग्य नहीं मिला।

अली लड़ते हुए कहीं मारे गये थे। कौनसी जगह मारे गये, इसके दावेदार बहुतसे स्थान हैं। खुरासानमें तुर्बते-हैदरी आज भी एक अच्छा कस्बा है, जिसका अर्थ (अली) हैदर की कब्र। अफगानिस्तानके उत्तरी सूबे तुर्किस्तान में मजार-शरीफ एक शहर है, जिसका अर्थ है पवित्र-कब्र। इसके बारेमें भी बतलाया जाता है, कि यह हजरत अलीकी कब्र है, और इसीलिये उसकी बहुत पूजा होती है। दर्रा-खैबरमें भी अली-मस्जिद है, जिसके बारेमें बतलाया जाता है, कि अलीने काफिरोंके साथ युद्ध करते समय वहां आकर स्वयं नमाज पढ़ी थी। अलीके समय अरब-राज्यको कुछ बढ़नेका मौका जरूर मिला, किंतु वह सफलता पहलेके तीन खलीफों तथा बनी-उमैयाके शासनके सामने अधिक नहीं थी। हां, अलीके अंतिम समयतक मध्य-एसियाके भीतर अरबोंके पैर पहुंच चुके थे। ६५० से ६५५ ई० तक लगातार समरकंदसे दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित मैमुर्ग प्रदेशको अरब लूट-पाटकर बर्बाद करते रहे, यह चीनी अभिलेखोंसे मालूम होता है।

स्रोत-ग्रन्थ:

1. Heart of Asia (E. D. Ross. 1999)
2. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Bartold)
3. History of Bokhara (A. Vambery, London 1873)

४. इस्कुस्स्त्वो स्रेद्नैइ आजिइ (ब.व. वेइमार्न, मास्को १९४०)

५. आर्खितेक्तुनिये पाम्यात्निकि तुर्कमेनिइ (मास्को १८३९)

६. दर्शन दिग्दर्शन (राहुल सांकृत्यायन, प्रयाग १९४७)

७. इस्लामकी रूपरेखा (")

अध्याय २

उमैया वंश (६६१-७४६ ई०)

अलीके मरनेके बाद उनके बड़े बेटे हसनके उत्तराधिकारी बननेकी बड़ी संभावना थी। राज्यपाल म्वाविया मर्दानेमें जनप्रिय नहीं था। हसन और हुसैन दोनोंकी यज्दगर्द (सासानी शाहंशाह) की दो राजकुमारियां व्याही गई थीं, जिससे शाही तड़क-भड़क पैगम्बर खान्दानके

२७. अरब (उमैया) साम्राज्य (७१२ ई०)

भीतर भी दाखिल होनेसे बाज नहीं आ सकती थी। पैगम्बरका नाती होने के कारण लोगों का अनुराग हसन के प्रति अधिक था। म्वाविया हसनकी बीबीसे जहर दिलवा उन्हें मरवा कर स्वयं खलीफा बन बैठा

१. खलीफा म्वाविया मेरवान I (६६१-६७० ई०)

अलीके बाद खलीफाका पद म्वावियाने लेकर अपने उमैया वंशकी नींव रक्खी। इस वंशमें निम्न १३ खलीफा हुए:—

१.	म्वाविया (i)	६६१-६८० ई०
२.	यज़ीद (i)	६८०-६८३ ई०
३.	म्वाविया (ii)	६८३
४.	अब्दुल मलिक	६८३-७०५ ई०
५.	वलीद (i)	७०५-८१४ ई०
६.	सुलैमान	७१४-७१७ ई०
७.	उमर (ii)	७१७-७२० ई०
८.	यज़ीद (ii)	७१९-७२३ ई०
९.	हिशाम	७२३-७४२ ई०
१०.	वलीद (ii)	७४२
११.	यज़ीद (iii)	
१२.	इब्राहीम	
१३.	मेर्वान (ii)	७४९ ई०

उमैया राजवंशके समय खुरासान और सोग्दके निम्न वली (राज्यपाल) थे :—

१.	अब्दुल्ला अमीर-पुत्र	६६१ ई०
२.	क़ैस हैसम-पुत्र	६६२ ई०
३.	अब्दुल्ला खाजिम-पुत्र	६६३ ई०
४.	ज़ियाद	६६५ ई०
५.	हकम अमीर-पुत्र	६६७ ई०
६.	रबी जियाद-पुत्र हारिसी	६७० ई०
७.	खुलैद अब्दुल्ला-पुत्र हनफ़ी	६७३ ई०
८.	सईद उस्मान-पुत्र	६७६ ई०
९.	सल्म ज़ियाद-पुत्र	६८१-६८३ ई०
१०.	अब्दुल्ला ज़ियाद-पुत्र	६८३-६९१ ई०
	(मूसा अब्दुल्ला-पुत्र)	६८९-७०४ ई०
११.	मुहल्लब	७०० ई०
१२.	उमैया अब्दुल्ला-पुत्र खालिद-पुत्र	६९६ ई०
१३.	मुहल्लब	७०० ई०
१४.	यज़ीद मुहल्लब-पुत्र	७०१ ई०
१५.	मुफज्ज़ल मुहल्लब-भ्रात	७०३ ई०
१६.	कुतेब मुस्लिम-पुत्र वाहिली	७०५-७१४ ई०
१७.	जर्राह अब्दुल्ला-पुत्र	७१७ ई०
१८.	अब्दुर्रहमान	
१९.	सईद अब्दुल्-अजीज-पुत्र	७२० ई०
२०.	सईद अम्र-पुत्र हरसी	७२१ ई०
२१.	असद अब्दुल्ला-पुत्र कसरी	७२५-७२७ ई०

२२. अशरश् अब्दुल्ला-पुत्र ७२७-७२९ ई०
२३. जुनैद अब्दुर्रहमान-पुत्र ७२९-७३३ ई०
२४. आसिम् अब्दुल्ला-पुत्र ७३४-७३५ ई०
असद अब्दुल्ला-पुत्र (पुनः) ७३५-७३७ ई०
२५. नस्र सैयार-पुत्र ७३७-७४८ ई०

तुलनात्मक अरब वंश

	भारत	चीन	अरब	उत्तरापथ
		(थाङ)		(पश्चिमी तुर्क)
६४०	अर्जुन ६४८-	ताइ-चुंङ ६२७-५०		निशि दुलू ६५१
			(उमैया)	
		काउ-चुङ ६५०-८४		इबी शबोलो ६५१-
६६०			म्वाविया I ६६१-८०	
६८०			यज़ीद i ६८०-८३	
		वूहु (त्वी) ६८४-७०५		
			अब्दुलमलिक ६८३-७०५	
				अशिनाशिन -७०८
७००			वलीद i ७०५	सोगे ७०८-९
				सुलू ७०९-३८
		स्वान् चुङ ७१३-५६	सुलेमान ७१४-१७	
			यज़ीद II ७१९-२३	(उइगुर)
७२०				
	यशोवर्मा ७२५-५२		हिशाम ७२३-४७	बुख्तेवर ७१९
७४०			(अब्बासिया)	कुतुलबिगा -७५६
		सुचुङ ७५६-६३	सफ्फाह ७५०-५४	मोयुनचुर ७५६-६०
			मंसूर ७५४-७५	

	भारत	चीन	अरब	उत्तरापथ
७६०	वज्रायुध ७७०-	ताइचुङ ७६३-८०		
			मेंहदी ७७५-८३	दुर्मोगो ७७८-८९
७८०	(प्रतिहार)	तेइङ्चुङ ७८०-८०५	हादी ७८३-८६	
	वत्सराज		हारून ७८६-८०९	
	७८३-८१५			आचो -७९५
				कुतुलुक ७९५-८०८
८००				
		त्यान्चुङ ८०६-२१		
			अमीन ८०९-१३	काउसङ ८०८-२१
	नागभट्ट ८१५-		मामून ८१३-३३	
८२०		मू-चुङ ८२१-२५		

जिस समय म्वाविया इस्लामका खलीफा बना, उस समय अब भी पूर्वी ईरानपर अरबोंका अधिकार स्थिर नहीं हो पाया था। अब्दुल्ला अमीर-पुत्रने ६६२ ई० में खुरासानपर सफल अभियान किया। उसी समय उसको वहांका वली (राज्यपाल) बना दिया गया। लूट-मार करना आसान था, क्योंके ईरानके विजयके बाद खुरासान, बलख, मेर्व सभी जगह अरबोंकी धाक जम चुकी थी, लेकिन स्थायी सफलता न होनेसे वली (गवर्नर) बराबर बदलते रहते थे। अमीर म्वावियाके शासन-कालमें निम्न वली मध्य-एसिया भेजे गये—

(१) **अब्दुल्ला अमीर-पुत्र** (६६१ ई०)—खुरासान-विजेता।

(२) **कैस हैसान-पुत्र** (६६२ ई०)—

(३) **अब्दुल्ला खाजिर-पुत्र** (६६३ ई०)—

(४) **जियाद** (६६५ ई०)—इसे पिछले साल खलीफाने अपना भाई घोषित किया था। यह दो साल तक वली रहा।

(५) **हाकिम अमीर-पुत्र** (६६७ ई०)—खुरासानका वली (राज्यपाल) होकर आनेके बाद इसने तुखारिस्तानकी ओर अभियान किये और वहां साथ ही बलखसे दक्षिण-पूर्व हिंदूकुश तकका प्रदेश जीत लिया। यह पहला अरब सेनापति था, जिसने वक्षुको पार किया, यद्यपि वक्षु-पारके तुखारिस्तानपर वह स्थायी अधिकार कायम नहीं कर सका। ६७० ई० में मेर्वमें इसकी मौत हुई।

(६) **खुलैद अब्दुल्ला-पुत्र** (६७० ई०)—अल्हनफ़ीने नये वलीके आने तक शासन संभाला।

(७) **रबी जियाद पुत्र अल्हारिसी** (६७० ई०)—यह नया राज्यपाल पहले वली ज़ियादका सहायक था। बीसियों सालके शासनके बाद अब स्थिति अनुकूल हो गई थी, और कितने ही अरब-पारिवार आकर खुरासानमें बस गये। यह आवश्यक भी था, क्योंकि **इस**

प्रकार खलीफाकी सेनाको पास ही में सैनिक भी तैयार मिलते थे। अरब योद्धा, नये जीते हुए देशकी सुख-सपत्तिको देखकर अरबके रेगिस्तानसे यहांके जीवनको अधिक पसंद करते थे। रबीने बलखमें लगातार होते रहते विद्रोहोंको बिना युद्ध ही दबानेमें सफलता पाई। दूसरे विजेताओंसे अरब घुमन्तू विजेताओंको कितने ही सुभीते भी थे। जहां अरब तलवार शत्रुकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करती, वहां पराजितोंको विजेताओंके साथ एकता-बद्ध करनेका काम इस्लाम करता। सबसे पहले ईरानके दलित और उत्पीड़ित निम्नवर्गका इस्लामकी ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था, क्योंकि उनका जातीय (जर्थुस्ती) धर्म हिंदू-धर्मकी तरह ही छुआछूत और जातपांतका पक्षपाती था, जिसके कारण मुसलमानोंके संपर्क मात्रसे आदमी जातिच्युत हो जाता, और उसका वैयक्तिक तथा सामाजिक स्वार्थ अरब विजेताओंसे मिल जाता। यद्यपि अरब मुसलमान अन्-अरब मुसलमानोंको समानताका अधिकार नहीं दे सकते थे, किंतु काफिरोंके मुकाबिलेमें मोमिनका बहुत ऊंचा स्थान था, वह छोटी जातका होने पर भी बड़ीसे बड़ी जातके ईरानीसे ऊपर था। जिस समय अरब मध्यएसियापर विजय प्राप्त कर रहे थे, उस समय यहां गांवका स्वामी देहकान होता था। भारतवर्षमें देहकान किसान को कहते हैं, लेकिन मूल देहकान शब्दका वही अर्थ और दर्जा था, जो कि प्राचीन हिंदू कालमें ग्रामणीका। देहकान देह (ग्राम) का राजा था। राजधानीके पासवाले प्रदेशोंमें देहकानोंकी निरंकुशता पर शाह और पुरोहित (मोविद)-वर्गका अंकुश भी होता था, किंतु दूरके प्रदेशोंमें वहांके क्षत्रपका दबाव देहकानोंके ऊपर इतना नहीं था, कि उसे ग्रामीणोंपर मनमानी करनेसे रोका जा सके। देहकान छोटे जमींदार नहीं, बल्कि तालुकदार या छोटे सामन्तकी हैसियत रखते थे। शाही अंगरक्षक इन्हींके पुत्रोंमेंसे लिये जाते थे। शाही नौकर (शाकिर या चाकिर) भी इनमेंसे होते थे। बुखाराके खातूनके शरीर-रक्षकोंके बारेमें हम बतला चुके हैं, कि वह देहकानोंके लड़के होते थे। ईरानमें शाही धर्म (राजधर्म) जर्थुस्ती दीन था। किंतु खुरासान आदि जैसे दूरके प्रदेशोंमें कोई राजधर्म नहीं था, क्योंकि वहां बौद्ध, नेस्तोरी (ईसाई) और यहूदी धर्मके लोग भी काफी संख्यामें बसते थे। जर्थुस्ती धर्मसे निकले हुए मज्दकी जैसे धर्मके माननेवाले अत्याचर से बचने के लिये इन प्रदेशोंमें आकर बस गये थे; जिसके कारण भी जर्थुस्ती धर्मकी यहां उतनी धाक नहीं थी। मावरा-उन्-नह्र (वक्षु और सिरदरियाके बीचके प्रदेश, अन्तर्वेद) में बल्कि जर्थुस्ती धर्मसे बौद्ध और नेस्तोरी धर्मके अनुयायी कम नहीं थे, तो भी ईरानी जातिका धर्म होनेके कारण जर्थुस्ती धर्म अधिक प्रभाव रखता था (स्वेन्-चाङके समरकंदमें रहते समय जर्थुस्तियोंने बौद्धोंके एक विहारको जला दिया था)।

(अरब-विजयके समय[१])

सेठ—मध्य-एसियामें चीनके व्यापारके कारण सेठोंका प्रभावशाली वर्ग व्यापारिक नगरोंमें रहता था। यह मामूली सेठ नहीं थे, बल्कि इनके पास बहुत भारी जागीरें (जमीं-

[१] Turkistan Down to the Mongol Invasion (K. Bartold);
History of Bukhara (A. Vambery)

दारियां) होतीं, रहनेको भी अपने गढ़ होते थे। समाजमें इनका स्थान देहकानोंसे बहुत कम अन्तर रखता था।

मध्य-एसियामें सोग्द, फर्गाना और तुखारिस्तान वैसे तो नगरों और ग्रामोंके देश थे, लेकिन अपने उत्तरी घुमन्तू लड़ाकू जातियोंसे बराबर संघर्ष रहनेके कारण यहांके लोग वीरताका मूल्य समझते थे। समरकंदमें प्रतिवर्ष एक चौकीपर भोजन और एक मटकी अंगूरी शराब रक्खी जाती थी। यह हमारे यहांके पानके बीड़ा उठानेकी रस्म जैसी थी। जो आदमी उस भोजन और शराबकी ओर हाथ बढ़ाना चाहता, वह मानो पिछले सालके निर्वाचित वीर (पहलवान)को लड़नेके लिये ललकारता। दोनों वीरोंमें लड़ाई होती। जो अपने विरोधीको मार देता, वह देशका सबसे बड़ा वीर माना जाता। साल भर बाद फिर इसी रीतिके अनुसार वीर-परीक्षा होती।

देशवासियों में जहां इस प्रकार वीरोंका सम्मान किया जाता, वहां यहांके तुर्क शासकों की वीरता के बारेमें अरब भी संदेह नहीं कर सकते थे। ८६९ ई० में अरब इतिहासकार जहीज़[1]ने लिखा था "कला-कौशलमें चीनी, हिक्मत (दर्शन) में यूनानी, शासनमें सासानी और युद्धमें तुर्क" बढे हैं।

मध्य-एसियाके तत्कालीन शासक और सरदार तुर्क या अतुर्क हमारे राजपूतोंकी तरह मृत्युसे डरते नहीं थे। युद्ध उनके लिये खेल था, किंतु उनमें एकता नहीं थी। आपसी शत्रुताके कारण वह एक दूसरेके विरुद्ध अरबोंकी सहायता करनेसे भी बाज नहीं आते थे। खलीफ़ा उमरने विधान बनाया था, कि मोमिन (मुसलमान) छोड़कर किसीको हथियार चलानेका अधिकार नहीं है। रोम और ईरानके जीते हुए इलाकोंमें जिस तरह लोगोंने भीषण संघर्ष किया, उससे अरबोंको विश्वास नहीं था, कि गैर-मुस्लिम उनके वफादार हो सकते हैं। यह ठीक भी था, क्योंकि अरब किसी देशको केवल राजनीतिक तौरसे ही परतंत्र नहीं करना चाहते थे, बल्कि वह वहांके धर्म और संस्कृतिको इस्लामके लिये खतरेकी बात समझ उन्हें निर्मूल कर देना चाहते थे, जिसके ही कारण संघर्ष बहुत तीव्र होजाता था। मध्य-एसियामें तुर्क आये, उनसे पहले हेफ़ताल, शक और यवन आये, किन्तु वह वहांकी संस्कृतिके दुश्मन नहीं थे। उन्होंने स्थानीय देवी-देवताओंको भी अपने लिये पूजनीय माना और यदि स्वयं संस्कृतिमें पिछड़े थे, तो यहांकी संस्कृतिसे बहुतसी बातें सीखकर अपनेको संस्कृत बनाया। अरबोंकी नीति ऐसी नहीं थी। उन्होंने इस्लाम धर्मके नामपर बिखरे हुए अरब कबीलोंको एकताबद्ध किया था। चाहे देश-विजय ही प्रेरक रहा हो, किंतु उसने अपने योद्धाओंको इस्लामके नामपर मर मिटने और दुनियासे कुफ़्रको हटाकर पैगंबर-का धर्म फैलानेका बीड़ा उठाया था। इसीलिये यूनानियों, शकों या तुर्कोंकी तरह धर्म और संस्कृतिके साथ समझौता करनेकी गुंजाइश नहीं थी। इसके विरुद्ध लोगोंकी चाहे अपने अपने बहु-स्वीकृत जातीय धर्मके प्रति आस्था भले ही हो, लेकिन वह तब तक दूसरे लोगोंके साथ बिगाड़ या अत्याचार करनेके लिये तैयार नहीं थे, जब तक कि उनके अपने धर्मपर खूनी हमले न हों। उमरका कानून उमैया खलीफोंके समयमें ही नहीं माना गया और वली (राज्यपाल) कुतैब

---

[1] जहीज़ (इतिहासकार), "अहलुस् सीन फिस्-सनाआत वल्-यूनानियून् फिल्-हिक्मे व आले-सासान फ़िल्-मलके वल्-अतराक फ़िल्-हरूबे"—रिसारला "फ़ज़ायलल्-अतराक"। (Turkistan Down to the Mongol Invasion में उद्धृत)

(७०५-७१५ ई०) ने अपनी लड़ाइयोंमें दुश्मनोंके साथ लड़नेका अधिकार काफिरोंको दे दिया। अरब बहुत दिनों तक देशपर अधिकार करना नहीं चाहते थे। उनका उद्देश्य था—लूटके मालको लेकर लौट जाना और अगले साल फिर आकर उसी तरह करना। अरबों का निवासस्थान विशेषकर खुरासान और बलख प्रदेशमें था। सल्म जियाद-पुत्र (६८२-६८३ ई०) ही पहला राज्यपाल था, जिसने पहली बार वक्षु-पार जाड़ा बिताया। इन लूटों और आक्रमणोंके प्रतिकारके लिये आपसमें झगड़ते छोटे-छोटे राजाओंको भी कुछ करनेका ख्याल आया। इतिहासकार तबरीके अनुसार मध्य-एसियाके राजा खतरा होनेपर ख्वारेज़्मके किसी शहरमें एकत्रित होते और आपसी झगड़ोंको शांतिपूर्वक तै करने एवं मिलकर अरबोंसे लड़नेकी शपथ लेते थे। लेकिन व्यवहारतः इसपर चलना उनके लिये मुश्किल था। अरबोंके विजयका एक कारण यही कमजोरी थी। समरकंदके राजा गोरकने ७१८ ई० में चीन सम्राट्के पास लिखा था, कि हम ३५ सालसे अरबोंसे लड़ रहे हैं। लेकिन, बिखरे हुए पचासों छोटे-छोटे राजा अरबोंकी शक्तिसे मुकाबिला कैसे कर सकते थे ?

(६) **रबी जियाद-पुत्र हारिती**—इसने बलखके विद्रोहको बिना युद्धके शांत किया। कोहिस्तानके तुर्कोंने बहुत सख्त संघर्ष किया, जिनका नेता तर्खून नीजक था, जो पीछे कूतैबके हाथों मारा गया। रबीने वक्षु पार आक्रमण किया, किंतु लूटमारसे ही संतोष करके लौट आया। ६७३ ई० में रबी और उसके मलिककी मृत्यु हो गई। खलीफा पूरबी प्रदेशका एक मलिक (उपराज) नियुक्त करता था, जो अपने भिन्न-भिन्न प्रदेशोंके लिये किसीको वली बनाकर भेजता था। उसके पुत्र अब्दुल्लाने केवल दो महीना शासन किया।

(७) **खुलैद अब्दुलापुत्र हनफी (६७३ ई०)**—जियादके मरनेके बाद खुलैदने अपने पुत्र उबेदुल्लाको कूफा बलख और खुरासानका मलिक (उपराज) बनाया। उबैदुल्ला जियाद-पुत्र खुलैदको हटाकर गवर्नर बना।

उबैदुल्ला जियाद-पुत्रने इराक (मसोपोतामिया) में एक बड़ी सेना जमा की। फिर खुरासान होते वक्षुपार हो, बुखाराके पर्वतोंमें दाखिल हुआ। वह स्वयं ऊंटपर सवार था। उसने रामतीन और बैकंदको लूटा। बुखाराकी शासिका खातून अरबोंके सामने लड़नेकी हिम्मत न कर समरकंद भाग गई। कहते हैं, जल्दीमें उसका एक जूता छूट गया, जिसका दाम दो लाख दिरहम (एक दिरहम=२५ ग्रेन चांदी) था। अन्तमें खातूनने अरबोंको वार्षिक कर देना स्वीकार किया। उबैदुल्ला लूटका माल लादे लौटा। हिरात आनेपर खलीफाने उसे बसराका गवर्नर नियुक्त किया।

(८) **सईद उस्मान-पुत्र (६७३ ई०)**—नये गवर्नरने उबैदुल्लाकी संधिको न मानकर बुखारापर आक्रमण कर दिया। उबैदुल्लाके साथ लड़नेमें ही खातूनकी सारी शक्ति और संपत्ति खतम हो चुकी थी, फिर बेचारी अब क्या लड़ती ? सेनाकी हिम्मत भी टूट गई थी, इसलिये उसपर भरोसा नहीं किया जा सकता था। अंतमें खातूनने बुखारा-खुदातको अरबोंको दे देना स्वीकार किया। समरकंद अब भी स्वतंत्र था और सबसे धनी लोग वहां रहते थे। रानी (खातून) ने नेकचलनीके लिये बुखाराके ८० पुरुषोंको जामिनके तौरपर दिया, जिनको लिये सईद समरकंद पर चढ़ा। तुर्कोंने मुकाबिला किया, किंतु अंतमें समरकंद अरबोंके हाथमें गये बिना नहीं रहा। सईदको ३००००

युद्ध दास और अपार संपत्ति हाथ लगी। पहले दिन युद्धमें समरकंदके सोग्दियोंको तैयार देखकर सईदने हमला नहीं किया, और दूसरे दिन उन्हें गाफिल पाकर आक्रमण कर दिया। जब सईद समरकंद-विजयके बाद बुखाराके रास्ते लौटा, तो खातूनने अपने जामिन आदमियोंको मांगा। सईदका उत्तर था—तुम्हारा विश्वास नहीं, इसलिये आमू-दरिया पार हुए बिना हम उन्हें लौटा नहीं सकते। आमू पहुंचनेपर वेर्वसे लौटानेका बहाना किया। अंतमें उन्हें वह अपने साथ मदीना ले गया और देहकान (सामन्ती) की वेष-भूषाको हटाकर उन्हें गुलामोंकी पोशाक पहना दी। इस दासतासे मरना बेहतर समझ अस्सी "गुलामों" ने सईदके महलमें घुसकर दरवाजा बंद कर लिया और अपने धोखेबाज शत्रुको मारकर स्वयं भी आत्म-हत्या कर डाली। यह घटना ६७९ ई० (६० हि०) की है।

२. खलीफा यज़ीद मेरवान-पुत्र (६८०-६८३)

म्वावियाका बेटा यह वही यजीद है, जिसने कूफाका राज्यपाल रहते समय करबलामें हुसेन और उनके साथियोंकी निर्मम हत्या कराई थी। राज्यपाल सईदकी मदीनामें हत्या हो चुकी थी, ओर यज़ीदने सल्म जियाद-पुत्रको खुरासानका वली बनाया।

(९) **सल्म जियाद-पुत्र (६८१-६८३ ई०)**—सल्मके अधिकार संभालते समय सोग्द में विद्रोह फैला हुआ था। गोरकने हथियार रख नहीं दिया था। सईदका परिश्रम व्यर्थ हो गया। उसकी धोखेबाजीसे अरबोंकी बात पर लोगोंका विश्वास नहीं रह गया था। सल्मने पहले सोग्दको ठीक करना जरूरी समझा। उसने सेनापति मुहल्लबसे सलाह करके मेर्वमें सैनिक केंद्र स्थापित किया, और ६००० अरब सेनाके साथ वक्षु (आमू-दरिया) पार हो वह बड़ी तेजीसे बुखारापर चढ़ दौड़ा। खातूनने सोग्दके तरखून मलिक गोरकसे अपना पति बनानेका लालच दे सहायता मांगी। तरखून १२०००० सेना साथ ले मददके लिये आया। अरबोंने भेद लगानेके लिये जो टुकड़ी भेजी थी, उसके आधे आदमियोंको मारकर गोरक ने भगा दिया। फिर प्रधान सेनासे मुकाबिला हुआ, जिसमें तुर्कोंकी जबर्दस्त हार हुई। सल्मको अपार संपत्ति हाथ लगी, प्रति-सैनिक २४०० दिरम (एक दिरम २५ग्रेन = १$\frac{1}{3}$ माशा चांदी) अपना हिस्सा मिला। रानीको उसने क्षमा कर दिया। सल्म मेर्वके नौ मुस्लिमोंमें बहुत प्रिय था, इसका पता इसीसे लगेगा, कि उसके दो सालके शासनमें नगरके २००० लड़कोंके नाम सल्म रक्खे गये।[1]

---

[1] ओडोनोवनने अपनी पुस्तक "मेर्वकी कथा" (पृ० ३८९) में लिखा है "एक दिन नगरका डुग्गी पीटनेवाला एक दर्जन दूसरे तुर्कमानोंके साथ मेरे झोपड़ेमें आया। वह अपने नवजात शिशुओंको मेरे पास लाये थे। मैं उनके शब्दोंको अच्छी तरह पकड़ नहीं पाता था। मैंने जो कुछ समझा, वह यही था, कि उन शिशुओंमेंसे एक ओडोनोवन बेग था, दूसरा ओडोनोवन खान, तीसरा ओडोनोवन बहादुर...। पता लगा कि तेक्के (तुर्कमान) लोग अपने नवजात लड़कोंका नाम किसी प्रसिद्ध विदेशीके नामपर रक्खा करते हैं।"

३. खलीफा म्वाविया (II) (६८३ ई०)

यह वस्तुतः खलीफाके पदके योग्य नहीं था। इस्लामके विश्वविजयका यह काल था, जिसमें खलीफामें वीरताके साथ धर्मांधताकी बहुत आवश्यकता थी। उसने शासनको अपने लिये भारी बोझा समझा और कुछ ही महीनोंके बाद गद्दी अपने उत्तराधिकारी मेरवान-पुत्र अब्दुल मलिकके लिये छोड़ दी। उत्तराधिकारके लिये अब्दुल्ला जुबेरपुत्र और अब्दुल मलिकका झगड़ा हुआ, जिसके कारण इस्लामी साम्राज्यके दो भाग हो गये। अब्दुल्लाने यमन, सिरिया, फिलस्तीन और मिस्रको लिया। अब्दुल मलिकने राजधानी दमिश्कको अपने हाथमें करके शीघ्र ही अब्दुल्लासे सिरिया और मिस्र भी छीन लिया।

४. खलीफा अब्दुल-मलिक मेरवान-पुत्र (६७३-७०५ ई०)

मेरवान के पुत्र अब्दुल-मलिकने जिस समय शासनकी बागडोर संभाली, उस समय उसके प्रतिद्वन्द्वियोंकी कमी नहीं थी। उसका एक प्रतिद्वन्द्वी मुहम्मद मक्का-मदीनेमें खलीफा बन बैठा था। विजंतीन (रोम) साम्राज्य अभी भी शक्तिशाली था, यद्यपि उसके हाथसे सिरिया और फिलस्तीन निकल कर अरबोंके राज्यमें चले गये थे। अरब खलीफा विजंतीनको भी ईरानकी तरह हड़पना चाहते थे। अब्दुल-मलिकने देखा, कि बाहरके संघर्षके साथ वह घरू संघर्षको सफलतापूर्वक नहीं चला सकता, इसलिये विजंतीनसे सुलह करके उसने मुहम्मदको मक्का-मदीनासे मार भगाया। अब्दुल मलिककी खिलाफतमें अरबोंको मध्यएसियामें आगे बढ़नेमें बहुत सफलता मिली, जहां उसके निम्न वली हुए:—

(१०) अब्दुल्ला जियाद-पुत्र (६८३-६९१ ई०)—खिलाफतके लिये जो झगड़ा मलिक और अब्दुल्लामें हुआ था, उसमें खुरासानके राज्यपाल (वली) अब्दुल्लाने विरोधीका समर्थन किया था, इसलिये अब्दुलमलिकने उसे हटाकर बुकैरको खुरासानका राज्यपाल बनाया।

(११-१२) बुकैर अब्दुल्ला-पुत्र, उमैया खालिद-पुत्र (६७६)—बुकैरपर विश्वास न रहनेसे खलीफाने उसकी जगह उमैयाको क्षत्रप बनाया। सेनापति मुहल्लब अब्दुल्ला जियाद-पुत्रका पक्षपाती था। नई व्यवस्थाके असंतुष्ट हो वह मेर्व छोड़कर केश (शहरशब्ज) चला गया। ७०० ई० में उसने अपने पुत्र हबीबको एक बड़ी सेनाके साथ बुखारापर आक्रमण करनेके लिये भेजा। राजाकी पराजय हुई। दो साल बाद कर उगाहनेके समय मुहल्लब मेर्व आया, जहां ७०१ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(१३) यजीद मुहल्लब-पुत्र (७०१ ई०)—मुहल्लबके स्थानपर उसका पुत्र यजीद मेर्वका राज्यपाल बनाया गया।

(१४) मुफ़ज्ज़ल मुहल्लब-भ्रात (७०३ ई०)—हज्जाज यूसुफ-पुत्र सेकेफीको यजीद पसंद नहीं आया और उसने उसकी जगह उसके चचा तथा उपराज्यपाल मुफ़ज्ज़लको वली बनाया। उसका शासन केवल ९ महीनेका था, जिसमें उसने खीवा और बादगीमें लूटमार करके प्राप्त संपत्तिको अपने सैनिकों (अरबों) में बांट दिया।

५. खलीफा वलीद अब्दुलमलिक-पुत्र (७०५-७१४ ई०)

इसी खलीफाके समय ७११ ई० में अरब सेनापति मुहम्मद कासिम-पुत्रने सिंधको जीता। हमें मालूम ही है, कि सिंधके जीतनेमें घरेलू फूट शत्रुकी सबसे अधिक सहायक हुई।

(१५) कुतैब मुस्लिम-पुत्र वाहिली (७०५-७१४)—मेर्व सारे अरब-शासन-कालमें दक्षिणापथकी राजधानी रहा। मेर्वको शाहेजान (राजप्राण शाहेजहां) कहते थे। मेर्व का राज्यपाल खलीफाका पूर्वी उपराज नियुक्त करता था, जो कि इस समय हज्जाज युसुफ-पुत्र था। हज्जाजने मुफ़ज्ज़लको हटाकर उसकी जगह कुतैबको मेर्वका राज्यपाल बनाया। मध्य-एसियामें अरब-शासन और इस्लामकी दृढ़ नींव डालनेमें सबसे अधिक हाथ कुतैबका था। इसके पहलेके राज्यपालोंका लक्ष्य प्रधानतया केवल लूटमार करते चौथ उगाहना था। यद्यपि बहुत वर्षोंसे अरब खुरासानके स्वामी थे, और मेर्व उनके राज्यपालकी राजधानी थी, किंतु वक्षु-पार उनका प्रभुत्व नाममात्रका था। बस, समय-समयपर उनकी सेनायें लूट मारके लिये वहां जातीं थीं। वक्षु और सिरके बीचकी भूमिपर इस्लामका झंडा गाडनेवाला कुतैब था। इसने वहांसे जर्थुस्त और बुद्धके धर्म को मिटाकर इस्लामको स्थापित किया और अपने सैनिकोंको कुरानकी पांतिया उद्धृत करते इस्लामके लिये जहादके लिये उत्तेजित किया। जहादियोंके जोशको और भी मजबूत करनेके लिये अभियानके समय तककी तनखाहें उन्हें पेशगी दे देना।

मूसा अब्दुल्ला-पुत्र हाजेन-पुत्र (६८९-७०४ ई०)—अब्दुला हाजेनपुत्र कैसी एक प्रसिद्ध अरब सेनापति था। पैगम्बर मुहम्मदने अरब कबीलोंकी शक्तिको बहिर्मुखीन करके उनके घरेलू खूनी झगडोंको रोक दिया था। अब वह आपस में लडनेकी जगह विदेशी काफिरोंसे लडते थे। लूट में जहां बहुतसा धन मिलता था, वहां ईरानी, रोमन, सोग्दी और तुर्क सुन्दरियां यदि दासी बननेसे बचतीं, तो बीबी बन जातीं। युद्धकी लूटके बंटवारेमें कभी कभी एक-एक सिपाहीपर पांच पांच स्त्रियां पड़तीं। सबसे सुन्दरी और कुलीन स्त्रियां खलीफाके हरम के लिये चुनी जातीं, उसके बाद उपराज (मलिक) का नंबर आता, फिर वली (राज्यपाल) की बारी आती। हां, किसी सेनापतिकी नजर पड़ गई और खतरा नहीं मालूम हुआ, तो उसे भी कोई अनिंद्य सुन्दरी मिल जाती। सिपाहियोंको छँटी-छुटी स्त्रियां ही मिलतीं। स्त्रियोंकी इस लूटसे इस्लामको बहुत फायदा हुआ। मुल्ला काफिरोंको धर्मोपदेश दे लौकिक प्रलोभनके साथ उन्हें अपनी जाति छोड़ा इस्लामी जमातमें भर्ती करते थे। निकाही या या दासी बीबीयोंका काम था मुसल्मान पुत्र पैदा करना। दोनोंही तरहसे देशकी स्वतंत्रताके लिये लडनेवाले घाटेमें रहते। काफिर कभी कभी फिरसे अपने धर्ममें लौट जाते, किंतु मुसलमानोंकी यह संतानें ईरानी जांत-पांतके कारण अपनी जातिमें लौटनेकी गुंजाइश नहीं रखतीं। इस प्रकार इस्लाम ईरान और मध्य-एसियामें बड़ी तेजीसे बढ़ता रहा। कितने ही अरब परिवार अरब छोडकर खुरासान, मेर्व या बलखमें बस गये थे। किंतु जनवृद्धिकी सामान्य-गतिसे वह उतनी जल्दी बहुसंख्यक नहीं हो सकते थे। इस वैध या अवैध स्त्री-संबंध ने उस गतिको बहुत तेज कर दिया, इसमें संदेह नहीं। तो भी यह ख्याल रखना चाहिये, कि ईरान और मध्य-एसियाको जब अरब जीत रहे थे, उस समय वहां असह्य सामाजिक विषमता का राज्य था। भारतके शूद्रों और अछूतों की तरह वहां भी बहुतसी जातियां थीं, जो

इस्लामकी जमातमें दाखिल होकर कमसे कम अपने काफिर बन्धुओंसे नीच नहीं रह जातीं थीं।

अपार धनके लाभ और सुखी जीवनने अरबोंकी लडाकू प्रवृत्तिको जगा दिया था। उनके कई दल हो गये थे, जो शक्ति और लाभके लिये आपसमें लड़ते रहते थे। सेनापति या राज्यपाल ज्यादा दिनतक टिकते नहीं थे, जरा सी शिकायतपर उन्हें निकालकर दमिश्कसे कोई दूसरा भेजा जाता। इसी तरह के निष्कासनकी तलवार अब्दुल्ला खाजिमपुत्रके ऊपर पड़ी। वह ६९१-६९२ ई० (७२ हिज्री) तक खुरासानका निरंकुश शासक हो बैठा। उसने अपने नामके सोनेके सिक्के चलाये। खलीफा अब्दुल मलिक इसे कैसे बर्दाश्त कर सकता था? अंतमें खलीफाके हुकुमसे उसे कतल कर दिया गया। लेकिन अब्दुल्ला अपने भविष्यको जानता था, इसलिए अपने पूत्र मूसाको उसने वक्षु पारके तुखारिस्तान में भेज दिया था। मूसाने मुट्ठीभर आदमियों की मददसे तेरमिजपर अधिकार कर लिया। स्थानीय शासक भाग गया। उसके बाद १५ साल तक मूसा वहांका स्वामी रहा। यह यजीद मुहल्लब-पुत्रकी राज्यपालताका समय (७०१-७०४ ई०) था।

इसी समय साबित कुतबापुत्रभी मूसासे आ मिला। साबितका स्थानीय लोगोंपर बहुत प्रभाव था। उसने स्थानीय राजाओं को अपनी ओर कर लिया और यजीद के तहसीलदारों को अन्तर्वेद (वक्षु और सिरदरिया के बीच के प्रदेश) से मार भगाया। अब सारे अन्तर्वेद का स्वामी मूसा था। वहां खलीफा का नहीं मूसा का शासन चल रहा था। इसी समय तुर्कों, सोग्दों और हेफ़तालों ने मिलकर एक भारी सेना मुसलमानों से लड़ने के लिये भेजी, जिसे मूसा ने तितर-बितर कर दिया। लेकिन मूसा का साबित और उसके स्थानीय सहायकों से झगड़ा हो गया। मूसा उन्हें भी दबाने में सफल हुआ। साबित मारा गया। स्थानीय सामन्तों का मुखिया सोग्द का इखशीद तरखून गोरक बड़ी बहादुरी के साथ लड़ता रहा, किंतु अंत में उसे भागने पर मजबूर होना पड़ा। ७०४ ई० में राज्यपाल मुफ़ज्ज़ल मुहल्लब-पुत्र के हुकुम से सेनापति उस्मान मसऊदपुत्र ने सोग्द के इखशीद और खुत्तल के शाह की मदद से मूसा को हराकर तेरमिज पर अधिकार किया।

इसीके बाद कुतैब खुरासान का राज्यपाल होकर आया। तालेकान आते ही उसने दिग्विजय आरंभ कर दिया। मेर्व होते बलख पहुंच उसने वहां के विद्रोह का दमन किया। बरमक खान्दान पीढ़ियों से बलख के प्रसिद्ध नवविहार का महंत रहता आया था। तत्कालीन बरमक भागकर कश्मीर चला गया। समझता था, कश्मीर और अफ़गानिस्तान के अपने सहधर्मियों-हिंदुओं की मदद से वह जन्मभूमि से म्लेच्छों को भगा सकेगा, किंतु अरब-शक्ति स्थानीय उत्पीड़ितों की सहायता पा अब दुर्जेय थी। स्वयं भारत का एक भाग (सिंध) पांच ही छ साल बाद अरबों के हाथ में जानेवाला था। इसी समय तिब्बत के घुमन्तुओं ने अपना विशाल राज्य स्थापित किया था, जो त्यांनशान और पामीर तक फैला हुआ था। चीन और तुर्कों की प्रतिद्वंद्विता के कारण उसे अरबों से मित्रता करनी पड़ी थी। फिर बरमक (परमक) को क्या सफलता मिलती? कुतैब ने बरमक की रानी को अपने हरम में डाल लिया। उसके भाई तथा सभी देहकानों ने कुतैब का स्वागत और वक्षुतट तक उसका अनुगमन किया। कुतैब के

---

[1] Turkistan Down to the Mongol Invasion

पराक्रम की कथायें वक्षुपार पहुंच चुकी थीं। वहां कोई उससे लड़ने की हिम्मत नहीं रखता था। परले तटपर शगनियान का राजा अपने शत्रु शुगान और अश्रूनन के राजाओं के विरुद्ध—कुतैब के स्वागत के लिये प्रतीक्षा कर रहा था। पार होते ही उसने कुतैब को नगर द्वार की सोने की चाभी पेश कर राजधानी (तेरमिज़) में पधारने के लिये निमंत्रण दिया। कुतैब ने शगनियान पर यही उपकार किया, कि उसे खलीफा का करद बनाकर छोड़ दिया। अश्रूनन और शुगान के राजा भी त्रस्त थे। उन्होंने कर देकर छुट्टी ली। कुतैब वहां से मेर्व लौट गया। इसी साल उसने बादगियों के तरखून नीज़क से अपनी शर्तों पर संधि की।

अगले साल (७०५-७०६ ई०) कुतैब की विजय-यात्रा फिर आरंभ हुई। मेर्व से मेर्वरूद, और आमूल (चारजूय) होते उसने वक्षु पार किया। उसका लक्ष्य बुखारा था। बैकंद वक्षु के दाहिने तट पर बुखारा से सबसे नजदीक का अतिसमृद्ध व्यापारिक नगर था। यह महा-सेठों की नगरी थी, जिनके पास चीन के रेशम और दूसरे व्यापार से अपार संपत्ति जमा थी। ऐसे नगर पर घुमन्तू लूटेरों की नजर सदा रहती थी, इसलिये सेठों ने अपने नगर की जबर्दस्त किलाबंदी कर रक्खी थी। जैसे ही पता लगा, कि अरब उनके नगर की ओर आ रहे हैं, उन्होंने भी लड़ने की तैयारी कर ली। हर एक हथियार उठा सकनेवाला जवान सेना में शामिल हुआ। बैकंदवालों ने सोग्दियों के पास भी सहायता के लिये प्रार्थना की। दुश्मन की सेना ने दो महीने तक कुतैब को घेरे रक्खा, और वह अपने स्वामी हज्जाज के पास संदेश तक न भेज सका। हज्जाज ने कुतैब की मंगल कामना के लिये मस्जिदों में विशेष प्रार्थना करवाई। मध्य-एसिया का हरेक मुसल्मान घर का विभीषण था। कुतैब के कितने ही दूत उनके भीतर घूम रहे थे। जो भी सोग्दी या तुर्क मुसलमान हो जाता, वह बिना मोल ही अरबों का गुप्तचर बनने के लिये तैयार हो जाता। कुतैब का प्रमुख चर तंदर बुखारा की ओर गया हुआ था। उसे अच्छी रिश्वत मिल गई। उसने लौटकर अपने मालिक से कहा—"तुम्हारे संरक्षक हज्जाज पदच्युत हो गये।" कुतैब ने उसी समय अपने गुलाम सैयार से उसकी गर्दन कटवा दी और ज़िरार हसनपुत्र से कहा "इस घटना को तुम्हें और मुझे छोड़कर और कोई नहीं जानता। अगर यह बाहर खुल गई, तो मैं निश्चय समझूंगा, कि यह तुम्हारा काम है। इसलिये अपनी ज़बान पर काबू रखना।" तंदर के अनुयायियों ने कटे शिरवाले धड़ को देखा, तो वह जमीन पर गिर कर कहने लगे—"हमने समझा था, वह मुसलमानों का दोस्त है।" कुतैब ने कहा—"नहीं, वह विश्वासघाती था। भगवान् उसे किये का दंड देता, लेकिन उसे यहीं फल मिल गया। तैयार हो जाओ, कल शत्रुओं से मुकाबिला करना है।"

लड़ाई शुरू हुई। मुकाबिला सख्त था। कुतैब बड़ा बहादुर सेनापति था। वह सैनिकों की पांती में घूमता उनका उत्साह बढ़ा रहा था। शाम तक शत्रुओंमें भगदड़ मच गई। बहुत कम ही लोग नगर के भीतर भाग कर जा सके, बाकी सबको अरबों ने तलवार के घाट उतारा। इसमें शक नहीं, बैकंद (पैकंद) जीतने में अरबों की भारी कुर्बानी देनी पड़ी। ५० दिनों तक मुसलमानों की सारी कोशिशें बेकार गईं और वह नगर के भीतर नहीं घुस सके। हर प्रयत्न में भारी प्राणहानि उठा कर लौटना पड़ा। एक टुकड़ी ने किले की दीवार के नीचे खाईं खोदकर इसे सुरंग के जरिये भीतर के अस्तबल से जोड़ दिया। दीवार में दूसरा मार्ग बनाया, जिसके द्वारा उन्होंने अपने कुछ आदमियों को भीतर भेज दिया। जैसे ही मुसलमान किले के भीतर पहुंचे,

पहले गये आदमी उनसे आ मिले। कुतैब ने कह रक्खा था "इस सुरंग से जो आदमी किले के भीतर पहले दाखिल होगा, मैं उसे खून का दाम दूंगा। अगर वह मारा गया, तो वह दाम उसकी संतान को मिलेगा।" उत्साह में आकर सभी सैनिक सुरंग के भग्नस्थान पर टूट पड़े और किले को सर कर लिया। नागरिकों ने कुतैब से प्राण-भिक्षा मांगी। उसने भी व्यर्थ खून-बहाना पसंद नहीं किया।

अपनी एक सेना को वहां छोड़कर कुतैब मेर्व की ओर लौट चला। उसका एक सेनप बर्की एक प्रभावशाली सेठ की दो कन्याओं को जबर्दस्ती पकड़ कर ले जा रहा था। यह सुन इज्जत के वास्ते बैकंदवाले फिर जानपर खेलने के लिये तैयार हो गये। लोगों ने नाक-कान काटकर अरबों की हत्या की। कुतैब एक ही फरसख आगे खूनवून में पहुंचा था, कि उसे विद्रोह की खबर मिली। उसने तुरंत लौटकर शहरपर हमला कर दिया। नागरिक फिर मजबूती से मुकाबिला कर रहे थे। एक मास तक वह नगर को घेरे रहा। अंत में सुरंग खोदकर आग लगा दी गई। दीवार गिर गई। बैकंद वालों ने बहुत प्रार्थना की, किंतु कुतैब ने उनकी एक भी नहीं मानी। शहर जीत कर उसने सभी हथियारबंद नागरिकों को मार डाला और बाकी नर-नारियों को गुलाम बना लिया। वह समृद्ध नगर अब ध्वंसों का ढेर रह गया। सारे खुरासान के जीतने से जितनी गनीमत (लूटका माल) मिली थी, उससे भी अधिक बैकंद से मिली। यहां के देवालय (बौद्ध बिहार) में एक सोने की मूर्ति[1] ४००० दिरहम वजन की (१ दिरहम=२५ ग्रेन, $\frac{१}{६}$ तोला) सोने की मूर्ति मिली और डेढ लाख मिस्काल (मिस्काल=$\frac{१}{२}\frac{१}{३}$ तोला) भारी एक सुवर्णपात्र तथा कबूतर के अंडे के बराबर दो मोतियां। लोगों में कहावत थी, कि उन्हें पक्षियों ने अपने चोंचों में लाकर देवता के ऊपर चढ़ाया था। लेकिन मुसलमान अपने अल्लाह को छोड़कर किसी देवी-देवता के चमत्कार पर विश्वास करनेवाले नहीं थे। कुतैब ने अपने स्वामी हज्जाजके पास भेंट के साथ विजय की खबर भेजी।

---

[1] यद्यपि मुसलमान अधिकतर मूर्त्ति-भंजक के रूप में ही प्रसिद्ध है, लेकिन जहां आमदनी का सवाल आया, वहां उन्होंने मूर्त्तियों के साथ दूसरा सुलूक भी किया। अबूरेहां अलबेरूनी (जन्म ९७३ ई० :, मृत्यु २०४८ ई०) ने अपने ग्रंथ (किताबुल-हिन्द, अन्जुमन तरक्की उर्दू, दिल्ली १९१४, पृ० १४९-१५५) में लिखा है—

"मशहूर मूर्त्तियों में एक सूर्य के नाम की मूर्त्ति मुलतान में थी। इसी संबंध के कारण उसका नाम आदित्य रक्खा गया था। यह मूर्त्ति लकड़ी की बनी, बकरी के लाल रंग की खाल से मढ़ी थी। इसकी दोनों आंखों में दो पद्मराग मणियां (लाल) जड़ी हुई थी।... मुहम्मद कासिम-पुत्र मुनब्बी ने जब मुल्तान जीता, और वहां की आबादी और समृद्धि के कारण पर विचार किया, तो उसे उसी मूर्त्ति के कारण पाया, क्योंकि लोग चारों ओर से उसके लिये तीर्थ करने आते थे। मुहम्मद कासिम-पुत्र ने उसको उसी हालत में छोड़ देना अच्छा समझा और अपमान के लिये मूर्त्ति की गरदन में गाय का गोश्त लटका दिया, तथा वहां पर एक जामामस्जिद बनवा दी। (पीछे) जब मुल्तानपर करामिता वंश का अधिकार हुआ, तो जलम शैबान-पुत्र ने उस मूर्त्ति को तोड़ डाला, उसके पुजारियों को कत्ल कर दिया और एक बुलन्द टीले पर अपना मकान पुरानी जामा मस्जिद की जगह बनवाया। उमैया वंश के समय जो कुछ किया गया था

बैकंद बहुत पुराना शहर था। प्रधान वणिक्पथ चीन से फर्गाना होकर यहां आता था। व्यापारी यहां से नावों द्वारा ख्वारेज़्म पहुंचते, जहां से स्थल मार्ग होकर कास्पियन तट, फिर समुद्री रास्ते से काकेशस की कुरा नदी पकड़, एक ज़ोत पारकर काला सागर तट पर पहुंच बहुमूल्य पण्योंको ज़हाज से युरोप के भिन्न-भिन्न देशों में पहुंचाते। चीन के व्यापार में बैकंद का बहुत बड़ा हाथ था। जिस समय कुतैब ने बैकंद पर आक्रमण किया, उस समय अधिकांश परिवारों के मुखिया चीन तथा दूसरे देशों में व्यापार के लिये गये हुये थे। लौट कर आने पर उन्होंने अपनी स्त्रियों-बच्चों को दाम देकर अरबों के हाथों से छुड़ाया। वह फिर बैकंद को आबाद करने में लग गये। मध्य-एसिया का इतिहासकार नरशाखी लिखता है—"इतिहास में यही ऐसा नगर है, जो जड़-मूल से ध्वस्त हो जाने के बाद उसी पीढी में अपने ध्वंसावशेष पर समृद्धि के साथ पुनः स्थापित हो गया।" "बैकंद-निवासियों ने अरबों को कर देना स्वीकार किया। कुतैब ने संधिपत्र लिखकर शांति स्थापित की। उसने शरदकाल में बैकंद विजय किया था। जाड़ों के लिये वह फिर अपनी राजधानी मेर्व लौट गया। कुतैब के पहले दो साल ज्यादातर लूट के अभियानों में बीते। यद्यपि तेरमिज और बैकंद विजय कर अब अरबों ने अपने को दुर्जेय साबित कर दिया था, किंतु अभी स्थायी राज्यविस्तार और शासन की स्थापना नहीं हो सकी थी। बैकंद अन्तर्वेदका दक्षिण द्वार था। बलख से सोग्द जाने का एक रास्ता तेरमिज से होकर भी था, किंतु वहां दरबद (लोहद्वार) से गुजरना पड़ता, जो सैनिक दृष्टि से आक्रमणकारियों के अनुकूल नहीं था।

७०६ ई० का वसंत आया। कुतैब फिर दिग्वजय के लिये निकला। उस समय, अन्तर्वेद के नगर और ग्राम दुर्गबद्ध थे, लेकिन बैकंद के पतन से लोग समझ गये थे, कि अरबों से मुका-बिला करने का परिणाम क्या होता है। नुमुशकत और रातीना ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया। लेकिन आगे बुखारा ही नहीं सारे सोग्द के लोग—सोग्दी और तुर्क—अपने देश और संस्कृति के शत्रुओं से लड़ने के लिये तैयार थे। ताराब, खूनवून और रामतीन के बीच में कुतैब

उससे डाह करके पहिले की जामामस्जिदको बन्द कर दिया गया। जब अमीर महमूद (गजनवी) ने इस मुल्क से करामिता का अधिकार उठा दिया, तो पहली जामामस्जिद में फिर से शुक्रवार की नमाज चालू की और दूसरी को बन्द कर दिया, जो कि अब सिर्फ मेंहदी की पत्तियों का खलिहान भर रह गई है।...थानेश्वर नगर की हिन्दू बड़ी इज्जत करते हैं। यहां की मूर्त्ति का नाम चक्र स्वामी है।...यह मूर्त्ति प्रायः पुरुष मात्र है और पीतल की बनी हुई है। इस वक्त वह गजनी के मैदान में सोमनाथ के सिर के पास पड़ी हुई है। सोम-नाथ का सिर महादेव के शिश्न के आकार का है।

सन् ५३ हिजरी (६७२ ईस्वी) की गरमियों में जब सिसली (द्वीप) को जीता गया, और वहां से रत्न-जटित मुकुट पहिने सोने की मूर्त्तियां लाई गई, तो अमीर म्वाविया (६६१-६८० ई०) ने सिन्ध भेज दिया, जिसमें उन्हें वहां के राजाओं के हाथ बेंच दिया जाय। उसने देखा कि अखण्ड बेचने में कीमत ज्यादा—अर्थात् मूर्त्ति के एक दीनार भर सोने की कीमत एक दीनार सिक्के की कीमत से ज्यादा मिलेगी। उसने धर्म की नीति के विरुद्ध शासन की नीति के आधार पर मूर्त्ति के कारण होने वाले भारी दोष (मूर्त्ति पूजा आदि) का ख्याल नहीं किया।

की सेना घिर गई। सोग्द का तरखून मलिक गोरक (गूरक), खुनुक-खुदात, बर्दान (बुखारा)-खुदात और चीन-सम्राट का भांजा राजकुमार कुर-मगानून ४०००० सेना के साथ आ डटे थे। कुतैब लौटने की सोच रहा था, जब कि एकाएक तुर्क उसके ऊपर टूट पड़े। शत्रु की शक्ति को देखकर अरबों में उत्साह नहीं था। मगर कुतैब बीच में कूदा। उसके उत्साह दिलाने पर अरब लड़ने के लिये तैयार हो गये। दोपहर तक अल्लाह ने काफिरों की सेना को भगा दिया। विजयी कुतैब तेरमिज और बलख के रास्ते लौटा। रास्ते में फारयाब में उसे हज्जाज का पत्र मिला, जिसे पढ़कर स्वामी के हुकुम के अनुसार वह बर्दानखुदात (बुखारा के राजा) को जीतने के लिये लौटा। ज़मीन में उसने वक्षु पार किया। रास्ते में सोग्द (समरकंद), केश (शहरसब्ज) और नसाफ (नखशाब) के भटों को हराता वह बुखारा पर पड़ा और निचले खर्काना में बर्दान के दाहिनी ओर अपनी छावनी डाली। शत्रु की बड़ी सेना ने उसपर आक्रमण किया। ढाई दिन तक घमासान लड़ाई होती रही। हम जानते हैं, कि इससे पहले भी (६७३ ई० और ६७६ ई० में) बुखारा की खातून को अरबों ने अनेक बार हराया, लेकिन तुर्क इतनी जल्दी हार माननेवाले नहीं थे, तभी तो अरब युद्ध में तुर्कों का लोहा मानते थे। अंत में अरब विजयी हुये। अब कुतैबने बर्दान-खुदात (बुखारा) पर सीधे आक्रमण किया, किंतु असफल हो उसे मेर्व लौटना पड़ा। कुतैब ने हज्जाज के पास विवरण भेजा, तो उसने नक्शा मांगा। नक्शा मिलने के बाद उसने कुतैब को हिदायत दी—"अपने पूर्व लक्ष्य पर लौट जाओ और अपनी प्रार्थनाओं में उसे छोड़ने के लिये पश्चात्ताप करो। दुश्मन के कमजोर स्थान पर आक्रमण करो। "किश बिकिश वसिफ नफसन बरिद् बर्दान" (केश को पीस डाल, नसफ को नष्ट कर डाल, और बर्दान को भगा दे)। सावधानी रखना, जिसमें तुम घिर न जाओ। रास्ते की और कठिनाइयों को मेरे ऊपर छोड़ दो।"

७०८ ई० (९० हि०) में कुतैब ने बुखारा पर फिर आक्रमण किया। खबर पाते ही बर्दान-खुदात ने सोग्दियों और दूसरे पड़ोसियों को सहायता भेजने के लिये कहा, किंतु उनके आने से पहले ही कुतैब वहां मौजूद था। उसने बुखारा को घेर लिया। कुमक आते ही अरबों पर आक्रमण हो गया। इस युद्धके बारेमें इतिहासकार तबरी लिखता है—"जब तुर्क नगरसे बाहर निकल आये, तो अज्द कबीलेवालोंने अलग अलग लड़नेकी आज्ञा मांगी। उन्होंने सीधे तुर्कों पर आक्रमण कर दिया। कुतैब अपने कवच पर हरा मुखाच्छादक डाले बैठा बड़े धैर्य से देखता रहा। तुर्क अज्दों को कुतैबके खेमे तक खदेड़ते आये, किंतु यहां स्त्रियोंने घोड़ों के मुंह पर पीट पीटकर मुसलमानों को मजबूर किया कि वह दुश्मन की ओर लौटें? फिर उन्होंने तुर्कों को खदेडकर पहली जगह पहुंचा दिया। एक ऊंचे टीले का लेना मुश्किल मालूम हो रहा था। कुतैब ने ललकारा—"कौन है, जो उन्हें यहां से भगायेगा?" लेकिन कोई आगे नहीं बढ़ा। सारा कबीला खड़ा मुंह ताकता रहा। फिर कुतैबने बेनी-तमीन कबीले को उनकी पुरानी प्रतिष्ठा और वीरता का स्मरण दिलाते ललकारा। तमीनों के सरदार वाकीने झंडा उठाते कहा—"ओ तमीन की संतानो क्या तुम आज मुझे छोड़कर भाग जाओगे?" "नहीं नहीं" की आवाज आई। वह वहां पहुंचे, जहां पर कि एक छोटी सी धारा शत्रु को अलग करती थी। सवार-अफसर हुसैनी धारा में पहले कूदा। बाकी लोग उसके पीछे पीछे थे। बीचमें पहुंचकर बाकीने झंडा हुसैनी को दे दिया, फिर अपनी देख-रेख में उस धारा पर पुल बनवाकर बोला—"जो प्राण न्योछावर करने के लिये तैयार है, वह पार आवै, जो नहीं चाहता, वह अपनी जगह पर ही रहे।" ८०० आदमी पिल पड़े।

फिर बाकी ने हुसैनी के रिसाले को शत्रु पर प्रहार करते हैरान करने के लिये कहा, और खुद पैदल सैनिकों के साथ आक्रमण करने के लिये बढ़ा। दोहरी मार के सामने तुर्क सैनिकों का छक्का छूट गया। अरब पुल पर से टूट पड़े। शत्रु सेना में भगदड़ मच गई, वह पूर्णतया पराजित हुई। खाकान और उसके पुत्र दोनों घायल हुये। यह देखकर आसपास के लोग कुतैब के नाम से कांपने लगे। सोग्द के तरखून गोरक ने दो सवारों के साथ धारा के पास जा बात करने के लिये प्रतिनिधि बुलाया और कुतैब को कर देना स्वीकार कर वह अपने राज्य (समरकंद) की ओर चला गया। कुतैब अब नीजक के साथ मेर्व की ओर लौटा। नरशाखी के कथनानुसार हैयान नवातयेन ने सोग्द तरखून से कहा—अधिक बुद्धिमानी इसी में है, कि मित्रों को छोड़कर अपने राज्य में लौट चलें। "जब तक गर्मी है तब तक हम वहां रहेंगे, जब जाड़ा शुरू होने पर लौटेंगे, उस समय सभी तुर्कों को तुम अपने विरुद्ध पाओगे। तुम्हारे सुंदर सोग्द को भला वह कब छोड़ना चाहेंगे ?" तरखून को यह बात पसंद आई। फिर पूछने पर हैयान ने कहा "कुतैब के साथ सुलह करो, हरजाना दो। फिर तुर्कों को कहो, कि हज्जाज सिंध पर भी सेना भेज केश और नकशाब के रास्ते सेना भेज रहा है। तुम पीछे लौटोगे, तो वह भी जरूर लौट जायेंगे।" उसी रात तरखून ने कुतैब से संधि की। उसे २००० दिरहम दिया। कुतैब ने वचन दिया, कि हम तुम्हारे राज्य (समरकंद) को तंग नहीं करेंगे। चीन-सम्राट्के भांजेने भी तरखूनका अनुसरण किया। कुतैब का बुखारा पर यह चौथा आक्रमण था।

स्वतंत्रता का अंतिम प्रयास—७०९ ई० (९१ हि०) में फिर कुतैब ने विजय-यात्रा आरंभ की। उसके अनुयायियों में बादगियों का राजा नीज़क और तुखारिस्तान के राजा जिगाय का एक मंत्री भी था। नीज़क को आशा थी, कि कुतैब तुर्कों से पिट जायगा, किंतु वह आशा सफल नहीं हुई। उसने देखा, अरब-शक्ति बड़ी तेजीसे बढ़ती जा रही है। यही समय है, जब कि मध्य-एसिया की दबी जातियों को अपनी स्वतंत्रताके लिये अंतिम प्रहार करना चाहिये, फिर ऐसा समय मिलने वाला नहीं है। किसी बहानेसे कुतैबसे छुट्टी ले वह तुखारिस्तान चला गया। खुल्म में पहुंचते ही उसने बगावत का झंडा खड़ा कर दिया। अपने खजाने को काबुलके राजा (हिंदू) के पास भेजकर उससे मदद मांगी। बलखके राजा (इस्पाहबद), मेर्वरूद, तालिकान, फारयाब और जुज्जान के राजाओं को भी धर्मयुद्ध में सम्मिलित होनेके लिये निमंत्रित किया। सब तैयार हो गये, लेकिन तुखारिस्तान-शासक जिगाय साथ नहीं हुआ। नीज़कने अपने अधिराज (जिगाय) के पैरों में सोने की बेड़ी डालकर बंदी बना लिया और तुखारिस्तान से कुतैबके प्रतिनिधि को बिदा कर दिया। कुतैब को यह खबर उस समय मिली, जब कि जाड़ा शुरू हो चुका था, और सेनायें जाड़े के निवास के लिये जहां-तहां बिखर गई थीं।

तुखारिस्तान का भीषण संघर्ष ९१ हिजरी (७०९ ई०) के शरदमें शुरू हुआ। पिछली अर्ध-शताब्दी से अरबों के साथ यहां के लोगों का संघर्ष हो रहा था। वह उनसे जरा भी दया-माया की आशा नहीं रखते थे, न उनकी किसी बात पर विश्वास रखते थे। संधि करना और तोड़ना अरब सेनपों का साधारण काम था। क्रूरता में वह उत्तर के घूमन्तू विजेताओं को भी मात करते थे। धन और स्त्रियों का लूटना शायद ही कभी इतना लोगों ने देखा हो। सबसे बुरी बात जो वहां के लोगों को खटकती थी, वह था उनके मन्दिरों, धर्मस्थानों और धार्मिक वस्तुओं का अल्लाह के नाम पर निर्दयतापूर्वक संहार करना। तुखारिस्तान और मध्य-

एसिया के लोग धार्मिक बातों में संकीर्ण नहीं थे। वहां बौद्ध, जर्थुस्ती और ईसाई शांतिपूर्वक रहा करते थे। उनके शासक (तुर्क) किसी एक धर्म को मानते हुये भी सभी धर्मों के प्रति उदारता दिखलाते थे।

कुतैब के लिये जरूरी था, कि नीजकको इस बगावतके लिये दंड दे, नहीं तो मध्य-एसिया पर जो उसकी धाक जम गई थी, उसका खात्मा हो जाता। उस समय मेर्व में मौजूद सैनिक ही आसानी से मिल सकते थे। उसने अपने भाई अब्दुर्रहमान को २००० सेनाके साथ बलख भेजा और वहां बसंत तक चुपचाप रहने को कहा : फिर तुखारिस्तान पर आक्रमण करना, उस समय "मैं तुम्हारे पास रहूँगा।" जाड़े के अंत में शहर अवावद, अबहरशहर (नेशापुर), सरख्श, और हिरात से भी सेना मंगवा ली। मेर्व में सैनिक और नागरिक अधिकारी नियुक्त कर कुतैब ने पहला आक्रमण मेर्वरूद पर किया। वहां का सामन्त हारकर भागा और उसके दो पुत्रों को कुतैब ने सूली पर चढ़वा दिया। फिर तालिकान में लड़ाई हुई, जिसमें तुर्क हार गये। जो मारे जाने से बचे, उन्हें अरबों ने फांसी पर लटका दिया। कहते हैं, उनके लिये मील लंबी फांसी की पांती खड़ी की गई थी। अरब शासक नियुक्त करके कुतैब आगे बढ़ा। फाराब और जुज्ज़ान ने बिना विरोध के अधीनता स्वीकार की। कुतैब का स्थानीय शासकों पर या तो विश्वास नहीं था, या वह उनकी अवश्यकता नहीं समझता था। अरब इतने शक्तिमान् थे, कि वह स्वयं शासन कर सकते थे। कुतैब ने इन दोनों जगहों के लिये भी अरब अफसर नियुक्त किये। बलखवाले पहले से शांत रहे।

एक दिन रहनेके बाद कुतैब खुल्मकी पहाड़ियोंमें घुसा। नीज़कने बगलानमें अपनी छावनी डाली थी और घाटे की रक्षा के लिये एक टुकड़ी नियुक्त कर दी थी। कुतैब तूफान की तरह आगे बढ़ता जाकर नीजक के दुर्भेद्य गढ़ के सामने रुका। रूब और समिन्जान के राजाओं ने क्षमादान पा गढ का दूसरा रास्ता बतला दिया। तुर्क बुरी तरह से घिर गये। अरबों ने सबको तलवारके घाट उतारा, और बहुत थोड़े जान लेकर भाग पाये। वहां से कुतैब समिन्जान की ओर चला। बगलान और समिन्जान के बीच के रेगिस्तान में नीज़क किलाबंदी करके स्वयं केर्ज चला गया, जिसका रास्ता एक ही ओर से था, जिसपर कोई घोड़े पर सवार होकर नहीं जा सकता था। कुतैब ने दो महीने तक उसे घेरे रखा, लेकिन किले को नहीं सर कर सका। नीजक की रसद खतम हो गई, कुतैब को भी इस दुर्गम पहाड़ी में लड़ने में डर लगने लगा। उसने शाम से काम निकालना चाहा, और सुलेमान को नीजक के पास आत्म-समर्पण करने के लिये भेजते उससे कह दिया, कि अगर सफल नहीं हुये, तो तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा। वह जाड़े के इन्तिजाम और कई दिन के सामान के साथ गया। नीजक से बात हुई। नीजक ने क्षमादान की शर्त रक्खी। प्राण बच जायेंगे, इस आशा से वह सुलेमान के साथ कुतैब के पास गया। बंदी बनाकर कुतैब ने उसे पास रखा और बसरा में हज्जाज के पास पत्र भेजा। उस समय अरब और अजम (इराक और ईरान) का एक ही मलिक (उपराज) होता था। ४० दिन के बाद उत्तर आया, कि नीजक को मार डालना आवश्यक है। लेकिन कुतैब वचन दे चुका था। वह तीन दिन तक तम्बू में बंद रहकर सोचता रहा। लेकिन स्वामी की आज्ञा का कैसे उल्लंघन कर सकता था? चौथे दिन उसने नीजक और उसके ७०० अनुयायियों को मरवा, नीजक के शिर को हज्जाज के पास भेज दिया। यह एक ही उदाहरण नहीं था। ऐसे अनेक उदाहरणों के कारण मध्य-एसिया के लोग अरबों को झूठे, धोखेबाज और खून के प्यासे मानते थे। नीजक ने अपने अधिराज तुखारिस्तान के राजा को

सोने की जंजीर में बांध रक्खा था। उसे भी मुक्त कर कुतैब ने दमिश्क भेज दिया। कुतैब यह विश्वासघात करने के बाद मेर्व लौटा। जुज़जान के राजा ने प्राणभिक्षा पाने की शर्त पर अधीनता स्वीकार करनी चाही। कुतैब ने स्वीकार किया। राजा स्वयं सामने आया और अपने लिये ज़ामिन दिये। कुतैब ने एक अरब हबीब को बुलाने के लिये भेजा। जुज़जान के राजा ने अपने परिवार के कई आदमी भेजे, फिर स्वयं मेर्व गया। उसके साथ कुतैब ने संधि की, किंतु लौटते वक्त जहर देकर तालिकान में उसे मरवा दिया। इस पर लोग बिगड़ उठे और उन्होंने हबीब को मार डाला। अब कुतैब ने राजा के परिवार के सभी जामिनों को मार डाला। इसी साल कुतैब ने सूमान, केश, नख्शाब तीनों नगरों पर अधिकार किया और सोग्द के तरखून के ऊपर अपने भाई अब्दुर्रहमान को आक्रमण करने के लिये भेजा। तरखून ने कर और जामिन दिया। बुखारा में कुतैब भी मौजूद था। अब्दुर्रहमान समरकंद से लौटकर वहां आ भाई से मिला। फिर दोनों साथ मेर्व लौटे। तरखून की इस बात से सोगाद के लोग नाराज हो गये। तरखून ने आत्म-हत्या कर ली।

७११ ई० (९३ हिजरी) का साल आया। इसी साल हज्जाज ने अपने सेनापति मुहम्मद कासिमपुत्र को सिंधविजय के लिये भेजा। वह सिंधु के मुहाने पर उतरा। आपस में लड़ते सिंधी राजाओं को हराकर उसने सारे सिंध को खलीफा के लिये जीत लिया। हज्जाज की विजयाकांक्षा इतनी सफलता से थोड़े ही तृप्त होनेवाली थी। उसका मनसूबा चीन विजय करने का था। शायद उसे मालूम नहीं था, कि चीन कितना दूर है, वहां का थाङवंश कितना मजबूत है और रास्ते में तरिम उपत्यका तिब्बती घुमन्तुओं के शक्तिशाली हाथों में है। हज्जाज ने घोषित कर दिया था, कि जो कोई चीन को जीतेगा, उसे हम चीन का राज्यपाल (वली) बनायेंगे। ऐसी सरगरमी में कुतैब बिना कुछ नई सफलता दिखलाये चुप रहकर अपने स्वामी का कृपापात्र कैसे रह सकता था? उस समय ख्वारेज्मका राजा चिगान था, जिसका छोटा भाई खोरज़ाद बड़े भाई से अधिक प्रभावशाली था। वह उससे खतरा समझने लगा और भाई के डर से मुक्त होने के लिये चिगान ने चुपके से कुतैब को बुला लिया। कुतैब एकाएक हजारास्प जा पहुंचा। हज़ारास्प वह जगह है, जहां वक्षु के दोनों किनारे इतने सँकरे हैं, कि थोड़े से आदमी बड़ी सेना का मुकाबिला कर सकते हैं। खोरज़ाद ने दूसरा चारा न देखकर आत्मसर्मण कर दिया। कुतैब ने उसे चिगान के हाथ में दे दिया। चिगान ने कुतैब की बड़ी भेंट-पूजा और स्वागत-सत्कार किया। चिगान का एक और प्रतिद्वंदी खामजर्द का राजा था, जिसे दबाने में उसने कुतैब से मदद चाही। यह काम कुतैब ने अपने भाई अब्दुर्रहमान को सौंपा। अब्दुर्रहमान ने हमला करके खामज़र्द को मार डाला, देश को जीत लिया और खामजर्द के ४००० दासों और बहुत से लूट के माल को लिये मेर्व लौटा।

इसी समय सोग्दमें फिर भारी उथलपुथल मची। कुतैब सीधे समरकंदपर आक्रमण करने गया। सोग्दियोंने अपने वीर नेता तथा सोग्दके इख़शीद के नेतृत्वमें अरबोंका भयंकर प्रतिरोध किया। अरबोंकी सेना बहुत बड़ी थी। तुर्क अब अगर कुछ शक्ति रखते थे, तो उत्तरमें, किंतु इस समय पश्चिमी तुर्क कगानको अपने भीतरी झगड़ोंसे फुरसत नहीं थी। अरबोंका खतरा उनके लिए दूरकी बात थी। अरब भारी संख्यामें पहुंचकर समरकंदको घेरनेमें सफल हुए। गोरकने शाश (ताश्कंद) के राजासे सहायता मंगाई। कुतैबने २००० शाशियोंपर एकाएक

आक्रमण करके उन्हें मार भगाया। काफी समय तक गोरकने मुकाबिला किया। कितनी ही बार शहरसे बाहर निकलकर तुर्क अरबोंपर आक्रमण कर उन्हें तंग करते, लेकिन रसद-पानीकी कमी और लड़नेकी शक्ति कम हो जानेके कारण अंतमें गोरकने सुलहकी प्रार्थनाकी। कुतैबने इसके लिए भारी हरजाना मांगा और शहरमें मस्जिद बनवा, नमाज शुरू करानेकी बातको भी शर्तोंमें रक्खा। शर्तें मंजूर करनी पड़ी। ४०० हथियारबंद अरब समरकंदसे बुतपरस्तीको नेस्तोनाबूद करनेके लिए घुसे। उन्होंने समरकंदकी सभी मूर्तियोंको तोड़ या जला डाला। इस कामको सबसे पहले कुतैबने अपने हाथों आरंभ किया। गोरक खूब जानता था, कि अरब क्यों सफलता प्राप्त कर रहे हैं। उसने कुतैबके उत्तरमें कहा भी था—"तू अपने शत्रुओंको उनके भाई-बिरादरोंकी मददसे जीत रहा है।" और ऐसे भाई-बिरादर मुस्लिम अरबोंकी मदद करनेके लिए सभी देशोंमें तैयार थे।

७१२ ई० (९४[1] हि०) के जाड़ोंमें विश्राम करनेके बाद कुतैब फिर एक बड़ी सेनाके साथ विजययात्राके लिए निकल वक्षु पार हुआ। इस सेनामें केश, नखशाब और ख्वारेज्मके भी २०००० सैनिक थे। काशान, और खोजन्दको जीत उसने शाशपर आक्रमण कर इस्लामकी विजयध्वजा मध्य-एसियाके सबसे उत्तरी नगरपर जा गाड़ी। आधी शताब्दीके प्रतिरोधके बाद मानो मध्य-एसिया अब भवितव्यताके सामने शिर झुकानेके लिए तैयार था। क्यों न होता, जब कि धर्म बदल कर अपने भाई ही लाखोंकी तादादमें विजेताओंका साथ दे रहे थे। अरब-विजेता तीन पीढ़ियोंसे अजमी (गैर-अरब) लोगोंके संपर्कमें आकर उनकी स्त्रियोंसे संतानें पैदा कर अब शुद्ध अरब भी नहीं रह गए थे। जहां तक स्त्रियोंका संबंध था, अरब शुरू ही से रक्त-शुद्धिको नहीं मानते थे। कुतैबने बुखारा, समरकंद आदिमें पहले पहल मस्जिदें बनवाईं, जो कि अब भी इन शहरोंकी सबसे पुरानी मस्जिदें हैं। उसने बुखाराके आधे घरोंको खाली करवा उनमें अरबोंको बसा दिया था। मेर्वमें पहलेही ऐसा किया जा चुका था। घरमें बसे अरब जहां सुरक्षा रखनेका काम करते थे, वहां हर तरीकेसे लोगोंको मुसलमान बनानेका प्रयत्न करते थे। अज़ान और कुरानका ऊंचे स्वरसे पाठ कुफ्र भगानेकी सबसे बड़ी दवा है, यह कुतैबकी मान्यता थी।

७१३ ई० में कुतैबका संरक्षक हज्जाज मर गया। अगले साल खलीफा वलीद भी मर गया, जो कि भारतवर्षके अरब-शासित प्रदेश (सिंध) का प्रथम मुसलमान खलीफा था।

६. खलीफा सुलेमान (७१४-७१७ ई०)

वलीदके बाद उसका भाई सुलैमान नया खलीफा बना। वलीद अपने पुत्रको खलीफा बनाना चाहता था, जिससे हज्जाज भी सहमत था। स्वामीके सहमत होनेपर कुतैब कैसे असहमत रह सकता था? अपनी इस सहानुभूतिके कारण कुतैबको नया खलीफा फूटी आंखों देखना नहीं चाहता था। कुतैबको यह बात मालूम हो गई थी, इसीलिए सुरक्षित समझ उसने परिवारको समरकंद पहुंचा दिया। ७१४ ई० (९६ हि०) में कुतैबने अंतिम अभियानका नेतृत्व किया। वह त्यानशानकी पहाड़ियोंमें घुस गया, और फर्गाना-विजय करके तेरक जोत पारकर काशगरके

---

[1] ७-१०-७१२ से २८-८७-७१३ ईसवी तक (सिन्खोनिसिचिस्किय तबलित्सी, लेनिनग्राद १९४०)

ऊपर चढ़ा। तुर्कोंके उत्ताराधिकारी उइगुर फूटकी बीमारीसे ग्रस्त थे, और हरेक उइगुर राजकुमार कगान से अपनेको स्वतंत्र समझता था। काश्गर, खोतन, कुलजा आदि सभी जगहोंके राजकुमार अलग-अलग स्वतंत्र शासक बन बैठे थे। कुतैबको एक जगह एक ही छोटे राजासे मुकाबिला करना पड़ता था। काश्गरके राजाको नतमस्तक होना पड़ा। लेकिन कुतैब केवल राज्य ही दखल करना नहीं, बल्कि वहांके लोगोंको मुसलमान भी बनाना चाहता था। यह जहाद, धर्मयुद्ध था। धर्मयुद्धकी क्रूरताको अरबोंने कहां तक पहुंचा दिया था, इसे कहनेकी अवश्यकता नहीं। धर्म-मंदिरों और धर्मके नेताओंके साथ वह किसी प्रकारकी दया दिखलानेके लिए तैयार नहीं थे। इस शताब्दीके आरंभमें जर्मन विद्वान् लेकाकने रेगिस्तानमें एक उजड़े नगरकी खुदाईके वक्त एक भयंकर दृश्य देखा था। एक घरके भीतर कितने ही बौद्ध और नेस्तोरी भिक्षु तलवारके नीचे ढेर हुए पाये गये। यद्यपि इस्लामने आरंभिक कालमें ईसाइयों और यहूदियोंके प्रति बहुत सहानुभूति दिखलाई थी, पैगंबर मुहम्मद स्वयं उनके प्रशंसक थे; किंतु अब नेस्तोरी ईसाई भी अरब-विजेताओंके लिए काफिरोंसे कम घृणाके पात्र नहीं थे। मध्य-एसियाका यह पूर्वी भाग (तरिम-उपत्यका) कुतैबके सामने "त्राहि मां" "त्राहि मां" करता रहा, किंतु उसका कोई फल नहीं हुआ। कहीं पर किसीने यदि थोड़ा मुकाबिला किया, तो उसे बड़ी निर्दयतापूर्ण हत्याका सामना करना पड़ा, जिसमें बच्चे-बूढ़े भी नहीं बच सके। तुर्फानके लोगोंने अरबोंको देखते ही इस्लाम स्वीकार कर लिया। इसी से वह धन और जन दोनोंकी रक्षा समझते थे। कुतैबकी सेना क्यों न लड़नेके लिए तैयार होती, जब कि वह जानती थी, कि रेशम-पथके इन समृद्ध नगरोंकी सारी संपत्ति उन्हें लूटमें मिलने वाली है।

लेकिन, इस अपार लूटने अरबोंके भीतर भी भारी ईर्ष्याका बीज बो दिया था। कुतैबके अनुयायी एक दूसरेके धनको देखकर अपने स्वामीसे भी संतुष्ट नहीं थे। कुतैबका पुराना संरक्षक हज्जाज मर चुका था। नया खलीफा सुलेमान उसका शत्रु था। खलीफाका प्रधान सलाहकार यज़ीद मुहल्लबपुत्र था, जिसे कुतैबने खुरासानके राज्यपालके पदसे वंचित किया था। इधर खुरासानके अरब कबीलोंमें दलबन्दीने भयंकर वैमनस्य पैदा कर दिया था। भविष्य क्या होगा, इसे कुतैब जानता था। उसने एकके बाद एक तीन चिट्ठियां दूत द्वारा खलीफाके दरबारमें भेजते दूतसे कह दिया—इन तीनों चिट्ठियोंमेंसे पहले उस चिट्ठीको देना, जिसमें खलीफाके प्रति राजभक्ति प्रकट की गई है; फिर दूसरी चिट्ठी देना, जिसमें यज़ीद मुहल्लबपुत्रके प्रति घृणा प्रकट की गई है, तब तीसरी छोटे कागजवाली[१] चिट्ठी देना, जिसमें लिखा है—"मैं सुलेमानको अपना खलीफा नहीं मानता और मैंने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया है।" कुतैबने दूतको कह रक्खा था, कि चिट्ठी देते वक्त खलीफाके चेहरेका भाव देखते रहना। यदि वह पहले पत्रको पढ़कर उसे यज़ीदको देदे, तो फिर उसके हाथमें दूसरा पत्र देना, यदि उसे भी वह यज़ीदको दे,

---

[१] अल्बेरुनी ने "किताबुल हिन्द" (पृ० २२४) में लिखा है—"किरतास मिस्र में बर्दी की गोंद से बनाया जाता है, और उसकी बनावटमें अक्षर खोद दिया जाता है। करीब करीब हमारे समय तक खलीफोंके आज्ञा-पत्र इसी पर लिख जाते थे। इसमें शब्दों के बदले जानेकी संभावना नहीं है, क्योंकि वह इससे खराब हो जाता है। कागज चीनका अविष्कार है। पहिले एक चीनी ने समरकन्द में कागज बनाया।"

तो तीसरा पत्र पेश करना। खलीफाने पत्रको यज़ीदके हाथमें देनेके सिवा और कोई क्रोधका भाव प्रकट नहीं किया। दूत लौट आया। कुतैबके दूसरे और तीसरे पत्र खलीफाको नहीं दिये गये, इसलिए खलीफाने उसे उसके पदपर बहाल रखनेका स्वीकृतिपत्र दे अपने एक दरबारीको भेजा। हलवाई (बगदादसे उत्तर-पूरब ईरान और तुर्ककी सीमापर एक महत्वपूर्ण नगर) में पहुंचकर खलीफाके दूतने सुना, कि कुतैबने बगावत कर दी है। वह वहींसे लौट गया।

अपने दूतसे सारी बातें सुनकर कुतैबको जल्दी करनेके लिए अफसोस हुआ। सलाह करनेपर उसे मालूम हो गया, कि सुलेमान उसे क्षमा नहीं करेगा, हां, इस्लामकी सेवाओंके लिए शायद उसका प्राण बच जाये। कुतैबने कहा "वाय, मौतसे मुझे डर नहीं, लेकिन खलीफा जरूर यज़ीदको खुरासानका वली बनायेगा, और मुझे सारी दुनियाके सामने बेइज्जत करेगा। इससे मुझे मौत अधिक पसंद है।" उसके भाई अब्दुर्रहमानकी सलाह थी—"समरकंद जाकर अपने अनुचरोंसे कहो: जिसे मेरे साथ रहना हो, वह रहे और जो लौट जाना चाहता हो, वह लौट जाये। इसके बाद खलीफासे स्वतंत्र होनेकी घोषणा कर दो।" लेकिन, कुतैबने अपने दूसरे भाई अब्दुल्ला की सलाह मानी और तदनुसार अपने अफसरोंको बुलाकर खलीफाके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिये बड़ा जोशीला व्याख्यान दिया, अपनी इस्लामकी सेवाओं और सफलताओंकी बात कही और यज़ीदके दुष्कर्मोंको खोलकर कहा। तब भी उसके अफसर बिल्कुल चुप रहे। इसपर कुतैब गुस्सेमें पागल होकर अपने सहायकोंको "कायर, बुद्धू, काफिर, पाखंडी" कहते कांपते हुए अपने महलमें चला गया। अब्दुर्रहमान और दूसरोंने उसे शांत करनेकी कोशिशकी, मगर कुतैब किसीकी बात माननेके लिए तैयार नहीं था। अरब भी इस बात को सहन नहीं कर सकते थे, विशेषकर, जबकि वह जानते थे, कि इस्लामका खलीफा कुतैबके विरुद्ध है। उन्होंने बदला लेने का नारा लगाते उसके महलको घेर लिया। जिनके बलपर उसने सारी सफलतायें प्राप्त की थीं, और काफिरोंपर अत्यन्त निर्दयतापूर्ण अत्याचार किए थे, वही अब उसके जानके गाहक हो गये। कुछ लोगोंने उसके अस्तबल में आग लगा दी। एक टुकड़ी ने उसके दरबार-हालमें दाखिल हो पहले ही तीरसे घायल कुतैब का तुक्का बोटी कर डाला। इस तरह ४६ सालकी उम्रमें धर्मके नामपर नृशंसता करनेमें अद्वितीय कुतैबका अवसान हुआ।

कुतैब जैसे दूसरे इस्लाम-प्रचारक शायद ही और हुए हों। अपने बुखाराके चारों अभियानोंमें वह वहांके नागरिकोंको उनका धर्म छुड़ाकर जबर्दस्ती मुसलमान बननेके लिए बाध्य करता रहा। उस समय तो लोग प्राण और धनकी हानिके डरसे मुसलमान हो जाते, किंतु फिर उन्हें अपनी जातीय संस्कृति और संबंधी याद आते, तो फिर बुत-परस्त (बुद्ध-पूजक) बन जाते। ७१२ ई० (९४ हि०) में समरकंदके एक अग्निमंदिरको गिराकर उसकी जगह कुतैब ने जुमा (शुक्रवार) की नमाजके लिए एक बड़ी मस्जिद बनवाई, जिसमें जो भी नमाज पढ़ने जाता, उसे दो दिरहम दिया जाता। कुतैबने घरोंको खाली करके ही अरबोंको नहीं बसाया था, बल्कि हर परिवारको अपने घरमें एक-एक अरब रखनेके लिये मजबूर किया था, जो चर, धर्म-प्रचारक और घरदामाद सबका काम करता। एक अंग्रेज इतिहासकार डेनिसन् रास[१] ने लिखा है "उस (कुतैब) का स्वभाव

[१] The Heart of Asia : "His character was an epitome of the qualities, which made Islam a terror to man-kind, and ultimately conspired to reduce it to empotance,"

उन गुणोंका राशीभूत रूप था, जिसने मानवताके लिए इस्लामको भयकी वस्तु बना दिया और अंतमें उसे निष्पौरुष बना देनेमें सहायक हुआ।"

कुतैबके बाद विद्रोहियोंके अगुवा बाकीने खुरासानका राजकाज संभाला।

(१६) यजीद मुहल्लब-पुत्र (७१५ ई०) कुतैबके मरनेके ९ मास बाद यज़ीद राज्यपाल बनकर आया। उसने आते ही बाकीको पकड़कर बंदीखानेमें डाल दिया और कुतैबके दूसरे साथियोंको दंड दिया। कुतैबके अत्याचारोंसे सोग्दके लोगोंमें असंतोष था, और आशा की जाती थी, कि यज़ीद पहले उधर जायेगा। किंतु, यज़ीदने पूरब न जाकर खुरासानसे पश्चिमकी ओर विजय-यात्रा करनी चाही। ७१६ ई० (९८ हि०) को उसकी सेना जुर्जान और तबारिस्तानपर पड़ी। कास्पियनके पश्चिम खजारोंका बहुत जोर था, जिनसे रक्षा पानेके लिए अज़ोफ़ तट तक किलाबंदी की गई थी, तो भी ख़ज़ार ओर्दूका आतंक इतना था, कि सीमाके दक्षिणके निवासी अपनी सुरक्षाके लिए ख़ज़ारोंको भी कर दिया करते थे। यज़ीदने खुरासानका प्रबंध अपने पुत्र मुखल्लदके हाथमें छोड़ा था। उमैया (और पीछे अब्बासी) वंशकी शासन-व्यवस्थाके अनुसार खलीफा स्वयं अपना मलिक (क्षत्रप, उपराज) नियुक्त करता, जो अपनी इच्छानुसार किसीको प्रदेश का वली (राज्यपाल) बनाकर भेजता। वली अपने अधीनस्थ सारे कर्मचारियोंकी नियुक्ति करता। जब तक नीचेवाले के लूटके मालमेंसे ऊपरवालोंको काफी भेंट मिलती रहती, तब तक उसको कोई खतरा नहीं था। जुरजानके लोगोंने अपनी स्वतंत्रता, धर्म और संस्कृतिके दुश्मनोंका जी-जानसे प्रतिरोध किया, जिसपर यज़ीदने शपथ ले ली कि "मैं तब तक अपनी तलवार को म्यानमें नहीं डालूंगा, जब तक इतना खून न बह जाये, जिससे आटेकी चक्की चल सके, और उसके पिसे आटेकी मैं रोटी न खालूं।" कहते हैं, उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके छोड़ी। जब इस्लामका महासेनापति-गवर्नर ऐसा कर सकता था, तो नीचेवालोंकी बात ही क्या? काफिरोंके विरुद्ध जो भी किया जाये, सब उचित था।

७. खलीफा उमर II अजीजपुत्र (७१७-७२० ई०)

सुलेमानके मरनेपर उमर खलीफा बना। निष्पक्ष इतिहासकार भी कहते हैं, कि उमैया खलीफोंमें यह सबसे भलेमानुस और सदाचारी था। इसने यज़ीदके अत्याचारोंको सुना। यज़ीदने गनीमत (लूट) की बहुतसी राशि अपने पास दबा ली थी। खुरासानके नौमुस्लिमोंने भी उसकी निर्दयता और अत्याचारके लिए खलीफाके यहां गोहार की थी। उसने हुकुम दिया, कि सभी जातिके मुसलमानोंको अरब मुसलमानोंके बराबर माना जाये। काफिरोंपर चाहे जितना कर लगाया जाय। जिन लोगोंने इस्लाम स्वीकार कर लिया है, उन्हें खतना करानेके लिये मजबूर न किया जाय। राज्यपालोंका काम है, वह अपने प्रदेशमें इस्लामका प्रचार करें, रवात (सराय) स्थापित करें, मस्जिदें बनायें। दूसरे धर्मवालोंके गिर्जे, सिनागोज और अग्निमंदिर न तोड़े जायं; हाँ, उन्हें नये मंदिरोंके बनानेकी इजाजत नहीं है।

(१७) जर्राह अब्दुल्लापुत्र ७१७-७१९ ई०)—खलीफा उमरने यजीदकी जगह जरहिको खुरासानका शासक नियुक्त किया।

८. खलीफा यजीद II अब्दुलमलिक पुत्र (७१९-७२४ ई०)

उमरके मरनेपर यज़ीद नया खलीफा बना। हर नये खलीफाके बननेपर कुछ गड़बड़ होती थी। तीसरे खलीफा म्वाविया ii (६८३-६७७ ई०) के समयसे खिलाफत दो टुकड़ोंमें बँट गई थी, पश्चिमी खिलाफत (अरब-साम्राज्य)के खलीफा अब्दुल्लाके वंशज होते थे, जिन्होंने स्पेन तकको अपने अधिकारमें कर लिया था। नये खलीफाके सिंहासन-आरोहणके समय मौका पाकर यज़ीद मुहल्लबपुत्र जेलसे भागनेमें सफल हुआ। उसने बसरामें पहुंचकर खलीफाके विरुद्ध बगावत शुरू की, जिसका असर पूर्वी प्रदेशोंपर भी पड़ा और विद्रोहको एक साल बाद दबाया जा सका। खलीफाने मस्लमाको उभय इराक (मसोपोतामिया और ईरानका) क्षत्रप नियुक्त किया, जिसने कूफाके पास फुरात नदीके तटपर यज़ीदको हराकर मार डाला।

(१८) सईद अब्दुल्ला पुत्र (७१७-७१९ ई०) मस्लमाने सईदको खुरासानका राज्यपाल नियुक्त किया। इस वक्त खोजंद और फर्गानाके लोगोंने आम बगावत कर रखी थी। लेकिन सोग्दी तरखून अरबोंका करद सामन्त था। उसे देशद्रोही कहकर विद्रोहियोंने दबाना चाहा। तरखूनने मेर्वसे सहायता मांगी, लेकिन नया राज्यपाल निर्बल और ढुलमुल बुद्धिका आदमी था, वह सहायता नहीं भेज सका। इसपर सोग्दियोंने अपने उत्तरके पड़ोसी तथा शक्तिशाली तुर्क कगान सुलू (७१६-७३८ ई०) से मदद मांगी। सुलूने विधर्मियोंके खिलाफ धर्मयुद्ध करना लाभकी बात समझी, और समरकंदपर अक्रमण कर दिया। अरब देरसे आये, तब तक तुर्क ३००० सोग्दियोंको कतल कर चुके थे। यज़ीद दो साल तक खलीफा रहा, और इस सारे समय मध्य-एसियामें बराबर अशांति बनी रही। सुलू खाकान विद्रोहियोंकी पीठपर था। उधर पश्चिमकी ओर खाज़ार और किपचक कबीले भी अरबोंको फूटी आंखों नहीं देखते थे, जिसके लिए अरब सेनाको उधर भी बराबर लड़ना पड़ रहा था। वहां भी सफलता का मुंह देखनेको नहीं मिला। जिस समय मध्य-एसियावाले अपने सब तरहके दुश्मन अरबोंसे लड़ रहे थे, उस वक्त अरबोंके नीचे पिसे जाते सोग्दियोंको शरण देना पड़ोसी सहधर्मियोंका कर्त्तव्य था। फर्गानाके शासकने ७२१-७२२ ई० में अपने यहां इस्फारा जिलेमें सोग्दियोंको रहनेके लिये जगह दी। कुतैब द्वारा नियुक्त शासक हिशाम अब्दुल्लापुत्रको निकालकर फर्गाना पहले ही स्वतंत्र हो चुका था।

उभय-इराकसे पहलेकी अपेक्षा आमदनी कम हुई। यह भी सर्वत्र होते युद्धका परिणाम था। इस कसूरमें मस्लमा ७२० ई० (१०२ हि०) में हटा दिया गया, और उसकी जगह उमर हुबैरा पुत्र क्षत्रप नियुक्त हुआ। बेचारा सईद झूठे ही कुज़ैना (हिजड़ा) कहा जाता था, वह समरकंदकी दीवारोंके नीचे लड़ रहा था, जब कि दमिश्कसे बर्खास्तगीका हुक्म आया।

(१९) सईद अम्रपुत्र हरसी (७२१-७२२ ई०) नया राज्यपाल बहुत चुस्त आदमी था। विद्रोही सोग्दी सुलूकी सहायतासे बहुत मजबूत थे। उन्होंने जब नये राज्य-पालकी दृढ़ता देखी, तो उनमें से बहुतेरों—विशेष कर देहकानों (जमींदारों) और व्यापारियों—ने जन्मभूमि छोड़नेका निश्चय कर लिया। सोग्दका तरखून गोरक इससे सहमत नहीं था, तो भी फर्गानाके राजाके इस्फारामें जगह देनेकी बात मानकर बहुतसे लोग वहां चले गये। पीछे उसने विश्वासघात कर शरणार्थियोंको अरबोंके हाथमें दे दिया। सईद ने

समरकंदको अपने हाथमें करके खोजंद (वर्तमान लेनिनाबाद) को घेर लिया। शहरके समर्पण करनेपर हम सब अपराध क्षमा कर देंगे,यह वचन दे कर भी उसने सोग्दियोंके साथ विश्वासघात कर उन्हें कत्ल कर डाला । वचन-भंग और निरीहों-निरपराधोंकी निर्मम हत्या अरब-शासन का आवश्यक रूप और मध्य-एसियामें इस्लामके प्रचारका साधारण ढंग था। इसी तरहकी धोखेबाजीसे सईदने जरफशां (सोग्द)-उपत्यकाके सभी दुर्गोंको अपने हाथमें किया। कश्क-उपत्यकामें भी यही बात हुई। वस्तुतः सोग्दी जितना लड़नेमें बहादुर थे, और जिस प्रकार सुलू जैसा पृष्ठपोशक उन्हें मिला था, वैसी ही यदि उनमें एकता होती; तो सईद फिर सोग्दपर अरब-शासन स्थापित नहीं कर सकता था। सोग्द-विजय करके सईदने जाकर फर्गानाको घेर लिया। वहांके राजाने एक लाख दिरहम और बहुतसे गुलाम देकर छुट्टीपाई। फिर "शठे शाठ्यं" की नीति उसे पसंद आई, और अगली रात जब मुसलमान अपनी सफलतासे निश्चित हो सो रहे थे, उसी समय वह १०००० आदमियोंको लेकर उनपर टूट पड़ा और बहुतोंको मार डाला। किंतु प्रधान सेनापति आलमको जब खबर लगी, तो उसने आकर खूब बदला लिया, और फर्गानाके राजा (तुर्क) को उसके २००० अनुयायियोंके साथ मार डाला । इस तरह सफल होते हुए भी ७२२ ई० (१०४ हि०) में सईद हरसीको पदच्युत कर दिया गया और उसकी जगह मुस्लिम नया सेनापति बनकर आया।

मुस्लिम सईदपुत्र किलाबी सारी पूर्वी सेनाका प्रधान-सेनापति नियुक्त हुआ था। उसने सुलू खाकानके हाथों हार पर हार खाई और बड़ी मुश्किलसे कुछ सेनाके साथ जान बचाकर आमू (जैहूं) दरियाके दक्षिण भाग कर बलख पहुंचनेमें सफलता पाई ।

९. खलीफा हिशाम (७२३-७४२ ई०)

नया खलीफा यज़ीदका भाई था। इसने उमरकी जगह खालिद अब्दुल्लापुत्र कसरीको उभय-इराकका क्षत्रप बनाया और खालिदके भाई (२०) असद अब्दुल्लापुत्रको एक बड़ी सेनाके साथ तुर्कोंसे बदला लेनेके लिये मध्य-एसियाकी ओर भेजा। असद (सिंह) भी सुलूके सामने सियार साबित हुआ। तीन बार वक्षु पार हो सोग्दकी ओर बढ़ना चाहा, लेकिन हर बार उसे खाली हाथ लौटना पड़ा। इस अफसलतासे क्रुद्ध होकर उसने अपने सेनापतियोंको बहुत बुरी तरह फटकारा और बाल मुंड़वा, नंगा कर, बेड़ी डाल उन्हें अपने भाई खालिदके पास भेज दिया। खालिद अपने भाईकी इस मूर्खतापर बड़ा नाराज हुआ और उसने असरस अब्दुल्लापुत्रको पूर्वी सेनाका सेनापति बनाकर भेजा।

(२१) असरस अब्दुला-पुत्र (७२४-७२९ ई०) असरसने देख लिया, कि विद्रोहियों को केवल राजनीतिक स्वतंत्रताकी कामना ही भारी प्रेरणा नहीं दे रही है, बल्कि वह मुसलमानोंको विधर्मी समझकर भी बहुत घृणा करते हैं । उसने सारी प्रजाको मुसलमान बनानेकी योजना बनाई और प्रत्येक स्थानमें अरब और ईरानी दो-दो धर्म-प्रचारक नियुक्त किये । समरकंदमें नौमुस्लिमोंको कलमा दुहरानेके लिये दक्षिणा दी जाने लगी। इससे असाधारण सफलता मिली । लोग कलमा सुनाकर दक्षिणा भी लेते और बहुतसे करों और बेगारोंसे भी मुक्त हो जाते। लेकिन देहकानोंपर इसका प्रभाव बरा पड़ा। वह अब मुसलमान थे, गांवोंके बिना मुकुटके राजा थे, वह भला क्यों पसंद

करने लगे, कि लोग कर और बेगारसे मुक्त हो जायें। खजानेमें भी आमदनीकी कमी हो गई। खजांची ने कहा—"करमें ही मुसलमानोंकी शक्ति है।" असरसने मुसलमान होनेपर कर-मुक्त कर देनेका हुकम दे रखा था। अब उसने दुबारा हुकम दिया—उन्हींको कर से मुक्त किया जाय, जिन्होंने खतना करा लिया है, और जो नमाज़-रोज़ा आदि इस्लामिक कर्तव्य को पूरा करते तथा कुरान का एक सिपारा पढ़ सकते हैं। इस पर सोग्द से जवाब आया—"देसी लोगों ने सच्चे मन से इस्लाम को स्वीकार किया है। वह मस्जिदें बनाने लगे हैं। सब लोग अरब बन गये हैं। इसलिये किसी पर कर नहीं लगाना चाहिये।" खजाना खाली था। ऐसे इस्लाम-प्रचार से अरबी राज्य का ही दीवाला निकलने वाला था, इसलिये असरस ने हुकम दिया—"जिनपर पहले कर लगाया जा सकता था, उन सबपर कर लगाओ।" इसका परिणाम हुआ सर्वत्र विद्रोह। अरब धर्म-प्रचारकों ने बड़े परिश्रम से इस्लाम के लिये दिग्विजय की थी, यह हालत देखकर वह भी विद्रोहियों के साथ हो गये। सोग्द का अरब धर्मप्रचारक पकड़ा गया। सारे सोग्द ने अरबों के खिलाफ बगावत का झंडा उठाकर तुर्कों से मदद मांगी। ७२८ ई० में केवल समरकंद और दबूसिया के नगर ही अरबों के हाथ में रह गये, बाकी बुखारा आदि पर विद्रोहियों का कब्जा हो गया। ७२९ ई० में बड़ी मुश्किल से अरबों ने बुखारा में दुबारा अपना शासन स्थापित किया। ७३० ई० या ७३१ ई० में सुलू ने सोग्दियों की मदद के लिये एक बड़ी सेना भेजी। सोग्द के इख़शीद ने भी विद्रोहियों का साथ दिया। इसी समय असरस ने अपने शासित प्रदेशों में जगह जगह रवात बनाने शुरू किये, जो प्रतिरक्षा के लिये घुड़सवारों की चौकियों का काम देती थीं। असरस की भी वही हालत हुई, जो उसके पूर्वाधिकारी हरसी की हुई थी। उसे लौटा लिया गया और उसकी जगह जुनैद को राज्यपाल नियुक्त किया गया।

(२१) जुनैद अब्दुर्रहमान पुत्र (७२९-७;४ ई०)—यह पहले सिंध में राज्यपाल रहा चुका था और अपने रणकौशल तथा क्रूरता के लिये मशहूर था। इसने बड़े जोश के साथ मध्य-एसिया पर फिर से अरब-शासन स्थापित करने के लिये चढ़ाई की। बुखारा में अपनी सेना में जाते समय यह खाकान (सुलू) के हाथ में पड़ने से बाल-बाल बचा। खलीफा हिशाम की एक रानी को इसने (भारत की लूट से) एक बहुमूल्य रत्नमाला भेंट की थी, जिसके कारण उसे यह पद मिला था। खलीफा ने उस समय कहा था, कि मेरे लिये भी एक ऐसी माला भेजना। ७३०-७३१ ई० में खाकान से पहली मुठभेड़ हुई, जिसमें उसने १७००००तुर्क सेना को हराया, ३००० तुर्क मारे। सुलूका भतीजा बंदी बना, जिसे जुनैद खलीफा के पास भेज कर और स्वयं जाड़ा बिताने के लिये मेर्व चला आया। अगले साल वक्षुपार हो उसने अपनी सेना के तीन भाग किये, जिनमें से १०००० सेना लेकर सौरा हुर्री को समरकंद पर चढ़ाई करने के लिये भेजा, दूसरे भाग को उमर होरेनपुत्र के अधीन तुखारिस्तान पर। बाकी को लेकर वह स्वयं तुखारिस्तान की ओर जा रहा था, इसी समय उसे पता लगा, कि खाकान ने समरकंद में सौरा को खतरे में डाल दिया है। सेना सारी एक जगह नहीं थी, किंतु जो भी सेना मौजूद थी, उसे लेकर वह समरकंद की ओर बढ़ा। किसी तंग और अंधेरे रास्ते में तुर्कों ने उसे घेर लिया। भयंकर युद्ध में सैकड़ों अरब मारे गये। जुनैद ने मुश्किल से एक खड्ड में छिपकर जान बचाई। सौरा घिरा हुआ था और जुनैद भी शत्रुओं को चारों ओर देख रहा था। दोनों में से एक को मरना आवश्यक था, तभी दूसरा बच सकता था। उसने सौरा को हुकम दिया—किला छोड़कर समर-

कंद से बाहर निकल आओ। सौरा बड़ी हिचकिचाहट में था, तो भी अपने प्रधान-सेनापति की आज्ञा मान कर १२००० सेना के साथ जुनैद के डेरे की ओर चला। करीब करीब पहुंच चुका था, इसी समय एकाएक तुर्कों ने आक्रमण कर दिया। १२००० आदमियों में से सिर्फ तीन बचकर निकल सके। सौरा मारा गया। जुनैद मौका पा भाग निकलना चाहता था, लेकिन सुलू उसे कहां छोड़नेवाला था? कगान की सेना ने उसे घेर लिया। जुनैद ने दासों को मुक्त करने का प्रलोभन दे लड़ने के लिये कहा, और उनकी सहायता से वह समरकंद पहुंच सका। खलीफा ने जब इस महापराजय की बात सुनी, तो बसरा और कूफा से २५००० सेना एकत्रित करके भेजी। चार मास के संघर्ष के बाद सुलू से बुखारा को भी खतरा होने की खबर लगी, तो वह नस्र सैयारपुत्र—जो कि छावनी का सेनापति था—की अधीनता में छावनी को छोड़कर बुखारा की ओर चला आया। दो साल के संघर्ष के बाद जुनैद सोग्द को फिर काबू में कर पाया। इस संघर्ष में सारा अंतर्वेद अरबों के हाथ से निकल गया था। उस समय जरफशां-उपत्यका अन्न की खान थी, उसपर तुर्कों के अधिकार होने का कारण ही संभवत: ७३५ ई० (११५ हि०) का अकाल पड़ा, काफिरों ने मेर्व अनाज भेजने नहीं दिया।

शिया-आंदोलन—खिलाफत के लिये पैगंबर मुहम्मद के हाशिम वंश और दूसरे वंशों में वैमनस्य खड़ा हुआ था, जिसमें अली और मुहम्मद के दोनों नाती हसन और हुसेन बलि चढ़े। जो अरब उमैया वंश से विशेष संबंध नहीं रखते थे, उनकी भी सहानुभूति धीरे धीरे विरोधियों के साथ होती गई। यही विरोधी पीछे शिया या बातिनी कहे जाने लगे। लेकिन हाशिम-वंश के पक्षपाती भी सभी एकमत नहीं थे। कुछ मुहम्मद की पुत्री फातिमा और दामाद अली की संतान को मुहम्मद का असली उत्तराधिकारी मानते थे, और दूसरे मुहम्मद के चचा अब्बास की संतान को भी शामिल करते थे। जिस समय आंदोलन और संघर्ष सफलता से दूर था, उस समय अब्बास और अली दोनों के पक्षपाती एक होकर काम कर रहे थे। अरबों के बाहर शिया-आंदोलन का जो प्रभाव पड़ा, वह धीरे-धीरे इतना प्रबल हो गया, कि उसी के बलपर उमैया-वंश नष्ट हुआ और अब्बास की संतान को पूर्वी खिलाफत का स्वामित्व मिला। खुरासान में शिया आंदोलन का आरंभ जुनैद के काल ही में हुआ। ७४० ई० में हारिस सुरैजपुत्र ने "अल्ला की किताब और पैगंबर की सुन्नत" (सदाचार) के नाम पर अपना काला झंडा उठाया। उसने प्रतिज्ञा की, कि धर्मद्रोहियों और उनके अनुयायियों के साथ जो भी शर्तें की गई हैं, उनको नहीं माना जायगा और मुसलमानों पर कर नहीं लगाया जायगा, तथा किसी पर अत्याचार नहीं किया जायगा।" यह बात नौमुस्लिमों और अमुस्लिमों दोनों के लिये आकर्षक थी। जुनैद शिया-प्रचारकों को पकड़ पकड़कर शहीद बनाने लगा, जिसमें कितने ही अरब तथा प्रभावशाली लोगों से संबंध रखते थे।

जुनैद की सारी सफलता बेकार गई। उसने यजीद मुहल्लबपुत्र की लड़की से शादी करन की गलती की, जिसके कारण खलीफा नाराज हो गया और उसने आसिम अब्दुल्ला-पुत्र को राज्यपाल बनाकर भेजा। आसिम के पहुंचने से पहले ही जुनैद मर चुका था।

(२२) आसिम अब्दुल्ला-पुत्र (७३४-७३६ ई०)—आसिम बड़ा ही अत्याचारी था। जुनैद के अनुयायियों पर उसने बहुत क्रूरता दिखलाई, जिसके कारण बहुत से अफसर उससे घृणा करने लगे। आरिस सुरैजपुत्र ने विद्रोह कर दिया। मेर्वरूद प्रदेश, बलख,

बाबेल्, अबवाब जैसे खुरासान के शहरों पर हारिस का अधिकार हो गया। इस्लाम के नाम पर गनीमत (लूट) का माल हलाल था ही, इसने और भी अधिक हिस्से का प्रलोभन दिया और गाजियों की भारी भीड़ उसके आसपास इकट्ठा हो गई। आसिम उसे दबा न सका और हासिम अपने काले झंडे को फहराता अनुयायियों को बढ़ाता जा रहा था। अंत में आसिम को बर्खास्त कर उसके भाई खालिद ने उसकी जगह कसरी को फिर से खुरासान का राज्यपाल बनाया।

(२३) असद अब्दुल्ला-पुत्र कसरी (७३५-७३८ ई०)—आसिम अब्दुल्लापुत्र ने खलीफा हिशाम को नरमी दिखाने के लिये लिखा था, यह भी उसके बर्खास्त होने का एक कारण हुआ। असद ने हारिस को मार भगाया। वह जाकर सुलू से मिल गया, जिसने उसे फाराब में जागीर देकर रख लिया। राजधानी मेर्व ऐसी जगह नहीं थी, जहां से विद्रोही सोग्द को दबाया जा सके। वहां से सीधे बुखारा जाने का रास्ता किजिलकुम (रेगिस्तान) के भीतर से जाता था, जिससे किसी बड़ी सेना का गुजरना आसान नहीं था, और दूसरा रास्ता बलख होकर बड़े चक्कर का था, जिसमें समय बहुत लगता था। असद ने बलख को ही ७३६ ई० में अपनी अस्थायी राजधानी बनाया और उसी साल खुत्तल को लेना चाहा। किंतु, खाकान सुलू गाफिल नहीं था। उसने आक्रमण किया और असद का डेरा तथा हरम खाकान के हाथ में पड़ गया। सुलह की बातचीत निष्फल गई। असद बलख लौटा और खाकान तुखारिस्तान के पर्वतों को। सुलू की यह अंतिम विजय थी। ३० वर्षों तक इस दुर्जेय तुर्क खाकान (अबू-मुज़ाहिम) की धाक सारे मध्य-एसिया पर थी। चीन सम्राट् ने भी दामाद बना बड़ी से बड़ी पदवियां दे उसे अपना बनाने का प्रयत्न किया। तुर्कों का उसपर असीम विश्वास था, जिन तुर्कों की वीरता और युद्धकौशल को देखकर अरबों ने ("अल् अतराक फिल्हरुब") युद्ध में तुर्कों को अजेय माना था। लेकिन बुढ़ापे में सूलू का हाथ बेकार हो गया था, जिससे वह सीधे युद्ध में भाग लेने लायक नहीं रह गया था। घुमन्तू लड़ाके ऐसे नेता को पसंद नहीं कर सकते। यद्यपि पहले असद को तेर्मिज और खुत्तल के इलाकों में सफलता नहीं मिली। लेकिन अब सुलूका दुर्भाग्य और असद का सौभाग्य जगा। समरकंद को आत्म-समर्पण करने के लिये मजबूर करने को असद ने जरफशां के ऊपरी भाग में बारगसर पर पहुंच कर खुद बांध बनाने में भाग ले पानी को रोकना चाहा, किंतु उसमें सफलता नहीं हुई। ७३७ ई० में तुखारिस्तान में जो लड़ाईयां लड़नी पड़ीं, उसमें खाकान के साथ देने वाले शिया-पक्षपाती हारिस और खुत्तल का राजा भी थे। किंतु शगान-खुदात (शगानियान) अरबों के साथ रहा। पहले तो असद को सफलता नहीं मिली, किंतु अंत में उस के आक्रमण से तुर्क उश्रूसना लौट जाने के लिये मजबूर हुये। वहां से जा समरकंद में उन्होंने लड़ने की तैयारी की। इसी समय सुलू कगान को तुर्गिस कुमार कुरसूल ने मार डाला। सूलू के मरने के साथ ही पश्चिमी तुर्क-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। हारिस तुर्कों के देश में भाग गया। खुत्तलपति से अरबों ने खुत्तल को ले लिया। असद समरकंद पर चढ़ाई करने के लिये जा रहा था, इसी समय एक विद्रोही अनुचर ने अपनी जाति के इस शत्रु को मार डाला।

(२४) नस्र सैयार-पुत्र (७३७)—नस्र कुतैब की युद्ध में भाग ले चुका था। वह बड़ा अनुभवी और वृद्ध पुरुष था। उसे कुतैब ने ७०५ ई० में एक गांव की जागीर दी थी। उस समय अरबों में घोर द्वंद्व चल रहा था। उनके मुजारी और यमनी दो दल हो गये थे। मुजार

उत्तरी अरब से आये थे, और यमनियों का मूल स्थान यमन था। खुरासान के मुजारयों का नस्र शेख (सरदार) था। वैसे नस्र अत्यन्त योग्य शासक और कुशल सेनापति था। वह जितना शक्तिशाली था, उतना ही उदार, अपने अधीनोंका भी बड़ा प्रेमपात्र था। अपने नौ सालकी शासन में खुरासान को उसने उमैयों के लिये बचाये रखा। उस समय उमैया-वंश कमजोर हो चुका था, उसका सितारा डूबने ही वाला था। प्रतिद्वंद्वी खारजी (शिया) मुहम्मद और अली के वंश की दुहाई देकर बल संचय कर रहे थे। उनका प्रचार खुरासान और मध्य-एसिया में बड़े जोर शोर से हो रहा था।

नस्र ने देखा, जिस शक्ति से अरब शासन को सबसे ज्यादा खतरा है, वह है तुर्क। यद्यपि सुलू खाकान—जिससे परेशान होकर अरबों ने उसे "इब्नमुज़ाहिम" (संघर्षकारियों का बच्चा) नाम दे रक्खा था, मर चुका था। किंतु जिस तेरगास राजकुमार कुरसूल ने उसे मारा था, उसके प्रबल होने का डर था। कुरसूल भी पश्चिमी तुर्कों के ही तुरगिस वंश का था, इसलिये तुर्कों की जो शक्ति सूलू के पीछे थी, वही कुरसूल के पीछे हो गई। अरबों के विरोध में सारे उत्तरापथ और दक्षिणापथ के लोग एकमत थे। कुरसूल की एक दो सफलताओं के बाद वह सुलू की तरह ही दुर्धर्ष हो जाता, इसलिये पहले उसकी ओर ध्यान देना आवश्यक था। पश्चिमी तुर्क राज्य पिछले खाकान के मर जाने के कारण विशृंखलित हो गया था। इस मौके से फायदा उठाते हुये नस्र ने सिरदरिया की ओर मुंह फेरा। ७३९ ई० में उसने उश्रूसना, शाश, (ताशकंद) और फर्गाना के शासकों के साथ नरमी दिखला संधि करके इन तुर्क शासकों को कुरसूल से अलग करने में सफलता पाई। फिर वह सीधे कुरसूल के ऊपर पड़ा। पहले दो अभियानों में वह सफल नहीं रहा। अंतिम अभियान शाश के शासक के विरुद्ध था, जिसकी सहायता के लिये कुरसूल आया था। सिर दरिया के तट पर लड़ाई हुई, जिसमें कुरसूल बंदी हुआ, और नस्र ने उसे मरवा दिया। कुरसूल के मरने के बाद तुर्कों पर इतना आतंक छाया, कि उश्रूसना, शाश, और फर्गाना के राजाओं ने अधीनता स्वीकार करते हुये नस्र से संधि कर ली।

अब उत्तर के घुमन्तूओं का भय खतम हो गया था। नस्र पहले मुसलमान विद्रोहियों को छेड़ना नहीं चाहता था, क्योंकि इससे भीतरी निर्बलता और बढ़ती। उसने सारे मुसलमानों का ध्यान एकत्रित करने के लिये काफिरों के ऊपर आक्रमण किया। मुसलमानों पर शरीयत (धर्मशास्त्र) के विरुद्ध जो कर लगे थे, उन्हें अमुस्लिमों पर लगवाया, फिर ८०००० अमुस्लिमों को करमुक्त कर उसे ३०००० मुसलमानों पर लगाया। सोग्द में करमुक्ति ने लोगों को मुसलमान होने के लिये अधिक आकर्षित किया था, फिर कर लगने पर सोग्दी क्यों उसे पसंद करते? तो भी जो सोग्दी अरबों के राजनीतिक और धार्मिक अत्याचारों के कारण सुलू खाकान के राज्य में शरणागत हुये थे, अब नस्र की सफलता और उसकी न्यायप्रियता पर विश्वास करके सोग्द लौटने की सोचने लगे थे। नस्र ने उनकी सारी शर्तें मान कर ७४१ ई० में उनके साथ समझौता कर लिया। शर्तें थीं—(१) मुर्तिद् (पुनः अपने धर्म में लौटे) लोगों को दंड नहीं दिया जायगा, (२) मुर्तिदों को प्रवास के पूर्व के बाकी करों से मुक्त किया जायगा, (३) मुसल्मान कैदी छोड़ दिये जायेंगे, यदि काजी (न्यायाधीश) कानून-निर्धारित संख्या में गवाहों की गवाही के बाद वैसा फैसला दे। खलीफा ने भी नस्र के लिखने पर इन शर्तों को मंजूर कर लिया। राजधानी में कितने ही लोग नस्र को इस प्रकार दबने के लिये बदनाम करते थे, जिसका उत्तर नस्र देता

था—"अगर मेरे प्रतिद्वंदियों ने सोग्दियों की वीरता होती देखी, तो वह भी उनकी शर्तों को मानने से इन्कार नहीं करते।" मुजारी होने के कारण अक्सर नस्र का भूतपूर्व मलिक असद से झगड़ा रहता था, क्योंकि असद यमनी दल का नेता था। नस्र ने अपने पहले चार साल के शासन में केवल मुजारी सेनापति नियुक्त किये, किंतु पीछे उसने यमनियों को भी लेना शुरू किया। यमनियोंने इस विश्वासका उलटा बदला देते ७४४ ई० में जूदे अलीपुत्र करमानी के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया।

(शिया-आन्दोलन)[१]—नस्र का सबसे बड़ा दुश्मन हारिस था, जो कि शियों का पक्षपाती और अब तुर्कों में चला गया था। नस्र ने शामकी नीति से काम लिया और उसी साल (जिस साल कि यमनियों ने विद्रोह किया था) खलीफा मोतसिम से कहकर अनुयायियों सहित हारिस को क्षमा दिलवाई। ७४५ ई० में हारिस मेर्व लौटा। उधर किरमानी और नस्र का झगड़ा चल रहा था। हारिस को न मुजारियों से कुछ लेना-देना था, और यमनियों से; इसलिये उसने सिर्फ यही घोषणा की, कि मैं तो केवल न्याय की विजय चाहता हूं। जैसे ही उसने अपने अनुयायियों की काफी शक्ति देखी, कुछ हजार को लेकर काला झंडा खड़ा कर दिया। उसने नस्र को न छेड़कर पहले उसके प्रतिद्वंद्वी किरमानी पर आक्रमण किया। यद्यपि हारिस ७४६ ई० की वसंत में उसी लड़ाई में मारा गया, लेकिन जिस संप्रदाय का वह समर्थक था, वह एक सिद्धांत और आदर्श के लिये लड़ रहा था, इसलिये हारिस का खड़ा किया काला झंडा गिरने नहीं पाया।

पैगंबर मुहम्मद और उनके उपदिष्ट कुरानी इस्लाम के सिद्धान्त बहुत सरल, अरबों के तत्कालीन सामाजिक विकास के अनुरूप थे; लेकिन ग्रीक, रोमन और ईरानी जैसी सभ्य और सुसंस्कृत जातियों के साथ जब मुसल्मानों का संपर्क हुआ, तो उस सादगी से काम नहीं चल सकता था, इसीलिये सिद्धांतों में मतभेद होने लगा। आदिम इस्लाम के मुख्य-मुख्य सिद्धांत थे—(१) ईश्वर एक है, वह बहुत कुछ साकार सा है और उसका मुख्य निवास इस दुनिया से बहुत दूर छ आसमानों को पारकर ७ वें आसमान पर है; (२) वह दुनिया को केवल "कुन" (हो) कहकर अभाव से भाव में लाता है; (३) प्राणियों में आग से बने फरिश्ते और मिट्टी से बने मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है; (४) फरिश्तों में से कुछ पथभ्रष्ट होकर सदा के लिये अल्लाह के दुश्मन बन गये हैं, वह सदा मनुष्यों को मार्गभ्रष्ट करने की कोशिश करते हैं, उनका सरदार इबलीस है, जो फरिश्ता होते समय अज़ाज़ील के नाम से मशहूर था; (५) मनुष्य दुनिया में केवल एक बार जन्म लेता है, और ईश्वरी वाक्य कुरान द्वारा विहित और निषिद्ध कर्म करके उसके फलस्वरूप अनंतकाल के लिये स्वर्ग या नर्क पाता है; (६) स्वर्ग में सुंदर प्रासाद, अंगूरों के बाग़, शहद-शराब की नहरें, अनेक सुंदरियां (हूरें) तथा बहुत से तरुण सेवक (गिलमान) होते हैं; (७) दया, सत्यभाषण, चोरी न करना आदि सर्वधर्ममान्य भले कर्मों के अतिरिक्त नमाज़, रोज़ा (उपवास), दान (ज़कात) और हज (विशेष समय में काबा-दर्शन) ये चार मुख्य विहित कर्म हैं; (८) निषिद्ध कर्मों में हैं अनेक देवताओं और उनकी मूर्त्तियों का पूजन, शराब पीना, हराममांस (सूअर तथा बिना कलमा पढ़े मारे गये जानवर का मांस) खाना आदि है।[२]

---

[१] Heart of Asia (E. D. Ross)

[२] विस्तार के लिये देखो लेखक की पुस्तक "इस्लाम धर्म की रूपरेखा"

सुन्नियों में आगे चलकर जो मतभेद हुये, उनके कारण उनके चार संप्रदाय हो गये—(१) कूफा (मेसोपोतामिया) के रहनेवाले अबूहनीफा (७६७ ई०) के अनुयायी हनफी कहे जाते हैं, जिनकी संख्या भारत और पाकिस्तान में अधिक है; (२) मदीना-निवासी इमाम मालिक (७१५-७९५ ई०) के अनुयायी मालिकी हैं। मराको और मुस्लिम स्पेन में इनकी संख्या अधिक थी। इमाम मालिक ने कुरान के अतिरिक्त पैगंबर-वचन (हदीस) को धर्म-निर्णय के लिये बहुत आवश्यक बतलाया, जिसके कारण हदीसों को जमा करने का काम शुरू हुआ। (३) इमाम शाफई (७६७-८२० ई०) के अनुयायी शाफई कहे जाते हैं। यह पैगंबर के आचरण (सुन्नत) को सर्वाधिक अनुकरणीय मानते हैं। (४) चौथा संप्रदाय इमाम अहमद इब्नहम्बल के अनुयायियों (हंबलियों) का है—जो कि ईश्वर (अल्लाह) को साकार मानते हैं। धर्म के संबंध में अंतिम निर्णय के लिये प्राचीन पंथी कुरान, सुन्नत (पैगंबर के सदाचार), कयास (अनुमान या दृष्टांत) द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के अतिरिक्त चौथे प्रमाण बहुमत (इज्माअ) को भी मानते हैं, जिनमें पूर्व-पूर्व को बलवत्तर स्वीकार करते हैं।

यह बहुमत ही था, जिसके बलपर अली को खलीफा होने से तीन बार वंचित किया गया। किंतु जितना ही समय बीतता गया, उतना ही अली के अनुयायियों का जोर बढ़ता गया। अली को वंचित कर तीसरे खलीफा बने उसमान ने वर्तमान कुरान को पुस्तक-रूप में संग्रह किया। अली के अनुयायियों का कहना है, कि उसमें ऐसी बहुत सी आयतें (मंत्र) हटा दी गई हैं, जिनमें अली और उनकी संतान के पक्ष में कहा गया था। इस्लाम का सर्वोपरि प्रमाण कुरान है। जब उसमें घटाने-बढ़ाने की बात एक संप्रदाय ने मान ली, तो सिद्धांतों में फेर-फार करने की पूरी गुंजाइश हो गई। कहते हैं, इन सैद्धान्तिक मतभेदों का आरंभ इब्न-सबा (सबा-पुत्र) ने किया, जो कि ७ वीं सदी में (पैगंबर मुहम्मद के मरने के आधी शताब्दी बाद) हुआ था। वह यहूदी से मुसल्मान बना था। यहूदी अपनी मूलभूमि (फिलस्तीन) को छोड़ने के लिये मजबूर हुये, और भिन्न-भिन्न देशों में बिखरकर ग्रीक तथा दूसरी उन्नत विचारधाराओं के संपर्क में आये। वह सर्वत्र विचार स्वातंत्र्य के पोषक रहे। इब्न-सवा, जान पड़ता है, बौद्ध और प्लातोनी विज्ञान-वादद्वारा अनुप्राणित नवप्लातोनी अद्वैतवाद से प्रभावित था, इसलिये उसने हलूल (जीव का अल्ला में विलयन) सिद्धांत का प्रचार किया। वह पैगंबर के दामाद अली में भारी श्रद्धा रखता था, इस लिये लोगों को यह कहने का मौका मिला, कि इब्न-सबा के सिद्धांत के स्रोत हजरत अली थे। इब्न-सबाकी परंपरा आगे बढ़ती गई और इस्लाम में शिया और खारजी (बाह्य) जैसे संप्रदाय पैदा हुये। अरब में इनके मतभेद बहुत कुछ कुरान और पैगंबर-संतान के प्रति अधिक श्रद्धा और कम पर निर्भर थे। शिया लोगों का कहना था, कि पैगंबर का उत्तराधिकारी होने का अधिकार उनकी पुत्री फातिमा और अली की संतान को है। आगे चलकर इस संप्रदाय ने दार्शनिक मतभेदों में भी हाथ बंटाया और अंत में अरबों और ईरानियों के शताब्दियों से चले आते द्वंद्व से फायदा उठाने में इतनी सफलता प्राप्त की, कि ईरान ने १५ वीं सदी में शियामत को अपना राजधर्म घोषित किया। यह बात १४९९ ई० में सफावी वंश के शासन (१४९९-१७३६ ई०) के साथ आरंभ में हुई। उस समय शिया-प्रचार में जो सफलता प्राप्त हुई थी, उसमें ईरानी राष्ट्रीयता को भी मिलाकर अबूमुस्लिम ने शियों के काले झंडे को गाडा, लेकिन उसे मुहम्मद के चचा अब्बास की संतान अबुल् अब्बास सफ्फाह् ने बड़ी चतुरता से अपने हाथ में कर लिया।

अबू-मुस्लिम[१] (मृत्यु ७५५ ई०)—अब्दुर्रहमान मुस्लिमपुत्र को दुनिया अबू-मुस्लिम के नाम से अधिक जानती है। वह इस्पहान का रहनेवाला था। ईरान के एक तीर्थयात्री दल के साथ मक्का गया, जहां उस समय मुहम्मद अब्बासी भी आया हुआ था। अबू-मुस्लिम वहीं एक प्रतिष्ठित अरब-परिवार में घोड़े की जीन बनाने का काम करने लगा था। इस २० साल के तरुण को मुहम्मद अब्बासी ने जल्दी परख लिया और उसने भविष्य-वाणी की, कि यही तरुण अब्बासी राज्य की स्थापना करेगा। मुहम्मद ने उसे अपने पक्ष के समर्थन के लिये इराक भेजा। वह जानता था, कि अब अरबों का नहीं, ईरानियों का पलरा भारी होने जा रहा है। अबू-मुस्लिम दो साल (७४२-७४४ ई०) खुरासान में अपने गुरु की ओर से प्रचार करता रहा। वह अच्छा वक्ता, संगठन करने में निपुण और साथ ही ईरानी होने के कारण ईरानियों पर पूरा प्रभाव डाल सकता था।

किरमानी के विरुद्ध लड़ते हारिस सुरेजपुत्र मारा गया। किरमानी का मनसूबा कहीं बढ़ न जाय, इसके लिये नस्र ने ७४६ ई० में एक छोटी सी सेना उसके विरुद्ध भेजी। लेकिन सफलता नहीं मिली, फिर मेर्व की अपनी सारी सेना ले वह किरमानी के ऊपर चढ़ा। उमैया का झंडा सफेद था, शियों ने अपने झंडे के लिये काला रंग अपनाया था। अबू-मुस्लिम ने देखा, यही अच्छा मौका है, और उसने अपना काला झंडा फहरा दिया। भीतर ही भीतर लोग पुराने (उमैया) शासन से असंतुष्ट थे, इसलिये चारों ओर से गाज़ी (धार्मिक योद्धा) अबू-मुस्लिम के झंडे के नीचे आने लगे। नस्र इस विरोध को शांत करने में असमर्थ रहा। उसने अपने सहयोगी इराक के क्षत्रप मेर्वान से यह कहकर सहायता मांगी, कि खुरासान का हाथ से निकलना उमैया-वंश के लिये खतरनाक होगा, लेकिन सहायता नहीं आई। अबू-मुस्लिम ने किरमानी को भी आकर मिल जाने के लिये निमंत्रित किया, लेकिन इससे पहले ही नस्र ने अपने एक सिपाही द्वारा किरमानी को मरवा कर उसके शिरको खलीफाके पास भेजवा दिया था। यमनी दल तथा किरमानी के दो पुत्र अबू-मुस्लिम से जा मिले। नस्र ने उमैया-वंश को गाढी नींद से जगाने के लिये बहुत कोशिश की, लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली। ७४७ ई० में अबू-मुस्लिम ने अपनी विजयिनी सेना लेकर सारे खुरासान और सोग्द की राजधानी मेर्व में प्रवेश किया और उमैया खलीफा की जगह अब्बासी फलीफा के नाम से खुतबा (शुक्रवार की नमाज का व्याख्यान) पढ़ने का हुक्म दिया। नस्र पहले ही संघर्ष छोड़कर सरख्स होते हुये नेशापोर भाग गया था। अबू-मुस्लिम ने उसके पीछे कहतबा शबीबपुत्र को भेजा, जिसने नेशापोर के पास नस्र को हराया। वह वहां से भागा। जुर्जान में सिरिया से कुमक के लिये आई सेना को पाकर नस्र ने फिर मुकाबला करना चाहा, किंतु कहतबा ने उसे अंतिम हार दी। नस्र हमदान की ओर भागा। बुढ़ापे में इस परेशानी के कारण साव में पहुंचकर ७४८ ई० में उसने प्राण छोड़ दिया।

उसके मरने के साथ उमैयों की सारी आशायें खतम हो गईं। जुर्जान, रे (तेहरान), साव, कुम सभी अब्बासियों के हाथ में चले गये। खलीफा ने अपने योग्य सेनापति नस्र को खोकर अब खतरे को महसूस किया और सारी सेना को इस ओर लगा दिया, लेकिन कहतवाने इस्पहान के पास ७४९ ई० (१३२ हि०) में उसे हराया और

[१] Heart of Asia (E. D. Ross)

नहावंद का विख्यात किला भी ले लिया। ईरान-विजय करके कहतबा इराक की ओर बढ़ा, जहां कूफा शियों का केंद्र था। करबला के पास उसकी उमैया सेनापति हुबैरापुत्र के साथ भिडंत हुई, जिसमें कहतबा मारा गया, लेकिन उसके पुत्र हसन ने सेना का संचालन हाथ में लेकर हुबैरा को हरा वासित की ओर खदेड़ दिया। कूफा के यमनियों ने विद्रोह करके नगर को अब्बासियों के हाथ में दे दिया। हसन कहतबा-पुत्र के नगर में प्रवेश करने पर अब्बासियों का नेता अबुल-अब्बास प्रगट हुआ और कूफा अब्बासियों की अस्थायी राजधानी बना। अबू-सल्मा को उसने अपना महा-मंत्री बनाया। अंतिम फैसला ७५० ई० में (मेसोपोतामिया) की लड़ाई में हुआ, जहां मेरवान अपनी सारी शक्ति के साथ अब्बासी सेनापति अब्दुल्ला (अबुल-अब्बास के चचा) से भिड़ा। मेरवान की बुरी तरह हार हुई और वह मिस्र की ओर भागा, जहां उसे मार डाला गया।

अबू-मुस्लिम के प्रधान सहायक थे अबू-दाउद खालिद-पुत्र इब्राहिमपुत्र और जियाद सालेहपुत्र खुजाई। अबू-मुस्लिम ने देखा, जब तक यमनियों की कमर नहीं तोड़ दी जाती, तब तक स्थायी सफलता नहीं हो सकती; इसलिये उसने पहले यमनी नेताओं का संहार किया। अबू-दाऊद ने खुत्तलमें पहुंचकर यमनी नेता उस्मान को मारा, उसी दिन अबू-मुस्लिम ने दूसरे नेता अली को खतम किया। अरबों को सफलतापूर्वक दबाने के बाद अबू-मुस्लिम ने देखा, जिस ईरानी राष्ट्रीयता के बलपर उसने सफलता पाई, वह भी सिर उठा रहा है। ईरान के जातीय धर्म (मज्दयस्न, जर्थुस्ती धर्म) को फिर से शक्तिशाली बनाने के लिये कितने ही लोगों में भावना पैदा हो गई थी, जिनका अगुआ नेशापोर के पारसियों का नेता बिह् अफरीद (माह-अफरीद) था। उसने इस्लाम के प्रहारों से शिक्षा लेकर अपने धर्म में बहुत से सुधार करने चाहे और जर्थुस्तियों की मूर्ति-पूजा आदि कितनी ही बातों का तीव्र खंडन किया। अबू-मुस्लिम खतरे को समझ रहा था। जर्थुस्ती पुरोहितों (मागियों) ने भी उससे शिकायत की—अफरीद दोनों धर्मों की जड़ काट रहा है। अबू-मुस्लिम ने इस आंदोलन को बुरी तरह से दबा दिया। बुखारा में शारिक शेखपुत्र महरी ने ७५५-७५१ ई० में एक नया अरब संगठन खड़ा करते हुये घोषित किया "हमने पैगंबरके परिवार का अनुगमन इसलिये नहीं किया, कि लोगों का खून बहायें और मनुष्य में विषमता कायम करें।" शारिक अली का पक्षपाती था, और अबुल-अब्बास को नहीं चाहता था। अरबों ने भी देखा, कि अबू-मुस्लिम के निष्ठुर हाथों में पड़ने से यही अच्छा है, कि अली के नाम से अपने लिये स्वतंत्र स्थान बनायें। थोड़े ही समय में ३०००० आदमी अली के झंडेके नीचे चले आये। बुखारा और ख्वारेज्मके अरब-सरदारोंने उसका साथ दिया। बुखाराके नागरिक भी शारिकका समर्थन करने लगे। अबू-मुस्लिमने उसके विरुद्ध जियाद सालेहपुत्रको भेजा। शारिकने अपने प्रोग्राममें समानताको स्थान देकर संपत्तिशाली वर्गको अपने विरुद्ध कर लिया था। बुखारा-खुदात कुतैबा और दूसरे ७०० गढ़वाले जियादके समर्थक थे। कुतैबने बुखारापर विजय प्राप्त की, और कश्क कुषाण (कुषाण या हेफ़ताली सेठों) के धर्म को नष्ट किया। लोगों ने शहरके भीतरके अपने घरोंको देकर दूसरी जगह ले अपने लिये ७०० महल बनवाये और उनके चारों ओर बाग लगवाये थे। यहीं उन्होंने लाकर अपने नौकरों और ग्राहकोंके रहनेके लिये भी घर बनवाये। थोड़े ही समयमें इस नये शहरकी जनसंख्या पुरानेसे भी ज्यादा हो गई, और इसका नाम कुश्के-मगान (मगोंका गढ़) बन गया। यहां पारसियोंके मंदिर भी अधिक थे। जब सामानियोंने

बुखारा ले लिया, तो उसके प्रतिहार-नायकने अपने लिये जमीन खरीदनी चाही। उस समय जमीनका मूल्य बढ़कर प्रति जिफ़ ४००० दिरहम हो गया, जो बढ़ते बढ़ते एक समय १२००० दिरहम तक पहुंचा। यह ७०० महल-निवासी इसी कुश्के-मगानके रहनेवाले धनाढ्य लोग थे। भला वह शारिकके साम्यवादको कैसे पसंद कर सकते थे ? ज़ियादने बड़ी क्रूरतासे विद्रोहियोंको दबाया। बुखारा नगरमें आग लगा दी गई, जो तीन दिन तक जलती रही। विद्रोहियोंको पकड़कर शहरके दरवाजों पर लटका दिया गया। बुखारामें सफलता प्राप्त कर ज़ियाद समरकंद गया। यहां भी उसने विद्रोहियोंका बड़ी क्रूरतापूर्वक कतल किया। सारी सेवाओंके बाद भी बुखारा-खुदात (कुतैबा) को इस्लामसे दूर हो जानेका अपराध लगाकर अबू-मुस्लिमने मरवा डाला।

स्रोत-ग्रन्थ :

1. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Bartold)
2. Heart of Asia (E. D. Ross)
3. History of Bokhara (A. Vambery)
४. इस्कुस्स्त्वो स्रेद्नेइ आज़िइ (ब० व० वेइमार्न, मास्को १९४०)
५. आर्खितेक्तुर्निये पाम्यत्निकि तुर्कमेनिइ (मास्को, १८३९)
६. किताबुल्हिन्द (अबूरैहाँ अल्बेरुनी)
7. Sur les monnides de Boukhara-Khoudats (Lerch)
८. सिनख्रोनिस्तिचेस्किये तब्लित्सी द्ल्या पेरेवोदा इस्तोरिचेस्किख दात् पो खिच्रे ना येव्रोपेइस्कोये लेताइस्चिस्लेनिये (लेनिनग्राद १९४०)

अध्याय ३

अब्बासी (७४६-८१८ ई०)

१. खलीफा सफ्फाह अबुल-अब्बास (७५०-७५४ ई०)

मुहम्मद अब्बासीने अबू-मुस्लिमको अपने उद्देश्य की पूर्तिके लिये अपना हथियार बनाया था। हाशिमवंश सवा सौ वर्षोंसे जिसका स्वप्न देख रहा था, उसे अबू-मुस्लिमकी सहायतासे मुहम्मद अब्बासीने पूरा करनेमें सफलता पाई, किंतु विजय प्राप्तिसे पहले ही वह मर गया। यद्यपि उसका पुत्र अबूजाफर—जो कि मंसूरके नामसे द्वितीय खलीफा हुआ—१० साल बड़ा था, किंतु दासी-पुत्र होनेसे उस समय वह गद्दी नहीं पा सका, और छोटा भाई सफ्फाहके नामसे प्रथम खलीफा हुआ। सफ्फाहका अर्थ है खूनी। न जाने क्यों इस तरहका नाम उसे पसंद आया। अब्बासी खानदान उस समय कूफा (मसोपातामिया) में रहता था। उमैया-वंशकी राजधानी दमश्क सिरियामें थी। यद्यपि आगे चलकर धीरे धीरे मसोपोतामिया (इराक)से फारसी भाषा लुप्त हो गई, किंतु अखामनी वंशके समयसे ही ईरानकी एक राजधानी मसोपोतामियामें रहती आई थी। सेलूकियोंने भी यहीं अपनी राजधानी रखी, जिसका नाम सलूकिया था। पार्थिव भी अपना राजनीतिक केन्द्र यहीं रखते थे, क्योंकि यहांसे वह अपने पश्चिमी प्रतिद्वंद्वी रोमका आसानीसे मुकाबिला कर सकते थे। यही सासानियोंकी राजधानी तस्पोन थी, जिसे अरबोंने मदैन (नगरी) नाम दे दिया। अब्बासियोंने पहलेसे चले आये अपने केन्द्र कूफाको राजधानी बनाया, जो मदैनमें घूमती खलीफा मंसूर द्वारा ७६२ ई० (१४५ हि०) में बगदादमें परिवर्तित हुई और अंत तक रही। इस्लामिक विजयके बाद करीब तीन सदियों तक उमैया और अब्बासी शासन-कालमें दरबार और सरकारकी भाषा अरबी थी, और जब तक शुद्ध ईरानी वंश ताहिरी (८१८-८७२ ई०) सफ्फारी (८६१-९०० ई०) और सामानी (८९२-८९३ ई०) ने पुनः ईरानी राष्ट्रीयताको जागृत नहीं कर दिया, तब तक (प्रायः तीन सदियों) तक अरबी भाषा ही सर्वेसर्वा रही। फारसीके राजकीय भाषा बननेका सवाल ही क्या था, जब कि उपेक्षाका शिकार होनेके कारण वह साधारण साहित्यिक भाषा भी नहीं बन पाई। अब्बासी वंश वैसे १२५८ ई० (६५६ हि०) में खतम हुआ, जब कि चिंगिसके पौत्र हुलागूखानने उसको सर्वथा उच्छिन्न करना आवश्यक समझा; किंतु, राजशक्तिके तौरपर वह छठें खलीफा मोतसिमके समय (८३३-८४२ ई०) में ही समाप्त हो गया। इस वंशके खलीफा और उनके समयमें मध्य-एसियाके राज्यपाल निम्न थे—

अब्बासी खलीफा और उनके राज्यपाल—

खलीफा		राज्यपाल	
१. सफ़ाफाह	७५०- ७५४ ई०	१. अबू-मुस्लिम	७४९-७५५ ई०
२. मंसूर	७४५- ७७५ ई०	२. अबू-दाउद खालिद	७५५-७५७ ई०
		३. अब्दुल जब्बार	७५७-७५८ ई०
		४. मेहदी (युवराज)	७५८
		५. खाज़िम	
		६. हुमैद कहतबापुत्र	७६९
३. मेंहदी	७७४- ७८३ ई०		
		७. अबू-औन	७७५
		८. मुआज मुस्लिमपुत्र	७७६
		९. मुसैयाह जुबैरपुत्र	७७९
		१०. फ़ज्ल सुलेमानपुत्र	७८२
४. हादी	७८३- ७८६ ई०		
५. हारुन रशीद	७८६- ८०९ ई०		
		११. जाफ़र अशामी	७८७
		१२. अब्बास अशासी	७८८
		१३. गतरिब्र अतापुत्र	७९१
		१४. हम्जा खुजाई	७९२
		१५. फज़ल बर्मक	७९२
		१६. मंसूर हिमयारी	७९५
		१७. जाफर बर्मक	७९६
		१८. मामून (युवराज)	७९८
		१९. अली ईसापुत्र	
		२०. हर्समा	८०९
६. अमीन	८०९- ८१३ ई०		
७. मामून	८१३- ८३३ ई०	२१. ताहिर	
		नूह (सामानी)	
८. मोतसिम	८३३- ८४२ ई०		
९. वासिक	८४२- ८४७ ई०		
१०. मुतवक्कल	८४७- ८६१ ई०		
११. मुन्तशिर	८६१- ८६२ ई०		
१२. मुस्तईन	८६२- ८६६ ई०		
१३. मुहताज	८६६- ८६९ ई०		
१४. मुहतदी	८६९- ८७० ई०		
१५. मोतमिद	८७०- ८९२ ई०		

१६.	मोजिद	८९२- ९०२ ई०
१७.	मुक्तफ़ी	९०२- ९०८ ई०
१८.	मुकतदिर	९०८- ९३२ ई०
१९.	क़ाहिर	९३२- ९३४ ई०
२०.	राज़ी	९३४- ९४० ई०
२१.	मुत्तकी	९४०- ९४४ ई०
२२.	मुस्तकफ़ी	९४४- ९४६ ई०
२३.	मुतीअ	९४६- ९७४ ई०
२४.	ताई	९७४- ९९० ई०
२५.	कादिर	९९१-१०३१ ई०
२६.	कायमं	१०३१-१०७५ ई०
२७.	मुक्तदी	१०७५-१०९४ ई०
२८.	मुस्तज़हिर	१०९४-१११८ ई०
२९.	मुस्तरशिद	१११८-११३० ई०
३०.	राशिद	११३५-११३६ ई०
३१.	मुक्तफी	११३६-११६० ई०
३२.	मुस्तखिद	११६०-११७० ई०
३३.	मुस्तजी	११७०-११८० ई०
३४.	नाशिर	११८०-१२२५ ई०
३५.	जाहिर	१२२५-१२२६ ई०
३६.	मुस्तन्शिर	१२२६-१२४२ ई०
३७.	मुस्तअसिम	१२४२-१२५८ ई०

खलीफा घोषित होनेके बाद कूफामें अबुल-अब्बासने उमैया-वंशके सर्वथा उच्छेद करने का हुक्म दिया। अलीके पक्षपाती करबलाके शहीदोंको भूल नहीं सकते थे। चारों ओर खून-खून-खूनका ही नारा था। सफ्फाहके चचा दाऊदने मक्कामें और अब्दुल्लाने फिलस्तीनमें उमैया-वंशकी संतानोंको चुन चुनकर खतम किया। अब्दुल्लाने एक बार उमैयोंको पूर्णतया क्षमादान की घोषणा कर दी, और ७० उमैया-वंशियोंको दस्तरखानपर भोजनके लिये बुलाया। बेचारे बातमें आ अच्छे दिनोंका स्वप्न देखते भोजनके लिए बैठे। अब्दुल्लाके इशारेपर उसके नौकर टूट पड़े और सबको वहीं मार डाला। हाशिमी खान्दानने उमैया-खानदानको उच्छिन्न करके ही संतोष नहीं किया, बल्कि उमैया-खलीफों की कब्रोंको खुदवाकर उनके मुर्दोंके कंकालोंको चूर्ण-चूर्ण करके हवामें उड़ा दिया। पहली विजयके बाद ही उन्होंने सिरियापर भी आक्रमण कर दिया। अंतिम नगर वासितमें उमैया सेनापति हुबैरपुत्रने शरण ली थी। उसने आत्म-समर्पण करनेमें ही भलाई समझी। उधर खुरासानमें अबू-मुस्लिम उमैयोंका नाम तक न रखनेकी प्रतिज्ञाको कार्यरूपमें परिणत करने लगा था, जिसके कारण वहां जबर्दस्त विद्रोह हुए। उमैयाके पक्षपातियोंने चीन सम्राट् ह्वेन्-चुङ (७१३-७५६ ई०) की सहायतासे बुखारा, सोग्द और फ़र्गानामें घोर संघर्ष

शुरू किया, लेकिन समरकंदके शासक ज़ियादने बड़ी क्रूरताके साथ उनको दबा दिया। मूल सोग्दी अपनी परंपराके अनुसार विदेशियोंसे लड़नेके हर एक अवसरको हाथसे जाने नहीं देते थे। उन्होंने नस्रके झंडेके नीचे आकर मुकाबिला किया, और ज़ियादने उनके साथ बड़े भयंकर ढंगसे बदला लिया। एक तरह कह सकते हैं, कि अब अन्तर्वेद (सोग्द) सोग्दियोंके हाथसे निकलता जा रहा था, राजनीतिक तौरसे ही नहीं, बल्कि जातीय तौरसे भी। खुरासानी अरबों द्वारा पराजित होकर पहले मुसलमान हो गये थे। उनकी कट्टरताका नमूना अबू-मुस्लिम खुरासानी था। शासन और सेनामें हर जगह अब खुरासानियोंकी पूछ थी। वह खुरासानसे आ-आकर अन्तर्वेदमें बसते जा रहे थे, जहां युद्ध और सामाजिक संघर्षका नेतृत्व अबू-मुस्लिम कर रहा था। अब्बासियोंके शासनकी स्थापनाके साथ ही एक दूसरे ईरानी वंशका भाग्य चमका। बलख (बाख्त्रिया) का बौद्ध नवविहार अपने प्रभाव और वैभवके लिए बहुत समयसे मशहूर था। स्वेन्-चाङ के समय (६३१-६४६ ई०) और उससे पहले यहांके प्रधान-नायक भिक्षु होते थे, लेकिन आगेकी गड़बड़ीमें किसी नायकने व्याह करके अपनी संतानको महंती दे दी और वह परमकके नामसे नवविहारकी अपार संपत्तिको भोगते मध्य-एसियाके बौद्धोंके धार्मिक नेता बन गये। यही परमक अरबीमें प अक्षरके न होनेसे बरमक हो गया। परमक वंशी पीछे मुसलमान हो गये। खालिद वर्मकीको बगदादके खलीफाका महामंत्री बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, तबसे वरमक खानदान प्रायः आधी शताब्दी (८०२ ई०) तक अब्बासी खलीफोंके विशाल राज्यका सर्वे-सर्वा रहा।

यद्यपि सोग्द और फर्गानाके विद्रोहको इस तरह दबा दिया गया, पश्चिमी तुर्क तथा उसकी शाखा तुर्गिसका साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गया; किंतु उनकी जगह घुमन्तुओंने फिर एक नया शक्तिशाली राज्य कायम कर लिया था। चीन भी इस वंशको अपने राजदूतके हाथ बड़ी बड़ी पदवियां भेजकर प्रोत्साहित कर रहा था। यही नहीं, रेशमपथको अपने हाथमें रखनेके लिये चीन नहीं चाहता था, कि फर्गाना और आगेके प्रदेशोंका मालिक उसका कोई प्रतिद्वंद्वी हो। ७४८ ई० में चीनी सेनाने आकर सुयावको ध्वस्त किया। दूसरे साल उसने शाश (ताशकंद) के शासकको अधीन सामन्तका कर्तव्य न पालन करनेके अपराधपर तलवारके घाट उतारा। फर्गानाके इखशीदको बुलानेके लिए चीनी दूत आये। इखशीद मर गया था। उसके पुत्रने सहायता के लिए अरबोंको बुलाया। जुलाई ७५१ ई० तक ज़ियादने शारिकका विद्रोह दबा दिया था। फिर उसने सेनापति कौ-स्यिन्-चाउ द्वारा संचालित चीनी सेनाकी ओर मुड़कर उसे हराया। कहते हैं, जियादने इस युद्धमें ५०००० चीनियोंको मारा और २०००० को कैदी बनाया। लेकिन चीनी लेखकोंके अनुसार उनकी सारी सेना ३०००० थीं। अरबों और चीनियोंकी यह लड़ाई बड़े ऐतिहासिक महत्वकी है। इसी लड़ाईमें इस बातका फैसला हुआ, कि उभय मध्य-एसिया चीनी संस्कृति और प्रभावमें रहेगा अथवा अरबी धर्म और संस्कृतिमें दीक्षित हो जायेगा। इस हारके बाद भी चीनी अरबोंके प्रतिद्वंद्वियोंको सहायता पहुंचाते रहे। तरिम-उपत्यका इस समय तिब्बतियोंके हाथमें थीं, जिनसे अरबोंने सुलह कर रखी थी, इसके कारण इली-उपत्यका द्वारा चीन अपनी पूरी शक्ति नहीं लगा सकता था। साथ ही थाङ्-वंशी सम्राट् स्वान्-चुङ् (७१३-७५६ ई०) को अपने आनंद-मौजसे ही छुट्टी नहीं थी, कि वह राजकाज को देखे।

अबू-मुस्लिमने अपनी ओरसे अबू-दाऊद इब्राहिमपुत्रको बलखका राज्यपाल नियुक्त किया

था। उसके खुत्तल और केश (शहसब्ज) पर भेजे अभियान सफल रहे। खुत्तल-खुदात (शासक) हारकर चीन भाग गया। केश-खुदातको मारकर अबू-दाऊदने उसकी जगह उसके भाईको शासक नियुक्त किया। ७५२ ई० में उश्रूसनाके सामन्तोंने भी अरबोंके खतरेको देखकर चीनसे सहायता मांगी, लेकिन चीन कुछ नहीं कर सका।

अबू-मुस्लिमके ही बलपर अब्बासी खिलाफत कायम हुई थी। बाम्ब्रेरीने लिखा है[1] "अबू-मुस्लिमकी ईमानदारीके प्रति हमारे मनमें सम्मान पैदा होता है। उसने आश्चर्यजनक रीतिसे थोड़ेसे समयमें अन्तर्वेदके सभी तुर्कोंको अपनी ओर कर उनको अपने साथ इतना अधिक घनिष्ठताके साथ संबंधित कर लिया, कि आज भी कितनी ही कथायें उसके संबंधमें उज्बेकों और तुर्कमानोंके मुंहसे सुनी जाती हैं, जिनमें अबू-मुस्लिमकी वीरता और चमत्कारिक कार्योंकी तुलना खलीफा अलीसे की जाती है।" अबू-मुस्लिमके खिलाफ भी शिकायतें बगदाद पहुंच रही थीं। खलीफाको भय लगने लगा, कि कहीं वह अपनी प्रचंड शक्तिको हमारे विरुद्ध न कर दे। ७५१ ई० में सफ्फाहने अपने भाईको पूर्वी प्रांतोंका हाल जाननेके लिये भेजा, जिसने खलीफाको सचेत कर दिया। अगले साल (७५२ ई० में) खलीफाके इशारेपर समरकंदके गवर्नर ज़ियादने अबू-मुस्लिमके खिलाफ विद्रोह किया। आशा यह की गई थी, कि ज़ियाद इस प्रकार अबू-मुस्लिम या उसके प्रभावको खत्म कर देगा, लेकिन परिणाम उलटा हुआ—ज़ियाद मारा गया। अगले साल (७५३ ई० में) खलीफा अम्बारमें मर गया और उसकी जगह उसका वंचित भाई अबू-जाफर मंसूरके नामसे खलीफा बना। अबु-मुस्लिम कितना जनप्रिय था, यह इसीसे मालूम होगा, कि ज़ियादने जब अपने स्वामीके विरुद्ध विद्रोह किया, तो उसकी सेनाने उसका साथ देनेसे इन्कार कर दिया। उसने भागकर वारकतके देहकानके पास शरण ली, जिसने उसका शिर काटकर अबू-मुस्लिमके पास भेज दिया। सिवा नोमानी ने भी खलीफाके इशारे पर अबू-मुस्लिम से लड़ना चाहा था, उसे पकड़कर आमूलमें प्राणदंड दिया गया। इस संघर्षमें बलखका गवर्नर अबू-दाऊद अबू-मुस्लिमके साथ रहा।

२. खलीफा मंसूर (७५४-७५७ ई०)

सफ्फाहने स्वयं अपने बड़े भाई अबू-जाफरको अपना उत्तराधिकारी चुना था, लेकिन उसका चचा अब्दुल्ला अपनी पुरानी सेवाओंके लिये खलीफा बननेके लिये उत्सुक था। अबू-मुस्लिमने जाफरका साथ दिया। अब्दुल्लाने १७००० खुरासानी सेनाका बध करवाया, लेकिन उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। अबू-मुस्लिम ने ईरानी सेनाके साथ निसिबि में पहुंचकर अब्दुल्लाकी शामी (सीरिया) सेनाको बुरी तरह हराया। अब्दुल्लाने अपने दावेको छोड़ दिया। मंसूरको इस सेवाके लिये अबू- मुस्लिमका बहुत कृतज्ञ होना चाहिये था, लेकिन वह नहीं चाहता था कि खलीफा बनाने-बिगाड़नेका अधिकार किसी दूसरेके हाथ में हो। खलीफाके बुरे भावोंका पता अबू- मुस्लिमको लग गया था, और वह खुरासान लौटना चाहता था। खलीफा समझता था, सारा खुरासान अबू-मुस्लिमके साथ है, इसलिये उसे वहां जाने देना अच्छा नहीं। उसने अबू-मुस्लिमको सिरिया-मिस्र का मलिक नियुक्त किया और आकर भेंट करनेके लिये मदैन (राज-

[1] History of Bokhara (A. Vambery)

धानी) बुलाया। अबू-मुस्लिमने इसके उत्तरमें लिखा—"एक सासानी शाहने एक बार कहा था 'वजीरके लिये इससे अधिक खतरेका समय दूसरा नहीं हो सकता, जब कि राज्यमें पूर्ण शांति विराज रही हो।...इसलिये मैं इसे उचित नहीं समझता, कि अमीरूल्मोमिनीन (विश्वासियोंके स्वामी) के समीप रहूँ। हां, इसके कारण उनकी स्वामिभक्त प्रजा रहनेसे मैं अपनेको रोक नहीं सकता। अगर अमीरूल्मोमिनीन मुझे ऐसा करनेकी इजाजत देंगे, तो मैं उनका अत्यन्त विनम्र सेवक बना रहूँगा। पर यदि वह अपनी दुर्भावनाओंके वशमें पड़ेंगे, तो मुझे मजबूर होकर अपनी सुरक्षाके लिये अपनी राजभक्ति लौटा देनी पड़ेगी।"

इसके उत्तरमें खलीफाने लिखा—"मैंने तेरे पत्रका भाव समझ लिया, लेकिन तेरी स्थिति सासानी राजाओंके बुरे वजीरोंसे भिन्न है।...तेरे जैसे नम्र और स्वामिभक्त सेवकको शांतिकालमें किसी चीजसे डरनेकी अवश्यकता नहीं। यद्यपि तेरे पत्रके अंतमें जिन बातोंकी ओर संकेत किया गया है, उनसे तू पूर्णतया मेरे अधीन है, यह बात सिद्ध नहीं होती; लेकिन आशा है, कि तू इस पत्रके वाहकके साथ अवश्य लौट आयेगा। मैं अल्लाहसे प्रार्थना करता हूं, कि वह तुझे शैतानके फरेबमें पड़नेसे बचनेकी शक्ति दे। शैतान तेरे शुभ संकल्पोंको बेकार करनेकी कामना रखता है और तेरे लिये सर्वनाशके दरवाजेको खोलना चाहता है।"

अबू-मुस्लिमने उत्तरमें लिखा—"मेरे पास पैगंबरके परिवारके साथ बहुत घनिष्ठ तथा संबंधित एक पथप्रदर्शक (तुम) था, जिसका काम था, अल्लाहकी बतलाई शिक्षा और कर्त्तव्य कर्मके बारे में मुझे शिक्षा देना। उससे मैं ज्ञान-विज्ञान सीखनेकी आशा रखता था, लेकिन उसने संसारी चीजोंके लोभमें स्वयं कुरानके वाक्यों द्वारा मुझे अज्ञान और भ्रान्तिमें डाल दिया। उसने उलटी व्याख्या की तथा अल्लाहके नामपर मुझे तलवार निकालनेके लिये कहा और हुकुम दिया, कि अपने हृदयसे दयाके भावोंको लुप्त कर दूँ, और अपने शत्रुओंकी प्रार्थना और दया भिक्षाको न स्वीकार करूं, किसी भी अपराधको न क्षमा करूं। मैंने उसे स्वामी बनानेके लिये सब कुछ किया। अब मेरे लिये इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं रह गया, कि मैंने जो पाप किए हैं, उन्हें क्षमा करनेके लिये अल्लाहसे प्रार्थना करूं।"

यह पत्र भेजकर अबू-मुस्लिम खुरासान चला गया। मंसूरने अबू-मुस्लिम द्वारा नियुक्त खुरासानके राज्यपाल अबू-दाऊद खालिदको राज्यपाल बनाकर उसे हुकुम दिया, कि वह अबू-मुस्लिमकी शक्तिको खतम कर दे। सेनाको तब तक उसका हुकुम मानना था, जब तक कि वह अब्बासी-वंशके लिये लड़ता था, अब वह विद्रोही है, इसलिये वह मृत्युदंडके योग्य है। अबू-दाऊदने वह पत्र खुरासानी सेना और अफसरोंको दिखलाया। सबने अबू-मुस्लिमको छोड़कर अबू-दाऊद को अपना अधिपति माना। अबू-मुस्लिमको यह खबर मालूम हुई। उसने सब ओरसे निराश होकर खलीफाकी सेवामें जाना स्वीकार किया। वह राजधानी मदैन पहुंचा। वहीं खलीफा द्वारा नियुक्त पांच हत्यारोंने ४५ सालकी आयुमें इस पराक्रमी विजेताको ७४५ ई० (१४७ हि०) में मार डाला। अबू-मुस्लिमने अब्बासी वंशकी स्थापनाके लिये छ लाख आदमियोंकी हत्या कराई थी। सबका जिम्मेवार वही नहीं, बल्कि उसका स्वामी था, जिसको गद्दीपर बैठानेके लिये उसने सब कुछ किया था। अब खलीफाने अपनेको बिल्कुल स्वतंत्र समझा। लेकिन अबू-मुस्लिमके मरनेके बाद उसके अनुयायी खलीफाके खिलाफ हो गये, और उन्होंने हाशिमी वंशमें अब्बासियोंका साथ छोड़कर अली-वंशके पक्षपातियोंके साथ हो जाना पसंद किया। अबू-मुस्लिमके मरनेके बाद

खुरासानमें भारी विद्रोह हुआ। यद्यपि उसे दो मासके भीतर ही दबा दिया गया, लेकिन उसके दलको नष्ट नहीं किया जा सका। अन्तर्वेद और ईरानके शिया (अली-पक्षीय) आंदोलनकारी अबू-मुस्लिमको शहीद मानने लगे। इस दलने अपनी पोशाक और झंडेका रंग सफेद रखा, इसीलिए उन्हें श्वेतपट (सपीद-जामगान, अलमुवैयदा) कहा जाने लगा।

(२) अबूदाऊद खालिद इब्राहीम पुत्र—अबू-मुस्लिमके अनुयायियोंको दबानेके लिये दाऊद ने बहुत प्रयत्न करना चाहा, लेकिन वह बहुत दिनों तक जी नहीं सका। महलके जंगलेसे गिर जानेके कारण उसकी कमर टूट गई, (स्वामीके साथ विश्वासघात करनेवालेको मानो अल्लाहकी ओरसे दंड मिला) और उसी साल (८५७ ई० में) वह मर गया।

(३) अब्दुल जब्बार (७५७-७५८ ई०)—अबूदाऊदकी जगह यह राज्यपाल होकर आया, । बुखाराके अरब शासक मुजाशी हारिस-पुत्र अन्सारीको इसने फांसीपर चढ़ाया, क्योंकि उसकी सहानुभूति शियोंके साथ थी। अब्दुल जब्बार विद्रोहको दबानेमें सफल नहीं हुआ। जब उसे अपने बर्खास्त करनेकी खबर मिली, तो वह स्वयं विद्रोही बन गया। अब खलीफाने अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारी मेहदीको खुरासानका राज्य-पाल बनाकर भेज ।

अब्बासी खलीफा यद्यपि अरब थे, लेकिन विवाह-शादी और राजनीतिक कारणों से उन्होंने ईरानियोंके साथ बहुत घनिष्ट संबंध स्थापित किया था, इसीलिए बरमक-वंशियोंको अपना प्रधान-मंत्री बनाया। इनके कालमें भी ईरानी (पारसी) भाषाको राज्यका आश्रय नहीं मिला, और अरबी ही राज्य-भाषा बनी रही। अब्बासियोंके कालमें ही ग्रीक तथा संस्कृत आदि भाषाओंकी अमूल्य साहित्यिक निधियोंको अनुवाद करके अरबी भाषाको बहुत समृद्ध किया गया। तो भी बहुत सी बातोंमें अब्बासी खलीफा ईरानियतको पसंद करते थे। जहां पहले अरबोंने शासनकी सुभीते के लिये अपने प्रतियोगी सासानियोंकी कितनी ही बातें जल्दी जल्दीमें स्वीकार कर ली थीं, वहां अब सासानी प्रभाव राजकाजके हर विभागपर स्पष्ट दिखाई पड़ता था। उमैयाकी राजधानी दमश्क थी, जहां रोमन क्षत्रप पहले रहा करता था, इसलिए उनपर रोमन प्रभावका अधिक पड़ना आवश्यक था। ७६२ ई० में खलीफा मंसूरने बगदाद नगरकी स्थापना की, और ७६८ ई० में उसे खलीफाकी राजधानी बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इससे पहिले थोड़े समय तक कूफा अब्बासियोंकी राजधानी रही, फिर मदैन (तस्पोन) हुई, जो कि बहुत पहलेसे ईरानकी राजधानी रहती आई थी। नई राजधानीका नाम बगदाद (भग-दत्त, भगवानका दिया) यही बतलाता है, कि ईरानका प्रभाव अल्लाह शब्द तक पहुंच चुका था। मध्यएसियाके लिये अरबोंने मेर्वको राजधानी बनाया, यद्यपि इससे पहिले तुर्को और दूसरे राजवंशोंने बलखको प्रधानता दी थी।

अब्बासियोंने अब खुलकर अली और अबू-मुस्लिमके अनुयायी शियोंका दमन करना शुरू किया । पैगंबरके वंशके नामसे उन्होंने अपने दलको संगठित किया था। फिर लोग पैगंबरकी बेटीके वंशको छोड़कर पैगंबरके चचा अब्बासको क्यों मानते ? अब्बासी वंश अब केवल शस्त्रके बलपर ही लोगोंको दबा सकता था, वह शिया संप्रदायका अगुवा अपनेको नहीं कहा सकता था। इमाम हसनके वंश-धर मुहम्मद और इब्राहीमने ७६२ ई० में विद्रोह किया। इससे पहले ७५८ ई० में एक ईरानी धार्मिक संप्रदाय रावंदीने काफी तरद्दुदमें डाला और एक बार तो उसके कारण खलीफाके प्राण भी संकटमें पड़ गये थे। रावंदियोंके सिद्धांतोंमें पुनर्जन्म भी था, जो

कि पूर्वी ईरान और मध्य-एसियामें हाल तक बहुत प्रभाव रखनेवाले बौद्ध धर्मके कारण था। इस्लामके भीतर होनेके कारण वह अल्लाहको मानते थे, लेकिन जिब्रैल (फारिश्तोंके सरदार) आदम ही नहीं बल्कि खलीफा और उसके दो सेनापतियोंके शरीरमें भी अल्लाहका अस्थायी तौरपर निवास अर्थात् आंशिक अवतार मानते थे । मध्य-एसिया और पूर्वी-ईरानमें अशांति थी, अरमेनियाके उत्तरमें हूणोंके वंशधर खाजार घमन्तुओंका भारी दबाव था। उनसे लड़नेके लिये ७६२ ई० में खलीफाकी सेना अरमेनिया पहुंची। खाजार कास्पियन समुद्रके पश्चिमी तटके मालिक थे। उन्हींकी प्रधानताके कारण कास्पियन समुद्रका नाम बहीरा-खाजार (खाज़ार-समुद्र) पड़ा, जो आगे बहीरा-खिजिर बनाकर खिजिर फरिश्ताके साथ जोड़ दिया गया।

मंसूरको एक और ईरानी संप्रदाय उस्ताद्सीके विद्रोहका मुकाबिला करना पड़ा। इस संप्रदायके अधीन हिरात, बादगी, सीस्तान तथा दूसरे प्रदेशोंके तीन लाख ईरानी सैनिक लड़ रहे थे। इन्होंने खुरासान और मेर्व-रूद प्रदेशके अब्बासी सैनिकोंको भागनेके लिए मजबूर किया, तब मंसूरने सेनापति खाजिम खुज़ैम-पुत्रको मेंहदीकी सहायताके लिये भेजा। ख़ाज़िमने २०००० सेना लेकर उस्ताद्सियोंपर चढ़ाई की। ७०००० उस्ताद्सी मारे गये और १४००० बंदी बनाये गये। उस्ताद्सी पहाड़ोंमें भागे, लेकिन वहां भी उनका पीछा किया गया और उन्हें आत्म-समर्पण करना पड़ा। बगदादमें रूसाफ नामका एक अलग महल्ला बसाया गया था, जो खुरासानियोंके लिए था। अभिमानी अरब खलीफा पैगंबर-जातीय तथा विश्व-विजेता होने के अभिमानमें चूर हो बाकी सभी लोगोंको नीच समझते थे, इसलिए खुरासानियोंका उनके भीतर निर्वाह नहीं हो सकता था, इसीलिए कूफा और मदैनके अरबी वातावरणसे अलग होनेके लिये बसाये बगदाद नगरमें भी अरबोंका प्रधान मुहल्ला अलग हो रहा।

(६) **हुमैद कहतबापुत्र (७६९-७७५ ई०)**—प्रसिद्ध सेनापति कहतबाका पुत्र हुमैद अब खुरासानका राज्यपाल नियुक्त हुआ। अभी तक अरबोंने हिंदूकुश (महाहिमगिरि) पर्वतमालाके पश्चिम तक ही अपनी विजयको सीमित रक्खा था। हुमैदने काबुलके विरूद्ध जहाद (धर्मयुद्ध) घोषित किया। काबुलकी प्रजा और वहांके तुर्क शासक भारतीय संस्कृति और धर्मके प्रभाव क्षेत्रमें थे। इससे आधी शताब्दी पहले सिंध और मुल्तानको अरबोंने इस्लामिक सल्तनतके आधीन किया था, और पख्तूनों (पठानों) से छेड़-छाड़ नहीं शुरू की थी। सिंध और मुल्तानमें अरबोंके शासनमें उतनी धर्मांधता नहीं थी, किंतु हुमैदने जैसे-तैसे सारे काबुलको मुसलमान बनानेका संकल्प कर लिया। यद्यपि अभी उसे इतनी सफलता नहीं हुई।

३. खलीफा मेंहदी (७७४-७८३ ई०)

मंसूरके बाद उसका पुत्र मेंहदी खलीफा बना। उसने जिस समय शासन आरंभ किया, उस समय मध्य-एसियाकी अशांति दबाई नहीं जा सकी थी।

(७) **अबू-औन (७७५-७७६ ई०)**—हुमैदकी जगह अबूऔन राज्यपाल बनकर आया। मेंहदी खुरासनाकी परिस्थितिसे स्वयं वाकिफ था। अबू-मुस्लिमके कतलके बाद उसके अनुयायियोंका नेता एक अनपढ़ व्यक्ति इसहाक हुआ,जो उत्तरमें तुर्कोंके पास दूत बनकर भेजा गया था, इसलिए उसको अल्-तुर्क भी कहते थे। इसहाकके नेतृत्वमें अन्तर्वेदका विद्रोह बहुत प्रबल

हो उठा था। वह अपनेको ईरानी पैगंबर जर्थुस्तका उत्तराधिकारी जिंदा-जर्थुस्त घोषित करते हुए कहता था, कि अपने धर्मकी स्थापनाके लिए ईरानियोंमें जर्थुस्त फिर आ गया। यद्यपि इसहाकके विद्रोहको दबा दिया गया, लेकिन अबू-दाऊदको इसी संप्रदायके आदमीके हाथों प्राण खोना पड़ा। अबू-दाऊदके उत्तराधिकारी अब्दुल-जब्बारने ७६९ ई० में विद्रोहियोंका साथ दिया था। इन विद्रोहियोंका नेता श्वेतपट बराज़ था। अब्दुल-जब्बार पराजयके बाद मेर्वरूदके पास पकड़ा गया और उसे सरकारके हवाला कर दिया गया।

मुकन्ना विद्रोह—मध्य-एसियामें सबसे अधिक खतरनाक विद्रोह मुकन्नाका था। मुकन्नाका असली नाम हाशिम हाकिम-पुत्र था। वह मेर्वके पास पैदा हुआ था। पैगंबरीका दावा करनेके बाद वह अपने मुंहपर हरा परदा डाले रहता था। उसने अपने अनुयायियोंको समझा रखा था, कि मेरे चेहरेका तेज़ इतना तीव्र है, कि उसे कोई सहन नहीं कर सकता, इसीलिये मैं चेहरेपर हरा परदा डालता हूं। मुकन्ना पहले अबू-मुस्लिमका अनुयायी था, फिर अब्दुल्-जब्बारके विद्रोही होनेपर उसका साथी बना। उसका उपदेश था—जैसे अल्लाह (खुदा) ने आदम, नूह, इब्राहीम, मूसा, ईसा और अबू-मुस्लिम में अवतार लिया, वैसे ही आज वह मेरे भीतर है। अरबोंने हरा परदा डालने के लिये उसका नाम "अल्-मुकन्ना" (परदेवाला) रख दिया। यह कहना संदिग्ध है, कि उसने अपने चेहरेकी कुरूपताको ढकनेके लिये परदा रखना शुरू किया था। पहले पहल सुबाह गांवने उसका पक्ष लिया, फिर किश और नसाफके इलाकेमें उसे सफलता मिली। बुखारा-खुदात बुनियात उसका सहायक बना। सोग्दमें भी मुकन्ना-पंथियोंने विद्रोह कर दिया। बुखारा-प्रदेश के मुकन्नियोंका केन्द्र नरशाख था, जहां प्रसिद्ध अरबी-इतिहासकार नरशाखीपैदा हुआ। मुकन्नाको तुर्कोंसे भी सहायता मिली। अंतमें जब खलीफाकी भारी पलटन चढ़ दौड़ी, तो उन्हें दबना पड़ा, और मुकन्नाने किश (शहरशब्ज़) के पास एक पहाड़ी किले में शरण ली। चारों ओरसे निराश होकर मुकन्नाने जहर खा लिया और उसका शिर काटकर मेंहदीके पास हलब (अलेप्पो) भेजा गया।

(८) मुआज मुस्लिमपुत्र (७७६-७७९ ई०)—मुआज जब मुकन्नाके विद्रोहको दबा नहीं सका, तो मुसैयाह जुबैर-पुत्र (७००-७८३) को आना पड़ा।

(९) मुसैयाह जुबैरपुत्र (७७९-७८२ ई०)—यह मुआजकी जगह राज्यपाल होकर आया, और मुकन्नी विद्रोह दबानेमें इसे सफलता मिली। इस समय अन्तर्वेद के कितनेही गांवोंमें ज़िंदीक़ (मज्दकी) रीति-रवाजवाले बहुतसे श्वेतपट (सफेद-जामगान) रहते थे, जिनमें सबसे अधिक इलाककी देहातोंमें फैले हुए थे। मज्दक मानीके धार्मिक सुधारोंका पक्षपाती तथा साम्यवादी समाज स्थापित करनेकी इच्छा रखता था। कवादके शासनकाल (४८७-९८, ५०१-३१) में उसे बहुत भारी सफलता मिली थी, किंतु कवादने बुढ़ापेके समय उसका साथ छोड़ दिया और अपने पुत्र खुस्रो अनौशेरवानके उत्तराधिकारके झगड़ेके साथ मज्दक और मज्दकियोंको बड़ी भारी संख्यामें मरवाया। यही मज्दकी अरबों और इस्लामकेसमय जिंदीक बन अपनेको छिपानेके लिये, इस्लाम या शिया संप्रदायका परदा डाले रहते थे, यद्यपि भीतरसे वह मज्दकी सिद्धांत (वैयक्तिक संपत्ति और विवाह-प्रथाके-विरोध) के पक्षपाती थे।

यद्यपि नस्रने उमैयोंका पक्ष लेकर अपने प्राणोंको खोया, लेकिन पीछे उसके वंशज अब्बासियों केअनुकूल हो गये। नस्र-वंशी लैसके लड़के रफीने मुकन्ना-विद्रोहके दबानेमें अपने चचेरे भाई असन तामन-पुत्रको साथ लेकर अब्बासियोंकी मदद की। पीछे रफी पर व्यभिचारका अपराध लगाया

गया, तो उसने प्राणरक्षाके लिये विद्रोही बन समरकंदको दखल कर वहांसे अब्बासी शासनको खत्म कर दिया। नसाफके निवासियोंने उससे सहायता मांगी, तो उसने शाश (ताशकंद) के शासकको तुर्कोंकी सेनाके साथ सहायतार्थ भेजा। फर्गाना, खोजन्द, उश्रूसना, शगानियान, बुखारा, ख्वारेज्म और खुत्तलके लोग रफीके ओर हो गये थे। उसके उत्तरके पड़ोसी ताकुज-आगूज, करलुक और तरिम-उपत्यकके शासक तिब्बतियोंने भी उसकी सहायताके लिये आदमी भेजे थे।



२८. अरब (अब्बासीय) साम्राज्य (८०६ ई०)

रफीका विद्रोह जल्दी नहीं दबा। जब उत्तरी तुर्कोंने उसका साथ छोड़ दिया और अब्बासी सेनाका जोर बढ़ा, तो उसने ८०९ ई० में खलीफा मामूकी न्यायप्रियताको सुनकर उसके पास आत्म-समर्पण किया। मामूने उसे पूर्ण क्षमा प्रदान की और इस प्रकार दस-पंद्रह वर्षके बाद यह भीषण विद्रोह दब सका।

(१०) फजल सुलेमान-पुत्र तूसी (७८२-७८७ ई०)—मुसैयाहके असफल होने पर फज्लको सीस्तान और खुरासानको राज्यपाल बनाकर भेजा गया। इसके अगले साल खलीफा मेंहदी मर गया।

४. हादी (७८३-७८६ ई०)

चौथे खलीफा हादीका शासन भी अशांतिपूर्ण रहा, अन्तर्वेदमें विद्रोह होते रहे।

---

[1]Turkistan Down to Mongol Invasion; History of Bokhara (Vambery)

५. हारून रशीद (७८६-८०९ ई०)

अब्बासी खलीफोंमें अपने विद्याप्रेम और दरबारी दबदबेके लिए हारून और उसके पुत्र मामूनकी ख्याति दुनियामें सबसे बढ़कर है। ७८६ ई० में हारूनने खालिदकी जगह उसके पुत्र यहिया बरमकको अपना प्रधान-मंत्री बनाया। अब्बासी वज़ीरोंमें यह सबसे शक्तिशाली था, जिसके हाथमें ८०२ ई० तक सारी सल्तनतकी बागडोर रही।

(११) जाफर अशासी (७८७-७८८ ई०)—साल भरके लिये जाफर खुरासानका राज्य-पाल बनकर आया।

(१२) अब्बास अशासी (७८८-७९१ ई०)—पिताके सफल न होनेपर उसका पुत्र अब्बास राज्यपाल बनकर आया, किंतु उसे भी रफीके सामने बहुत सफलता नहीं मिली।

(१३) मतरिब अनापुत्र (७९१-७९२ ई०)—यह जाफरका भाई था, जिसे भतीजेकी जगह राज्यपाल बनाकर भेजा गया, किंतु कोई सफलता न दिखलानेके कारण उसे भी साल भर बाद लौट जाना पड़ा।

(१४) हजमा खुजाई (७९२-७९४ ई०)—इसके समय दैलममें शियोंका जबर्दस्त विद्रोह हुआ।

(१५) फज़्ल यहियापुत्र बरमक (७९४-७९५ ई०)—प्रधान-मंत्री यहियाने अपने पुत्र फ़ज़्लको खुरासानका राज्यपाल बनाकर भेजा। फ़ज़्लने खुरासानमें कितनी ही मस्जिदें बनवाई और डाकके सुप्रबंधके लिये डाक-चौकियां कायम कीं। उसने अन्तर्वेदमें जहाद (धर्मयुद्ध) घोषित किया, जिसके उत्तरमें उश्रूसनाके राजा खाराखरूने अब्बासी सेनापर असफल आक्रमण किया।

(१६) मंसूर हिमयारी (७९५-७७९६ ई०)—फ़ज़्लका स्थान इसने लिया, किंतु इसे भी सफलताका मुंह देखना नहीं नसीब हुआ।

(१७) जाफर यहिया-पुत्र बरमक (७९६-७९८ ई०)—प्रधान-मंत्रीने अपने दूसरे पुत्र जाफ़रको सीस्तान और खुरासानका उपराज बनाकर भेजा किंतु वह भी दो सालसे अधिक नहीं टिक सका।

अब हारूनने अपने शिशु पुत्र मामूनको हमदान (पश्चिमी ईरान) से पूर्वके सारे प्रदेशका क्षत्रप बनाकर भेजा और संरक्षक होनेके कारण शासन जाफरके हाथमें रहा।

(१८) अली ईसा-पुत्र—अलीका राज्यपाल होना बगदादमें बरमक वंशके पतनका द्योतक था। यहिया, और उसके दोनों पुत्र फ़ज़्ल और जाफ़र बरमक वंशके अंतिम प्रभावशाली शासक थे। नये राज्यपाल अलीने प्रजापर इतना अत्याचार किया कि, ८०४ ई० में उसके अत्याचारोंकी जांचके लिये अपने उत्तराधिकारी अमीनको बगदादमें स्थानापन्न बनाकर हारूनने स्वयं ५०००० सेनाके साथ प्रस्थान किया। रे (तेहरान) में अली भारी भेंटके साथ खलीफाके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा था। भेंटको देखकर खलीफा खुश हो गया। वह स्वयं ८०६ ई० में बगदाद लौट गया और अली ईसा-पुत्र अपनी राज्यपालीकी ओर। इसीके शासनकालमें लैस-पुत्र रफीको खूब आगे बढ़नेका मौका मिला और उसने समरकंद पर अधिकार कर सोग्दियों और तुर्क घुमन्तुओंकी सहायतासे अलीकी सेनाको अन्तर्वेदसे मार भगाया। जब यह खबर हारूनको मिली, तो उसने सेनापति हरसमाको भेजा। उसके भी

सफल न होनेपर युवराज अमीनके हाथमें शासनका काम छोड़ हारूनने स्वयं युद्धक्षेत्रका रास्ता लिया। किरमानशाह पहुंचकर उसने अपने दूसरे पुत्र मामूनको फज़्ल सहल-पुत्रकी सचिवतामें मेर्वमें निवास ग्रहण करनेके लिये भेजा। हरसमाने आगे बढ़कर रफीके ऊपर चढ़ाई की। बुखारामें अपना युद्ध-शिविर रक्खा, और कुछ ही समयमें सारे अन्तर्वेदको अपने हाथमें करनेमें सफल हुआ। हारून बीमारीके कारण धीरे-धीरे ही खुरासानकी ओर बढ़ सकता था। तूस पहुंचनेपर उसकी हालत बहुत खराब हो गई और वहीं २४ मार्च ८०९ ई० (जमादी २, १९३ हि०) को वह ४५ सालकी उम्रमें मरा, तूसमें ही उसकी कब्र बनी।

६. अमीन (८०९-८१३ ई०)

हारूनके मरनेपर उसके दोनों पुत्रों अमीन और मामूनमें सिंहासनके लिये झगड़ा हुआ। अमीनका राजधानीपर अधिकार था और मामूनका खुरासान तथा मध्य-एसिया पर। अमीनने अपने वजीर फज्ल रबीअपुत्रके परामर्शसे तूसमें अवस्थित सेनाको लौटनेके लिये आज्ञा भेजी। यह काम भाई ही नहीं पिताकी इच्छाके भी विरुद्ध था, इसलिये उसका पालन होना आसान नहीं था। मामूनने सारे डाक-संबंध तोड़ दिये और अपनेको हमदानसे पूरब तिब्बतके सीमांत तक फैले राज्यका खलीफा घोषित किया। वजीर फज्ल सहल-पुत्रकी योग्यताके कारण वह अपने यहां व्यवस्था स्थापित करनेमें सफल हुआ। कुछ समयके घेरेके बाद हरसमाने समरकंद ले लिया। रफीने मामूनके हाथमें आत्म-समर्पण किया। उसे क्षमा मिली। अमीनने जब मामूनको दबानेमें सफलता नहीं पाई, तो उत्तराधिकारियोंकी सूचीसे उसका नाम निकलवा दिया। मामूनने भी राज्यके आधे भागमें खुतबासे भाईका नाम निकलवा दिया। अमीनने ८१० ई० में मामूनको दबानेके लिये ५०००० सेना देकर अली ईसा-पुत्रको भेजा। रे (तेहरान)में जब वह पहुंचा, तो देखा, कि मामूनका जनरल ताहिर सीमांत-रक्षाके लिये तैयार है। ताहिरने अलीको द्वंद्व-युद्धमें मार डाला। अलीकी सेना भाग खड़ी हुई। मामूनने ताहिरको बगदादपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। हरसमाकी सेनाके साथ ईरानी और तुर्की सेना ले ताहिरने बगदादी सेनाको हराते १२ महीनेके घिरावेके बाद (८१३ ई०) बगदाद ले लिया। भागनेकी कोशिश करते अमीनको एक ईरानी सिपाहीने मार डाला।

मामूनने अपने खुरासानके निवास-काल (८०९-८१८ ई०)में सोग्द, उश्रूसन, फर्गानाके राजाओंको अधीनता स्वीकार करनेके लिये सेना भेजी थी। ८१० ई० (१५४ हि०) में उसकी सेनाने कुलान (वर्तमान तरती, जिला औलियाअता) पर आक्रमण किया। इसी समय सूफी सकीकी इब्राहीम-पुत्र बलखी मारा गया। ८११ ई० में मामूनने अपने वजीर फज्लसे शिकायत की थी,— बड़े बुरे मौकेपर अभियान करनेके लिये मजबूर होना पड़ा है, इस समय करलुकोंका यब्गू अधीनता स्वीकार करनेसे इन्कार करता है, तिब्बतका खाकान (चन्-पो) भी विरुद्ध है, काबुलका राजा खुरासानपर आक्रमण करनेकी तैयारी कर रहा है, उतरारके शासकने कर देनेसे इन्कार कर दिया है। वजीर फज्लने सलाह दी—"यब्गू और तिब्बतके खाकानको पत्र लिखकर उन्हें अपने राज्यका राजा तथा पड़ोसियोंके आक्रमण करनेपर सहायता देनेका वचन दो। काबुलके राजाको भेंट भेजकर शांतिका वादा करो और उतरारके राजाका एक सालका कर माफ कर दो।" मामूने वैसा ही किया।

७. मामून (८१३-८३३ ई०)

८१३ ई० में मामूनके हाथमें निष्कंटक खिलाफत आई, लेकिन अरबोंके डरके मारे मामूनने वजीर सहलपुत्रकी रायसे बगदाद न लौट मेर्वको ही अपनी राजधानी रक्खा। इसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ, पश्चिमी प्रदेशकी प्रजा खलीफासे रुष्ट हो गई और मामूनको अपने भाईकी तरह दूसरोंके हाथमें खेलना पड़ा। उसने अपने विश्वासपात्र ईरानी सेनापति ताहिरको बगदादका शासक बनाकर भेजा। ईरानियोंकी मददसे मामूनने भाईको हराकर तख्त पाया था, और उन्हींके बलपर मेर्वको राजधानी बनाया था, इसलिये ईरानियोंका प्रभाव बढ़ना स्वाभाविक था। मध्य-एसियाके दो शासक ताहिरी और सामानी इसी समय मूलबद्ध हुए। ताहिर बगदाद-पर शासन करनेमें अधिक सफल नहीं हुआ। वहां अरबोंका प्रभाव अधिक था, जो ईरानियोंके प्रभुत्वको देख नहीं सकते थे। उधर अमीनके खूनका बदला लेना भी आवश्यक था। ताहिरने दामकी जगह शाम और भेंदसे काम लिया और एक बार सारे इराकपर खलीफाका प्रभुत्व स्थापित कर दिया। किंतु, राजधानी हट जाने से बगदाद और उसके आसपासके लोगोंको जो क्षति हो रही थी, उसके कारण विद्रोह और वैमनस्य बढ़ता ही गया। ईरानकी और जगहोंमें भी ऐसे विद्रोहोंकी कमी नहीं थी। वजीर फज्ल सहलपुत्र ईरानी था, यह अरबोंके लिये आगपर घी का छिड़कना था। बहुत समय तक मामून अपने वजीरके हाथमें खेलता रहा। उसने ईरानियोंको बड़े बड़े दर्जे दिये। यद्यपि मध्य-एसियाका शासन-सूत्र पहले ताहिरी वंशमें गया, लेकिन उसी समय सामानी भी प्रभुत्वमें आये। ८१७ ई० में नूह सामानी और उसके भाइयोंको समरकंद, फर्गाना, शाश, उश्रूसनासे उत्तर-पूरब सिर-नदीके दक्षिणी तटपर चिरचिक-उपत्यकामें, पैरक, उश्रूसना (उरा-त्यूबे जिला), और हिरात नगरका शासक बनाया गया। ८७० ई० में मामून-को सहलपुत्रकी नीति गलत मालूम हुई, उसे खतरा साफ-साफ दिखाई पड़ने लगा। इसी साल मामूनने मेर्वसे बगदादके लिये प्रस्थान किया। सरख्श पहुंचनेपर मामूनके इशारेपर वजीर फज्ल गुसुलखानेमें मरा पाया गया। मामून बगदाद नगरमें दाखिल हुआ। अब ईरानी दल उसके कोपका भाजन था। उसने बगदादके शासक ताहिरको पदच्युत कर दिया। ताहिर ने जब पूरब जानेका निश्चय किया, तो उसे प्रसन्न करनेके लिये ८१८ ई० में पूरबका उपराज बना दिया। लेकिन साथ ही खलीफाने एक हिजड़ा भी साथ करके उसे हिदायत कर दी थी, कि यदि ताहिर विरुद्ध जावे, तो उसे जहर दे देना। ताहिरको यह बात मालूम हो गई। उसने अपने शासित देशमें खुतबेसे मामूनका नाम निकलवा दिया, लेकिन दूसरे ही दिन ताहिर अपने बिस्तरे पर मरा पाया गया।

मेर्व ८०९ से ८१३ ई० तक खलीफा अमीनके प्रतिद्वंद्वी मामूनकी और ८१३ से ८१७ ई० तक खलीफा मामूनकी राजधानी रहा। ताहिरियोंने अपनी राजधानी नेशापोरमें रखी।

(अरबी साहित्य)—मंसूर और हारून तकका शासनकाल (७४५-८३३ ई०) अरबी साहित्यके तीव्र विकासका समय है। यद्यपि ७वीं सदीके मध्यसे लेकर प्रायः १०वीं सदीके मध्य तक अरबी (पारसीके क्षेत्रकी भी) राजभाषा रही, किंतु उसके साहित्य-सृजनका विशाल कार्य अब्बासीखलीफोंकी संरक्षकतामें इसी वक्त हुआ। ग्रीक, पहलवी और संस्कृत भाषाओंसे हुए अनुवादोंको देखकर अरब विद्वानोंकी आंखें खुलीं। ग्रीक (यूनानी) साहित्यकी निधियोंके महत्त्वको

समझ कर उमैया खलीफा यज़ीद (१) (६८०-६८३ ई०) के पुत्र खालिद (मृत्यु ७०४ ई०) ने अनुवादके कामको पहिले पहिल शुरू कराया। उसे कीमिया (रसायन) का बहुत शौक था। उसीने सर्व प्रथम एक ईसाई साधु द्वारा कीमियाकी एक यूनानी पुस्तकका अरबीमें अनुवाद कराया। लेकिन अनुवादकी प्रगति आगे नहीं बढ़ी। उमैया-वंश अरब-जाति और अरबी भाषाको दुनियामें सर्वोपरि मानता था, इसलिये उसका ध्यान उधर क्यों जाता? अब्बासी वस्तुत: आधे अरब और आधे ईरानी थे, इसलिए पहलवीके साथ-साथ यूनानी (ग्रीक) और सुरियानी भाषाओंके साहित्य की ओर भी उनका ध्यान गया। मंसूरके शासनकाल (७५३-७७४ ई०) में वैद्यक, तर्कशास्त्र, दर्शन और भौतिक विज्ञानके बहुतसे ग्रंथ अरबीमें अनुवादित हुए। उस समयके अनुवादकोंमें इब्न-मुकफ्फा (मुकफ्फा-वंशी) का नाम विशेष तौरसे स्मरणीय है। मुकफ्फा स्वयं ईरानी जाति का ही नहीं, बल्कि ईरानी धर्मका भी अनुयायी था। उसने कितने ही ग्रीक दर्शन-ग्रंथोंके भी अनुवाद किये। बहुतसे और अरबी अनुवादोंकी भांति वह काल-कवलित हो गये, लेकिन ग्रीक विचारधाराके प्रसारमें मुकफ्फाके अनुवादोंने बड़ा काम किया, इसमें शक नहीं।

हारून और मामूनके अनुवादकोंमें कुछ भारतीय पंडित भी थे, जिन्होंने वैद्यक और ज्योतिष के संस्कृत ग्रंथोंके अनुवाद करनेमें सहायता की—सिंध इस समय अब्बासियों का था। अब्बासी-कालके कुछ अनुवादक हैं[1]—

अनुवादक	ग्रंथ	मूलकार
योहन्ना बित्रिक-पुत्र	तेमाऊस	प्लातोन
...	प्राणिशास्त्र	अरस्तू
...	मनोविज्ञान	,,
...	तर्कशास्त्र (अपूर्ण)	,,
अब्दुल्ला नइमलाहमसी	सोफिस्तिक	प्लातोन
...	भौतिक-शास्त्र-टीका	फिलोपोन
कस्ता लूकापुत्र	...	...
...	...	अफ़ादीसियस

मामूनके बाद भी अनुवादका काम जारी रहा। हानेन इसहाकपुत्र (९१० ई०), होवेश इब्नुल-हसन, मत्ता युनुसपुत्र अल्कन्नाई (९४० ई०), अबू-जकरिया आदिलपुत्र (९७४ ई०), अबू-अली ईसा जूरा (१००८ ई०), अबुल्खैर अल्हसन खम्मार (जन्म ९४२ ई०) मुख्य अनुवादक थे। मंसूर और मामूनका समय (७५४-९३३ ई०) करीब करीब वही है, जो कि तिब्बतके राजाओं ठी-दे चुग्तन, ठी-स्रोङ दे-चन और ठी-दे चनका (७४०-८३६ ई०), जब कि हजारों संस्कृत ग्रंथोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद करके तिब्बती साहित्यको समृद्ध किया गया। तिब्बतीय अनुवादक बौद्ध थे। वह अपने धर्म या दर्शनके ग्रंथोंका अनुवाद बहुत ही शुद्ध करना चाहते थे, जब कि अरबी अनुवादकोंमें प्राय: सभी यहूदी, ईसाई या साबी धर्मके माननेवाले थे।

---

[1] दर्शनदिग्दर्शन

यह अमुस्लिम अनुवादक अपने धर्मके पक्के थे। खलीफा भी उदार थे। खलीफा मंसूरके पूछनेपर जार्ज इब्नजिब्रीलने उत्तर दिया—"मैं तो अपने बाप-दादोंके धर्ममें ही मरूंगा। चाहे वह स्वर्गमें हों या नर्कमें, मैं भी उन्हींके साथ रहना चाहता हूँ।" अर्थात् गीताके शब्दोंमें वह मानता था "स्वधर्मे निधनं श्रेयः।" मंसूर इस उत्तरको सुनकर हँस पड़ा और उसने अनुवादकको बहुत इनाम दिया।

अरबी-साहित्यमें जब अरस्तू और प्लातोन जैसे यूनानी दार्शनिकों एवं बुद्धि-वादियोंके ग्रंथोंका अनुवाद होने लगा, तो उसका असर अरब विद्वानोंके ऊपर पड़ना आवश्यक था। इस प्रभावका पहला परिणाम इस्लाममें मोतज़ला संप्रदायकी उत्पत्ति थी। इस संप्रदायका केंद्र बसरा रहा। इसके आचार्योंमें सबसे बड़ा विद्वान अल्लाफ अबुलहुजैल था, जिसका देहांत ९वीं सदीके मध्यमें हुआ था, इस प्रकार यह शंकराचार्य (७८८-८२० ई०) का समकालीन था। अल्लाफ बड़ा ही वाद-चतुर था। ईश्वरको अद्वैत और निर्गुण सिद्ध करनेमें इसने अपने समसामयिक शंकरके निर्विशेष चिन्मात्र ब्रह्माद्वैतके साधक तर्कोंका इस्तेमाल किया। अल्लाफका कहना था: अल्लाह (ब्रह्म) में कोई गुण (विशेषण) नहीं हो सकता। मोतज़-लियोंके मुख्य सिद्धांत थे—(१) जीव कर्ममें स्वतंत्र है, (२) ईश्वर केवल भलाइयोंका स्रोत है, (३) ईश्वर निर्गुण है, (४) ईश्वरकी सर्वशक्तिमत्ता सीमित है, (५) चमत्कार (मोजजा) झूठे हैं, (६) जगत् अनादि नहीं सादि है, (७) कुरान भी अनादि नहीं सादि है। मोतज़लियोंका दूसरा आचार्य नज्जाम (मृत्यु ८४५ ई०) संभवतः अल्लाफ का शिष्य था। अद्वैत विज्ञानवाद पहले ही नव-प्लातोनिक दर्शनके रूपमें ईरानियों और क्षुद्र-ऐसियाके विद्वानों तक पहुंच चुका था, इसलिए उसे भारतसे जानेकी अवश्यकता नहीं थी।

सिक्के—अरब खलीफा सासानियों और रोमकोंके उत्तराधिकारी थे, इसलिये उनके सिक्कोंपर रोमक और सासानी सिक्कों का प्रभाव देखा जाता है। काना बुखारा-खुदातके तौरपर ३० साल तक शासन करता रहा। बुखारामें सबसे पहले उसीने रौप्य मुद्रा (दिरहम्) ढाली थी। यह काम उसने उस समय किया, जबकि द्वितीय खलीफा अबूबकर (६३२-६४० ई०) के के समय सिक्कोंका काम शुरू हुआ। कानाके सिक्केपर एक ओर बुखारा-खुदातका चित्र रहता था। यह सिक्के बहुत समय (८ वीं शताब्दीके अंत) तक चलते रहे, फिर ख्वारेज्मी सिक्के आये। बुखारियोंने अपने शासक गितरिफ अता-पुत्रसे सिक्का ढालनेके लिये कहा। उस समय चांदी बहुत महंगी थी, इसलिये गितरिफ (७९१-७९२ ई०) ने हारून रशीदके जमानेमें अष्टधातु (सोना, चांदी, सीसा, रांगा, लोहा, तांबा) का दिरहम् ढाला। गितरिफ इस सिक्केका आरंभक था, इसलिये उसका नाम ही गितरिफी पड़ गया। खोटी धातुका सिक्का होनेके कारण लोग लेनेसे इन्कार करते थे, जिसपर उन्हें लेनेके लिये बाध्य किया गया। छ गितरिफी एक चांदीके दिरहम के बराबरकी दरसे उसे सरकारी करमें भी ली जाती थी। उस समय बुखारा-प्रदेशका कर था दो लाख दिरहम्, जिसे ११,६८,५६७ गितरिफी निश्चित कर दिया गया था। पीछे गितरिफीका मूल्य बढ़ता गया। जब वह मूल्यमें रौप्य दिरहमँ के बराबर हो गई, तो भी करकी रकमको घटाया नहीं गया। ८३५ ई० में तो १०० रौप्य दिरहम् ८५ गितारफीके बराबर था, और ११२८ ई० में मूल्य और बढ़कर १०० दिरहम्के बराबर ७० गितरिफी **थी**। अन्तर्वेदके सिक्कोंमें गितरिफी के अतिरिक्त मुहम्मदी (मुहम्मद दाहद पुत्र का) दिरहम्० मुसैयबी (मुसैयब जुबैरपुत्र) दिरहम्

(७८०-७८३ ई०) भी चलते थे। मध्य-एसिया में ८२६-८२८ ई० में भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें निम्न प्रकारके सिक्कों द्वारा कर उगाहा जाता था[१]—

प्रदेश	सिक्का
ख्वारेज्म	ख्वारेज्मी दिरहम
तुर्किस्तान (प्रदेश)	ख्वारेज्मी, मुसैयबी
उश्रूसना	मुसैयबी, मुहम्मदी
फर्गाना	मुहम्मदी
सोग्द	. . .
किश् (शहरसब्ज)	. . .
नसाब	. . .
शाश	. . .
खोजन्द	. . .
बुखारा	गितरिफी

सोग्दमें ५वीं, ६ठीं सदीमें सासानी सिक्कोंकी नकल की गई।

स्थानीय सिक्कोंके अतिरिक्त खलीफाके सिक्के भी मध्य-एसियामें चलते थे। उमैयोंके सिक्के कूफी लिपिमें होते थे, जब कि अब्बासी सिक्के अरबी लिपिमें। इनके अग्रभागमें "लाइलाहा इल्ललल्लाह् मुहम्मद रसूलल्लाह्" लिखा रहता और दूसरी ओर खलीफाका नाम तथा टकसालका नाम होता था। खलीफा मोतमिद (८७०-८९२ ई०) के एक सिक्केपर पृष्ठभागमें "अल्मोआफ़िक़ बिल्लाह्" तथा "बिस्मिल्लाह् ज़रब हाजा दिरहम् ब-समरकंद . . . मातैन" उत्कीर्ण है। मोतमिदने अपने भाई अबू-अहमद तलहाको "अल्मोआफ़िक़ बिल्लाहकी" उपाधि दी थी। भारतमें मुसलमानोंके सिक्के अकबरके समयसे पहले तक टेढ़ी-मेढ़ी अरबी लिपि होते थे,। सिक्कोंपर मूर्ति उत्कीर्ण करना इस्लामके विरुद्ध था, इसलिये जहांगीर को छोड़कर भारत में किसी मुस्लिम शासकने मूर्ति उत्कीर्ण करानेका साहस नहीं किया।

---

[१]Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Bartold)

स्रोत-ग्रंथ :

1. Heart of Asia (E. D. Ross)
2. Turkistan Down to Mongol Invasion (W. Brtold)
३. इस्कुस्तवो स्रेद्निआज़िइ
४. अखितेक्तुर्निये पाम्यातिनकि तुर्कमानिइ
5. History of Bokhara (A. Vambery)

अध्याय ४

ताहिरी (८१८-८७२ ई०)

१. ताहिर (८१८-२२)[1]

ताहिरने इस राजवंशकी स्थापना की। ताहिरियोंका पूर्वज राज़िक, सल्म ज़ियादपुत्रके अधीन सजिस्तानके राज्यपाल अबू-मुहम्मद तलहा अब्दुल्लापुत्र कुला खुज़ाईका एक अफ़सर था। राज़िक़के पुत्र मुशाअबको हिरात प्रदेशके वुशंग नगरका शासक बनाया गया था। जिस वक्त अब्बासियोंके लिये अबू-मुस्लिम प्रचार कर रहा था, उसी समय तलहा अबू-मुस्लिमके एक अनुयायीका सचिव था। यूसुफ बरमकने वुशंगको तलहाके हाथसे छीन लिया। विद्रोह दमनके बाद मुशअब फिर वुशंगका शासक बना दिया गया। उसकी मृत्यु ८१४ (१९९ हि०) में हुई। उसके पुत्र हुसैनको वह पद मिला, और हुसैनसे उसके पुत्र ताहिरको, जो अपनी योग्यता और सेवाओंसे मामूनके शासनकालमें बहुत शक्तिशाली शासक बन गया। ताहिरने रफी लैसपुत्रके विरुद्ध लड़नेके समय भी अब्बासी सेनाका संचालन किया था। ८११ ई० में मामूनने अपने भाई अमीन के विरुद्ध जो सेना भेजी थी, उसका प्रधान-सेनापति ताहिर था। वजीर फ़ज्ल सहलपुत्रने अपने हाथसे ताहिरके भालेमें झंडा लगाया था। मामूनके लिये पश्चिम-विजय करनेके बाद उसे अल्जजीरा (मसोपोतामिया) का राज्यपाल, बगदादकी सेनाका सेनापति और सवाद (इराक) का वित्तीय शासक भी बनाया गया। ताहिरके मित्र अह्मद अबू-खालिद-पुत्रने खुरासानके गवर्नर रसा गस्सन अबाद-पुत्रके विरुद्ध मामूनका कान भरा, जिससे वह हटाया गया। आगे जिस तरह खलीफा ताहिरके खिलाफ हुआ, इसके बारेमें हम कह चुके हैं।

तुलनात्मक ताहिरी सफ्फारी–सामानी वंश

ई०	भारत (प्रतिहार)	चीन (थाङ)	दक्षिणापथ (ताहिरी)	उत्तरापथ
८२०	नागभट्ट ८१५-	मुचुङ ८२१-२५	ताहिर I ८१८-२२	
			अली ८२८-३७	
	भोज I ८३६-	वेन्चुङ ८२७-४१	अब्दुला ८३७-४४	

[1] Heart of Asia (E.D. Ross); Turkistan down to Mongol Invasion

८४०		वूचुङ ८४१-४७	ताहिर II ८४४-५१	(उइगुर)
		स्वानचुङ ८४७-६०१	मुहम्मद ८५१-६७	ओन्नेयन् ८४७-
			(सफ़फारी)	
८६०		ईचुङ ८६०-७४	याकूब ८६१-७८	
		सीचुङ ८७४-८९	अम्र ८७८-९००	
८८०		चाउचुङ ८८९-९०४		
			(सामानी)	
			नस्र I ८७५-९२	
	महेन्द्र पाल ८९३-		इस्माईल ८९३-९०७	
९००		चाउह्वान ९०४-७	अहमद ९०७-१४	
		(खित्तन)		
	महिपाल I ९१४-	अपओकी ९०७-२६	नस्र II ९१४-४२	(कराखानी)
९२०		ताइचुङ ९२६-४७		आतुर्युक ९२६
९४०	महेन्द्र II ९४५-	शीचुङ ९४७-५१	नूहI ९४३-५४	
	देवपाल ९४८-	मूचुङ ९५१-६८	अब्दुलमलिक ९५४-	शातुक ९५५-
९६०	विजयपाल ९६०-	चिङचुङ९६८-८३	मंसूर ९६१-७६	
			नूह II ९७६-९७	
९८०		शेङचुङ ९८३-१०३१		
			मंसूर II ९९७-९८	बुगरा ९९२-
				इलिकनस्र ९९३-
१०००			मुत्तासिर -१००४	
	राज्यपाल १०१८-२७			तुगान १०१२-२५

२. तलहा (८२२-८२८ ई०)

यद्यपि ताहिरने मामूके खिलाफ विद्रोह किया था, और खुतबेसे उसका नाम हटवा दिया था, किंतु खलीफाकी हिम्मत नहीं हुई, कि उसके वंशसे शासन छीन ले। ताहिरका एक पुत्र अब्दुल्ला मसोपोतामिया और मिस्रमें मामूनके लिये लड़ रहा था, दूसरे पुत्र तलहाको मामूनने पूर्वका उपराज रहने दिया। तलहाने अपना शासन-केन्द्र मेर्व नहीं नेशापोरमें रक्खा, जहांसे वह तबारिस्तान, खुरासान, अन्तर्वेदपर पूर्ण प्रभुत्व रखता था। इसीके शासनकालमें अहमद अबूखालिद-पुत्रके सेनापतित्वमें एक सेना मध्य-एसियाके उत्तरी भागमें भेजी गई। उश्रूसनाके राजा कावूस, फज्ल यहिया-पुत्र बरमकके समय अधीनता स्वीकार करनेवाले अफ़शीनाका पुत्र था। कावूसने मामूनको कर देना स्वीकार किया था, किंतु जब खलीफा मेर्वसे बगदाद चला गया, तो उसने इन्कार कर दिया। उसके बाद राजवंशमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ और कावूसकी ओर किसीका ध्यान नहीं गया। कावूसके पुत्र हैदरने एक प्रसिद्ध सरदार—जो कि उसके भाई तथा प्रतिद्वंद्वी फ़ज्लका

ससुर और उसके दलका मुखिया था—को मार डाला। इस हत्याके बाद हैदर वहांसे भागकर बगदाद पहुंचा। दूसरी ओर फ़ज्लने अपने दलको मजबूत करनेके लिये उत्तरी तुर्क ताकूज-आगूजोंको देशमें बुलाया। ८२२ ई० में अहमद अबूखालिद-पुत्रने सेनाके साथ जब उश्रूसनामें प्रवेश किया, तो हैदरने एक गुप्त छोटे रास्तेसे उसे देशमें पहुंचा दिया। कावूसको पता नहीं लगा, और लड़ना बेकार समझकर वह आत्मसमर्पण के लिये मजबूर हुआ। फ़ज्ल तुर्कोंके साथ भाग गया, पीछे उन्हें भी छोड़ अरबोंसे मिल गया। इस विश्वासघातके कारण उसकी मददके लिये आये हुए तुर्क उत्तरी बयाबानमें नष्ट हो गए। कावूस आत्मसमर्पण करके बगदाद गया, अभी तक वह मुसलमान नहीं हुआ था। बगदादमें खलीफाके हाथों उसने इस्लाम स्वीकार किया और उसकी ओरसे उश्रूसनाका शासक नियुक्त हुआ। उसके बाद उसका पुत्र हैदर शासक बना, जो पीछे खलीफाके दरबारमें प्रथम श्रेणीका सरदार और अफशीनके नामसे बड़ा प्रसिद्ध हुआ। ८४१ ई० में अफशीन हैदरको फांसी दी गई, लेकिन उसका वंश ८९३ ई० (२८० हि०) तक उश्रूसनापर शासन करता रहा। अंतिम अफशीन शेर अब्दुल्ला-पुत्रके ८९२ (२७९ हि०) में ढाले हुए सिक्के लेनिनग्रादके एरमिताज़ म्युजियममें रक्खे हुए हैं।

अहमद अबूखालिद-पुत्रको जब मध्य-एसिया भेजा गया, तो तलहाने अहमद और उसके सचिवकी खूब भेंट-पूजा की। यही अहमद सामानियोंका भी संरक्षक था। उसने अहमद असद-पुत्रको फिरसे फर्गानाका शासक बनाया। फर्गाना, काशान और उस्तका अंतिम पतन नूह असद-पुत्रके हाथों हुआ। नूहने ८४० ई० में इस्फिजाबको जीता और वहांके लोगोंको अपने अंगूरके बगीचों और खेतोंके किनारे दीवार बनानेका हुक्म दिया, क्योंकि तुर्क बराबर लूट मार करनेके लिये आया करते थे। इतना होनेपर भी इस्फिजाबका शासन तुर्की राजवंशमें १०वीं सदी तक रहा। इस्फिजाबके शासकने खलीफा से विशेष रियायतें प्राप्त थीं। उसे कर देना नहीं पड़ता था, उसकी जगह वह एक दानिक (चवन्नी) और एक झाड़ू भेजता था।

३. अली (८२८-८३७ ई०)

अलीने भी अपने पूर्वाधिकारीके शासनको अक्षुण्ण रखा। इसीके समय तुर्किस्तानकी ओर खलीफाने अपने अभियान भेजे थे। खाराजियोंने विद्रोह किया, जिसमें नेशापोरके पास अली मारा गया।

४. अब्दुल्ला (८३७-८४४)

खलीफाने अलीके मरनेकी खबर सुनकर अब्दुल्ला ताहिरपुत्रको उपराज बनाकर भेजा। इस समय खलीफा मोतसिम् (८३३-८४२ ई०) गद्दीपर था। मोतसिम्के समय उसके गारदमें सोग्द, फर्गाना, उश्रूसना और शाशके तुर्क भरती थे। अब्दुल्लाने अपने राज्यकी सीमाको बढ़ाना चाहा, और उसके लिए अपने पुत्र ताहिरको सामानियोंके सहायक गूजोंके देशमें विजय करनेके लिये भेजा। ताहिर इस्लामका झंडा लेकर ऐसे स्थानोंमें गया, जहां इससे पहले मुसलमान गाजी नहीं पहुंचे थे। खलीफा मोतसिम्के समय तक आमू और सिरद-रियाके बीचके लोग पक्के मुसलमान हो चुके थे—इन लोगोंमें सोग्दी और तुर्क दोनों ही जातियां थीं। इस्लामका झंडा लेकर इन्होंने अपनी उत्तरी पड़ोसी तुर्कोंके साथ दीनकी लड़ाई

लड़नी शुरू कर दी। अब्दुल्ला ताहिरियोंका सबसे शक्तिशाली शासक था। इसके समय खलीफाका शासन नाममात्र रह गया और एक तरह अरबोंके शासनके जूयेको उतारकर ईरानी अपना वंश स्थापित करनेमें सफल हो गए। मोतसिम् अंतिम अब्बासी खलीफा था, जिसने मध्य-एसियामें अपने अधिकारका कुछ उपयोग किया। उसने २०,००,००० दिरहम् लगाकर शाश (ताशकंद) नगरमें एक नहर खुदवाई, जो कि १३ वीं सदी तक काम देती रही।

५. ताहिर II (८४४-५१ ई०)—

अब्दुल्लाकी मृत्यु (८४४ ई०) के बाद ताहिर और मुहम्मदने शासन किया। मुहम्मदके शासनके बाद ८७२ ई० में इस ईरानी राजवंशका अंत हुआ। अब बगदादी खलीफा का अधिकार यही था, कि लोग उसे इस्लामका धर्मगुरु मानते थे। शुक्रवारको नमाजके बाद जो खुतबा (उपदेश) पढ़ा जाता था, उसमें खलीफाके तौर पर उसका नाम लिया जाता था। यह प्रथा अंतिम अब्बासी खलीफा मुस्तअसिम (१२४२-१२५८ ई०) तक चलती रही। मुहम्मद ताहिरके शासनकालके अंतिम वर्षमें भी उसके प्रदेशमें कुछ भूमि खलीफाकी निजी संपत्ति थी।

शासन-व्यवस्था—ताहिरी और सामानी दोनों उच्चकुलीन थे, इसलिए उनमें अबू-मुस्लिम या शियोंकी तरह ईरानी राष्ट्रीय भाव या जनतांत्रिक झुकावका पता नहीं था। एक-तंत्रताके साथ जनताको अधिकसे अधिक अपने साथ रखनेकी ताहिरियोंने अवश्य कोशिश की, क्योंकि उन्हें इस्लामिक खलीफाकी इच्छाके विरुद्ध हो अपने अस्तित्वको कायम रखना था। शांति और व्यवस्था कायम रखनेके लिये अमीरोंके जुल्मोंसे निम्न श्रेणीके लोगोंकी रक्षा करना उनके लिये आवश्यक था। ताहिरी विद्याप्रेमी थे, लेकिन अभी उनके विद्याप्रेमका सुप्रभाव पारसी भाषापर नहीं पड़ा था। अब्दुल्ला ताहिरीका कहना था "ज्ञान और विद्या, योग्य और अयोग्य दोनोंके लिए सुलभ होनी चाहिए। ज्ञान अपने आप ठीक कर लेगा, और वह अयोग्योंके पास नहीं रहेगा।" ताहिरने मुस्लिम धर्मशास्त्रपर एक ग्रंथ "किताबुल्-कुनिया" तैयार कराई, जिसमें उसने किसानोंके बारेमें कहा है—"अल्लाह हमें उनके हाथोंसे खिलाता है, उनके मुंहसे हमारा स्वागत करता है और उनके साथ दुर्व्यवहार करनेका निषेध करता है।" अपने पिता ताहिर (I) की तरह अब्दुल्ला भी कवि था। आमूल-ख्वारेज्मके शासक उसके भतीजे मंसूर तलहा-पुत्रने दर्शनपर कोई ग्रंथ लिखा था। अब्दुल्ला उसपर बहुत अभिमान करता था और उसे ताहिरियोंकी प्रज्ञा कहता था।

६. मुहम्मद अब्दुल्ला-पुत्र (८५१-८७२ ई०)

मुहम्मद पहले बगदाद का गवर्नर था। खलीफा की निजी ग्राम-संपत्ति तवारिस्तान और देलमके प्रदेशों के बीच में थी, जो मुहम्मद को सुपुर्द की गई थी। मुहम्मद ने उसके प्रबन्ध के लिये ईसाई जाबिर हारून-पुत्र को भेजा, जिसने मुहम्मद की जमीन का सुप्रबन्ध करते हुए पड़ोसी गांवों की गोचरभूमि को भी दखल कर लिया। इस पर अली-पक्षपातियों शियों के नेतृत्व में गांवोंके लोगोंने विद्रोह कर दिया। उनका नेता हसन जैद-पुत्र ८८४ ई० तक इस प्रान्तका शासक रहा। इस शिया-आंदोलन की सफलता वस्तुतः किसानों की सहायता से हुई, जिनके स्वार्थों के समर्थन में शिया लड़ रहे थे। शायद इसी तरह का जनतांत्रिक संघर्ष ९१३-९१४ ई०

वाला भी था, जो कि हसन अलीपुत्र उत्त्रूशी अलीवंशज के नेतृत्व में सामानियों के विरुद्ध हुआ। उत्त्रूशीने देलम में इस्लाम फैलाया और निम्न वर्ग का हितैषी होने के कारण जीवन भर सर्व-प्रिय रहा। अलबेरूनी हसन पर आक्षेप करता है, कि उसने पारिवारिक संगठनको नष्ट कर दिया। हसनने तालुकदारी के अधिकार को खत्म कर दिया, इसमें सन्देह नहीं। ५३ साल के शासन के बाद ताहिरी वंश को याकूब लैसपुत्र ने समाप्त कर दिया। ताहिरी वंश परम्परा के बारे में कहा गया है—

दरखुरासान ज-आल मस्सावशाह। ताहिर व तल्हा बूद व अब्दुलल्लाह
वाज ताहिर दिगर मुहम्मद दान। कि ब याकूब दाद तख्तो कुलाह।

स्रोत-ग्रन्थ :

1. Heart of Asia (E. D. Ross)
2. Turkistan Down to Mongol Invasion (Bartold)
३. "सियासत नामा" (निजामुल्मुल्क)

अध्याय ५

सफ़्फारी (६६१-६३० ई०)

सफ्फार लोहार या ताम्रकार को कहते हैं। याकूब का परिवार शायद यही पेशा करता था।

१. याकूब (८६१-८७८ ई०)

खलीफा मुतविक्लके समय ८४७-८६१ई० सालेह् नस्रपुत्र ने खारजी सम्प्रदाय को दबाने का बहाना करके खुरासानको दखल कर लिया था। सालेह् के भी बहुत से अनुयायी थे। इसे सुनकर ताहिर (८४४-८५१ ई०) स्वयं खारजियों और सालेह्के अनुयायियों के झगड़े को दबाने के लिये आया और सफलता प्राप्त कर राजधानी मेर्व लौट गया। फिर दुबारा सालेह्के विद्रोह की खबर आई। इस समय सालेह्का सहायक याकूब लैसपुत्र सफ्फार (ताम्रकार) था। याकूब में स्वाभाविक नेता के गुण थे। उसकी उदार-हृदयता बचपन ही से प्रकट थी। सयाना होने पर वह डाकुओं के गिरोह का सरदार बन गया। उसे धन और यश दोनों प्राप्त हुआ, क्योंकि जिनकी सम्पत्ति लूटता था, उनके साथ भी बड़े उदार तथा मानवोचित बर्ताव करता था। जल्दी ही उसके बहुत से अनुयायी हो गये और वह निरा डाकू न रह विजेता बन गया। सालेह्ने उससे सहायता मांगी। याकूब तो मानों इस अवसर को ढूंढ ही रहा था। ८६१ई० में याकूब की सहायता से विद्रोहियों को तेजी से दबा दिया गया। राज्यपाल के उत्तराधिकारी दिरहम नासपुत्र ने अपनी सेना की कमान याकूब को दे दी। चारों ओर याकूब का आतंक छा गया। ताहिरी जनता में अप्रिय हो गये थे। याकूब ने ८७७ ई० में हिरात, फिर किरमान और शीराज़ तक को भी जीत लिया। अब ताहिरी नेशापोरमें निर्बल से रह गये। ८७१ ई० में याकूब ने खलीफा मोतमिद (८७०-८९२ ई०) के पास अपने को खलीफा का दास घोषित करते हुए दर्शन पाने की इच्छा प्रकट की। खलीफा ऐसे भयानक आदमी से डर गया। क्या ठिकाना कहीं वह बगदाद पर भी हाथ साफ न कर दे। आखिर इराक तक की सीमा तक तो वह पहुंच ही गया था। मौतमिदने उससे जान छुड़ाने के लिये तुखारिस्तान तथा भारतीय सीमान्त तक का उसे गवर्नर बना दिया।

भारतके सीमांत पर काबुलके तुर्क शासकों और अफगानों (पख्तूनों) का देश था। याकूब हिंदूकुश पारकर काबुल-उपत्यकामें दाखिल हुआ। काबुलके तुर्क (हिंदू) राजाको पिछले सौ वर्षोंसे किसी मुसलमान शासकने नहीं परेशान किया था। याकूब उसे जीतकर काबुलके राजा और उसकी मूर्तियोंको अपने साथ ले गया। ८७२ ई० में अंतिम ताहिरी मुहम्मदको परास्त कर उसने ताहिरी वंशका उच्छेद कर दिया। मुहम्मद ताहिरीने याकूब से कहा था—'अगर बफरमाने-अमीनुल्-मोमीनीन आमदी, अह्द व मंशूर अर्ज़कुन्,

ता बलायत बतू सिपारम्, व गर न बाज़ गर्द।' याकूब शमशीर अज़ ज़ेरे-फसली बैरून आवर्द, व गुफ्त—'अहद मौलाय-मन ईनस्त' ('अगर तू खलीफाके हुकुमसे आया, तो आज्ञापत्र दिखला ताकि मैं तुझे यह प्रदेश सुपुर्द कर दूं, नहीं तो लौट जा।' याकूबने अपने चोगेके भीतरसे तलवार निकाली और कहा—'मेरे स्वामीका आज्ञापत्र यह है।')

८७६ ई० में नस्र अन्तर्वेदका वास्तविक शासक था। याकूब मंगलवार ९ जून ८८९ ई० को मरा और उसका भाई अम्र लैसपुत्र उसका उत्तराधिकारी हुआ।

२. अम्र सफ्फार (८७८-९०० ई०)—

बड़े भाईकी तरह अम्र भी बहादुर और योग्य नेता था। कुछ समय तक उसने खलीफाको अपना स्वामी स्वीकार किया। खुरासानके लोगोंने अम्रके खिलाफ खलीफाके पास शिकायत की, तो खलीफा मोतमिद् (८७०-८९२) ने अम्रको खुरासानकी गवर्नरीसे वंचित कर दिया, और उसे रफी हरसमा-पुत्रको प्रदान किया। अम्रको दबानेके लिये खलीफाने एक बड़ी सेना भेजी। पहली बार अम्र हार गया और शीराज़ तथा किरमानके रास्ते अपनी जन्मभूमि सीस्तानकी ओर भागा। वहां अपनी बिखरी सेनाको एकत्रित करके उसने फिर खलीफाकी सेनाके ऊपर प्रहार करना शुरू किया। इसी बीच (८९२ ई० में) खलीफा मोतमिद मर गया और मोतजिद (८९२-९०२ ई०) नया खलीफा हुआ। अम्र लैसपुत्रने नये खलीफाको अपनी सेवायें अर्पित कीं। उसने ऐसे जबर्दस्त आदमीके साथ शामका वर्ताव करना ही अच्छा समझा और उसे खुरासानका गवर्नर नियुक्त किया। उस समय अरब-भिन्न पूर्वी प्रदेश (अजम) के दो भाग थे—(१) ईरान और (२) मावराउन्नहर् (अन्तर्वेद, मध्यएसिया)। अन्तर्वेदके शासक अब सामानी थे और खुरासान तथा ईरानके कितने ही भाग का अम्र। रफी हरसमा-पुत्रकी ताकत बढ़ती जा रही थी। इसे देखकर भी खलीफाको यह चाल चलनी पड़ी। अम्रने ८९६ ई० (२८३ हि०) में रफीको हराकर उससे नेशापोर छीन लिया और क्रूरतापूर्वक मारकर उसका सिर खलीफाके पास भेज दिया। इस तरह सारे ईरानका स्वामी बनकर अब अम्र अन्तर्वेदकी ओर बढ़ना चाहता था। खलीफा दोरंगी चाल चल रहा था: एक ओर वह अम्रको उत्साहित कर रहा था, दूसरी ओर इस्माईल सामानीकी भी पीठ ठोंक रहा था। ९०० ई० (२८८ हि०) में इस्माईल सामानीने बलखको घेर लिया और कुछ लड़ाईके बाद नगरके साथ अम्र भी इस्माइलके हाथमें पड गया। खलीफा मर गया था। इस्माईलने अम्रको बगदाद भेजा, वहां उसे बंदीखाने में डाल दिया गया, पीछे ९०३ ई० में कतल कर दिया गया। अम्रके पकड़े जानेके बाद उसका पुत्र ताहिर नाममात्र का शासक रहा।

पहले खुतबामें खलीफाका नाम लिया जाता और उसके लिये दुआ की जाती थी। खलीफाके सिवा और किसीके नामसे दुआ नहीं की जा सकती थी; किंतु अम्रने खुतबामें अपना नाम रखवाकर बादशाहोंको भी खुतबामें शामिल करनेका रवाज जारी किया।

"सियातनामा"[१] में याकूब और अम्र लैस-पुत्रके पतन और इस्माईल सामानीके उत्थानके बारेमें कहा गया है: "सामानियोंमें एक न्यायप्रिय बादशाह (अमीर आदिल) हुआ, जिसको

---

[१] सल्जूकी वजीर-अ।जम निजामुल्मुल्क की कृति

इस्माईल अहमद-पुत्र कहते हैं। वह अत्यधिक न्यायप्रिय था। उसमें बहुतसे सुगुण थे।.... वह दरबेशों (सन्तों) का भक्त था।...यह इस्माईल ऐसा अमीर था, जो कि बुखारामें बैठा हुआ, खुरासान, इराक, मावराउन्नह्र (अन्तर्वेद) का स्वामी था। (उसने) याकूब लैसपुत्रको सीस्तानसे निकाला। वह (याकूब) शीयों के उपदेशकोंके जालमें फँस गया था और इस्माईलियोंके धर्ममें था। उसने बगदादके खलीफाके प्रति बुरी नियत की और बगदाद जानेका इरादा किया, जिसमें खलीफाको मार डाले और अब्बासियोंके कुलको हटा दे। खलीफाको खबर मिली, कि याकूब बगदादका इरादा किए हुए है। उसने दूत भेजकर कहा : "तेरा बगदादमें कोई काम नहीं है। (वहीं) सारे कोहिस्तान, इराक और खुरासानको संभाल।" याकूबने कहा—"मेरी इच्छा है कि अवश्य तेरे दरगाहमें आऊं और सेवा करूं, अह्द (नियुक्ति पत्र) ताजा करूं, नया बनवाऊं। जब तक यह न करूं, मैं नहीं लौटूंगा।" खलीफाने बहुत दूत भेजा, किन्तु उसने वही जवाब दिया। वह सेना लेकर बगदादकी ओर चला। खलीफाको संदेह हुआ। (उसने) अपने दरबारके बुजुर्गोंसे कहा—"मुझे मालूम होता, याकूब लैसने आज्ञाकारितासे सिर खींच लिया है, और बुरी नियतसे यहां आ रहा है; क्योंकि मैंने उसे नहीं बुलाया। मैं हुक्म देता हूं कि लौट जाय, लेकिन वह नही लौटता। ऐसी हालतमें उसके दिलमें जरूर बदनीयती है। मुझे पता लगा है कि वह बातिनियोंके धर्मको माननेवाला है।"...(बुजुर्गोंने) बतलाया कि खलीफा शहर (बगदाद) में न रहे, और बयाबानमें जाकर उर्दू और छावनी लगाए। बगदादके विशेष व्यक्ति और बुजुर्ग सब उसके साथ रहें। जब याकूब आवेगा और खलीफाको बयाबानमें सेनाके साथ देखेगा, तो उसकी नियत प्रकट हो जायेगी, उसका दुर्भाव अमीरुल्मोमनीन (खलीफा) को मालूम हो जायगा। लोग छावनीमें एक दूसरेके पास आना-जाना करेंगे। अगर वह दुर्भाव रखता है और इराक, खुरासानके सारे अमीर उसके साथ नहीं हैं, न सम्मति देते हैं।...(और) उसका दुर्भाव प्रकट हो जाये, तो हम उसकी सेनाको पछाड़ेंगे।"...यह उपाय अच्छा लगा और वैसा ही किया गया।" यह खलीफा अल्मोतमिद-अल्लाह् अहमद (८७०-८९२ ई०) था।

जब याकूब लैस वहां पहुंचा और खलीफाकी सैनिक छावनीके पास आया, तो दोनों सेनायें मिलने जुलने लगीं। याकूब लैसने अपने दुर्भावको प्रकट किया और खलीफाके पास आदमी भेजा कि बगदादको दे दो और जहां मन हो वहां जाओ। खलीफाने दो महीनेका समय मांगा, लेकिन उसने समय नहीं दिया। जब रात हुई, तो किसी को उसके सिपाहियोंके पास भेजकर उसकी बदनीयतीको प्रकट कराया : "वह मुलहिद (दुर्धर्मी) है, उसके ऊपर अल्लाहकी फटकार हो। वह इसलिये यहां आया है, कि मेरे खानदानको हटा दे और दुश्मनोंको मेरी जगहपर बैठाये। क्या तुम भी इस बातमें उसकी सहायता करते हो?" उनमें से एक जमातने कहा—"हमने उससे रोटीका टुकड़ा पाया है, इसलिये उसकी सेवा करते हैं। उसने जो किया वह हमने किया।" लेकिन अधिकांश लोगोंने कहा—"हमें इस बातकी खबर नहीं थी। हम जानते थे, कि वह कभी अमीरुल्मोमिनीन के खिलाफ नहीं होगा। अगर वह दुश्मनी प्रकट करता है, तो हम उससे सहमत नहीं हैं। हम मुकाबिलेके दिन तुम्हारे साथ होंगे, युद्धके वक्त तुम्हारी तरफ आ जायेंगे और तुम्हें विजय प्राप्त करायेंगे।" ऐसा करनेवाले खुरासानके अमीर थे। जब खलीफा याकूबकी सेनाके सरदारोंके भावको इस प्रकार देखकर खुश हुआ।

...याकूब लैस पहिले ही आक्रमणमें पराजित हुआ और बड़ी कठिनाईसे खुजिस्तानकी

तरफ भागा। उसके सारे खजानेको लूट लिया गया।...खुज़िस्तान पहुंचकर उसने चारों ओर आदमी भेज सेना जमा की।...खलीफाको जब इस बातकी खबर मिली, कि वह खुज़िस्तानमें मुकाम किए हुए है, तो उसने पत्र और दूत भेजकर कहा: "हमें मालूम हुआ है कि तू सीधा-सादा आदमी दुश्मनोंकी बातोंमें पड़ा है, और तूने अपने कामके परिणामपर ख्याल नहीं किया। तूने देख लिया, कि अल्लाने तेरे साथ क्या किया और तू अपनी सेना-सहित पराजित हुआ।...इस समय जानता हूँ, कि तुझे समझ आई है। ...इराक और खुरासानके अमीर-पदके योग्य तेरे जैसा कोई नहीं है।...सिवाय इस कसूरके तेरी और सेवाओंको हमने पसन्द किया है और तूने जो किया उसको न किया समझते हैं।...जितनी जल्दी हो, तू इराक और खुरासान चला जा, और उस वलायत (सूबा) के शासनके काममें लग जा।"

...जब याकूबने खलीफाके पत्रको पढ़ा, तो उसका दिल ज़रा भी नरम नहीं हुआ, और अपने काम पर उसे लज्जा नहीं आई। उसने सिरका, मछली, प्याज और रोटी लकड़ीके थालपर रखकर लानेका हुकम दिया। फिर खलीफाके दूतको बुलाकर वहां बैठाया, और दूतकी ओर मुंह करके उसने कहा—"जा खलीफाको कह दे, कि मैं गरीबके घरमें पैदा हुआ आदमीहूँ और बापसे रूईगरोंका काम सीखा। मैं जौ की रोटी, मछली, तरा और प्याजका खानेवाला हूं। यह बादशाही...बहादुरीके कारण मेरे हाथमें आई, तेरे हाथसे नहीं पाई। मैं तब तक पैर पर नहीं बैठूगा, जब तक कि तेरे सिरको न कटलवा लूँ और तेरे खानदानको नष्ट न करवा दूं। जैसा कि अभी कहा, मैं वह करवाके रहूंगा या जौकी रोटी, मछलीऔर तराखानेकी ओर लौट जाऊंगा।" यह कहकर इस पैगामके साथ उसने खुदाके खलीफाके दूतको लौटा दिया। खलीफाने बहुतसे पत्र और दूत भेजे, ...लेकिन वह नहीं लौटा और सैनिक अभियानका निश्चय करके उसने बगदाद जानेका इरादा किया। उसे कुलंचकी बीमारी थी, जिसने आ पकड़ा। हालत ऐसी हुई, कि उसने समझ लिया, कि इस बीमारीसे छुट्टी नहीं मिलेगी। तब उसने अपने भाई अमरू लैस-पुत्रको अपना उत्तराधिकारी बनाया, और खजाना उसे दे दिया। फिर मर गया। अमरू लैस-पुत्र... खुरासान लौट गया और बादशाही करने लगा।...सेना और प्रजा अमरूको याकूबसे भी अधिक प्रेम करती थी। अमरू बड़ा हिम्मती, उदार और राजनीति-पटु था। उसकी हिम्मत और उदारता इतनी थी, कि उसके रसोईके सामानको चार सौ ऊंट ढोते थे, दूसरी चीजोंका तो अन्दाजा ही नहीं किया जा सकता। लेकिन खलीफाका संदेह वैसा ही बना रहा, शायद वह भी अपने भाईका रास्ता पकड़े, और कलको वही दिन सामने आये।...यद्यपि अमरूका ऐसा इरादा नहीं था, तोभी खलीफाने इस बातका संदेह किया और किसी आदमीको इस्माईल अहमद-पुत्रके पास बुखारा भेजा : "अमरू लैस-पुत्रको निकाल, उसपर चढ़ाई कर और देशको उसके हाथसे छीन, फिर हम खुरासान, इराक के अमीरका पद तुझे दे देंगे।

...खलीफाकी बातोंका उस (इस्माईल) के दिलपर असर हुआ। उसने इस विचारको ठीक समझा कि अमरू लैस-पुत्रके साथ दुश्मनी करे। उसके पास जितनी सेना थी, उसे जमा किया और जैहूँ (वक्षु) नदीकी उस ओर गया। गिनती करनेपर दो हजार सवार मालूम हुए, जिनमें दो के ऊपर एक ढाल, बीस मरदोंपर एक कवच, और पचास आदमियोंपर एक भाला था। ...वह शहर मेर्वमें पहुंचा। अमरू लैसके पास खबर गई, कि इस्माईल अहमद-पुत्र जैहूँ पार हो मेर्व आया है और...राज्य मांग रहा है।

...अमरू लैस हंसा, वह उस समय नेशापोरमें था। ७० हजार सवार उसने जमा कर ...बलखकी ओर मुंह किया। जब दोनों एक दूसरेके आमने-सामने हुए, तो ऐसा संयोग हुआ कि अमरू लैस-पुत्र बलखमें हारा, और उसके ७० हजार सवार ऐसे रहे कि एकको भी चोट नहीं पहुंची और न कोई कैदी बना। सबके बीचसे अमरू लैस-पुत्र ही गिरफ्तार हो गया। उसे इस्माईलके सामने लाये।...इस्माईल की नज़र अमरू लैस-पुत्रके ऊपर पड़ी। उसका दिल दुखी हुआ और जाकर (अमरू से) बोला—"आज रात मेरे साथ रह, क्योंकि मैं अकेला हूँ।"

अमरूने कहा—"जब तक मैं जिन्दा हूं। कोई पर्वा नहीं, खानेकी चीजका इंतिजाम कर।"

फर्राश एक मन (२ सेर) मांस ले आया और सैनिकोंसे लोहेके दो बर्तन मांगे। हर तरफ दौड़ा।...कि कलिया (गोश्त) पकावे। इस प्रकार गोश्तको बर्तनमें रखा, लेकिन नमककी कमी थी।

इस्माईलने अपने अफसरको उस (अमरू) के पास भेजा, तो अमरू लैस-पुत्रने मोतमिद (अफसर) से कहा—"इस्माईलसे कह कि मुझे तूने नहीं, बल्कि तेरी ईमानदारी, विश्वास और सुन्दर स्वभावने हराया।"[१]

विद्वान्—ताहिरियों और सफ्फारियोंके रूपमें अब स्वतंत्र ईरानी शासक पैदा हुए। सफ्फारी यद्यपि आभिजात्य वर्गके नहीं थे, और उन्हें अधिकतर युद्धों और संघर्षोंमें ही समय बिताना पड़ा, किंतु ताहिरियोंने विद्याकी ओर विशेष ध्यान दिया। बगदादके खलीफा मंसूर-हारून-मामूनने दुनियाके बड़े बड़े दार्शनिकों और विद्वानोंकी कृतियोंका अरबीमें अनुवाद करनेका रास्ता दिखलाया था, उसका फल इस समय मिला। याकूब किंदी (८७० ई०) बगदादी खलीफोंके समयमें पहला उच्चकोटिका दार्शनिक पैदा हुआ, जिसे ग्रीक दर्शनके अनुवादोंका परिणाम कह सकते हैं। इसका पूरा नाम अबू-युसुफ याकूब इसहाक-पुत्र किंदी था। दक्षिणी अरबमें किंदा नामक एक कबीला था, जिसमें याकूब पैदा हुआ, किंतु इसका परिवार कई पीढ़ियोंसे इराकमें आ बसा था। याकूबका पिता इसहाक किंदी कूफाका गवर्नर था। पूर्वी इस्लामने जो तीन (किंदी, फाराबी, बूअलीसीना) महान् दार्शनिक पैदा किये, उनमें याकूब किंदी पहला था। किंदीकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी, वह भूगोल, इतिहास, ज्योतिष, गणित और दर्शन सब पर अधिकार रखता था। उसके ग्रंथ अधिकतर गणित, ज्योतिष, भूगोल, वैद्यक और दर्शनपर हैं। उस समयके किमिया (सोना बनानेकी विद्या) पर विश्वास रखनेवालोंको निर्बुद्धि कहकर वह मजाक उड़ाता था, लेकिन दूसरी ओर फलित ज्योतिष पर उसका[२] बहुत विश्वास था। अपने दार्शनिक विचारोंमें वह ग्रीक दार्शनिकोंसे प्रभावित था।

---

[१] "सियासतनामा" (निजामुल्मुल्क) पृष्ठ ८-१४

[२] देखो दर्शन दिग्दर्शन पृष्ठ १०९-११३।

स्रोत-ग्रन्थ :

1. Heart of Asia (E. D. Ross)
2. Turkistan Down to Mongol Invasion (W. Bartold)
३. "सियासतनामा" (निजामुल्मुल्क, लाहौर)

भाग ७

उत्तरापथ (९४०-१२१२ ई०)

अध्याय १

कराखानी (६४०-११२५ ई०)

१. उद्गम

हम देखेंगे, सामानी राज्यश्रीका अन्त समीप आ रहा था। उनके पश्चिममें ईरानका शक्तिशाली राजवंश दैलमी (बुवाईद) जोर पकड़ रहा था, दक्षिणमें ग़ज़नवी सुबुक तगिन अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। ख्वारेज़्ममें ख्वारेज़्मशाह की दृढ़ नींव पड़ रही थी। इसी समय उनके उत्तरमें एक और शक्तिशाली तुर्क राज्य कायम हुआ, जो काशगरसे अराल समुद्र तक फैला हुआ था। पहिले दोनों पड़ोसियोंका संबंध अच्छा था, बल्कि कहा जा सकता है, ग़ज़निवियों, दैलमियोंकी सामानियोंसे मित्रता रही। कराखानी खानाबदोशोंने जब सामानी राजकी निर्बलता देखी, तो उनकी नज़र सिर-दरियाके पार जाने लगी। कराखानी, तुर्क जातिके प्रधान कबीलोंसे अलग हो त्यानशानके सानुओंपर रहते थे। कोई कोई लेखक इन्हें उइगुर नहीं मानते। इनका पहिला खान जो मुसलमान हुआ, उसका नाम सातुक कराखान था। घुमन्तुओंमें किसी खानके नामपर कबीलेका नाम पड़ना बहुत देखा जाता है, इसीलिए इन घुमन्तुओंको कराखानी कहा जाने लगा। इनका एक खान इलिखान (९९३—) भी था, जिसके कारण इन्हें इलखानी भी कहा जाता है। कराखानी दसवीं सदीके अन्तमें सप्तनदमें इली और सू-नदियोंकी उपत्यकाओंमें रहते थे। उनके अधीन नगरोंमें सबसे बड़े थे—कुलान (आधुनिक लुगोवया) और मेरके। उन्होंने बोगराखान (१०७४-११०२ ई०) के नेतृत्वमें अन्तर्वेदको जीता। मुख्य खान बलाशागुन (चू-उपत्यका) और कभी कभी काशगरमें भी रहता था। अन्तर्वेदपर अधिकार हो जानेके बाद जब वहांके कराखानी शासकको प्रधानता मिल गई, तो वह काशगरमें रहने लगा। सामानियोंका आमू तकका राज्य इन्होंने लिया और आमूसे दक्षिण को महमूद ग़ज़नवीके पिता सुबुक तगिन ने।

हम बतला आए है, कि किस प्रकार उइगुर आरम्भमें ओरखोन नदीकी उपत्यका (मंगोलिया) में रहते थे, उनके पुराने खान बुक्कूने स्वप्नके चमत्कारके अनुसार पूरब तथा पश्चिमकी दिग्विजय यात्रायें कीं, और बलाशागून (औलियाअता से उत्तर-पूरब) बसाया।

कराखानी राजवंशका आरम्भ कैसे हुआ, इसके बारेमें ऐतिहासिकोंका एकमत नहीं है। कुछ तो इनके तुर्की या उइगुर कबीलेके होने में संदेह करते हैं। लेकिन हमें यह मालूम है कि अरब ताक़ूज़-आग़ूज़ोंकी करलुकोंपर विजयकी बात कहते हैं और यह कि यामा कबीलेने काशगरको ले लिया। यह यग्मा ताक़ूज़-आग़ूज़ोंकी एक शाखा थी। इसी समय काफिर तुर्कोंने बलाशागुनको जीता। यह भी पता लगता है, कि इन जीतोंका अर्थात् ताक़ुज़-आग़ुज़ोंका नेतृत्व कराखानी कर रहे थे, इन्होंने ही करलुक राज्यको खतम किया। कराखानियोंके संबंधमें

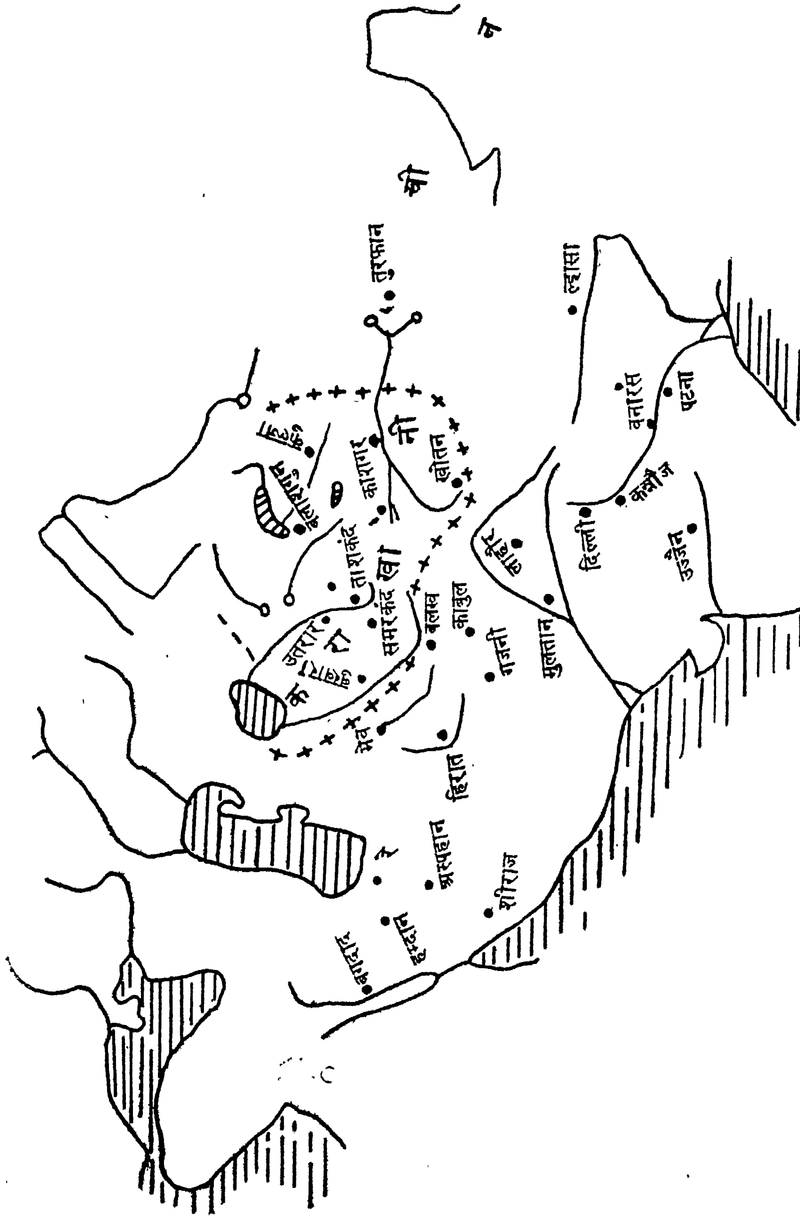
जो स्थिति करलुकोंकी है, वही स्थिति सलजूकी साम्राज्यमें आगूज़ोंकी है। कराखानियोंकी पुरानी परम्परा बतलाती है, कि सबसे पहिला सातुक बोगरा खान अब्दुलकरी-पुत्र अन्तर्वेदका विजेता था। दूसरे अन्तर्वेद-विजेताका यह दादा था। यही पहिले पहल मुसलमान हुआ। कहते हैं, सन् ९६० ई० में दो लाख खेमेवाले बहुतसे तुर्की कबीलोंने इस्लाम धर्म स्वीकार किया। अन्तर्वेद (मावराउन्नहर) जैसे सांस्कृतिक केन्द्र का—जहांपर कि अब इस्लाम जड़ जमा चुका था—प्रभाव उत्तरके इन घुमन्तुओंके ऊपर पड़ना आवश्यक था। उमैया-कालसे इस्लामिक धर्म-प्रचारक व्यापार और दूसरे संबंधोंसे यहां पहुंचने लगे थे, किन्तु उस वक्त उन्हें सफलता नहीं हुई, क्योंकि सनातनी इस्लाम इन घुमन्तुओंके अनुकूल नहीं था। यह घुमन्तू बौद्ध और दूसरे धर्मोंके प्रभावके कारण ध्यान, योग, त्याग-पूर्ण रहस्यवादी धर्मकी ओर ज्यादा आकृष्ट होते थे। यह काम मुस्लमान सूफी-सन्त ही कर सकते थे, इसलिए जहां मौलवी असफल हुए, वहां सन्तोंने इन घुमन्तुओंमें सफलता पाई। वस्तुतः मुसलमान सूफी-सन्त जिन बातोंको प्रधानता देते थे, उनपर केवल इस्लामके नामकी मुहर भर थी, नहीं तो वह वही बातें थीं, जिनको कि बौद्ध, नेस्तोरी या मानी साधक-सन्त मानते थे।

काफिर तुर्कोंने बलाशागूनको ९४२ ई० में ले लिया था। अगले साल खानका पुत्र सामानियोंके हाथमें कैदी बन गया। कुछ आगूज़ किसी कारणवश अपनी भूमि छोड़ सामानी सरकारकी आज्ञासे अन्तर्वेदकी उस भूमिमें चले गये थे, जो कि घुमन्तुओंके अनुकूल थी। इनका काम था, सामानी सीमाकी रक्षा करना। यह आगूज़ (तुर्कमान) इस्फिजाबके पश्चिम और पश्चिम-दक्षिणके इलाकोंमें रहने लगे। सिर-दरियाके निम्न-भागमें आगूज़ोंका एक दूसरा कबीला अपने नेता सल्जूकके नेतृत्वमें अलग जा बसा। सल्जूक मुसलमान बना और उसने जन्द-निवासी मुसलिम जनताको काफिरोंको कर देनेसे मुक्त कराया। मरनेके बाद सल्जूक खान जन्दमें दफनाया गया। उसके उत्तराधिकारियोंकी वहां नहीं पटी और ९८५ ई० के आसपास वह दक्षिणकी ओर चले गये। ग्यारहवीं सदीमें ज़िन्दका मुसलमान शासक सल्जूकी कबीलेका घोर विरोधी था। सल्जूक के प्रार्थना करनेपर सामानियोंने उन्हें नूर (बुखाराके उत्तर-पूरब के पहाड़ोंके नजदीक आधुनिक नूरअता) में बसा दिया। कुछ साल बाद जब बलाशागूनके खानने इस्फ़िजाबको दखल कर लिया, तो उनके साथ लड़नेमें सल्जूकियोंने सामानियोंका साथ दिया।

§२. राजावलि

उत्तरापथमें निम्न कराखानी कगान (खान) हुए—

कराखानी	गजनवी	सल्जूकी
१ शातुक कराखान -९५५		
२ बुगरा खान -९९३		
३ इलिक नस्र -९९३-१०१२	१ सुबुक तगिन -९९७	
४ तुगान १०१२-१०२५	२ महमूद ९९७-१०३०	
५ कादिर -१०३२		
६ अरसलन I १०३२-१०५६	३ मसऊद १०३०-४१	१ तुगरल १०३६-६३
७ बोगंरा II -१०५६	४ मुहम्मद -१०४१	



कराखानीसाम्राज्य (९९२ ई०)

कराखानी	गज़नवी	सल्जूकी
८ इब्राहीम I -१०५९	५ मौदूद -१०४१	
९ तुगरल युसुफ १०५९-७४	(ख्वारेज़्म)	२ अल्पअरसलन १०६३-
१० तुगरल तैमन -१०७४		३ मलिकशाह १०७३-

कराखानी	गजनवी	सल्जूकी
११ बोगरा III हारून १०७४-११०३	१ अनुश्तगिन -१०९७	४ महमूद १०९२-
		५ बर्कियारुक १०९४-
१२ कादिर II जिब्रील ११०३-	२ मु० कुतुबुद्दीन १०९७-११२७	६ मलिकशाह II -११०४
		७ मुहम्मद ११०४-
		८ महमूद II १११७
	३ अत्सिज़ ११२७-५६	९ संजर १११७-५७

§३. राजा

१. शातुक कराखान (९५५)

इसके बारेमें इतना ही मालूम है, कि यह ९५५ ई० में मौजूद था, तथा यही पहिले-पहल काफिरसे मुसलमान हुआ।

२. बोगराखान I (९९२)

शातुकके पुत्र मूसाका यह पौत्र था, जिसे शहाबुद्दौला और हारून भी कहते हैं। उस समय सामानी वंश बिलकुल निर्बल हो चुका था, इसलिए बोगरा खानको अन्तर्वेदको लेनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। अबूअली (सामानियोंके सामन्त) ने ही बोगरा खानको बुलानेमें बड़ी तत्परता दिखाई थी, जिसके लिये यह तै हुआ था, कि आमू-दरियाके दक्षिणका भाग अबूअलीके हाथमें रहेगा। सामानी शासनकी दुर्व्यवस्थासे तंग आकर देहकान (ग्रामणी) भी बोगराखानको निमंत्रण देनेवालोंमेंसे थे। बोगरा खान तीन पीढ़ीका मुसलमान था, इसलिए उसकी आवभगतमें मौलवी भी किसीसे पीछे नहीं रहे। खलीफा वासिकका वंशज अबूमुहम्मद उस्मान-पुत्र वासिकी भी खानके अनुयायियोंमें था। सामानियों पर इस सारी आफतका कारण यह भी था—जो कि आमतौरसे पुराने राजवंशोंमें दुहराया जाता है—अर्थात् एक ओर राज्यका छिन्न-भिन्न होके संकुचित होते जाना और दूसरी ओर खरचका बेतहाशा बढ़ता जाना।

मुस्लिम इतिहासकार बोगरा खानको उइगुर खानके नामसे अधिक जानते हैं। इसकी राजधानी बालाशागुन थी। काशगर, खोतन, तरस, फाराब (उतरार) और कराकोरम भी इसीके शासित नगर थे। यह सामानी नूह III का समकालीन था। हम कह आये हैं, कि खुरासानके गवर्नर सिमजूर अबुअली और हिरातके गवर्नर फाइक ने अपने स्वामीके विरुद्ध विद्रोह किया था, जिसके कारण नूहने फाइकको कड़ा दंड दिया। अब उन्होंने अपने स्वामीको दंड दिलानेके लिये बोगरा खानको बुलाया। फाइकको उस वक्त समरकंदकी रक्षा का भार दिया गया था। उसने समरकंदका दरवाजा कराखानियोंके लिये खोल दिया। नूह समरकंद छोड़ बुखारा भाग गया। समरकंदके बाद राजधानी बुखाराको लेकर अप्रयास ही बोगरा खान सारे अन्तर्वेदका शासक बन गया। बोगरा खानको यहांका जल-वायु अनुकूल नहीं आया। ९९३ (३८३ हि०) में वह बलाशागुन (सप्तनद) जा रहा था, कुछ ही मंजिलोंके बाद मर गया। नूहने आकर बुखाराको फिर ले लिया। नागरिकोंने उसका बड़ा स्वागत किया, किन्तु उसके अमीर विश्वासघात पर तुले हुए थे, इसलिए ९९४ (३८४ हि०) में नूहने गजनवी सुबुक तगिनको मददके लिये बुलाया। उसका

पुत्र महमूद गजनवी सेनाका सहायक-सेनापति था। गजनवियोंकी बीस हजार सेना वक्षु (आमू दरिया) पार हो किश (शह्रसब्ज) में नूहके साथ आ मिली और फिर संयुक्त सेनाने विद्रोही नगरों—हिरात, नेशापोर और तूस—को फिरसे विजय किया। पर, अन्तमें नूह और सुबक तगिन में झगड़ा हो गया।

३. इलिक नस्र (९९२-१०१२)

यह अन्तर्वेदसे विशेष संबंध रखता था।

४. तुगान (१०१२-२५ ई०)

इलिकके बाद उसका भाई तुगान खाकान बना। शायद वह अन्तर्वेदका भी शासक था, सप्तनदका तो अवश्य ही था। यह भी संभव है, कि पूर्वी तुर्किस्तानने भी उसे अपना खाकान माना था, और कादिर खान यूसुफ काशगर और यारकन्दका प्रान्तीय शासक था। १०१७ ई० (कराखिताइयों) में पूरबसे आकर खित्तनोंने सप्तनद ले लिया। तुगानखान भारी सेनाके साथ उनके मुकाबिले के लिए चला, तो वे सप्तनद छोड़कर हट गये। लेकिन उसके तीन ही महीने बाद तुगान खानकी पूर्ण पराजय हुई। कराखानियोंके घरकी फूटके साथ साथ महमूद गजनवी अपनी शक्तिको बढ़ाता जा रहा था। तुगानखान महमूदका विश्वासपात्र मित्र था, इसलिये बाहरी हमलेका डर नहीं था। सप्तनदपर अधिकार करनेवाले चीनसे आये एक लाख तम्बूवाले काफिरों का खतरा आया। एक बड़ी सेना लेकर तुगान खान ने १०१७ ई० (४०८ हि०) में आक्रमण कर काफिरोंको बुरी तरह हराया। इसके थोड़े ही समय बाद १०२५ ई० उसका देहान्त हो गया।

अरसलन खान मुहम्मद—तुगानखानका भाई था, जिसे अबू-मंसूर मुहम्मद अली-पुत्र (बहिरा) भी कहते हैं। यह कहना मुश्किल है, कि वह काराखानियोंका महाखाकान था या कोई प्रादेशिक शासक। इतना मालूम है, कि उसने महमूदके साथ अच्छा संबंध बनाये रखा। वह बड़ा धर्मात्मा माना जाता था। महमूदने अरसलन और उसके भाई इलिकसे अपने बड़े बेटे मसऊदके लिये एक राजकुमारी मांगी। राजकुमारीके बलख आनेपर उसका बड़ा स्वागत हुआ। महमूद काशगरीने अपनी पुस्तक "दीवान लुगातुत्-तुर्क" में लिखा है, कि मसऊद और उसकी तुर्क बीबीकी पहिली ही रात मार पीट हो गई। सुबुक तगिन और उसका बेटा महमूद भी तुर्क ही थे, लेकिन सोग्दियोंके साथ मिश्रण होनेके कारण इनके आचार-व्यवहार तथा आकृति पर भी तुर्कोंका प्रभाव कम रह गया था। भाषामें भी महमूद फारसी लेखकों (फिरदोसी, बैरूनी) का संरक्षक था। उधर कराखानी अभी शुद्ध घुमन्तू मंगोलायित थे, इसीलिए महमूद ग़ज़नवीके इतिहासकार उतबीने कराखानियोंके विचित्र शरीर-लक्षणका उल्लेख करते हुए आश्चर्य किया है, तो भी कराखानी खानका इतना दबदबा और प्रतिष्ठा थी, कि महमूद अपने उत्तराधिकारी लड़केके लिये "छोटी आंखों, चिपटी नाक, और चौड़े मुंहवाली" खान-कुमारीको लेना इज्जतकी बात समझता था। वह भी इतनी गरबगहिल्ली निकली, कि उसने सोहागरातको ही महमूदके शाहजादेको ठोक दिया।

५. कादिरखान-यूसुफ (१०२५-३२)

कादिरखान और इलिक खान दोनों भाइयोंका झगड़ा था, इसका जिक्र हम पहिले कर चुके

हैं। बोगराके पुत्र इलिक तुगान (II) का भाई अली तगिन था, जिसका ही पुत्र यह कादिर खान यूसुफ था। यह कहना मुश्किल है, कि वह सारे कराखानी साम्राज्यका खान था या केवल काशगर प्रदेशका। मुहम्मद तुगान और इलिकका चौथा भाई अली-पुत्र अबू-मंसूर था, जिसकी उपाधि असलम खान थी। बुखाराकी टकसालमें १०१२ (४०३ हि०) के ढले सिक्कोंपर इसकी उपाधि अरसलन खान मिलती है। अरसलन खान भी तुगान खां से झगड़ पड़ा। १०१६ ई० में उजगन्दके पास दोनोंकी लड़ाई हुई। ख्वारेज्मशाह मामूनने बीचमें पड़कर दोनों भाइयोंमें सुलह करवाई। यह भी कहा जाता है, कि कादिर खान पहिले समरकन्दकी गद्दीपर बैठा था। पीछे उसने सारे काशगर और खोतनको अपने हाथमें कर लिया। कादिर खां यूसुफने अपने काफिर भाइयों और प्रजाके बीच इस्लामका प्रचार करनेमें बड़ी तत्परता दिखाई। बोगरा खानके मरने पर, कहते हैं, खानका अधिकार परिवारकी दूसरी शाखाके हाथमें चला गया और यूसुफको हिस्सा नहीं मिला। उसने असंतुष्ट आदमियोंको अपनी ओर खींचा। फिर खोतन ले धीरे धीरे वह सारे पूर्वी तुर्किस्तानके नगरोंका स्वामी बन गया। ११वीं सदीके आरम्भमें इलिक नस्रका भाई तुगान खान काशगरका शासक था, लेकिन १०१३ (४०४ हि०) और १०१४ (४०५ हि०) में काशगरमें जो सिक्के चलते थे, उनपर खलीफा कादिर और मलिकुल्-मश्रिक् नासि-रुद्दौला (पूर्व-स्वामी, राज्य विजेता) कादिर खान यूसुफका नाम मिलता है। बादके वर्षोंमें भी वहां उसीके नामके सिक्के चलते रहे। इससे पता लगता है, कि अपनी मृत्युसे बहुत पहिले ही तुगान खानको पूर्वी तुर्किस्तानसे हाथ धो लेना पड़ा, और वह सप्तनद तथा अन्तर्बेदका ही शासक रह गया। उसका भाई मुहम्मद अली-पुत्र तराज़का शासक था। अन्तर्वेदमें भी भाईके जीवनमें वही अधीनस्थ शासक था। उसकी मृत्यु १०१५ (४०६ हि०) में हुई थी। उसने असलम खानकी पदवी धारण कर १०२४ तक शासन किया। अरसलनके अन्तिम सालोंमें जो दुर्व्यवस्था हुई, उससे अली तगिनने फायदा उठाया।

६. अरसलन खान सुलेमान (१०३२-५७ ई०)

कादिर खान यूसुफका ज्येष्ठ पुत्र बोगरा तैमन सुलेमान था, जो अरसलन खानकी उपाधि धारण कर पूर्वी तुर्किस्तान और सप्तनदका शासक बना। कादिर खां का दूसरा पुत्र ईगान-तैमन मुहम्मद "बोगरा खान" की उपाधि ग्रहण कर तलस (औलिया-अता) और इस्फ़िजाब पर शासन करता था। दोनों भाइयोंने महमूद-पुत्र मसऊद गज़नवीसे बातचीत चला अन्तर्वेदके अपने भाई-बन्धुओंके ऊपर चढ़ाई करनेकी तैयारी की, लेकिन उसमें सफलता नहीं हुई। उस समय सिमकन (बैंकलिग) नगरका शासक लश्कर खान था। अरसलन और उसके भाईमें दुश्मनी हो गई। १०४३ ई० (४३५ हि०) में अरसलनने अपनी अधिराजता रख अपने राज्यके भिन्न-भिन्न भागोंको अपने बन्धुओंमें बांट दिया, और अपने हाथमें काशगर और बालाशागुन का शासन रक्खा। लेकिन इतनेसे शान्ति नहीं स्थापित हुई, और १०५६ ई० में बोगरा खानने अरसलनको बन्दी बना उससे गद्दी छीन ली।

७. बोगरा खान II (१०५६-५९)

बोगरा खान बहुत दिन शासन नहीं कर सका। पन्द्रह ही मासमें उसकी स्त्रीने उसे विष

देकर मार डाला। कारण यह था कि बोगरा अपने बड़े लड़के चागिरी तैमन हुसैनको राज देना चाहता था, जबकि खातून अपने पुत्र इब्राहीमको।

८. इब्राहीम (१०५९-...)

इब्राहीम ज्यादा समय तक शासन नहीं कर सका। थोड़े ही समय बाद बर्सखानके शासक यनाल तैमनसे लड़ाई हुई, जिसमें वह मारा गया। वस्तुतः घुमन्तुओंमें यह भाव काम करता रहता है, कि कोई खान बनकर ऐश्वर्य क्यों भोगे, जबकि सामाजिक दृष्टिमें सब बराबर हैं। खानों का जीवन सीधा-साधा घुमन्तू जीवन नहीं था। लूट और दिग्विजयसे अपार संपत्ति और दास-दासी उनके हाथमें आते थे, जिसमेंसे खान अपने और अपनी संतानके लिये अधिक भाग रखना चाहता था, जिसके कारण खान और उसके परिवारके आदमियोंमें बड़ी विषमता खड़ी हो जाती थी। यही घरेलू कलह और खूनका कारण बनती थी। यद्यपि बाहरी शत्रुओंके सामने कितनी ही बार वह आपसी फूटको भूल जाते थे, किन्तु वैमनस्य धीरे धीरे बढ़ता ही जाता रहा। बोगरा खानके पुत्रोंमें इब्राहीम अंतिम खान था।

एक रूसी इतिहासकारने इन घुमन्तुओंके बारेमें लिखा है[१]—"उनके अनेक विभाजन बराबर झगड़ेका कारण बने रहते। झगड़ोंको मिटानेके लिये कोई बहुत कड़ा कदम उठाया नहीं जा सकता था, क्योंकि झगड़नेवाले भी राजवंशके अपने व्यक्ति थे, जिनकी सेवायें संकट या विजयके समय बहुत महत्व रखती थीं। उनमें नियम था—एक हजार तुर्कोंकी सेना खड़ी कर उन्हें दरबारके गुलामोंमें शामिल कर उनके साथ गुलामों जैसा बरताव नहीं किया जाता। उनको इस तरहकी शिक्षा दी जाती, जिसमें कि वह प्रजाके साथ अधिक परिचय प्राप्त कर सकें, और उनपर शासन करते यह भूल जायें, कि वह गुलाम हैं।" तुर्कोंमें इस तरहके "गुलामों"के रखनेकी प्रथा बहुत चल गई थी, क्योंकि राज-वंशियोंकी महत्वाकांक्षाओंके कारण खान या तेगिनको बराबर प्राणोंका संकट बना रहता था, जबकि यह गुलाम तुर्क उतनी महत्वाकांक्षा नहीं रखते थे। गुलामोंके स्वभावमें आसानीसे परिवर्तन लाया जा सकता था, क्योंकि वह जानते थे कि उनका सारा भविष्य अपने वंश संबंधके ऊपर नहीं बल्कि मालिककी कृपाके ऊपर अवलंबित है। महमूद गजनवीका पिता सुबुक तगिन इसी तरह गुलामके रूपमें पला और बढ़ा था। दिल्लीका प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक भी गोरियोंका इसी तरहका तुर्क गुलाम था। वस्तुतः यह गुलाम साधारण अर्थमें दास नहीं थे। उनको शिक्षा-दीक्षा ऐसी दी जाती थी, जिसमें ऊंचे-से-ऊंचे सैनिक असैनिक पदोंको वह सँभाल सकें। उनके मालिक उन्हें गुलामकी तरह नहीं मानते थे, यह तो इसीसे मालूम है, कि इनमेंसे कितने ही अपने मालिकके दामाद बनते थे। वस्तुतः मालिकका विरोध करनेमें इन्हें घाटा ही घाटा और मालिकको खुश रखनेमें लाभ ही लाभ था, यही कारण था, तुर्कोंमें इस प्रथाके बहुत चल पड़नेका।

९. तुगरल कराखान युसुफ (१०५९-७४)

इब्राहीमके बाद काशगर और बलाशागुन पर कादिर खान यूसुफके एक पौत्र तुगरल

---

[१] बर्तोल्द

कराखान यूसुफ ने १६ साल राज्य किया, जिसमें उसका भाई बोगरा खान हारून भी सम्मिलित था। अन्तर्वेद-शासक शम्शुलमुल्क नस्र (इलिक नस्रके पौत्र) के साथ उसकी लड़ाई हुई, किन्तु अन्तमें खोजन्दको सीमा मानकर दोनोंने सुलह कर ली।

१०. तुगरल तैमन (१०७४-...)

तुगरलके पुत्र तुगरल तैमिनने केवल दो साल राज्य किया।

११. बोगरा खान III हारून (१०७४-११०२)

भतीजेके बाद चचाने २१ साल (४६७-९६ हि०) तक काशगर, बलाशागुन और खोतनपर शासन किया। अन्तर्वेद दूसरी कराखानी शाखाके हाथमें चला गया। बोगरा खान उस समय काशगरमें अपने भाईका उपराज था, जबकि १०६९ (४६२ हि०) में उसने "कुदतकु-बिलिक" नामक तुर्की भाषाका प्रथम काव्य लिखा। तुर्की भाषाका यह प्रथम काव्य एक खानकी कलमसे लिखा गया है। इससे पहिले भी तुर्की भाषामें कविताएं बनी होंगी, किन्तु जनकाव्य होनेके कारण वह अधिकतर मौखिक रहीं। १०८९ ई० में मलिक शाह सल्जूकी (११०४-१७ ई०) समरकन्दपर अधिकार कर उजगन्द तक आया। बोगरा खानने उसे अपना अधिराज स्वीकृत किया। जब मलिक शाह समरकन्द चला गया, तो देशमें विद्रोह हो गया, जिसमें जिकिलोंने काशगर खानके भाई तथा अतबाशके शासक याकूब तैमनको बुलाया। याकूब समरकन्दपर आक्रमण करने गया, किन्तु जब मलिक शाहने उसकी तरफ मुंह फेरा, तो वह अतबाश भाग गया, जहां उसकी लड़ाई अपने भाईके साथ हो गई। बोगरा खानने अतबाशपर अधिकार करके याकूबको बन्दी बना लिया। मलिक शाहने उजगन्द पहुंचकर काशगरके खानसे याकूबको मांगा। बोगरा खान इसके लिये तैयार नहीं हुआ। सल्जूकी सेनाने काशगरको घेर लिया, जिसमें बरसखान-शासक तुगरल यनाल-पुत्रका शायद हाथ था, जिसके पिताको बोगरा खानके भाई इब्राहीम ने मारा था। बोगरा खान अन्तमें बन्दी बना। इसकी खबर उसके पुत्र और खातून (रानी) को मिली। मलिक शाह ने याकूबको तना देखकर उससे सुलह की और उजगन्द छोड़कर चलते समय याकूबको तुगरलसे लड़ाई जारी रखनेका हुकम दे गया। युद्धका क्या परिणाम हुआ, यह मालूम नहीं, किन्तु बोगरा खान हारून याकूबके बन्दीखानेसे जरूर छूट गया, क्योंकि उसने ११ वीं सदीके अन्त तक काशगरपर शासन किया। इन घटनाओंको देखनेसे मालूम होगा, कि सारे उत्तरी कराखानियोंका भी कोई एक सर्वमान्य खाकान कितने समय तक रहा, यह कहना मुश्किल है। खानजादोंमें बराबर झगड़े होते थे और वह एक दूसरेको बन्दी बना अपने राज्यका विस्तार करते थे। सल्जूकी अन्तर्वेदमें कुछ नहीं कर सकते, यदि उत्तरी कराखानियोंमें एकता होती। कराखानियोंमें खानजादा (राजकुमार यात तगिन), वेग जैसे उच्च कुल थोड़ेसे थे। उनके अतिरिक्त विशाल घुमन्तू जनता लड़ाइयोंकी लूट-पाटमें सहायता करती थी। जब तक लूटमें हिस्सा मिलता रहे, तब तक तुर्क जन-साधारणको इसकी पर्वाह नहीं थी, कि कौन महाखान है और कौन तगिन या वेग। लेकिन ऊपरी वर्गमें संपत्तिकी विषमताके कारण कभी समझौता नहीं हो पाता था।

१२. कादिर खान II जिबराईल (११०३ . . .)

यह संभवत: कराखानियोंका अन्तिम कगान बोगरा खान मुहम्मदके पुत्र कराखान उमरका पुत्र था, जिसके हाथसे कराखिताईयोंने राज्य छीन लिया। यह बलाशागून और तलसका शासक था। इसके बाद कराखिताइयोंके आने तक सप्तनद (बलाशागुनका) इतिहास अंधकारावृत है। ११०२ ई० में कराखान जिबराईलका सितारा बहुत ऊँचा था। उसने अन्तर्वेदको ही दखलकर संतोष नहीं किया, बल्कि आमू पार सल्जूकियोंकी भूमिपर भी आक्रमण किया। तेरमिज़ लेने में उसे सफलता मिली, लेकिन २२ जून (११०२) को इसी शहरके करीब सुल्तान सिंजरसे लड़ाई हुई, जिसमें वह बन्दी बनकर मारा गया। जिबराईलको मारनेके बाद सिंजरने महमूद तगिनको अरसलन खानकी पदवी देकर अन्तर्वेदकी गद्दीपर बैठाया।

इस्लाम—कराखानियोंसे पहिले सप्तनदके तुर्क-देशमें कोई मुसलमान राजवंश नहीं हुआ था। अरब इतिहासकार इब्नुल-असीरके अनुसार ९६० ई० (३४९ हि०) में २ लाख तुर्क तंबुओंने इस्लाम स्वीकार किया। १०४३ ई० में बहुतसे मुसलमान तुर्क किरगिज़ मरुभूमिमें घुमन्तू जीवन बिता रहे थे। इब्नुल-असीर लिखता है, कि गर्मियोंमें इन तुर्कोंके दस हजार तंबू बलगार (वोल्गा नदीके किनारे रहनेवाली तुर्क जाति) के पड़ोसकी भूमिमें रहा करते थे, जो जाड़ोंमें जाकर बलाशागुनके पास डेरा डालते। पूर्वी तुर्किस्तानपर सदा चीनी संस्कृतिका प्रभाव रहा। उसी प्रभावके कारण बहुतसे कराखानी खाकानों तथा अन्तर्वेदके शासकोंने भी तबगाच-खान (तमगाच खान) की पदवी धारण की। आठवीं सदीके ओरखूनके शिलालेख से मालूम होता है, कि यह चीन सम्राट्की दी हुई पदवी होती थी। १०६७ (४५९ हि०) के कराखानी सिक्कोंपर लिखा रहता था "मलिकुल्-मश्रिक वस् सीन" (पूर्व और चीनका स्वामी)। उरुमची, तुरफान और हामीके नगरोंके पास कराखानियोंकी सीमा चीन से मिलती थी। इन नगरोंमें पन्द्रहवीं सदी तक अभी इस्लामकी प्रधानता नहीं थी, और वहां बौद्ध और नेस्तोरी धर्म अधिक प्रभावशाली थे। कराखानी सिक्कोंपर अरबी लिपिके साथ साथ उइगुर-लिपिका भी व्यवहार होता था, जिसे मानी-धर्मी अथवा नेस्तोरी अपने साथ लाये थे। बोगरा खानके काव्य "कुदत्कु-विलिक" में उपयुक्त कितने ही पारिभाषिक शब्द उइगुर-तुर्की-मंगोल तीनों भाषाओंके एकसे हैं।

स्रोत-ग्रंथ :

1. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Bartold)
२. ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्या (व० बरतोल्द, बेर्नी १८९८)
३. आर्खेआलोगिचेस्किइ ओचेर्क सेवेर्नोइ किर्गिजिइ (अ० न० बेर्नश्ताम्, फ्रुन्जे १९४१)
४. ऋकि० सोओब० XIII pp115—..
५. कुदतकु-बिलिक (बोगराखान)

अध्याय २

कराखिताई (१११५-१२१८ ई०)

§१. उद्गम

कराखिताईका अर्थ है काले-खिताई। खिताई चीनका एक प्रसिद्ध राजवंश था, जिसने चाउ वंश (सुंग राजवंशकी शाखा) के रूपमें ९६० ई० से ११२६ ई० तक शासन किया। इसकी राजधानी कै-फैङ थी। इसके शासनका महत्त्व इतना समझा गया, कि जिस तरह चीन-वंश (२५५-२०६ ई० पू०) के गौरव-पूर्ण शासनके कारण भारत और बहुतसे दूसरे देशोंमें देशका नाम चीन पड़ा, वैसे ही खित्तन-वंशके कारण आज भी रूस और मुसलिम देशोंमें चीनका नाम खिताई मशहूर है। हमारे यहां भी नान-खिताईमें उसी चीनी रोटीका आभास मिलता है।

खित्तन उसी वंशके थे, जिसके कुनोक-घेई, जो पहाड़ोंमें वृक्षोंपर अपने मुर्दोंको टांगा करते थे, फिर तीस साल बाद हड्डियां जमाकर उन्हें जलाते और शराबकी धार देते हुए प्रार्थना करते—"जाड़ेमें दोपहरको हम दक्खिणाभिमुख भोजन करें, ग्रीष्ममें उत्तराभिमुख। अपने शिकारों में हम बराबर बहुतसे सूअर और हरिन पायें।" खित्तन और घेई दोनों पुराने सियान्-पी की संतान थे और उन्हींकी भूमिमें रहते थे। घेई मूलतः जूमिन कबीलेकी पूर्वी शाखामें थे। जूमिनोंने छठी सदीमें उत्तरी चीनपर राज किया था। किन्तु उससे पहिले ही मूजुंग सियन्-पी ने घेइयों और खित्तनोंको सिरामुरैन नदीके उत्तर सुंगारी नदी और मरुभूमिके बीचमें खदेड़ दिया था। प्रथम तोबा सम्राट्ने ३८८ ई० में लूटमार मचानेके लिये घेइयोंको दण्ड दिया था। ४४० ई० से घेई और खित्तन बराबर चीन दरबारमें घोड़ोंकी भेंट लाते थे। ४७९ ई० में खित्तन सिरा मुरेनकी शाखा पाइ-लंग (लौह) नदीपर अवस्थित आधुनिक तुमैद (मंगोल) देशमें चले गये। छठी सदीमें खित्तन सिरामुरैन (सिरा नदी) के उत्तरमें थे। घेइयों और खित्तनोंकी लूट-मारसे बचनेके लिये तोबा (वंश) ने चीनके महाप्राकारको नानकाङ जोत (पेकिङ्ग के समीप) से तातुङ-फू तक तीन सौ मील बढ़वाया। उसी सियान-पी वंश से खित्तन वंश निकला, जिससे पीछे मंचू हुए, जो कि भाषा और संस्कृति सभी बातोंमें अब चीनी बन गये हैं।

उत्तरके घुमन्तुओंमें देखा जाता है, परिस्थिति अनुकूल होनेपर एक छोटा सा कबीला योग्य नेताके अधीन एक विशाल जनका नेतृत्व हाथमें ले राज्य या साम्राज्य कायम करनेमें सफल होता है। खित्तनोंके साथ यही हुआ, चँगेज़ी (चिंगीसी) मंगोलोंके साथ भी यही बात हुई। जब तुर्कोंने घेइयों और खित्तनोंको दबाना चाहा, तो दस हजार खित्तन परिवार कोरिया भाग गये और चार हजार चीनकी प्रजा बन गये। ४६८ ई० में थाङ सम्राट् ताइ-चुङ (६२७-६५० ई०) ने खित्तनोंका एक नया प्रदेश बनाकर उसके शासकके वंशका नाम ली रख दिया। उसके नीचे

१० इलाकोंके शासक थे। यही प्रदेश आजकल जेहोलके नामसे प्रसिद्ध है। उसी सम्राट्ने आधुनिक युङ-पिङ-फूमें सभी पूर्वी बर्बर जातियोंके ऊपर एक उच्च-आयुक्तक नियुक्त कर खाकानकी पदवी प्रदान की। घुमन्तू जातियां अपने स्वभावसे मजबूर हो लूट-पाट करना छोड़ नहीं सकती थीं, जिसके लिये चीनको लड़ाई करनी पड़ती थी। ९०७ ई० में थाङ-वंश खतम हुआ, लेकिन इससे पहिले ८४२ ई० में उइगुरोंके मुकाबिलेमें खित्तनोंके साथ मेल-जोल बढ़ानेके लिये थाङ-वंशने साम्राजी मुद्रा प्रदान कर उन्हें अपने संरक्षणमें ले लिया। थाङ-वंश के खतम होने पर खित्तनोंकी ताकत बढ़ती गई। आगे हाथ बढ़ानेसे पहिले उन्होंने घेई, सिव, सिरवी जैसे बहुतसे छोटे-छोटे कबीलोंको अपने अधीन कर लिया। घेई खित्तनोंके पश्चिममें रहते थे, अतएव तुर्क उनके समीप थे, इसीलिए उनके ऊपर तुर्कोंका ज्यादा प्रभाव था। घेइयोंको मूर्ख कहा जाता था, जो शब्द कि हूणोंमें आवारों (ज्वेन-ज्वेन) को छोड़कर और किसीके लिये उपयुक्त नहीं होता था। घेई सुअर पालते थे, अपने मुर्दोंको पेड़ोंपर रखते थे, जो दोनों ही बातें तुंगुसी जातियोंमें पाई जाती हैं। खित्तनोंके दबावके मारे घेई आधुनिक कलगन इलाकेमें जा शिकारी जीवन बिताने लगे।

यही घेई और खित्तन थे, जिनकी भूमिमें ११-१२ वीं सदी में मंगोलोंके पूर्वज रहते थे।

§२. खित्तन सम्राट्

यद्यपि खित्तेन-वंशका संस्थापक अपोकी था, किन्तु वास्तविक सम्राट् उसका पुत्र ताइचुङ हुआ। खित्तन-वंशावली निम्न प्रकार है—

१. अपोकी (अ० प ओ० की)	९०७-२६ ई०
२. ताइचुङ (तेकवाङ)	९२६-४७ ई०
३. शीचुङ (उरि-क)	९४७-९५१ ई०
४. मूचुङ (जुर्रुत)	९५२-६८ ई०
५. चिङचुङ (मिङकी)	९६८-८३ ई०
६. शेङचुङ (लुङशू)	९८३-१०३१ ई०
७. शिङचुङ (शुङचैन, मूपूकू)	१०३१-५५ ई०
८. ताउचुङ (हुंकी)	१०५५-११०१ ई०
९. ल्यान-चू-ती (यन्ही)	११०१-२१ ई०
१०. तेचुङ	११२१-२५ ई०

(१) अपोकी (९०७-२६ ई०)

खित्तनोंने चीनसे स्वतंत्र हो आपसमें एकता स्थापित कर अपने संघका नाम स्याङ-लो-को मूली रखा, जिसका अर्थ है नदी (सिरामुरैन) का दोनों तीर। इनके आठ कबीले थे, जिनके अलग-अलग मुखिया हुआ करते थे। वही अपने ऊपर एक प्रधान (राष्ट्रपति) चुनते थे, जिसे एक नगाड़ा और झंडा राज्य-चिह्नके रूपमें दिया जाता था। पुराने सियन्-पी वंशमें भी यही प्रथा देखी जाती थी। यदि देशमें अकाल महामारी आती, या ढोरों और भेड़ोंको बहुत क्षति पहुंचती, तो मुख्य सरदार पदच्युत कर दिया जाता। खित्तन घुमन्तुओंकी मुख्य जीविका थी

अश्व-पालम। जब चीनियोंसे झगड़ा होता, तो खित्तनोंको मारनेके लिये वह चरागाहोंमें आग लगा देते। दसवीं सदीके प्रारम्भमें, जबकि थाङवंशका स्थान शादो तुर्क-वंशने लिया, आठों खित्तन कबीलोंका प्रधान अ-पओ-की था। राजनीतिक अशान्तिके कारण बहुतसे चीनी भागकर उसकी शरणमें गये थे। उसने उनके और अपने दूसरे बन्दियोंके लिये नगर बनवाये। खित्तन स्वयं आम घुमन्तुओंकी तरह नागरिक जीवनको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। इन नगरोंमें से एक आधुनिक दोलो-नोर (झील) के आस-पास था। अ-पओकी ने सुना, कि चीनी लोग निर्वाचन-प्रथाको बड़ी नीची निगाहसे देखते हैं। वह नौ सालोंसे खित्तनोंका सभापति था। उसपर अब राजा बननेकी धुन सवार हुई। उसने आठों कबीलों तथा प्रवासियों में से भी कितने ही को लेकर अपना एक खास कबीला बनानेकी राय ली। फिर इस कबीलेको सभ्य चीनी रीति-रिवाज सिखलानेके लिये एक चतुर चीनीको नियुक्त किया। अपने नगरको भी उसने ठीक चीनी ढंगपर बसाया। वहां बाजार थे, दूकानें थीं और रहनके घर थे। शहर बनानेके लिये ऐसा स्थान पसंद किया, जहां बहुतसी कृषि-योग्य भूमि, लोहा और नमक पासमें था। उसने चीनी व्यापारियों और किसानोंको इतना सुभीता दिया, कि उन्होंने देश लौटनेका ख्याल छोड़ दिया। अपोओकी की स्त्रीने सलाह दी, कि अपने इलाकेसे जो नमक ले जायें, उनसे क्षति-पूर्ति मांगो। यह विचार सबने पसन्द किया। एक बड़ा उत्सव मनाया गया, जिसमें सभी सरदार बुलाये गये। अपओकीने उनको वहीं मरवा दिया और निर्वाचनका नियम ताकपर रखकर स्वयं स्थायी महाराज बन गया। अपओकी बहुत शक्तिशाली शासक और सेनापति था। पश्चात्-ल्याङ (चू) राजवंश अब भी खित्तनोंका अधिराज था। उसने उनसे पिंड छुड़ानेका निश्चय किया। कलकन, जेहोल और पेकिङके बीचके प्रदेशपर लूट-मार शुरू की, जो थाङ-वंशके उत्तराधिकारी शादो तुर्कोंके हाथमें था। एक जगह उसके विरोधीने सफलता पाई, तो वह अपनी घुमन्तू सेना ले पेकिङ के पास तक पहुंच गया।

पीछेकी ओर कितने ही छोटे-छोटे राज्य थे, जिनके आक्रमणका डर रहता था। इसके लिये पहिले बोत्सकाई कबीलेको खतम करना जरूरी था। इसके लिये उसने शादो तुर्क वंशसे लल्लो-चप्पो लगाई। शादोके मरनेके बाद उसका पुत्र माउ-चि-लि (माउकिरे, मिङचुङ) ९२६ ई०में गद्दी पर बैठा। नये सम्राट्के गद्दी पर बैठनेकी सूचना देनेके लिये अपओकीके पास दूत भेजा गया। अपओकीने खबर सुन आकाशकी ओर ताकते रोते हुए जोरसे चिल्लाकर कहा—"अफसोस तुम्हारे पितामह सम्राट् और मैं दोनोंने भाई बननेका निश्चय किया था। इसलिये होनान (राजधानी) सम्राट्का पिता मेरा पुत्र था। जब अशान्तिकी बात सुनी, तो मैं पचास हजार सेनाके साथ अपने बेटेकी मददके लिये कूच करनेको तैयार था। तब तक बोत्सकाईका खात्मा करना बाकी था,इसलिए मैं अपनी हार्दिक इच्छाको पूरा नहीं कर सका। मेरा पुत्र (च्वाङ-चुङ ९२३-२६ ई०) मर गया। मुझसे सलाह पूछे बिना इसने कैसे अपनेको नया सम्राट् घोषित कर दिया?" इसपर दूतने जवाब दिया—"नया सम्राट् कुछ समयसे महासेनापति (फील्ड-मार्शल) के सैनिक पदपर आरूढ़ था। उसने पिछले बीस वर्षोंसे स्वयं सेनाका संचालन किया है। उसकी कमानमें तीन लाख अभ्यस्त सैनिक हैं, इसलिए नभ (भगवान) और मनुष्य दोनोंने ही उसे इस पदपर स्थापित करनेमें सहायता की। भला उसका विरोध कौन कर सकता है?"

अपओकी का पुत्र तूयरिक (तू-यू, ताइ-चुङ) दूतके पास खड़ा था, उसने उससे कहा—

"बहुत लम्बी बातें न करो ! तुम उस कहावतको जानते होगे, अगर कोई गाय दूसरे के खेतमें चरने जाये, तो उसे पकड़कर अपना माल बनाया जा सकता है।"

दूतने उत्तर दिया—"कैसे एक गुमनाम किसानके संबंधकी कहावत का प्रयोग देवताओं द्वारा अभिषिक्त तथा मनुष्यों द्वारा स्वीकृत व्यक्ति पर लागू हो सकती है? उदाहरणार्थ जब तुम्हारे महान् पिताने निर्वाचनको उठाकर खित्तन-सिंहासनको अपने हाथमें कर लिया, तो कौन उन्हें अनुचित कृत्यका अपराधी बना सका?"

अपओकीने कुछ गरम होकर कहा—"मैं जानता हूँ, कि मेरे पुत्रके पास महलमें दो हजार औरतें तथा एक हजार गायक-वादक आदि थे। वह अपना समय स्त्रियों और मदिरामें मस्त हो बकबकानेमें बिताता था। वह अयोग्य आदमियोंको राजकाजमें लगाये हुए था, और किसी आदमीके दुःख-सुख पर ध्यान नहीं देता था। इसके कारण उसका पतन हुआ। जबसे उसके पतनकी खबर सुनी, तबसे मैंने और मेरे परिवारने पिअक्कड़ी छोड़ दी, अपने बाजों और शिकारी कुत्तोंको मुक्त कर दिया। उन गायक-वादकोंकोको छोड़ बाकी सभी हटा दिये, जिनकी कि सार्वजनिक भोजोंमें आवश्यकता होती है। ऐसा न करता, तो मेरा भी परिणाम मेरे पुत्र जैसा होता।...मैं चीनी बोल सकता हूं, लेकिन मैं अपने लोगोंके सामने उसका एक शब्द भी मुंहसे नहीं निकालता। इसीलिए कि वह चीनियोंकी नकल करके डरपोक और कमजोर न बन जायें। अच्छा यही है कि तुम लौट जाओ, और सम्राट्से जाकर कहो, कि मैं दो हजार लोगोंके साथ पेकिङ और चेङतिङफूके बीच कहींपर उससे मिलूंगा, और वहीं उसके साथ संधि करूंगा। अगर वह मुझे पेकिङकी मैदानी भूमि दे देगा, तो मैं उसपर और आक्रमण नहीं करूंगा।

अपओकीने बोतसकाईपर आक्रमण किया। उनकी राजधानी फूयूचिङ (कइयेवान) को ले उसका नाम "पूर्वी तान" रख पुत्रको वहांका राजा बना दिया। थोड़े समय बाद ९२६ ई० में अपोकी मर गया। इसीके समय पुरानी सियान्पी प्रथा—लकड़ीके अक्षरों द्वारा संदेश भेजना छोड़ दिया गया। किसी चीनीने चीनी संकेत लिपि और चित्रलिपिको मिला-जुलाकर एक नई लिपि तैयार की। इसीमें उस समयके कुछ अभिलेख मिले हैं, किन्तु अभी वह पढ़े नहीं गए। अपोकीका शासन-काल ९०७-९२६ ई० था, जबकि वह "दिव्य सम्राजीय राजा" बना था। उसका उर्दू सी-लू में तालिङ नदीपर चरवाही करता था, जो कि मंगोलिया और मंचूरियाके सीमान्त प्रदेश के भीतर था। वहीं उसने राजधानी मुजंग बनवाई थी। पांचवें खित्तन सम्राट् मिङकी (चिङ-चुङ ९६८-७६) ने तीन सौ मील और पूरब मुकदनके पास अपनी राजधानी (पूर्वी पेटिका) बनाई। उत्तरी पेटिका (राजधानी) पश्चिमी राजधानीसे सौ मील उत्तर थी। इसके अतिरिक्त एक दक्षिणी पेटिका भी थी, जो कि पश्चिमी राजधानीसे दक्षिण थी। खित्तन घुमन्तू थे। उनके सम्राटोंको शिकारका बहुत शौक था, इसलिए उन्होंने यह शिकारकी पेटिकायें (हिशकारगाहें) बनवाई थीं। चारोंही शिकारगाहोंके फाटक और दरवाजे पूर्वकी ओर खुलते थे। खित्तन अपने सभी शुभ कामोंको भारतीयोंकी भांति पूर्वाभिमुख करते। महीनेकी हर प्रथम तिथिको पूर्वाभिमुख हो यात्रा या दूसरा काम करते। ऊपरी राजधानीमें बाकायदा नगर, बाजार, दूकानें थीं। उन्होंने अपना कोई सिक्का नहीं चलाया। सिक्केका काम रेशमके थान देते थे। उनके नगरोंमें बहुतसे रेशमके कारखाने थे। खित्तन बौद्ध थे। उनके बड़े-बड़े मठ बने हुए थे, जिनमें भिक्षु-भिक्षुणियां रहते थे। इसके अतिरिक्त वहां

चीन राजधानीकी नकल करते हुए, वेश्याशालायें, आमोदगृह भी थे। नगरमें शिल्पों, मल्लों; विद्यार्थियों, अध्यापकोंके घरोंके साथ साथ बहुत तरहके राजकीय कार्यालय थे।

(२) ताइ-चुंङ् (९२६-९४७)

आपोकीने अपनेको बाकायदा सम्राट् घोषित नहीं किया था। उसके बाद पुत्र ताइचुङ (तेक्वांग) अपनी मांके जोरपर पिताकी गद्दीपर बैठा और बड़ा भाई कुछ नहीं कर सका। खित्तन सरदार भी ताइ-चुङके साथ थे। इसने भी बापकी तरह लूट-पाट जारी रखी। शादो सम्राट् तेक्वाङने अपने दामादको सीमान्तका रक्षक बनाकर भेजा, लेकिन अपने ससुरके अयोग्य उत्तराधिकारियोंके समय विद्रोह करके वह खित्तनोंका अनुयायी बन गया। खित्तन अपनी गाड़ियों और रिसालोंके साथ येन्-मेन् (हंसद्वार) डांडेसे आ गये। पश्चात्-थाङ्-वंशीय (शादो, तुर्क) सेना बुरी तरहसे हारी। दामाद शीकिङ्तान सम्राट् घोषित हुआ और खित्तनोंको उनकी सहायताके बदले प्रदेश और बहुत सी चीजें भेंट की। माउकिरे (शादो सम्राट्) ने अन्तिम प्रार्थनाकी थी—"मैं एक गरीब सीधा-सादा तातार हूं, जिसे स्थिर विचारवाली जनताने स्वीकार करके गद्दीपर बैठाया। मेरी केवल यही प्रार्थना है, कि जब तक दैव अपनी कृपासे मुझे जीवित रखे, तब तक अपने लोगोंकी भलाईके लिए आप मेरा पथप्रदर्शन करें।"

इसी समय यन्-चिङ (आधुनिक पेकिङ) खित्तनोंके एक इलाके का शासन-केन्द्र बना। इस प्रकार पेकिङके वैभवका शिलारोप हुआ। अबसे ताइ-चुङने अपने वंशका नाम ल्याओ (लौह) रक्खा।

खित्तन साम्राज्यके भीतरका महाप्रकारसे दक्षिणवाला चीन बारह सूबोंमें बांटा गया था। इसके अतिरिक्त मंचूरिया और उत्तरी तातार भूमि भी उनके हाथमें थी। खित्तन-वंश आरम्भसे अन्त तक घुमन्तू रहा। ताइ-चुङने अपने साम्राज्यका संगठन चीनी ढंग पर किया था और उसी रीतिके अनुसार वह शादो सम्राट्को बढ़िया मदिरा, जवाहिरात और मिठाइयोंके साथ प्रतिवर्ष तीन लाख थान रेशम भेजा करता था। लेकिन अब अधिराज और अधीनके स्थानपर पत्रोंमें "पिता-पुत्र" का प्रयोग किया जाता था। यह नहीं मालूम होता, शीनकिङ ताङ (काउचू ९३६-९४२) ने अपने जीवनके अन्त तक खित्तनोंके साथ हुई संधिका पालन किया। ९४३ई०में खित्तनोंने तीन सेनाओंको भेजकर चीनपर आक्रमण किया, किन्तु युद्धका फल अनिश्चित रहा। अगले वसंतमें उन्होंने फिर आक्रमण किया और बहुतसे नगरों-ग्रामोंको जलाया लूटा; पर चीनी सेनाने आकर उन्हें हरा दिया। ताइ-चुङ अपनी गाड़ी (रथ) छोड़ सफेद ऊंटपर भागकर किसी तरह यन्चि पहुंचा। उस साल उस प्रदेशमें सूखा, महामारी और टिड्डियोंका प्रकोप था, इसलिये मजबूर होकर वह विजयी शादो-तुर्कोंके साथ सुलह करनेके लिये तैयार था, लेकिन कड़ी शर्तोंके कारण सुलह नहीं हो सकी। ताइ-चुङने सिरपर "सम्राजीय आज्ञासे जीव-दान" का गोदना गुदवाकर सभी बंदियोंको लौटा दिया। फिर वह पियान् (आधुनिक काइ-फेङ-फू राजधानी) पर चढ़ दौड़ा। चीन-सम्राट् और राजमाताने क्षमा-प्रार्थना की। ताइ-चुङने जवाब दिया—"मेरे पोते, बहुत अफसोस मत करो, बस मेरे भोजनके लिये कोई स्थान दे दो।" उसके लिये सम्राजीय रथ भेजा गया, तो उसने उसका इस्तेमाल न करके जवाब दिया—"मैंने शरीरमें कवच लगा कर सारे चीनको जीतनेकी प्रतिज्ञा कर ली है, इसलिये मेरे पास महोत्सव या शिष्टाचारके लिये

उपयुक्त होनेवाले रथके इस्तेमाल करनेका समय नहीं है।" सम्राट् और सम्राट्की माता विजेता-का स्वागत करनेके लिये प्राकारसे बाहर आये। खित्तन विजेताने जवाब दिया—"कैसे सड़कके ऊपर दो सम्राट् भेंट करेंगे।" दूसरे दिन ताइ-चुङ चिन राजधानीमें दाखिल हुआ। उसके सिरपर समूरी टोपी, शरीरपर कवच था, वह घोड़ेपर सवार था। चिन-वंशके सारे अफसरोंने विजेताके सामने दण्डवत्-प्रणाम किया। फाटकके भीतर घुसकर रक्षी मीनारके ऊपर चढ़ कर उसने दुभाषियाको चीनी भाषामें घोषित करनेको कहा—"मैं केवल एक मनुष्य हूं, तुम्हें डरनेकी कोई अवश्यकता नहीं। मैं अपनी इच्छासे यहां नहीं आया। चीनी सेनायें मुझे यहां लाईं।" फिर वह राजमहलमें गया। अन्त:पुरकी सुन्दरियां स्वागतके लिये तैयार थीं, किन्तु उसने उनकी ओर ताका भी नहीं। शामको शहरके बाहर एक पहाड़ीपर उसने रात बिताई। चिन-सम्राट्को "कृतघ्नियोंका सरदार" की पदवी देकर उसे जेहोलके पास खित्तनोंकी राजधानी, ह्वाङलुङफूमें भेज दिया। राजधानीमें पहुंचनेके सातवें दिन ताइचुङने महलमें रहना शुरू किया। अब सभी फाटकोंपर खित्तन सैनिक पहरा देने लगे। अगले दिन उसने दरबार किया, किन्तु वहां चीनी सम्राटोंका भेस न धारण कर अपने जातीय भेसमें आया। उसके अगले दिन दूसरा दरबार किया, जिसमें उसका सारा भेस चीनी था, किन्तु टोपी समूरी और बटन भी तातारों-की तरह बाईं ओर थे। सारे चीनी अधिकारी पूरी दरबारी पोशाकमें थे। दरबार-हालके सामने घेइयोंकी गाड़ियां और तातार (खित्तन) सवार पांतीसे खड़े थे। तीन सप्ताह बाद उसने एक और भारी दरबार किया। अब ताइचुङने चीनी सम्राटोंका विशेष चिह्न नागमुकुट धारण किया, जिसके साथ शरीरपर भूरे रंगका चोगा और हाथमें राजदण्ड था। उसने सभी अप-राधियोंको एक ओरसे क्षमादान दिया। चीन-साम्राज्यका नाम महाल्याउ साम्राज्य हो गया। यह घोषणा ताइचुङके द्वितीय कालके दसवें वर्ष अथवा उसके राज्यारोहणके बाईसवें वर्ष (९४७ ई०) में हुई। दूसरे चान्द्रमासकी पहली तिथिको ताइचुङने "निश्चय ही मैं सच्चा सम्राट् हूं" कहते फिर एक बड़ा दरबार किया। इस दरबारमें उसने घोषित करके सभी प्रदेशों और नगरोंके लिये दुभाषियाके साथ एक-एक खित्तन राज्यपाल नियुक्त किये। खित्तन सेनाको रसदकी कमी हुई, इसपर ताइचुङने चारों तरफ सैनिक दल दौड़ाये, जिन्होंने पूर्व और पश्चिममें एक हजार मीलके प्रदेशको लूट-पाटकर रसद जमा कर ली।

सेनापति ल्यू-ची-युवानने शान्सी प्रदेशमें प्रायः सारे खित्तन सैनिक राज्यपालोंको मार डाला। गरमीका मौसम सिरपर था। ताइचुङ अपने सालेको चिन-राजधानीका प्रबंध सौंपकर चिन नौकरशाहों, चतुर शिल्पियों, अन्त:पुरकी स्त्रियों और कई हजार सैनिक अफसरोंको लेकर चला। ह्वाङहो (पीत नदी) पार हो वह चाङते नगरमें पहुंचा। उसने प्रदेशके लोगोंकी भेंटपर नज़र दौड़ा कर एक चीनी अफसरसे कहा—"मुझे बड़े शिकारोंको घेर कर शिकार करके मांस खानेमें आनन्द आता है, किन्तु जबसे मैं चीनमें दाखिल हुआ, तबसे मेरा उत्साह जाता रहा। यदि मैं अपने पूर्वजोंके घरको एक बार और देख लूं, तो मैं बड़े संतोषके साथ मरूंगा।" ल्याउ-चाङ पहुंचकर वह बीमार पड़ा और वहीं मर गया। खित्तन पेट चीरकर नमक डाल उसकी लाशको उत्तरकी ओर ले गये।

३. शीचुङ (९४७-९६२ ई०)

ताइचुङके मरनेके बाद उसका भतीजा तुर्युक-पुत्र वू-यू (उर्युक) गद्दीपर बैठा। यह बड़ा

क्रूर किन्तु ज़िन्दादिल आदमी था। शराब उसे बहुत पसंद थी। वह एक अच्छा कलाकार, काफी सुपठित, सुशिक्षित आदमी था। वह बापके साथ चीन नहीं भागा था। खित्तनोंने मौकिरेके दामादको सिंहासनपर बैठनेमें मदद की थी। उसी समय मौकिरेके उत्तराधिकारी तथा दत्तक पुत्रने तुर्युकको मार डाला। उर्युक् उस समय चचाके साथ चीनमें था। मृत्युके समय भी वह उसीके साथ था। चीनी सेनापतिके पास एक लाख सेना थी, किन्तु वह उससे कोई लाभ नहीं उठा सका। उर्युकने उसे पानगोष्ठीमें सम्मिलित होनेके लिये बुलाकर तालेमें बन्द कर दिया और ताइचुङकी इच्छाको घोषित किया—"तुम केन्द्रीय राजधानीमें साम्राजीय सिंहासनपर आरूढ़ हो सकते हो।" लेकिन दादीने ताइचुङके दूसरे पुत्रका पक्ष लिया। लड़ाई हुई। सेनाने साथ छोड़ दिया, इसलिये दादी हार गई। दादीने राज्यके उत्तरी भागके एक ऐसे स्थानको मांगा, जहांपर कि अपोकीकी समाधि, उसके विशेष स्मृति-चिह्न रक्खे हुए थे। यह स्थान सिरामुरैन (सिरा नदी) के ऊपरी भाग (आजकलके बारिन मंगोल इलाके) में था। यहीं दादीको समाधिस्थ कर दिया गया। पांच साल राज करनेके बाद (९५२ ई० में) अपनी अवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिए उसने सेनाको लूट-मार करनेका हुकुम दिया। जब सेना नहीं तैयार हुई, तो उसके साथ जबर्दस्ती करना चाहा, जिससे विद्रोह हो गया, व्रू-यू मारा गया, और एक खूनके लिये कई खून किये गए।

४. मूचुङ् (९५१-९६८ ई०)

अब ताइचुङका पुत्र शूलू (जुर्रुत) खित्तनोंका सम्राट् बनाया गया। इसका नाम अपने दादा ही का मूचुङ था। राज-काजमें दिलचस्पी नहीं रखते। वह बड़ा शराबी और संभवतः नपुंसक था। सारी रात शराब पीता और सारे दिन सोया करता, जिसके कारण इसका नाम "सोनेवाला राजा" पड़ गया। ९५९ ई० में चाउ-वंशके द्वितीय राजाने खित्तनोंपर आक्रमण करके उनके कई नगर छीन लिये। मूचुङने खबर सुनकर जवाब दिया—"क्या परवाह है, यदि कुछ नगर वह लौटा लें।" ९६० ई० में शुङ-वंश (९६०-१२७९ ई०) की स्थापना हुई, लेकिन वह तातारों (खित्तनों) के साथ झगड़ा मोल नहीं लेना चाहते थे। उन्होंने जबर्दस्ती छीने हुए घोड़ोंको खित्तनोंके पास लौटा दिया और सीमान्तके लोगों पर लूट-मार करनेकी मनाही कर दी। पर तो भी खित्तन कई सालों तक लूट-मार करते रहे। इसपर शुङ सम्राट् ताइचू (९६०-७६ ई०) ने स्वयं खित्तनोंके खिलाफ सेना-संचालन किया। ९६९ में मूचुंङ मार डाला गया और उसके स्थान पर शीचुङ (उर्युक) का पुत्र गद्दीपर बैठा।

५. चिङ्चुङ् (मिंग्ची) (९६८-८३ ई०)

अब से सारे खित्तन-सम्राटोंके नाम चीनी होने लगे। चिङ-चुंङ ने अपने वंशका नाम महाखित्तन रखा। ९७० ई० में साठ हजार खित्तनोंने पाउ-चाउ (पाउतिङफू, पीछे प्रान्तीय राजधानी ची-ली) पर आक्रमण किया। लेकिन चीनी सेना ने उन्हें बुरी तरहसे हराया। शुङ सम्राट्ने प्रत्येक खित्तन सिरके लिये चौबीस थान रेशम इनाम देनेकी घोषणा की। उसने समझा, खित्तनोंकी सारी सेना खरीदनेके लिये बीस लाख थान काफी होंगे।

९७५ के बाद दोनों राज्योंके संबंधमें कुछ नरमी आई। बहुतसे दूत-मंडल और राज

धानीमें रहनेके लिये एक राजदूत भेजा गया। खित्तन भी अब बड़ी तेजीसे चीनी संस्कृतिमें दीक्षित होते जा रहे थे। ९७६ ई० में शुङ सम्राट् ताइ-चूके मरनेपर संवेदना प्रकट करनेके लिये खित्तनोंने एक विशेष दूत-मंडल भेजा। ९७८ में फिर लड़ाई छिड़ गई। नये शुङ सम्राट् ताइ-चुङ (९७६- ९७ ई०) ने थोड़े दिनोंके लिये खित्तनोंके आधीन नगर या-मिङ (पेकिङ) पर अधिकार कर लिया। लड़ाईमें दस हजार खित्तन मारे गये। पीढ़ियोंसे युद्ध-क्षेत्र बने रहनेके कारण यह प्रदेश इतना बरबाद हो गया था, कि शुङ सेनाको उसे छोड़ जाना पड़ा।

६. शेङ्चुङ् (९८३-१०३१)

चिङचुङकी मृत्यु (९८३ ई०) तक लूट-पाट जारी रही। उसके मरनेपर उसका १२सालका पुत्र लुङ सू शेङचुङके नामसे गद्दीपर बैठा और उसकी मां अभिभाविका बनी। शुङ -वंशके साथ लड़ाई और लूट-पाट अब भी जारी रही। ९८४ ई० के अभिलेखोंसे पता लगता है, कि अभिभाविका राजमाता अपने एक चीनी सेनापति हान-तेजङसे फंसी हुई थी। ९८६ में एक भारी चीनी सेनाने आक्रमण किया, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। ९८७ ई० की लड़ाईमें भी खित्तनोंने सभी चीनी सेनापतियोंको हराया। ९८९ में शुङ सम्राट्को युद्ध-घोषणा निकालते हुए और भी सेना भेजनी पड़ी। उस समय ओर्दूस प्रदेशमें तिब्बती कबीलोंका जोर था। खित्तन घुमन्तुओंने ९९५ ई०में इन तिब्बतियों (तंगुतों) को अपनी ओर कर लिया, लेकिन जब खित्तनोंको भागते देखा, तो उन्होंने भी भीषण प्रहार किया। बहुतसे खित्तन तंबू (परिवार) ह्वाङहो नदीके दूसरे पार चीन की ओर चले गये और शुङ वंशको कम से कम दस हजार मजबूत सवारोंकी साहयक सेना मिल गई। ९९९ ई० में तृतीय शुङ सम्राट् (चेनचुङ ९९७-१२२ ई०) ने स्वयं सेनाका संचालन करते खित्तनोंपर आक्रमण किया। खित्तनोंको लगातार पांच साल तक हानि पर हानि उठानी पड़ी। १०३० ई० में खित्तनोंका एक चीनी अफसर शुङकी ओर चला गया, जिससे उसे बहुतसे सैनिक भेद मालूम हुए—पेकिङमें १८ हजार चीनी रिसाला है, गी-शी कबीला और कुछ सरदार महा-दीवारके उत्तरमें रहते हैं। इनके अतिरिक्त एक लाख अस्सी हजार सवार-सेना और है, जिनमें पांच हजार शरीर-रक्षक सैनिक हैं। लूट-पाटके लिये ५४ हजार सैनिक हैं। लगातार आक्रमणसे परेशान होकर खित्तन राजा और राजमाताने सारी सेना लेकर शुङ सेनापर आक्रमण कर दिया। आधुनिक होक्यानफूमें भारी लड़ाई हुई। खित्तनोंने इस लड़ाईमें एक प्रकारका तोपखाना इस्ते-माल किया—शायद इतिहासमें यह पहिला तोपखाना था, जिससे धनुष बाणके सिद्धान्तपर बड़े-बड़े पत्थर और लकड़ीके कुन्दे फेंके गये। यहां वह असफल रहे, किन्तु शाङचाउ (तामिङफूके पास कै-चाउ) में वह शुङ सेनाको करीब करीब घेर लेनेमें सफल हुए, किन्तु उसी समय उनका सेनापति सिरमें वाण लगनेसे घायल होगया और शिविरमें लौटकर उसी रात मर गया। खित्तन पीछे लौटे। दोनों राज्योंमें सुलह हुई। चीनकी अधिकृत भूमिके बदलेमें खित्तनोंको सालाना दो लाख थान रेशम और एक लाख औंस (७८ मन) चांदी भेंट मिलने लगी। इसके अतिरिक्त कुछ रेशम और चांदी अभिभाविका रानीको भी मिला। १०१० ई० में राजमाता मर गई और थोड़े ही समय बाद उसका जार चीनी महामंत्री भी मर गया। १०२२ में चेङचुङके मरनेपर शिङचुङ नया शुङ सम्राट् बना। इसके बाद खित्तनोंसे कोई बड़ा झगड़ा नहीं हुआ और १०३१ में शेङचुङ भी मर गया।

७. शिङ् चुङ् (मुयुकु १०३१-१०५५)

अब उसका बेटा गद्दीपर बैठा। इसके समय भी राजशासन अन्तःपुरकी रखेलियोंके हाथमें रहा। ओर्दुसमें तंगुतों (अमदो-तिब्बतियों) का राज्य काफी प्रबल हो उठा था, जिनकी राजधानी हिया थी। १०२८ ई० में तंगुत्-राजाने उइगुरोंके नगर खाङ्चाङ्को दखल कर लिया। शुङ-सम्राट् ने भी तंगुतोंके चीनपर पड़ते दबावको देखकर अपने हाथसे गये नगरोंको लौटाना चाहा। शुङ राजदूतके कहनेका उत्तर देते हुए खित्तन-राजाने कहा—"हमारे लोग युद्ध करनेके लिये बेकरार हैं, किन्तु क्षतिपूर्त्तिके रूपमें यदि चीनी प्रदेश मिल जाय, तो मैं संतुष्ट हो जाऊंगा।" फिर समझाते हुए कहा—"हमने हंसद्वार (जोत) को इसीलिये बन्द कर दिया है, कि तंगुत् लोग न आ सकें। खित्तन सीमान्तपरके जलाशयको बंद करना तो ९९७ से ऐसा ही चला आ रहा है। हमारी किलाबन्दियोंको मजबूत करनेके लिये जो सिपाही भेजे गये हैं, वह केवल टूटी-फूटी चीजोंकी आवश्यक मरम्मतके लिये ही। हमने संधि-नियमके विरुद्ध कोई बात नहीं की।" यद्यपि छिन्-वंशके संस्थापक शादोने कुछ इलाके खित्तनोंको रिश्वतमें दिये, लेकिन उत्तर-चाउ-वंशके द्वितीय सम्राट्ने उसके कुछ भागको मांग लिया। यह दोनों घटनायें शुङ राजवंशकी स्थापनाके पहिले की हैं। दूतने कहा—"यदि चाउ-वंशके विधानको तुम तोड़ देना चाहते हो, तो हम भी छिन-वंशके विधानको तोड़ देंगे, जिससे शुङ-वंशको ही लाभ होगा। सम्राट्ने मुझे यह कहनेके लिये भी आदेश दिया है, कि उनकी रायमें तुम्हारी इच्छा जो इलाका लेनेकी है, उसके भीतर उस भूमिसे लाभ उठानेका भाव ही काम कर रहा है, किंतु यह केवल लाभ का ही प्रश्न नहीं है, बल्कि इसमें बहुतसे मूल्यवान् जीवनोंके बलिदान की भी बात है। इसीलिए सम्राट् आपके पास भेजी जानेवाली भेंटमें उतना मूल्य और बढ़ानेके लिये तैयार हैं, जोकि विवादग्रस्त भूमिसे मिलता। यदि खित्तन उस भूमिको ही लेना चाहते हैं, तो उसका अर्थ यही है, कि वह १००५ ई० के संधि-पत्रको तोड़ फ़ेंकनेके लिये उतारू हैं। यदि युद्ध करना ही अभिप्रेत है, तो परमभट्टारक उसे कबूल करनेसे इन्कार नहीं करते।" शिङ्चुङ्पर दूतकी इस बातका प्रभाव पड़ा। उसने व्याहके लिये राजकन्या मांगी, तो दूतने कहा—"विवाह-संबंधके कारण जल्दी झगड़ा उत्पन्न हो जाता है। वह उतना स्थायी नहीं है, जितनी कि भेंट। प्रथम श्रेणीकी राज-कुमारीके लिये एक लाख औंस (७८ मन) चांदी दहेजमें देते हैं, जोकि आपको मिलनेवाली वार्षिक भेंट से कहीं कम है।" इसपर खित्तन राजाने कहा—"अच्छी बात है, तुम जाओ, जब दूसरी बार आओगे, तो मैं बतलाऊंगा कि भेंट और राजकन्यामें मुझे किसको लेना है, लेकिन अबके पूरे अधिकारके साथ आना।"

चीनी दूत दुबारा आया। उस समय दो लाखकी जगह तीन लाख थान रेशम और एक लाख की जगह दो लाख औंस (१५६ मन) चांदी वार्षिक भेंट देना तै हुआ। इसके साथ यह भी निश्चय हुआ—(१) चीन पा-चाङ सीमाके बांधको तोड़कर प्रवाहित नहीं करेगा, (२) सीमान्तपर और सेना नहीं बढ़ायेगा, (३) खित्तन भगेलुओंको शरण नहीं देगा।"

इसके बाद १०४४ ई० में खित्तनोंने चीनको सूचना देकर भगेलुओंको शरण देनेके दोष पर तंगुतोंके विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। खित्तन विजयी हुए। तबसे चीनी अभिलेखोंमें "उत्तरी महाराज्य" की जगह "महाखित्तन" और दक्षिणी महाराज्य की जगह "महाशुङ" लिखा जाने

लगा। १०५४ ई० में दोनों देशों में पचास साल तक बनी रही शान्ति के उपलक्ष में शिङचुङ ने अपना चित्र भेजकर जङचेङसे उसका चित्र मंगवाया। उससे अगले साल २५ साल के शासन के बाद शिङचुङ मर गया और उसके स्थानपर उसका पुत्र गद्दी पर बैठा। यह बौद्धधर्म का बड़ा पक्षपाती था, इसने कितने ही ऊंचे सरकारी पदों पर बौद्ध भिक्षु नियुक्त किये थे।

८. ताउ-चुङ् (१०५५-११०१ ई०)

आगे शुङ और खित्तन सम्राटों में अधिकतर मैत्रीपूर्ण संबंध रहा। दोनों ने एक दूसरे का चित्र मंगवाया। तो भी खित्तन घुमन्तू सीमान्त पर छोटी-मोटी लूट-पाट करने से अपने को रोक नहीं सकते थे। चीन ने युद्ध को खर्चीली चीज समझकर सब कुछ बर्दाश्त किया।

रीति-रवाज—खित्तन फरवरी-मार्च के मास में चालीस दिन शिकार में बिताते थे, फिर तारू नदी में बरफ में छेद करके मछली मारते। उसके बाद तलही चिड़ियों का शिकार करते। गरमियों में वह तान्-शान् (कोयला गिरि) अथवा ऊपरी राजधानी में चले जाते, शरद में पहाड़ में हरिन का शिकार करने जाते। खित्तनों के दो कबीले सबसे कुलीन समझे जाते थे—(१) स्याउ, राजकीय घेई वंश के प्रतिनिधि, (२) युयेरुत (यूयेलुइ) अर्थात् खित्तन राजवंश।

शासन-विभाग—अपोकी से पहिले खित्तनों में जनतांत्रिक गणराज्य-व्यवस्था थी। अपोकी ने उसे उठाकर राजतंत्र स्थापित किया। राज-संचालन के लिये एक राजसभा होती थी। कार्यकारिणी सभा और केन्द्रीय कर्मचारी वर्ग को दक्षिण पक्षी कहते थे, क्योंकि वह राजमहल के दक्षिण ओर रहते थे।

तेगिन—राजवंशी कुमार

इलीपिर—सहायक-मंत्री।

लिन्या—अध्यापक या आचार्य।

इलिगिन्—प्रान्तीय राज्यपाल की उपाधि।

खित्तनों के अपने चार कबीलों—घेई, शिखी, नूचेन और बोत्सकाई—के लिये एक खास विभाग और उसके अधिकारी होते थे। उनके सभी पन्द्रह से पचीस साल की उम्र के पुरुष सैनिक सेवा करने के लिये बाध्य थे। युद्ध के लिये जब खित्तन प्रस्थान करते, तो एक धूमिल रंग के बैल और एक सफेद घोड़े की बलि देते। सफेद घोड़े की बलि हूण और पीछे के मंगोल भी देते थे। यह बलिदान आकाश (देव), पृथिवी, सूर्य तथा कार्त्-सिन् (भूमि) के पैतृक पहाड़ों के देवताओं के लिये दी जाती थी। राजा के मरने पर उसकी सोने की मूर्त्ति एक अलग तंबू में रखी जाती और उसके निमित्त प्रतिमास प्रतिपदा और अमावस्या को खाद्य और मदिरा से श्राद्ध किया जाता था।

सैनिक व्यवस्था—राजाओं के प्रत्येक समाधि-मंदिर के पास अपने सैनिक और घोड़े होते थे। हरेक सैनिक को अपने खर्चे से ज़ीन, अश्वकवच (लोहे या चमड़े का) और दूसरे सामान, चार सौ तीरोंके साथ चार धनुष, छोटे और बड़े दो भाले, एक कुठार, एक हथौड़ा, एक छोटा झंडा, लोहा चकमक पत्थर, जल-पात्र, राशन का थैला, वंशी, नमदे का टुकड़ा, छाता, दो सौ फुट रस्सी, एक थैला भुना दाना, साथ लाना पड़ता था। खित्तन नवम्बर में दक्षिण की ओर लूट मार के लिये जाते और फरवरी में लौट आते। लूट के लिये वह गांवमें बिखर जाते और लूटने

से ही संतोष न कर तूतके पेड़ों और मेवे के बागों को काट डालते, घरों में आग लगा देते। स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों, और निरीह आदमियों को भी पकड़ ले जाते। जिस स्थान से चीजें नहीं ले जा पाते, वहां के लोगों को कहते कि, हम जल्दी ही फिर आ रहे हैं। छोटी-छोटी टुकड़ियों में होकर वह नगर-द्वार पर आक्रमण करते। घाट या सँकरे रास्ते में पहुंचने पर तुरन्त रक्षा के लिये पहरेदार नियुक्त कर देते। नगर को घेरते समय वह अपने बंदियों को आगे करके खाइयों में मिट्टी डलवाते, लकड़ियां कटवा कर लगवाते और उन्हीं के पीछे पीछे नगर की ओर बढ़ते। खित्तनों के विरोधी चीनियों की सेना मुख्यतः पैदल सेना थी, जिसे अपने कवच और रसद के बोझ को लेकर चलना पड़ता था। यदि इन चीजों को साथ न रखते, तो अपने शरीर की रक्षा और भूख की मुश्किल होती। सब चीजों को लेकर चलने पर चीनी सैनिक जल्दी थक जाते।

१०६७ ई० में खित्तनों ने अपने वंश का नाम "महाल्याउ" रखा। शुङ-सम्राट शेङ-चुङ जब १०६७ ई० में गद्दी पर बैठा, तो अभिषेकोत्सव में खित्तनो ने मित्रता प्रकट करने के लिये एक दूत-मंडल भेजा। साथ ही उन्होंने चो-चाउ और यी-चाउ के नगरों पर किले-बन्दी को और मजबूत किया, वहां बहुत सी रसद और हथियार को भी जमा किया, सीमान्त पर सेनायें ज्यादा कर दीं। इसके बाद सीमान्त नदियों को जबर्दस्ती पार करने की बात लेकर झगड़ा कर दिया। असल में वह लड़ाई करने का बहाना ढूंढ़ रहे थे। १०७४ ई० में बहुत सी शिकायतों की एक सूची लेकर खित्तन-दूत शुङ-राजधानी में गया और कुछ किलेबंदियों के तोड़ देने तथा सीमान्त में कुछ परिवर्तन करने की मांग की। थोड़ी आवाजाही के बाद शुङ-दरबार ने महादीवार की दक्षिणी पांती में दो सौ मील तक उनकी सीमा को मान लिया। इसी समय खित्तन राज-परिवार में झगड़ा हो गया। मां-बेटे की ईर्ष्या से युवराज और उसकी मां ने अपने प्राण खोये। इसपर पौत्र येन्-ही युवराज हुआ। ४७ वर्ष राज करने के बाद ११०१ ई० में ताउ-चुङ मरा।

९. ताउचूङ-ति (येन्‌ही ११०१-२१)

इसके गद्दी पर बैठने के एक साल पहिले शुङ-सम्राट चुंङ मरा था। चीन उस समय ह्रिया (तंगूतो) के साथ लड़ रहा था। ताउ चुङने शुङ दरबार में अपना दूत-मंडल भेजा। इस समय ल्हासा (तिब्बत) का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। खित्तनों ने मध्यस्थ बनने के लिये दूत-मंडल भेजा था। और शुङ मंत्री ने मदद मांगने के लिए इससे पहिले खित्तनों के दरबार में दूत-मंडल भेजा था। किन्तु, उस समय कुछ नहीं हो सका। चार साल बाद फिर मध्यस्थता करने के लिये दूत-मंडल भेजा गया। ताउचुङ-ति बड़ा ही क्रोधी और लोभी था। उसके सारे सरदार उससे असंतुष्ट थे। वह शरद में हरिन का शिकार करने गया था, जबकि नूचेनों के सरदार आकूता ने विद्रोह कर दिया और मिङच्यान (आधुनिक निंगूता, किरिन प्रदेश) के इलाके और नगरों पर अधिकार कर लिया। उसके विरुद्ध भेजी गई बोत्सि-काई सेना हार गई। बोत्सिकाई कबीले का ही एक अंग नूचैन थे, यद्यपि वह उतने सभ्य नहीं थे। १११४ में और बड़ी सेना भेजी गई, उसके भी हारने के बाद १११५ ई० में ताउचूङ स्वयं मैदान में उतरा, किन्तु आकूता ने उसे हर लड़ाई में पछाड़ा। नूचेन सरदार ने खित्तनों के ल्याउ (लौह) के मुकाबिले में अपने वंश का नाम किन (सुवर्ण) रखा और किन् सम्राट की पदवी धारण की।

बोस्तिकाई सेना ने भी विद्रोह करके खित्तन युवराज को मार डाला और अपने सेनापति काउ-युङचाङ को बोत्सिकाई सम्राट् घोषित किया। इसके हाथ में आज-कल की प्रायः सारी ल्याउ-तुंङ उपत्यका थी, केवल मुकदन को वह नहीं ले पाया। एक चीनी सेनापति ने बीस हजार सेना ले जाकर उसे हराकर मारा।

११२८ ई० में खित्तन भूमि में सूखा पड़ा हुआ था। लोग वस्तुतः एक दूसरे को खा रहे थे। ताउ-चू ने किन्-चाउ-फू के उपराज अपने चचा को प्रधानसेनापति बनाया, क्योंकि उसके ही प्रभाव से मुकदन बच पाया था। नूचेनों ने उसे हरा दिया और बढ़कर तालिङ नदी पर चिनचाउ, शियान-चाउ आदि नगरों को ले लिया। ताउ-चू इस समय अपनी मध्य राजधानी (जेहोल प्रदेश) में था। खबर सुनकर वह चुपचाप जवाहिरात से पांच सौ थैले भरवा दो हजार सर्वोत्तम घोड़ों को भी तैयार करके भागने की सोचने लगा। किन लोग अपने थके घोड़ों और आदमियों को विश्राम देने के लिये ठहर गये थे। वह सारे ल्याउ-तुङ उपत्यका को जीत चुके थे। उन्होंने खित्तन सम्राट् के पास दस मांगें भेजी थीं, जिनमें एक थी—किन् सरदार को सम्राट् स्वीकृत करना। उस परिस्थिति में खित्तनों ने इसे पसन्द किया और एक खास दूत-मंडल द्वारा रथ, मुकुट और दूसरे राज्योपकरण भेंट के रूप में आकूता के पास भेजे। लेकिन वह इतनेसे संतुष्ट नहीं हुआ। उसने खित्तन दूतों को सौ सौ कोड़े मरवाकर लौटा दिया। ११२० ई० में आकूता ने ऊपरी राजधानी ले ली और खित्तन सम्राटों की सारी कब्रों को नष्ट करा दिया। यहां से वह पूर्वोत्तर में केन्द्रीय राजधानी को गया। इधर ताउचू के परिवार में उसके चारों पुत्रों में झगड़ा हो गया। अब किन सेना का कौन मुकाबिला करता? ११२१ ई० में मध्य-राजधानी भी हाथ से निकल गई। ताउचू वहां से य्वेन्-याङ की ओर भागा। यहां उसके अत्यंत जनप्रिय तथा सम्मानित द्वितीय पुत्र को इसलिये आत्महत्या करने के लिये मजबूर होना पड़ा, कि वह ताउचू के छोटे पुत्र को राजा होने में बाधा न डाल सके। छोटे भाई की मौसी ताउचू के मंत्री को व्याही थी। यह दिखाया गया था, कि यह काम दो प्रतिद्वन्द्वी चचाओं के मनोरथ को विफल करने के लिये किया गया था। तरुण राजकुमार ने इस आत्मत्याग को ज़रा भी ननुनचके किया था। उसके इस त्याग का लोगों पर भारी प्रभाव भी पड़ा। लोग ताउचू के बिलकुल विरुद्ध हो गये। ताउचू वहां से जान बचाकर तातुङ-फू भागा। जहां पहुँचते पहुँचते उसके पांच हजार अनुयायी उसे छोड़कर अलग हो गये; लेकिन बड़ा पुत्र अपने तीन सौ सवारों के साथ उसके साथ रहा। तातुङके गवर्नर को दुश्मन से मुकाबिला करने का आदेश दे फिर वह तेंदुस् पहुंचा। लोगोंका भाव बिगड़ा होने के कारण वह वहां से भी आगे भागा, लेकिन अभी तीन मील भी नहीं जाने पाया था कि नौकरों ने ही ताउचू को मार डाला। तातुङ के गवर्नर ने अपना नगर (नूचेनों) किनों को दे दिया।

१०. ते-चुङ् (११२१- ....)

ताउ-चू के मरने के बाद तेचुङ ने राज्य संभाला। ताउ-चू ने इसे ही पेकिङ का अधिकारी बनाया था। किनोंकी शुङ दरबार से भी बातचीत चल रही थी। शुङ दरबार ने पूर्ववत् भेंट देना स्वीकार किया। अधीनता के बारे में आकूता ने मांग की—"तुम मुझे अपने बराबर मानो।" शुङ वंश को उसकी बात मानने में ही कुशल मालूम हुआ। शुंङ-सम्राट ने

अपने हाथ से चिट्ठी लिखते समय उसे "परमभट्टारक महाकिन्-सम्राट्" संबोधित किया, और पहिले की त्यान्-चिन् और पेकिंङ की मांग को भी छोड़ दिया।

ये-लू-ताउचू (दैशी) गोबी रेगिस्तान पार कर गया था, जबकि आकूता मर गया और उसकी जगह उसका भाई बू-ची-बाई (गू-की-माई) गद्दी पर बैठा। कुछ समय के लिये नूचेन् शान्सी प्रदेश छोड़ गये। येलू की कुमक के अतिरिक्त तीस हजार और सवार ताउ-चू के पास थे। उसने फिर लड़ाई करने की कोशिश की, मगर येलू ने उसे बेकार समझकर साथ नहीं दिया।

येलू ने चचा को गद्दी पर बैठाकर शुंङ दरबार में दूत भेजा, किंतु सम्राट् ने यह कहकर मिलने से इन्कार कर दिया, कि अभी वैध सम्राट् जिन्दा है, इसलिये हम खित्तनों का दूसरा सम्राट् नहीं मान सकते। जिन लोगों ने चचा को गद्दी पर बैठाया था, वह भी अधिकार के लिये मोल-भाव कर रहे थे। किन्-विजेताओं और शुंङ का भी भय था। मोल-भाव करते समय शुङ के भेजे एक दूत को चचा सम्राट् ने मरवा डाला और येलू दैशी को चो-चाऊ लेने के लिये भेज दिया। येलू ने वहां की चीनी सेना को ह्वांङ-चाउ तक भगा दिया, लेकिन थोड़े ही समय बाद चचा मर गया। उसका स्थान उसकी विधवा ने लिया, किन्तु असली ताकत सेनापति स्याउ-कान के हाथ में थी। नान-काउ जोत अब किनों के हाथ में थी, इसलिये पेकिंङ खतरे में हो गया था। विधवा रानी को लिये येलू खित्तन सेना के साथ भाग कर तेंदुस् में सम्राट् ताउ-चू के पास गया। ताउ-चू ने विधवा चाची को मरवा डाला और चचा को गद्दी पर बैठाने के लिये ये-लू को भला-बुरा कह कर छोड़ दिया। आकूता ने सुना, कि भगोड़ा सम्राट् तेंदुस में शक्ति संचित कर रहा है। उसने शाम से काम लेते हुये एक तातार भिक्षु को भेजकर ताउ-चू को राजधानी में बुलाया और भाई बना उसे और दूसरे खित्तन राजकुमारों को महल देकर अच्छी तरह रखने का वादा किया। लेकिन ताउ-चूने उसपर विश्वास नहीं किया, और आक्रमण करके शानसी के (तेंदुक से दक्षिण) एक नगर को ले लिया। इसपर एक किन् सेनापति ने धावा बोलकर सारे राजपरिवार को पकड़ लिया। ताउ-चू ने हिया (तंगुत्) में शरण लेनी चाही, मगर तंगुत आफत मोल लेने के लिये तैयार नहीं थे। वहां से वह एक गुमनाम से दूसरे तिब्बती कबीले में जाकर छिपा। ११२५ ई० के आरम्भ में अब भी उसके पास एक हजार सवार थे। किनों को पता लग गया था। उन्होंने यकायक हमला कर दिया। ताउ-चू ने जान बचाने के लिये अपने खजाने और दूसरी बहुमूल्य वस्तुओं को रास्ते में बखेरना शुरू किया। इन बहुमूल्य वस्तुओं में छ फुट लम्बी सोने की एक बुद्ध-मूर्त्ति भी थी। लेकिन, किन् सेना पीछा करने से रुकी नहीं, और अन्तमें ताउ-चू के पास पहुंच गई। किन् सेनापतिने बन्दी सम्राट् के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए घोड़े से उतरकर शराबका प्याला उसके सामने किया, फिर उसे बड़े आदर से ले गये। किनों ने उसे 'तटवर्ती राजकुमार' की उपाधि देकर आधुनिक ब्लादिवोस्तोक के नजदीक चाङ-पाइ पर्वत के पूर्व में नजरबन्द कर दिया।

किनों ने शुंङ वंश के विश्वासघात से नाराज होकर ह्वाङ-हो नदी के उत्तर के सारे चीन को मांगा। तंगूतों ने भी शक्ति को देखकर उसकी अधीनता स्वीकार की। शुंङ की ओर से अनुकूल उत्तर न आने पर ११२६ ई० में किन सेनापति व्योली-तो (वारिब) ने छोटी छोटी नावों से ह्वांङ-हो (पीत नदी) को पार किया। शुंङ सेना अधिक प्रतिरोध नहीं कर सकी और बिना बहुत लड़े-भिड़े किनोंने आधुनिक काङ्-शङफू को ले लिया। विजेता ने पचास लाख औंस (पच्चीस

लाख छटांक) सोना, एक करोड़ औंस चांदी, दस लाख थान रेशम और दस हजार ढोर मांगे। शुंङ सम्राट् ने जल्दी जल्दी जमा करके दो लाख औंस सोना चालीस लाख औंस चांदी की पहिली किस्त दे दी, बाकी को किस्तों में देने का वादा किया। पर इस से जान नहीं बची। किनों ने फिर शुंङों के ऊपर आक्रमण कर कई लड़ाइयों में शुंङ सेना को परास्त किया। इन्हीं लड़ाइयों में कुछ सैनिक यंत्र इस्तेमाल किये गये थे, जिन्हें पीछे चिंगिस ने भी इस्तेमाल किया। राजधानी ले लेने पर शुंङ सम्राट् (हुइ-चुंङ ११००-२६ ई०) ने अपने को किन् सेनापति चन-मूहो (जे-मू-गुर) के हाथ में अर्पण कर दिया। शुंङ राज्य को पूर्णतया दखल करने की जगह विजेता ने यही पसन्द किया, कि अधिक से अधिक हरजाना लिया जाय। उनकी मांग थी— एक करोड़ औंस सोना, दो करोड़ नाल[1] चांदी और एक करोड़ थान रेशम। शुंङ सम्राट् ने सिंहासन छोड़ दिया। उसकी रानी और बहुत सी अन्तःपुरिकाओं, तथा दूसरे तीन हजार के करीब परिचारकों को किन् तातार-भूमि ले गये। शुंङ-वंश के बहुत से अधिकारी याङ-ची नदी के दक्षिण भाग गये। किनों ने शानसी, शानतुङ, चि-ली तथा होनान के प्रदेश अपने राज्य में शामिल कर लिये।

खित्तन साम्राज्य खतम हो गया, लेकिन उसके एक राजकुमार येलू दैशी ने उभय-मध्य-एसिया में एक विशाल साम्राज्य कायम किया, जिसे इतिहास कराखिताई (काला खित्तन) के नाम से जानता है।

३. कराखिताई (११२५-१२१८ ई०)

कराखिताइयों की वंशावली

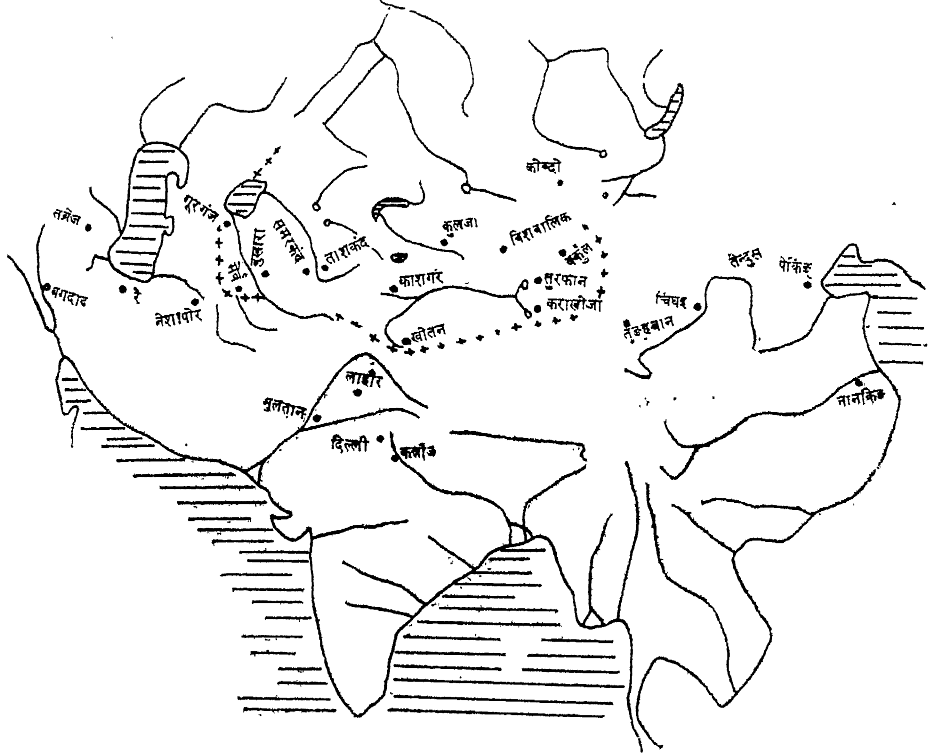
१ येलू दैशी	११२५- ४३
२ (पुत्री)	११४३
३ येल्यु इले (रानी)	११४३
४ चे-लू-गू	— ११८२
५ गुरखान	— १२१०
६ कुचुलुक	१२१०-१२१८

१. येलू दैशी ११२५-४३ ई०

खित्तन सम्राट ताउ-चूने राजकुमार येलू दैशी को चचा को गद्दी पर बैठाने के लिये फटकारा था। हाथ से चले गये राज्य के लिये फिर आक्रमण करने की योजना में येलू ने साथ देते कहा—सारी सेना रहने पर जब हम सफल नहीं हो पाये, तो अब सफलता की क्या आशा सकती है? वह अपने दो सौ आदमियों के साथ रात को निकल भाग कर पाई-ताता (श्वेत तातार) की भूमि में चला गया। पुराने संबंध के कारण श्वेत तातारों ने उसकी मदद की। वहां से वह उरुम्ची की ओर बढ़ा। इतिहासकार जुवैनी के अनुसार कराखिताई येलू के नेतृत्व में किर-गिजों की भूमि से होकर एमिल पहुंचे। वहां उन्होंने एक नगर बसाया, जो कि पीछे चिंगिस

[1] १ नाल = ५ औंस = २॥ छटांक।

के पुत्र ओ-गु-ताइ के वंश की राजधानी बना। आजकल यह स्थान खुबुचोक (तरबगताई) के पास है। कहते हैं, सीमान्तर पर पहुंचने पर अफरासियाब वंशी तुर्क खानों ने अपने प्रतिद्वन्द्वी करलुकों और किप्चकों (कङली) के विरुद्ध येलू को बुलाया। करलुकों की राजधानी बाला-शगुन जल्दी ही येलूके हाथ में चली गयी, लेकिन उसने करलुक खाकान को इल-तुर्कान् की पदवी



१०. कराखिताई साम्राज्य (११८२ ई०)

देकर रहने दिया। बिशबालिक के उइगुर राजा (इदिकु) ने बिना विरोध के येलू की अधीनता स्वीकार कर ली। काशनगर के करलुक राजा अरसलन खान को ११३७ में हराकर तरिम-उमपत्यका पर भी येलू ने अधिकार कर लिया। किरगिज और किप्चक भी उसकी सेना के सामने नहीं ठहर सके।

एमिल में पहुंचकर येलू ने वहां चालीस हजार किबितक (तंबू-परिवार) बसा दिये। ११४१ में समरकन्द से उत्तर कतवान की मरुभूमि में येलू ने सल्जूकी सुल्तान सिंजर को पूर्णतया पराजित कर वहां से अपनी एक सेना को भेजकर ख्वारेज्म पर भी अधिकार कर लिया।

अन्तर्वेद के शासक और सैनिक (करलुकों) में ११४१ में झगड़ा शुरू हो गया। महमूद खानने करलुकों के विरुद्ध सिंजर से मदद मांगी थी। इस पर करलुकों ने गुरखान (येलू) को सहायतार्थ बुलाया। गुरखान ने मध्यस्थ बनकर झगड़ा शान्त करना चाहा। सिंजर ने इसका बहुत ही

अपमानजनक उत्तर दिया, जिसपर कराखिताइयों ने अन्तर्वेद पर आक्रमण किया और ९ सितम्बर ११४१ ई० में कतवान की मरुभूमि में सिंजर को पूरी तरह हरा कर सल्जूकी सेना को दर्गम (समरकन्द से दक्षिण) की ओर हटने के लिये मजबूर किया। इस संघर्ष में दस हजार हताहतों को नदी बहा ले गई और तीस हजार युद्धक्षेत्र में काम आये। सिंजर तेरमिज़ की ओर भगा। येलू को मदद के लिये बुलाने वाले करलुक शासक मुहम्मद ने भी देश छोड़ दिया और सारे अन्तर्वेद ने येलू के सामने सिर झुकाया। उसी साल (११४१ ई०) बुखारा पर भी गुरखान का अधिकार हो गया। उस समय बुखारा में खानदानी रईसों का एक वंश था, जिनकी उपाधि "सद्रे जहां" (जगत् प्रधान) तथा खानदान का नाम बुरहान था। यह मुल्लों तथा खलीफा उमर के वंशज थे। कराखिताई आक्रमण के समय अब्दुल अज़ीज़ उमर-पुत्र बुखारा का सदर था। कराखिताइयों ने विरोध करने के कारण सद्रे-जहां के खानदान के मुखिया हुशामुद्दीन उमर अब्दुल अज़ीज़-पुत्र को मार डाला और अल्पतगिन को बुखारा का शासक नियुक्त किया—यह अल्पतगिन सुबकतगिन का स्वामी नहीं था, जिसका कि पुत्र विजेता महमूद गजनवी था। सिंजर की पराजय के बाद हल्ला हो गया, कि ख्वारेज्म शाह ने कराखिताइयों को बुलाया है, जबकि असली बात यह थी, कि कराखिताइयों की एक सेना ने ख्वारेज्म शाह के राज्य को लूटा, लोगों को भारी संख्या में मारा, जिस पर अतिसिज़ संधि करने के लिये मज़बूर हुआ, और जिन्सके अतिरिक्त उसने तीस हजार सुवर्ण दीनार वार्षिक कर देना स्वीकार किया। शायद कतवान के युद्ध के तुरंत बाद ही ख्वारेज्म पर हमला नहीं हुआ, क्योंकि सिंजर की पराजय से फायदा उठाने के लिये अत्सिज़ अपनी सेना ले सल्जूकियों के मुख्य प्रदेश खुरासान पर चढ़ दौड़ा था, और उसी साल १९ नवम्बर (११४१) को उसने मेर्व को लूटा। कराख्तिाइयों के आक्रमण के भय से पीछे लौटकर पुनः मई ११४२ ई० में वह नेशापोर पहुंचा। नेशापोर के लोगों के सामने अत्सिज़ ने घोषणा की थी—हमारी सच्ची सेवाओं के प्रति कृतघ्नता दिखलाने के कारण सिंजर को यह सज़ा मिली है। हमें मालूम नहीं, कि पश्चात्ताप करने से उसे कुछ फायदा होगा। उसे हमारे जैसा मित्र और सहायक कहीं नहीं मिलेगा। अत्सिज़ के हुकुम पर २९ मई को नेशापोर में उसके नाम का खुतबा पढ़ा गया। उसी साल की गरमियों में सिंजर ने खुरासान पर फिर अधिकार कर लिया।

करमीना (उज़बेकिस्तान) में येलू ने गुरखान (खानों का खान, राजाधिराज) की पदवी धारण कर अपने को सम्राट् घोषित किया। इसी उपाधि के कारण कराखिताई वंश को गुरखानी वंश भी कहते हैं। गुरखान उपाधि इतनी बड़ी समझी गई, कि पीछे विजेता तेमूर भी गुरखान कहा जाता था। सम्राट् घोषित करते हुए येलू ने चीनी रेशम का सुंदर चोगा, तथा दूसरी राजसी पोशाक पहिनी। लोगों के धन को देख कर लोभ में न पड़े, इसके लिये उसने अपने चेहरे को ढांक लिया। कुछ इतिहासकारों का मत है, कि येलू मानी के धर्म का अनुयायी था, लेकिन यह संदिग्ध है, क्योंकि खितन तातार बौद्ध धर्म के पक्षपाती थे। येलू की सेना बड़ी अनुशासनबद्ध थी। किसी नगर को जीतने पर लूट-पाट नहीं होने पाती थी। नगर पर अधिकार करते ही हर घर से एक एक दीनार युद्धकर वसूल किया जाता। अपने सहायकों के प्रति गुरखान ने कभी विश्वासघात नहीं किया, और न उनको पद से च्युत किया। सप्तनद,[१] कुलजा, सिर-दरिया के उत्तर-पूर्व वाले प्रदेश

---

[१] सेमिरेच्या

पर गुरखान का सीधा शासन था। इली नदी के पश्चिम चू-उपत्यका तथा बलाशागुन से नातिदूर तक का होसुन-उर्दू खोतो (गृह) कहा जाता था। यहां पर गुरखान का अपना उर्दू विचरण करता। येलू के अनेक समय बाद तक कोपाल से थोड़ा पश्चिम समतल भूमि में अवस्थित कायलिक करलुकखानों के हाथ में था। अन्तर्वेद तथा पूर्वी तुर्किस्तान पर भी कराखानियों का शासन था, समरकन्द में भी करलुक वंश का राज्य था। ख्वारेज्म में खारेज़मशाह शासन करता था। येलू दैशी का राज्य गोबी के रेगिस्तान से वक्षू (आमू-दरिया) तट और तिब्बत के सीमान्त से सिबेरिया तक फैला हुआ था। इब्नुलअसीर के कथनानुसार प्रथम गुरखान की मृत्यु ११४३ ई० में हुई थी। करा-खिताइयों के अधीनस्थ कबीलों में नैमन बड़ा महत्व रखता था, जिसके ऊपर विजय प्राप्त करने के बादही चिंगिस की शक्ति बढ़ी। मंगोलों को संस्कृत बनाने में भी नैमनों का हाथ था।

२. गुरखान-पुत्री (११४३)

येलू दैशी के बाद उसकी पुत्री गद्दी पर बैठी, किन्तु वह थोड़े ही दिनों बाद मर गई।

३. येलू-इ-ले (११४३)

चीनी इतिहास के अनुसार बहन के मरने के बाद उसका भाई गद्दी पर बैठा। शायद वह अल्पवयस्क था, इसलिये उसकी मां अभिभाविका बनी जो बेटी के समय भी शासन का भार संभाले हुई थी। जुवेनी के कथनानुसार गुरखान की लड़की सत्तर साल तक राज करती रही। चीनी इतिहास के अनुसार लड़की का नाम बू-शो ख्यान (खानखाना) था। चीनियों ने यह भी लिखा है, कि उसने अपने पति को मरवा डाला और वह खुल्लमखुल्ला ज़ारों को रखती थी। जुवैनी कहता है, कि विद्रोहियों ने उसे और उसके एक ज़ार को मार डाला। जान पड़ता है, यह येलू की लड़की ही थी, जिसको जुवैनी भ्रम से लड़की की मां कहता है।

४. चे-लु-गू (११४३-८२ ई०)

अभिभाविका बहन के कत्ल के बाद अपने बड़े भाई को भी मारकर ये-ल्लू इले के पुत्र चे-लु-गू गद्दी पर बैठा। इसका असली नाम मानी या कुमानोम था। इसके विलासितापूर्ण जीवन और अत्याचार के बारे में मुसलमान ऐतिहासिकों ने बहुत अतिरंजन से काम लिया है। यदि वह ऐसा नालायक होता, तो आधी सदी तक कराखिताई साम्राज्य अच्छी तरह चल नहीं सकता था। गुरखानी चाहे बौद्ध धर्मी रहे हों, किन्तु शासक के तौर पर वह सभी धर्मों को समानता की दृष्टि से देखते थे। इसी गुरखान के समय नेस्तोरी पेत्रियार्क इलियास (११७६-९० ई०) ने काशगर में अपनी मैत्रोपोली (धार्मिक प्रदेश की राजधानी) स्थापित की और उसका नाम "काशगर और नेवाकित की मेत्रोपोली" पड़ा। इससे मालूम होता है कि इस मेत्रोपोली में सप्तनद[१] (नेवाकत) का दक्षिणी भाग भी था। कराखिताइयों के समय मध्यएसिया की मुल्लाशाही दबी

---

[१] बेर्नश्ताम के अनुसार सातों नदिया हैं—(१) अरिस, (२) असा-तलस, (३) चू (४) इली, (५) कोकस्-कराताल, (६) शेसा और (७) आगूज़। पहिले नाम बूसुनो और शकोंकी भाषा में होंगे, जिनके शायद यह तुर्की अनुवाद है।

जिससे इस्लामिक धर्मान्धिता कुछ शिथिल हुई और ईसाइयों और दूसरे धर्मों को सांस लेने का मौका मिला। लेकिन, इस समय तक जनता अधिकतर मुसल्मान हो चुकी थी, जिसके भावों को उत्तेजित कर के पुराने शासक समय-समय पर विद्रोह करते रहते थे। चेलुगुके समय खोतन के करलुक शासक अरसलन खानने विद्रोह किया, जिसके झंड़े के नीचे धीरे धीरे और भी बहुत से मुसलमान विद्रोही एकत्रित हो गये। अरसलन खानने खिताई सरदार शामूर तबङ को फंसाने की कोशिश की थी। अपने अधीन मुसलमान शासकों पर गुरखानों का रोब बहुत था।

५. गुरखान (. . १२१० ई०)

चे-लू-गू के बाद गुरखानी वंश में और भी शासक हुए होंगे, किन्तु अगले तीस-पैंतीस वर्षों का इतिहास अंधकारावृत है। हो सकता है, उस समय गुरखानी सिंहासन के दावेदारों में झगड़ा चल रहा हो। नैमन राजकुमार कुचलुक भाग कर गुरखानियों में चला आया। उसका पिता ताइ-वङ-खान चिंगिसके हाथों मारा गया था। नैमन वंश की ख्याति ही गुरखान के पास नहीं पहुंची थी, बल्कि ताइ-वङ् खित्तन साम्राज्य का एक शक्तिशाली तथा विश्वासपात्र सामन्त था। १००८ ई० (६०८ हि०) में दरबार में पहुंचने पर गुरखान ने कुचुलुक का स्वागत करते अपनी लड़की व्याह दी। कहते हैं कुचलुक पहिले ईसाई था और लड़की बौद्ध थी। अपने श्वसुर के प्रति भक्ति का परिचय देते शादी के बाद कुचलुक भी बौद्ध हो गया।

उधर १२०८ ई० में चिंगिस खान ने नैमनों के अवशेषों को इर्तिश नदी के तट पर बुरी तरह से हराया। नैमनों के नेता कुचलुक और मेर्गित कुमार तुक्ता-बिकी फिर से नैमनों के प्रभुत्वको स्थापित करना चाहते थे। तुक्ता-विकी युद्ध क्षेत्र में मारा गया। उसके पुत्र ने गुरखान के सामन्त उइगुर इदिकुत (राजा) पर आक्रमण करके वहां स्थान बनाना चाहा। इदिकुत गुरखान का जुआ फेंककर चिंगिसकी ओर हो गया। १२०९ ई० में गुरखानी प्रतिनिधि शाकम जोक काराखोजा में रहता था, बहुत भारी कर लगाने के कारण लोगों ने घेर कर उसका सिर काट लिया। मेर्गितों को उइगुरों ने हरा दिया, बाकी बचे लोग गुरखान के राज्य में कुचलुक से जा मिले।

(१) मुस्लिम विद्रोह

उइगुर-भूमि के पूर्वी सीमान्त से मुस्लिम-जगत शुरू होता था। यद्यपि कराखिताइयों के इस्लाम-विरोधी भावों के कारण मुसलमानों में क्षोभ था, किन्तु तब भी उनकी सुसंगठित शक्ति के सामने मुल्लों की कुछ नहीं पेश जाती थी। तेरहवीं सदी के प्रारंभ में चिंगिस के आक्रमण के कारण जब मंगोलिया के घुमन्तू नैमन और मेर्गित भागकर इस ओर आने लगे, तो मुसलमानों का क्षोभ शक्तिशाली हो उठा। इसे शुद्ध धर्मकी लड़ाई नहीं कह जा सकता था। इसके कारण थे—कराखिताई साम्राज्य की शक्ति का ह्रास, उसके शासन का कमजोर होना, हरेक सामन्त का अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये उतावलापन, तथा कर उगाहने वालों की मनमानी। आन्दोलन पूर्वी-तुर्किस्तान में आरंभ हुआ, जहां पर करलुकों के साथ गुरखान का बर्ताव बहुत बुरा था। गुरखान को पता लग गया था, कि विद्रोह हमारे सारे मुस्लिम प्रदेशों में फैलेगा।

लेकिन जब तक घुमन्तू यहां नहीं पहुंचे थे, तब तक आन्दोलन को सफलता नहीं मिली। गुरखान ने काशगर के खान के पुत्र को कैद कर रखा था, जिसे कुचुलुक ने मुक्त कर दिया। मुसलिम विद्रोह अरसलनखान अबुलमुजफ्फर यूसुफ (मृ० मार्च १२०५ ई०) के शासन में आरम्भ हुआ था। कहते हैं, एक बड़ा धनी मुसलमान महमूद बाय अत्याचार से पीड़ित होकर भाग गया, जिसे नगर को घेरे में डाल कर उस पर विजय प्राप्त करते समय सोलह वर्ष बाद पकड़ा गया। इस संघर्ष में ४७ हजार मुसलमान मारे गये। कुलजा प्रदेश में मुसलमानों ने बुजार के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। बुज़ार ने अलमालिक नगर में तुगरल खान की पदवी धारण कर अपने को चिंगिस का सामन्त घोषित किया। लेकिन अभी चिंगिस चीन से लड़ने में लगा हुआ था, इसलिये वह पच्छिम की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दे सकता था।

ख्वारेज्म से झगड़ा—कराखिताइयों ने १२०७ ई० में बुखारा पर आक्रमण किया। उस समय यहां के धनी लोग ख्वारेज्मशाह के पक्ष में थे। ख्वारेज्म शाह खिताई सेना का मुकाबिला नहीं कर सकता था। उसने मलिक सिंजर से सहायता चाही, किन्तु सिंजर ने सहायता न देते कहा "थाल बनाने वाले के लड़के को अपने किये का फल भोगने दो।" मलिक सिंजर कई सालों तक ख्वारेज्मशाह के दरवार में बन्दी रहा। उसने बुखारा पर काफी समय तक शासन किया था और उसका बनवाया सिंजर-मलिकमहल १२२० ई० के चिंगिसी अग्निकाण्ड से भी बचा रहा।

ख्वारेज्मशाह १२०८ के वसन्त में खुरासान में शान्ति स्थापित करने गया था। १२०८ ई० (६०५ हि०) में ख्वारेज्म में एक बड़ा भूकम्प आया, जिसमें शहर में दो हजार और बाहर भी बहुत से आदमी मरे, दो गांव धरती के गर्भ में चले गये। इसीके बाद १२०९ ई० में खिताई वजीर महमूद बे कर उगहाने के लिये आया।

ख्वारेज्मशाहसे झगड़के कारणकी दो परंपरायें हैं—

(१) परंपरा— ख्वारेज्मशाह बहुत समय तक कराखिताइयोंका करद रहा। १२१० (६०७ हि०) में कर उगहानेके लिये गुरखानी वकील आया। वह तख्तपर ख्वारेज्मशाहकी बगलमें बैठ गया। मुहम्मदने नाराज़ होकर उसे नदीमें फेंकवा दिया। कराखिताइयोंसे झगड़ा होना जरूरी था, इसलिए महमूदने तुरन्त जाकर बुखारा ले लिया। फिर समरकन्दके शासक उस्मान खांके पास दूत भेजकर शामसे काम लेना चाहा। उसमें सफल न होनेपर समरकन्दपर चढ़ाई की। उस्मानका अपने मालिक गुरख़ानसे अच्छा संबंध नहीं था। उसने गुरखानकी कन्या मांगी थी। गुरखान अपनी कन्या एक मुसलमानको कैसे देता? इन्कार करनेपर उस्मान नाराज हो गया। इसीलिए उसने मुहम्मद ख्वारेज्मशाहसे मेल कर लिया और उसके नामसे समरकन्दमें खुतबा और सिक्का चलवाया। ख्वारेज्मशाहने समरकन्दकी किलाबन्दी करनेका हुक्म दिया और अपनी मा तुर्कान-खातूनके संबंधी अमीर बुरतानाको उस्मानके दरबारमें अपना वकील नियुक्त किया। वहांसे ख्वारेज्मशाह आगे सिर नदी पार हो अगस्त या सितम्बर रबी (१२१० ई०) में इलामिशके मैदानमें कराखिताई सेनापति तायन-कू से जाकर भिड़ा। पराजित तायन-कू बन्दी बनाकर ख्वारेज्म भेजा गया। मुहम्मद आसानीसे उतरारको भी ले समरकन्द होते ख्वारेज्म लौट गया।

ख्वारेज्मशाहकी अनुपस्थितिमें किपचक कादिर खानके बचे-खुचे लोगोंने जन्दके आसपास

के इलाकेको लूटा और उजाड़ा था, इसलिये बदला लेनेके ख्यालसे मुहम्मद ख्वारेज्ममें ज्यादा न ठहर सीधे जन्दकी ओर गया। उस्मान मुहम्मदकी कन्यासे व्याह करनेके लिये उसके साथ आया था। वह राजधानी (गुरगंच) में रुक गया । मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने जन्दमें किपचकोंको हराया, किन्तु इसी वक्त उसे खबर आई, कि कराखिताई सेनाने समरकन्दको घेर लिया है। वह उधर दौड़ा। पर, तबतक कराखिताई सत्तर बार आक्रमण कर चुके थे, जिनमें सिर्फ एक बार नगरवाले नगरके भीतर शरण लेनेके लिये मजबूर हुए। इधर ख्वारेज्मशाहके आनेकी खबर मिली और उधर राजकीय पूर्वी सीमान्तपर रहनेवाले नैमन कबीलेके मुखिया तथा गुरखानी दामाद कुचलुकके बगावतकी खबर भी, इसलिए कराखिताई समरकन्दवालोंसे सुलह करके लौट गये। ख्वारेज्मशाहने उनका पीछा किया। यूगांकका शासक मुसलमान था, तो भी उसने नगरको समर्पण नहीं किया। एक सेना उसके विरुद्ध भेजी गई। सेनाने नगरको दखल कर उसके शासकको ख्वारेज्मशाहके सामने पहुंचाया। उसी समय कुचलुकका दूत पहुंचा।

कुचलुक तथा मुहम्मद ख्वारेज्मशाहके बीच संधि हो गई। संधिके अनुसार तै हुआ कि जो गुरखानको पहिले हराये, वह सारी तुर्क-भूमिका स्वामी हो। यदि ख्वारेज्मशाह सफल हो, तो काशगर और खोतन तक उसको मिले, यदि कुचलुक सफल हो, तो सिर-दरियासे पूर्वका देश उसका हो। गुरखानी सेनाके साथ लड़नेमें ख्वारेज्मशाह असफल रहा और कुचुलक सफल। युद्ध-आरम्भके पहिले ही ख्वारेज्म प्रतिनिधि बुरताना तथा कूबदजामा प्रदेशके इस्पाहवद (माजंदरानी राजकुमार) ने कराखिताइयोंसे इस शर्तपर समझौता कर लिया, कि बुरतानाको ख्वारेज्म और इस्पाहबदको खुरासान दे दिया जाय, तो वह ख्वारेज्मशाहका साथ छोड़ देंगे। गुरखानने और भी उदारता दिखलाई। युद्धके आरम्भमें ही बुरताना और इस्पाहवद रण-क्षेत्र छोड़कर भाग गये। कराखिइताइयोंकी वाम-पक्षीय सेना प्रतिद्वन्द्वी मुसलमानोंकी दक्षिण-पक्षीय सेनासे मिश्रित हो गई । इसी तरह मुसलमानोंकी वामपक्षीय सेना कराखिता-इयोंकी दक्षिण पक्षीय सेनासे मिश्रित हो गई। दोनों सेनाओंका केन्द्रीय भाग अस्त-व्यस्त हो गया। युद्धका कोई निश्चित परिणाम नहीं हो पाया, दोनों सेनाओंने अपने शत्रुओंकी छावनियों और शरणार्थियोंको लूटा। इस गड़बड़ीमें ख्वारेज्मशाह एकाएक कुछ अनुयायियोंके साथ कराखिताइयोंसे घिर गया। दुश्मनकी पोशाक पहिननेकी ख्वारेज्मशाहकी आदत थी, इसलिये वह कई दिन उसी तरह रहकर मौका पा भाग निकला और सिर-नदी के तटपर अपनी सेनासे आ मिला। उसकी सेनामें हल्ला हो गया था, कि शाह मर गया।

(२) परंपरा—दूसरे इतिहासकारने कराखिताइयोंसे ख्वारेज्मशाहके झगड़ेका कारण इस प्रकार बतलाया है:—

सुल्तान मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने दो-तीन साल तक कराखिताइयोंको कर नहीं दिया। कर उगाहनेके लिये गुरखानका वजीर महमूद बेग आया। जिस वक्त वह गुरगांच पहुंचा, उसी वक्त ख्वारेज्मशाह किपचकोंके ऊपर आक्रमण करने चला गया और बातचीत करनेका काम अपनी मां तुर्कान खातूनके ऊपर छोड़ दिया। रानीने सारा रुपया देकर देर करनेके लिये बेटेकी ओरसे क्षमा प्रार्थना की और पूर्णतया अधीनता स्वीकार की। वजीर मुहम्मद बेगने लौट कर ख्वारेज्म-शाहके गर्व करनेकी शिकायत की। इसपर गुरखानने ख्वारेज्मी दूतोंका भी सम्मान नहीं किया।

गुरखानके पूर्वी प्रदेशमें विद्रोह हो रहे थे। कुचुलुकने उनके दबानेके बहाने जाकर वहां बस गये अपनी जाति (नैमन लोगों) के उर्दूको जमा कर लिया। कुचुलुककी नीयतका पता जल्दी ही गुरखानको लग गया। उसने अपने सामन्त समरकन्दके शासक उस्मानसे सहायता मांगी, लेकिन कन्या देनसे इनकार करनके कारण उस्मान गुरखानसे नाराज़ हो चुका था। उसने मदद भेजनेसे इनकार कर गुरखानसे मनमुटाव किए ख्वारेज्मशाहका पक्ष ले लिया और ख्वारेज्म शाहसे मिलकर उसके नामका सिक्का और खुतवा चलवाया। इसपर गुरखान ने तीस हजार सेनाके साथ आकर समरकन्दको दखल कर लिया, लेकिन समरकन्दके खजानेको नहीं लूटा। पूरबमें कुचुलुचके विद्रोहके सफल होनेकी खबर पा गुरखानी सेना समरकन्द छोड़कर लौट गई। अब मुहम्मद ख्वारेज्मशाह समरकन्द पहुंचा। उस्मानने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया और अपने प्रदेशको उसके हाथमें दे वह उसकी सेनामें शामिल हो गया। दोनों साथ तराज़ गये। सेनापति तायन-कू एक मजबूत सेनाके साथ मुकाबिला करनेके लिये तैयार था। सप्तनदमें बलाशागुनसे नातिदूर गुरखानने कुचुलुकपर विजय पाई, किन्तु उसका सेनापति तायन-कू मुसलमानोंके साथ लड़ते तराज़में बन्दी बन गया था। निश्चित हार किसी की नहीं हुई, किन्तु तायन-कू बन्दी बना। दोनों सेनायें पीछे लौट गईं। कराखिताई सेनाने सेनापति विहीन हो अपने ही इलाकेको खुद लूटा। बलाशागुनके नागरिकोंको डर हुआ, कि ख्वारेज्मशाह उनके नगरकी ओर आ रहा है, इसलिये उन्होंने अपने नगरके फाटक बन्द कर लिये। वज़ीर महमूद और गुरखानने बहुत रोका, लेकिन उन्होंने नहीं माना। १६ दिनके मुहासिरेके बाद शहरपर अधिकार हुआ और कराखिताई सेना तीन दिनों तक लूट मार करती रही। ४७ हजार नगर-निवासी मारे गये। सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। कारून जैसे धनी महमूदने भयभीत होकर सलाह दी, कि सरकारी खजानेको लूटो। कुचुलुक लूटनेवाली सेनाका अगुआ बन गया था। जब लूटे हुए मालको लौटानेके लिये सेनापर जोर दिया गया, तो सैनिकोंनें विद्रोह कर दिया। कुचुलुकने इस मौकेसे फायदा उठाकर सैनिकोंको अपनी ओर खींच लिया। सेना द्वारा परित्यक्त गुरखान कुचुलुकके सामने आत्मसमर्पण करने गया। कुचुलुकने ऐसा करने नहीं दिया, बल्कि स्वामी और पिताके समान उसका स्वागत किया। अब सारी शक्ति कुचुलुकके हाथमें चली गई। गुरखानकी एक रानीको व्याह कर वह गुरखानको सिंहासनपर रख उसका सम्मान करता रहा। दो साल बाद गुरखान मर गया। एक रूसी इतिहासकार के मतसे दूसरी परंपरामें ही अधिक सत्यताका अंश है।

ख्वारेज्मशाहकी पराजयसे समरकंदपर कराखिताइयोंका अधिकार हो गया, इससे जान पड़ता है कि पहिली बार विद्रोह दबा दिया गया। गुरखानने उस्मानके साथ उस समय (१२१० ई०) नरमी दिखलायी; इसी समय उस्मानको अपनी ओर पूरी तौरसे करनेके लिये गुरखानने अपनी कन्या भी व्याह दी, उसको थोड़ा कर देने के लिये कहा और समरकन्दमें अपना वकील रख दिया। उस्मान मुहम्मद ख्वारेज्मशाहके विरुद्ध हो गया। जब १२१० ई० में कुचुलुकने करलुकोंकी सहायतासे सप्तनदके ऊपरी भागमें सफलता पाई थी और उजगन्दमें रक्खे गुरखानके खजानेको लूट लिया था, और गुरखानी सेनाको समरकन्द छोड़ अपने देसकी रक्षाके लिये लौट जाना पड़ा था। अब अन्तर्वेदमें फिर लड़ाईके बादल मंडराने लगे। ख्वारेज्मशाह किपचकोंके ऊपर सफल अभियान करके जन्दसे लौटकर बुखारा आया, वहीं उससे उस्मान भी आ मिला।

इसी अभियानमें उजगन्द ख्वारेज्मशाहके हाथमें आया। जैसा कि पहिले कहा, कोई निर्णायक विजय नहीं हुई थी, इसलिये ख्वारेज्मशाह कराखिताइयोंका पीछा नहीं कर सका और न सल्तनदके अपने धर्मभाइयों की कोई मदद कर सका। तो भी इस युद्धके कारण मुसलमानोंमें ख्वारेज्मशाहकी इज्जत बहुत बढ़ गई। सरकारी कागजोंमें उसे "द्वितीय सिकन्दर" लिखा जाने लगा और उसने अपने को "सुल्तान सिंजर"के नामसे मशहूर होने दिया।

६. कुचुलुक (१२१०-१२१८ ई०)

मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने जब कराखिताइयोंपर आक्रमण किया, उस वक्त उजगन्दका शासक जलालुद्दीन कादिर खान (उलुक सुल्तान) था। कुचुलुकने गुरखानको अपने हाथमें कर काशगरी खानके पुत्र अरसलनखान अबुलफतह मुहम्मदको मुक्त कर दिया था। मालूम होता है, कुचुलुकका कृपापात्र होनके ही कारण काशगरियोंने अबुलफतहको १२१० (६०७ हि०) में मार डाला। यह कह ही चुके हैं, कि गुरखानके जीवनमें कुचुलुक राजसिंहासनपर नहीं बैठा। साम्राजी दबदबेके सभी चिह्नोंको उसने गुरखानके लिये रखा। विशेष अवसरोंपर गुरखान जब सिंहासनपर बैठता, तो उसके दरबारियोंकी तरह कुचुलुक भी सामने खड़ा रहता। जब कुचुलुकने गुरखानके सारे राज्यको अपने हाथमें ले लिया, तो मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने कुचुलुकसे मांग की—गुरखानने मुझे अपनी कन्या तमगाच खातूनको ब्याहने, अपने सारे खजानेको दहेजमें देने और अपने पास सिर्फ दूरके प्रदेशोंको रखनेका वचन दिया है। लेकिन कुचुलुक ऐसे वचन-दानको कब मानने वाला था? उसका ध्यान सबसे पहिले उस मुसलिम आन्दोलनकी ओर गया, जो कि कराखिताइयोंके राज्यमें फैल रहा था। इसी आन्दोलनके अन्तिम अवशेषके रूपमें पहिलेके घोड़ाचोर डाकू बुज़ार (ओज़ार) ने कुलजा प्रदेशमें अपना स्वतंत्र राज्य कायम कर लिया था। कुचुलुकने उसके देशपर अधिकार कर लिया, और १२११ से १२१३ ई० तक करलुकोंकी गोश-मालीके लिये पूर्वी तुर्किस्तानको लूटता-बर्बाद करता रहा। देशमें अकाल पड़ गया। मुहम्मदकी सेना विशबालिक पहुंची, लेकिन लोगोंने डरके मारे कुचुलुककी अधीनता स्वीकार की। पूर्वी तुर्किस्तानपर विजय प्राप्त कर मुसलिम-आन्दोलनकी जड़ से खतम करते कुचुलुकने वहां मुसलमानोंपर बहुत अत्याचार करना शुरू किया। मुहम्मद ख्वारेज्मशाह काशगर और खोतनमें अपने धर्म-भाइयोंकी कोई मदद नहीं कर सका; यही नहीं अन्तर्वेदके उत्तरी इलाकोंकी भी वह रक्षा नहीं कर सका। १२१४ ई० की गर्मियोंमें समरकन्दके ऊपर कुचुलुकके आक्रमणका भारी भय था। ख्वारेज्मशाहने अपनेको असमर्थ पा अन्तमें इस्फिजाब, शाश, फरगाना और काशानके लोगोंको देश छोड़कर दक्षिण-पश्चिममें चले आनेका हुकुम दिया, जिसमें वह कुचुलुकके हाथोंमें न पड़ें। सिर नदीके ऊपर वाले फरगाना प्रदेशको भी हाथसे जाते देख, उसे भी उजाड़ देनेका हुकुम दिया। घुमन्तुओंके उस सरदारके मारे, मध्य-एसियाके एक अत्यन्त शक्तिशाली शासककी यह स्थिति थी जिसे कि बिना अधिक कठिनाईके १२१८ ई० में मंगोलोंके एक सेनापतिने खतम कर दिया।

एक तीसरी परंपरा है: कि कराखिताई सेनाने गुरखानके खजानेको मांगा था, जिसके न देने पर सेनामें विद्रोह हो गया। यह देख गुरखानका साथ छोड़कर कुचुलुक विद्रोहियोंके साथ हो गया, और गुरखानको पकड़कर उसे ही तखतपर तब तक रहने दिया, जब तक कि दो साल बाद

(१२१२ ई० में) वह मर नहीं गया। इससे एक साल पहिले ही (१२११ ई० में) चिंगिसकी सेना हुबिलेइ नोयनके आधीन पूर्वी सप्तनदमें पहुंची। मंगोल जानते थे कि हमारा शत्रु नैमन राजकुमार गुरखानियोंका दामाद बनकर अपनी शक्ति बढ़ा रहा है, इसलिए वह उसका पीछा छोड़नेके लिये तैयार नहीं थे। यही खबर पाकर करलुक बुज़ार अरसलन खानने अपनी राजधानी (कायालिक) में कराखिताई प्रतिनिधिको मरवाकर अपने को चिंगिसके अधीन घोषित किया।

(१) उस्मान खां से झगड़ा

ताजुद्दीन बिलगा खान उस्मान खानका चचेरा भाई था, जो पहिले कराखिताइयोंकी ओरसे उतरारका शासक रह चुका था और वहीं पीछे उसने ख्वारेज्मशाहकी अधीनता स्वीकार की। ख्वारेज्मशाहने उसे वहांसे निर्वासित कर दिया। पीछे बिलगाखान एक साल नसा नगरमें रह अपनी उदारताके कारण बहुत जनप्रिय हो गया। इससे डरकर ख्वारेज्मशाहने जल्लाद भेजकर उसका सिर कटवा मंगवाया। उस्मानको नजदीक लानेके लिये ख्वारेज्मशाह उसे अपना दामाद बनानेके लिये ख्वारेज्म ले गया था। तुर्कान खातूनने तुर्कोंकी प्रथाका बहाना करके एक साल तक उस्मानको वहां रहनेके लिये कहा। १२११ के वसन्तके अभियानमें समरकन्दियोंको शान्त देखकर उस्मानको सपत्नीक समरकन्द भेज दिया गया। ख्वारेज्मशाहके साथ उस्मानका ताजबा अच्छा नहीं था, इसलिए उसने कराखिताइयोंसे फिर संबंध जोड़ना चाहा। उत्तरी सप्तनदमें उसी वक्त मंगोल सेनापति हुबिलें (कुबिले) नोयनके सामने वहांके खानने अधीनता स्वीकार की थी। कराखिताई शासक मार डाला गया था, तो भी उस्मानने ख्वारेज्मशाहके मुसलिम जुयेकी जगह काफिरोंके जुयेको उठाना ही पसन्द किया, जिसमें समरकन्दके लोग भी उसके साथ थे। ख्वारेज्मशाहको इस बातका पता लगा, कि उस्मान कराखिताई रानीके पक्षमें है और ख्वारेज्मी रानीके साथ बुरा बर्ताव कर रहा है। यही नहीं १२१२ ई० में उस्मानकी आज्ञासे समरकन्दियोंने विद्रोह कर वहां रहनेवाले सारे ख्वारेज्मियोंको मार डाला। उस्मानकी आज्ञासे मरे हुए ख्वारेज्मियोंके शरीरको दो टूक करके बाजारमें कसाइयोंके मांसकी तरह लटका दिया गया था। ख्वारेज्म राजकन्याने जान बचानेके लिये अपनेको किलेमें बन्द कर लिया। उस्मानने मुश्किलसे उसे जीवित रहने दिया। इसका बदला लेनेके लिये ख्वारेज्मशाहने अपनी राजधानीमें बसते सभी विदेशियों और समरकन्दियोंको मार डालना चाहा, पर उसकी मां तुर्कान खातूनने उसे रोका। ख्वारेज्मशाहने समरकन्द पर चढ़ाई की और जल्दी ही नगरको आत्मसमर्पण करना पड़ा। उस्मानने तलवार और पारचा (वस्त्र) ले ख्वारेज्मशाहके सामने उपस्थित हो पूर्ण अधीनता स्वीकार की। तीन दिन तक समरकन्द शहरको लूटा गया। केवल विदेशियोंके मुहल्ले ही इस लूटसे बचे। सैयदों, इमामों और आलिमोंने बड़ी मिन्नत की, तब जाकर लूट बन्द हुई। ख्वारेज्मशाहने उस्मानको क्षमा कर देना चाहा, लेकिन उस्मानकी ख्वारेज्मी रानी (मुहम्मदशाहकी पुत्री) के हठके कारण दूसरी रात उसे कत्ल करवा देना पड़ा। मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने फरगाना और तुर्क-भूमिके अमीरोंके पास अधीनता स्वीकार करनके लिय दूत भेजे। कुचुलुककी गतिविधि रोकनेके लिये उसने इस्फिजाबमें एक सेना रखी। अबसे समरकन्द ही उसकी राजधानी सा बन गया। उसने वहां एक मस्जिद बनवाई और एक महल बनानेका काम भी शुरू कर दिया।

कुचुलुकमें शासक और सैनिकके बहुतसे गुण थे, लेकिन जहां तक मुसलमानोंका संबंध था,

वह उन पर किसी तरहकी दया दिखानेके लिये तैयार नहीं था। इसके ही कारण उसने सारे मध्य-एसियाके मुसलमानोंको अपना दुश्मन बना लिया और इसीसे फायदा उठाकर मुहम्मद ख्वारेज्मशाह मुसलमानोंका नेता और विजेता बन गया। इलीउपत्यकामें बुज़ारको हराकर कुचुलुकने उसकी राजधानी (अल्मालिक) को घेर लिया। लोग अपने शहरके लिये बड़ी बहादुरीसे लड़े। जब उसके पुराने शत्रु मंगोल वहां पहुंचे, तो कुचुलुक ने वहांसे हटते हुये बुज़ारको मरवा डाला। मंगोल सेनापति जेबे नोयनने शहरमें प्रवेशकर बुज़ारके पुत्र सुकनाग तगिनको गद्दीपर बिठाया और उसकी लड़की उलुकू खातूनको चिंगिसके अन्तःपुरके लिये भेज दिया। मंगोलोंने सुकनाग तगिनसे संधि की। १२२१ ई० में चीन-सम्राट्का प्रतिनिधि अब भी बुज़ारकी राजधानी अलमालिकमें रहता था, जिसका काम था—(१) जन-गणना करना, (२) लोगोंको सैनिक सेवाके लिये भरती करना, (३) डाकका यातायात ठीक रखना, (४) कर उगाहना, (५) दरबारमें भेंटके पहुंचानेका प्रबन्ध करना। इस प्रकार वह सैनिक नेता और कर-उगाहक दोनों ही था। मंगोलोंको मध्य-एसियाके सभ्य प्रदेशमें पहिले पहल यहीं अपने दारुखची (राज-प्रतिनिधि) नियुक्त करनेकी अवश्यकता पड़ी। जब मंगोल सेना वहां पहुंची, तो काशान और आकसीकत के गुरखानी शासक इस्माईलने नगरके बुजुर्गोंके साथ मंगोलोंके पास आत्मसमर्पण किया।

जेबे नोयनने इसकी सूचना चिंगिसको दी। हुकुम आया, कि इस्माईलको हरावलका पथ-प्रदर्शक बना कुचुलुकके विरुद्ध आगे बढ़ो। १२१९ ई० में बीस हजार मंगोल कुल्जाके रास्ते सप्तनदमें पहुंचे। बलाशागुन बिना प्रतिरोधके उनके हाथमें चला गया। उन्होंने उसका नाम बदल कर गोबालिग (सुनगर) रख दिया। फिर काशगरमें पहुंचकर जेबेने घोषणा की, कि सभी अपने-अपने धर्मके अनुसार स्वतंत्रता-पूर्वक पूजा-पाठ कर सकते हैं। मंगोलोंने नगरको नहीं लूटा, केवल कुचुलुकके बारेमें खोज-परताल की। काशगरी लोग मंगोलोंके आगमनको अल्लाकी दया कहते थे। कुचुलुक बिना लड़े भागा और सिरिकुलमें मारा गया। जेबेको गुरखानकी अपार संपत्ति हाथ लगी। उसने हजार श्वेतमुख घोड़े चिंगिसके पास भेजे। जिस शत्रुने वर्षोंसे ख्वारेज्मशाहकी नींद हराम कर दी थी, उसे जेबेने इतनी आसानीसे खतम कर दिया। धार्मिक स्वतंत्रता देकर मंगोलोंने कुचुलुकके अत्याचारके कारण क्षुब्ध और पीड़ित मुसलमानोंको अपनी ओर कर लिया था। अब मंगोलोंके खिलाफ अपने युद्धको ख्वारेज्मशाह धर्मयुद्ध का नाम नहीं दे सकता था। मंगोलोंने तो मुसलमानोंको धार्मिक स्वतंत्रता दी, और ख्वारेज्मशाहने कई मुसलमान दूतोंको जानसे मार डाला।

उत्तरापथमें तेरहवीं सदीके प्रथम पाद में मंगोलोंके रूपमें एक नयी शक्ति आ पहुंची, जिसने चीनसे लेकर सिर-दरियाके तट तक एक विशाल साम्राज्य कायम कर दिया।

(२) मंगोलोंसे झड़प—

जैसा कि पहिले कहा, किपचकोंके साथ की लड़ाईमें मुहम्मद ख्वारेज्मशाह ज्यादा सफल रहा। शिकनाग ख्वारेज्मके राज्यमें मिला लिया गया। जन्दसे उत्तर बढ़कर मुहम्मदने किरगिज़-मरुभूमिके किपचकों पर कई अभियान भेजे। ऐसे ही एक अभियानमें १२१६ ई० में संयोगवश ख्वारेज्मी सेनाकी टक्कर चिंगिसकी सेनाकी एक टुकड़ीसे हुई। तुर्गई प्रान्तमें

ख्वारेज्मशाहने जब १२१५ ई० में आक्रमण किया, तो उसे खबर लगी, कि पराजित मेर्गित तक्तू खानके नेतृत्वमें मंगोलियासे भागते आ रहे हैं, जिनका पीछा करते मंगोल कङली (किपचक)-भूमिमें आ गये हैं। यह खबर सुनकर समरकन्दसे बुखारा और जन्द होते मुहम्मदशाहने उधरकी ओर प्रस्थान किया। वहां पहुंचने पर पता लगा, कि मेर्गित ही नहीं मंगोल भी आ गये हैं। ख्वारेज्मशाह समरकन्द लौट साठ हजारकी बड़ी सेना लेकर इरगिज़ नदीके तटपर पहुंचा। नदीकी धारमें पिघलती बरफका ज़ोर था, इसलिए उसे कुछ समयके लिये रुक जाना पड़ा। जब नदी बरफ-मुक्त हो गयी, तो नदी पार मेर्गितोंके ऊपर पड़कर उसने उन्हें नष्ट कर दिया। फिर कैली और किमाज नदियोंके बीच पहुँचा। एक घायल मुसलमानने बतलाया, कि आज ही मेर्गितों और मंगोलोंकी भयंकर लड़ाई हुई है। मुहम्मदने विजेता मंगोलोंका पीछा किया और दूसरे दिन सबेरे उन्हें जा पकड़ा। इस टुकड़ीका नेता जूजी और दूसरे मंगोल सरदार थे। वह ख्वारेज्मशाहसे लड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने कहा कि हम केवल मेर्गितोंके विरुद्ध भेजे गये हैं, हमें दूसरे से लड़नेका हुक्म नहीं है। ख्वारेज्मशाहने जवाब दिया—"हम सभी काफिरोंको अपना शत्रु समझते हैं।" उसने मंगोलोंको लड़नेके लिये मजबूर किया। युद्धका कोई फैसला नहीं हुआ। मुसलमानोंके दक्षिण-पक्षके सेनापति शाहजादा जलालुद्दीनने बड़ी बहादुरीसे मुसलमानोंको हारनेसे बचाया। दूसरे दिन फिर लड़नेका निश्चय था, लेकिन इस दिन अंधेरेमें ही जलती आग छोड़कर मंगोल भाग गये। लड़ाईमें मंगोलोंने इतनी वीरता दिखाई थी, कि मुहम्मदको उनसे फिर खुले मैदानमें लड़नेकी हिम्मत नहीं हुई।

स्रोत-ग्रन्थः

1. A thousand years of Tatars (Parker)
2. A short History of Chinese Civilisation (Tsui Chi, London 1945)
३. औचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्या (व० बरतोल्द, वेर्नी १८९८)

भाग ८

दक्षिणापथ (८९२-१२२० ई०)

अध्याय १

सामानी (८९२-९९९ ई०)

उद्गम—

अब्बासी राज्यपाल असद अब्दुल्ला-पुत्र कसरी (७२३—७३५—७३७) के शासन-काल में सासानी वीर बहराम चौबीन के वंशज सामान ने अपने नगर से वंचित किये जाने पर मेर्व में जा असद से मदद मांगी और उस की सहायता से वह फिर सामान-खुदात (सामान का शासक) बन गया। मुस्लिम शासक के प्रति कृतज्ञता दिखलाते हुए सामान ने अपना जर्थुस्ती धर्म छोड़ इस्लाम स्वीकार किया और अपने संरक्षक के नाम पर अपने पुत्र का नाम असद रक्खा। असद के चारों पुत्रों ने समरकंद में रफी लैस-पुत्र के विद्रोह को दमन करते समय खलीफा हारून रशीद की बड़ी सेवा की। इसके लिये खलीफाने खुरासान के राज्यपाल गस्सान अबाद-पुत्र को लिखा, कि इन चारों भाइयों को एक-एक नगर का शासक बना दिया जाय। इस प्रकार ८१७ (२०२ हि०) से असद-पुत्रों में से नूह को समरकन्द, अहमद को फर्गाना, यहिया को शाश-उश्रूसना और इलियास को हिरात का अमीर बना दिया गया। ८२० ई० में गस्सान के उत्तराधिकारी ताहिर ने भी उन्हें अपने पदोंपर रहने दिया। यही चारों भाई स्वतंत्र सामानी राजवंश के संस्थापक हैं। इस वंश में निम्न अमीर हुये—

१. नस्र अहमद-पुत्र	८७५-९२
२. इस्माइल अहमद-पुत्र	८९३-९०७
३. अहमद इस्माइल-पुत्र	९०७-१४
४. नस्र II अहमद-पुत्र	९१४-४२
५. नूह I नस्र I-पुत्र	९४३-५४
६. अब्दुल् मलिक II नूह-पुत्र	९५४-६१
७. नस्र III अब्दुलमलिक-पुत्र	९६१
८. मंसूर I नूह-पुत्र	९६१-७६
९. नूह II मंसूर-पुत्र	९७६-९७
१०. मंसूर II नूह II-पुत्र	९९७-९९
११. अब्दुल मलिक II नूह II-पुत्र	९९९-
१२. मुंन्तसिर नूह II-पुत्र	

१. नस्र[1] (८७५-९२ ई०)

याकूब लैस-पुत्र ने ताहिरी वंश को जिस वक्त समाप्त किया, उस वक्त समरकन्द का अमीर (शासक) नस्र अहमद-पुत्र था। ताहिरियों के पतन के बाद खलीफा मोतमिद (८७०-९२) के भाई मुवफ्फ़क ने नस्र को सारे अन्तर्वेद का शासक बनाने का नियुक्ति-पत्र (अहद) भेजा। इसके शासनमें वक्षु तट से सुदूर पूर्व तक का देश था। नस्र खुरासानसे कब स्वतंत्र हुआ, इसका पता नहीं है। ८७४ ई० (२६१ हि०) में नस्र अपने भाई इस्माईल की सहायता से अन्तर्वेद का शासन चलाता रहा। खुतबे में दोनों भाइयों का नाम था, किन्तु याकूब लैस-पुत्र का नाम नहीं था। समरकन्द से नस्र ने अपने भाई इस्माईल को बुखारा का अमीर बनाकर भेजा। उस समय राजनीतिक अशान्ति और गुंडागर्दी के कारण बुखारा की बुरी दशा थी। इस्माईल ने अपने को योग्य सेनापति और शासक सिद्ध किया और अपनी न्यायशीलता से वह बहुत जल्दी जनप्रिय हो गया। डाकुओं और गुंडों का उसने बड़ी निर्दयता के साथ उच्छेद किया, केवल रामातीन और पैकंद के बीच चार हजार बदमाशों को मरवाया। लेकिन बड़ा भाई कान का कच्चा था। उसे लोगों ने भड़का दिया, कि इस्माईल राज्य को अपने हाथ में करना चाहता है। नस्र ने ८८५ ई० में इस्माईल के विरुद्ध चढ़ाई कर दी और मदद के लिये अपने मित्र खुरासान के शासक रफी हरसमा-पुत्र को भी बुला भेजा। नस्र ने बुखारा शहर के अधिक भाग पर अधिकार कर रसद रोक दी। रफी ने आकर वहां की अवस्था देख कर कहा—मैं लड़ने नहीं बल्कि दोनों भाइयों में मेल कराने आया हूं। उसने (८८६ ई० में) सुलह करवा दी। इस्हाक को बुखारा का अमीर और इस्माईल को आमिल-खराज (तहसीलदार) बनाया गया।

इस्माईल और इस्हाक दोनों मेरे विरुद्ध मिल गये हैं, यह सन्देह कर नस्र ने फर्गाना से सेना बुलाकर ८८७ ई० में फिर आक्रमण किया। इस्माईल ने भी ख्वारेज्म में सैनिक तैयारी की। मामूली झड़प के बाद ८८८ (२७५ हि० के अन्त) में उसने नस्रको हराकर बंदी बना लिया; पर अपने पराजित भाई के साथ बहुत ही सम्मान-पूर्ण वर्त्ताव किया और मुक्त करके उसे समरकन्द भेज दिया। तबसे अपनी मृत्यु (२१ अगस्त ८९२ ई०) तक नस्र शान्ति-पूर्वक शासन करता रहा।

२ इस्माईल[2] अहमद-पुत्र (८९२-९०७ ई०)

इस्माईल अहमद-पुत्र ८४९ ई० में फर्गाना में पैदा हुआ था। बड़े भाई नस्र ने उसे ८७४ ई० में बुखारा भेजा। ताहिरियों के पतन के बाद चारों ओर अराजकता फैली हुई थी। उस वक्त वहां वह कैसे शान्ति स्थापित करने में सफल हुआ, इसे हम बतला चुके हैं। ८७४ ई० के आरम्भ में हुसेन ताहिर-पुत्र ने ख्वारेज्म से बुखारा पर चढ़ाई की। पांच दिन के संघर्ष के बाद नागरिकों ने कुछ शर्तों पर आत्मसमर्पण किया। हुसेन ने उन्हें तोड़ दिया, जिसपर फिर विद्रोह हुआ। हुसैन डर के मारे किले में बन्द हो गया और रात के वक्त नगर से वसूल किये हुये दिरहमों

---

[1] Turkistan Down to the Mongol Invasion (w. Bartold) pp. 129

[2] Turkistan... pp. 135, 136; Heart of Asia p. 74

को लिये बिना ही भाग गया। इस जमा किये हुये धन को विद्रोहियों ने आपस में बांट लिया। कहावत थी, बुखारा के बहुत से परिवार उसी रात की कमाई से धनी बन गये। बुखारा में फिर भी शान्ति स्थापित नहीं हुई। लोगों ने अबूहब्स-पुत्र फकीर अब्दुल्ला की सलाह से नस्र अहमद-पुत्र से सहायता मांगी। उसकी सहायता से इस्माईल ने आकर अमीर हुसैन मुहम्मद-पुत्र ख्वारेज़्म के उपद्रव को शान्त किया। इस्माईल अब बुखारा का अमीर (शासक) बना और हुसैन मुहम्मद-पुत्र उसका सहायक। २५ जून ८७४ शुक्रवार को बुखारा में याकूब लैस-पुत्र की जगह नस्र अहमद-पुत्र के नाम से खुतबा पढ़ा गया। चंद ही दिनों बाद इस्माईल ने बुखारा में दाखिल हो शर्तें भंग कर खारिजी नेता हुसैन को कैद कर लिया—खारिजी एक असनातनी मुसलिम धार्मिक संप्रदाय था। इस्माईल के और भी दुश्मन थे, खारिजी तो थे ही। उसकी सफलता के कारण उसका भाई नस्र भी संदेह करने लगा। हुसैन ताहिरपुत्र भी षड्यंत्र कर रहा था, बुखारा के कुछ धनी मानी तथा गुंडे भी बिगड़े हुए थे। किसानों का जिस तरह शोषण हो रहा था, उसके कारण बहुत से किसान डाकू बनने के लिय मजबूर हो गये और केवल पैकन्द और रामातान के बीच उनकी संख्या चार हजार थी, किन्तु जमीन के मालिक और उच्चवर्ग इस्माईल के साथ था, जिन्हीं के बलपर इस्माईल ने शान्तिव्यवस्था स्थापित की। सबसे अधिक प्रभावशाली बुखारा-खुदात अबू-मुहम्मद और धनी सेठ अबू-हाशिम यस्सारी थे। इन्हें इस्माईल ने अपनी ओर से दूत बनाकर समरकन्द भेजा और चुपके से अपने भाई नस्र को लिख दिया, कि इन्हें जेल में डाल दे। पीछे छुड़वा मंगाकर उनपर अपनी कृपा प्रकट करते रुपया पैसा दे अपनी ओर करके भाई के खिलाफ कर दिया। इस्माईल ने खतरा पैदा करा दिया था, इसलिये, जैसा कि पहिले कहा, ८८८ ई० में भाई को उससे लड़ने के लिये मजबूर होना पड़ा। पैकन्द के नगर वासियों ने अमीर नस्र का स्वागत किया।

नस्र के मरने पर उसका अनुज इस्माईल अन्तर्वेद और ख्वारेज्म का स्वामी बना, किन्तु वह राजधानी को बुखारा से हटाकर समरकन्द नहीं ले गया। अब्बासी खलीफा अब नाममात्र के खलीफा थे। उनका काम था भेंट और तोह्फे लेकर पदवियां और दर्जे प्रदान करना। खलीफा मोतज़िद (८९२-९०२) ने इस्माईल के लिये नियुक्ति-पत्र भेजा। इस्माईल अपने को कट्टर मुसलमान साबित करना चाहता था, इसलिये वह उत्तर के काफिरों के खिलाफ धर्मयुद्ध (गज़ा) छेड़कर गाज़ी बने बिना कैसे रह सकता था? उसने सिर-दरिया के उत्तर ताराज़ (औलिया-आता से प्रायः ३० मील दक्षिण) पर आक्रमण किया। वहां के तुर्क बौद्धों और ईसाइयों ने काफी मुकाबिला किया, किन्तु भीतर फूट के कारण तुर्क इस्माईल की सेना का मुकाबिला नहीं कर सके। शासक और देहकानों (ग्रामपतियों) ने इस्लाम स्वीकार किया। ताराज़ नगर के फाटक के खुलते ही इस्माईल भीतर घुसकर तुरन्त प्रधान गिरजे में पहुंचा और उसे मस्जिद बना खलीफा के नाम से वहां नमाज़ अदा की। लूट की अपार संपत्ति के साथ वह बुखारा लौटा। यह कह आये हैं, कि सफ़्फ़ारी अमीर अम्रू लैस-पुत्र की आंखें अन्तर्वेद पर गड़ी थीं। ९०० (२८८ हि०) में इस्माईल ने अम्रू के खिलाफ अभियान कर वक्षु पार हो बलख को घेर लिया। नगर के साथ-साथ अम्रू भी उसके हाथ में आया। अम्रू को इस्माईल ने खलीफा के पास बगदाद भेज दिया। खुश होकर खलीफा ने इस्माईल सामानी को खुरासान, तुर्किस्तान, अन्तर्वेद, सिन्ध-हिन्द और जुरजान का वली (क्षत्रप) बना दिया। इस्माईल का शासन अपने शासित देशों के लिये

बड़ा ही शान्तिपूर्ण था। सिन्ध प्रायः दो सदियों पहिले मुसलमानों के हाथ में चला गया था, इस्माईल अब उसका (भारत के एक भाग का) भी स्वामी था। उसका शासन अच्छा था। उसने हर नगर के पृथक् पृथक् अमीर (शासक) नियुक्त किये थे। इस शान्ति से लाभ उठा उसने गाज़ी का कर्तव्य पालन करते उत्तर के काफिर तुर्कों पर आक्रमण करना जारी रखा। अपने अन्तिम अभियान में वह हज़रत तुर्किस्तान नगर पर चढ़ दौड़ा और तुर्कों को हराकर उनको वहां से खदेड़ दिया तथा लूट की अपार संपत्ति के साथ वह बुखारा लौटा। उसके शासन के अन्तिम चार सालों में बुखारा नगर शान्तिपूर्ण ही नहीं बल्कि बहुत ही वैभवशाली था। नगर की संपत्ति को बढ़ाने तथा उसे अनेक इमारतों से अलंकृत करने में इस्माईल का बड़ा हाथ था। यद्यपि बुखारा ने इससे पहिले ही एक मुसलिम-केन्द्र का रूप ले लिया था, लेकिन बुखारा को बुखारा-शरीफ बनाकर उसे इस्लामिक संस्कृति और विद्या का महान् केन्द्र बनाना बहुत कुछ इस्माईल का काम था। अब भी इस्माईल की बनवाई कुछ इमारतें वहां मौजूद हैं। बुखारा ने पूरबका बगदाद बन अनेक शताब्दियों के लिये मध्यएसिया ही नहीं सारे पूर्वी इस्लामिक जगत की काशी का रूप लिया। बड़े से बड़े धर्मशास्त्री, कवि और दार्शनिक यहां पैदा हुए। यहां के इतिहासकारों ने अपने और अपने से पहिले के इतिहास पर सुंदर ग्रंथ लिखे। बुखारा उस समय एक ऐसे राज्य की राजधानी थी, जिसमें मेर्व, नेशापोर, रे (तेहरान), आमूल, हिरात, बलख़ और मुल्तान जैसे महान् नगर थे। इस्माईल ९०७ ई० में मरा। उसके बाद उसका पुत्र अहमद गद्दी पर बैठा।

३. अहमद इस्माईल-पुत्र (९०७-९१४ ई०)

अहमद को अपने बाप का समृद्ध और सुशासित राज्य मिला, लेकिन इसी समय ईरान के पश्चिमी भाग पर दैलमी वंश का शासन स्थापित हुआ, जो धीरे धीरे सारे ईरान पर अधिकार करने की कोशिश कर रहा था, जिसके कारण सामानियों के पश्चिमी प्रदेशों को खतरा पैदा हो गया। सामानी राज्य में उस समय मंत्रियों का अधिक जोर था, जिनमें अधिकांश तुर्क थे, सेना के अधिकारियों में भी वही अधिक थे। अहमद ने अपने को अधिक पक्का मुसलमान साबित करने के लिये बीच में लोक-भाषा (पारसी)—जो राजभाषा बन गई थी, को हटाकर फिर अरबी को राजभाषा बना दिया। उसके सात वर्ष के शासन में सामानी वंश का प्रभुत्व बढ़ने की जगह घटता ही गया और वह अपने आस-पास के लोगों में भी इतना अप्रिय हो गया, कि २३ जनवरी ९१४ ई०को अपने ही गुलामों ने उसे मार डाला। इसके समय में सबसे बड़ा इस्लामिक धर्मशास्त्री (फकीह) अब्दुल्ला बुखारी ८०९-९१६ ई० में मौजूद था, जिसकी हदीस जामे-अस्-सहीह (सही बुखारी) आज भी मुसलमानों में बहुत प्रामाणिक मानी जाती है। इसमें अब्दुल्ला ने १६ साल के घोर परिश्रम के बाद पैगम्बर (मुहम्मद) के वचनों और आचारों को ६ लाख परम्पराओं द्वारा संगृहीत किया। फारसी का प्रथम और महान् कवि अबुलहसन रूदकी इसी समय हुआ था, जिसकी सरस कविताएं आज भी मौजूद हैं। इस्लामिक जगत के महान् दार्शनिक फाराबी का भी यही काल है।

फाराबी[1] (८७०-९५० ई०)—बगदादी काल में विदेशी भाषाओं से बहुत से दर्शन

[1] दर्शनदिग्दर्शन (राहुल सांकृत्यायन) पृ० ११३-१२४

ग्रंथ अरबी भाषा में अनुवादित हुए, यह हम कह आये हैं। अब इस्लामिक जगत ने स्वयं-दार्शनिक पैदा करने शुरू किये। फाराबी उनमें प्रधान था। किन्दी बगदादी केन्द्र का स्वतंत्र दार्शनिक था, तो फाराबी और बू-अली सेना सामानी काल की देन हैं। फ़ाराबी का असली नाम था अबू-नस्र मुहम्मद-पुत्र तर्खन-पुत्र उजलक-पुत्र अल्फाराबी (फाराब-निवासी)। फाराबी का जन्म फाराब जिले के वासिज़ नामक स्थान में हुआ था। वासिज़ में एक छोटा सा किला था, जिसका किलेदार अबूनस्र का बाप मुहम्मद था। बाप, दादों के नाम से मालूम होता है, कि फाराबी तुर्क था। यह कहने की अवश्यकता नहीं, कि अभी अरबों तथा सामानियों के पूरा प्रयत्न करने पर भी सारा मध्यएसिया मुसलमान नहीं हुआ था। बौद्ध, मानी या नेस्तोरी विचारों का भी वहां प्रभाव था। १५० वर्षों से इस्लाम मध्यएसिया पर पूर्ण विजय प्राप्त करने की कोशिश कर रहा था, लेकिन सिर-दरिया से थोड़े ही दूर पर अवस्थित ताराज़ इस्माईल के विजय के पहिले इस्लाम से अछूता था। फाराबी के स्वतंत्र विचार उसकी जन्मभूमि के वातावरण में मौजूद थे। संभवतः फाराबी की शिक्षा अपनी जन्मभूमि के बुखारा या समरकन्द जैसे नगरों में हुई थी। उसने अपनी शिक्षा को तब तक समाप्त नहीं समझा, जब तक कि बगदाद के एक ईसाई विद्वान् योहन हैलान-पुत्र के चरणों में नहीं बैठा। फाराबी ने दर्शन के अतिरिक्त साहित्य, गणित, ज्योतिष और वैद्यक का भी अध्ययन किया था।

दर्शन पर तो उसने अपनी कलम चलाई ही, संगीत पर भी उसने एक पुस्तक लिखी। कहा जाता है, फाराबी सत्तर भाषाओं का पंडित था। तुर्की तो उसकी मातृ-भाषा ही थी। फारसी उसकी जन्मभूमि की भाषा थी। अरबी इस्लाम की जबान ठहरी। इनके अतिरिक्त सुरियानी, इब्रानी, यूनानी आदि भाषाओं से भी उसे काम पड़ा था। शिक्षा समाप्त करने के बाद भी फाराबी बहुत समय तक बगदाद में रहा। उसके बाद वह हलब (अलप्पो) के सामन्त सैफुद्दौला के विशेष प्रेम से वहां रहने लगा। फाराबी की रहन-सहन बौद्ध भिक्षुओं की सी थी। वह शान्त और एकान्त जीवन को बहुत पसन्द करता था। अब इस्लाम में सूफी अपने योग-दर्शन-प्रेम और स्वतंत्र-विचारों के लिये मशहूर होने लगे थे। फाराबी सूफियों की पोशाक में रहता। उसपर यूनानी सोफिस्तों और बौद्ध भिक्षुओं के जीवन का बहुत अधिक प्रभाव था। दमिश्क गया था, वहीं ८० साल की उम्र में दिसम्बर ९५० ई० में उसका देहान्त हुआ। हलब के सामन्त सैफुद्दौला ने सूफी पोशाक पहनकर फाराबी की कब्र पर फातिहा पढ़ा। फाराबी और बू-अली सेना जैसे विचारक किसी भी देश के गौरव हैं। जन्मभूमि (अन्तर्वेद) ने उनके जीवन में उनका उतना सम्मान नहीं किया, किन्तु सोवियत उजबेकिस्तान और ताजकिस्तान अपने इन महान् रत्नों की अब कदर कर रहे हैं। उनके ग्रंथों की खोज हो रही है, उन पर विद्वान् डाक्टर-उपाधि के लिये निबंध लिख रहे हैं। उनकी ग्रन्थावलियां छप रही हैं। कवि उनकी गौरव-गाथाओं पर काव्य लिख रहे हैं।

यह हमें मालूम है, कि यूरोप ने यूनान के महान् दार्शनिकों—सुकरात, प्लातोन, अरस्तातिल—के साथ संबंध स्थापित करने और प्रेरणा लेने में अरबी विद्वानों के उपकार को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। यदि अरब अनुवादकों और विचारकों ने अपनी कलम न उठाई होती, तो शायद हम यूनान के गंभीर दर्शन को आज पा भी नहीं सकते। यूरोप के पुनर्जागरण में यूनान के प्राचीन दार्शनिकों का बहुत बड़ा हाथ है। फाराबी अरस्तू के ग्रंथों का महान भाष्यकार

है। उसके भाष्य और ग्रंथ इतने महत्वपूर्ण समझे गये, कि विद्वानों ने उसे द्वितीय अरस्तातिल और "द्वितीय आचार्य" (हकीम सानी) का नाम दिया। अरस्तू को पुनरुज्जीवित करने में फाराबी की सेवायें अमूल्य हैं। फाराबी ने अपनी खोजों से अरस्तू के ग्रंथों की जो संख्या और क्रम निश्चित किया था, उसे आज भी वैसे ही माना जाता है—फराबी ने अरस्तू के नाम पर कुछ दूसरी पुस्तकें भी शामिल कर दीं। उसने अरस्तू के तर्कशास्त्र के ८, विज्ञान के ८, अतिभौतिक, आचार, राजनीति आदि विषयों पर भाष्य और ग्रंथ लिखे हैं। दूसरे विषयों की ओर भी उसकी रुचि थी, किन्तु फराबी ने अपना ध्यान तर्कशास्त्र, अतिभौतिक शास्त्र और भौतिक शास्त्र पर अधिक दिया।

४. नस्र[1] (II) अहमद-पुत्र (२१४-४२ ई०)

नस्र के समय पश्चिम में सामानियों के प्रतिद्वन्द्वी दैलमी (बुवायही) थे। दोनों ईरानी वंशों का परस्पर वैवाहिक संबंध भी था। दोनों वंशों की तुलनात्मक वंशावलि निम्न प्रकार है—

सामानी		बुवायही	
४ नस्र II	९१४-४२	१ अली बुवायही-पुत्र	-९३२
५ नूह I	९४३-५४	२ अहमद मुईउद्दौला	९३२- ६७
६ अब्दुल-बलिक I	९५४-६१		
७ नस्र III	९६१		
८ मंसूर I	९६१-७६	३ आजादुद्दौला (रुकनु० १) ९६७-	
९ नूह II	९७६-९७		
१० मंसूर II	९९७-९९	४ मज्दुद्दौला	

५. नूह I नस्र II-पुत्र (९४३ ५४ ई०)

नूह के शासन-काल की कोई उल्लेखनीय घटना नहीं है।

६. अब्दुलमलिक नूह-पुत्र (९५४-६१)

अब्दुल-मलिक के समय की एक घटना स्मरणीय है। सामानियों के सैनिक और असैनिक बड़े-बड़े पदों पर तुर्कों की काफी संख्या थी। इन्हीं में एक तुर्क अल्प-तगिन (सिंह कुमार) प्रतिहारों का अफसर था। दिसम्बर ९५६ ई० में इसने एक विशिष्ट सामानी अधिकारी बकर मलिक-पुत्र को राजद्वार पर मार डाला। संदेह किया जाता है, कि इस हत्या में अमीर (अब्दुल मलिक) की भी सम्मति थी। बकर का उत्तराधिकारी अल्पतगिन का पहिलेका सहायक-सेनापति अब्दुल हसन महमूद इबराहीम-पुत्र सिमजूरी था। उसने ९२७ ई० में दरबार में घोषणा-पत्र और झंडे को पहुंचाया। अल्पतगिन ने खुरासान के अबू मन्सूर अब्दुल्‌रज्ज़ाक-पुत्र को शासक के तौर पर तूसमें रख छोड़ा था। सामानी दरबार ने अबू

[1] Heart of Asia p.74; त्रुदी अत्देला नुमिज्मातिकी, लेनिनग्राद १९४५, पृ० ८८-८९

मन्सूर को प्रोत्साहित करते हुए अल्पतगिन का स्थान दे दिया। इस पर अल्पतगिन गज़ना (गज़नी) की ओर चला गया, जहां ९६२ ई० में उसने गजनवी राजवंश की स्थापना की। अल्पतगिन ९६३ ई० में मरा। उसके बाद उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र इसहाक हुआ, जिसे गज़ना के पुराने राजा ने ९६४ ई० में हरा दिया। जिस पर सामानी (मन्सूर I) मदद से वह ९६५ ई० में फिर गज़नी लौट सका। इस्माईलके वक्त में अब भी सिर-दरिया के उत्तर काफिर तुर्कों की भूमि थी। धर्म-युद्धों में एक काफिर तुर्क सुबक तगिन बन्दी बनाया गया। नेशापोर (खुरासान) में किसी दास-वणिक से उसे सेनापति अल्पतगिन ने खरीद लिया। सुबुक तगिन के गुणों को उसके मालिक ने पहिचाना लिया, और उसको आगे बढ़ने का मौका मिला। जब अल्प-तगिन सामानियों से नाराज़ होकर गज़ना चला गया, तो सुबुक तगिन भी उसके साथ था। सुबुक तगिन ने अल्प तगिन और उसके पुत्र की बड़ी सहायता की और अन्तिम उत्तराधिकारीने सुबुकतगिन के लिये अपना सिंहासन छोड़ दिया। इस प्रकार २० अप्रैल ९५७ ई० को सुबुक तगिन सिंहासन पर बैठा। उसके बाद उसने अफगानिस्तान और भारत के विजयों से बड़ी ख्याति प्राप्त की और अन्त में सामानी वंश के उच्छेद में उसने और उसके पुत्र महमूद गजनवी ने खास तौर से भाग लिया।

८. मन्सूर I नूह-पुत्र (९६१-७६ ई०)

अब्दुल मलिक के बाद उसका पुत्र नस्र III थोड़े ही दिनों तक शासन कर सका। फिर अब्दुलमलिक का भाई मंसूर I सामानी शासक हुआ। इसने दैलमी राजा रुकनुद्दौला (९६४-७५) की अपोती तथा जादुद्दौला की लड़की से ९७१ ई० में शादी की। अल्प तगिन ने मंसूर को अमीर मानने से इन्कार कर दिया। उस समय वह खुरासान (नेशापोर) का राज्यपाल था। झगड़े का फैसला हथियार से ही हो सकता था। बलख के युद्ध में अल्प तगिन असफलहो गज़ना-की ओर चला गया और वहां अपने को मजबूत करके मंसूर के आक्रमणों का उसने जवाब दिया। अल्प-तगिन और मंसूर की मृत्यु एक ही साल हुई।

९: नूह II मन्सूर-पुत्र (९७६-९७ ई०)

नूह के गद्दी पर बैठने के समय गज़ना में सुबुकतगिन ने अपना शासन अभी स्थापित नहीं किया था, वह अल्प तगिन के उत्तराधिकारी का समर्थक था। उसने वक्षु पार कर सामानियों के राज्यपर आक्रमण किया। किश के पास नूह से भेंट हुई। सुबुक तगिन सामानियों से स्वतंत्र नहीं होना चाहता था, उसने राजभक्ति की शपथ ली। उसकी पहिले की सेवाओं के लिये तथा ख्वारेज्मियों से मनमुटाव होने के कारण नूह ने नसा और अबीवर्द सुबुकत-गिन को देने के लिये कहा। यह दोनों प्रदेश अबूअली के थे। उस ने नसा दे दिया, लेकिन अबीवर्द से इन्कार किया, इसके कारण दोनों ख्वारेज्मियों (अबू-अब्दुल्ला और गूरगंजी अबूअली) में झगड़ा हो गया। इसके लिये नूह ने अबूअली पर ९९४ ई० में आक्रमण करके पूरी विजय प्राप्त की। सुबुक तगिन ने इसमें नूह की सहायता की; इसके लिये सामानी दरबार ने "नासिरुद्दीनु-द्दौला", की सुबुकतगिन को और उसके पुत्र अबुल्कासिम महमूद को "सैफुद्दौला" (राज्य खड्ग) की पदवी प्रदान की। नूह ने अबूअली की जगह महमूद गजनवी को

खुरासान का राज्यपाल बनाकर नेशापोर भेजा। १९ सितम्बर ९९६ ई० में अबूअली को गूरगंजी अमीर मामूनने हराकर बन्दी बनाया और अब अबूअली अब्दुल्ला की जगह मामून स्वयं ख्वारेज्मशाह बन गया। अमीर महमूद ने काराखानी फायक को पकड़कर बन्दीखाने में डाल उसके राज्य को ले लिया। बुखारा सरकार और अबू अली में उस समय झगड़ा छिड़ा हुआ था, मामून ने बीच में पड़कर समझौता कर दिया।

अब दक्षिण में सामानियों के सामन्त गजनवी एक बड़ी शक्ति के रूप में खड़े हो रहे थे। इसी समय उत्तर के घुमन्तू कराखानियों ने भी हमला कर दिया। ९९६ ई० में कराखानियों के जबर्दस्त हमलेके कारण नूह के हाथ में अब अन्तर्वेद का एक छोटा सा भाग रह गया, इसलिये वह अकेला दुश्मनों का सामना नहीं कर सकता था। उसके बुलाने पर सुबुक तगिन एक बड़ी सेनासे साथ आया, जिसके साथ गूजगान और खुत्तलके बड़े अमीर भी थे। सुबुकतगिनने नूह को किश (शहरसब्ज) में आकर मिलने के लिये कहा, लेकिन वजीर अब्दुल्ला उज़र-पुत्र ने इसमें हतक होने की बात कहकर नूह से इन्कार करा दिया। सुबुकतगिन ने नूह की गोशमाली के लिये अपने दोनों बेटों महमूद और बुगराचुक को २० हजार सेना देकर बुखारा भेजा। नूह का दिमाग ठंडा हुआ और उसने सुबुकतगिन की सारी बातें मान लीं। अब्बुल्ला को पदच्युत कर उसे सुबुक तगिन के हाथमें दे दिया। सुबुक तगिनने अपने आदमी अबूनस्र अहमद मुहम्मद पुत्र अबूज़ैद-पुत्रको सामानी वजीर बनाया। मांगने पर नूह ने अबूअली, 'और उसके हाजिब तथा वजीरको सुबुकतगिन के हाथ में दे दिया, जिन्हें उसने गर्देज के किले में कैद कर दिया। इसके बाद सुबुकतगिन ने कराखानियों से लड़ाई न कर समझौता कर कतवान की मरुभूमि को सामानी और कराखानी सीमा मान ली, जिससे सारी सिर-उपत्यका कराखानियों के हाथ में रही और जैसा कि पहिले बतलाया, उनकी बात मानकर फायक को समरकन्द का गवर्नर नियुक्त किया गया। वक्षु के दक्षिण का स्वामी अब सुबुकतगिन था, खुरासान भी सामानियों के हाथ से निकल गया था। २३ जुलाई ९९७ ई० को नूह II की मृत्यु हुई।

बू-अली सीना (९८०-१०३७ ई०)

यद्यपि बू-अली सीना का दार्शनिक जीवन कुछ समय बाद शुरू होता है, किन्तु इस्लामी जगत के इस महान् दार्शनिक के निर्माण में सामानी शासन का काफी हाथ है। बूअली सीना के बारे में हम कह सकते हैं, कि उसके रूप में इस्लामिक दर्शन उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुंचा। बू-अली सीना, दार्शनिक मसकविया (मृ० १०३० ई०) महाकवि फिरदौसी (९४०-१०२० ई०) और महान् पंडित और पर्यटक अल्बेरुनी (९७३-१०४८ ई०)का समकालीन था। मसकवियासे सीना की भेंट हुई थी और अल्बेरुनी से उसका पत्र-व्यवहार हुआ था। इस का पूरा नाम अबू-अली अल्-हुसैन यदन् अब्दुल्ला इब्न सीना था। इसका जन्म ९८० ई० में बुखारा के पास अफशान में हुआ था। सीना के परिवार के लोग पीढ़ियों से सरकारी कर्मचारी होते आयेथे। उसने प्राथमिक शिक्षा घर पर पाई। देशभाई फाराबी पहिले दार्शनिक हो चुका था। दोनों की जन्मभूमियां आधुनिक उज्बेक सोवियत प्रजातंत्र में थीं। सीना के परिवार में स्वतंत्र विचारों का वातावरण था। उसने स्वयं लिखा है कि मेरे बचपन में मेरे बाप और चचा यूनानी नफ्स (विज्ञान) के सिद्धान्त पर खारिजियों (वातनियों) के मत से

बहस किया करते थे। खारजियों का बुखारा में कितना ज़ोर था और इस्माईल सामानी को उसके दबाने में कितनी मुश्किल पड़ी थी, इसे हम बतला चुके हैं। प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर बू-अली सीना बुखारा में पढ़ने आया। वहां उसने दर्शन और वैद्यक का विशेष तौर से अध्ययन किया। अभी वह १७ वर्ष का तरुण था, इसी समय उसने नूह II (मंसूर-पुत्र) की चिकित्सा करके रोग-मुक्त किया। इस सफलता से उसे सबसे ज्यादा फायदा यह हुआ, कि नूह के पुस्तकालय का दरवाजा उसके लिये खुल गया। पुस्तकालय को देखकर सीना के मन में क्या भाव पैदा हुये यह उसके निम्न वचन से मालूम होता है—"मैं एक इमारत में घुसा, जिसमें बहुत से कमरे थे। हरेक कमरे में पांती से पुस्तकें एक के ऊपर एक रखी हुई थीं। एक कमरे में अरबी किताबें, और काव्य ग्रंथ थे, दूसरे कमरे में कानून (फिका) की पुस्तकें थीं, इत्यादि। हरेक कमरे में एक-एक विज्ञान से संबंध रखनेवाली पुस्तकें थीं। मैंने पुराने ग्रंथकारों की पुस्तकों की एक सूची पढ़ी और अपनी अपेक्षित पुस्तक मांगी। मैंने वहां ऐसी पुस्तकें देखीं, जिनका नाम भी बहुत से लोगों को मालूम नहीं था। पुस्तकों का ऐसा संग्रह उससे पहिले और बाद में मैंने कभी नहीं देखा। मैंने उन्हें पढ़कर फायदा उठाया और प्रत्येक ग्रंथकार और उसके विज्ञान के सापेक्ष महत्व को समझा।" पीछे यह अफवाह फैलाई गई कि पुस्तकों को पढ़कर सीनाने आग लगादी, जिसमें कि वह ज्ञान दूसरे के पास न जाये। लेकिन यह विश्वास करनेकी बात नहीं है। सीना इतना हृदय-हीन नहीं हो सकता था, और न सामानी अमीर नूह इसकी इजाजत दे सकता था। शताब्दियोंसे मध्यएसिया की पुस्तकें जहां-तहां बिखरती तथा नष्ट होती रहीं। १९१७ की बोलशेविक क्रान्तिसे पहले कुछ छोटे-मोटे संग्रह जहां-तहां थे। ताशकन्दके पुस्तकालय में ५०० हस्तलिखित ग्रन्थ थे। आज वहां ५० हजार से ऊपर हस्तलिखित ग्रन्थ संगृहीत होगये हैं, जिनके सूचीपत्रोंको कई जिल्दों में छापा गया है और वहां के बहुमूल्य हस्तलेखोंको प्रकाशित करने का काम भी शुरू हो गया है।

सीनाका तरुणाईका संरक्षक नूह (II) २३ जुलाई ९९७ ई० को मर गया। सामानी राज्य क्षीण होते होते कुछ ही समय बाद बुखारा भी कराग्वानियोंके हाथमें चला गया। इन घुमन्तू तुर्कोंके शासनमें सीनाको क्या प्रोत्साहन मिल सकता था? सीनाका स्वभाव ऐसा था, कि वह दरबारी नहीं हो सकता था। उसने अपने उजड़े हुए दयारको छोड़ भिन्न-भिन्न दरबारोंकी खाक छाननी शुरू की। कहीं वह छोटा-मोटा अफसर बनाया जाता, कहीं अध्यापक और कहीं लेखक। अन्तमें जगह-जगह भटकते वह पश्चिमी ईरानमें हमदानके शासक शम्शुद्दौलाका वजीर बना। शम्शुद्दौलाके मरनेके बाद उसके पुत्रने सीनाको कुछ महीनोंके लिये जेलमें डाल दिया। जेलसे छूटनेके बाद अस्फहानके शासक अलाउद्दौलाके दरबारमें पहुंचा। अलाउद्दौलाने जब हमदानको जीत लिया, तो अबू-सीना फिर वहां लौट गया। यहीं ५७ वर्षकी उम्रमें १०३७ ई० में सीनाका देहान्त हुआ। हमदानमें आज भी उसकी समाधि मौजूद है। यह स्मरण रखनेकी बात है, कि हमदान इखबतनके नामसे प्रथम ईरानी राजवंश (मद्रवंश) की प्रथम राजधानी रहा। सीनाने यूनानी दर्शनपर भाष्य और विवरण नहीं लिखे। उसका कहना था—भाष्य और विवरण तो ढेरके ढेर मौजूद हैं। उनपर विचार कर स्वतंत्र निश्चय पर पहुंचनेकी अवश्यकता है। उसने अपने निश्चयोंको अपनी पुस्तकों- "शफा" (चिकित्सा), "इशारात" (संकेत) और "नजात" (मुक्ति) में लिखा। १७ वर्षसे ५७ वर्षकी उमर तकके ४० वर्षोंकी एक एक घड़ीका उसने पूरा उपयोग किया। दिनमें सरकारी काम करता या विद्यार्थियोंको

पढ़ाता, शामको मित्र-गोष्ठी या प्रेमाभिनयमें बिताता; किन्तु रातको निद्रा न आने देनेके लिये सामने मदिराका प्याला रख हाथमें कलम ले सारी रात लिखनेमें बिता देता। सीनाका पद्य-रचना पर इतना अधिकार था, कि उसने साइंस, वैद्यक और तर्ककी पुस्तकोंको भी पद्यमें लिखा है। फारसी और अरबी दोनों भाषाओंका वह लेखक था। जेलमें उसने कवितायें लिखीं। उसकी कविताओं और सूफी निबन्धोंमें प्रसाद-गुण बहुत पाया जाता।[१]

१०. मंसूर II नूह II-पुत्र (नवंबर ९९७-९९८ ई०)

इसका पूरा नाम अबुल-हारिस मंसूर था। शासनकी सारी शक्ति वजीर अबुल-मुज़फ्फर मुहम्मद इब्राहीम-पुत्र वरगशीके हाथमें थी। वरगशीके बाद फायकका बहुत प्रभाव था। अबू-अली और उसके अनुयायियोंको नूहने सुबुक्तगिनको दे डाला था, जिसने उन्हें मरवा डाला। वज़ीर अब्दुल्ला किसी तरह बन्दीखानेसे निकलकर अन्तर्वेद पहुंचा। उसके स्थानापन्न अबू-मुहम्मद हुसैन-पुत्र इस्फजाबी—जो कि वहांके शासक-वंशका था—ने विद्रोह कर कराखानी शासक इलिक नस्र खां को मददके लिये बुलाया। इलिकका पिता बोगरा खान हारून पहिले ही अन्तर्वेद-विजयके लिये आकर मई ९९२ ई० में बुखारामें दाखिल हुआ था। सामानी सेनापति फायकने मुकाबिला करनेकी जगह उसका स्वागत किया। अबकी फिर विद्रोहियोंके बुलानेपर इलिक नस्र समरकन्द आया। उसने दोनों प्रधान विद्रोहियोंको गिरफ्तार करनेका हुक्म दिया। फायकको अपने शिविरमें ले जाकर उसने बड़ा स्वागत किया और तीन हजार सवारोंके साथ उसे बुखारा भेज दिया। मंसूर राजधानी छोड़ आमूल (चारजूय) भाग गया। लेकिन फायकने अपनेको सामानी सेवक घोषित करते हुए बुखारापर अधिकार कर मंसूरको लौटनेके लिये राजी किया। अब एक दूसरे हाजिब (राज-अफसर) बेग तुजुनको खुरासानका सेनापति बनाकर भेजा गया। सुबुक तगिन की मृत्यु (९९७ ई०) पर महमूदको खुरासान खाली कर देना पड़ा था, क्योंकि उसका छोटा भाई इस्माईल बड़े भाईके लिये स्थान खाली नहीं करना चाहता था।

मन्सूर सामानीने फायक और बेग तुजुनके झगड़ेको मिटानेके लिये समझौता कराना चाहा, लेकिन फायकने चुपचाप कोहिस्तान (वर्तमान ताजकिस्तान) के शासक अबुल-कासिम सिमजूरी को खुरासानके सेनापति बेग तुजुनपर आक्रमण करनेके लिये कहा। मार्च ९९८ ई० में विजयी हो बेग तुजुनने सिमजूरीसे समझौता कर लिया और जुलाई ९९८ ई० में अपने विरोधियोंको हराते हुए बुखारा पहुंच गया। इसके बाद फायक और वजीर बरगशीमें झगड़ा हो गया। बरगशीने अमीर मन्सूरकी शरण ली। मन्सूरने सुलह करानी चाही, लेकिन फायक अपने प्रतिद्वन्द्वी बरगशीको समर्पण करनेके लिये कह रहा था। इस कहा-सुनीमें उसने अमीर मंसूरको भी अपमानित किया। झगड़ा और न बढ़े, इसके लिये बुखाराके शेख बीचमें पड़े। बरगशीको पदच्युतकर बूज्गानमें निर्वासित कर दिया गया। सामानी दरबारके लिये सबसे कठिन समस्या थी, बेग तुजुन और महमूद गजनवीका झगड़ा। महमूद अपने भाईको हराकर गज़नाका स्वामी बन चुका था। खुरासानकी क्षत्रपी बेग तुजुनको दी जा चुकी थी, जिसका दावा महमूद छोड़नेके लिये तैयार नहीं था। बलख-तेरमिज-चिरागकी क्षत्रपी देकर महमूदको राज़ी करनेके लिये अमीर

---

[१]सीनाके दार्शनिक विचारोंके लिये देखो "दर्शनदिग्दर्शन" पृष्ठ १३४-१४७

मन्सूरने बहुत कोशिश की, लेकिन महमूद सारे खुरासानको मांगता था। उसने बेग तुजूनपर आक्रमणकर उसे नेशापोर छोड़नेके लिये मजबूर किया। फ़ायक और बेग तुजूनको संदेह हुआ, कि अमीर मन्सूर महमूद गजनवीसे मिल जाना चाहता है, इसलिये उन्होंने १ फरवरी ९९९ की शामको मन्सूरको समरकन्द की गद्दीसे उतार कर, एक सप्ताह बाद उसे अंधा करके बुखारा भेज दिया।

११. अब्दुलमलिक नूह II-पुत्र (९९९ ई०)

मन्सूरको हटाकर अबुल्फवारिस अब्दुल-मलिकको अमीर घोषित किया गया। दोनों विरोधियोंके सामने महमूद गजनवीकी नहीं चली। उसने समझौता करके नेशापोरको बेग तुजूनको दे दिया और बलख तथा हिरातको अपने पास रखा। इस प्रकार आखिर उसने वही बात की, जिसे मन्सूर कराना चाहता था। अब महमूदके वही दो प्रतिद्वन्द्वी नहीं रह गये थे, बल्कि अबुल कासिम सिमज़ोरी भी उनके साथ मिल गया। महमूदको खुश होनेका कोई कारण नहीं था, तो भी उसने मई ९९९ ई० में दो हजार दीनार खैरात किये। बेग तुजूनके साथ जो समझौता हुआ था, वह भी चंदरोजा रहा। महमूदकी सेनाके पिछले भागको धोखेसे मार डाला गया, जिसपर लड़ाई शुरू हो गई। महमूदने सारी शक्ति लगाकर अपने विरोधियोंको बहुत बुरी तरहसे हराया और वह सारे खुरासानका मालिक हो गया। खलीफा कादिर (९९१-१०३१ ई०) ने महमूदके पास एक पत्र लिखा, जिसनें सामानियोंकी हार का कारण उनका खलीफाको माननेसे इन्कार करना बतलाया। महमूदने खुरासान-सेनापतिका पद स्वयं न ले अपने भाई नस्रको दे दिया। अमीर अब्दुल-मलिक और फायक बुखारा भगे। बेग तुजूनने दुबारा कोशिश की, लेकिन असफल हो उसे भी बुखारा जाना पड़ा। उसी गरमीमें फायक मर गया। कराखानी खान इलिक नस्रने सामानी वंशका खातमा कर दिया। अब्दुलमलिक तथा दूसरे कितने ही सामानी राजकुमारोंको पकड़कर कराखानी उज़गन्द ले गये।

१२. मुन्तसिर सामानी (-१००९ ई०)

सामानियोंके वंशोच्छेदके समय उनके राजकुमारों में संघर्ष चल रहा था। बुखाराको इलिक नस्रने बिना प्रतिरोधके दखल कर लिया। सामानी प्रतिरोधियोंमें एक था मंसूर II (९९७-९९८) का भाई इस्माईल, जो पकड़कर उज़गन्दमें बन्द किया गया था। उसने स्त्री भेस में भागनेमें सफलता पाई। ९९९ ई० में अब्दुलमलिक **II** के उठाये विद्रोहको कराखानियोंने दबा दिया, किन्तु इस्माईल जल्दी हाथमें नहीं आया।

पहिली झोंकमें सोग्दी जनताने अपने सामानी शासकोंका साथ छोड़ दिया था, लेकिन पीछे जान पड़ता है, कितनोंने भूल स्वीकार की, और इस्माईल अब मुन्तसिर (विजयी) उपाधि धारण कर बुखारा पहुंच वहांसे ख्वारेज्म गया। पिताके सिपाहियों द्वारा मारे जानेपर बने ख्वारेज्मशाह मामू-पुत्र अब्दुल-हसन अलीने मुन्तसिरको भीतर-भीतर मदद दी। मुन्तसिरने एक सेना संगठित करली जिसका सेनापति एक तुर्क हाजिब अरसलन यालू था। यालूने कराखानी गवर्नर जाफर तगिनको बुखारासे मार भगाया। बची-खुची सेना जाकर समरकन्दके गवर्नर तिगिन खानसे मिली, लेकिन वहां भी वह डट न सकी और ज़रफशां के

पुलके पास बुरी तरहसे हारकर उसे भागना पड़ा। यह खबर इलिक नस्रके पास पहुंची, तो वह एक बड़ी सेना लेकर आया। मुन्तसिर तथा उसके सेनापति अरसलन यालूको आमूल होते हुए ईरानकी ओर भागना पड़ा। खुरासान पर महमूद गजनवीके भाई नस्रका शासन था, जिसके साथ लड़ाई हुई। मुन्तसिरको सफलता नहीं मिली। उसने इसके लिये अपने सेनापति अरसलन यालूको दोषी ठहराया और उसे मरवा डाला। नस्र गजनवीने मुन्तसिरकी आखिरी सेनाको भी खतम कर दिया। खुरासानसे निराश होकर मुन्तसिर १०३० ई० में अन्तर्वेदकी ओर लौटा और गूजों (तुर्कमानों) से मदद ली। इतिहासकार गर्देजीके अनुसार गूज नेता पयगू (यवगू) ने इस्लाम स्वीकार किया। हमें मालूम है, "यवगू" नाम नहीं, बल्कि करलुकों और दूसरे तुर्क घुमन्तुओंमें एक पुरानी राजोपाधि है, जो शकोंमें भी पाई जाती थी। संभवतः यवगू मुसलमान नहीं हुआ, बल्कि उसके सरदार सल्जुक-पुत्रने इस्लाम स्वीकार किया, जिसने कि पहिले भी काफिर कराखानियोंके विरुद्ध सामानियोंकी सहायता की थी। जहां भी लूटकी संभावना हो, वहां गूज या कोई भी लड़ाकू घुमन्तू कैसे पीछे रह सकता है? गूज बड़ी खुशीसे मुन्तसिरके झंडेके नीचे इकट्ठे हो गये। सुवास् तगिनको उन्होंने जरफशाँके तटपर हराया और खुद इलिक खानको १००३ ई० की गरमियोंमें समरकन्दके पास बुरी तौरसे हारना पड़ा। इलिक खानके १८ सेनापति बन्दी बनाये गये, जिन्हें गूजोंने मुन्तसिरके हाथमें देनेसे इन्कार कर दिया। वह जानते थे, इनके लिये हमें भारी रकम मिलेगी। उधर मुन्तसिरको डर हुआ, कि गूज़ शायद दुश्मनसे बात-चीत चला रहे हैं, इसलिए उसने उनका साथ छोड़ दिया। १००३ ई० की शरदमें वक्षु पर बरफ जमी हुई थी, उसी समय दरगानमें ३०० सौ सवारों और ४०० सौ पैदल सैनिकोंके साथ मुन्तसिर वक्षु पार हो आमूल पहुंचा। १००४ ई० में उसने नसा और अवीवर्दको लेनेका असफल प्रयत्न किया। वहांके निवासी नहीं चाहते थे, इसलिए ख्वारेज्मशाह अलीने उसे शरण नहीं दी। मुन्तसिर बाकी सेनाके साथ तीसरी बार अन्तर्वेदकी ओर लौटा। बुखाराके गवर्नरने उसे हरा दिया। तो भी नूरके किलेमें रह कर उसने दबूसियामें अवस्थित दुश्मनकी सेनापर आक्रमण किया।

भाग्यने उसका साथ दिया। सोग्दियोंका राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ सा हो गया। सभी जगह सोग्दी अपने राजवंशकी पुनः स्थापनाके लिये सेनामें भरती हो गाज़ी (धर्मयोद्धा) बनने लगे। समरकन्दके गाज़ियोंका नेता अलमदार-पुत्र तीन हजार गाज़ियोंके साथ मुन्त-सिरसे आ मिला। नगरके सेठोंने भी अपने तीन सौ दासोंको मुन्तसिरके लिये हथियारबन्द करके दे दिया। गूज़ भी अछता-पछताकर उससे आ मिले। इस नई सेनाके साथ मुन्तसिरने बूरनामज़के पास मई-जून (शाबान) १००४ ई० में महाखानकी सेनाको हराया, लेकिन यह सफलता चिरस्थायी नहीं रही। कराखानियोंकी शक्तिका स्रोत सुदूर उत्तरमें था, जिसे सुखाया नहीं जा सकता था। खान (संभवतः इलिक खान) एक बड़ी सेनाके साथ लौटा और जीज़क एवं खवासके बीच भूखी-मरुभूमिमें घोर लड़ाई हुई। बूरनामज़में भारी लूटका मौका मिला था, उसके कारण संतुष्ट हो गूज़ अपने अपने डेरोंमें लौट गये और युद्धमें भाग लेने नहीं आये। स्वयं मुन्तसिरका एक सेनापति हसन ताकपुत्र अपने पांच हजार आदमियोंके साथ खानसे जा मिला। बेचारे मुन्तसिरको फिर खुरासानकी ओर भागना पड़ा। उसने अभी भी हिम्मत नहीं हारी, और सामानी सुरखत-पुत्रके बुलानेपर वह अन्तर्वेद आया। सुरखत-पुत्र उन सामानी

राजकुमारोंमेंसे था, जो इलिक खानसे मिल गये थे। जब मुन्तसिर बुखारा की ओर बढ़ रहा था, उसी समय सैनिकोंने उसका साथ छोड़ दिया। बेकार जान देनेकी जगह उन्होंने इलिकके हाजिब (अफसर) सुलेमान और शफीकी अधीनता स्वीकार करना बेहतर समझा। बाकी सेनाको शत्रुओंने घेर लिया और वक्षु (आमू दरिया) के सभी घाटोंको भी रोक दिया। तो भी मुन्तसिर अपने आठ अनुयायियोंके साथ बच निकलनेमें सफल हुआ। उसके भाई और दूसरे अनुयायी पकड़कर उजगन्द पहुंचाये गये। १००५ ई० के आरम्भमें मेर्वके पास बसनेवाले एक अरब कबीलेके सरदारने धोखा देकर मुन्तसिरको मार डाला। इस प्रकार सामानी वंशका उच्छेद हुआ।

(१) सामानी शासनव्यवस्था—

अरबों के समय सासानियों की व्यवस्था के अनुसार मध्यएसिया का शासन होता रहा। खलीफा सर्वतंत्र स्वतंत्र शासक था। वह केवल अल्ला के सामने ही जवाबदेह था। यही सिद्धांत सामानी या दूसरे स्वतंत्र शासकों (अमीरों) का भी था। बगदाद के अधीन मानते सामानियों ने कभी सुल्तान (स्वतंत्र राजा) होने का दावा नहीं किया। खलीफा की आंखों में वह केवल अमीर (राज्यपाल), मवाली-अमीरुल्-मोमनिन (खलीफा के अनुचर) या केवल आमिल (कर उगाहने वाले) थे। जो अहद (नियुक्ति-पत्र) उन्हें मिलता, उसमें और किसी शक्ति के दिये जाने की बात नहीं होती थी। इतिहासकार कभी कभी सामानियों को अमीरुलमोमनीन (मुसलमानों का शासक) कहते थे। ईरानी आदर्श के अनुसार सर्वतंत्र-स्वतंत्र शासक को अच्छा कत-खुदा (भूपति) होना चाहिये, इसलिये सामानी अमीर नहरों के बनाने, कराज (भूगर्भी जलप्रणालियों) को तैयार करने, नदियों पर पुल बांधने, कृषि-प्रोत्साहन, किला-निर्माण, नवीन-नगर-स्थापन, अच्छी इमारतों द्वारा नगर को अलंकृत करने तथा सड़कों पर रवात (पान्थशालायें) बनाने की ओर बहुत ध्यान देते थे।

उनके शासन-यंत्र के दो विभाग थे[1]—(१) दरगाह (अन्तःपुर), (२) दीवान।

१. दरगाह—इस्माईलके समय से ही खरीदे दासमें—मुख्यतः तुर्क होते थे—जो दरगाह के आदमी तथा अमीर के वैयक्तिक शरीर-रक्षक होते थे। प्रधान सैनिक कर्तव्य केवल इन्हीं शरीर-रक्षकों के सरदार को ही नहीं बल्कि स्थानीय प्रसिद्ध कुलों की संतानों, देहकानों तथा तुर्क-सेना को भी करना पड़ता था। सामानियों के शासनकाल के आरंभ में अन्तर्वेद के अधिकांश आदमी हथियारबंद थे और वह युद्ध या विद्रोहमें सैनिक की तरह भाग लेते थे।

सामानियों ने विशेष उद्देश्य से खरीदे होनहार तरुण तुर्क दासों की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध किया था, जो कि सल्जूकी वजीर निजामुल्मुल्क के कथनानुसार* निम्न प्रकार थी।[1]

---

[1] सियासतनामा में है—सामानियों के जमानेमें भी यही कायदा था। उनकी सेवा, विद्या और संस्कृति के अनुसार क्रमशः गुलामों का दर्जा बनाया जाता। जैसे ही गुलाम को खरीदते, एक साल उसे प्यादा रहकर सेवा करने की आज्ञा देते। इन गुलामों को आज्ञा नहीं थी, कि वह रिकाब में पैर रखें या ज़रदोजी की पोशाक पहने। यदि इस एक साल में गुप्त या प्रकट घोड़े पर चढ़ने का पता लगता, तो दण्ड दिया जाता। जब एक साल सेवा हो जाती, तो बसाकबाशी कहलाता, और हाजिब उसे ताज़ी घोड़ा दिलवाता, जिसकी लगाम और रस्सी

(१) प्रथम वर्ष पैदल सैनिक, साईस का काम सीखना पड़ता और छिपकर भी घोड़े पर चढ़ने का सख्त निषेध था। इस समय उन्हें पहनने के लिये ज़न्दान के बने कपड़े मिलते थे।

(२) द्वितीय वर्ष हाजिब (तंबुओं के सेनापति) की सहमति से उसे साधारण चार-जामे के साथ एक तुर्की घोड़ा सवारी के लिये मिलता।

(३) तृतीय वर्ष की शिक्षा में उत्तीर्ण को एक खास तरह का कमरबन्द (कराचूर) मिलता।

इसी तरह आगे उसकी प्रगति होती। पांचवें वर्ष में गुलाम अच्छा चारजामा पाते, कपड़े भी उनके ज्यादा कीमती होते। छठे वर्ष में कवायद परेड की पोशाक मिलती। सातवें वर्ष में उसको वसाकबाशी (तंबू-कमाडंर) का दर्जा मिलता, जिसमें उसको तीन दूसरे आदमी भी मिलते। उसकी पोशाक होती—काले नमदे की टोपी, जिसके ऊपर चांदी के तारों का काम होता, और पोशाक का कपड़ा गंजा (एलिजावेथपोल) का बना होता। आगे बढ़ते हुए गुलाम खैल-बाशी (विभागीय कमाण्डर) और हाजिब (कमांडर) बनते।

(१) सारी सेना का मुखिया हाजिबे-बुजुर्ग या हाजिबुल-हुज्जाब कहा जाता, जिसका स्थान प्रथम श्रेणी के दरबारियों में होता। दरगाह का दूसरा ऊंचा पद था, साहबे-हरस या अमीरहरस। इस पद को प्रथम अमीर मुवाविया (प्रथम उमैया खलीफा) ने प्रचलिव किया था।

इनके अतिरिक्त दरगाह के दूसरे कर्मचारी थे—द्वारपाल, भोजनशालाधिकारी, प्याला-बाहक।

सामानियों के प्रादेशिक शासक राज्यवंश के आदमी होते थे, जैसे इस्फिजाब का शासक इस्माईल का पुत्र मंसूर था। कभी कभी अपनी बड़ी सेवाओं के लिये तुर्की गुलाम भी बड़े पदों पर पहुंच जाते, जैसे कि सिमजूरी, अल्पतगिन, ताश और फायक। लेकिन उन्हें यह पद पैंतीस वर्ष की उमर से पहिले नहीं मिल सकता था। खुरासान के राज्यपाल को सिपहसालार (सेनापति) कहा जाता था। वजीर को नियुक्त करते समय सैनिक कमाण्डरों की राय ली जाती थी। दरगाह के घरू कार्यों का प्रबन्ध "वकील" करता था, यह भी एक महत्वपूर्ण पद था।

सादी होती। जब एक साल ताज़ी घोड़के साथ सेवा कर लेता, तो अगले साल उसे कराज़ूरी का पद देते। पांचवे साल वह अच्छा ज़ीन और बढ़िया लगाम, दारायी या दबूशी कपड़े का चोगा पहनते। छ साल पर उनमान का चौगा मिलता। सातवें साल सोलह खूंटों वाला तंबू देते, उसकी सेवा मातहत गुलाम करते, और उसे बसाकबाशी का दर्जा देते। उसे काले नमदे की टोपी, जिस पर रूपे का काम किया होता, गंजा का चोगा उसे पहनाते। फिर हर साल उसका दर्जा और दबदबा बढ़ाते खेलवाशी होने तक पहुंचाते। फिर हाजिब होकर अगर विद्या और योग्यता मालूम होती, तो बड़ा बड़ा काम उसके हाथ में देते, और बादशाह तथा दरबारी लोग उसके दोस्त होते। जब तक कि वह ३५ साल का न हो जाता, न उसे अमीर (शासक) का पद देते और न बलायत (प्रदेश) पर नामजद करते। लेकिन सामानियों का पाला हुआ बन्दा (गुलाम) अल्प-तगिन ऐसा था, कि उसने ३५ वर्ष की उमर में खुरासान के सिपहसालार (सेनापति) का पद पाया।

२. **दीवान**--बुखारा में रेगिस्तान नामक प्रसिद्ध मैदान के पास दीवानखाने (सचिवालय) थे--(१) दीवान वज़ीर (२) दीवान मुस्तौफ़ी (खजानची), (३) दीवान अमीदुलमुल्क (राज्यावलम्ब), (४) दीवान साहिब-शूरत (प्रतिहारपति), (५) दीवान साहिब बरीद (डाक-अफसर), (६) दीवान मुशरिफ, (७) दीवान-खास (अमीर के निजी जमीन्दारी का प्रबन्धक) (८) दीवान काज़ी (न्यायाधीश)।

(१) वजीर, जिसे ख्वाजा-बुजुर्ग भी कहते थे, सारी नौकरशाही के ऊपर था। उसके पद का चिह्न था दावात। जैहानी, बलअमी, उतबी सामानी वंश के बड़े बड़े वजीर थे। मुस्तौफी के नीचे हासिब और हुस्साब जैसे और कर्मचारी होते थे। मुसरिफ प्रत्येक नगर की खबर लेकर अमीर के पास पहुंचाता था। मुस्तुतसिब सड़क और बाजार की व्यवस्था करते थे। यह धोखे-बाजी, तथा कर वसूल करने की देखभाल एवं इस्लामी कानून के उल्लंघन करने की रोकथाम का काम करते थे। अधिकतर इनमें दरगाह के हिजड़े या तुर्क गुलाम होते थे, जो प्राय: निष्पक्ष रहते थे और छोटे-बड़े लोग उनसे भय खाते थे। सामानी शासन में औकाफ़ (धर्मोत्तर-संपत्ति) का भी एक दीवान (दफ्तर) था।

(२) काज़िउलकुज्ज़ात--सारे राष्ट्र का प्रधान न्यायाधीश होता था। प्रदेशों में भी इसी तरह के पदाधिकारी होते थे, जिनमें प्रादेशिक वज़ीर को "हाकिम" या "कतखुदा" कहते थे।

(३) धर्माचार्य--इस्लाम के प्रचार के साथ साथ मुल्लाओं का ज़ोर बहुत बढ़ गया था। अबूअब्दुल्ला इस्माईल स्थानीय मुल्लों का सरदार था। अमीर के सामने जाने पर मुल्लों को सलाम करते हुए ज़मीन चूमना नहीं पड़ता था। प्रधान-मुल्ला पुरोहित पहिले उस्ताद, और मुफ्ती और फिर शेखुल्इस्लाम कहा जाता। अध्यापक अन्तर्वेद में दानिशमंद कहे जाते थे। वली गवर्नर को और खातिब खुतबावाले अफसर को कहते थे।

(४) स्थानीय राजवंश--सामानियों बहुत से छोटे छोटे सामन्त और शासक थे, जिनका अपने कुल के कारण विशेष महत्व था। इन सामन्त-राजाओं में फरीगून (गूज़गान), गज़नवी (गज़ना) गरजिस्तान (ऊपरी मुरगाब-उपत्यका), ख्वारेज्मयां, इस्फिजाब, शगानियान, (पूर्वी पहाड़ों में), खुत्तल और रश्त के मुख्य थे। इलाक में तूनकत का मुख्य दहकान शक्तिशाली था। इनमें सबसे अधिक शक्तिशाली शासक थे ख्वारेज़्म, इस्फ़िजाब और शगानियान के।

(क) ख्वारेज्म--ख्वारेज्म के पुराने शासक अपने वंश के उद्‌गम को बहुत काल तक पीछ ले जाते थे। अरबों के विजय के बाद इनकी शक्ति क्षीण हो गई, और इनके दो भाग हो गये, जिनमें दक्षिणी राजधानी कात में थी, जिसके ही राजको ख्वारेज्मशाह कहते थे। उत्तरी वंश की राजधानी गूरगंज थी। गूरगंज के शासक को अमीर कहते थे। ९९५ ई० में मीर गुरगंज ने दक्षिण को भी जीतकर ख्वारेज्म शाह की पदवी धारण की।

(ख) इस्फ़िजाब--यह भी एक पुराना राजवंश था। वह चार सिक्के और एक झाड़ू राज-करके रूप में देता था। सिर-दरिया प्रदेश के पूर्वी तथा सप्तनद के पश्चिमी भाग पर इसका प्रभाव था। यह इलाके सामानियों के आधीन थे। उर्दू शहर निवासी तुर्कमान-राजा इस्फिजाब के शासक को बराबर कर भेजा करता था।

(ग) शगानियान—यहां के मुहतजिद (शासक) की पदवी अमीर थी। सासानियों के समय की शगानखुदातवाली प्राग्-इस्लामिक पदवी अब नहीं चलती थी। शगानियान के अमीर सामानी वंश के पतन के बाद भी रहे।

(घ) खुत्तल—यहां के शासक को खुत्तलानशाह या शेर-खुत्तलान कहते थे। बारहवीं सदी में भी खुत्तल के अमीर अपने को बहराम गोर (४२०-३८) का वंशधर मानते थे।

सामानी नगरों के मुखिया को "रईस" कहते थे[१]।

(२) शिल्प और व्यवसाय—

उस समय के भिन्न-भिन्न नगर अपने विशेष-विशेष पण्यों के लिये मशहूर थे :—

(१) व्यवसायिक नगर—

(क) तेरमिज़—यहां का साबुन और नावें मशहूर थीं।

(ख) बुखारा—कोमल वस्त्र, जायनमाज़ (कालीन), तांबे का दीपक, घोड़े का कमर-बंद, उश्मूनीं, चरबी, पोश्तीन, सुगंधित तेल, स्वादु मांस, सरदा और तरबूजा।

(ग) करमीनिया—रूमाल

(घ) दब्रूसिया, बदार—एक रंग में रंगा बदारी कपड़ा।

(ङ) **रविनजान**—शाल नमदा, जायनमाज, जलपात्र, चमड़ा, टाट और गंधक।

(च) ख्वारेज्म—नाना प्रकार के समूरी चर्म, रेगिस्तानी लोमड़ी, गीदड़, चित्तीदार खरगोश, बकरी आदि के छाले, मोम, बाण, भोजपत्र, ऊंची समूरी टोपी, मत्स्यदन्त, अंबर, सिझाया घोड़े का चमड़ा, बाज़, तलवार, कवच, स्लाब जातीय दास, भेड़, ढ़ोर। यह सभी चीजें ख्वारेज्म की ही नहीं थीं, बल्कि इनमें से बहुत सी बुलगार तथा सिबेरिया आदि से आती थीं। अंगूर, किसमिस, बादाम, तिल आदि यहां के मशहूर थे। भेंट के लिये शाटन धारीदार कपड़े, कालीन, कंबल, तथा इनके अतिरिक्त ताले, पनीर, खमीर, मछली भी यहां होती थी। तेरमिज़ की बनी हुई नावें यहां बिकने के लिये आती थीं।

(छ) समरकन्द—शीनगून (रूपहला कपड़ा), ताबें का बड़ा वर्तन, कलापूर्ण प्याले, तंबू, रिकाब-लगाम, तुर्कों के लिये बने शाटन, मूर्मजाल (लाल कपड़ा), शिनीज़ी (एक वस्त्र), कई प्रकार के रेशमी कपड़े तथा सर्वश्रेष्ठ कागज। यह मालूम है, कि अरब सेनापति ज़ियाद सालेपुत्र ने ७५१ ई० में समरकन्द में कुछ चीनी शिल्पकारों को पकड़ा था, जिनसे टाट का कागज बनाना अरबों ने सीखा। चीनियों ने कागज का आविष्कार ईसा की दूसरी शताब्दी में ही कर लिया था। दसवीं सदी के अन्त में समरकन्द के कागज ने मुस्लिम देशों से चर्मपत्र को हटा दिया।

(ज) ज़ीजक—कोमल ऊन और ऊनी कपड़ा।

(झ) बनाकत—तुर्किस्तानी कपड़े।

---

[१]Turkistan down...

(ञ) शाश[१]—घोड़े के चमड़े का ऊंचा चारजामा, बाड़, तंबू, चमड़ा, चौगा, जायनमाज़, चमड़े की टोपी, अलसी, सुन्दर धनुष, दरज़ी की सुई कैंची और बढ़िया चीनी बर्तन।

(ट) इस्फिजाब और फरगाना—सफेद कपड़े, हथियार, तलवार, तांबा, लोहा और तुर्क दासों के लिये मशहूर था।

(ठ) तराज़ (तलश)—बकरी का छाला।

(ड) शालज़ी—चांदी।

(ढ) तुर्किस्तान—घोड़े और खच्चर।

(ण) खुत्तल—घोड़े और खच्चर।

(२) अजीविका और कर—वक्षु और सिर-दरिया के बीच की भूमि (अन्तर्वेद) के निवासियों को अपनी जरूरत और विलासिता की भी बहुत सी चीजों के लिये किसी दूसरे देश का मुंह ताकने की आवश्यकता नहीं थी। चीन का प्रभाव सीधे और तुर्क जातियों द्वारा भी यहां पड़ा। उसके कारण यहां शिल्प की बड़ी उन्नति हुई। पहिले-पहल इस प्रदेश को जीतने पर अरब विजेताओं ने यहां बहुत प्रकार के चीनी माल पाये। स्थानीय शिल्प-उद्योग के बढ़ने पर चीनी माल की खपत कम हो गई। जरफशां (सोग्द) उपत्यका के रेशमी और सूती कपड़े सारे मुस्लिम जगत में प्रसिद्ध थे। फरगाना की धातु की चीजें, विशेषकर हथियारों की मांग बगदाद में भी बहुत थी। यहां पत्थर का कोयला भी इस्तेमाल किया जाता था। ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी के चीनी यात्री चाङ-क्यान् ने लिखा था "यहां काले पत्थरों के पहाड़ हैं, जो कि लकड़ी की तरह जलते हैं।" पत्थर के कोयले ने यहां के धातु-उद्योग के विकास में बड़ी सहायता की। अन्तर्वेद के शिल्प और कलापूर्ण वस्तुओं के उद्योग के विकास में चीन ने ही नहीं मिस्र ने भी मदद की थी—दबीकी कपड़ा ख्वारेज्म में बनता था, जो कि मूलतः मिस्र के दबीक स्थान की चीज़ थी।

ख्वारेज्म के तरबूज़ दुनिया में बहुत मशहूर थे। उन्हें बरफदान में पैक करके खलीफा मामून (८१३-३३), खलीफा वासिक (८४२-४७) के पास बगदाद भेजा जाता था। सही-साबित पहुंचे एक खरबूजे का दाम सात सौ दिरहम होता था।

घुमन्तू जातियां मांस के लिये ढोरों और भेड़ों को बेचने लाती थीं। सवारी और ढुलाई के जानवर, चमड़े, समूर, तथा दास-दासियों को भी देकर उत्तर के घुमन्तू कपड़ा और अनाज

---

[१] शाश के बारे में अल्बेरुनीने (अल्हिन्द पृ० ४०१में) लिखा है—"अपरिचित और दूसरी भाषा बोलने वाली जातिके विजयी होने पर नामों में परिवर्तन बहुत जल्दी हो जाता है। विदेशी जातियों के मुंह से उनका उच्चारण अक्सर कठिन होता है, इसलिये वह लोग उनको अपनी भाषा में बदल लेते हैं। जैसे ग्रीक (यूनानी) लोगों की आदत है, कि कभी-कभी असली नामों के अर्थ को अपनी भाषा में अनुवाद कर लेते हैं, इसलिये नाम बदल जाते हैं। शाश अपने तुर्की नाम ताशकन्द से निकला है, अर्थात् पत्थर का गांव।... अरब वाले शब्दों को अरबी कर देते हैं, जिससे शब्दों में परिवर्तन आ जाता है। उदाहरणार्थ पोसंग उनकी किताबों में फोसंज और सकलकन्द उनके कागजों में फारफजा बन गया है।

ले जाते थे। उत्तर के घुमन्तुओं का सबसे अधिक व्यापार ख्वारेज्मी सरतों (ताजिकों) के हाथ में था। ख्वारेज्म से उनका कारवां जहां उत्तर के घुमन्तुओं में जाता, वहां दक्षिण में खुरासान और पश्चिम में बोल्गा और कासपियन पार खजारों के मुल्कमें भी जाता था। वहां से एक रास्ता अराल-समुद्र के पश्चिमी तट से रेगिस्तान पार हो पेचेनगा के देश में जाता। ख्वारेज्मी सौदागरों की संपत्ति खुरासान के सभी शहरों में थी। यह व्यापारी कितने विद्यानुरागी थे, यह इसी से मालूम होगा, कि अलबैरूनी इन्हीं में पैदा हुआ था।

(क) मजूरी—एक ताम्रकार के नौकर लैस-पुत्र याग को पन्द्रह दिरहम मासिक वेतन मिलता था।

(ख) कर—सामानियों की आमदनी प्रायः साढ़े चार करोड़ दिरहम थी। ख्वारेज्म का खर्च सबसे अधिक सेना और उसके अफसरों पर होता था, जो कि प्रतिवर्ष दो करोड़ (पचास लाख तिमाही) था। सामानियों ने खर्च बढ़ाते हुए अन्त में मृत्यु-कर भी लगा दिया था। भारत की आजकल की सरकार भी खर्च को कई गुना बढ़ाकर उसी पथ पर चल रही है।

(ग) भूमिपति—बहुत से गांव इस काल में सामन्तों की जमीदारी थे। सिमजूरियों की जमीदारी में सारा कोहिस्तान था। तुर्क गुलाम अल्पतगिन के खुरासान और अन्तर्वेद में पांच सौ गांव थे। प्रत्येक शहर में उसका एक महल, एक बाग, एक कारवांसराय, और एक हम्माम (स्नानागार) होता था।

(छ) आयातकर—सीमान्तों और नदियों पर भी कर लिया जाता था। आमू-दरिया पर उतरने वाले जानवरों में प्रति ऊंट पर दो दिरहम और सवारी के लिये एक दिरहम कर लेते थे। दिरहम के चांदी के सिक्के थे। तुर्की गुलाम के क्रय के लिये प्रमाणपत्र सत्तर से सौ दिरहम तक के होते थे। तुर्की दासियों के खरीदने के लिये विशेष लाइसेंस की जरूरत नहीं पड़ती थी।

स्रोत ग्रंथ :

1. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W.Bartold)
2. Heart of Asia (E. D. Ross)
३. त्रुदी अत्देला नुमिज्मातिकी १ (लेनिनग्राद १९४५)
४. दर्शनदिग्दर्शन (राहुल सांकृत्यायन, प्रयाग १९४७)
५. सियासतनामा (निजामुल्मुल्क)
6. History of Bokhara (A. Vambery)
७. इस्कुस्त्वो स्रेद्निइ आज़िइ
8. Historie des Samanides (मीरखुन्द, अनु० C. Defremery)

अध्याय २

कराखानी (६६३-१३१ ई०)

§१. उद्गम[1]

उत्तरापथ के वर्णन में हम कराखानियों के बारे में लिख चुके हैं। कराखानी मूलतः आगूज़ या उइगुर तुर्कों की शाखा थे। उनका प्रथम खाकान शातुक बुगरा खान अन्तर्वेद में नहीं आया, किन्तु प्रथम मशहूर कराखानी खान बुगरा खान हारून मई ९९९में विजेता के तौर पर बुखारा में दाखिल हुआ, यह हम कह आये हैं। इन घुमन्तुओं के कितने ही राजवंशी शासक भिन्न-भिन्न प्रदेशों और नगरों पर शासन करते हुए बड़ी बड़ी उपाधियों के साथ अपने सिक्के चलाते थे। इनके राज टूटते और स्थापित होते रहते थे, जिसके कारण निश्चित तौर से यह कहना मुश्किल है, कि इनमें से कौन अन्तर्वेद में शासन करता रहा और किसका राज्य सप्तनद और तरिम-उपत्यका तक फैला हुआ था। तो भी जिन शासकों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है, वह प्रायः सभी दक्षिणापथ के शासक थे।

§२. खान—

बुगराखान	(मृ० ९३३ ई०)
१. इलिक नस्र	....
२. बुरीतगिन	१०४१-
३. इब्राहीम	१०५९-
४. शम्शुल्-मुल्क	१०६८-१०८०
५. खिज्र	१०८०-
६. अहमद	१०९५-
७. मसऊद	१०९५-
८. कादिर	१०९५-११०१
९. महमूद तगिन	११०२-११२८
१०. तमगाच बोगरा	११३०-
११. किलिच तमगाच	....
१२. रुकनुद्दीन महमूद	....

---

[1] Heart of Asia. Turkistan. (W. Bartold)

बोगराखान हारून

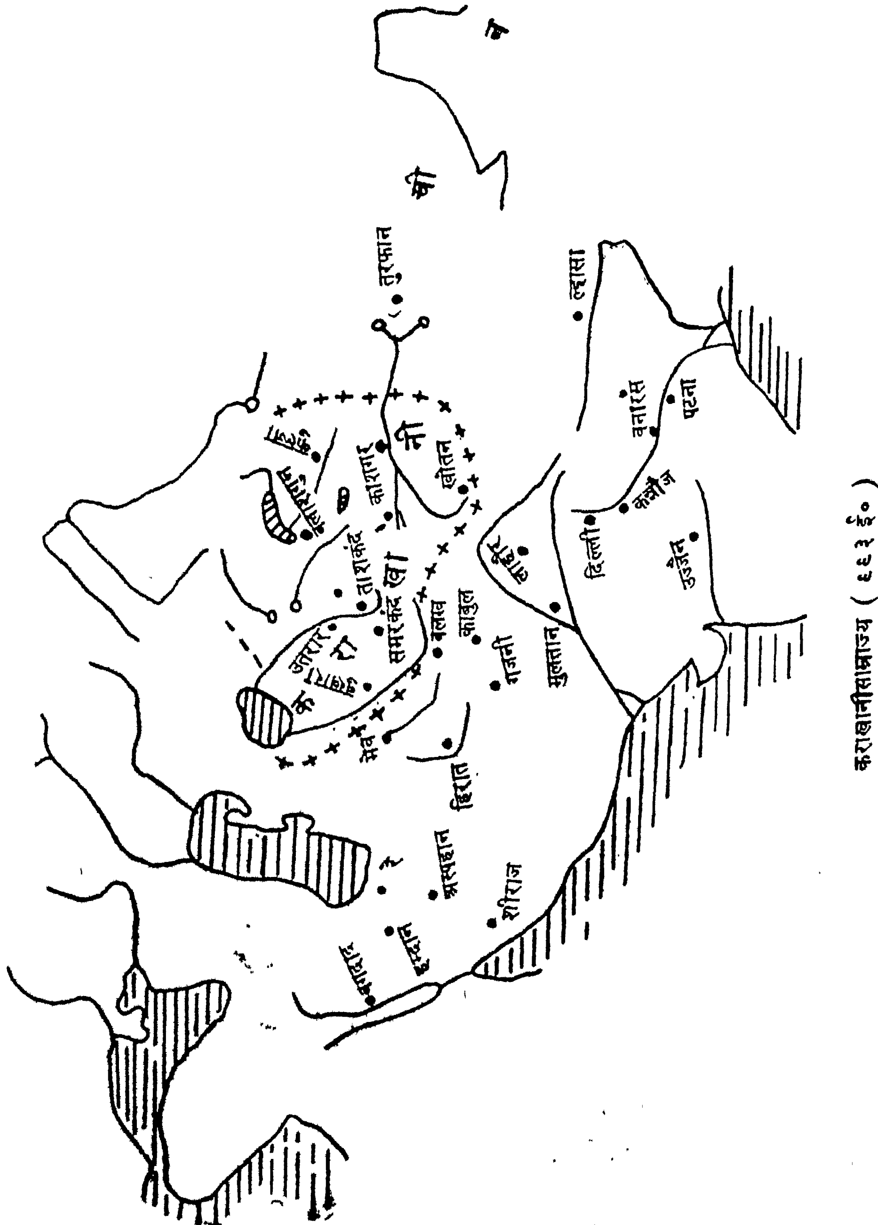
बोगराखान हारून (मृत्यु ९९३) के बाद काराखानी वंशका मुखिया कौन हुआ, इसे निश्चयपूर्वक कहना मुश्किल है। शायद वह इलिक नस्र (९९३-.....) का बाप अरसलन खान अली था, जो कि ९९८ ई० में शहीद हुआ था। उसे तुर्की भाषामें हरिक (दग्ध) पदवी से याद किया गया है, जिसका अर्थ शहीद है। अरसलनके अधीनस्थ शासकके तौरपर इलिक उजगन्दमें रहता था। कराखानी राज्यमें ही क्या सभी घुमन्तू साम्राज्योंमें पैतृक सम्पत्तिका ख्याल वैयक्तिक ही नहीं सारे राज्यकी सम्पत्ति तक पहुंचता था। राज्य केवल खान नहीं बल्कि उसके सारे परिवारकी सम्पत्ति माना जाता था, इसलिये उसके अलग-अलग इलाकोंको राजवंशिकोंके छोटे-छोटे राज्यके तौरपर बांट दिया जाता था, जिन्हें उनके परिवारों-उपपरिवारोंके व्यक्तियोंके अनुसार फिर विभाजित किया जाता था। सारे साम्राज्यका प्रमुख खान कितनी ही बार अपने वंशके शक्तिशाली सामन्तों द्वारा मान्य नहीं होता था। राज्यके बंटवारेकी यह प्रथा वैयक्तिक झगड़ेका कारण बन जाती, जिसके कारण शासकोंमें बराबर परिवर्तन होता रहता; इसीलिये राजवंशके भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके शासनकालके बारेमें किसी निश्चयपर पहुंचना असंभव सा है। कराखानियोंके सिक्के बहुत मिलते हैं, लेकिन वह भी गुत्थी सुलझानेमें असमर्थ हैं। निश्चित ऐतिहासिक आंकड़े न मिलनेके कारण अकसर यह मालूम नहीं होता, कि एक या उसी तरहके सिक्केमें जो भिन्न-भिन्न उपाधियां उल्लिखित हैं, वह एक व्यक्तिकी हैं या अनेक व्यक्तियोंकी। दिक्कत और भी बढ़ जाती है, जबकि हम उत्तरापथ और दक्षिणापथ, पूर्वी तुर्किस्तान और पश्चिमी तुर्किस्तानमें एक ही काराखानी वंशके भिन्न-भिन्न शासकोंको अपना स्वतंत्र सिक्का जारी करते, स्थान-परिवर्तन भी करते देखते हैं। इसीलिये हम उत्तरापथ और दक्षिणापथकी कोई सीधी विभाजक रेखा नहीं खींच सकते।

(१) इलिक नस्र (-९९३)

बोगरा खानके मरनेपर उसका पुत्र इलिक नस्र खान गद्दीपर बैठा। सामानी दरबारी फायक भागकर इलिक नस्र खानकी शरणमें गया था, जबकि नूह और सुबुकतगिनकी सम्मिलित शक्तिने अन्तर्वेदसे कराखानियोंको हटा देनेकी कोशिश की थी। इलिक खानने फायकको समरकन्द का अमीर (राज्यपाल) बना दिया। लेकिन तब तक और कार्यवाही नहीं होसकी, जब तक ९९७ ई० नूह और सुबुकतगिन मर नहीं गये। नूहका उत्तराधिकारी मन्सूर भारी कायर और सुबुकतगिनका उत्तराधिकारी महमूद गजनवी महान् विजेता था। ९९६ ई० में कराखानियोंका आक्रमण हुआ। १७ अगस्त ९९२ ई० को बुखारा लौटनेके बाद सारा अन्तर्वेद नहीं बल्कि उसका एक भाग नूहके हाथमें ही रह गया था। वह अकेले इलिक खानका मुकाबिला नहीं कर सकता था, इसलिये उसने सुबुकतगिनको बड़ी सेनाके साथ बुलाया। जैसा कि पहले कहा, गुजार, शगानियान और खुत्तलके अमीर भी उसके साथ थे। बुलाने और नूह के इन्कार करनेपर सुबुकतगिनने बीस हजार सेना बुखारा भेजी। इस पर नूहने नाक रगड़कर उसकी सारी बातें मानीं। वजीर अब्दुल्ला उजैरपुत्रको पदच्युत कर उसे सुबुकतगिनके हाथमें दे दिया। सुबुकतगिनने अपने आदमी अबूनस्र अहमद मुहम्मद-पुत्र अबूज़ैदको वजीर बनाया। उसने

[1] Heart of Asia

कराखानियोंसे समझौता कर लिया। सुबुकतगिन अब वक्षु (आमू-दरिया) उपत्यकाका स्वामी हुआ। सारा खुरासान सामानियोंके हाथसे निकल गया।



कराखानीसाम्राज्य (९९३ ई०)

९९९ ई० की गरमियोंमें फायक मर गया। इलिक खानने चाहा कि महमूद गजनवी और उसके राज्यके बीचमें सामानियोंका भाग न रहे। मंसूरको १ फरवरी ९९९ ई० को गद्दी से उतार अंधा करके बुखारा भेज दिया गया था और उसकी जगह पर अब्दुल

मलिक II अमीर घोषित हुआ। इलिक खानके खतरेकी बात जब बुखारा पहुंची, तो वहां बड़ी गडबडी हुई। खतीबने बुखाराकी मस्जिदमें लोगोंको बादशाहकी ओरसे लड़नेके लिये समझाना चाहा, किन्तु सशस्त्र होनेपर भी बुखारावाले अब सामानियोंपर विश्वास करनेके लिये तैयार नहीं थे। इस्माईलके समयसे ही सामानी वस्तुतः जनताके प्रिय नहीं थे। वह पुराने सामान्त-वंशी थे, इसलिये साधारण जनताके साथ घनिष्ठता स्थापित करने के लिये तैयार नहीं थे। उनका एक बड़ा बल यह था, कि वह कट्टर सुन्नी थे और शिया-आन्दोलनको हर तरहसे दबाना चाहते थे। शिया-आन्दोलन इस समय जनसाधारणका बड़ा पक्षपाती तथा जनतांत्रिक आन्दोलन था। वह आर्थिक तौरसे शोषित-पीड़ित जनताकी आकांक्षाओंका समर्थन करता था, और राष्ट्रीय दृष्टिसे भी अरबोंका पक्षपाती न हो ईरानियों तथा दूसरोंके जातीय स्वाभिमानको उभाड़ता था। शिया-आन्दोलनके अनुगामियोंमें प्रसिद्ध दार्शनिक बू-अली सेनाका बाप और भाई भी थे। सुन्नियोंकी भी पूरी सहानुभूति सामानियोंके साथ नहीं थी, बल्कि वह अबू अली और फायक जैसे नेताओंको अपना अगुआ मानते थे। कराखानी अभी हालही में मुसलमान हुए थे,इसलिये "नया मुसलमान प्याज ही प्याज" की कहावतके अनुसार वह इस्लामके कट्टर पक्षपाती थे। वह स्वयं असंस्कृत-अशिक्षित थे, इसलिये उनका सारा शासन-प्रबन्ध अधिक सभ्य सोग्दी या तुर्की मंत्रियोंके हाथोंमें था। जनता अपने धर्म-शास्त्रियोंकी सलाह मानती थी, जिनका कहना था—"दुनियावी चीजोंके लिये यदि संघर्ष हो, तो मुसलमान जहादके लिये वाध्य नहीं हैं।" ऐसी स्थितिमें सामानियोंको बुखारासे क्या सहायता मिल सकती थी? ऊपरसे इलिक खानने घोषित किया था, "मैं सामानियोंके मित्र और संरक्षकके तौरपर बुखारा आ रहा हूँ।" लोग विजेताकी ओर हो गये। बुखारी सेनाके सेनापति बेग तुजून और यनाल-तगिन अपनी इच्छासे विजेताके दरबारमें उपस्थित हुए और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। २३ अक्तूबर (९९९ ई०) को इलिक खान बुखारामें बिना किसी विरोधके दाखिल हुआ और सामानी खजाना उसके हाथमें आ गया। अब्दुल मलिक और दूसरे राजवंशियोंको बंदी बनाकर इलिकने उजगन्द भेज दिया और वह स्वयं भी बुखारा और समरकन्दमें अपने गवर्नर नियुक्त कर लौट गया। इस प्रकार जनसाधारणकी पूर्ण उपेक्षाके साथ मध्यएसियामें ईरानी मुसलमानोंके प्रथम गौरवशाली राजवंशका अन्त हुआ। इसमें संदेह है, कि उस समय किसीने इस घटनाके ऐतिहासिक महत्वको समझा। सदियों तक तुर्कों और अरबोंके शासनके बाद मध्यएसियाके ईरानियोंने यह सुन्दर मौका पाया था, और इसके परिणामस्वरूप ईरानी (फारसी) साहित्य, संस्कृति और कलाका पुनरुज्जीवन और प्रगति भी काफी हुई, लेकिन इस्लामने राष्ट्रीयता की भावनाको कुचलकर धर्मान्धताके भाव इतने भर दिये थे, कि लोग इस बातको नहीं समझते थे। उनका ख्याल था— "आखिर कराखानी भी तो मुसलमान हैं।"

(२) इब्राहीम (बुरी तगिन १०४१)

गजनवियोंकी निर्बलतासे लाभ उठाते मसऊदको बुरे दिन दिखाकर बुरीतगिनने अब अन्तर्वेदमें अपना स्वतंत्र राज्य कायम कर लिया। १०४१ (४३३ हि०) में ही बुगरा खानने

[१] बुरी तगिन अन्तर्वेदमें अपना शासन मजबूत कर खाकानसे स्वतंत्र हो गया। १०४१ ई० (४३३ हि०) में बुगरा खानके अधीन वह बुखाराका शासक था, यह उसके सिक्कोंसे मालूम होता है।

उसे बुखाराका शासक बना दिया था। १०४६ (४३८ हि०) के समरकन्दी सिक्कोंपर इसके लिये "इमादुद्दौला ताजुल्मिल्लत सैफ़-खिलाफतुल्ला तमगाचखान इब्राहीम" का उल्लेख है। बुगरा खानने भी उससे पहिले चीन सम्राजो तमगाचखानकी उपाधि धारण की थी। बुरी तगिनने पीछे "पूर्व और चीनका राजा" की पदवी धारण की, और उसका पुत्र नस्र "प्राची और चीनका सुल्तान" बना; यद्यपि दोनों बाप-बेटोंका "प्राची और चीन" अन्तर्वेद तक ही सीमित था।

तुर्कभूमि (उत्तरापथ) के कराखानियोंके आपसी झगड़ोंके कारण इब्राहीम (बुरीतगिन) को सफलता मिली। बुगरा खान हारूनके समय १०४४ (४३६ हि०) में अन्तर्वेदमें शिया-आन्दोलन जोर पकड़े हुए था। अन्तर्वेदके शासक बगदादके सुन्नी अब्बासी खलीफाको अपना पोप मानते थे, किन्तु शिया मिस्र के फातमी खलीफा मुस्तंसिर (१०३६-१०९४ ई०) को स्वीकार करते थे। उनके प्रभावमें स्वयं बुगरा खान आ गया और उसने शिया धर्म स्वीकार किया। मध्यएसिया, ईरान और दूसरे देशोंमें भी देखा गया है, कि अपनी प्रजाको दूसरेके प्रभावमें न जाने देनेके लिये शासक अपने धर्मको बदल देते थे। आगे मंगोलोंके समय यह बात मध्यएसिया, ईरान और रूसमें दुहरायी गयी। बोगरा खानने राजनीतिक चालसे ही शियोंका समर्थन किया था, इसलिये उसने बुखाराके शियोंका कतलआम करा दिया। विचार पलटा, दूसरे शहरों में भी वैसा ही करनेका हुक्म दिया।

३. इब्राहीम II इलिक-पुत्र (१०५९)

इब्राहीम तमगाच खान बड़ा धर्मात्मा था। उसका पिता नस्र भी फकीरी जीवन व्यतीत करता था। तमगाच खान इब्राहीम स्वयं अपने लिये राजकोशसे पैसा नहीं लेता था और न मुसलमान साधुओंकी राय लिये बिना टैक्स लगाता था। अली-वंशज अबू-शुजा नामके एक साधुने एक बार उससे कह दिया—"तुम सुलतान होने लायक नहीं हो।" इसपर उसने अपने महलका दरवाजा बन्द कर तख्त छोड़ना चाहा। लोगोंने बहुत समझा-बुझाकर उसे रोका। सल्जूकियोंकी अपेक्षा कराखानी अधिक संस्कृत और सभ्य थे। पूर्वी तुर्किस्तान और सप्तनद उनका केन्द्र होने के कारण वह चीनी तथा उइगुर जैसी सभ्य जातियोंके संपर्कमें आये थे। १०६९ ई० में तुर्की भाषाकी प्रथम कविता-पुस्तक "कुदतकु-विलिक" एक सामन्त कविने लिखी। तमगाच खानने पहिले अपना सारा ध्यान देशमें शान्ति कायम रखनेमें लगाया। लेकिन, संपत्ति संबंधी चोरी आदि अपराधोंका दण्ड बहुत निष्ठुरता-पूर्वक दिया जाता था। एक बार समरकन्दके किलेके फाटकपर इस दण्डके विरोधमें लुटेरोंने लिख दिया "हम प्याज़ हैं, जितना ही छांटे जायेंगे, उतना ही और बढ़ेंगे।" तमगाचने उसके नीचे लिखवा दिया "मैं यहां माली हूं, जितना ही तुम बढ़ोगे, उतना ही मैं तुम्हारा मूलोच्छेद करूंगा।" खानने एक बार अपने दरबारियों से कहा—पहिले मैंने बहुतसे तरुण सुंदर पौधोंको तलवारके घाट उतारा, अब मैं ऐसे तरुणोंको अपने पास रखना चाहता हूं, इसलिये तुम मेरे लिये तरुणोंके एक ऐसे नेताको ढूंढ़ लाओ, जो कि लूट-पाटसे जीविका करता है। मैं उसपर दया दिखाऊंगा, और वह मेरा काम करनेके वास्ते

---

[*] इब्राहीम बुगरा खानकी औलादका अन्तिम खाकान, १०५८ ई० में मरा, जिसके बाद उसका पुत्र नस्र (१०५८-७० ई०) गद्दीपर बैठा। इस समय काशगरका राज्य कराखानियोंकी एक दूसरी शाखा तुफगाजके हाथमें था—Turkistan (Bartold)

आदमियोंको जमा करेगा। ढूंढ़नेपर चार-पुत्रोंवाला ऐसा आदमी मिल गया। खानने प्रधान साहिब-हर्स (बधिक) बनाकर उसे तथा उसके पुत्रोंको खलअत (राजसी पोशाक) प्रदान की। सुल्तानके कहनेपर उसने तीन सौ आदमियोंको जमा किया। घरमें एक-एक करके ले जाकर उन्हें गिरफ्तार किया गया, फिर प्रधान और उसके पुत्रोंको भी पकड़ा गया। अन्तमें सबको कतल करवा दिया गया। इसका इतना आतंक छाया, कि कहते हैं, चांदीका दिरहम भी खोये जानेपर वहीं पड़ा मिलता। इब्राहीमने धर्मात्मा होते हुए भी अपराधियोंके साथ कठोर बर्ताव करनेमें आना-कानी नहीं की। खानने लोगोंकी संपत्तिकी खुली लूटको ही बन्द नहीं कर दिया, बल्कि बनियोंकी लूटसे भी रक्षा की। उसने मांसका दाम निश्चित कर दिया था। कसाइयोंने हजार दीनार खजानेको दे दाम बढ़ानेकी अरजी दी। खानने स्वीकार किया। कसाई दीनार लाये। दाम भी बढ़ा कर खानने घोषणा कर दी—"जो कोई मांस खरीदेगा, उसे मृत्यु-दण्ड मिलेगा।" मांस न बिकनेके कारण कसाई भूखे मरने लगे। कसाइयों ने फिर हजार दीनार देकर पहिली कीमतपर मांस बेचना स्वीकार किया। खानने कहा—यह उचित नहीं होगा, यदि हजार दीनारमें अपनी प्रजाको बेच डालूं। इब्राहीमका मुल्लोंसे भी झगड़ा रहा, क्योंकि वह उनको प्रजा-विरोधी कार्रवाइयोंके लिये कठोर दण्ड देता था। समरकन्दके एक मशहूर मुल्ला इमाम अब्रुल-कासिमको उसने कतल करवा दिया। इतनेपर भी जनता मुल्लोंके नहीं बल्कि खानके साथ रही, क्योंकि वह जनहितका बहुत ख्याल रखता था। १०६१ ई० में सल्जूकी अल्प अरसलन (१०६३-७३ ई०) ने अन्तर्वेदपर आक्रमण किया। इब्राहीमने खलीफा कायम (१०३१-७५ ई०) के पास शिकायत की, लेकिन खलीफा अब केवल उपाधियोंकी ही वर्षा कर सकता था। उसने तमगाच खानको "इज्जतुल्-उम्मत" (धर्मानुयायियोंकी प्रतिष्ठा), "काबतुल्-मुसलमीन" (मुसलमानोंका काबा) और "मुअबदुल्-अदल" (न्यायमंदिर) की उपाधियां प्रदान कीं। तमगाच खानके जमानेमें ही सल्जूकियोंने अन्तर्वेद पर आक्रमण करना शुरू किया।

दाऊदके मरनेपर कराखानी साम्राज्यका शासक दाऊद-पुत्र अरसलन हुआ, जिसने १०६४ ई० में खुत्तल और शगानियानपर आक्रमण किया। बलख और तेरमिज़के बाद यह प्रान्त भी सल्जूकियोंके हाथमें चले गये थे। १०६५ ई० में ख्वारेज्मसे जंद और सारान पर चढ़ाई करने पर वहांके शासकोंने सल्जूकियोंकी अधीनता स्वीकार की, और अपने पदपर बने रहे। १०६८ ई० में मरनेसे पहिले इब्राहीमने अपने पुत्र शमशुल्मुल्कके लिये सिंहासन छोड़ दिया। तुरन्त ही दूसरे पुत्र शूऐशने विद्रोह कर दिया। पिताके मरनेके साथ ही समरकन्द और बुखारामें दोनों पुत्रोंका संघर्ष हुआ, जिसमें शमशुल्मुल्क सफल हुआ। इब्राहीम अल्प अरसलनसे लड़ते १०७९ ई० में मारा गया। इसका उत्तराधिकारी खिज़िर खान हुआ। इब्राहीम और तमगाच खान इब्राहीमके एक होनेमें संदेह है। तमगाच इब्राहीमका उत्तराधिकारी शमशुल्मुल्क था।

४. शमशुल्मुल्क[१] (१०६८-८० ई०)

इसके राज्यकालमें भी सल्जूकियोंसे युद्ध जारी रहा। १०७२ ई० में अल्प अरसलन

[१] वही (Bartold)

दो लाख सेनाके साथ अन्तर्वेदपर चढ़ा, किन्तु इसी बीच उसकी हत्या हो गयी। उसके हत्यारे किलेदारको गिरफ्तार करके मृत्यु-दण्ड दिया गया। उसी जाड़ेमें शम्शुल्मुल्क तेरमिज़को ले बलखमें प्रविष्ट हुआ। बलखके गवर्नर अयाज़ (अल्प-अरसलन-पुत्र) पहिले ही वहांसे भाग गया। लौटते समय कुछ बल्खियोंने तुर्क-सेना पर आक्रमण कर दिया। शमशुल्मुल्क बलखको जला देना चाहता था, किन्तु निवासियोंकी प्रार्थनापर उसने क्षमा कर व्यापारियोंसे कर वसूल करके ही संतोष कर लिया। शमशुल्मुल्कके लौट जानेपर जनवरी १०७३ ई० में अयाज़ बलख लौट आया। उसने ६ मार्चको वक्षु पार हो तेरमिज़को लेनेके लिये आक्रमण किया, लेकिन परिणाम अधिकांश सैनिकोंको नदीमें डुबा देनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं हुआ। शमशुल्मल्कने अपने भाईको तेरमिज़का शासक नियुक्त किया था। उसी समय या १०७४ के आरम्भ में मलिक शाह सल्जूकी (१०७३-९३ ई०) ने तेरमिज लेते हुए समरकन्दपर आक्रमण करना चाहा। शमशुल्मुल्कने शान्ति-भिक्षा मांगी। सल्जूकियोंका प्रसिद्ध वजीर निजामुल्मुल्क बीच में पड़ा, और सुलह हो गई। मलिकशाह खुरासान लौट गया। काशगरी कादिर खान यूसुफके पुत्रों तुगरल कराखान युसुफ और बोगरा खान हारूनसे भी शमशुल्मुल्क का झगड़ा होता रहा। अन्तमें सुलह हुई और उन्हें फरगाना तथा सिर-नदीके पार अन्तर्वेदको दे शमशुल्मुल्कने खोजंदको अपनी सीमा मान ली। खीजन्दमें पहिले अकशीकत और तूनकतमें इबराहीम और उसके पुत्रोंके सिक्के ढलते थे, अब मरगिनान, अकसीकत और तूनकतमें तुगरल कराखान और उसके पुत्र तुगरल तगिनके सिक्के ढलने लगे।

अपने पिता तमगाच खान इब्राहीमकी तरह ही शमशुल्मुल्क भी न्यायप्रियताके लिये प्रसिद्ध था। वह बराबर घुमन्तू जीवन व्यतीत करता, और केवल जाड़ोंमें अपनी सेनाके साथ बुखाराके आस-पास डेरा डालके रहता। सूर्यास्त के बाद किसी सिपाहीको शहरमें रहनेकी इजाजत नहीं थी। सिपाहियोंको कड़ा हुकुम था, कि वह अपने तंबुओंमें रहें और प्रजाको न सतायें। घुमन्तू रहते हुए भी कराखानियोंने नगरोंके प्रति अपने कर्तव्यकी उपेक्षा नहीं की। उन्होंने विशाल और सुन्दर महलों द्वारा नगरोंको सजाया, राजपथोंके ऊपर रवातें (सरायें) बनवायीं (सराय मंगोल भाषामें राजमहलको कहते थे, जिसका अर्थ भारतमें आकर इतना गिर गया)। तमगाच खान इब्राहीमके बारेमें पता नहीं, किन्तु बारहवीं सदीके तमगाच खान इब्राहीम हुसैन-पुत्रने समरकन्दके गुर्जज़मीन (कारजमीन) मुहल्लेमें एक ऐसा सुन्दर प्रासाद बनवाया था, जिसकी सासानी राजधानी तस्पोनके ताक-खुसरोसे तुलना की जाती थी। शमशुल्मुल्ककी इमारतोंमें रवातें-मलिक (राजपान्थशाला) थी, जो १०७८ (४७१ हि०) में खरजंग गांवके पास बनायी गई थी। समरकन्दसे खोजन्द जानेवाले मार्गपर आक्-कुतल्में भी उसने एक रवात बनवायी थी। बापकी तरह इसका भी मुल्लाओंसे बराबर झगड़ा रहा। राज्यारम्भमें ही १०७९ ई० में उसने इमाम अबू-इब्राहीम इस्माईल अबूनस्र-पुत्र सफ्फारीको बुखारामें कत्ल करवा दिया।

शमशुल्मुल्कसे रुकुनुद्दीन महमूद तकका शासन दक्षिणापथके कराखानी वंशके इतिहासका अंश है।

५. खिज्र खान (१०८०—..)

शमशुल्मुल्कके बाद भाई खिजिर उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह बहुत कुछ गुमनाम सा शासक है। निजामीके ग्रंथ "अरूज़े समरकन्द" के अनुसार इसके शासनमें समरकन्द समृद्धिकी चरम सीमापर पहुंचा था। इसने अन्तर्वेद और तुर्किस्तान (सिर-दरियाके उत्तरी भाग) दोनों पर शासन किया । यह विद्वान, न्यायी कवियोंसे प्रेम रखता था। कवियोंमें प्रतियोगिता कराता और विजयी कविके लिये दरबार-हालमें चांदी-सोनेकी तश्तरियां पारितोषिकके लिये रखवाता। खिजिर खानके दरबार-हालमें २५० दीनारों (स्वर्ण मुद्राओं) से भरी ऐसी चार तश्तरियां रखी रहतीं, जिन्हें एक बार एक कविने जीत लिया था। जब खान जलूसमें निकलता, तो सोने और चांदीकी चोब लिये चोबदार उसके आगे आगे चलते। खिजिर खान शायद एक ही साल राज्य कर सका। उसके बाद उसके पुत्र अहमदने गद्दी संभाली।

६. अहमद (१०९५ ई०)

खिजिर-पुत्र अहमदके शासनकालमें मुल्लाओंके साथ झगड़े-फसादने बहुत उग्र रूप धारण किया, जिससे सल्जूकियोंको बीचमें कूदनेका मौका मिला। गद्दीपर बैठते ही, पिताके समयके प्रधान काजी और अब वजीर अबूनस्र सुलेमान-पुत्र कासानीको अहमदने मरवा दिया। दीवान प्रजाको बहुत सता रहा था, इसीलिए शाफई-धर्मशास्त्री अबू-ताहिर इलक-पुत्रने प्रजाके उत्पीड़नको बतलाते हुए मलिक शाहसे सहायता मांगी। मलिक शाहने १०८९ ई० में बुखारा ले लिया। सल्जूकी सेना समरकन्द लेनेके लिये पहुंची, मुकाबिला कड़ा हुआ। किला घेरे रहते समय नागरिकोंने मलिकशाहके पास रसद पहुंचायी। कराखानियोंने अली-वंशज एक अमीरको बुर्जकी रक्षाका भार दिया था। उसका लड़का बुखारामें बन्दी था। मलिक शाह सल्जूकीने उसे कत्ल कर देनेकी धमकी दी, इसलिये पिता ढीला पड़ गया। बुर्ज लेकर मलिक शाहने किलेपर अधिकार कर लिया। अहमद किसी नागरिकके घरमें छिपा हुआ था। गर्दनमें रस्सी डालकर उसे मलिकके पास लाया गया। मलिकशाहने उसे अस्पहान भेज दिया। फिर अपनी विजय-यात्राको जारी रखते वह उज़गन्द पहुंचा। उसका रोब इतना छा गया था, कि काशगरके कराखानी खानने स्वयं आकर अधीनता स्वीकार की, खुतबामें मलिक शाहका नाम पढ़वाया तथा उसके नामसे सिक्के जारी किये। समरकन्दमें अपना उपराज छोड़ कर मलिक शाह खुरासान लौट गया।

कराखानियोंकी सेनामें उनके जिकली कबीलेका भाग बहुत था। किसी कारणसे वह अपने खानसे नाराज हो गये और अन्तर्वेदमें रहनेवाले उनके लोग मलिकशाहसे मिल गये। लेकिन सफलता प्राप्त करनेके बाद मलिकशाहने उनकी अच्छी तरह खातिर नहीं की, जिसपर जिकली विद्रोही हो गये। मलिकशाहके हटते ही जिकली सेनाने समरकन्दके उपराजपर आक्रमण कर दिया। उपराजको भागकर ख्वारेज्ममें शरण लेनी पड़ी। विद्रोहियोंके नेता ऐनुद्दौलाने काश-

---

[१]वही

गरी खानके भाई तथा अतवाश नगरके गवर्नर याकूब तगिनको सप्तनदसे बुलाया। उसने ऐनुद्दौलाको कत्ल करवा कर शासनकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। इसपर जिकली खिलाफ हो गये। मलिकशाहने खबर पाते ही फिर अन्तर्वेदका रास्ता लिया। उसके बुखारामें घुसते ही याकूब फरगानाके रास्ते अतबास भाग गया और उसकी सेना तवाबीसमें मलिकशाहसे मिल गई। यह स्मरण रखना चाहिये, कि इस समयके ईरानी शासक सल्जूकी भी कराखानियोंकी तैरह तुर्क थे। दोनों की भाषाओंमें भी बहुत अन्तर नहीं था, इसलिये सेनाओंका राजभक्ति-परिवर्तन जातिद्रोह नहीं समझा जा सकता था। समरकन्द लेकर मलिकशाह फिर उज़गन्द पहुंचा। उत्तरमें काराखानी खानोंके घरू झगड़े इतने तीव्र थे, कि मलिकशाह निश्चित होकर फिर खुरासान लौट गया। अबकी बार भी मलिकशाहने खिज्र-पुत्र अहमदको फिर शासक बनाया, लेकिन वह अधिक समय शासन नहीं कर सका। ईरानमें रहते हुए अहमद दैलमी दरबारके संपर्कमें आया था, जहां वह शिया विचारोंसे प्रभावित हो गया। अन्तर्वेद लौटनेपर मुल्लोंको यह अच्छा मोक़ा मिला, क्योंकि अन्तर्वेदके मुसलमान धर्मान्ध सुन्नी और शियोंके कट्टर विरोधी थे। समरकन्दके धर्मशास्त्रियों (फ़क़ीहों) और काज़ियोंने नास्तिक होने का अपराध लगा सेनाको कत्ल करनेके लिये भड़काया। लेकिन राजधानीमें अहमद इतना जनप्रिय था, कि वहां विद्रोह करानेमें सफलता नहीं हुई। तब उन लोगोंने कासान नगरके शासक तुगरल यनाल बेगको विद्रोह करनेके लिए तैयार किया। जब अहमद सेना लेकर पहुंचा, तो सेनाने विद्रोह कर दिया। खानको पकड़कर समरकन्द ला धार्मिक अदालतके सामने पेश किया गया। उसने अपनेको बिलकुल निरपराधी बतलाया, लेकिन तब भी उसे अपराधी कहकर काज़ियोंने मृत्यु-दण्ड दे, धनुषकी प्रत्यंचाको गलेमें डालकर फांसी लगवा दी गई। यह जनमतको पूर्णतया विरोधी बना कर ही किया जा सकता था।

७. मसऊद खान (१०९४)---

वद्रोहियोंने अहमदके चचेरे भाई मसऊद खानको समरकन्दकी गद्दीपर बैठाया। यह थोड़े ही समय तक शासन कर सका।

८. कादिर (१०९५-११०१)---

इसके समय खुरासानके गवर्नर संजर सल्जूकीने विद्रोह किया चचा भतीजे की लड़ाईमें कादिरखान मारा गया।

१०९७ ई० में मलिकशाह-पुत्र बरकयारुक सल्जूकीके हाथमें अन्तर्वेद आ गया। उसने सुलेमान तगिन (...—११०२) महमूद तगिन और हारून तगिन कराखानी खानजादोंको एकके बाद एक अन्तर्वेदका शासक नियुक्त किया था। उनमें सुलेमान तगिन दाऊद कुज़तगिनका पुत्र और तमगाच खान इब्राहीमका पौत्र था। बारहवीं सदीके आरम्भमें तुर्किस्तान (सिर-पार) के कराखानियोंने अन्तर्वेदपर आक्रमण किया। कादिर खान जिबराईल (बोगराखान मुहम्मद-पौत्र) ने अन्तर्वेद ही नहीं ले लिया, बल्कि ११०२ ई० में सल्जूकियोंकी भूमि (खुरासान) पर भी आक्रमण कर दिया। वह तेरमिज लेनेमें सफल हुआ, लेकिन २२ जून ११०२ ई० को तेरमिजके नातिदूर सुल्तान संजर सल्जूकी (१११७-५७) से लड़ते हुए मारा गया।

९. महमूद तगिन (११०२--२८) ई०

संजरने सुलेमान तगिन-पुत्र महमूद तगिनको मेर्वसे बुलाया। आपसी संघर्षमें कराखानी खानजादे अक्सर शरणार्थी बनकर पास-पड़ौसके सुल्तानोंके दरबारमें रहते थे। कादिर खानके आक्रमणके समय महमूद अन्तर्वेदसे भागकर सल्जूकोंकी राजधानी मेर्वमें चला गया था। महमूदने अरसलनखानकी उपाधि धारण करके ११३० ई० तक शासन किया। शासन संभालते ही उसे एक कराखानी राजकुमार (खानज़ादा तगिन) शागिर बेगके विद्रोहोंका मुकाबिला करना पड़ा। पहिले विद्रोहमें ११०३ ई० में संजर सहायताके लिये आया था और दोनों प्रतिद्वन्द्वियोंमें सुलह कराकर दिसम्बर के महीनेमें मेर्व लौट गया। ११०९ ई० (५०३ हि०) में शागिर बेगने फिर विद्रोह किया, लेकिन अरसलनने संजरकी सहायतासे नकशाबके पास उसे हरा दिया। इसके बाद बीस साल तक अन्तर्वेदमें शान्ति रही। अरसलनने अन्तर्वेदमें सभी कराखानियोंसे अधिक इमारतें बनवायीं। उसने बुखाराके दुर्ग और नगर-प्राकारकी भी मरम्मत करवाई। वहांके शमशाबाद-प्रासादके ध्वंस होनेपर ११११९ ई० में ईदगाह महल बनवाया। ११२१ में बुखाराकी जामा-मस्जिदकी सुंदर इमारत इसीने बनवायी। दो और प्रासाद बनवाये, जिनमें से एकको पीछे मदरसा बना दिया गया। पैकन्द नगरका उसने पुर्ननिर्माण कराया। किलेके पासकी जामा-मस्जिदके मीनारको शहरिस्तानमें ले जाकर उसे बड़े भव्य रूपमें पुनः स्थापित करा दिया। लेकिन थोड़े ही समय बाद मीनार और एक तिहाई मस्जिद गिर गई। अरसलनने अपने खर्चसे सारे मीनार और मस्जिदको फिरसे (११२७ ई० में) बनवा दिया। अरसलन अपनी इस्लाम-भक्तिको प्रमाणित करते हुए किपचक (अरालसागरसे उत्तरकी भूमि) के काफिरोंपर जहाद भी बोला। यह हम पहिले बतला चुके हैं, कि मुसलमान होनेसे पहिले यह घुमन्तू बौद्ध या ईसाई साधू-सन्तोंके भक्त हुआ करते थे। जिसकी तृप्तिके लिये मुसलमान साधू-सन्तोंकी भी महिमा बढ़ी। अरसलन खान महमूद भी यूसुफ हसन-पुत्र बुखारी सामानी नमदापोश |(नमदेवाला) का परम भक्त था। नमदापोशने तीस साल तक बुखाराके अपने मठ (खानकाह) में सिर्फ फलाहारपर गुजारा किया था। इसके अतिरिक्त बुखारामें एक दूसरा सन्त शेख अबूबक्र कल्ला-बादी था, जो बिलकुल मांस नहीं खाता था। अरसलन नमदापोशको बाबा (पिता) कहा करता था। १११५ (५०९ हि०) में शेख एक दुष्टकी तीरसे मरकर शहीद हुआ। जो भी सूफी दिनमें बाजारके प्याव पर पानी पीता, उसे शेख शहरसे बाहर करवा देता, क्योंकि उसके मतमें सूफीका सबसे पहिला कर्तव्य है अपने सदाचारका पालन करना।

सूफियों-सन्तोंका इतना भक्त होते अरसलनका मुल्लोंके साथ बराबर संघर्ष रहा। मुल्ले एक तो परमलोभी फिर, विचार-स्वतंत्रताके घोर शत्रु थे, दूसरी तरफ़ बौद्ध साधुओंके पथपर चलनेवाले सूफी-सन्त त्यागी तथा विचार-स्वतंत्रताके पक्षपाती थे। सूफियोंके भक्त मुल्लाओंको क्यों पसंद करने लगे? शमशुल्मुल्कके समय मारे गये इमाम सफ्फारका पुत्र भी अपने पिताकी तरह ही ढोंगी मुल्ला था। उसने सुल्तानपर धर्म-विरोधी होनेका आक्षेप किया, इसपर तगिनके संरक्षक संजरने उसे मेर्वमें निर्वासित कर दिया। जीवनके अन्तमें अरसलनको लकवा मार गया, और उसने अपने पुत्रको राजकाजमें सहभागी बना लिया। तरुण शासकके विरुद्ध षड्यंत्र करने वालोंका मुखिया धर्मशास्त्री और अध्यापक (फ़कीह-मुदर्रिस) अशरफ मुहम्मद-पुत्र समरकन्दी

था, जो हजरत अलीका वंशज मुल्लोंका सरदार और समरकन्दका रईस था। अरसलनने षड्यंत्रको दबानेके लिये सिंजरसे मदद चाही और साथ ही अपने दूसरे पुत्र अहमदको भी बुला लिया। नगरके फ़क़ीर और रईस उससे मिलने गये। तरुण खानने उन्हें पकड़नेकी आज्ञा दे दी और फ़क़ीरको तुरन्त कत्ल करवाकर षड्यंत्रको दबा दिया। शान्ति स्थापित हो जानेपर अरसलनको इसका अफसोस हुआ कि सिंजरको क्यों बुलाया। सिंजर करलुकोंको हराकर अन्तर्वेदमें दाखिल हुआ। शिकारके वक्त उसने बारह आदमी गिरफ्तार करवाये, जिन्होंने स्वीकार किया, कि हमें सुल्तानको मारनेके लिये अरसलनने भेजा था। सिंजरने समरकन्दको ले लिया। खानके कहनेपर मुल्लोंने सिंजरके पास खानको क्षमा-दान करनेके लिये पत्र लिखा। सिंजरने कहा—"सुल्तानको इस बातका आश्चर्य है, कि मुल्ला लोग ऐसे आदमीकी आज्ञाकारिता स्वीकार करें, जिसे अल्लाने स्वयं पद-वंचित कर दिया, जो किसी हथियारके उपयोग करनेमें असमर्थ है, जिसे सर्वशक्तिमान् अल्लाकी सहायता प्राप्त नहीं है, जिसे कि जगत्-शासक अल्लाकी छाया, खलीफाके उपराज (सिंजर) ने गद्दीसे उतार दिया है।" आगे सिंजरने यह भी लिखा, कि मैंने इस गुमनाम आदमीको उठाकर खान बनाया, इसके प्रति-द्वन्द्वीको खुरासानमें भेज दिया, सत्रह वर्षों तक अपनी सेनासे इसकी सहायता की। इस सारे समयमें इसने दुश्शासन किया, पैगम्बरके वंशजों (सैय्यदों) को मारा, पुराने संभ्रान्तकुलोंका उच्छेद किया, केवल संदेहपर लोगोंको कत्ल कराया, उनकी संपत्ति जप्त की।

सिंजरके ७० हजार हथियारबन्द सिपाही—"जिनके रास्तेमें कोई पर्वत भी बाधा नहीं डाल सकता"—पहिलेसे ही समरकन्दके ऊपर आक्रमण करनेके लिये तैयार थे। सुल्तानने कहा: केवल नगरको बचानेके लिये मैंने उन्हें रोक रखा है—उन नागरिकोंको बचानेके लिये, —जो कि अपनी धार्मिकताके लिये मशहूर हैं। सुल्तानकी रानी—अरसलन खानकी पुत्रीने सिंजरको बहुत समझाया था। ११३० के वसंतके आरम्भमें सिंजरने जब समरकन्द ले लिया, तो रोग-शय्यापर पड़े अरसलनको चारपाईपर लिटाकर सुल्तानके पास पहुंचाया गया। उसकी बेटी भी मिलनेके लिये बुलाई गई। कुछ समय बाद जब सुल्तान लौटती यात्रामें बलख पहुंचा, तो वहां अरसलन मर गया और उसे मेर्वमें अपने बनाये मदरसेमें दफनाया गया।

१०. तमगाच बोगरा खान इब्राहीम (११३०)

सिंजरके दरबारमें अबुल मुज़फ्फ़र इब्राहीम नामक अरसलनका एक भाई रहता था। सिंजरने सदियोंसे तुर्कों द्वारा शासित अन्तर्वेदपर सीधे अधिकार करनेमें हानि समझी और इसे ही तमगाच बोगरा खान इब्राहीमके नाम से गद्दीपर बैठाया। अब अन्तर्वेदके कराखानी शासक सल्जूकियोंके कठपुतली मात्र थे।

११. किलिच तमगाच खान

अबुल्-मलिक हसन अली-पुत्र अबुल्मोमिन-पुत्र, जो कि हसन तगिनके नामसे अधिक प्रसिद्ध है, कुछ दिनों शक्तिहीन खान रहा।

१२. रुकुनु (जलालु) द्दीन मुहमद

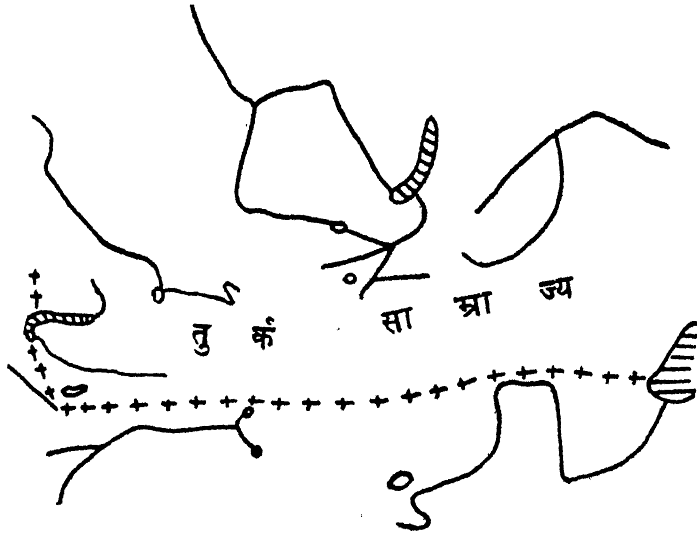
यह अरसलनका पुत्र गड़बड़ीके दिनोंमें कुछ समय कराखानियोंकी गद्दीपर रहा। सिंजर सल्जूकी इसका मामा था और उसका बड़ा भक्त भी; इसलिए सिंजरने काशगर जीतनेपर इसे वहां का शासक बनाया। सिंजरको विजय द्वारा थोड़े दिनोंके लिये सारा मुसलिम एसिया एक छत्रके नीचे आ गया, किन्तु उसी समय पूर्वसे एक और शक्तिशाली जाति (कराखिताई) आ पहुंची, जिसने बहुत दिनों बाद फिर मध्यएसियामें मुसलिम शासनको हटाकर प्रायः एक शताब्दीके लिये काफिरोंका दृढ़ शासन स्थापित कर दिया।

§३. सिक्के

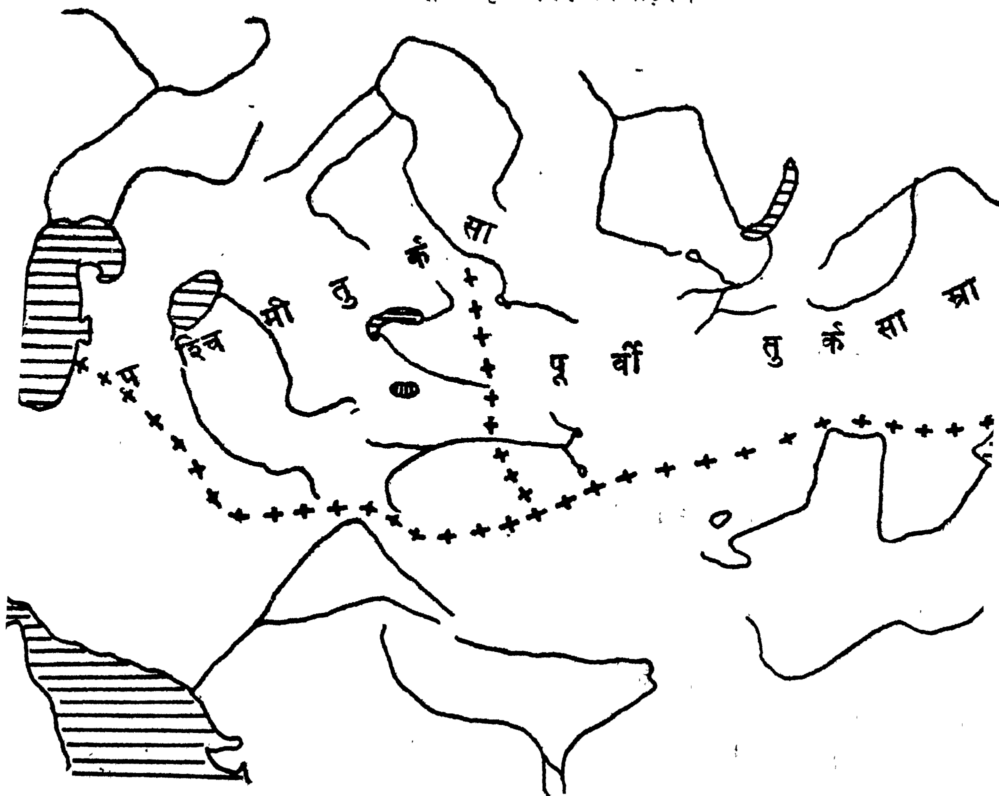
कराखानियोंके बहुतसे सिक्के मिलते हैं। छोटा बड़ा प्रत्येक शासक अपने शासित प्रदेशमें अपना सिक्का चलानेकी होड़ लगाये हुए था। उनके नामों और पदवियोंकी इतनी गड़बड़ी है, कि सन् मिलनेपर भी बात स्पष्ट नहीं होने पाती। रूसके मुद्रा-विशारद दोर्नके अनुसार अन्तर्वेदके विजेता दो भाई थे, जिनमें ज्येष्ठका नाम नासिरुल्हक् नस्र और कनिष्ठका कुतुबुद्दौला अहमद था। नस्रके मरनेपर अहमद गद्दी पर बैठा। नस्र अली-पुत्रके सिक्के १०१० ई० (४०१ हि०) तक के और उसके उत्तराधिकारी अहमद अली-पुत्रके सिक्के १०१६ (४०७ हि०) तकके मिलते हैं। सन् और टकसाल के नगरका पता न होनेसे यह नहीं कहा जा सकता, कि तुगान खान (काशगरी) का शासन अन्तर्वेदमें था या नहीं। ज्येष्ठ भाई तुगान शायद इलिक नस्रके जीवनमें कराखानी राज्यवंशका नाममात्रका मुखिया था। चौथा भाई अबू-मंसूर मुहम्मद अली-पुत्र पीछे अरसलन खानकी पदवीके साथ शासन करता रहा। बुखारा टकसाल वाले इसके सिक्के १०१२ (४०३ हि०) के मिलते हैं। अरसलन खान भी तुगान खानसे झगड़ पडा था और १०१६ में उजगन्दके पास उससे लड़ा था, फिर ख्वारेज्म शाह मामूनने बीचमें पड़कर शान्ति कराई। मामून स्वयं महमूद गजनवीसे लड़नेकी तैयारी कर रहा था। संभव है उजगन्दके पास अन्तर्वेदके शासक अरसलन खान और तत्कालीन काशगर-शासक कादिर खानके बीच सैनिक संघर्ष हुआ हो।

स्रोत-ग्रन्थ :

1. Turkistan Down to Mongol Invasion (W. Bartold)
2. Heart of Asia (E. D. Ross)
3. History of Bokhara (A. Vambery)
४. इस्कुस्स्त्वो स्रेद्निइ आज़िइ



१५. तोबाका तुर्क साम्राज्य (५६६ ई०)
भूल—पृष्ठ १११ पर पढ़िये ।



१६. पूर्वी और पश्चिमी तुर्क साम्राज्य (६२८ ई०)
भूल—पृष्ठ ११७ पर पढ़िये ।

अध्याय ३

गज़नवी (६६८–१०५६ ई०)

§१. उद्गम

गजनवी वंश ने पंजाब और सिंध पर भी शासन किया था, महमूद गजनवी ने बनारस, कालिंजर और सोमनाथ तक लूट-पाट मचाई, इसलिये भारतीय इतिहास को उसका काफी परिचय है। लेकिन पंजाब छोड़कर बाकी भारत के साथ गजनवियों का संबंध केवल लूटमार का था। उनकी शक्ति ईरान, मध्यएसिया (अन्तर्वेद) और अफगानिस्तान में दृढ़ थी। वहीं से सैनिक लेकर महमूद भारत के नगरों और मंदिरों को लूटने आता था। भारत में उसका "चिड़िया रैन बसेरा" जैसा ही था। पहिले हम कह चुके हैं, कि किस तरह सामानियों और उनसे पहिले के समय भी होनहार तुर्क तरुणों को दास-बाजारों से खरीदकर उनको वाकायदा शिक्षा दी जाती थी, जिसमें वह सैनिक-असैनिक ऊंचे पदों के लायक हो सकें। घुमन्तुओं और सामानियों में राजकुमारों का सिंहासन के लियें हमेशा झगड़ा होता रहता था, इसलिये भाई भाई पर क्या पिता-पुत्र पर भी विश्वास नहीं कर सकता था। दास अपने रुधिर संबंध से सिंहासन के लिये दावा नहीं कर सकते थे, इसलिये यह प्रथा बहुत चल पड़ी। अल्प तगिन को सामानियों ने बुखारा जीतकर वहां का शासक नियुक्त किया था। वह भी पहिले इसी तरह का खरीदा गुलाम था। अल्प तगिन पीछे खुरासान का सेनापति* हुआ। इसीने गजनवी-वंशस्थापक सुबुक तगिन को गुलाम के रूप में खरीदा था।

"सियासतनामा" (राजनीति शास्त्र)—सल्जूक सुल्तान मलिकशाहके प्रसिद्ध वजीर निजामुल्मुल्क ने इसे उसी अभिप्राय से लिखा, जिससे कि कौटिल्य ने अपने "अर्थशास्त्र" को लिखा था। निजामुल्मुल्क तूस में पैदा हुआ था। उसका पूरा नाम अबू-अली हुसेन अली-पुत्र इस्हाक-पुत्र अब्बासी था। इसके पूर्वज तूस के आसपास के दहकान थे। विद्या प्राप्ति के समय उमर खैय्याम और हसन सब्बाह-पुत्र इसके सहपाठी रहे। विद्या समाप्ति के बाद बलख के मौतमिद अली शाहज़ान-पुत्र के यहां लेखक (कातिब) हो गया। कुछ अनबन हो गई, तो उसे छोड़कर दाऊद मेकाइल-पुत्र सल्जूकी के पास चला गया। आगे अल्प अरसलन और मलिकशाह के जमाने में निजामुल्मुल्क का सितारा चमका और सारी सल्जूकी हुकूमत इसके हाथ में थी।

"सियासतनामा" में वर्णित राजनीतिक नियमों और सिद्धान्तोंकी बातें बड़ी सरल फारसी गद्य में हैं। उसमें अपनी बात को साफ करनेके लिये, लेखकने कितनी ही जगह उदाहरणार्थ ऐतिहाहासिक कहानियां[1] और भूगोल आदि की बातें दी हैं।

---

[1] "सियासतनामा" अध्याय २७

निज़ामुलमुल्क समाज में वर्ग-भेद को उचित और आवश्यक समझता था। इसे भगवान का काम बतलाते हुए वह लिखता है (पृ० ३)—"आग जंगल में पैदा होती है। वहां जो कुछ सूखा रहता है, वह सब जल जाता है, और सूखे के साथ रहने की वजह से बहुत सा गीला भी जल जाता है। इसी तरह बन्दगों (सेवकों) मेंसे एक को भगवान की कृपा से सौभाग्य और धन प्राप्त होता है। उसके लिये भगवान (हकताला) अन्दाजे के अनुसार प्रताप सुलभ करता है। उसे अकल और इल्म देता है, जिसमें कि वह इस अक्ल और इल्म के द्वारा नीचे वालों से में हरेक को अन्दाजा से संपत्ति मिले, हरेक को उसकी योग्यता के मुताबिक दर्जा और निवास दे, आदमियों में से इन के लोगों और खिदमतगारों को नियुक्त करे, और उनमें से हरेक को सम्मान तथा पद देवे, लौकिक-पारलौकिक कामों में उनके ऊपर विश्वास करे। प्रजा का काम है, आज्ञाकारिता का रास्ता पकड़े और अपने काममें तत्पर रहे।

अल्प तगिन—अल्पतगिन को इस्माईल (सामानी) ने खरीदा था, और उसने आखिरी उमर में नस्र-पुत्र अहमद की कुछ साल तक सेवा की थी, नूह के ज़माने में खुरासान का सिपहसालार बना था। जब नूह मर गया, तो नूह-पुत्र मंसूर बादशाह बना। उसकी बादशाही के भी ६ साल बीते। अल्पतगिन ने हर तरह कोशिश की, लेकिन नूह-पुत्र मंसूर के मन को अपनी ओर न कर सका।. . . लोगों ने मंसूर से कह दिया—"जब तक अल्पतगिन को तू नहीं मारता, तब तक तू बादशाह नहीं रह सकता।. . . तू बादशाह नहीं है, तू राज्य नहीं कर रहा है। ५० साल से वह (अल्पतगिन) खुरासान में बादशाही कर रहा है। सेना उसकी बात मानती है। अगर तू उसको गिरिफ्तार करे, तो उसके धन से तेरा खजाना भर जायेगा। उपाय यह है, कि उसे दरगाह (दरबार) में बुला और ऐसा कहला भेज कि जबसे हम तख्त पर बैठे, तू दरगाह में नहीं आया और अहद (नियुक्ति-पत्र) को नया नहीं किया। हमारी इच्छा है—तू हमारे लिये पिता की जगह है।. . . ."जब यहां आये, तो उसे एकान्त में बुला और हुकम देकर उसका सिर कटवा दे।"

अमीर मंसूर ने ऐसा ही किया। उसे दरगाहमें बुलाया। अल्प तगिन के साहिबखबर (चर) ने लिख दिया, कि तुझे किस काम के लिये बुला रहे हैं। अल्प तगिन ने चाहा, बुखारा चलें और नेशापोर से सरख्श की ओर कूच कर दिया। उसके साथ करीब तीस हजार सवार थे। खुरासान के सारे अमीर उसके साथ थे। जब वहां से तीन रोज का रास्ता आगे गया, तो उसने लश्कर के अमीरों (सेनपों) को बुलाया और उनसे कहा—"तुम्हें एक बात कहनी है। जो कुछ मैं कह रहा हूं, इसके बारे में जो ठीक समझो, वह मुझसे कहो, ताकि मैं जानूं।"

उन्होंने कहा—"हम तुम्हारे सेवक हैं।"

उसने कहा—"तुम जानते हो, कि अमीर मंसूर मुझे किसलिये बुला रहा है?"

उन्होंने कहा—"इसलिये कि तुम्हें देखें और अहद (नियुक्तिपत्र) को ताजा करें।

उसने कहा—"जैसा तुम लोग समझते हो, बात ऐसी नहीं है। मलिक (सुल्तान) मुझे इसलिये बुला रहा है, कि मेरे सिर को धड़ से अलग करे। वह बच्चा है। आदमियों की कदर नहीं जानता। तुम जानते हो, कि सामानियों के मुल्क को सालों से मैं संभाले हुए हूं। तुर्किस्तान के खानों में जिसने बुरी नीयत की, उसे मैंने हराया।"

अमीरों ने जब उसे बदला लेने के लिये कहा, तो उसने उत्तर दिया—"दुनिया के लोग

कहेंगे, कि अल्प तगिन ने साठ साल सामानी खानदान को संभाले रक्खा, जब उसकी उमर अस्सी बरस की हो गई, तो अपने स्वामि-पुत्रों से अलग हो उनके मुल्क को दखल किया, स्वामी की जगह गद्दी पर बैठा। मैंने सारी उम्र नेकनामी से गुज़ारी, अब जबकि कबर के किनारे पहुंच गया हूं, यह ठीक नहीं, कि मैं अपने नाम पर धब्बा लगाऊं। यह खूब मालूम है, कि गुनाह उसकी तरफ है, लेकिन सभी लोग इसे नहीं जानते। कितने ही लोग कहेंगे, कि गुनाह अमीर (सुल्तान) का है, कुछ लोग कहेंगे कि गुनाह अल्प तगिन का है। मैं उसके राज्य की इच्छा नहीं रखता और न उसकी बुराई चाहता हूं। जब तक मैं खुरासान में हूं, तब तक यह बात नहीं होगी। अगर मैं खुरासान से बिदा हो जाऊं और उसके मुल्क से बाहर निकल जाऊं, तो मतलबी लोगों को बात का मौका नहीं मिलेगा। जब तक मेरे हाथ में तलवार खिंच सकती है, तब तक रोटी हाथ में ला सकता हूं। इसी तरह बाकी उमर बिताऊंगा। अच्छा है कि अपनी तलवार को काफिर (गैर-मुस्लिम) के सिर पर चलाऊं, जिसमें कि मुझे पुण्य मिले। अब समझे? यह सेना, खुरासान, ख्वारेज्म, नीमरोज और मावराउन्नह्र (अन्तर्वेद) की होनेसे अमीर मंसूर की है, तुम सभी उसके आज्ञाकारी (सेवक[1])हो। मैंने तुम्हें उसको दे दिया। उठो और उसकी दरगाह में जाओ। उसकी खिदमत में रहना। मैं हिन्दुस्तान की ओर जाऊंगा और धर्मयुद्ध और जहाद में लगूंगा। अगर मारा जाऊंगा, तो शहीद होऊंगा, अगर सफलता पाई, तो कुफ्र के भवन को इस्लाम का भवन बनाऊंगा।

किसी को यह विश्वास नहीं था, कि वह खुरासान छोड़कर हिन्दुस्तान जायेगा, जब कि खुरासान और मावराउन्नह्र में उसके पांच सौ गांव जायदाद के थे, कोई ऐसा शहर नहीं था, जहां पर उसकी सराय (महल), बाग, कारवांसराय, और गरमाबा (स्नानगृह) न हों। उसके पास बहुत अधिक सम्पत्ति थी। हजार-हजार भेड़ें, और सौ-हजार घोड़े तथा ऊंट उसके पास थे। अल्प तगिन के मन में हुआ, बलख चलें। चलकर वहां एक-दो महीना मुकाम करें, जिसमें कि जो भी ग़ज़ा (धर्मयुद्ध) की इच्छा रखने वाले हैं, वह मरावरउन्नह्र, खुत्तलान और बलख के इलाके से उसके पास आवें।

इसपर भी चुगलखोरों ने चुगली की और मंसूर ने १६ हजार सवार के साथ एक अमीर को बुखारा से बलख जाने के लिये कहा, जिसमें जाकर उसको गिरिफ्तार करें।

जब लश्कर तेरमिज़ पहुंचकर जैहूं (वक्षु) नदी पार हो गई। तो अल्प तगिन ने खुल्म की तरफ कूच कर दिया। खुल्म और बलख के बीच में एक तंग दर्रा है। इसी तंग दर्रे में चार फर्सख का रास्ता जाने पर खुल्म मिलता है। अल्प तगिन उस दर्रे में पहुंचा। उसके पास २० हजार गुलाम सवार थे। सभी अच्छे आदमी थे। धर्मयुद्ध के लिये आठ सौ आदमी और आकर शामिल हुए।"

---

[1] बन्दगों (गुलामों) की शिक्षा—सियासतनामा के २७ वें अध्याय में निजामुल्मुल्क ने तुर्क-गुलामों की शिक्षा का सविस्तर वर्णन किया है, और वहीं अल्पतगिन और सुबुक तगिन जैसे सौभाग्यशाली बन्दगों का जिक्र किया है (पृ० ९४-१०८)—"पुराने समय में गुलामों की परवरिश और शिक्षा की व्यवस्था उनकी खरीद के दिन से बुढ़ापे तक की जाती थी।"

अल्प तगिन कूच करके बामियान पहुंचा। अमीर-बामियान ने उसका विरोध किया, जिसपर वह बन्दी बना। अल्प तगिनने उसे माफ कर दिया और उसे खिलअत दे अपना बेटा कहा। बामियान के इस अमीर का नाम शेर बारीक था। वहां से अल्प तगिन काबुल की ओर चला। उसने अमीर-काबुलको हराया, उसके लड़केको बन्दी बनाया और उसे भी उसी तरह (पुत्र) कहकर पिता के पास भेज दिया। यह काबुल-राजा का पुत्र लोयक का दामाद था, वहाँ से गजनी जाने का इरादा किया। अमीर गजनी भाग गया। जब अल्प तगिन गजनी पहुंचा, तो (वहां का राजा) लोयक बाहर आया और उसने युद्ध किया। अमीर-काबुल का पुत्र दूसरी बार पकड़ा गया। (गजनी के फतह करने पर) तीन दिन ढिंढोरा पीटा गया, कि 'जिस किसी के पास मुसलमानों का माल मिलेगा, उसके साथ मैं वही करूंगा, जैसा कि मैंने अपने गुलाम के साथ किया (एक गुलाम को अल्प तगिन ने मौत की सजा दी थी)।' उसकी सेना बहुत डरी। लोग सन्तुष्ट हुए। नागरिकों ने जब इस शान्ति और न्याय को देखा, तो कहा—'हमें ऐसा ही बादशाह चाहिये, जो कि न्यायी हो। फिर हम उसको अपने प्राण बच्चे-स्त्री के समान मानेंगे। हमारा अभिलषित यही था, चाहे तुर्क हो, चाहे ताजिक।' तब उन्होंने नगर का दरवाजा खोल दिया और अल्प तगिन के पास आये। लोयक ने जब यह देखा, तो वह भागकर किले में बन्द हो गया, और २० दिन बाद निकल कर अल्प तगिन के सामने आया। अल्प तगिन ने उसे जागीर दी। उसने किसी को दुःख नहीं दिया, गजनी में अपना घर बनाया और वहां से जा हिन्दुस्तान को लूटा। वहां से बहुत सा लूट का माल लाया। गजनी से काफिरों (हिन्दुओं) का मुल्क १२ दिन का रास्ता था। खुरासान, मावराउन्नह्र, नीमरोज में खबर पहुंची, कि अल्पतिगन ने हिन्दुस्तान के दरबन्द (घाटे) को खोल दिया और वहां से बहुत सा सोना-चांदी, पशु ले आया, भारी गनीमत का माल प्राप्त किया; तो चारों ओर से लोग (गाज़ियों की सेना में भरती होने के लिये) दौड़े। यहां तक कि ६ हजार सवार जमा हो गये। उन्होंने बहुत से वलायत (प्रदेश) दखल किये और बेगापुरतक साफ कर दिया, वलायत अपने हाथ में किये। हिन्दुस्तान का शाहंशाह डेढ़ लाख सवार और पैदल तथा पांच सौ हाथियों के साथ सामने आया, यह ख्याल करके कि अल्पतगिन को हिन्दुस्तान की भूमि से बाहर कर दें या उसको उसकी सेना के साथ मार डालें।...

निजामुल्मुल्क ने अल्पतगिन को सामानियों द्वारा पालापोसा, बन्दा बतलाते हुए लिखा है (पृ० ९५)—"३५ वर्ष की उम्र में उसने खुरासान की सिपहसालारी (सेनापतिपद) पाई। वह बड़ा ही ईमानदार और विश्वासपात्र, बहादुर, होशियार, ईश्वर से डरनेवाला था। वह सालों खुरासान का वली (राज्यपाल) रहा। उसके पास २७०० गुलाम (बन्दी) तुर्क रहते थे। एक दिन उसने ३० गुलाम खरीदे, जिनमें एक महमूद का पिता सुबुक तगिन भी था। उसे खरीदे तीन ही दिन बीते थे। वह गुलामों के बीच अल्पत गिन के सामने खड़ा था। उसी समय हाजिब ने आकर अल्प तगिन को कहा—"अमुक गुलाम जिसे वसाक बाशी का पद मिलने की आज्ञा थी, नहीं है। उसके दर्जे ओर उत्तराधिकार को किस गुलाम को दिया जाये।" इसी समय अल्प तगिन की नजर सुबुक तगिनके ऊपर पड़ी और उसकी जबान पर आ गया—"इसी गुलाम को मैंने प्रदान किया।"

हाजिब ने कहा—"स्वामी, अभी इस गुलाम को खरीदे तीन रोज से अधिक नहीं हुये। अभी इसने एक साल भी सेवा नहीं की, उस दर्जे पर पहुंचने के लिये सात साल सेवा करनी चाहिये।

अल्प तगिन ने कहा—"मैंने कह दिया, गुलाम ने सुन लिया, और सेवा कर दी। मैंने उसे जो प्रदान किया, उसे नहीं लौटाऊंगा। यह बसाकबाशी का पद इसे दे दिया।"

अल्प तगिन ने अपने मनमें सोचा, हो सकता है, यह गुलाम के तौर पर नया-नया खरीदा तरुण तुर्किस्तानमें किसी बुजुर्ग (कुलीन पिता) का पुत्र हो। शायद यह काम को अच्छी तरह करे। यह सोचकर उसने परीक्षा लेने की सोची। जो भी पैगाम देकर भेजा, जो काम दिया, किसी में उसने गलती नहीं की। परीक्षा में हर रोज वह अच्छा उतरता गया, इसलिये अल्प तगिन के दिल में उसके लिये स्नेह हो गया। जब सुबुक तगिन १८ साल का हो गया, तो उसके नीचे २० गुलाम दिये। एक दिन अल्प तगिन ने २० गुलामों को देकर हुकम दिया, कि वह खलज और तुर्कमान लोगों के पास जायें और उनके पास जो मालगुजारी बंधी हुई है, उसे वसूल कर लायें। सुबुक तगिन भी इन गुलामों में था। जब वहां पहुंचे, तो खलजों और तुर्कमानोंने सारी मालगुजारी नहीं दी। गुलाम नाराज हो गये, और हथियार उठाकर जंग करने का इरादा करने लगे, जिसमें कि जबर्दस्ती मालगुजारी वसूल कर लें। सुबुक तगिन ने कहा—"मैं हर्गिज लड़ाई नहीं करूंगा' और इसमें तुम्हारा सहायक नहीं बनूंगा। इसपर उसके साथियों ने फिर कहा। तब उसने जवाब दिया—"क्योंकि खुदाबन्द (स्वामी) ने हमें जंग करने के लिये नहीं भेजा, बल्कि कहा कि मालगुजारी ले आवें। अगर जंग करें और वह हमें हरा दें, तो यह बड़ी बुरी बात होगी और हमारे खुदाबन्द की इज्जत को हानि पहुंचेगी। फिर खुदाबन्द कहेगा, कि बिना हुक्मके क्यों तुमने जंग किया।..." अधिकांश लोगों ने भी कहा, कि वह ठीक कह रहा है। उन्होंने लड़ाई नहीं की और लौट गये। अल्प तगिन के पास जाकर कहा कि 'तुर्कमानों ने सरकशी की और मालगुजारी नहीं दी'। अल्प तगिन ने कहा—'क्यों हथियार नहीं उठाया? लड़ाई करके मालगुजारी उनसे क्यों नहीं लिया?' उन्होंने कहा—'हम जंग करनेवाले थे, लेकिन सुबुक तगिन ने नहीं करने दिया। अल्प तगिन ने सुबुक तगिन को कहा—'क्यों तूने जंग नहीं किया, और क्यों नहीं गुलामों को जंग करने दिया?"

सुबुक तगिन ने कहा—'इसीलिये, कि हमारे खुदाबन्द ने आज्ञा नहीं दी थी। अगर बिना हुकम के जंग करते, तो हममें से हरेक खुदावन्द (स्वामी) था, बन्दा नहीं। बन्दगी (सेवक धर्म) यह है, कि उतना ही करे जितने के लिये कि खुदाबन्द ने हुक्म दिया।'

अल्प तगिन खुश हुआ और उसने कहा—'ठीक कह रहा है।'

फिर उसे तीस सौ गुलामों के अफसर का पद दिया।

अल्प तगिन को पुत्र नहीं था, कि उसको अपनी जगह बैठाये। सुबुक तगिन गुलाम था, जिसे उसने पहिले खरीदा था। उसका हक ज्यादा था। दूसरों ने कहा कि सुबुक तगिन अपनी होशियारी मुरौवत, दानशीलता, सुस्वभावता और ईश्वर से भय खाने, विश्वासपात्र होने....के कारण सबसे बढ़कर है। उसे हमारे खुदाबन्द ने पाला है, और उसके कामों को पसन्द किया है। अल्प तगिन के सारे स्वभाव और आचरण उसमें हैं। सबने एक राय होकर....सुबुक तगिन को अपना अमीर बनाया। सुबुक तगिन ने ज़ाबिलिस्तान के स्वामी की लड़की ब्याही थी, जिससे महमूद पैदा हुआ, इसी कारण उसे जाबिली कहा जाता था।"

तुलनात्मक गजनवी-सल्जूकी-गोरी-वंश

सन् ई०	भारत (कन्नौज)	चीन	दक्षिणापथ	उत्तरापथ
	(प्रतिहार)	(खित्तन)	(गज़नवी)	(कराखानी)
१०००		शेङ्चुङ ९८३-१०३१		
	राज्यपाल १०१८-		महमूद ९९७-१०३०	तुगान १०१२-२५
१०२०				कादिर १०२५-३२
	त्रिलोचन १०२७-	शिङचुङ १०३१-५५	मसऊद १०३०-४१	अर्सलन १०३२-५६
	यश १०३७-			
१०४०			मौदूद १०४१-४८	
			इब्राहीम १०४८-५१	
		ताउचुङ १०५५-११०१	(सल्जूकी)	बोगरा १०५६-५९
			तुगरल १०३६-६३	
१०६०			अल्पअर्सलन १०६३-७३	तुगरलकरा १०५९-७४
	(गहडवाल)		मलिकशाह १०७३-९२	बोगराहारून १०७४-०२
१०८०	चंद्रदेव १०८०-			
			महमूद १०९२-९४	
			बर्कियारुक १०९४-११०४	
११००	मदनचंद्र ११००-	त्यान्-चू-ती ११०१-२५	मलिकशाह ११०४-१७	अर्सलनमहमूद ११०२-३०
		(चिन्)		
	गोविंद १११४-	ताइ-चू १११५-२३	सिंजर १११७-५७	(कराखिताई)
११२०		ताइचुङ ११२३-३५		येलू ११२५-४३
		शो-चुङ ११३५-४९		
११४०				चेलुगू ११४३-८२
		है-लिङ वाङ ११४९-६१		
	विजय० ११५५		(गोरी)	
११६०		शीचुङ ११६१-९०		
	जयचंद्र		गयासुद्दीन -१२०३	

११७०-११९४

११८० 'गुरखान'

११८२-१२१०

चाङवुङ ११९०-१२०९

§२. राजावलि—

गजनवी राजा इस प्रकार हैः—

१. सुबुक तगिन - ९९७ ई०
२. महमूद सुबुकतगिन-पुत्र ९९७-१०३० ई०
३. मसऊद महमूद-पुत्र १०३०-१०४१ ई०
४. मुहम्मद महमूद-पुत्र १०४१-
५. मौदूद मसऊद-पुत्र १०४१-
६. इब्राहीम -१०५९ ई०

१. सुबुक तगिन (—९९७ ई०)

सुबुक तगिन योग्य सेनापति तथा शासक था। अल्प तगिनके उत्कर्षमें उसका भी हाथ था और उस के खुरासान छोड़ गज़नी में नये राज्यकी स्थापनामें सुबुक तगिनका काम काफी था। सुबुक तगिन अल्प तगिनके मरने पर भी सामानी वंश का भक्त रहा, किन्तु अंतिम शासक ने सुबुक तगिनके लिये गद्दी छोड़ दी। इसके बाद भी वह अपने को जीवन भर सामानियोंका अधीन सामन्त मानता रहा, यद्यपि अब राजशक्ति सामानियोंके हाथसे बड़ी तेजीसे निकलती जा रही थी।

२. महमूद (९९७-१०३० ई०)

महमूद अपने पिता सुबुक तगिनके मरनेके बाद गद्दी पर बैठा। समानियोंसे झगड़ा था, इसलिये उसे खुरासान छोड़कर गज़नीके ऊपर अपना ध्यान लगाना पड़ा और अन्तमें वह गद्दीपर बैठनेमें सफल हुआ। अन्तिम सामानीकी मृत्युके बाद सामानी राज्य कराखानियों और गजनवियों में बंट गया। जुलक़दा ३८९ हि० (अक्तूबर-नवम्बर ९९९ ई०) में इलिक खानकी सेना बुखारा में प्रविष्ट हुई। इसी महीनेमें महमूद अपने पिता की गद्दीपर बैठा। वह स्वतंत्र शासक था, और उसे सामानियोंको अपना अधिराज माननेकी अवश्यकता नहीं थी। बगदादी खलीफा अब केवल धार्मिक गुरु भर रह गया था और उसका राज्य कितने ही स्वतंत्र राज्यों (रियासतों) में बँट चुका था, तो भी वह इस्लाम का बड़ा पोप था। स्वतंत्र शासक उसके पास बड़ी बड़ी भेंटें भेजा करते और खलीफा उन्हें भारी भरकम पदवियां प्रदान करता। खलीफा कादिर[१] (९९१—१०३१ ई०) ने महमूद को "बली अमीरुल्-मोमनीन खुरासान-पति" (खलीफाका खुरासानी राज्यपाल) का "अहद" (शासन-पत्र) एक मुकुट और "यमीनुद्दौला-अमीनुल्मिल्लत" (राज्य-दक्षिणबाहु,

---

[१] निजामुल्मुल्क : "सियासतनामा"

जातीय-अमीन) की उपाधि के साथ भेजा था। महमूदने खुरासानमें अपने खुतबेमें खलीफा कादिरका नाम पढ़वाया। यह वही खलीफा था, जिसे ९९१ ई० में दैलिमियोंकी कृपासे गद्दी मिली थी, लेकिन सामानियोंने उसे खलीफा नहीं माना था। भारतके राजाओंकी तड़क-भड़क तथा सामानियोंकी शान-शौकतको दुगना करके महमूदने अपने दरबारको सजाया था। महमूदने ही पहिले-पहल इस्लाममें "सुल्तान"की उपाधि कमसे कम दरबारी कामोंमें धारणकी थी। वैसे साधारणतया वह "अमीर महमूद" ही कहा जाता था। महमूदके सिक्कों तथा गरदेज़ीके इतिहासमें "सुल्तान"की पदवी उसके साथ जुड़ी मिलती है।

सामानियोंके खतम होनेके बाद कराखानी और गजनवी एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी बने। महमूदके "वली-अमीरुल्मोमनीन" बननेपर इलिक खान क्यों पीछे रहता? उसने अपनेको "मौला-अमीरुल् मोमनीन" (खलीफाका सरदार) घोषित किया तथा अपने सिक्कोंपर खलीफा कादिरका भी नाम उत्कीर्ण करवाया। इलिक नस्रके सिक्कोंपर उसकी पदवी "नासि-रुल्हक" (सत्यरक्षक) है। कराखानी और गजनवी प्रतिद्वन्द्वी और पड़ोसी भी थे। हमेशा हर बातका फैसला तलवारसे करना अच्छा नहीं था, इसलिये १००१ ई० में महमूदने शाफई इमाम अबूतैयब सलहा मुहम्मद-पुत्र सालकी और सरख्शके गवर्नर तथा अपने भाई तुगान्चिक को दूत बनाकर इलिक खानके पास उज़गन्द भेजा। इलिक नस्रने उनका अच्छी तरह स्वागत किया और बहुमूल्य रत्न, कस्तूरी, घोड़े, ऊंट, दासी-दास, सफेद बाज़, काले समूरी चर्म, हुतुब् (बलरस) की सींग, तथा चीनकी कितनी ही बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंटके साथ अपनी लड़कीको महमूदकी खातून बनानेके लिये भेजा। इस प्रकार दामाद बनाकर यह भी तै किया, कि वक्षु (आमू-दरिया) दोनों राज्योंकी सीमा रहे। लेकिन इस संधिको सबसे पहिले कराखानियोंने तोड़ा। दरअसल कराखानी जैसे घुमन्तुओंमें जनमत इतना प्रबल होता था, कि खानके मिलानेसे काम नहीं चलता था।

महमूदने भारतके काफिरोंसे धर्मयुद्ध छेड़ रखा था। वह इस समय प्रतिवर्ष लूट-मारके लिये भारत जाया करता था। १००६ ई० में ऐसे ही एक अभियानमें जाकर वह मुल्तानमें ठहरा हुआ था, जब कि कराखानियोंने अपनी दो सेनाओंको खुरासानके ऊपर भेज दिया। पहिली सेनाको सुबासी तगिनके नेतृत्वमें नेशापोर और तूसको दखल करनेका और दूसरी सेनाके सेना-पति जाफर तगिनको बलख लेनेका काम मिला था। दोनोंने अपने कर्तव्य पूरे किये। बलखके नागरिकोंने कराखानियोंके साथ कुछ गुस्ताखी दिखलाई, जिसपर शहर लूट लेनेकी आज्ञा हो गई। नेशापोरके जन-साधारण तटस्थ रहे, किन्तु धनीमानी लोग अन्तर्वेदकी तरह गाज़ी महमूदके पक्षमें थे। यह खबर महमूदको मुल्तानमें मिली। वह तुरन्त लौट पड़ा और जाफर बलख छोड़कर वक्षु पार तेरमिज़ भागनेके लिये मजबूर हुआ। सुबासी तगिन भी महमूदका मुकाबिला नहीं कर सका और अपने सामान लदे काफिलेको ख्वारेज्मशाह अलीके पास भेज कर बची-खुची थोड़ी सी सेनाके साथ अन्तर्वेदकी ओर भागा। उसका भाई और नौ सौ सैनिक महमूदके बन्दी बने। महमूदका ध्यान बँटानेके लिये इलिकने जाफरको छ हजार सैनिकोंके साथ बलख पर आक्रमण करनेके लिये भेजा, लेकिन उस सेनाको वक्षु तटपर ही महमूदके भाई नस्रने छिन्न-भिन्न कर दिया। इलिकने इस घोर पराजयसे नाराज होकर अपने सैनिकोंको फटकारा। इसपर उन्होंने हिन्द-विजेताकी सेनाके बारेमें कहा—"व अँ फ़ीलान व सलाह् व आलात व मरदाँ

हेचकश मुकावमत न तवानद्" (ऐसे हाथियों, हथियारों और आदमियोंके साथ कोई नहीं लड़ सकता)। दूसरे साल इलिकनें स्वयं महमूदके खिलाफ युद्ध-क्षेत्रमें उतरनेका निश्चय कर अन्तर्वेदके देहकानोंको लड़नेके लिये बुलाया और अपने भाई कादिर खान यूसुफ (खोतनके शासक) के साथ जो झगड़ा चल रहा था,उसमें समझौता कर लिया। फिर उसके "चौड़े मुंह, छोटी आंखों, चिपटी नाकों, नाममात्र मूछ-दाढ़ीवाले, लोहेकी तलवार तथा काली पोशाकवाले" कराखानी तुर्क महमूदका मुकाबिला करने आये। बलखसे चार फरसख (२४ मील) पर सरखियान पुलके पास रविवार ४ जनवरी १००८ ई० (२२ रबी २, ३९८ हि०) को लड़ाई हुई। महमूद भारतमें केवल हीरा-मोती ही नहीं बटोरता था, बल्कि लड़ाईके सामान भी ले जाता था। इस लड़ाईमें उसने पांच सौ हाथी ला खड़े किये। तुर्क हाथियोंसे लड़नेके अभ्यासी नहीं थे, न उनके घोड़े हाथियोंके सामने ढीठ होकर जा सकते थे। महमूदकी रक्षा इस युद्धमें इन्हीं भारतीय हाथियोंने की, नहीं तो वह कहीं का नहीं रहता। कराखानी सेना पूर्ण रूपसे पराजित हुई। जो भागे, उनमेंसे भी बहुतेरे वक्षु नदीमें डूब गये। कराखानी सामानियोंके खुरासानी इलाकेको भी अपने हाथमें करना चाहते थे, लेकिन वह पूरी आफतमें फंसे। इसमें संदेह नहीं, इस हारमें कराखानियोंका घरेलू झगड़ा भी कुछ कारण था। इलिकके बड़े भाई तुगान खान काशगरीने भाईके विरुद्ध महमूदके साथ दोस्ती की थी। इलिकने भाईपर चढ़ाई करना चाहा, लेकिन इस वक्त काशगरके रास्तेको बरफ रोके हुई थी, इसलिये इलिकको उजगन्द लौट जाना पड़ा। फिर दोनों भाइयोंके दूत विजेता महमूदके पास पहुंचने लगे। महमूदने १०११-१२ ई० में दोनों भाइयोंमें समझौता कराया। इलिक १०१२ ई० में मर गया।

§३. महमूद और ख्वारेज़्मशाह

(१) अली--मामून ख्वारेज्मशाहके बाद उसका पुत्र अबुल् हसन अली ख्वारेज्मशाह बना। सुबुक तगिनके अभियानसे ज्ञात है, कि अली कराखानियोंके अधीन था। इलिक और उसके सहायकोंको जब महमूदने हराया, तो ख्वारेज्मशाह महमूद गजनवीका मित्र बन गया। महमूदने उसके साथ अपनी बहन व्याह दी तथा अलीके भाई तथा उत्तराधिकारी अबुल्-अब्बास मामून (11) मामून (1)-पुत्रको भी अपनी एक बहन १०१५ (४०६ हि०) में दी।

(२) मामून (11)—खलीफा कादिरने मामूनके पास भी अहद (नियुक्ति-पत्र),खिलअत, ध्वजा (राजचिह्न), "ऐनुद्दौला व ज़ैनुल्मिल्लत" (राज्य-नेत्र, जाति-भूषण) की पदवी भेजी। सीधे लेनेमें महमूदके क्रोध का डर था, इसलिये मामूनने अपने दरबारी तथा प्रसिद्ध विद्वान् अबू-रेहाँ अल्बेरूनीको रेगिस्तानमें जा खलीफाके दूतसे भेंट स्वीकार करनेके लिये भेजा। मामून और महमूदकी दोस्ती ज्यादा दिनोंतक टिक न सकी। महमूदने इलिक खान और तुगानसे संधि करली। मामूनने उस संधिमें भाग लेनेसे इन्कार कर दिया, जिसके कारण दोनोंके संबंध बिगड़ गये। अपने वजीर अबुल्-कासिम अहमद हसन-पुत्र मैमन्दीके परामर्शानुसार महमूदने अपने पुराने दोस्तकी परीक्षा करनी चाही। १०१४ ई० में ख्वारेज्मशाहके दूतसे वजीरने कहा, कि मामूनके राज्यमें महमूदके नामसे खुतवा जारी किया जाये। ऊपरसे ऐसा दिखलाया गया, मानो वजीरने सुल्तानकी इच्छाके बिना ही यह सुझाव रक्खा। ख्वारेज्मशाहने पहिले आना-कानी की। तब मैमन्दीने स्पष्ट शब्दोंमें यह मांग रखी। मामूनने अपने सेनापतियों और जन-प्रतिधिनियोंको

बुलाकर उनके सामने यह बात रखते हुए कहा—इन्कार करनेपर महमूद हमारे देशको सत्यानाशमें मिला देगा। लेकिन, उसके अमीरोंने माननेसे साफ इन्कार कर दिया और विद्रोह का झंडा उठाया। तलवार निकाल कर उन्होंने महमूदके लिये अपमानजनक कड़े-कड़े शब्द इस्तेमाल किये। मामूनने दूतसे मीठी-मीठी बातें करके शान्त करनेकी कोशिश की। अल्-बेरूनीने भी "अपनी सुनहली-रुपहली वाणी" से समझाकर महमूदके वजीरके सामने शाहसे माफी मंगवाई। इसी समय अपने पक्षको मजबूत करनेके लिये अल्बैरूनीके परामर्शानुसार मामूनने इलिक और तुगान खानके झगड़को शान्त कर उनमें मेल कराया। मामूनके इस अनुचित दखलसे नाराज़ होकर महमूदने बलखसे अपना दूत भेज, तुगान खान और इलिकके सामने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने उत्तरमें कहा—"हमने मामूनको आपका मित्र और बहनोई जानकर उसकी बातपर ध्यान दिया", और साले और बहनोईका झगड़ा मिटानेके लिये मध्यस्थ बननेकी इच्छा प्रकट की, किन्तु महमूदने इसका उत्तर भी देनेकी अवश्यकता नहीं समझी।

कराखानियोंने मामूनको सारी बात बतला दी। मामूनने सलाह दी, कि ख्वारेज्म और कराखानी दोनों, एक एक वाहिनी खुरासान भेजें, जो कि प्रजाको बिना दुःख दिये भिन्न-भिन्न दिशाओंसे जाकर वहां शान्ति स्थापित करें। कराखानी इस सलाहको माननेके लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने फिर साले-बहनोईके बीच मध्यस्थ बननेकी बात दुहराई। मामूनने उसे स्वीकार किया। कराखानियोंके दूतने १०१६-१७ ई० में महमूदके पास पहुंचकर मीठी-मीठी बातें कीं। महमूदने भी कहा—तुम्हारे कहनेसे हम सभी बातोंको भूल जाते हैं। इसके बाद ही महमूदने मामूनको निम्नपत्र लिखा—

"यह मालूम है, कि हम दोनोंके बीचमें किन शर्तोंके साथ मित्रताकी संधि हुई थी, और ख्वारेज्मशाहपर हमारा कितना उपकार है। खुतबाके संबंधमें उसने हमारी इच्छाओंका पालन यह जानते हुए किया, कि अगर ऐसा नहीं किया, तो क्या दशा होगी? लेकिन उसके लोगोंने उसे इस काममें स्वतंत्र नहीं रहने दिया। मैं 'प्रतिहार और प्रजा' का शब्द (ख्वारेज्मशाहके लिये) इस्तेमाल नहीं करता, क्योंकि ऐसे लोगोंके लिये इस शब्दका इस्तेमाल नहीं किया जा सकता, जो कि सुल्तानको कह सकते हैं 'यह करो' यह नहीं करो।' इस बातसे शासनकी कमजोरी और असमर्थता प्रकट होती है, सचमुच ही यही बात थी। इस अवस्थासे नाराज़ होकर मैंने यहां बलखमें इतने समय तक ठहर कर एक लाख सवार तथा पैदल, एवं पांच सौ सैनिक हाथी इन राजद्रोहियोंको सज़ा देनेके लिये जमा किये, . . . जिन्होंने अपने प्रभुकी इच्छाके प्रति विरोध प्रदर्शित किया। उन विश्वासघातियोंको मैं ठीक करना चाहता हूं, साथ ही अपने भाई तथा साले अमीरको ऊपर उठाना चाहता हूं, और उसे दिखलाना चाहता हूं, कि शासन किस तरह करना चाहिए। एक निर्बल अमीर इस कार्यके अयोग्य है। हम गज़नी तभी लौटेंगे, जब कि निम्न तीन मांगोंमेंसे एकको पूरा करनेके साथ मेरे पास पूर्ण क्षमा-याचना पहुंचेगी—(१) "मेरे नामसे खुतवा जारी किया जाय और पहिले के वचन-दानके अनुसार पूरी आज्ञाकारिता और रजामन्दी प्रकट की जाय, (२) हमारे पास हमारे योग्य पैसा और भेंट भेजी जाय, जिसे कि हम चुपकेसे लौटा देंगे, क्योंकि हमें व्यर्थके पैसोंकी अवश्यकता नहीं है, उसके बिना भी सोने-चांदीके बोझसे दबती भूमि और किले हमारे पास हैं, (३) अथवा क्षमा-पत्रके साथ क्षमायाचनाके लिये अपने अमीरों, इमामों

और फकीहोंको मेरे पास प्रार्थना करनेके लिये भेजे, जिसमें कि मैं वहांसे अपने साथ पकड़ लाये कई हजार आदमियोंको लौटा दूं।"

ख्वारेज्मशाहने तीनों शर्तें पूरी करना ठीक समझा। उसने खुतबाको पहिले खुरासानके अपने नगरों नसा और फाराबमें, उसके बाद काथ और गूरगंज इन दोनों राज-धानियोंको छोड़ बाकी शहरोंमें भी जारी किया। कितने ही शेखों, काजियों और दीवानोंको अस्सी हजार दीनार तथा तीन हज़ार घोड़ों को भेंटके रूपमें भेजा। इसका प्रभाव उसकी प्रजापर बुरा पड़ा ओर हजारास्पमें तैयार सेनाने मामूनके बुखारी हाजिब (अमात्य) अल्प तगिनके नेतृत्वमें उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कितने ही अनुयायी और वज़ीर मारे गये, बाकी भाग गये। ख्वारेज्मशाह मामून किलेमें बन्द हो गया। विद्रोहियोंने बुधवार २० मार्च १०१७ ई० को किलेमें आग लगा दी और मामूनको मार डाला।

(ग) अबल् हारिस (१०१७)—मामूनके मरनेके बाद उन्होंने उसके भतीजे अबुल हारिस मुहम्मद अली-पुत्र (१०१७ ई०) को गद्दीपर बैठाया, जो कि उस समय सात सालका बच्चा था। सारी ताकत अल्प तगिन और उसके द्वारा नियुक्त वज़ीरके हाथमें थी। विद्रोहियोंने मनमाने तौरसे धनियोंको लूटा-मारा और इस मौके से लाभ उठाकर अपने वैयक्तिक दुश्मनोंसे बदला लिया।

महमूद गजनवीके साथ जो झगड़ा खड़ा हुआ था, उसमें मामूनने अपने सालेको खुश रखनेके लिये अपने प्राण तक खोये। इसके लिय महमूद कोई कड़ा कदम उठाना चाहता था, लेकिन उसकी बहन अभी ख्वारेज्ममें थी। उसको डर लगा, कि कहीं विद्रोही उसको नुकसान न पहुँचायें। इसलिये नरमीसे काम लेते हुए उसने केवल खुतबा जारी करने तथा हत्यारोंको समर्पण करनेकी मांग पेश की। दूतको यह भी सिखला दिया था, कि वह जाकर विद्रोहियोंसे कहे-- सुल्तानको यदि खुश करना चाहते हो, तो उसकी बहनको सही-सलामत उसके पास भेज दो। विद्रोहियोंने बहनको तुरन्त भेज दिया, और पांच-छ आदमियोंको हत्यारा कहकर जेलमें डाल दिया। संधि हो जानेपर वह दो लाख दीनार और चार लाख घोड़ोंके साथ हत्यारोंको भेजनेकी भी तैयारी करने लगे। लेकिन, महमूद इतने से थोड़े ही क्षमा करनेवाला था? वह ख्वारेज्मपर आक्रमण करनेकी तैयारी करने लगा। वक्षु-तटके नगरों—खुत्तल, कबादियान और तेरमिज—में सैनिक अभियानके लिये नौकायें बनने लगीं। आमूल (चारजूय) में रसद जमा होने लगी। इस सैनिक तैयारीकी गंभीरताको छिपानेके लिये ख्वारेज्मके दूतको साथ लिये महमूद गजनीकी ओर चल पड़ा। वहां जाकर उसने साफ जवाब दिया—यदि अपनी भलाई चाहते हो, तो अल्प-तगिन और दूसरे विद्रोही नेताओंको मेरे पास भेजो। ख्वारेज्मियोंके लिये लड़नेके सिवाय कोई चारा नहीं था। उन्होंने पचास हजार सवार जमा किये। अभियानके लिये प्रस्थान करते हुए महमूदने इलिक और तुगानखानको सूचित किया—मैं अपने बहनोईका बदला लेने तथा उस देशपर क़ब्ज़ा करने जा रहा हूं। उन्होंने तुम्हें और मुझे बहुत कष्ट दिया है। कराखानियोंने देखा, कि ख्वारेज्म भी महमूदके हाथमें चला गया, तो हम पश्चिमसे भी घिर जायेंगे। तो भी महमूदकी इतनी धाक थी, कि कराखानियोंने संधि नहीं तोड़ी और विद्रोहियोंको दण्ड देनेके महमूदके संकल्पका समर्थन किया—"क्योंकि ऐसा करनेसे दूसरों को शिक्षा मिलेगी कि राजाओंका खून बहानेकी कोशिश नहीं करनी चाहिये।"

महमूद आमूलसे वक्षुके बायें किनारे किनारे अपनी सेना लेकर चला। ख्वारेज्मकी सीमा पर अवस्थित जाफराबादमें महमूदने अपने सेनापति मुहम्मद इब्राहीम-पुत्र ताईके आधीन सेना भेजी। उसके ऊपर अचानक रेगिस्तानकी ओरसे खुमारताश शराबीने आक्रमण किया। ताईकी सेनाकी बड़ी हानि हुई, लेकिन इसी समय महमूद आ गया, और सेनाका सर्वनाश नहीं होने पाया। ख्वारेज्मी पराजित हुए। खुमारताश महमूदका बन्दी बना। अगले दिन हजारास्पके पास ख्वारेज्मकी प्रधान-सेनाके साथ मुठभेड़ हुई। यहां भी ख्वारेज्मी पूर्णतया पराजित हुए और विद्रोहियोंके नेता अल्प तगिन (बुखारा) और सैयद तगिनखानी बन्दी बने। सैयद चुप रहा लेकिन अल्प तगिनने महमूदको मुंहतोड़ जवाब दिया। आगे बढ़ते हुए महमूदने ३ जुलाई १०१७ ई० को ख्वारेज्मकी राजधानी कातको दखल किया। वहीं उसने तीन विद्रोही नेताओंको हाथीके पैरों तले रौंदवाया और उनकी लाशको हाथीके दांतपर टंगवा सारे शहरमें यह कहते हुए घुमवाया कि राजाओंके हत्यारोंकी यही अवस्था होती है। फिर उन्हें फांसी पर लटका दिया।

दूसरे विद्रोहियोंको भी उसने अपराधके अनुसार दण्ड दिया। महमूदके कितने ही राजनीतिक शत्रु भी कुफ्रके अपराधमें तलवारके घाट उतारे गये। बच्चे ख्वारेज्मशाह (अबुल्-हारिस मुहम्मद) को उसके परिवारके साथ महमूदने अपने साथ ले जा भिन्न-भिन्न किलोंमें कैद कर दिया। ख्वारेज्मी सेनाके पैरोंमें बेड़ी डालकर गज़नी ले गये, जहांसे पीछे मुक्त कर काफिरोंके साथ लड़नेके लिये भारत भेज दिया।

ख्वारेज्मशाहका पुराना वंश खतम हुआ। उसकी जगहपर महमूद गजनवीने अपने प्रधान हाजिब अल्तूनताशको ख्वारेज्मशाह बनाकर एक नये वंशकी स्थापना की।

(१) अल्तुनताश (१०१७)—द्वितीय ख्वारेज्म शाह अल्तूनताशकी मददके लिये महमूदने अरसलन जाज़िबको एक बाहिनी देकर ख्वारेज्म भेज दिया।

कराखानी इसेपसन्दनहीं करते थे, कि महमूदकी शक्ति बहुत बढ़ जायेलेकिन उन्हें अपने झगड़ोंसे फुर्सत नहीं थी। महमूदका विश्वसनीय मित्र तुगान खान ने १०१७ (४०८ हि०) में चीनकी ओरसे आये काफिरोंके एक लाख उर्दू (तंबुओं)पर विजय प्राप्त की किन्तु जल्दी ही वह मर गया।

० ० ० ० ०

तुगान खान और अली तगिन दोनों तुगान खान (1) के पुत्र थे। अलीके पुत्र यूसुफके भी सिक्के मिले हैं। अली तगिन पहिले पहल इलिक नस्रके समय अन्तर्वेदमें आया। जैसा कि मैमन्दीने १०३२ ई० में महमूदसे कहा था—"अलीतगिन तीस सालसे अन्तर्वेदमें रह रहा है।" महमूद गजनवी १०२५ ई० में अन्तर्वेदकी भूमि में गया। उसी समय उसने कराखानियोंकी कमजोरी देखकर उनपर आक्रमण कर दिया। बहाना था—अली-तगिनके अत्याचारकी शिकायत देश-वासियोंने मेरे पास भेजी और तुर्क खाकानके पास भेजे गये मेरे दूतको रास्ता नहीं दिया गया। महमूदने वक्षु पार करनेके लिये जंजीरों से बंधी नावोंका पुल तैयार कराया। शगानियानका अमीर महमूदसे आ मिला, फिर ख्वारेज्मशाह अल्तूनताश भी आ पहुंचा। महमूदने अपने लिये १० हजार घोड़ोंके बांधने लायक एक विशाल तंबू तैयार कराया। जब इसकी खबर सारे कराखानियोंके महाखान कादिर खानको मिली, तो वह पूरबसे अभियान करते हुए समरकन्द पहुंचा। महमूदका शिविर उसके शिविरसे और दक्षिण था। कादिर खान समरकंन्दमें आकर

वहांसे और आगे बढ़ता बड़े शान्तिपूर्ण भावके साथ महमूदके शिविरसे एक फर्सख (६ मील) की दूरीपर आकर रुक गया। तंबू गाड़ दिए गये, फिर खानने महमूदके पास अपने आनेकी सूचना देनेके लिये दूत भेजकर कहा—"मैं तुमसे मिलना चाहता हूं।" महमूदने एक दूसरेके देखने लायक सुरक्षित स्थान ठीक कर दिया। खान और सुल्तान दोनों वहां आकर अपने घोड़ोंसे उतर पड़े। महमूदने पहिले ही अपने खज़ानचीके हाथमें कपड़ेमें लिपटे एक बहुमूल्य हीरेको दे रखा था। घोड़ेसे उतरते ही उसे खानको भेंट देनेका हुक्म दिया। कादिर खानने भी एक रत्न देनेके लिये रख रखा था, किन्तु चलते समय जल्दीमें भूल गया। पीछे उसने अपने परिचारक द्वारा रत्न भेजकर महमूदसे क्षमा मांगी। दूसरे दिन महमूदने साटनके एक बड़े सुंदर तंबूको गाड़नेका हुकम दिया और उसमें भोजकी तैयारी कराई। कादिर खानको दूत भेजकर भोजनके लिये निमंत्रित किया।

खानके आनेपर महमूदने बड़े ठाट-बाटके साथ दस्तरखान फैलानेका हुक्म दिया। एक ही दस्तरखानपर अमीर महमूद और खान भोजन करनेके लिये बैठे। भोजन समाप्तिके बाद दोनों "प्रमोदशाला" में गये। उसे दुर्लभ फूलों, सुस्वादु मेवों, बहुमूल्य रत्नों, सुनहरे गोटा-पट्टों, कमखाबों, बिल्लौरके सुंदर दर्पणों तथा दूसरी अनेक प्रकारकी दुर्लभ वस्तुओंसे सजाया गया था। शालाको देखकर कादिर खान चकित हो गया। दोनों प्रमोदशालामें कुछ समय तक बैठे रहे। अन्तर्वेदके तुर्क खानोंमें रवाज नहीं था, इसलिये कादिर खानने शराब नहीं पी। दोनों कुछ समय तक संगीत सुनते रहे। इसके बाद कादिर खान उठा। महमूदने अपने मेहमानके योग्य भेंटें उपस्थित करनेके लिये आज्ञा दी। इन भेंटोंमें निम्न चीज़ें थीं—सोने-चांदीके मद्य-चषक, बहुमूल्य रत्न, बगदादकी दुर्लभ वस्तुएं, सुन्दर कपड़े, मूल्यवान् हथियार, रत्न जटित सोनेकी लगामवाले अनर्घ घोड़े, रत्नजटित सोनेकी अमारियोंके साथ १० हथनियां, बरज़ा के सुनहले साजोंवाले खच्चर, सोने-चांदीके डंडे और घंटियोंवाले पाथेय, खच्चर, गोटा-पट्टे, साटन, बहुमूल्य कालीन, कामदार शिरोबंद, तबारिस्तानी गुलाबी रंगकी छींट, भारतीय तलवारें, चन्दन, भूरे अम्बर, अच्छी जाति की गदहियां, बरबरी बाघके चमड़े, शिकारी कुत्ते, सारस, हरिन और जानवरोंके शिकार करनेवाले सुशिक्षित बाज़ और शाहीं। महमूदने बड़े शिष्टाचार और सम्मानके साथ कादिर खानसे बिदाई लेते उसके सामने कृतज्ञता प्रकट की और मेहमानीकी त्रुटियोंके लिये क्षमा मांगी।

अपने शिविर में आकर जब कादिर खानने भेंटकी चीजोंको देखा, तो वह बड़े आश्चर्यमें पड़ गया और समझ नहीं पाया, कि प्रतिदानमें क्या भेजे। उसने अपने कोषाध्यक्षको खजानेका दरवाजा खोलनेके लिये हुकम दिया और उसमेंसे बहुतसी अशर्फियोंके साथ तुर्क-भूमिमें उपजनेवाली चीजों—सोनेकी लगाम और रिकाब वाले बढ़िया घोड़ों, सुनहले कमरबन्द और जामा पहिने तुर्क दासों, बाज, नाना प्रकारके समूर, काली लोमड़ीके समूर, चमड़ेके बर्तन, सींग सहित दो बकरियोंकी खालसे बनाये गये बर्तन, चीनी साटन आदि—को भेजा। दोनों शासक बहुत संतोषके साथ मित्रतापूर्वक एक दूसरेसे विदा हुए। इस भेंटका राजनीतिक निश्चय यह हुआ, कि दोनो मिलकर अन्तर्वेदसे अली तगिनको खतम करके वहां कदिर खानके द्वितीय पुत्र यगान तगिनको शासक बनायें। महमूदकी पुत्री ज़ैनबका व्याह यगान तगिनसे और महमूदके द्वितीय पुत्र मुहम्मदके साथ कादिर खानकी पुत्रीका व्याह तै हुआ। महमूद अपने बड़े लड़के मसऊदसे प्रसन्न नहीं था; वह अपने दूसरे पुत्र मुहम्मदको उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। लेकिन, सारी योजना अभी पूरी नहीं हो सकी थी, कि महमूदको अपने प्रतिद्वन्द्वी अली तगिनके सहायक तुर्क-

मानोंके सरदार सल्जूक-पुत्र इसराईलसे भुगतना पड़ा। महमूदने इसराईलको धोखेसे पकड़कर अपने राज्य पंजाबके एक किलेमें बन्द करवा दिया और उसके उर्दू (घुमन्तू अनुयायियों) को नष्ट कर बचे खुचे तुर्कमानोंको खुरासानमें चले जानेकी आज्ञा दी।

अली तगिन बुखारा और समरकन्द छोड़कर मरुभूमिकी ओर भाग गया। उसकी बीबी और लड़कियोंके साथ सारा सामान महमूदके हाजिब बिलगाना तगिनके हाथ लगा। इतनी सफलताके बाद भी अपने सहायकोंकी हित-रक्षाका कुछ भी प्रबन्ध किये बिना महमूद बलख होते गज़नी लौट गया। उसने कराखानियोंकी अन्तर्वेदीय शाखाको बिलकुल ध्वस्त करनेका ख्याल इसलिये छोड़ दिया, कि उससे कादिर खान सर्व-शक्तिमान् हो जाता। पीछे बलखके पड़ोसी प्रदेश तेरमिज़, कबादियान, शगानियान और खुत्तल—प्राचीन तुखारिस्तान—महमूदके हाथमें चले आये। यगान तगिनने गज़ना जा महमूदकी कन्यासे पाणि-ग्रहण करने तथा श्वसुरकी सददसे अन्तर्वेदको जीतने का ख्याल प्रकट किया, तो महमूदने कहा—अभी मैं सोमनाथ नगरके रास्तेमें हूं। इसी बीच शायद तुम तुर्किस्तानमें अपने प्रतिद्वन्द्वीको हरा सकोगे। फिर हम दोनोंकी संयुक्त सेना अन्तर्वेदसे तुम्हारे दुश्मनोंको निकाल देगी। यगान तगिनको महमूदके उत्तरका अर्थ साफ मालूम हो गया और इसे उसने अपना अपमान समझा। कादिर खान और उसके पुत्रोंने अली तगिनके भाई तुगान खानको हराकर बलाशगुन (सप्तनद) छीन लिया। महमूद भारतसे लौटा और शायद अन्तर्वेदमें कुछ छेड़-छाड़ भी की, किन्तु अली तगिन बुखारा और समरकन्दका स्वामी बना रहा। बलाशागुनसे निकाले जानेपर तुगान खानने अक्सीकतमें अपना शासन-केन्द्र बनाया, जहां के १०२६ (४१७ हि०), १०२७ (४१८ हि०) में ढाले उसके सिक्के मिले हैं। लेकिन दक्षिणी फरगानाके उजगन्द (इलिक नस्रकी राजधानी) से १०२५ (४१६ हि०) के पहिलेके कादिर खानके नामके सिक्के, फिर १०२९ (४२० हि०) में अक्सीकतमें भी उसी के सिक्के मिले, जिससे जान पड़ता है कि कादिरखानने पीछे अक्सीकतको भी ले लिया।

१०२६ ई० में क़याखान और बुगराखान दो तुर्क (शायद कराखानी) खानों के दूत राजकन्या मांगने के लिये महमूद के पास आये। महमूद ने बड़े सम्मान के साथ दूतों से कहा—"हम मुसलमान हैं और तुम काफिर, इसलिये हम अपनी बहन-बेटी तुम्हें कैसे दे सकते हैं? हां, अगर तुम मुसलमान हो जाओ, तो शायद बात हो सकती है।" इसी साल महमूद के पास खलीफा कादिर ने महमूदके जीते देशों का "अहद", उसके और उसके बेटों तथा भाई युसूफ के लिये नई पदवियोंके साथ भेजा। महमूद ने खलीफा को सामानियों के असली उत्तराधिकारी होनेके अपने कर्तव्यपालन करनेमें कोई कोताही न करने का वचन दिया। खलीफाने उसे "अखिल प्राचीका महान शासक" की पदवी प्रदान की। उसकी मांग पर खलीफाने इस बातको मान लिया, कि महमूदके द्वारा ही वह कराखानियों से संबंध स्थापित करेगा और उन्हें सीधे भेंट भी नहीं भेजेगा। यद्यपि कराखानियों के साथ महमूद का बर्ताव बराबरी का था, लेकिन खलीफा के सामने महमूद उन्हें अपने अधीन प्रकट करता था। मंगलवार ३० अप्रैल १०३० को महमूद की मृत्यु हुई। उसके बाद कराखानियों और गज़नवियों के संबंध में परिवर्तन हो गया। वक्षु के उत्तर महमूद का राज्य कुछ थोड़े से इलाके ही तक सीमिति था, किन्तु उसके राज्य के रूप में पूर्वी मुसलिम भूमि का शासन अपने चरम विकासपर पहुंचा था।

महमूद के शासन में कुफ्र का दोष लगाकर जहां विरोधियों पर अत्याचार किया जाता

था, वहां उसकी दिग्विजयों के खर्चे के लिये बड़े बड़े टैक्स लगाये जाते थे, जिससे प्रजा लाखों की संख्या में बर्बाद हो रही थी। महमूद ने भारत के नगरों और मंदिरों की लूट के रूप में अपार संपत्ति गजनी में पहुंचाई थी, किन्तु उससे जनता को क्या लाभ ? जनसाधारण के लिये तो महमूद के सारे अभियान सत्यानाश के कारण थे। लोगों को उसके हाकिम जोंक की तरह चूस रहे थे। महमूद के वजीर अबुल्-अब्बास फजल अहमद-पुत्र इस्फराइनी के अत्याचारों के कारण बहुत से आबाद इलाके उजड़ गये। कितने ही स्थानों पर नहरें खराब और कितनी ही जगहों में बिलकुल नष्ट हो गई। इसके ऊपर १०११ (४०१ हि०) का महान् अकाल आया। पहिले पालेने अनाजकी फसल को नहीं पकने दिया, जिससे लोगों को खाने-पीने की चीजोंका भारी अभाव हो गया। केवल नेशापोर और उसके आसपास के गांवों में एक लाख आदमी अकाल की वलि चढ़े। लोगों ने कुत्तों, बिल्लियों को खाकर खतम कर दिया, और कभी कभी आदमी को आदमी का मांस खाते देखा गया। महमूद ने गरीबों में कुछ पैसे बंटवाये। महमूद की बड़ी बड़ी इमारतें भारत की लूट से बनवायी गई थीं, किन्तु उनकी मरम्मत और सुरक्षा के लिये भी बहुत धन खर्च करना पड़ता था, जिसका बोझ प्रजा पर पड़ता था। महमूद ने बलख में एक बहुत सुन्दर बाग बनवाया था, जिसको अच्छी अवस्था में रखने के लिये नागरिकों के ऊपर भारी कर लगा था। वह वहां बराबर नहीं रहता था, पर इसी बाग में अपने जलसे करता था। एक दिन उसने अपने दरबारियों से पूछा—"क्यों बगीचे के इतने मनोहर सौंदर्य के बीच में एक भी प्रमोद महोत्सव मनाने में सफल नहीं होता।" अबूनस्र मिस्कीनने क्षमा मांगते हुए कहा—"बलख के नागरिक इस व्यर्थ के बगीचे की देखभाल के लिये बड़े दुःखी हैं, क्योंकि इस हानिकारक खर्च का बहुत बड़ा भाग उनके सिर पर पड़ता है। इसीलिये सुल्तान के हृदय में आनन्द और उल्लास नहीं हो पाता।" सुल्तान नाराज हो कई दिनों तक अबू-नस्र से नहीं बोला। कराखानियोंके १००६ ई० के आक्रमण का हवाला देते महमूद ने कहा—"मैं ऐसी आफतों से लोगों की रक्षा करता हूं और वह मेरे लिये एक बगीचा भी ठीक-ठाक रखना भार समझते हैं।" इसके चार महीने बाद महमूद ने नागरिकों को बगीचे के कर से मुक्त कर खर्च के लिये यहूदियों के ऊपर कर लगाया।

महमूद के दरबार के रत्न केवल प्रसिद्धि के लिये अपनी इस्लाम-भक्ति प्रदर्शित करते थे, नहीं तो वह सभी ढोंगी थे। महमूद आलिमों और शेखों का संरक्षण तभी तक करता था, जब तक कि वह उसके हाथ में हथियार बनकर काम करने के लिये तैयार रहते थे। उसके धार्मिक युद्ध केवल धन लूटने के लिये थे, यह भारत के अभियान से स्पष्ट है। धर्मान्धता से प्रेरित होकर उसने ऐसा किया, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। कभी कभी वह दूसरे की संपत्ति जप्त करने के बहाने उन पर कुफ्र का अपराध लगाता। महमूद ईरानी राष्ट्रीय भावनाओं का संरक्षक था, यह समझने की गलती की जा सकती है, क्योंकि महमूद के कहने पर फिरदौसी ने अपने महान् ग्रंथ "शाहनामा" को लिखा। महमूद की सेना में सबसे अधिक क्रीतदास और भाड़े के सिपाही थे, बाकी प्रजा महमूद की आंखों में केवल कर देने वाले प्राणी थी, जिनके दिलों में राज-भक्ति या धर्म-भक्ति का ख्याल हो ही नहीं सकता था। बलख के नागरिकों के कराखानियों से मुकाबिला करने की बात पर महमूद नाराज हो गया था। उसकी दृष्टि में युद्ध प्रजा का काम नहीं था। उसने कहा था—"प्रजा को युद्ध से क्या काम ? यह स्वाभाविक था कि शत्रुओं ने तुम्हारे नगर को जला दिया, और आमदनी के एक अच्छे स्रोत, मेरी संपत्ति को नष्ट कर दिया। तुम्हें उन

हानियों की क्षतिपूर्ति मिलती, लेकिन हमने यह सोचकर माफ कर दिया, कि अब तुम फिर ऐसा नहीं करोगे। अगर किसी समय कोई राजा अधिक मजबूत दिखाई पड़े और तुमसे कर लेकर तुम्हारी रक्षा करना चाहे, तो तुम्हें कर चुका कर अपनी रक्षा करनी चाहिये।" इससे मालूम है, कि महमूद का पिता चाहे उन्हीं तुर्कों का गुलाम हो, जिनमें कबीलेवाली सामन्तशाही रहते भी कुछ हद तक सादगी और सैनिक जनतांत्रिकता थी; किन्तु, महमूद एक बिल्कुल निरंकुश शासक था। उसके सामने प्रजा को सिर झुकाये कर देने के सिवाय और कोई अधिकार नहीं था।

उसके दरबार में भी ऐसे ही खूसट भरे हुए थे। पहिले सभी कागज-पत्र फारसी में लिखे जाते थे। वज़ीर मैमन्दी ने फिर से अरबी को राजकीय अभिलेखों की भाषा बनाया। ऐसा करने का कारण बतलाते हुए उसने कहा—"(लोकभाषा को मान देने पर) योग्य और अयोग्य सभी बराबर हो गये, जिसके कारण सुन्दर साहित्य की हाट को बहुत नुकसान पहुंचा।" इसीलिये वज़ीर ने लेखकों के तल को ऊपर उठाया। फारसी भाषा का उपयोग उन्हीं कामों में रहने दिया, जहां उसके बिना काम न चलता।

महमूदके राज्यमें लोगोंको दो भागोंमें बांटा गया था—एक वह जो कि सुल्तान की ओर से वेतन पाकर सैनिक सेवा करते थे और दूसरी साधारण जनता, जिसकी कि सुल्तान बाहरी और भीतरी शत्रुओं से रक्षा करता था। सैनिक या प्रजा में से कोई भी सुल्तान की इच्छा के विरुद्ध कोई काम करने का अधिकार नहीं रखता था। महमूद ने अपने पुत्र मसऊद तक के ऊपर खुफिया दूत रख छोड़े थे।[1]

महमूद के बारे में निजामुल्मुल्क ने लिखा है—[1]"एक दिन सुल्तान महमूद अपने खास-गियों और नदीमोंके साथ शराब पिये हुये थे। उसके सिपहसालार अली नोश तगिन और मुहम्मद अरबी उस मजलिस में मौजूद थे। वह सारी रात शराब पीते रहे। जब जगे तो सबेरा हो गया था। अली नोश तगिन पर शराब पीने का अधिक असर हुआ था। उसने घर जाने की इजाजत मांगी। महमूद ने कहा—'दिन होने पर इस हालत में जाना ठीक नहीं है। इसी जगह बैठ होश होने पर जाना। अगर इस हालत में तुझे मोहतसिब (अफसर) देखेगा, तो पकड़ेगा, तेरी आबरू चली जायगी और मेरा दिल दुखी होगा।.... अली नोश तगिन पांच हजार मर्दों का सेनापति, बहादुर था।....

अली नोश तगिन उठ खड़ा हुआ और अपने घर की ओर चला। मोतहसिब ने उसको सौ सवारों और प्यादों के साथ देखा। जब अली नोश तगिन को इस तरह मस्त देखा, तो उसे घोड़े पर से नीचे खींचने का हुक्म दिया और खुद घोड़े परसे उतर कर अपने हाथ से इतना पीटा, कि वह जमीन पर पड़ गया। मोतहसिब एक बूढ़ा तुर्क खादिम (राजसेवक) था।

अली नोश तगिन को उसके घर ले गये। उसने रास्ते में कहा, कि सुल्तान के हुक्म को नहीं माना, इसलिये मेरी यह हालत हुई। अगले दिन जब अली नोश तगिन ने अपनी पीठ को नंगा करके महमूद को दिखलाया, तो वह जगह-जगह कटी थी। महमूद ने हंसकर कहा—'तोबा कर और फिर मस्त हो घर से बाहर न जाना।'

---

[1] सियासतनामा पृष्ठ, ३९-४०

महमूद बदसूरत था। "सियासतनामा" में लिखा है[१] सुल्तान महमूद गाज़ी का मुंह अच्छा नहीं था। वह पीला था। जब उसका पिता सुबुक तगिन मर गया, तो वह बादशाही करने लगा और हिन्दुस्तान (पंजाब) उसके हाथ में आया। किसी दिन सबेरे अपने खास कमरे में जायनमाज़ पर बैठा नमाज़ पढ़ रहा था। दो खास गुलाम एक दर्पण उसके सामने लिये खड़े थे। इसी समय उसका वजीर शमशुल्कफ्फात अहमद हसनने भीतर आ कमरे के दरवाजे से मोजरा और सलाम किया। महमूद ने उसे सिर के संकेत से बैठने को कहा। महमूद ने दुआ पढ़ने से छुट्टी पा कबा (चोगा) पहना, सिरपर कुलाह रखी, आईना में निगाह करके अपने चेहरे को देखकर मुस्कुराया; फिर अहमद हसन से बोला 'तू जानता है, कि इस समय मेरे दिल में क्या आया ?'

उसने कहा—खुदावन्द (स्वामी) उसे बेहतर जानते हैं।

(महमूद ने) कहा—मुझे संदेह है कि लोग मुझसे प्रेम नहीं करते, क्योंकि मेरा चेहरा अच्छा नहीं है। लोगों की आदत है, वह सुन्दर मुंह वाले बादशाह से प्रेम करते हैं।

अहमद हसन ने कहा—ऐ, खुदावन्द, एक काम कर, जिसमें कि स्त्री-बच्चे तुझे अपनी जान की तरह से प्यार करें और तेरे हुकम पर आग-पानी में कूदें।

(महमूदने) कहा—क्या करूं ?

(वजीर ने) कहा—धन को दुश्मन मान, जिसमें लोग तुझे दोस्त मानें।

महमूद को बात पसन्द आई। फिर उसने दान और खैरात करने के लिये अपना हाथ खोल दिया, और लोग उससे प्रेम तथा उसकी प्रशंसा करने लगे। बहुतसे बड़े बड़े काम और विजय उसके हाथ में आये। उसने सोमनाथ को जीता, समरकन्द उसका हुआ, इराक (हाथ में) आया। फिर एक रोज उसने अहमद हसन से कहा—जबसे मैंने धन से अपना हाथ खींच लिया, दोनों लोक मेरे हाथ में आये।

उससे पहिले सुल्तान नाम (किसी का) नहीं हुआ था। वह पहिला आदमी था, जिसने कि इस्लाम में अपने को सुल्तान कहा।"

३. मसऊद (१०३०-४१ ई०)

जैसा कि पहिले कहा, महमूद छोटे लड़के मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, लेकिन मुहम्मद कुछ ही दिनों तक शासक रह सका, फिर उसको हटाकर मसऊदने राजशासन संभाला। मसऊद में अपने पिता के केवल दोष ही मौजूद थे। उसकी सारी शक्ति सल्जूकियों (तुर्कमानों) को दबाने में खर्च हुई, जिन्हें कि महमूद ने अपनी जान नष्ट करके खुरासना भेज दिया था। मसऊद के अत्याचारों से जनता हताश हो गई और उच्च वर्ग ने भी असंतुष्ट हो अन्तर्वेद में अपने दूत भेजने शुरू किये। लेकिन, इस अवस्था का लाभ कराखानियों ने नहीं बल्कि- तुर्कमानों के नेताओं ने उठाया।

गजनवियों और कराखानियों का आपस में क्या संबंध था, इसका पता उस पत्र से मालूम होता है, जिसे ख्वारेज्म शाह अल्तूनताश ने मसऊद के पास भेजा था—"यह अच्छी तरह मालूम

---

[१]वही पृष्ठ ४२

है, कि स्वर्गीय अमीर (महमूद) ने पहिले बहुत अधिक श्रम और धन व्यय करके उनकी सहायता की, जिससे कादिर खान ने बड़ा खान बन अपनी गद्दी को मजबूत किया। इस वक्त यह आवश्यक है, कि उसकी सहायता की जाय, जिसमें वह मित्रता बनी रहे। ये (कराखानी) हमारे सच्चे मित्र नहीं होंगे, तो भी बाहर से अच्छा संबंध रखना चाहिये, जिसमें वह दूसरों को हमारे खिलाफ न भड़कायें। अली तगिन हमारा असली दुश्मन है। वह अपने हृदय में बराबर ईर्ष्या रक्खे हुये है, क्योंकि स्वर्गीय अमीर की सहायता से उसका भाई तुगानखान बलाशगुन से भगाया गया। दुश्मन कभी मित्र नहीं बन सकता, लेकिन उसके साथ भी संधि करनी होती है। मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित करना आवश्यक है। साथ ही हमें बलख, तुखारिस्तान, शगानियान, तेरमिज़, कवादियान और खुत्तल के प्रदेशों को सैनिकों से भर देना है, क्योंकि शत्रु अरक्षित प्रदेशों को लूटने-पाटने के हरेक मौके को हाथ से जाने देना नहीं चाहता।"

मसऊद ने कादिरखान और उसके पुत्र बोगरा तगिन की पुत्रियों को अपने तथा अपने युवराज मौदूद के व्याह के लिये मांगने के वास्ते दूत भेजे थे। अभी बात चल ही रही थीं, कि १०३२ ई० में कादिर मर गया। बड़ा पुत्र बोगरा तगिन सुलेमान अरसलन खान की पदवी धारण करके तख्त पर बैठा। द्वितीय पुत्र यगान तगिन ने बोगरा खान की उपाधि ले तलस और इस्फिजाब पर शासन शुरू किया। मसऊद ने संवेदना प्रकट करने और बधाई देने के लिए दूत भेजे। दूत सफलतापूर्वक ६ सितम्बर १०३४ ई० को गजनी लौट आये। मौदूद की दुलहन रास्ते में मर गई। मसऊद की शाह खातून सही सलामत गजनी पहुंची और बड़े धूमधाम से शादी हुई।

अन्तर्वेद के शासक अलीतगिन के साथ समझौता नहीं हो सका। मसऊद ने अपने भाई मुहम्मद के विरुद्ध मदद करने के बदले अलीतगिन को खुत्तल देने का वचन दिया था। उसके आनाकानी करने पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ, लेकिन वह बिना खून-खराबी के ही तै हो गया। अली-तगिन तो भी खुत्तल न पाने के लिये नाराज़ था। अल्तूनताश ने जो सलाह दी थी, उसे न मानकर मसऊद ने अलीतगिन को अन्तर्वेद से निकालने के लिये कादिर खान के लड़कों को मदद दी। यद्यपि वह खुद नहीं सम्मिलित हुआ, लेकिन अल्तूनताश के युद्ध में इसका असर हुआ। १०३२ ई० में अल्तूनताश सुल्तान की आज्ञा बिना अंतर्वेद में दाखिल हुआ। सुल्तान मसऊद ने १५ हजार सेना बलख से भेजी। इस आक्रमण की खबर सुनकर अलीतगिन बुखारा की रक्षा का भार गाज़ियों (स्वेच्छा सैनिकों) को सौंप वहाँ के किले में १५० गुलाम सैनिक छोड़ खुद दबूसिया में चला गया। शहर ने आत्मसमर्पण कर दिया। सीधे आक्रमण करके किले को भी सर कर दुश्मन ने ७२ गुलाम बन्दी बनाये। लेकिन अलीतगिन की प्रधान सेना के साथ दबूसिया में जो लड़ाई हुई, उसमें उतनी सफलता नहीं हुई। मसऊद तुर्कमानों को अपना विरोधी बना चुका था, इसलिए वह सल्जूकियों के नेतृत्व में अली के साथ हो गये। अलीतगिन के राजचिह्न (छत्र) के साथ तुर्कमानों का लाल झंडा भी पहाड़ पर फहराने लगा। युद्धका कोई निपटारा नहीं हुआ। इसी लड़ाई में अल्तूनताश मरणान्तक घाव से घायल हुआ। वज़ीरकी बुद्धिमानी से सेना किसी तरह सही सलामत ख्वारेज्म पहुंच गई। ख्वारेज्मशाह के घायल होने की बात को छिपाकर वजीर ने अलीतगिन के साथ सुलह की बातचीत शुरू की और सलाह दी कि ख्वारेज्मशाह को बीच में डालकर सुल्तान मसऊद से समझौता की बात की जाये। समझौता हो गया। अलीतगिन

समरकन्द लौटा और ख्वारेज्मी सेना को आमूल (चारजूय) के लूटने में कोई बाधा नहीं डाली। राजधानी की ओर कूच करने से पहिले ही अल्तूनताश मर गया।

मसऊद के आक्रमणों से अलीतगिन की आंखें खुल गईं। उसने समझ लिया, कि यदि हम कराखानी आपसमें लड़ेंगे तो कहीं के नहीं रहेंगे। उसने अपने खानदान से मेल कर, अरसलनखान सुलेमान को अपना अधिराज मान लिया। अब अरसलनखान और बोगराखान के नाम से समरकन्द में भी सिक्के ढलने लगे। अल्तूनताश के बाद उसका पुत्र हारून ख्वारेज्मशाह बना।

(२) **हारून ख्वारेज्मशाह (१०३२ ई०)** हारून नवीन ख्वारेज्म वंश का प्रभावशाली शासक था। वह गजनवियों और दूसरे पड़ौसियों से बराबर लड़ता रहा। ख्वारेज्म की भौगोलिक परिस्थिति ऐसी है, जिसके कारण सदा ही वह एक स्वतंत्र राज्य रहा। अखामनशियों के समय उसे नाम मात्र की ही अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। ग्रीकोबाख्तरी जुये को कभी उसने अपने कंधे पर नहीं रखा। कुषाणों के समय अवश्य वह उनके आधीन हुआ था, किन्तु बहुत दिनों के लिये नहीं। ख्वारेज्म जहां अन्तर्वेद की ओर से कराकुम की विशाल मरुभूमि के कारण दुष्प्रवेश्य था, वहां मेर्वकी तरफ से भी किज़िलकुम की विस्तृत मरुभूमि उसके रक्षा-प्राकार का काम देती थी। पश्चिम तथा उत्तर की ओर भी इसी तरह की उस्तउर्त और किपचककी दुगर्म मरु भूमियां थीं। ख्वारेज्म में आसानी से पहुंचने का रास्ता वक्षु की धारा है। हज़ारास्प के पास वह ऐसी जगह से गुजरती है, जहां थोड़े सैनिकों द्वारा अच्छी तरह प्रतिरक्षा की जा सकती है। इसीलिये किसी भी बाहरी शासक के लिये ख्वारेज्म को अपने हाथ में देर तक रखना आसान नहीं था। अल्तूनताश के राज्य के उत्तर के पड़ोसी कितनी ही घुमन्तू जातियां थीं, जिनमें किपचकों का नाम पहिले पहल इसी समय लिया जाने लगा था। अल्तूनताश ने उनके आक्रमणों का मुकाबिला किया। उसने और उसके पुत्र हारून ने अपने ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तराधिकारयों की भांति अपनी सेना में घुमन्तुओं की भी एक वाहिनी रखी थी। अपने स्वामी गजनवियों की तरह ख्वारेज्मशाह भी अपनी प्रतिहार (गारद)-सेना के लिये भारी संख्या में गुलाम खरीदते थे। इन सैनिकों की अधिकता से महमूद को अल्तूनताश से शंका हो गई थी, तो भी अल्तूनताश ने सदा अपने को गज़नवियों का सामान्त माना। महमूद ख्वारेज्म की शक्ति को जानता था। उसने अल्तूनताश को गज़नी बुलाने का असफल प्रयत्न किया। वही बात मसऊद के लिये भी हुई।

अल्तूनताश के मरने पर मसऊद ने अपने पुत्र सईद को ख्वारेज्मशाह बनाया और अल्तून ताश के पुत्र हारून को केवल "खलीफत्तुद्दार" के तौर पर शासक रहने दिया। उसे भेंट भी बाप के समय से आधी मिलती थी। ऐसी अवस्था को हारून कितने दिनों तक बर्दाश्त करता? १०३४ में उसने आज्ञोल्लंघन करना शुरू किया। हारून का भाई मसऊद के दरबार में था। वहीं १०३३ के अन्त या १०३४ के आरंभ वह छत से गिरकर मर गया। दुश्मनों ने लिख दिया कि सुल्तान ने उसे मरवा दिया। हारून ने भाई का बदला लेने का निश्चय किया और अलीतगिन तथा सल्जूकियों से समझौता कर लिया। अगस्त १०३४ में उसने खुतबा में से मसऊद का नाम हटवा दिया। हारून और अलीतगिन ने मिलकर तै किया, कि ख्वारेज्म सेना मेर्व पर चढ़े और अलीतगिन तेरमिज़-बलख पर। इसी योजना के अनुसार उमूजी पहाड़ियों ने १०३४ ई० के वसंत में खुत्तल पर और वर्ष के आरम्भ में तुर्कमानों ने कबादियान पर आक्रमण किया। मसऊद

का तेरमिज़ का कमाण्डर बेगतगिन तुर्कमानों के मुकाबले के लिये तैयार था, लेकिन वह मैंत्ता के पास वक्षु पार हो गये। वेग तगिन ने जाकर शापूरगान में उनको हराया। पर, उन्होंने उसका पीछा किया। बेगतगिन घायल होके मर गया। मसऊद ने अलीतगिन अब्दुल्ला-पुत्र को सेना देकर भेजा, और उसने तेर्मिज में जाकर अपना शासन स्थापित किया।

(४) सल्जूकी तुर्कमान——

हारून ख्वारेज्मशाह का सौभाग्य था, जो उसे में सल्जूकी जैसे दोस्त मिल गये। १०२९ में अली तगिन और सल्जूकियों में झगड़ा हो गया। अलीतगिन के हुकुम से उसके सेनापति अल्पकारा ने सल्जूक के पौत्र युसूफ को मार डाला। इसी युसूफ को अलीतगिन ने स्वयं इनंच-पैगू कीउपाधि दे अपने सारे तुर्कों का सेनापति बनाया था। अपने नेता के साथ हुये ऐसे विश्वासघात को तुर्कमान कैसे सहन करते? १०३० में युसूफ के चचेरे भाई तुगरल और दाउद ने विद्रोह कर अल्पकारा ओर उसके हजार आदमियों को मार डाला। अल्पतगिन और उसके पुत्र ने साधारण लोगों की सहायता से पीछा करके तुर्कमानों को पूरी तौर से हराकर उनकी सम्पत्ति लूट ली, बहुत से स्त्री-बच्चों को बन्दी बनाया, और बाकी को खुरासान में बसने के लिये बाध्य किया। उत्तरापथ और दक्षिणापथ की घुमन्तू जातियों के इतिहास से हम अच्छी तरह जानते हैं, कि घुमन्तुओं का नाश करना सांप मारने से भी ज्यादा मुश्किल है। इन्हीं तुर्कमान घुमन्तुओं को अब ख्वारेज्मशाह ने अपनी ओर किया। वह कराखानियों और गजनवियों दोनों के दुश्मन थे, इसलिये हारून की बात मानने के लिये तैयार हो गये। हारून ने उन्हें खुरासान और माशरेवातके आसपास की जमीन दे दी, जहां वह चले गये।

तुर्कमान मूलत: सिर-दरिया के उत्तर के रहनेवाले थे। जन्द के तुर्कों से उनकी दुश्मनी थी——अक्तूबर १०३४ में जन्द के शासक शाह मलिक न उनपर आक्रमण कर दिया। सात आठ हजार तुर्कमान मारे गये, बाकी ने बरफ बनी सिरदरिया के ऊपर से भागकर अपनी जान बचाई। हारून ने बीच में पड़कर समझौता कराना चाहा। शाह मलिक इसके लिये तैयार नहीं था, किन्तु खुरासान के लिये एक बाहिनी देने को तैयार हो गया। १२ नवम्बर को नाव पर हारून और शाहमलिक की मुलाकात हुई। हारून की ३० हजार बड़ी सेना देखकर शाहमलिक डर गया और उसने बाहिनी नहीं दी। इस प्रकार १०३५ के अन्त में खुरासान पर आक्रमण नहीं हो सका।

१०३४ के वसन्त में गजनवी शासित पंजाब में भयंकर विद्रोह हुआ——अभी पंजाब में मुसलमान नाम मात्र ही थे। मसऊद उसे दबाने में सफल हुआ।

अल्पतगिन की मृत्यु (१०३४ की गर्मियों या शरद) के समय घुमन्तू तुर्कमान खुरासानकी ओर प्रवास कर रहे थे। १०३५ के वसन्त में अल्पतगिन के बड़े पुत्र के गद्दी पर बैठने की सूचना मसऊद को मिली। उसने बुखारा में अपनी ओर से संवेदना और बधाई भेजी। इस पत्र में उसने तरुण इलिक़ को 'श्रेष्ठ अमीर-पुत्र" कहा था। अलीतगिन के दोनों पुत्र हारून के साथ किये समझौते के अनुसार काम करने के लिये तैयार थे। उन्होंने शगानियान और तेरमिज़ पर आक्रमण किया, फिर वक्षु पार हो अन्दखुद में हारून की सेना से मिलने का निश्चय किया। शगानियान का शासक अबुल्कासिम मुकाबिला नहीं कर सका, और अपने उत्तर के पहाड़ियों (कुमीज्रियों) के देश में भाग गया। इलक की सेना ने दारज़ंगी (दरबंद) पार हो तेरमिज़ को घेर लिया,

लेकिन वह किले को नहीं सर कर सकी। इसी समय खबर मिली, कि गजनवियों ने रिश्वत देकर उसके गुलामों से हारून को मरवा डाला। अलीतगिन के पुत्र लौह-द्वार (दरबन्द) होते समरकन्द लौट गये।

इसी साल खुरासान में सल्जूकियों की सफलता की खबर मिली। हारून की मृत्यु के बाद वह खुरासान में प्रविष्ट हुए थे। अली के दोनों पुत्रों ने शगानियान पर अभियान किया। दो तीन मंजिल समरकन्द से आगे जाने पर मालूम हुआ, कि मसऊद के सेनापति अबुलकासिम और उसके सहायकों ने बड़ी सेना एकत्रित की है, तथा मसऊद अन्तर्वेद पर चढ़ाई करना चाहता है। ८ दिसम्बर (१०३५) को दोनों भाइयों का दूत क्षमा-याचना के लिये मसऊद के दरबार में बलख पहुंचा। मसऊद ने क्षमा दे दी, लेकिन गुस्से के मारे दूत को सीधा दर्शन न दे दानिश-मन्द (अध्यापक) को बीच में रखकर बातचीत की।

हारून के मरने के एक साल बाद दिसम्बर १०३६ ई० में मसऊद के दरबार में अली के दोनों पुत्रों के दूत बुखारा खतीब अल्पतगिन और अब्दुल्ला पारसी आये। अबकी बार सुल्तान ने दूतों से भेंट की और अपने भाई "इलक" की तन्दुरुस्ती के बारे में पूछा। इलक ने एक गज़नवी राजकुमारी व्याह के लिये मांगी थी, और कराखानी कुमारियां मसऊद को देने का वचन दिया था, एवं कराखानियों के प्रमुख अरसलनखान से समझौता कराने में मध्यस्थ बनने की प्रार्थना के साथ खुत्तल की मांग छोड़ देने की बात भी कही थी। इलक ने मसऊद को यह भी कहलवाया था, कि सल्जूकियो के साथ लड़ने में हम आपकी सहायता करेंगे। निश्चय हुआ, कि इलक की बहन मसऊद के पुत्र सईद को व्याह दी जाय, और महमूद की भतीजी (नस्र की पुत्री) इलक को। मसऊद ने बलख के रईस (नगर-पति) अब्दुस्सलाम को दूत बनाकर अन्तर्वेद भेजा, जो कि अली-पुत्रों के दरबार में सितम्बर १०३७ में भी मौजूद था।

तुर्किस्तान के कराखानियों के साथ भी मसऊद का संबंध अच्छा नहीं था। १०३४ ई० में जब गजनवी दूत लौटे, उसी समय बोगरा खान का दूत अपनी दुलहन ज़ैनब को लेने आया। मसऊद इस शर्त पर तैयार हुआ, कि जैनब के नाम पर महमूद की संपत्ति से भाग न मांगा जाय। बोगरा खान का दूत लौट गया। फिर मसऊद ने अरसलन खान से उसके भाई के दावे की शिकायत की। अरसलन खान के फटकारने पर बोगरा खान अपने भाई और मसऊद दोनों के विरुद्ध हो गया। ऐसी अवस्था में सल्जूकियों की सफलता से उसे खुश होना ही चाहिये था। तुगरल से उसकी पहिले से दोस्ती थी। १०३७ ई० में वक्षु तट पर एक जूते बनानेवाले के पास बोगरा खान का गुप्त-पत्र पकड़ा गया, जिसमें तुर्कमान नेताओं को वचन दिया गया था, कि तुम जो कुछ भी कदम उठाओगे, उसमें हम बाधक नहीं होंगे। सुल्तान ने मानो इस पत्र को देखा ही नहीं, ऐसा दिखलाने के लिये जूता बनानेवाले को सौ दीनार देकर भारत भेज दिया, जिसमें पत्र के बारे में कुछ पता न लग सके। फिर १० हजार खर्च करके तुर्किस्तान में अपना दूत भेजा, और अरसलन खान को बीच में पड़कर भाई से समझौता कराने के लिये कहा। २३ अगस्त १०३७ ई० को मसऊद का दूत अबूसादिक कबानी रवाना हुआ और चौदह महीना तुर्किस्तान में रह सफल होकर लौटा। बेहकी के लेख से मालूम होता है, कि इस समय भाइयों के बीच कोई वैमनस्य नहीं था।

२४ सितम्बर (१०३७) को अली के दोनों पुत्रों और किसी एक अज्ञात शासक के दूत मसऊद के पास आये।

बुरीतगिन—१०३८ई० में इलक (1) नस्र का पुत्र अबू-इसहाक इब्राहीम अन्तर्वेद में आया। इस समय उसकी उपाधि बूरी-तगिन थी। अली के पुत्रों जेल से भाग पहिले वह अपने अपने भाई ऐनुद्दौला के पास उज्गन्द में जा कुछ समय तक रहा। १०३८ ई० की गर्मियों में मसऊद के वजीर का उसको पत्र मिला। उसे अनुकूल उत्तर देने के लिये कहा गया। बुरीतगिन कुमीजियों के वेष में हो, तीन हजार सेना जमाकर वख्श, खुत्तल और हुल्बुक के इलाकों में लूट-मार मचाने लगा। पंज नदी के तटपर पहुंचने पर उसे खबर मिली, कि मसऊद स्वयं युद्ध के लिये आ रहा है। बुरीतगिन लौटकर क्षमा-प्रार्थी हुआ, लेकिन मसऊद ने उसके विरुद्ध अक्तूबर के अन्त में दस हजार सेना भेज दी। इसी समय खबर मिली, कि बुरीतगिन खुत्तल छोड़कर कुमीजों के इलाके में चला गया। सेनापति अली को बलख लौटा लिया गया।

मसऊद ने अब अन्तर्वेद पर अभियान करने का निश्चय कर उसी जाड़े में बुरीतगिन को खतम करना जरूरी समझा, जिसमें कि वसन्त में वह तुर्कमानों के खिलाफ अभियान कर सके। वजीर ने बहुत समझाया, "अभियान वसन्त में करना अच्छा है, क्योंकि उस वक्त नई घास चरने के लिये रहती है; या पतझड़ (शरद) में, जब कि फसलें तैयार रहती हैं। बुरीतगिन के विरुद्ध अभियान शगानियान के शासक अथवा अली-पुत्रद्वय पर छोड़ा जा सकता है। सुल्तान को स्वयं जाड़े में नहीं जाना चाहिये।" लेकिन पहिले कह चुके हैं, कि मसऊद ने अपने बाप के केवल अवगुण लिये थे, वह वजीर की बात मानने के लिये तैयार नहीं हुआ। उस समय अन्तर्वेद में जो गड़बड़ी फैली हुई थी, उसके कारण भी वह इस समय को अनुकूल समझता था। तेरमिज के राज्यपाल बेगतगिन को हुकम मिला, कि वह वक्षु पर नावों का पुल तैयार कर दे। पुल तैयार करने वाली जगह नदीके बीच में अराल-पैगम्बर का द्वीप पड़कर वक्षु को दो भागों में विभक्त करता था। पुल तैयार करने में देर नहीं हुई। सोमवार १८ दिसम्बर १०३८ ई० को सुल्तान की सेना नदी पार हो गई। रविवार ३१ दिसम्बर को वह शगानियान पहुंची। यद्यपि शत्रु की ओर से कोई प्रतिरोध नहीं हुआ, लेकिन पहाड़ों में सर्दी और बरफ से मुकाबिला करना पड़ा। इतिहासकार बेहकी स्वयं इस अभियान में मसऊद के साथ था। उसने लिखा है—"कभी भी कोई इस तरह की तकलीफ में नहीं फंसा होगा।...मंगल ९ जनवरी १०३९ को सेना शूनियान जोतके पर पहुंची। इतने में ही वजीर की चिट्ठी आई, कि सल्जूकी सरख्श से गूजगानकी ओर बढ़ रहे हैं। भय होने लगा, कहीं वह तेरमिज पहुंच कर नावों के पुल को न तोड़ दें, फिर तो सुल्तान अपने देश से विच्छिन्न हो जायेगा। उधर बुरीतगिन ने भी शूनियान-जोत को रोक रक्खा था। सुल्तान लौटने के लिये मजबूर हुआ। शत्रु देश के एक एक चप्पे से परिचित था। उससे मुकाबिला करना आसान काम नहीं था। शुक्रवार १२ जनवरी को वापसी की यात्रा आरम्भ हुई। दो सप्ताह बाद २६ जनवरी को मसऊद तेरमिज पहुंचा। इस सारे समय बूरी तगिन मसऊद का पीछा कर रहा था। उसने बहुत सी रसद और ऊंटों-घोड़ों को छीन लिया। इतने बड़े विजेता के अभियान को विफल करने से बुरीतगिन का महत्त्व बढ़ गया। गजनवी सरकार के पास १०३९ में जो पत्र मिले थे, उनसे पता लगा, कि तुर्कमानों (सल्जूकियों) की सहायता से बुरी तगिन अलीपुत्रद्वय के ऊपर कई विजय प्राप्त कर चुका था। अब प्रायः सारा अन्तर्वेद उसके हाथ में था।

खुरासान में मसऊद ने एक बड़ी सेना तैयार की थी, लेकिन उसके भी सेनापति सुल्तान की तरह ही बड़े तड़क-भड़क से अभियान करनेवाले थे। पास में रसद की एक बड़ी जमात

होने से वह भारी भरकम सेना जल्दी पग नहीं बढ़ा सकती थी। ऐसी सेना के मुकाबिले मरुभूमि को मां-बाप मानने वाले घुमन्तुओं की बहुत हलकी बाहिनी थी, जो कि अपनी रसद को मुख्य सेनांग से १२० मील पीछे रख सकती थीं। साथ ही उसे अन्तर्वेद से भी सहायता मिल रही थी।

हारून का भाई इस्माईल गजनवियों को अपना खानदानी दुश्मन समझता था, इसलिये तुर्कमानों को पीछे की ओर से कोई खतरा नहीं था। मसऊद ने यह रुख देखकर उससे नाराज़ हो १०३८ में ख्वारेज्म का अहद ज़न्द के शासक शाह मलिक के पास भेज दिया और कोशिश की, कि ख्वारेज्मी स्वेच्छा-पूर्वक अधीनता स्वीकार कर लें। इसी प्रयत्न में उसने १०४०–१०४१ तक ख्वारेज्म पर चढ़ाई नहीं की। फरवरी १०४१ ई० में आसीव के मैदान में दोनों पक्षों की तीन दिन तक लड़ाई होती रही, जिसमें ख्वारेज्मी (इस्माईल) पराजित हुआ। शायद वह और भी लड़ते, मगर इसी समय अफवाह उड़ी, कि गज़नवी सेना दक्षिण से आ रही है। विश्वासघात के डर से भी इस्माईल २८ मार्च को राजधानी छोड़ सल्जूकियों के पास भाग गया। अप्रैल में ख्वारेज्म की राजधानी पर शाह मलिक का अधिकार हो गया, और उसने मसऊद के नाम से खुतबा पढ़वाया, यद्यपि उस समय तक मसऊद मर चुका था।

शाहमलिक के अभियान से पहिले ही मई १०४० ई० में सल्जूकियों और गज़नवियों का निर्णयात्मक युद्ध दंदानकान में हो चुका था। सल्जूकियों ने खुरासान पर से गज़नवियों का शासन सदा के लिये खतम कर दिया। सल्जूकी सरदार तुगरल ने युद्धक्षेत्र में ही सिंहासन रखवा उस पर बैठकर अपने को खुरासान का अमीर घोषित किया। इसके बाद उसने तुर्किस्तान के दोनों खानों अलीतगिन-पुत्रों—बूरीतगिन और ऐनुद्दौला—के पास सूचनार्थ पत्र भेजे। गजनवी सेना भाग रही थी, जिसका पीछा उसने वक्षु तट तक किया। इसका उद्देश्य यह भी था, कि अन्तर्वेद में पहुंचकर वहां अपनी उपस्थिति से अपना अधिकार स्थापित करे। दूसरी ओर बेहकी के अनुसार मसऊद ने पत्र में अरसलन खान को लिखा था—मुझे दृढ़ विश्वास है, कि अरसलनखान सहायता देने से इन्कार नहीं करेगा, बल्कि यह भी आशा है, कि वह स्वयं सेना लेकर सल्जूकियों के विरुद्ध अभियान करेगा। सल्जूकियों के महाप्रहार के कारण मसऊद को अब बलख और गज़ना के भी बचा पाने की आशा नहीं थी। वज़ीर के समझाने पर भी मसऊद बुरीतगिन को बलख और तुखारिस्तान का "अहद" दे पंजाब (भारत) चला गया, और गज़नीमें बच रहे अमीरों को सल्जूकियों की सेवा में जाने की आज्ञा दी।

लेकिन मसऊद की शंका गलत निकली।

४. मुहम्मद (१०४१)—

जनवरी १०४१ में मसऊद मर गया। उसके बाद कुछ दिनों तक उसके भाई मुहम्मद ने गद्दी संभाली। महमूद गजनवी इसी को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। एक बार पहिले भी वह असफल हो चुका था, अबकी बार भी कुछ ही महीनों तक वह गद्दी पर रहा। उसे हटाकर मसऊद का शक्तिशाली पुत्र मौदूद अप्रैल १०४१ ई० में गद्दी पर बैठा।

५. मौदूद (१०४१-१०४८ ई०)—

मौदूद ने गिरते हुए गज़नवी वंश को संभालने की कोशिश की। बलख और तेरमिज़ भी उसके हाथ में रहे। अन्तर्वेद के शासक (शायद बूरीतगिन) ने अधीनता स्वीकार की।

बेहकी के लेखानुसार अबुल-हसन अहमद महमूद-पुत्र ने तेरमिज़ में पन्द्रह साल तक सल्जूकियों का मुकाबिला किया और अंत में निराश होकर दाउद सल्जूकी (तुगरल के भाई चाकर) के सामने आत्मसपर्ण किया। तेरमिज के हाथ से निकल जानेपर गज़नवियों के लिये अच्छे दिनों की आशा नहीं रह गई। इतिहासकार बेहकी उस समय तेरमिज़ का शासक था, १०४८ से पहिले वह गज़नी में अभिलेख-विभाग का प्रमुख था। १०४३ ई० में सल्जूकी ख्वारेज्म ले चुके थे और मसऊद द्वारा नियुक्त वहां का शासक मलिकशाह ईरान की ओर भाग गया था। वहां कुछ समय तक वह बेहक जिले का शासक भी रहा, किन्तु अन्त में सल्जूकियों ने पकड़कर उसे मकरान में कैद कर दिया, जहां ही वह मर गया।

६. इब्राहीम (१०४८-५१)—

मसऊद के उत्तराधिकारी इब्राहीम ने सल्जूकियों की अजेय शक्ति के सामने सिर झुकाया और दाऊद के साथ संधि करके १०५९ ई० में बलख को सल्जूकियों के हाथ में दे दिया।

स्रोत-ग्रन्थ :

1. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Bartold)
2. Heart of Asia (E. D. Ross)
३. सोव्यत्स्कया एत्नोग्राफ़िया १९४६ (२)
४. सियासतनामा (निजामुल्मुल्क, लाहौर)

अध्याय ४

सल्जूकी (१०३६-११५७)

सामानियों के राज्य को कराखानियों और गजनवियों ने आपस में बांट लिया था। गजनवियों की शक्ति को ध्वस्त करने में सबसे अधिक हाथ तुर्कमानों का था, जिनके नेता तुगरल खान सल्जूकी ने १०३६ ई० में मसऊद को भारी हार देकर युद्ध-क्षेत्र में ही सिंहासना-रोहण किया था।

§१. राजाबलि

सल्जूकियों के समकालीन राजवंशों की तुलनात्मक वंशावलि निम्न प्रकार थी—

	सल्जूकी	गज़नवी	कराख़ानी	ख्वारेज़मी
		महमूद ९९७-१०३०	इलिकनस्र ९९३-१०१२	मामून II -१०१७
१	तुगरल १०३६-६३	मसऊद १०३०-४१	अरसलन II १०३३-५७	हारून १०३४
		मौदूद १०४१-५६		
२	अल्प अरसलन १०६३-७३	इब्राहीम १०५९	तुगरल युसूफ १०५९-७४	इस्माईल १०४१
३	मलिक शाह I १०७३-९२		बुगरा हारून १०७४-११०२	
४	महमूद I १०९२-९४			
५	बरकियारुक १०९४-११०४		कादिर जिब्रैल ११०३	अनुशतगिन -१०९७
६	मलिकशाह II ११०४			
७	मुहम्मद II ११०४-१११७			कुतुबुद्दीन १०९७-११२७
८	महमूद II १११७-			
९	सिंजर १११७-५७			अत्सिज ११२७-५६

§२. उद्भव*

सल्जूकी कह आये हैं, कि सिर-दरिया के उत्तर के घुमंतू थे। इनके कबीले का नाम तुर्कमान था, जो कि आज भी तुर्कमानिस्तान सोवियत प्रजातंत्र के निवासियों के रूप में मौजूद है। तुर्कमान तुर्कों की गूंज (आगूज़) शाखा के वंशज थे अपने घुमन्तू जीवन के सिलसिले में सिर-दरिया के उत्तरी तट पर पहुंचे थे। यह हम बतला चुके हैं, कि किस तरह यूची-शक हूणों के प्रहार के कारण ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दी में कान्सू से भागने के लिये मजबूर हुए, और उनका पीछा करते हुए हूण और उनके वंशज आवार, तुर्क, उइगुर, आगूज़, किपचक सारे उत्तरापथ में फैल गये। अरब, सामानी, सफ्फारी और ताहिरी को छोड़कर, मध्यएसिया के सारे इस्लामिक शासक तुर्क थे। इन भिन्न-भिन्न तुर्क जातियों की भाषा की समानता को देखने पर उज्बेक, तुर्कमान, किरगिज़ और कज़ाक़ एक ही तुर्क-जाति के मालूम होते हैं। इनके हम तीन भाग कर सकते हैं:—

(१) उत्तरी तुर्क—सिबेरिया के याकूत आदि।

(२) पूर्वी तुर्क—सिङ क्याङ के तुर्क, उज्बेक़, कज़ाक़, कूफा-तातार।

(३) पश्चिमी तुर्क—उस्मान अली (आधुनिक तुर्की) आजुरबायज़ानी, और तुर्कमान।

तुर्कों का मूल देश अल्ताई के आसपास था, जहां से प्राचीन समय में वह बड़ी संख्या में चीन और मध्यएसिया की ओर बढ़े, यह हम बतला आये हैं। चीन की महादीवार ने उनके पूर्वाभिमुख बढ़ाव को रोक दिया, किन्तु तुर्किस्तान की ओर बढ़ने में उन्हें सफलता मिली। वहां से उन्होंने शकों और सोग्दियों के वंशजों को ढकेल या हजम कर घुमन्तू जीवन बिताना शुरू किया। इन उत्तरी घुमन्तुओं की बहुत सी लहरें आगे मध्यएसिया की ओर आती रहीं। इन्हीं में सल्जूकी तुर्कों और चिंगीसी मंगोलों की लहरें भी थीं।

(२) सल्जूक[1]नाम —सल्जूक इनके सरदार का नाम था, जिसने पहिले पहल इस्लाम ग्रहण किया था। इसी कारण तुर्कमान कबीले का नाम सल्जूकी पड़ा, किन्तु इसका मुख्य नाम तुर्कमान ही अधिक प्रसिद्ध है। पश्चिमी तुर्कों में गूज़ों और तुर्कमानों का ही अंश ज्यादा है। हम देख चुके हैं बाज़ वक्त एक विशाल कबीले का प्राचीन नाम एक छोटे कबीले के लिये रह जाता है, जब कि बाकी कबीले वाले दूसरा नाम ग्रहण कर लेते हैं। तुर्कमान भी गूज़ों के अन्तर्गत ही थे, किन्तु उन्हें गूज़ों से अलग दिखलाया गया है। इन्हीं पश्चिमी तुर्कों ने वक्षु-भूमि, अरमेनिया और क्षुद्र-एसिया तक को अपने प्रभाव में ले लिया। उस्मान अली या उस्मानी तुर्क सल्जूकियों की ही एक शाखा थी, जिसने विजन्तीन राज्य को खत्म कर १५ वीं सदी में कस्तुन्तुनिया को अपनी राजधानी बनाया और आगे पूर्वी यूरोप पर अपना राज्य विस्तार किया।

---

*History of Bokhara (A. Vambery)

[1]Turkisten.

पूर्वी तुर्कों की एक शाखा का नाम कावक था जिसी से सल्जूकों (तुर्कमानों) का संबंध था। कावक ताशकन्द से उत्तर की भूमि से ९८५ ई० (३९५ हि०) में अन्तर्वेद में दाखिल हो समरकन्द और बुखारा के पास-पड़ोस में घुमक्कड़ी जीवन व्यतीत करने लगे। चरागाहों की कमी के कारण उन्हें सिर-दरियाके दक्षिण आनेके लिये मजबूर होना पड़ा था। सामानियोंके उत्तराधिकारी महमूद गजनवी का वर्ताव उनके साथ अच्छा था। कभी कभी झगड़ा भी हुआ, किन्तु तो भी उसी ने इन्हें वक्षु पार (खुरासान के) निसा और अबीवर्द में रहने की इजाजत दे दी। उस ससय उनके सरदार का नाम मिकाईल था। गज़नवियों और कराखानियों का जिस समय संघर्ष चल रहा था, उसी समय गूज़ों में भी आपसी वैमनस्य था, जिसके कारण एक शाखा ९५६ ई० (३४५ हि०) में जाकर ज़न्द में बस गई। इनका सरदार सेल्जूक किपचकों के खान पीगू के दरबार को छोड़ने के लिये मजबूर हुआ। यही पहिले पहल मुसलमान हुआ। इसीलिये उसके कबीले का नाम सल्जूक पड़ा।

सेल्जूक के एक पुत्र मिकाईल के लड़के तुगरल और चाकिर दाउद थे और दूसरे लड़के का पुत्र युसूफ था। युसुफको अन्तर्वेदके शासक अलीतगिन ने स्वयं पहिले ईंनच-पैगू की उपाधि दे अपने सारे तुर्कों का सेनापति बनाया, किंतु पीछे नाराज हो उसे मरवा डाला। १०३७ में यूसूफ के चचेरे भाई तुगरल और दाउद ने विद्रोह करके अलीतगिन के सेनापति अल्पकारा और उसके हजार आदमियों को मार डाला। अलीतगिन के प्रहार से उन्हें भारी हानि उठानी पड़ी, यह बात हम बतला आये हैं। खुरासान में महमूदने इन्हें बसाया और हारून ख्वारेज्मशाह ने अपनी ओर मिलाकर तुर्कमानों की शक्ति को बढ़ने दिया। अलीतगिन के दोनों पुत्र उनका कुछ बिगाड़ नहीं सके। अल्तूनताश ख्वारेज़्म शाह से इनकी घनिष्टता बढ़ी और वह अक्सर ख्वारेज्म मे जाड़ा बिताने लगे। हारून ने उन्हें शेराखान और मांशरेवात के पासका इलाका दे दिया था, यह भी हम बतला आये हैं। सल्जूकियों के अपने भाई-बन्द ज़न्द के शासक शाहमलिक ने अक्तूबर १०३० ई० में तुर्कमानों पर आक्रमण करके सात-आठ हजार तुर्कमानों को मार डाला, बाकी बरफ बनी सिर-दरिया को पार कर भाग गये। हारून ख्वारेज्मशाह के बीच में पड़ने पर भी शाह मलिक और सल्जूकियों में समझौता नहीं हो सका, यह बात भी हम बतला आये हैं। तुर्कमानों को अपनी ओर खींचने के लिये ख्वारेज्मशाह, गजनवी और कराखानी, (बुरीतगिन) सभी कोशिश करते रहे, इसी अवस्था से लाभ उठाकर वह अपनी शक्ति बढ़ाने में सफल हुए।

§३. सुल्तान

१. तुगरल मिकाईल-पुत्र' (१०३६-१०६३ ई०)

बड़ा भाई तुगरल तुर्कमानोंका सरदार था, लेकिन सैनिक योग्यतामें उसका छोटा भाई दाऊद (चाकर) उससे अधिक था। १०३६ ई० में मेर्वके पासके निर्णायक युद्धमें मसऊदको उसीने हराकर गजनवी शक्तिको खतम किया था——गज़नवियोंके साथ अन्तिम संघर्ष १०५९ में हुआ, जिसके साथ वह वंश अपने सारे महत्वको खो बैठा। मसऊदको खुरासानसे भगानेके बाद तुगरलने सारे ईरानपर अधिकार जमानेके लिये दैलिमी (बुवायही) वंशको खतम करना आवश्यक समझा। बुवाहियोंकी समाप्तिके बाद तुगरलके राज्यकी सीमा रोमन-राज्यकी सीमा

पर पहुंच गई और कुस्तुन्तुनियाके इंपैरातर कंसतान्तिन मोनोमकको भी मजबूर तुगरलकी मैत्री प्राप्त करनी पड़ी। तुगरलकी अजेय सेना तुर्कमान घुमन्तुओंकी थी, जो कि अभियानोंमें अपने तंबुओं और परिवारके साथ जाया करते थे। १०४८ ई० (४४० हि०) के अन्त तक आजुरबाइज़ान, मेसोपोतामिया और क्षुद्र-एसियापर सल्जूकियोंका शासन स्थापित हो गया। ४०० साल पहिले मरुभूमिके घुमन्तू अरब अपनी विजययात्रा करते सिर-दरियाके किनारे तक पहुँचे थे। इसके बाद उत्तरी तुर्क घुमन्तुओंने इस्लाम स्वीकार किया। अब उन्होंने उलटी विजय-यात्रा आरम्भ की थी और तुगरल जैसे विजेताके रूपमें वह अरबकी मरुभूमि तक पहुंच गये। अरबोंके विजय-प्रवाहका रूप काफिर देशोंके विरुद्ध धार्मिक युद्ध (जहाद) था, जिसके साथ वह रास्तेमें चुन ली गयी संस्कृतियोंके प्रभाव तथा विद्याको भी लेते आये थे। लेकिन, सल्जूकियोंकी विजय-यात्रा किसी संस्कृतिको साथ लिये नहीं आयी थी। वह इस्लाम धर्मके माननेवाले थे, किन्तु थे अभी प्रायः घुमन्तू-बर्बर अवस्थामें। अपनी विजय-यात्राके आरंभ करनेसे पहिले ही उनके पास लिखित भाषा थी, और शायद कोई साहित्य भी। तुगरलके पूर्वज ईसाई या मानीके धर्मके माननेवाले थे। इसका अर्थ है, घुमन्तू होते हुए भी तुर्कमानोंके सरदारोंमें शिक्षा और संस्कृतिका नितान्त अभाव नहीं था। किन्तु जहां तक साधारण तुर्कमान जनताका संबंध था, वह अवश्य मरुभूमिके पुत्र थे। अरबोंने राज्य लुप्त हो जानेपर भी अपने आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक प्रभावको विजित देशोंपर स्थायी तौरसे छोड़ा। पर तुर्क ऐसा कोई उद्देश्य अपने साथ लेकर नहीं आये थे; हां उन्होंने अपने खूनका प्रभाव अवश्य छोड़ा। जहां अरबी-प्रभावके कारण बलख, बुखारा विद्याके केन्द्र बन गये, वहाँ तुर्कमानोंके कारण आज उज़बेकिस्तान, तुर्कमानिस्तान, आजुरबायजान और तुर्की तकका भाग तुर्की-भाषाभाषी हो गया। जहां तक आज़ुरबाइजान और तुर्कीका संबंध है, तुर्क-भिन्न रक्तकी अधिकताके कारण वहांके निवासियोंके चेहरे-मोहरेपर वह मंगोलायित आकृति अधिक नहीं आ सकी।

१०५५ ई० (४४९ हि०) में तुगरल खलीफाकी राजधानी बगदादमें दाखिल हुआ और कायम (१०३१-१०७५) को अब्बासी तख्त पाने और खलीफा बननेमें सहायता की। बाहरसे तुगरलने खलीफाके प्रति भारी सम्मान प्रदर्शित किया, किन्तु १०६३ ई० (४५५ हि०) में उसने खलीफाको लड़की देनेके लिये मजबूर किया। खलीफाकी लड़कीसे तुगरल ब्याह नहीं कर सका था, कि रे (तेहरान) में ७० वर्षकी उम्रमें उसकी मृत्यु हो गई। भाई चाकर (दाऊद) पहिले ही मर चुका था, इसलिये तुगरलका उत्तराधिकारी दाऊद-पुत्र अल्प-अरसलन हुआ।

इतिहासकार इदरीसी तुगरल, अल्पअरसलन और मलिकशाह जैसे सल्जूकी शासकोंकी योग्यताको स्वीकार करता है, लेकिन वह उनके सरदारों और साधारण तुर्कमान कबीलेमें भेद करते हुए लिखता है—"उनके राजा लड़ाकू, समझदार, दृढ़संकल्प, न्यायशील, और दूसरे सुगुणोंसे संयुक्त हैं, किन्तु उनका जनसाधारण क्रूर, जंगली, रूखे और मूर्ख हैं।" प्रथम सल्जूकी और कराखानी शासक, गजनवी महमूद-मसऊदसे भी अच्छे मुसलमान थे। कराखानी जन अपने शासकोंके लिये भी इस्लामिक सदाचारकी पाबन्दी आवश्यक मानते थे, उनके खानतक भी शराब नहीं पीते थे। इन तुर्क शासकों (सल्जूकियों और कराखानियों) में आदर्श न्यायशील राजा बननेकी इच्छा भी थी; किन्तु महमूद तो सुल्तानको सर्व-नियम-विमुक्त मानता था।

"घुमन्तू तुर्कमानोंके नेता अपने जनसाधारण सैनिकसे मुश्किलसे कोई भेद रखते थे, वह

उनके हरेक काममें शरीक होते थे। ऐसे राजा कैसे महमूद और मसऊदकी तरह यकायक स्वेच्छाचारी शासक बन सकते थे? हां, सल्जूकी सुल्तानोने अपने सरदारोंकी गणतंत्री प्रथाको हटा दिया। पहिले साहिब-खबर (राजचर) का एक पद दरबारमें रहता था, जिसे सल्जूकियों ने उठा दिया। घुमन्तुओंके लिये खुफियागिरी करना एक घृणास्पद बात थी। साहिब-खबरकी नियुक्ति न करनेके बारेमें जब पूछा गया, तो द्वितीय सल्जूकी सुल्तान अल्प अरसलनने कहा—"यदि में उन लोगोंके ऊपर साहिब-खबर नियुक्त करूं, जोकि मेरे दिली दोस्त हैं, मुझसे घनिष्टता रखते हैं; तो वह साहिब-खबरकी कोई परवाह नहीं करेंगे और न उसे रिश्वत देंगे। क्योंकि उनको अपनी भक्ति, मित्रता और मेरे साथ अपनी घनिष्टतापर पूरा विश्वास है। दूसरी ओर मेरे विरोधी ओर शत्रु अवश्य साहब-खबरके साथ मित्रता करेंगे और उसे पैसा देंगे। यह स्पष्ट है कि साहब-खबर मेरे मित्रोंके संबंधमें बुरी खबर और मेरे शत्रुओंके संबंधमें अच्छी खबर मेरे पास पहुंचाता रहेगा। अच्छे और बुरे शब्द तीर जैसे होते हैं। अगर बहुत से तीर छोड़े जायं, तो कम से कम एक लक्ष्यपर लग ही जाता है। इसके कारण मित्रोंके संबंधमें मेरी सहानुभूति कम होती जायगी और शत्रुओंके लिये वह बढ़ती जायेगी। थोड़े समयके भीतर ही शत्रु मित्रोंसे भी अधिक मेरे नजदीक हो अन्तमें उनका स्थान लेंगे। इसके कारण मेरी जो हानि होगी, उसका कोई अंदाजा नहीं लगा सकेगा।" इससे उलटे सल्जूकियोंका प्रसिद्ध वजीर निजामुल्मुल्क लिखता है "साहिब-खबरका पद राज्यकी व्यवस्था (कवायद) का एक स्तम्भ है।"

इससे मालूम होगा, कि सल्जूकी शक्ति पाकर अभी बिगडे नहीं थे। उन्होंने अपने घुमन्तू कबीलोंकी सादगी आदि बहुतसे गुणोंको कायम रखा था। लेकिन कब तक ऐसा कर सकते थे, जब कि सभी तरहके स्वेच्छाचारों और दुर्गुणोंसे भरे सामन्ती संसारके वह शासक बन चुके थे।

खुरासान-विजयके बाद उसके कुछ शहरोंके खुतबेमें तुगरलका नाम और कुछमें दाऊदका नाम पढ़ा जाता था। घुमन्तुओंकी स्वच्छंदताके कारण कराखानियोंकी भांति सल्जूकियोंमें भी राज-परिवारिक झगड़े बहुत रहते थे। सारा परिवार राज्यका स्वामी माना जाता इसलिये सल्जूकी राजवंशियोंको अलग अलग नगरोंका शासक बनाकर भेजना आवश्यक था। ये नगर उनकी सैनिक जागीरें थीं। तुर्कोंकी विजयसे पहिले सैनिक जागीरोंका उतना विस्तार नहीं था, जितना की इस समय हुआ। यह सैनिक जागीरदार अपने अर्धदासोंसे निश्चित लगान लेने का ही अधिकार नहीं रखते थे, बल्कि उनके शरीर, संपत्ति, स्त्री-बच्चोंपर भी हक रखते थे। इस प्रथासे सबसे अधिक हानि प्राचीन कालसे चले आये देहकानों (ग्रामपतियों) विशेषकर खुरासानके देहकानोंकी हुई। मंगोलोंके विजय तक खुरासानमें अभी देहकान मौजूद थे, जो परिवार-सहित अपनी गढ़ियोंमें रहते थे। उन्हींकी देखा-देखी सैनिक जागीरदारी पानेवाले तुर्क भी देहकान कहे जाते थे। १०३५ ई० में देहिस्तान, नसा और फाराबके शहर तुगरल, दाऊद और इन दोनोंके चचा पैगू (भगवान्) की जागीरें थीं। इन तीनोंको देहकानकी पदवी थी, जोकि कुछ कुछ वली (गवर्नर) के बराबर मानी जाती थी। देहकानोंके चिह्न थे—दो नोकदार सिरोंवाली टोपी, एक ध्वजा, और ईरानी ढंगसे सिला चोगा, तुर्की प्रथाके अनुसार घोड़ा, चारजामा, एक सोने का कमरबन्द तथा बिना कटे कपड़ेके तीस टुकड़े। देहकानी प्रथाका ह्रास अन्तर्वेदमें वस्तुओंके मूल्य गिरने के कारण भी हुआ। इतिहासकार नरसाखी लिखता है—"मेरे समयमें दानके तौरपर भी कोई भूमि नहीं लेना चाहता था, ऐसी भूमिको भी नहीं, जिसका दाम सामानियोंके समय चार

हजार दिरहम प्रति जिफ्त था। यदि कोई खरीदार मिल भी जाता, तो भूमि बिना जुती ही रह जाती। इसका कारण था शासकोंकी क्रूरता और अपनी प्रजाके साथ उनका निष्ठुर व्यवहार।"

सल्जूकी अन्त तक पानीमें पद्मपत्रकी तरह तत्कालीन समाजसे निर्लेप रहे। इसका पता इसी से मालूम होगा, कि अन्तिम और महाप्रतापी सल्जूकी सुल्तान सिंजर अकबरकी तरह लिख-पढ़ नहीं सकता था। वह सभी तरहकी संस्कृतिसे अपरिचित रहे। राजकाजका सारा काम उनका वज़ीर देखता था। हां, तलवारके महत्वको वह मानते थे, इसलिये उसके धनी थे। ये तुर्क सभ्य देशमें आकर शासक बने, तो भी न वह अपने घुमन्तू जीवनको छोड़नेके लिये तैयार थे और न सभ्य जगत के साधारण कानूनको माननेके लिये ही। वह इसे कायरताका चिह्न मानते थे। उनके व्यवहार और वर्ग-विभाजन सदा अशान्तिके कारण रहे, तो भी अपने कबीलेवालोंके विरुद्ध कोई कठोर कदम नहीं उठा सकते थे, क्योंकि राजवंशके साथके उनके संबंध और सेवाओंको भुलाया नहीं जा सकता था। नियम था, हजार तुर्कमान तरुणोंकी एक वाहिनी जमा की जाय, फिर उन्हें "दरबारी गुलाम" बनाकर शिक्षा दी जाय, जिसमें कि वह साधारण प्रजासे मेल-जोल पैदा कर उनके साथ हिल-मिल जायें, गुलामकी तरह राज्य सेवा करें तथा राज्यवंशके अनन्य भक्त रहें। लेकिन सब कुछ करने पर भी मरुभूमिके स्वच्छन्द पुत्रोंको गुलाममें परिवर्तित करना आसान नहीं था। सल्जूकी प्रजामें तुर्कमान घुमन्तुओं और साधारण अतुर्कमान प्रजाके स्वार्थ भी परस्पर-विरोधी थे। घुमन्तू शान्तिके समय अपनी जीविका पशुपालनसे करते, एक जगहसे दूसरी जगह घूमा करते थे, जब कि साधारण जनता कृषि और शिल्प-व्यवसायसे जीविका करती ग्रामों और नगरोंमें रहा करती थी। हरेक घुमन्तू अपनेको सुल्तानका संबंधी मानता—इसमें शक नहीं सुल्तानका सिंहासन इन्हींके सहारे टिका हुआ था—इसलिये साधारण जनताको नीच दृष्टिसे देखना उनके लिये स्वाभाविक था। इन घुमन्तुओंमें स्त्रियोंका प्रभाव अधिक था, जिसे हम आगे तुर्कान खातून के रूपमें चरम सीमापर पहुंचा देखेंगे।

२. अल्प अरसलन (१०६३-७३ ई०)

चचाके मरनेके बाद अल्प अरसलन[1] वक्षुसे फुरात और कास्पियन तटसे फारसकी खाड़ी तक फैले विशाल राज्यका स्वामी बना। इसने पुराने वज़ीरको हटाकर इस्लामके कौटिल्य हसन अली-पुत्र निजामुल्मुल्कको वजीर बनाया। निजामुल्मुल्कका जन्म १०१८ (४०८ हि०) में खुरासानके तूस नगरमें हुआ। नैशापोरमें पढ़नेके समय यह महाकवि उमर खैय्याम तथा इस्माइली गुरु हसन-सब्बाहका सहपाठी था। पहिले यह गज़नवियोंकी सेवामें था, फिर बलखमें सल्जूकी

---

[1]निजामुल्मुल्कने "सियासतनामा" (अध्याय ४४ पृष्ठ १४५) में अल्प अरसलन के बारे में लिखा है—"अगर चार लाख आदमियोंको वेतन-भोजन दिया जाय, तो निश्चय ही खुरासान मावराउन्नहर (अन्तर्वेद), काशगर, बलाशागून, ख्वारेज्म, नीमरोज़, इराक, पारस, शाम, आज़ुरबायजान, अरमन, अन्ताकिया, येरुसलम (बैतुल्मुकद्दस) जो कोई (देश) स्वामीके पास हैं—उसमें चार लाख की जगह सात लाख सवार हो। (फिर वह) देश और सिन्ध-हिन्द, तुर्किस्तान, चीन और माचीन (महाचीन) तक का स्वामी हो जाये। हब्शा (युथोपिया) बर्बर, रोम, मिस्र और पश्चिम उसका आज्ञाकारी होये।"

वलीका वज़ीर बन ३० साल तक सल्जूकी-साम्राज्यका वज़ीर-आज़म (महामंत्री) रहा। वह न्यायप्रिय, विचार-सहिष्णु और साहित्यानुरागी था। अल्प अरसलनके समय १०५० ई० में तुर्कोंने पहिले-पहल रोमन-राज्यपर आक्रमण किया, जिसमें रोमन-अधीन अरमेनियाका एक भाग उजाड़ हो गया। उन्होंने वहां ईसाइयोंको मार डाला। इस यात्रासे लौटनेके बाद अल्प-अरसलनका विचार वक्षु पार विजय-यात्रा करनेका हुआ। १०७२ ई० में वह दो लाख सेना ले इस विजय-यात्रापर निकला। उसने बेरज़ेमके दुर्गपतिको किसी कसूरमें मृत्यु-दण्ड दिया था, जिसने मौका पाकर अल्प अरसलनको मार डाला। इस मौकेसे फायदा उठाकर कराखानी शासक शम्शुल्मुल्क (१०६९-१०८० ई०) ने तेरमिज़से चलकर बलखको ले लिया। वहांका वली अरसलन-पुत्र अयाज़ पहिले ही भाग गया था।

निजामुल्मुल्क, सुल्तान अरसलन और अपने बारेमें एक जगह लिखता है[१] "सुल्तान शहीद अल्प अरसलन पवित्रात्माके जमानेमें सेवकके लिये एक बात पैदा हुई। सारे जहानमें दो मजहब (संप्रदाय) हैं, एक अच्छा अबूहनीफाका दूसरा शाफई मजहब है। सुल्तान...अपने संप्रदायमें पक्के थे। उनकी जीभसे अक्सर निकल जाया करता था—"ओह, अगर मेरा वज़ीर शाफई मज़हबका न होता"...। वह हनफ़ी था और शाफई मज़हबको दोष देता, इसलिये उससे मुझे हमेशा शंका रहती, मैं डरता रहता। संयोग ऐसा हुआ कि सुल्तान-शहीद (अल्प अरसलन) ने मावरा उन्नहूर (अन्तर्वेद) जानेका इरादा किया, क्योंकि शमशुल्मुल्क (कराखानी) आज्ञाकारी नहीं था, और न (आज्ञानुवर्त्तन) करना चाहता था। (सुल्तानने) सेनाको बुलाया और नस्र-पुत्र शमशुल्मुल्क इब्राहीमके पास दूत भेजा। मैंने दानिशमंद अश्तरको पहिले ही सुल्तानके पास भेज दिया, जिसमें जो कुछ वहां हो, उसकी मुझको खबर दे। सुल्तानका दूत आया। उसने चिट्ठी और समाचार दिया। खानने वहांसे अपने रसूल (दूत) को सुल्तानके रसूलके साथ यहां भेजा। जैसा कि स्वभाव है, दूत समय-समय पर वज़ीरोंके सामने जा और जो अभिप्राय या निवेदन करना होता, उसे कह देते, जिसमें कि वज़ीर उसे सुल्तानसे कहे।....संयोगसे सेवक साथियों के साथ अपने बैठकखानेमें बैठा शतरंज खेल रहा था। शतरंज खेलनेवालोंमें से एकने कहा कि समरकन्दके खानका दूत आया है। मैंने कहा—'तो, ले आओ।...' उससे सुल्तान और वज़ीरके संबंधकी कुछ बातोंका पता लगा।

३. मलिकशाह अरसलन पुत्र (१०७३-१०९२ ई०)

गद्दी पानेमें अरसलनके पुत्र मलिक शाहका हलका सा विरोध हुआ। गद्दी पाते ही उसे कराखानियोंसे मुकाबिला करना पड़ा, क्योंकि उन्होंने अल्प अरसलन के मरते ही बलखको लूटा और बरबाद किया था। १०७३ ई० में ही मलिकशाहने समरकन्दके शासक अल्प तगिन पर आक्रमण किया। अल्प तगिन की मृत्युकी खबर सुनकर उसने तेरमिज़को घेर लिया। अल्पतगिनने मजबूर होकर शांति-भिक्षा मांगी। तबसे १०७९ (४८२ हि०) तक मलिकशाहको कराखानियोंसे झगड़ा करनेकी अवश्यकता नहीं पड़ी। उसके बाद प्रजाके आर्तनाद सुनने के बहाने मलिकशाहने वक्षु पार हो बुखारा

---

[१] वही पृ० ८८०

और समरकन्दको ले लिया और कराखानी शासक अहमद खिज़िर-पुत्रको बन्दी बनाया। समरकन्दसे आगे बढ़ते हुए उसने काशगरपर आक्रमण किया। वहांके खानने भी अपने सिक्के और खुतबेमें सल्जूकी-सुल्तानको अपना अधिराज मान कर प्राण बचाया। मलिकशाह अब चीनके सीमान्तसे कान्स्तान्तिनोपोल के द्वार तकका स्वामी था। इसके समय वाणिज्य-व्यापारमें बहुत भारी वृद्धिहुई। अपने शासनके पांच साल इसे युद्धमें बिताने पड़े, ।उसके बादके पन्द्रह सालके अपने शान्तिपूर्ण शासनमें उसका ध्यान राजकी सांस्कृतिक, साहित्यिक और आर्थिक समृद्धि बढ़ानेमें रहा। इस्लामके इतिहासमें मलिकशाह का काल अत्यंत वैभवपूर्ण माना जाता है। इसमें जहां मलिकशाहकी सैनिक चातुरी ने काम किया था, वहां निजामुलमुल्कके शासन का भी कम हाथ नहीं था। निजामुलमुल्कको मलिकशाह बहुत मानता था। हसन सब्बाहपुत्रने अपने धोखाधड़ीके हथकण्डों द्वारा एक जबर्दस्त इस्माईली संप्रदाय कायम कर लिया और उसके गुप्तचर अपने गुरुकी आज्ञापर हत्या करनेमें इतने सफल होते रहे कि हसन के नामपर ही हत्यारे को यूरोपीय भाषाओंमें असासिन कहा जाने लगा। निजामुल्मुल्क अपने पूर्व सहपाठीको सीमा अतिक्रमण करते देख चुप नहीं रह सकता था। इसपर हसनके भेजे हत्यारेने १०९२ (४८५ हि०) में निज़ामुल्मुल्कको मार डाला। मलिकशाह भी उसी साल कुछ महीनों बाद ३८ सालकी उमरमें मर गया।

गज़ाली (१०५९-११११ ई०)

इस कालमें जहां निजामुल्मुल्क जैसे महान् राजनीतिज्ञ उमर खैय्याम जैसा अमर कवि पैदा हुये, वहां ग़ज़ाली जैसे दार्शनिकको पैदा करनेका भी सौभाग्य इसी कालको है। ग़ज़ालीका पूरा नाम मुहम्मद मुहम्मद-पुत्र मुहम्मद-पुत्र मुहम्मद-पुत्र ग़ज़ाली था, अर्थात् उसके बाप, दादा और परदादाका नाम भी मुहम्मद ही था। सूत कातना (कोरी या ततवाका काम) इसका खानदानी पेशा था, इसलिये मुहम्मदने अपने नामके साथ ग़ज़ाली लगाया। ग़ज़ाली का जन्म १०५९ ई० (४५० हि०) में ईरानके तूस नगरके ताहिरान मुहल्लेमें हुआ था। इससे पहिले ही महान् कवि फिरदौसीको तूस पैदा कर चुका था। गज़ालीके परिवारमें विद्याकी पूछ-ताछ नहीं थी। गज़ालीका बाप स्वयं अनपढ़ था, लेकिन ग़ज़नवी और सल्जूकी शासनमें विद्याके प्रति लोगोंमें जो प्रेम बढ़ चला था, उसके कारण बाप ने भी अपने लड़केको पढ़ानेका निश्चय किया। उसे क्या मालूम था, उसका लड़का सनातनी इस्लामका सबसे बड़ा दार्शनिक होगा। ग़ज़ालीके शिक्षक नेशापोरके वेहकिया विद्यापीठके अध्यापक अब्‌लमलिक हरमैन थे। हरमैनकी विद्याकी इतनी ख्याति थी, कि सल्जूकियोंके महामंत्री निज़ामुल्मुल्कने राजधानी नेशापोरमें अपने नामसे मदरसा-निजामिया बनवा कर वहां उन्हें प्रधानाध्यापक नियुक्त किया था। नेशापोरमें विद्या समाप्त कर गज़ाली जब ४८४ हि० (१०९१ ई०) में बगदाद पहुंचे, तो सारे शहरने उनका शाहाना स्वागत किया। १०९२ (४८५ हि०) में मलिकशाह सल्जूकीके मर जानेपर उसकी प्रभावशालिनी रानी तुर्कानखातूनने अमीरों और दरबारियोंको इस बातपर राजी कर लिया, कि गद्दी उसके चार सालके बेटे महमूद (१०९२-१०९४ ई०) को मिले। साथ ही बगदादी खलीफाके सामने यह भी मांग पेश की, कि खुतबा मेरे लड़केके नामसे पढ़ा जाय। खलीफाने पहिली बात मान ली, लेकिन दूसरी बातको मानना मुश्किल समझ

उससे समझौता करनेके लिये गज़ालीको तुर्कान खातून की दरबारमें भेजा। गज़ाली अपने काममें सफल हुए।

गज़ालीने यद्यपि इस्लामकी शरीयतपर दृढ़ रहनेका संकल्प किया था, किन्तु उनके गंभीर अध्ययनने पुराने पथपर दृढ़ नहीं रहने दिया। उन्होंने अपने वास्तविक विचारोंको सूफी वेदान्तके परदेके नीचे दबानेकी करीब-करीब उसी तरह कोशिश की, जिस तरह उनसे दो शताब्दी पहिले शंकराचार्य कर चुके थे।*

घुमन्तुओंमें गुलाम खरीद कर उसे शिक्षा-दीक्षा देकर योग्य पदोंके लिये तैयार करनेकी प्रथा थी, यह हम पहिले कह चुके हैं। सल्जूकियोंमें भी ऐसे गुलामोंको बड़े बड़े पदों पर नियुक्त किया जाता था। मलिक शाहने अपने तश्तदार (थालधारक) बल्कतगिनको ख्वारेज्मका राज्यपाल बनाया था। बल्कतगिनने नूश तगिनको गुलाम खरीदा था। दरबारमें बल्कतगिनका बहुत प्रभाव था। उसके गुलाम नूश तगिनकी भी बहुत चलती थी। १०७७ (४७० हि०) में बल्क तगिनके मरने पर नूशतगिन ख्वारेज्मका गवर्नर नियुक्त हुआ। यही उस प्रसिद्ध ख्वारेज्मशाही राज्यवंशका संस्थापक हुआ, जिसने चिंगिस के आक्रमणके समय मध्यएसियामें भारी शक्ति प्राप्त कर ली थी। नूशतगिन अपने स्वामीसे भी अधिक शक्तिशाली हो गया, लेकिन वह जीवन भर सल्जूकियोंका भक्त बना रहा।

४. महमूद I मलिक-पुत्र (१०९२-१०९४ ई०)

अरसलनके चार पुत्रोंमें महमूद सबसे छोटा और बापके मरनेके समय केवल चार सालका था। लेकिन उसकी मां तुर्कान खातून बहुत जबर्दस्त स्त्री थी, जिसके कारण और भाइयोंको वंचित कर इस शिशुको सल्जूकी ताज मिला और खलीफा मुक्तदिर (१०७५-९४) ने भी मजबूर होकर खुतबामें उसके नामको रखना स्वीकार किया। लेकिन ज्येष्ठ पुत्र बरकियारुक इस्पहानमें तना रहा। उसके विरुद्ध खातून स्वयं सेना लेकर गई। बरकियारुक लड़नेमें सफलताकी आशा न देख अपने समर्थक मुवैयादुद्दौला (निजामुल्मुल्क-पुत्र) के पास रे (तेहरान) चला गया। अन्तमें मुवैयाद और उसके परिवारकी सहायतासे उसका पल्ला भारी हो गया। तुर्कान खातूनने इस्पहानको हाथसे न जाने देनेके लिये बरकियारुकको बहुत सा खजाना देनेको मजबूर किया, किन्तु खातूनका दरबारी दबदबा बहुत समय तक नहीं चला और पहिले खातून फिर उसके शिशु पुत्रके मरनेके साथ बरकियारुकको मौका मिला। इसी समय खलीफा मुक्तदिर भी मर गया।

५. बरकियारुक १०९४-११०४ ई०

बरकियारुक अभी सोलह सालका ही था। उसने महान् वजीर निजामुल्मुल्कके पुत्र मुवैयादुद्दौलाकी सहायतासे गद्दी पानेमें सफलता प्राप्त की। खलीफा मुस्तज़हिर (१०९४-१११८ ई०) की स्वीकृति भी मिल गयी। बरकियारुक बगदाद गया, नये खलीफाने सुल्तानका बड़ा स्वागत किया। बरकियारूकका ११ सालका शासन अधिकतर लड़ाई झगड़ों में बीता।

---

*विशेष के लिये देखो "दर्शनदिग्दर्शन" पृष्ठ १५०-८७

१०९७ ई० में अन्तर्वेदने बरकियारुककी अधीनता स्वीकार की। उसके नियुक्त सुलेमान तगिन (...—११०२), महमूद तगिन और हारून तगिन एकके बाद एक अन्तर्वेदके शासक रहे। इनमें सुलेमान तगिन कराखानी खान तमगाच खान इब्राहीमका पौत्र और दाऊद कूच-तगिनका पुत्र था। ११वीं सदीके आरम्भ होते ही तुर्किस्तानके कराखानियोंने अन्तर्वेदपर आक्रमण कर दिया। कादिर खान जिब्रैल (बोगराखान मुहम्मद के पुत्र) ने अन्तर्वेदको ही दखल नहीं कर लिया, बल्कि ११०२ में सल्जूकियोंकी अपनी भूमिपर भी आक्रमण किया। वह तेरमिज लेनेमें सफल हुआ, लेकिन उसके पास ही २२ जून ११०२ ई० को सुल्तानके भाई सिंजरसे लड़ते मारा गया।

बरकियारुक इस बातमें सौभाग्यशाली था, कि उसको अपने भाइयोंसे बहुत लड़ने झगड़नेकी जरूरत नहीं पड़ी। वह अधिकतर बगदादमें रहता था। उसका एक भाई मुहम्मद आजुरवाइ जानका शासक था और दूसरा सिंजर खुरासानका। सिंजरने खुरासानका राज्यपाल रहते गज़नीको करद बनानेमें सफलता पाई। बरकियारुक इस्पहानसे बगदाद जाते समय ११०४ ई० (४९८ हि०) में मर गया। मृत्युके समय उसने अपने पुत्र मलिक शाह (II) के प्रति भक्तिकी शपथ ली थी।

बरकियारुकका संकल्प पूरा नहीं हुआ। उसके भाई मुहम्मदने धोखेसे बगदादको ले लिया और शिशु सुल्तानको अपना बंदी बना गद्दी संभाल ली।

६. मलिकशाह II बरकियारुक पुत्र (११०४ ई०)

७. मुहम्मद मलिक-पुत्र (११०४-१११७ ई०)

मुहम्मदका तेरह सालका शासन भी लड़ाई-झगड़ोंमें बीता। इसी समय ईसाइयों और मुसलमानोंके सलेबी जंग शुरू हो गये। अब सल्जूकियोंकी सीमा भूमध्यसागर तक पहुंच गयी थी। ईसाइयोंके पवित्र स्थान येरुशलेम आदि भी शताब्दियोंसे मुसलमानोंके हाथमें रहते अब सल्जूकियोंके हाथमें थे। कुछ थोड़ेसे देशोंको छोड़कर सारा यूरोप इस समय तक ईसाई हो चुका था। यूरोपीय सामन्त नहीं चाहते थे, कि उनका पवित्र स्थान मुसलमानोंके हाथमें रहे। इसीलिए उन्होंने धर्म-युद्ध छेड़ दिया था। मुहम्मदके सेनापति इस समय उसी धर्मयुद्धमें लगे हुए थे। साथ ही गृह-कलह भी कम नहीं था। मुहम्मद १११७ (५११ हि०) में इस्पहानमें मरा।

८. महमूद II मुहम्मद-पुत्र (१११७ ई०)

अब बरकियारुकके सबसे छोटे भाई सिंजरकी शक्ति बढ़ गयी थी। महमूद नाममात्रके लिये गद्दीपर बैठा था, सारी शक्ति उसके चचा सिंजरके हाथमें थी। सिंजरने भतीजेको उभय इराक (इराक अरब और इराक अजम ईरान) दे दिया, लेकिन शर्त यह रखी, कि खुतबेमें सिंजरका भी नाम रहेगा। यह प्रबन्ध भी स्थायी नहीं रहा।

९. सिंजर[1] मलिकशाह-पुत्र (१११७-११५७ ई०)

सिंजर सल्जूकी वंशका अन्तिम और महाप्रतापी सुल्तान था। वह बीस साल तक खुरा-

[1] वहीं पृ० ८८०

सान और अन्तर्वेद्र का राज्यपाल रहा और अब चालीस साल तकके लिये महान् सल्जूकी साम्राज्यकी बागडोर उसके हाथमें आयी। सल्जूकी राजवंश चार पीढ़ियों पहिले घूमन्तू पशु-पाल तुर्कों का था। सल्जूकियोंके हाथमें पहिले ख्वारेज्म आया फिर इराक-ईरान-सीरिया पर उनकी विजय-ध्वजा फहरायी। सल्जूकी अपने भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके राज्यपाल अपने विश्वासपात्र तुर्क गुलामोंको बनाते रहे, यह हम कह आये हैं और यह भी कि नूशतगिनने अपनी शक्तिको बहुत बढ़ा लिया था। उसने अपने पुत्र कुतुबुद्दीन मुहम्मदकी शिक्षाकी ओर बहुत ध्यान दिया था। पिताके मरने पर १०९७ (४९० हि०) में यही ख्वारेज्मशाहकी उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठा। इसीके समय कराखिताइयोंने अन्तर्वेदपर आक्रमण करना शुरू किया। कुतुबुद्दीनने ११२७ ई० (५२१ हि०) में उनके मुकाबिलेमें एक लाख सेना भेजी, लेकिन काफिरों (कराखितांइयो) ने ऐसी करारी हार दी, कि कुतुबुद्दीनको उनका करद होना पड़ा। कराखिताई इसके बाद राजधानी काशगरको लौट गये। जल्दी ही कुतुबुद्दीन मर गया और उसका पुत्र अत्सिज ख्वारेज्मशाह बना। अत्सिज़ कई साल तक सुल्तान सिंजरका तश्तदार बनकर मेर्वमें रहा था। उसके अधिक प्रभावको देखकर दरबारी जलने लगे, इसपर वह सिंजरसे छुट्टी ले ख्वारेज्म चला गया। वहां पहुंचते ही उसने अपने स्वामीसे बगावत की। सिंजरने उसपर आक्रमण किया, लड़ाईमें अत्सिजका पुत्र इल्किलिच मारा गया और ख्वारेज्मियोंको बुरी तरहसे हारना पड़ा। अत्सिज़ने सुल्तानके सामने नाक रगड़ी। सिंजरने अपने भतीजे सुलेमान शाहको ख्वारेज्मका गवर्नर नियुक्त किया। सिंजरके लौटते ही अत्सिज़ने सुलेमान शाहको मार भगाया। अब सारा ख्वारेज्म अत्सिज़के हाथमें था। लेकिन सिंजर उसे क्षमा करनेवाला नहीं था। अपनी शक्तिको मजबूत करनेके लिये ११४१ (५३६ हि०) में अत्सिज़ने कराखिताइयोंको सहायताके लिये बुलाया।

जुबैनीके अनुसार गजनाके अभियानमें कान भरनेके कारण सिंजरको अत्सिज़ने अपनी ओरसे ठंडा देखा था, जिसके कारण ही उसे विद्रोह करनेकी प्रेरणा मिली। ११३८ के पतझड़में सिंजरने ख्वारेज्मपर आक्रमण किया। सिंजरका अत्सिज़पर यह इल्जाम था, कि उसने बिना हमारी आज्ञाके ज़न्द और मन्किशलकके मुसलमानोंका खून बहाया, वहांके निवासी इस्लामी प्रान्तोंके विश्वसनीय रक्षक थे, वह बराबर काफिरों (तुर्कों) से युद्ध करते थे। जवाबमें अत्सिजने विद्रोह करके सुल्तानके अफसरोंको कैद कर लिया, उनकी संपत्ति जप्त कर ली, खुरासानकी ओर जानेवाले सारे रास्ते बन्द कर दिये। सुल्तान इस समय खुरासानमें था। वहीं से उसने सितम्बर (मुर्हरम) ११३८ ई० में भारी सेना लेकर ख्वारेज्मकी ओर प्रयाण किया। अत्सिज़ने हजारास्पके पास जबर्दस्त मोर्चाबन्दी कर वक्षुका बांध तोड़कर आस-पासकी बहुत सी भूमि जलमग्न कर दी। सल्जूकी सेना वक्षुके किनारे किनारे नहीं चल सकती थी, इसलिए उसे रेगिस्तानका रास्ता पकड़ना पड़ा, जिसके कारण गति मन्द हो गई। १५ नवम्बरको भयंकर युद्ध हुआ। अत्सिज़की सेनामें अधिकतर काफिर तुर्क थे। उसने हमला किया, किन्तु पूरी हार खानी पड़ी। हताहतों और बन्दियोंके रूपमें १० हजार आदमियोंका नुकसान हुआ। बन्दियोंमें ख्वारेज्मशाहका पुत्र भी था, जिसे तुरन्त कत्ल करवा कर उसके सिरको सिंजरने अन्तर्वेद भेज दिया। सिंजर युद्ध-क्षेत्रमें १ सप्ताह रहा। बची सेना अत्सिजका साथ छोड़कर उसके पास आ गई। सिंजरने उसे क्षमा कर दिया। अत्सिज़ भाग

गया। सिंजर बिना किसी रुकावटके सारे ख्वारेज्म पर अधिकार कर अपने भतीजे सुलेमान मुहम्मद-पुत्रको राज्यपाल नियुक्त कर उसके साथ एक वजीर, एक अताबेग और एक हाजिब दे १० फरवरी ११३९ को राजधानी मेर्व लौट गया। सिंजर के लौट जाने पर अत्सिज़ फिर ख्वारेज़्म लौट आया। सिंजर के वर्ताव से लोग रुष्ट थे, इसलिये सारे ख्वारेज्मी उसके साथ हो गये और अत्सिज़ ने सिंजर के अफसरों को मार डाला, सुलेमान भी भाग कर अपने चचा के पास गया। ११३९ ई० (५३४ हि०) में अत्सिज़ ने बुखारापर भी आक्रमण कर दिया और वहां के राज्यपाल यंगी अली-पुत्र को बन्दी बना पीछे कत्ल कर दिया। उसके बाद उसने बुखारा के किले को ध्वस्त कर दिया। इतना करने के बाद फिर उसने अपने अधिराज (सिंजर) की अधीनता स्वीकार करने की इच्छा इकट की। मई (११४१) के अन्त में अत्सिज़ ने राजभक्ति की शपथ ली, जिसमें कहा, कि सुल्तान ने दुनिया के सामने अपने न्याय को सदा दिखलाया और अब भी अपनी दया के प्रकाश को दिखला रहा है। लेकिन इसके कुछ ही महीनों बाद अत्सिज़ ने शपथ तोड़ फेंकी।

११४३ ई० (५३८ हि०) में सिंजर ने फिर ख्वारेज्म पर चढ़ाई की और अत्सिज़ को अधीनता स्वीकार करने के लिये मजबूर किया और वह लूटे खजाने को लेकर मेर्व लौटा। नवम्बर ११४७ में सिंजर ने तीसरी बार ख्वारेज्म पर आक्रमण किया। यह याद रखने की बात है, कि अत्सिज़ और सिंजर का झगड़ा ही कराखिताइयों को अन्तर्वेद में बुलाकर सल्जूकियों के राज्य को छिन्न-भिन्न करने और अन्त में स्वयं सिंजर के मारे जाने का कारण हुआ।

११४१ई० में अन्तर्वेद के तुर्क सैनिकों (करलुकों) और खान में झगड़ा हुआ। महमूद खान ने करलुकों के विरुद्ध सिंजर से मदद मांगी, तो करलुकों ने कराखिताइयों के गुरखान को सहायता के लिये बुलाया। यह वही गुरखान था, जिसने बलाशागुनमें घुमन्तुओं की सेना के विरुद्ध वहां के खान का संर-क्षण किया था। वह सिंजरसे न लड़कर चाहता था, कि बीच में पड़कर करलुकों से समझौता करादे, किन्तु सिंजर ने इसका उत्तर बहुत अपमानजनक दिया, जिसके लिये कराखिताइयों ने अन्तर्वेद पर आक्रमण किया। ९ सितम्बर ११४१ ई० को कतवान की मरुभूमि में लड़ाई हुई और सिंजर की सेना पूर्णतया पराजित हुई। (कराखिताइयों) ने सिंजर की सेना को दरगम (समरकन्द के दक्षिण) की ओर हटने के लिये मजबूर किया। १० हजार हताहतों को नदी बहा ले गई, ३० हजार युद्ध क्षेत्र में काम आये। सिंजर किसी तरह भागकर तेरमिज़ पहुंचा। सारे अन्तर्वेद ने कराखिताइयों के सामने सिर झुकाया। इसी साल (५३६ हि०) बुखारा पर भी उनका अधिकार हो गया। इस समय बुखारा में एक खानदानी रईसों का वंश था, जिसकी पदवी सद्रे-जहां (जगत का मुखिया) थी। वह अपने को उमर की औलाद कहते थे। वंशस्थापक का नाम बुरहानुल् मिल्लत अब्दुल अज़ीज उमर-पुत्र माज़ा था। कराखिताइयों के आक्रमण के समय बुखारा का सद्रे-जहां हुसामुद्दीन उमर अब्दुल अज़ीज़-पुत्र था। सद्रे-जहां के नेतृत्व में बुखारा ने काफिरों (कराखिताइयों) का विरोध किया। सद्रे-जहां मारा गया। कराखिताइयों ने अल्पतगिन को बुखारा का शासक नियुक्त किया। सिंजर की घोर पराजय से लोगों में अफवाह उड़ी, कि अतसिज़ ने ही कराखिताइयों को बुलाया, यद्यपि कम से कम इस समय के लिये

*Turkistan, , , Heart of Asia

यह बात सच्ची नहीं थी, क्योंकि कराखिताइयों की एक सेना ने अत्सिज़के राज्य को लूटकर भारी संख्या में लोगों को मारा था, जिसके कारण अत्सिज़ संधि करने के लिये मजबूर हुआ और उसने जिन्स के अतिरिक्त तीस हजार सुवर्ण दीनार वार्षिक कर देना स्वीकार किया। शायद कतबान के युद्ध के बाद ही ख्वारेज्म पर हमला नहीं हुआ, क्योंकि सिंजर की पराजय से फायदा उठाकर अत्सिज़ ने जाकर खुरासान पर आक्रमण किया और १९ नवम्बर (११४१ ई०) को मेर्व को लूटा। जब उसे कराखिताइयों के आक्रमण की खबर मिली, तो पीछे लौटा। मई ११४२ को फिर वह सिंजर के खिलाफ अभियान करते नेशापोर पहुंचा। नेशापोर के लोगों के सामने अत्सिज़ ने घोषणा की—"मैंने सल्जूक-वंश की सच्चे दिल से सेवा की, जिसके प्रति कृतघ्नता करने के कारण ही सिंजर को यह बदला मिला। हम नहीं जानते, उसका पश्चात्ताप लाभदायक सिद्ध होगा। सिंजर को हमारे जैसा उसके राज्य का समर्थक और मित्र कहीं भी नहीं मिलेगा। अन्तर्वेद में कराखिताइयों के राज्य की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना थी। करीब चार शताब्दियों बाद फिर वहां काफिरों का शासन स्थापित हुआ और मुसलमानों को उनके सामने सिर झुकाना पड़ा। सिंजर निर्बल हो चुका था। अत्सिज़ मेर्व और नेशापोर तक लूट मार मचाता रहा, तो भी सिंजर अभी अत्सिज़ के लिये काफी था।

२९ मई (११४१ ई०) को नेशापोर में अत्सिज़ के नाम का खुतबा पढ़ा गया, लेकिन उसी साल की गरमियों में सिंजर ने खुरासान को फिर अपने हाथ में ले लिया। सिंजर ने ११४३ (५३८ हि०) में चढ़ाई की, तो अत्सिज़ फिर अधीनता स्वीकार करने के लिये मजबूर हुआ। शायद इसी संबंध में मार्च ११४४ को गूज़ों ने बुखारा पर सफल आक्रमण किया, जिसमें वहां का किला ध्वस्त हो गया। अत्सिज़ की बदनीयती की खबर सुनकर सिंजर ने कवि (अदीब) साबिर को पता लगाने के लिये भेजा, जिसने सूचित किया कि अत्सिज़ ने पैसा देकर सुल्तान को मारने के लिये दो इस्माईलियों को नियुक्त किया है। सुल्तान सजग हो गया, लेकिन अत्सिज़ ने पता पाने पर साबिर को वक्षु में फेंकवाकर मरवा दिया।

नवम्बर ११४७ में सिंजर ने तीसरी बार ख्वारेज्म पर आक्रमण किया और दो महीने के घिरावे के बाद हजारास्प को ले सका। वहां से अत्सिज़ की राजधानी में पहुंचा। अत्सिज़ की प्रार्थना पर दरवेश आहूपोश (हरिन-चर्मधारी साधू) ने दोनों के बीच में विचवई का काम किया—आहूपोश की बड़ी प्रतिष्ठा थी, वह केवल हरिन का मांस खाता, और हरिन का ही चमड़ा पहनता था, इसीलिये आहूपोश के नाम से विख्यात था। सिंजर ने फिर अत्सिज़ को क्षमा कर दिया, लेकिन शर्त यह रखी, कि अत्सिज़ स्वयं मेरे पास वक्षु तटपर अधीनता स्वीकार करने के लिये आये। जून ११४८ के आरंभ में वह मुलाकात हुई, लेकिन मुलाकात के समय दरबारी कायदे के विरुद्ध अत्सिज़ ने सुल्तान के सामने न जमीन चूमी, न घोड़े पर से ही उतरा। उसने सिर झुकाया और सुल्तान के लगाम उठाने के पहिले ही लौट पड़ा। इस अपमान के लिये सिंजर ने फिर लड़ाई करना मुनासिब नहीं समझा और वह मेर्व लौट गया।

खुरासान में असफल होकर अत्सिज़ ने सिर-दरिया की ओर मुंह फेरा। सिंजर को लड़ाइयों में फंसे देखकर कराखानियों ने ज़न्द ले लिया था...अरसलनखान महमूद का पुत्र कमालुद्दीन वहां राज्य कर रहा था। अत्सिज़ ने कमालुद्दीन से समझौता करके यह तै किया, कि ११५२ के वसन्त में काफिर किपचकों पर आक्रमण किया जाय। किपचकों का केन्द्र सिग्नाक

(उत्तरार से २४ फर्सख, तुमैन आरिक डाक-चौकी से सात मील उत्तर) था। अत्सिज़ इस शर्त के मुताबिक अपनी सेना लेकर आया। उसे देखकर कमालुद्दीन डर के मारे राज्य छोड़ भाग गया और बहुत बचन देने पर वह अत्सिज़ के पास आया। अत्सिज को वचन की परवाह क्या थी, उसने उसे पकड़कर जिन्दगी भर के लिये जेल में डाल दिया। सिग्नाक पर आक्रमण नहीं हो सका। कुछ कठिनाइयों के कारण उसने अपनी सेना दूसरी ओर भेजी और ज़न्द को विद्रोहियों ने फिर ले लिया। जून ११५२ (रबी I ५४७ हि०) को अत्सिज़ ने ज़न्द पर अभियान किया। बीच के रेगिस्तान को एक सप्ताह में पार कर ८ रबी I (१३ जून ११५२ ई०) को उसकी सेना सिर नदी के किनारे ज़न्द से २० फर्सख पर सागदरा पहुंची। अगले दिन (शुक्रवार) को सेना शहर के दरवाजे पर थी। पता लगा, विद्रोही खान भाग गया। अत्सिज़ने उसका पीछा करने के लिये सेना भेजी। दूसरे विद्रोहियों ने अधीनता स्वीकार की और उन्हें क्षमा दान मिला। इस प्रकार बिना खून-खराबी के ज़न्द फिर ख्वारेज्मशाह के हाथ में आ गया। अत्सिज़ ने अपने बड़े पुत्र अबुल्फतह इल-अरसलान को ज़न्द का राज्यपाल नियुक्त किया। इसके बाद यह प्रथा चल पड़ी, और ख्वारेज़मशाह का ज्येष्ठ पुत्र ज़न्द का राज्यपाल बनाया जाता।

११५३ ई० के वसन्त में खुरासान का वातावरण अत्सिज़ को अनुकूल मालूम हुआ। गूज़ों (तुर्कमानो) ने दो बार सिंजर को हराया। सेनापति और सुल्तान ने राजधानी छोड़ दी और अगस्त या जुलाई के अन्त में गूज़ा ने मेर्व को लूटा। उसके कुछ ही समय बाद उन्होंने सिंजर को बन्दी बना लिया और सितम्बर के अन्त या अक्तूबर में दुबारा मेर्व को लूटा। इसके बाद तीन साल तक सिंजर गूज़ों का बन्दी बना रहा। गूज़ उसे सारे दरबारी ठाटबाट के साथ अपने साथ लिये खुरासान के शहरों—मेर्व, नेशापोर आदि—को बुरी तौर से लूटते रहे। गूज़ों ने सुल्तान की इस अवस्था से फायदा उठाकर अपने को स्वतंत्र घोषित करने का ख्याल नहीं किया, बल्कि वैध शासक के संरक्षक होने का दिखावा किया। सबसे पहिले आमूय (आमूल) के शासक को किला समर्पण करने के लिये कहा गया। ज़न्द की भांति यह भी अत्सिज़ के लिये एक महत्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि यहीं होकर ख्वारेज्म का रास्ता वक्षु के किनारे-किनारे जाता था। अत्सिज़ ने जानते हुए भी विरोध न कर अपने राज्य में लौट काफिर किपचकों के विरुद्ध संघर्ष जारी किया। दिसम्बर ११५३ के अन्त से ११५४ के शरद-आरम्भ तक अत्सिज़ के भाई यनाल तगिन ने बैहक जिले को लूटा और बरबाद किया।

यद्यपि सिंजर गूज़ों का बन्दी था और उसकी अधिकांश सेना ने भी उनका साथ दिया था, किन्तु सल्जूकी सेना के एक भाग ने महमूद खान को अपना नेता बना गूज़ों का विरोध करना शुरू किया। महमूद ने अत्सिज़ के साथ समझौता करने के लिये बातचीत शुरू की। अत्सिज़ ने अपने दूसरे पुत्र किलिच खान को ख्वारेज्म में छोड़ ज्येष्ठ पुत्र इल्-अरसलन को ले सेना-सहित खुरासान की ओर प्रस्थान किया। शहरिस्तान (नसा) नगर में पहुंचकर अत्सिज़न ने सुना, कि सिंजर अपने एक सेनापति की मदद से बन्दी खाने से भाग तेरमिज़ पहुंच गया। ख्वारेज़मशाह (अत्सिज़) नसा गया, जहां महमूद खान का दूत इज्जुद्दीन तुगराई उससे मिला। खान और अमीर लोग अत्सिज़ जैसे खतरनाक मित्र को निमंत्रित करने के लिये पछताने लगे। अत्सिज़ की मांगें इतनी कम थीं, जिनकी वह आशा नहीं कर सकते थे। नसा से ही अत्सिज़ ने सुल्तान सिंजर को पत्र लिखा, जिसमें बन्दीखाने से निकल भागने में सफल होने के लिये उसे बधाई दी और

पूरी अधीनता स्वीकार करते अपने अधिराज से पूछा, कि हुक्म मिलने पर मैं सुल्तानी सेना में शामिल होने के लिये तेरमिज आ सकता हूं, ख्वारेज्म लौट सकता हूं, या खुरासान में रह सकता हूं। उसने अपने मित्रों—महमूदखान, सजिस्तान सालार और पर्वतीय गोर शासक के पास भी इसी अभिप्राय के पत्र लिखे। अभी वह शहरिस्तान (नसा) में ही था, कि सजिस्तान-सालार का दूत अत्सिज़ के पास आया। खुरासान के शहर में अत्सिज़ और महमूद खान की बड़ी मित्रतापूर्ण मुलाकात हुई। फिर मई में विसाकबाशी (गारद-अफसर) नैमुल्मुल्क लौही सिंजर का पत्र लेकर आया। महमूदके आ जाने तथा सजिस्तान और गोरके शासकों की प्रतीक्षा करते अत्सिज़ ने गूज़-नेता तूती बेग को पत्र लिखने का हुक्म दिया। इस पत्र में उसने सिंजर के कैदी होनेके बारेमें एक भी शब्द नहीं लिखा था: "कहा जाता है, जब गूज़-सेनायें खुरासान में आईं और सरकारी अफसरोंने मेर्व छोड़ दिया, तो सुल्तान सिंजरको भी चला जाना चाहिये था, क्योंकि पृथ्वी की अंतिम छोर तक सारी भूमि को गूज़ सेना अपनी संपत्ति समझती थी। लेकिन सुल्तान प्रजापर दया करते अपनी राजसी मर्यादा और अपने को स्वेच्छापूर्वक समर्पण करते हुए उनके भीतर चला गया। गूज़ों ने सिंजर की उदार-हृदयता को नहीं समझ पाया और पवित्र दरबारी सन्मानों को नहीं माना, इसीलिये अधिराज को उनसे अलग होने के लिये मजबूर होना पड़ा। गूज़ क्या करते? रोज़ाना एक नगर से दूसरे नगर को कूच करते रहना अब उनके लिये संभव नहीं था। उन्हें केवल खुरासान के नगरों पर ही अधिकार करने को कहा गया था। अधिराज (सुल्तान) स्वयं उनके बीच में आ गया था। उनकी सारी सेना को बलख प्रदेश में एकताबद्ध किया जानेवाला था। विद्रोह के पहिले गूज़ों को बलख में रहने को जगह मिली थी।.... जब अधिराज स्वयं शासन करने के लिये लौट आया, तो उसकी आज्ञा के बिना किसी को उसके राज्य में अधिकार जमाने का हक नहीं है। अब उनके लिये एक यही रास्ता है, कि सल्जूकी सरकार की अधीनता स्वीकार करें और अपने अपराध के लिये क्षमा-प्रार्थी हों। महमूद खान, और ख्वारेज्म, सजिस्तान तथा गोर के शासक उनकी ओर से अधिराज के सामने इस बात की सिफारिश करेंगे, कि वह उनके लिये एक युर्त (ओर्दू) और जीविका के साधन प्रदान करे।"

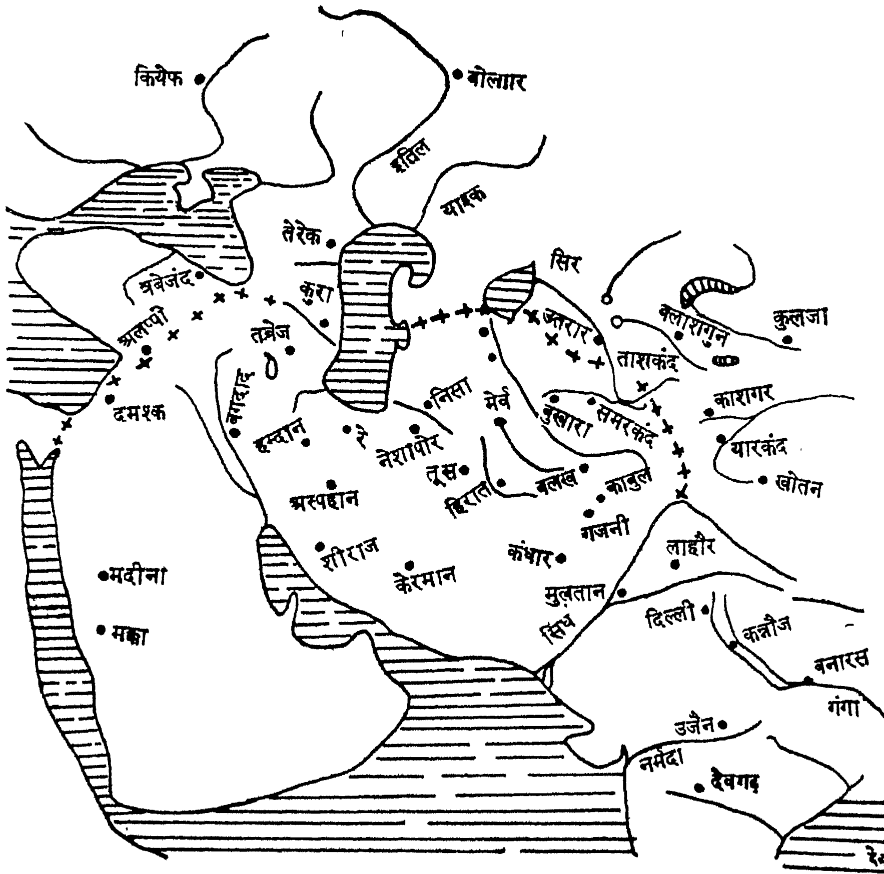
अत्सिज़ को कराखिताइयों के खतरे का अब होश आया था, इसलिये शायद वह दिल से चाहता था, कि इस्लामिक शक्ति को संगठित और मजबूत किया जाय, लेकिन यह काम नहीं हो सका। खबूसान में ही ३० जुलाई ११५६ ई० को लकवे से उसकी मृत्यु हो गई।* अत्सिज़ सल्जूकी सुल्तान का सामान्त रहते मरा। लेकिन, इसमें संदेह नहीं, वह ख्वारेज्म के प्रबल वंश की नींव रखने वाला था। जन्द और मनकिश्लक पर अधिकार कर उसने उत्तर के पड़ौसी घुमन्तुओं को अपने अधीन किया; और भाड़े की तुर्की सेना से अपना सैनिक बल बढ़ा, एक स्वतंत्र राज्यकी बुनियाद डाली। उसके उत्तराधिकारी ने इस शक्ति को और बढ़ाया, इसमें शक नहीं।

११५७ ई० सिंजर में मरा[१], लेकिन उसके पहिले ही वह अपने गौरवपूर्ण जीवन को खतम कर चुका था। अत्सिज़ की सहायता से उसे फायदा उठाने का मौका नहीं मिला, और सिंजर के बाद फिर सल्जूकी वंश अपने खोये वैभव को प्राप्त नहीं कर सका। मध्यएसिया में अब करा-

---

[१] सिंजर का मकबरा मेर्व में है। आर्खि० पाम्या० तुर्कमेन०, पृ० २९

खिताइयों की विजय-दुंदुभी बज रही थी। ख्वारेज्मशाह की शक्ति भी बढ़ती जा रही थी। दक्षिण में गोरियो ने एक नई सल्तनत कायम की, जिसें भारत को जीतने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सिंजर के मरने के बाद भी सल्जू की सुल्तान पश्चिमी एसिया को बांटकर अपना शासन करते रहे, जिनमें कुछ थे—



३१. सलजूकी साम्राज्य (११५० ई०)

(१)	किरमानी सल्जूक	१०४१-११८७	(४३३-५८३ हि०)
(२)	सिरियाके सल्जूक	१०९४-१११७	(४८७-५११ हि०)
(३)	इराक-कुरदिस्तान के सल्जूक	१११७-११९४	(५११-५९० हि०)
(४)	रूमी (क्षुद्रेसिया) सल्जूक	१०७७-१३००	(४७०-७०० हि०)

सिंजरके बाद अत्सिज़-पुत्र इल-अरसल खारेज्मशाह बिलकुल स्वतंत्र शासक था।

स्रोत-ग्रंथः

I. Turkistan Down to Mongol Invasion (W. Bastold)
2. Heart of Asia (E. D. Ross)
३. सियासतनामा (निज़ामुलमुल्क)
४. इस्कुस्स्त्वो स्रेद्नेइ आज़िइ
५. प्राब्लेमा सेल्जुक्स्कओ इस्कुस्त्वो (इ० अ० ओर्बेली)
६. ओचेर्क इस्तोरिइ तुर्कमेन्स्कओ नरोदा (व० व० बर्तोल्द।
७. आर्खितेक्तुर्नीयि पाम्यात्निकि तुर्कमेनिइ (मास्को १९३९)
8. Recuecil de Textes relatifs a l'hiostoire des seldjucides (Hotsma)
9. Travels in Central Asia (A. Vambery, 1861)
10. Sketches of Central Asia (A. Vambery, 1868)
11. History of Bukhara (A. Vambery, 1873)
१२. रज़्वलिनी स्तारओ मेर्व (शुस्कोव्स्की, १८९४)

अध्याय ५

गोरी (११५६-१२०७ ई०)

§१. कराखिताई (११२४-१२१८ ई०)

कराखिताइयों के बारे में हम पहिले कह चुके हैं।[१] चतुर्थ कराखिताइ शासक गुरखान चे-लू-गू (११४३-११८२) के समय कराखिताई अन्तर्वेद में थे। ख्वारेज्मशाह अत्सिज़ पर जब सल्जूकियों का प्रहार हुआ, तो उसने अपनी मदद के लिये कराखिताई दरबार में गुहार की। हम यह भी बतला चुके हैं, कि महमूद खान और उसकी सेना के झगड़े में खान ने जब सिंजर से मदद मांगी, तो करलुकों ने गुरखान को बुलाया। ९ सितम्बर ११४१ ई० में सिंजर को कराखिताइयों ने करारी हार दी और बुखारा पर अपनी ओर से अल्पतगिन को शासक नियुक्त किया।

सिंजर को हराकर वक्षु को कराखिताइयो ने अपनी सीमा मानी। अत्सिज़ ने कराखिताइयों की अधीनता स्वीकार की। उसके बाद करीब-करीब कराखिताई वंश के पतन के समय (१२१८ ई०) तक सभी ख्वारेज्मशाह कराखिताइयों के करद रहे।

अत्सिज़ के उत्तराधिकारी इल-अरसलन ने चाहा कि कराखिताई जुए को उतार फेंके, लेकिन उसमें वह सफल नहीं हुआ। ख्वारेज्मशाहोको पहिले सल्जूकियो से और पीछे गोरियों से मुकाबिला पड़ा, जिसमें वह कराखिताइयों की मदद लेनें के लिये मजबूर हुये। इल-अरसलन ने मरते वक्त अपने सबसे छोटे पुत्र सुल्तानशाह महमूद को राज्य दिया। इसे बड़ा पुत्र तेकिश कैसे मंजूर कर सकता था। उसने कराखिताइयों से मदद ले भाई को हटाकर गद्दी संभाल ली। अपने पूर्वजों की तरह इसने भी काम निकल जाने पर कराखिताइयों को ११९२ (५८८ हि०) में धत्ता बताना चाहा। उसका भाई सुल्तान शाह महमूद उस समय गोरियों के यहां शरणागत था। वहां से भागकर कराखिताई रानीके पास पहुंचकर उसने कहा—ख्वारेज्मके लोग मुझे तख्त पर देखना चाहते हैं। रानी ने इस मौके को अच्छा समझा। तेकिश के ऊपर जली भुनी थी ही, उसने अपने पति कर्मा को एक बड़ी सेना देकर महमूद के साथ कर दिया। तेकिश ने रोकने के लिये वक्षु की नहर को काटकर रास्ते के इलाके को जलमग्न करा दिया। कर्मा ने देखा, लड़ाई की जबर्दस्त तैयारी है और लोग तेकिश के पक्ष में हैं। वह फौज लेकर लौट गया। सुल्तान महमूद ने अपने अनुयायियों और कुछ कराखिताइयों की मदद से सरख्श पर अधिकार कर लिया। तेकिश ने भी देख लिया, कि कराखिताइयों के साथ दुश्मनी करने से मैं फायदे में नहीं रह सकता,

---

[१]देखो जिल्द १, भाग ५, अध्याय २

इसलिये उसने फिर गुरखानी दरबार की अधीनता स्वीकार की और तब से मरने के समय (१२०० ई०) तक बराबर कर भेजता रहा। उसने अपने उत्तराधिकारी पुत्र मुहम्मद अलाउद्दीन को भी वैसा ही करने की शिक्षा दी, किन्तु वह उसे जल्दी ही भूल गया। मुहम्मद १२०८ ई० में कराखिताई भूमि पर चढ़ाई की, लेकिन बुरी तरह हारा। अगले साल की चढ़ाई में उसे सफलता जरूर मिली, और उसने उतरार (फाराब) और तराज़ तक का इलाका ले लिया, लेकिन इसका कारण ख्वारेज्मशाह की बहादुरी नहीं, बल्कि चिंगिस का पूर्व की सीमा पर हमला था, जिसने १२०७ में नैमन (तुर्क) के खान ता-यङ खान को हराकर मार डाला, और उसका पुत्र गुचलुक भागकर गुरखानी दरबार में चला आया।

गुचलुक को हराकर किस तरह चिंगिस ने कराखिताई साम्राज्य को ध्वंस कर उत्तरापथ को अपने हाथ में लिया, इसके बारे में हम पहिले कह चुके हैं। कराखिताइ काल में अन्तर्वेद का शासन सीधे गुरखान की ओर से होता था, वह भिन्न-भिन्न स्थानों के लिये राज्यपाल नियुक्त करता था; किन्तु, ख्वारेज्म पर कराखिताई शासन ख्वारेज्मशाह की मार्फत होता था। कराखिताई बौद्ध धर्म के मानने वाले थे, और उनकी संस्कृति चीनी थी। यह भी हम बतला चुके हैं, कि बौद्ध होने पर भी यद्यपि ईसाइयों और दूसरो के साथ गुरखानों का वर्ताव बहुत उदारतापूर्ण था, लेकिन मुसलमानों के साथ वह उतनी उदारता दिखलाने के लिये तैयार नहीं थे। इसका कारण भी था। मुसलमानों ने भी अपने तीन-चार शताब्दियों के शासन में दूसरे धर्मवालों के साथ घोर असहिष्णुता का परिचय दिया था।

§२. गोरी[1] (११५६-१२०७ ई०)

उद्गम—हिरात से पूर्व और दक्षिण की ओर तथा गर्जिस्तान और गूज़गान के दक्षिण में जो पहाड़ी प्रदेश है, उसे गोर (गूर) कहा जाता था। खुरासानी फारसी भाषा से यहां की भाषा में काफी अन्तर था। १० वीं सदी तक गोर के पहाड़ी लोग प्रायः सभी काफिर थे, यद्यपि प्रदेश चारों ओर मुसलमानों से घिर चुका था। काफिर का अर्थ है बौद्ध, जुर्थुस्ती अथवा हिन्दू होना। तुमान्स्की हस्तलेख के अज्ञात लेखक के कथनानुसार उसके समय में गोरशाह अपने को गूज़ान के फरीगूनियों का सामन्त मानते थे। बाद में किसी समय वहां के अधिकांश लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया। पहिले पहल महमूद गजनवी के पुत्र मसऊद की सेना १०२० ई० में गोर के भीतर तक पहुंची। मसऊद उस समय हिरात का राज्यपाल था। विजय प्राप्त करने के बाद गजनवियों ने गोर के पुराने शासक को अपने पद पर बना रहने दिया। सिंजरके अवसान के समय (११५६ ई०में) जब सल्जूकी साम्राज्य बिखरने लगा, तो ख्वारेज्मशाह की भांति गोर-शासक ने भी उससे फायदा उठाया। सिंजर जिस वक्त गूज़ों का बन्दी था, उस समय की घटनाओं में गोरों ने भी भाग लिया। इसके कुछ ही समय बाद गयासुद्दीन और शहाबुद्दीन दोनों भाई गोर के शासक तभा सेनापति के रूप में रंगमंच पर आये। उनका स्थापित किया हुआ विशाल शक्तिशाली राज्य यद्यपि अपनी जन्मभूमि में बहुत दिनों तक नहीं टिक सका, किन्तु उसी ने भारत

[1] Turkistan... (Bertold); Heart of Asia

में एक जबर्दस्त इस्लामिक शक्ति की नींव डाली, जो कई सदियों तक चलती रही और उसने भारत के जीवन के हरेक अंगपर अपनी अमिट छाप छोड़ी।

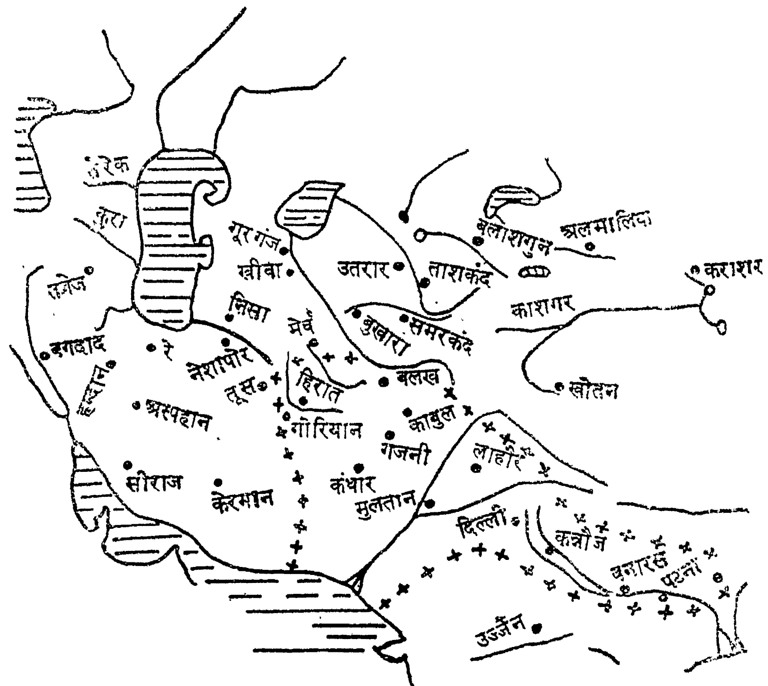
१. गयासुद्दीन मुहम्मदगोरी (-१२०३ ई०)

गयासुद्दीन मुहम्मद गोरी स्वयं तख्त पर बैठा और सेनापति का पद उसके छोटे भाई शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने संभाला। पीछे वह गज़नी का शासक भी बना, जब गोरियोंने उसे ११७३ (५६९ हि०) में जीत लिया। दोनों भाइयों के पिता का नाम साम और चचाका फखरुद्दीन मसऊद था। गोरी राज्य के बढ़नेपर मसऊदको बामियान, तुखारिस्तान, शुगनान तथा बालोर (चितराल) तक दूसरे पहाड़ी प्रदेशों के शासक का पद मिला। मसऊद के पुत्र शमशुद्दीन मुहम्मदने वक्षु पार हो शगनानियान को भी ले लिया। पूरबमें गोरियों का राज्य बख्श और चितराल तक पहुंचा। पश्चिममें हिरातको भी लेकर खुरासानमें पहुंच वह ख्वारेज्मशाहके प्रतिद्वन्द्वी बन गये। गोरियोंकी स्थिति ख्वारेज्मशाहसे बेहतर थी। जहां ख्वारेज्मशाहको भाड़े की तुर्क घुमन्तू सेनाका ही बल था, वहां गोरियोंके पास केवल तुर्क गारद ही नहीं थे, बल्कि उन्हींकी तरहके लड़ाकू पहाड़ियोंकी बड़ी सेना भी सहायता के लिये मौजूद थी। इसके साथ ही गोरियोंको यह भी फायदा था, कि वह इस्लामके सुल्तान कहे जाते थे, जबकि कराखिताई काफिरों (बौद्धों) का सामन्त होनेके कारण ख्वारेज्मशाहको वह सन्मान नहीं था। थोड़े दिनों के लिये गोरी राज्यवंशने मुसलिम एसियाके पूर्वी भाग का एक मात्र स्वतंत्र और सबल राजवंश कहलानेका सोभाग्य पाया। पश्चिमी एसियामें सल्जूकियोंके बँटे हुए राज्य निर्बल थे, इसलिये सारे इस्लामिक जगतकी आशा गोरियों पर लगी हुई थी। अन्तर्वेदके मुसल्मान कराखिताइयोंके हाथमें थे, पर वह भी अपने दक्षिणके इन धर्मबन्धुओंकी ओर बड़ी आशा लगाये रहते थे। इस समय कराखिताई, ख्वारेज्मशाह और गोरी यही तीन मध्यएसियाकी बड़ी बड़ी शक्तियां थीं। कराखिताइयोंके अधीन रहते हुए भी ख्वारेज्मशाह गोरियोंको पछाड़नेके लिये हर तरह की तदबीर कर रहा था, और अन्तमें वह इसमें सफल भी हुआ, यद्यपि उस सफलताका उपभोग चिंगिस खानने वहां पहुंचकर उन्हें नहीं लेने दिया। गोरियों और ख्वारेज्मशाह दोनोंके लिये अपनी जन्मभूमि संकटके समय बड़ी सुरक्षित जगह थी। ख्वारेज्म जहां रेगिस्तानोंसे घिरा होनेसे दुर्जेय था, वहां गोर हिन्दुकुशकी दुर्गम पहाडियोंके कारण दुर्धर्ष थी, पंजाबको दखलकर गजनवियोंने गोरियोंको रास्ता दिखला दिया था। तो भी उन्होंने तब तक हिन्दुस्तान पर कोई बड़ा कदम उठानेकी हिम्मत नहीं की, जब तक कि जन्मभूमिमें अपनेको मजबूत नहीं कर लिया।

गयासुद्दीनके चचा अलाउद्दीनने महमूदके वंशजोंको गजनी से भगा दिया। शहाबुद्दीनने गजनी राज्य को लेने के बाद उच्चके राजा की रानी को अपनी तरफ मिलाकर भारत में पैर जमाने का मौका पाया, फिर मुल्तान और सिंध को भी उसने जीत लिया। ११७८ ई० में गुजरात पर उसने चढ़ाई की, लेकिन वहां उसे हारना पड़ा। गुजरात की तरफ असफल हो शहाबुद्दीन ने पूर्व की ओर ध्यान दिया।

वह गजनवी खानदान से गजनी और पंजाब दोनों को ले चुका था। उस समय दिल्ली (चौहान) राज्य की सीमा पर सरहिन्द का किला था, जिसे शहाबुद्दीन ने पहिले लिया। इसके बाद पृथ्वीराज चौहान से तरावड़ी के मैदान में ११९१ ई० में लड़ाई हुई, जिसमें शहाबुद्दीन को घायल होने के सिवा कुछ हाथ नहीं आया। अगले साल शहाबुद्दीन फिर बड़ी सेना लेकर चढ़ा। अबकी

बार तरावड़ी के मैदान में हिन्दुओं की हार हुई। पृथ्वीराज शहाबुद्दीन का बन्दी बना और अन्त में मार डाला गया। चौहानों का मूल स्थान अजमेर था। शहाबुद्दीनने तरावड़ी की सफलता के बाद अजमेर की ओर बढ़ कर उसे ले लिया। दिल्ली में अपने गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को राज्यपाल बनाकर वह स्वयं गजनी लौट गया। ११९४ ई० में शहाबुद्दीन फिर एक बड़ी सेना लेकर आया। वह जानता था, कि भारत की सबसे बड़ी शक्ति दिल्ली नहीं कन्नौज है। जब तक जयचन्द को नहीं हराया जाता, तब तक वह हिन्दुस्तान का शासक नहीं बन सकता। जयचन्द दिल्ली की सीमा से मिथिला तक का राजा था। अपनी भारी सेना के साथ वह गोरी से लड़ने के लिये आगे बढ़ा और चन्दौर में लड़ते हुए मारा गया—हिन्दुस्तान में मुसलमानों की शक्ति दृढ़ हो गई।



३२. गोरी साम्राज्य (१२०३ ई०)

लेकिन अपने जन्मदेशमें गोरियोंकी सफलता वैसी नहीं रही। एक ओर वह और उसके सेनापति हिन्दुस्तानके काफिरोंको हरा, उनके मंदिरों और विहारोंको तोड़ रहे थे, दूसरी ओर उनके सबसे जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी काफिर कराखिताई उसकी नाकमें दम किए हुए थे और जिनके ही कारण गोरी वंशका उच्छेद हुआ।

कन्नौज-विजयके चार साल बाद ११९८ (५९४ हि०) में गयासुद्दीनके भाई-बन्धु मुहम्मदपुत्र मसऊद-पुत्र बहाउद्दीन साम ने कराखिताई सामन्त से बलख छीन लिया, तुर्क-राजाके मरनेसे उसे यह मौका मिल गया। बलखमें इसी समय गयासुद्दीनके नामका खुतबा भी शुरू हो गया। ख्वारेज्मशाह तेकिश कराखिताइयोंका सामन्त ही नहीं था, बल्कि इस्लामके खलीफाके

साथ भी उसका अच्छा संबंध नहीं था। यद्यपि बगदादी खलीफा अब नाममात्रके खलीफा थे, लेकिन मुसलिम जगतके पोप होनेके कारण अब भी उनका काफी सम्मान था। खलीफाकी इच्छानुसार गयासुद्दीनने तेकिशके विरुद्ध खुरासानपर चढ़ाई की। तेकिशने कराखिताइयोंसे मदद मांगी। जमादी 11 (अप्रैल ११९८ ई०) में तायनकूके अधीन कराखिताई सेनाने वक्षु पार हो गूज़गान और दूसरे पड़ोसी इलाकोंको उजाड़ा। उन्होंने सामसे मांग की, कि बलखको छोड़ दो, नहीं तो कर देना स्वीकार करो। गोरियोंने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु साथ ही गयासुद्दीन अपने शत्रुओंपर आक्रमण नहीं करना चाहता था, क्योंकि गोर सेनापति शहाबुद्दीन उस समय हिन्दुस्तान गया था। गयासुद्दीन स्वयं गठियाकी बीमारीमें पड़ा हुआ था और कंधेकी सवारीपर ही चल सकता था। रातके वक्त तीन गोर सेनापतियोंने कराखिताइयोंकी छावनी पर आक्रमण किया। कराखिताइयोंमें रवाज था, वह रातको तंबू नहीं छोड़ते थे और न संतरी रखते थे। दूसरे दिन जब कराखिताईयोंको मालूम हुआ कि, गयासुद्दीन अपनी सेनाके साथ नहीं है, तो उन्होंने फिर लड़ाई जारी की। कराखिताइयोंकी हार हुई, भागते वक्त उनमेंसे काफी वक्षुमें डूब गये। गोरी वंशके ऊपरका पहिला भयंकर संकट दूर हुआ और इस सफलताके बाद उसकी हिम्मत भी बढ़ गयी। तेकिशके बाद मुहम्मद ११९७ ई० में ख्वारेज्मकी गद्दीपर बैठा, जिसकी घोषणा ३ अगस्त १२०० ई० को हुई। मुहम्मद गद्दीपर तो बैठा, लेकिन मलिकशाहके पुत्र हिन्दूखानने उत्तराधिकारके लिये झगड़ा शुरू कर दिया। गोरियोंने हिन्दू खानका समर्थन किया और खुरासानके कितने ही शहरोंको ले लिया। गोरियोंके बर्तावसे खुरासानी संतुष्ट नहीं थे। इसी बीचमें गयासुद्दीन मर गया और मुहम्मदशाहकी जानमें जान आई।

२. शहाबुद्दीन (१२०३-१२०६ ई०)

१२०३ ई०में शहाबुद्दीन हिन्दुस्तानसे लौटा और ख्वारेज्मशाहकी गुस्ताखियोंके लिये सीधे उसके ऊपर चढ़ दौड़ा। मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने जब यह बात सुनी, तो मेर्व छोड़ ख्वारेज्मको लौट गया और नहरका पानी तुड़वाकर भूमिको जलमग्न करा दिया, जिससे शहाबुद्दीनको ४५ दिन देर करने के बाद आगे बढ़नेका मौका मिला। करासूके पास लड़ाई हुई, जिसमें मुहम्मदकी हार हुई। शहाबुद्दीनने आगे बढ़कर गूरगंजको घेर लिया। गोरियोंकी क्रूरताकी इतनी दुःख्याति थी, कि नगरका एक-एक आदमी रक्षाके लिये उठ खड़ा हुआ। ६ मास तक शहाबुद्दीन खीवगीने हदीसोंका प्रमाण दे-देकर देशके लिये लोगोंको लड़नेके लिये उत्तेजित किया और कहा—"अपने प्राण और संपत्तिके लिये मरनेवाला शहीद है।" इतिहासकार औफी इस वक्त गूरगंजमें मौजूद था। उसके कथनानुसार नागरिकोंको हथियारबन्द करना एक सैनिक चाल थी। राजमाता तुर्कान खातूनने ऐसा करके रोक-थाम की और उधर पुत्रके पास खुरासानमें खबर भेजी। इतना हथियार भी कहां से आता? सैनिकोंके लिये कागजके शिरस्त्राण बनवाये गये थे। यद्यपि सेनाकी भी हालत कुछ ऐसी ही थी, लेकिन भारी सेनाको देखकर शहाबुद्दीनको हिचकिचाहट हुई। सप्ताह के भीतर ही मुहम्मद ख्वारेज्मशाह केवल सौ सवारोंके साथ राजधानीमें पहुंचा। धीरे-धीरे चारों ओरसे सेनायें आकर जमा हुईं और राजधानीको शहाबुद्दीनके हाथमें जाने नहीं दिया गया। इतिहासकार जुवैनीके अनुसार उस समय ख्वारेज्मी सेना की संख्या

७० हजार थी। कराखिताइयोंसे भी मदद मांगी गयी थी। गोरियोंका शिविर वक्षुके पूरबकी ओर था। शहाबुद्दीनने अगले दिन नगरपर आक्रमण करनेके लिये घाट ढूंढ़नेका हुक्म दिया। इसी समय सेनापति तायनकू तराज और उस्मान (समरकन्द-सुल्तान) के नेतृत्वमें भारी कराखिताई सेना आ पहुंची। शहाबुद्दीनको विजयकी आशा नहीं रह गयी और वह जल्दी जल्दी पीछेकी ओर भागा। मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने उसका पीछा किया और हजारास्पमें पहुंचते पहुंचते गोरीको बुरी तरह हराया। ख्वारेज्मी विजयोत्सव मनानेके लिये गूरगंज लौट आये, लेकिन कराखिताई सेनाने गोरीका पीछा नहीं छोड़ा। अन्दखुदमें गोरी घिर गया। सितम्बरके अन्त या अक्तूबरके आरम्भ (१२०३) में दो सप्ताह तक लड़ाई होती रही। भारत-विजेता शहाबुद्दीन गोरी काफिरों (बौद्धों) के हाथसे बुरी तरह हारा और उसने भागकर अन्दखुदके किलेमें शरण ली। रूसी इतिहासकारने लिखा है "उसकी अवस्था वही थी, जो कि सेदाँमें नेपोलियनकी। यदि उसके भाग्यमें भी वही बदा नहीं निकला, तो वह समरकन्दके उस्मानकी कृपा थी, जो कि मुसलमान होनेके कारण नहीं चाहता था, कि इस्लामका सुल्तान काफिरोंके हाथमें बन्दी बने।" उस्मानने गुरखानसे सुलहकी बातचीत करनेकी आज्ञा मांगी, और समझौता करा दिया। कराखिताइयोंने गोरीको अपने देशमें लौट जाने दिया और केवल वैयक्तिक स्वतंत्रताका मूल्य वसूल किया। शहाबुद्दीन जब मैदान छोड़कर किले की ओर भागा जा रहा था, उस समय किलेके भीतर ले जाना संभव न देखकर उसने अपने हाथसे चार हाथियोंको मार डाला, दो को कराखिताइयोंने पकड़ लिया, एक और बचा था, जिसे कि उसने मुक्ति पानेके समय दे दिया। शहाबुद्दीनका अर्थ है (धर्मका तारा)। अन्दखूदमें वह धर्मका तारा डूब गया। शहाब|बड़ा दीन-हीन होकर गजनी लौटा। राजधानीमें उसके मरनेकी खबरसे अशान्ति मची हुई थी। उसने वहां पहुंचकर व्यवस्था कायम की, और मुहम्मद ख्वारेज्मशाहसे नाक रगड़ कर संधि की। हिरात छोड़ सारा खुरासान मुहम्मद ख्वारेज्मशाहके हाथोंमें चला गया।

१२०५ ई० के वसन्तमें बलखके राज्यपाल ताजुद्दीन जंगी (फखरुद्दीन मसऊदके पुत्र) ने ख्वारेज्मशाहके प्रदेश पर बिना अपने सुल्तान (शहाबुद्दीन गोरी) के हुकमके यकायक आक्रमण कर दिया। गोरियोंने मेर्वरूदको लूट लिया, लेकिन सरख्शमें ख्वारेज्मियोंने उन्हें बुरी तरहसे हराया। जंगी अपने दस सेनापतियोंके साथ बन्दी बना, और ख्वारेज्म में उन्हें कत्ल कर दिया गया। जो दिल्ली, कन्नौज और काशी तकपर इस्लामकी ध्वजा गाड़ चुका था, कैसे हो सकता था, कि वह शहाबुद्दीन अपने अन्तर्वेदके भाइयोंको काफिरों (बौद्धों) की गुलामी से छुड़ानेकी नहीं सोचता। आखिर वह इस्लामका सुल्तान था। खलीफा नासिरने अपने पत्रमें सलाह दी थी, कि ख्वारेज्म शाहको पहिले खतम करो और इसके लिये कराखिताइयोंके साथ मेल करो। खलीफाका भेजा हुआ वह पत्र गजनी में ख्वारेज्मियोंको मिला, जब कि उन्होंने कुछ ही साल बाद उस पर अधिकार किया। लेकिन शहाबुद्दीन कुछ नहीं कर सका। हिन्दुस्तानमें भी शहाबुद्दीनको सुल्तानके तौरपर उतना नहीं जाना जाता, जितना कि उसके द्वारा नियुक्त शासक कुतुबुद्दीन ऐबकको। १२०५ ई० की गरमियोंमें शहाबुद्दीनके हुकमसे बलख गवर्नर इमादुद्दीन उमरने कराखिताइयोंके मजबूत किले तेरमिजपर आक्रमण किया। उस समय इमादुद्दीनका प्रसिद्ध पुत्र बहरामशाह तेरमिजका राज्यपाल था। इसी समय हिन्दुस्तानमें बगावत (विद्रोह) हो जानेकी खबर आयी, जिसके कारण इमामुद्दीन और आगे नहीं बढ़ सका। जुबैनीके

अनुसार वह हिंदुस्तान पर अभियानके लिये हुक्म देते कहा गया था, कि सेना और खजाना की व्यवस्था ठीक करके ही कराखिताइयों की ओर बढ़नेका विचार करो। १२०६ ई० के वसन्तमें शहाबुद्दीन गजनी लौटा और कराखिताइयोंके ऊपर अन्तर्वेदमें अभियान करनेकी तैयारी करने लगा। बामियानके शासक बहाउद्दीनको उसने वक्षुपर पुल बांधनेका हुक्म दिया। सुल्तकानके हुक्मसे वक्षुके ऊपर एक गढ़ बनाया गया, जिसका आधा भाग दरियामें था। यह सारी तैयारी हो रही थी, इसी समय १३ मार्च १२०६ ई० को शहाबुद्दीन गोरी एक हिन्दूके हाथों मारा गया।

३. गयासुद्दीन II महमूद (१२०६-०७ ई०)

शहाबुद्दीनके मरनेके बाद उसका भतीजा तथा गयासुद्दीनका पुत्र महमूद गद्दीपर बैठा। उसमें बाप या चचाकी योग्यता नहीं थी। उसके विरुद्ध तुर्क गुलामों (गुलाम गारद) के नेताओंने विद्रोह करके गजनी पर अधिकार कर लिया। उनमेंसे एक कुतुबुद्दीन ऐबकका हिन्दुस्तानपर अधिकार पहिले ही से था। ख्वारेज्मशाहको भी अच्छा मौका हाथ लगा और "कराखिताइयोंके हाथमें बलख प्रदेश चला जायगा", यह बहाना करके उसने बलखको लेना चाहा, लेकिन वहांके गोरी राज्यपाल इमामुद्दीन उमरने ४० दिन तक आत्मसमर्पण नहीं किया और (१२०६ ई०) नवम्बरके अन्तिम दिनों में अपने साथ बलखको भी दे दिया। उसे बन्दी बनाकर ख्वारेज्म भेजा गया। तेरमिज़के गवर्नरने भी कोई आशा नहीं देखी, तो अपने पिताकी सम्मतिसे कराखिताई राज्यपाल उस्मान (समरकन्द) के हाथमें उसे सौंप दिया। दिसम्बरमें ख्वारेज्मशाहने हिरातमें बड़े विजयोत्सवके साथ प्रवेश किया। गयासुद्दीन महमूदको उसने गोरियोंके पैतृक देश गोरका शासक बनाकर रख दिया, जिसने अपनेको ख्वारेज्मशाहको अधीनस्थ मान खुतबा और सिक्का उसीके नामसे जारी किया। गोरी की शक्तिको पूरी तौरसे ध्वस्त करके अपने राज्यकी सीमाको हिन्दूकुश तक पहुंचाकर मुहम्मद ख्वारेज्मशाह जनवरी १२०७ ई० में अपनी राजधानी को लौटा।

गोरियोंका उत्थान जितना जल्दी हुआ था, उसी तरह दो पीढ़ी के भीतर ही उनका पतन हुआ। अब मध्यएसियामें कराखिताई और उसके सामन्त ख्वारेज्मशाहकी शक्ति बच रही थी।

स्रोत-ग्रंथ :

1. Turkistan Down to Mongol Invasion (W. W. Bartold)
2. Heart of Asia,
3. History of Bokhara (A. Vambery)

अध्याय ६

ख्वारेज़्मी (१०७७-१२३१ ई०)

§१. प्रवेशक

दसवीं शताब्दी में मामू-वंशी ख्वारेज्मशाहों का वर्णन हम कर चुके हैं।[1] इन्होंने सामानियों की निर्बलता से फायदा उठाकर शक्ति-संचय किया। पीछे इनका अपने संबंधी महमूद गज़नवी से झगड़ा हो गया, जिससे इस वंश का उच्छेद हुआ। मामून I अबुलहसन अली, और अबुल् अब्बास मामून II (—१०१७) इस वंश के शासक थे।

अपने बहनोई मामून II के मारे जाने के बाद महमूद गजनवी ने अपने एक गुलाम अलतून ताश को १०१७ ई० में ख्वारेज्मशाह बनाया। उसके बाद हारून (१०३४-१०३५) ने शासन किया, जिससे झगड़ा हो जाने पर मसऊद गजनवी ने अपने पुत्र सईद को वहां बैठाना चाहा, लेकिन उसमें सफलता नहीं हुई। इस वंश का अन्तिम ख्वारेज्मशाह इस्माईल था, जिसे भाग कर सल्जूकियों के यहां शरण लेनी पड़ी। सल्जूकियों ने तीसरे ख्वारेज्मशाह वंश की स्थापना की। यही इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण ख्वारेज्म वंश है, जिसके उच्छेद का श्रेय चिंगिस खान को है।

ख्वारेज्मी शाह—		भारत में (गहडवार)	
१. अनोश तगिन	१०७७-९७	चंद्रदेव	१०८०-११००
२. कुतुबुद्दीन मुहम्मद तत्पुत्र	१०९७-११२७	मदन	११००-१४
३. अतसिज़ तत्पुत्र	११२७-५६	गोविंद	१११४-५५
४. इ अल्र्सलन तत्पुत्र	११५६-७२	विजय	११५५-७०
५. महमूद सुल्तान तत्पुत्र	११७२-	जयचंद्र	११७०-९३
६. तकाश अरसलनपुत्र	११७२-१२००	गोरी	११९३-१२०६
		(गुलाम)	
७. अलाउद्दीन मुहम्मद तत्पुत्र	१२००-२०	कुतुबुद्दीन	१२०६-१०
८. जलालुद्दीन तत्पुत्र	१२२०-३१	अल्तमश	१२११-३६

§२. सुलतान

१. अनोश तगिन (१०७७-१०९७ ई०)

मलिक शाह सल्जूकी (१०७३-१०९२ ई०) ने अपने तश्तदार बिल्गतगिन को ख्वारेज्म

[1] देखो पीछे. ७।३

का राज्यपाल नियुक्त किया था, जिसके मरने के बाद उसका क्रीतदास अनोशतगिन ख्वारेज्म का राज्यपाल बना। यह अपने स्वामी सल्जूकी सुल्तान का सदा भक्त रहा। अनोशतगिन को सल्जूकी अमीर बिलगतगिन (बिल्गावेग) ने गरजिस्तान के एक आदमी से खरीदा था। बिलगातगिन द्वारा वह मल्किकशाह के दरबार में पहुंचा, जहां अपनी योग्यता के कारण बहुत तरक्की करते तश्तदार के पदपर प्रतिष्ठित हुआ। इस विभाग के खर्च के लिये ख्वारेज्म प्रदेश का कर लगा हुआ था। जब वह प्रदेश का शासक नहीं बना था, उसी समय उसके पुत्र कुतुबुद्दीन मुहम्मद की शिक्षा-दीक्षा मेर्व में हो रही थी। १०९७ ई० में जब ख्वारेज्मशाह बल्गतगिन किची कुचकुर-पुत्र विद्रोही अमीरों द्वारा मारा गया, तो विद्रोह के दमन के लिये सुल्तान बर्कियारुक ने अमीरदाद अब्बासी अल्तूनताश-पुत्र को खुरासान का राज्यपाल नियुक्त किया, जिसने ख्वारेज्म का शासन अनोशतगिन के पुत्र मुहम्मद के हाथ में दे दिया।

२. कुतुबुद्दीन मुहम्मद (१०९७-११२७ ई०)

अनोशतगिन ने अपने पुत्र कुतुबुद्दीन को बहुत अच्छी तरहसे शिक्षा दी थी। सल्जूकी वंशमें शिक्षाका कितना महत्त्व था, यह इसी से मालूम होगा कि प्रतापी सुल्तान सिंजर बिलकुल अनपढ़ था। शायद घुमन्तुओं को अपने खून के साथ यह भाव भी मिलता था, कि पढ़ने-लिखने से आदमी डरपोक हो जाता है। कुतुबुद्दीन मुहम्मद को पिताने आजन्म सल्जूकियों का नमकहलाल दास रहने की शिक्षा दी थी,लेकिन कुतुबुद्दीन ने गद्दी पर बैठते ही ख्वारेज्मशाह की उपाधि धारण की। इसीके समय से अन्तर्वेद पर कराखिताइयों के आक्रमण शुरू हुये। कुतुबुद्दीन को उनसे बुरी तरह हार कर कराखिताइयोंको वार्षिक कर देनेके लिये मजबूर होना पड़ा।११२७ (५२१ हि०) में इस हार के थोड़े ही दिनों बाद कुतुबुद्दीन मर गया और उसका पुत्र अतसिज़ गद्दीपर बैठा।

३. अत्सिज[1] (११२७-११५६ ई०)

अत्सिज़ कई साल तक सिंजर का तश्तदार बन मेर्व में रहा था। सिंजर पर उसका अत्यधिक प्रभाव था, जिससे दरबारी जलने लगे थे। इस पर वह सिंजर से आज्ञा लेकर ख्वारेज्म चला गया। ख्वारेज्म पहुंचते ही उसने स्वामी के प्रति विद्रोह कर दिया। सिंजर ने हमला किया जिसमें अत्सिज़ का पुत्र इल-किलिच मरा, अत्सिज़ ने सिर नवाया किन्तु सिंजर ने नाराज होकर अपने भतीजे सुलेमान शाह को ख्वारेज्म का राज्यपाल नियुक्त किया। अत्सिज़ ने सिंजर के लौटते ही उसके भतीजे को मार भगाया। अब सारा ख्वारेज्म अत्सिज़ के हाथ में था। ११४१ (५३६ हि०) में सिंजर का जोर देखकर अत्सिज़ ने अपनी सहायता के लिये कराखिताइयों को बुलाया।

ख्वारेज्मशाह का वंशस्थापक वस्तुतः अत्सिज़ था। उसके दोनों पूर्वाधिकारी सल्जूकियों के इतने विनम्र सेवक थे, कि वह चूं भी नहीं कर सकते थे। आरंभिक वर्षों में असित्ज़ भी सिंजर के प्रति बहुत भक्ति रखता था। अन्तर्वेद में सिंजर ने जितने अभियान किये, उनमें अत्सिज़ भी साथ रहा। अत्सिज़ ने उत्तर की ओर अपनी राजसीमा को बढ़ाने का प्रयत्न किया और वहां के अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान ज़न्द (सिरदरिया) और मनकिशलक प्रायद्वीप पर कब्जा

---

[1] Turkistan. . . Heart of Asia

कर लिया। सिर-दरिया और अराल समुद्र के उत्तर की ओर अभी घुमन्तुओं का अंखड देश था, जहां पर किपचक पशुपाल रहा करते थे। अब भी वह इस्लाम से अछूते थे, जिसका यह अर्थ नहीं, कि उनके सरदारों में धर्म और संस्कृति का नितान्त अभाव था। अत्सिज़ को इनके ऊपर आक्रमण करते जहाद के कर्तव्यपालन करने का भी मौका था। वह किपचक भूमि के बहुत भीतर तक बढ़ता चला गया, और काफिरों के सबसे प्रतापी खानों और सरदारों को जीतने में सफल हुआ। इस सफलता के थोड़े ही समय बाद उसने सिंजर से विद्रोह किया। पहिले कह चुके हैं, कि गज़नी के अभियान में लोगों ने अत्सिज़ के विरुद्ध सिंजर का कान भरा था, जिसके कारण उसने रुखाई दिखाई थी, जिससे असित्ज़ का भी मन बिगड़ गया। सिंजर ने ११३८ के पतझड़ में यह बहाना करके ख्वारेज्म पर आक्रमण किया कि अत्सिज़ ने बिना मेरी आज्ञा के ज़ंद और मनकिशलक पर आक्रमण करके वहां ऐसे मुसलमानों का खून बहाया, जोकि उत्तर के काफिरों से हमारे साम्राज्य के लिये ढाल का काम देते थे। सितम्बर ११३८ ई० में सुल्तान बलख से भारी सेना लेकर ख्वारेज्म की ओर चला। अतसिज ने हज़ारास्प के पास मजबूत किलाबन्दी की थी, लेकिन तो भी सिंजर से १५ नवम्बर को उसे हारना पड़ा। बन्दियों में अत्सिज़का पुत्र भी था, जिसके सिर को कटवाकर आतंक फैलाने के लिये सिंजर ने अन्तर्वेद में भेज दिया। अत्सिज़ भाग गया। सिंजर अपने भतीजे सुलेमान मुहम्मद-पुत्र को राज्यपाल बना १० फरवरी ११३९ को मेर्व लौटा। अत्सिज़ ने ख्वारेज्म लौटकर सुलेमान को भगा दिया। यही नहीं ११३९ (५३४ हि०) में उस ने बुखारा पर भी आक्रमण किया और वहां के राज्यपाल यंगी अली-पुत्र को पकड़कर कत्ल करवाया। अब अत्सिज़ सिंजर के पास अधीनता स्वीकार करने के लिये निवेदन किया और मई ११४१ के अन्त में राजभक्ति की शपथ लेते देर नहीं हुई कि वह उसे तोड़ने के लिये भी तैयार हो गया।

अन्तर्वेद में अब भी करखानियों का राज्य था, यद्यपि उत्तरापथ के राज्य कराखिताईको को उनसे ले चुके थे। यह कह चुके हैं, कि कराखानी महमूद खान और उसके सैनिकों के झगड़े में उनके बिचवई बनने की बात को सिंजर ने बड़े अपमानजनक शब्दों में ठुकरा दिया था, जिसके कारण कराखिताइयों ने अन्तर्वेद पर आक्रमण किया और ९ सितम्बर (११४१) को कतवान की मरुभूमि में सिंजर को बुरी तरह हराया। उसी साल बुखारा पर भी उनका अधिकार हो गया और उन्होंने अपनी ओर से अल्पतगिन को बुखारा का शासक नियुक्त किया। यह भी कह चुके हैं, कि इस वक्त अत्सिज़ ने कराखिताइयों को नहीं बुलाया था, यद्यपि प्रचार यही किया गया था, कि ख्वारेज्मशाह ने इस्लाम के सुल्तान (सिंजर) के विरुद्ध काफिरों (कराखिताइयों) को बुलाया। कतवान की हार के बाद सिंजर फिर अपने पुराने गौरव को प्राप्त नहीं कर सका। जहां तक अत्सिज़ का संबंध था, उसके मुकाबलेमें वह अपनेको अधिक शक्तिशाली समझता था। कतवान की हार के बाद अत्सिज़ ने भी सिंजरसे बदला लिया। वह खुरासान में घुसा और २१ मई (११४१) को नेशापोरमें अपने नामका खुतबा पढ़वाया। सिंजर फिर संभल गया और ११४३ (५३८ हि०) में उसने ख्वारेज्म पर चढ़ाई की। अत्सिज़ अधीनता स्वीकार करने के लिये मजबूर हुआ। इसी समय मार्च ११४४ ई० में गूज़ों ने बुखारा को लूटा और उसके किले को ध्वस्त कर दिया। अत्सिज़ की बदनीयती का सिंजर को पता लग गया और नवम्बर ११४७ में उस ने तीसरी बार ख्वारेज्म पर आक्रमण किया, जिसमें फकीर आहूपोश ने बीचमें पड़कर दोनोंमें समझौता करवाया,

तो भी अत्सिज़ ने सिंजर से मुलाकात के समय कैसी धृष्टता का परिचय दिया, इसे हम बतला आये हैं। लेकिन उसके कारण सिंजर ने फिर लड़ाई नहीं छेड़ी। सिंजर के साथ फंसे होने के समय ज़न्द और मनकिशलक को अत्सिज खो चुका था। कराखानी कमालुद्दीन को अत्सिज़ के साथ समझौता करने के लिये मजबूर होना पड़ा, फिर वह अत्सिज़ का आजन्म बन्दी बना।

जून ११५१ (रबी ५४७ हि०) में अत्सिज़ ने ख्वारेज्म से जाकर ज़न्द के विद्रोहियों पर आक्रमण किया। बीचके रेगिस्तानको एक सप्ताहमें पारकर ८ रबी ५४७ हि० (२५ जून ११५१ ई०) को उसकी सेना सिर-दरियाके किनारे पहुंची। ९ को वह ज़न्द के दरवाजे पर थी। अन्त में विद्रोही भाग गये या क्षमाप्रार्थी हुये और बिना खून-खराबीके ज़न्द पर फिर अत्सिज़ का अधिकार हो गया। अपने जेष्ठ पुत्र इल अरसलन को राज्यपाल बनाकर उसने यह परिपाटी चला दी, कि ज़न्द का राज्यपाल सदा ख्वारेज्मशाह का युवराज हुआ करेगा। ११५३ के वसन्तसे सिंजर का सितारा बड़ी तेजी से डूबने लगा, जबकि गूज़ों ने दो बार सिंजर को हराया, मेर्व को लूटा और अन्तमें सिंजर को बन्दी बनाकर वह सारे खुरासानमें लूट-मार मचाते रहे। अत्सिज़ के लिये यह सुनहला मौका था। उसने पहिले अपनी शक्ति मजबूत की, फिर वह सिंजर का पक्ष लेकर गूज़ों पर पडा। तब तक सिंजर बन्दीखाने से भाग चुका था। असित्ज़ ने कराखिताइयों की शक्ति को बढ़ते देखा था। वह समझता था, अगर मैंने सावधानी से काम नहीं लिया, तो सदियों का बना इस्लामिस्तान सल्जूकी-वंश के उच्छेद के बाद ही काफिरिस्तान बन जायेगा। लेकिन अत्सिज़ अपने मंसूबों को पूरा नहीं कर सका था, कि खबूसान में ३० जुलाई ११५६ ई० को लकवे से उसकी मृत्यु हो गयी। यद्यपि अत्सिज़ ने सल्जूकियों के सामन्त के तौरपर ही प्राण छोड़ा था, लेकिन अब वस्तुतः सल्जूकी नहीं बल्कि ख्वारेज्मशाह इस्लाम का सुल्तान बनने वाला था, यह काम अत्सिज़ के पोतों और परपोतों ने किया।

४. इल्-अरसलन अत्सिज-पुत्र (११५६-११७२ ई०)

इल्-अरसलन को राजगद्दी शान्ति से नहीं मिली। इसके लिये उसे अपने कितने ही चचों को मारना पड़ा, भाई को अन्धा करना पड़ा, सुलेमान को कैद में डालना पड़ा तथा उसके अताबेग (अध्यापक-सचिव) ओगुलबेग को मरवाना पड़ा। २२ अगस्त ११५७ को वह गद्दी पर बैठा। शासन की बागडोर हाथमें लेते ही उसने सैनिकों की तनख्वाहें और अफसरों की जागीरें बढ़ा दीं। उसी साल रमज़ान (अक्टूबर-नवम्बर) में मेर्वमें पहुंचकर सिंजर ने अरसलन को गद्दी पाने की सनद भेजी थी। ११५७ के वसन्त में सिंजर ७५ साल की उमरमें मर गया, उसके साथ ऐसिया की सबसे बड़ी सल्तनत का अन्त हो गया। सिंजर का उत्तराधिकारी महमूद खान इल्-अरसलन का मित्र (मुखलिस) मात्र था, जबकि अत्सिज़ अपने को सिंजर का "बन्दा" (दास) लिखा करता था। सल्जूकी खानदान का मुखिया अब इराक का शासक गयासुद्दीन मुहम्मद महमूद-पुत्र (११५३-११५९) था, जो कि मलिकशाह का प्रपौत्र था। वह चाहता था कि पूर्व की सीमा बढ़ाकर सल्जूकी साम्राज्य को फिर से स्थापित करे। लेकिन अब्बासी खलीफा के साथ उसका झगड़ा भी चल रहा था। इल्अरसलन ने बीच में पड़कर खलीफा मुक़तफी (११३६-११६०) के वज़ीर को पत्र लिखकर कहा—"सुल्तान महमूद खुरासान को डाकुओं से और अन्तर्वेद को काफिरों (कराखिताइयों) की दासता से बचा सकता है।" लेकिन इसका कोई

फल नहीं निकला। आपसी झगड़े इतने बढ़ चुके थे कि सिंजर का रहासहा राज्य भी केरमानी, शामी (सीरिया), इराकी और रूमी (क्षुद्रेसिया) के सल्जूकी शासकों में बंट गया और इल्-अरसलन ख्वारेज्मशाह ही अब एसिया में सबसे शक्तिशाली मुसलमान सुल्तान रह गया।

अन्तर्वेद में कराखिताइयों का शासन अभी सुदृढ़ नहीं हो सका था। वह सीधे शासन न करके कराखानी राजकुमारों को अपनी ओर से शासक नियुक्त करते थे। कतवान के युद्ध के अनन्तर अरसलन खान महमूद का पुत्र इब्राहीम समरकन्द का शासक बनाया गया था। करलुकों ने जनवरी-फरवरी ११५६ (५५० हि०) में मारकर उसकी लाश को बुखारा के पास कल्लाबाद की मरुभूमि में फेंक दिया। उसके बाद हसन तगिन का पुत्र जलालुद्दीन अली समरकन्द की गद्दी पर बैठा। उसने करलुकों के नेता पेगू खान को मार डाला और उसके पुत्र तथा दूसरे करलुक-नेताओं—जिनमें लाचिन वेग भी था—पर बहुत अत्याचार किये। करलुक सरदार भागकर इल-अरसलन ख्वारेज्मशाह के पास पहुंचे। इल्-अरसलन उनका पक्ष करते जुलाई ११५८ ई० में सेना ले अन्तर्वेद पहुंचा। समरकन्द के खान ने कराकुल और ज़न्द के घुमन्तू तुर्कमानों से मदद मांगी और कराखिताइयों के पास भी गुहार की। कराखिताई गुरखान ने इलक तुर्कमान के सेनापतित्व में १० हजार सेना भेजी। ख्वारेज्मशाह ने बुखारा के लोगों को दिलासा देकर अपने पक्ष में किया, फिर आगे बढ़कर रबिन्जान शहर को ध्वस्त किया। ज़रफशां के किनारे दोनों सेनायें आमने सामने हुई। ख्वारेज्मी सेना संख्या में अधिक थी, इसलिये इलक-तुर्कमान ने आगे बढ़ने में आगा-पीछा किया। समरकन्द के इमाम और मुल्ला बीच में पड़े, जिससे लड़ाई नहीं हुई। इल्-अरसलन करलुक अमीरों को प्रतिष्ठा-पूर्वक उनके पदों पर बैठाकर ख्वारेज्म लौट गया।

११६४ (५५९ हि०) में गुरखान ने समरकन्द के खान को लिखा, कि करलुकों को मजबूर कर बुखारा और समरकन्द से काशगर भेज दो, यहां उन्हें बेहथियार करके खेती या दूसरे कामों में लगा दिया जायेगा। खान ने गुरखान के आज्ञापत्र को करलुकों को दिखला कर काशगर भेजने के लिए जोर दिया। करलुक विद्रोही बन गये और उनकी संयुक्त सेना बुखारा पर चढ़ दौड़ी। बुखारा का रईस (सद्र) मुहम्मद था, जिसका पिता उमर ११४१ में शहीद हो चुका था। उसने खान के पास प्रार्थना की, कि बुखारा को बचाने के लिये जल्दी सेना भेजो। साथ ही उसने करलुकों के पास दूत भेजकर कहलवाया, कि काफिर कराखिताई किसी प्रदेश को दखल करने के बाद लूट मार नहीं करते। तुम्हारे जैसे मुसलमानों और गाजियों का उस को रोकना कर्तव्य है। इस तरह की बातचीत में उसने करलुकों को भरमाये रखा और समरकन्द के खान को आक्रमण करने के लिये मौका दिया। यद्यपि करलुक हारे, किंतु जलालुद्दीन करलुकों को पूरी तौर से नष्ट नहीं कर पाया, यह इसीसे मालूम है, कि जलालुद्दीन अलीके उत्तराधिकारी किलिच तमगाज खान मसऊद के समय उन्होंने फिर विद्रोह किया। जिस समय इल-अरसलनने अन्तर्वेद पर अभियान किया था, उसी समय खुत्तल के अमीर अबूशुजा फर्रुखशाह ने तेरमिज़ पर असफल आक्रमण किया। खुतल कराखिताइयों के प्रभाव में था, इसलिये समझा जाता है, कि उन्होंने यह काम गुरखान की प्रेरणा से किया था। इल्-अरसलन ने खुरासान में कोई विशेष सफलता नहीं पाई। वहां गूज़ अमीरों और दूसरों के झगड़े चलते रहे।

११६५ (५६० हि०) में कराखिताइयों ने बलख और अन्दखुद को लूटा। यह वही अन्दखुद है, जहां इसके ४२ साल बाद शहाबुद्दीन गोरी को कराखिताइयों ने हरा कर गौर-राज्यवंश को

मटिया मेट कर दिया। पहिले ११६३ ई० में तमगाज खान मसऊद अली-पुत्र अन्तर्वेद में कुतुलुक बिलका बेग और रुकुनुद्दीन की उपाधि के साथ गद्दी पर बैठा। ११६५ ई० में उसने गूज़ों द्वारा ध्वस्त बुखारा के किले को पक्की ईटों की बुनियाद पर फिर से मरम्मत करवाया। इसके शासन में करलुक अमीर ऐयार बेग ने विद्रोह किया था। यह भी स्मरण रखना चाहिये, कि भारत के प्रथम मुसलमान सुल्तान कुतुबुद्दीन का दामाद और पीछे दिल्ली का सुल्तान अल्तमश भी करलुक था। ऐयार बेग साधारण घर में पैदा हो अपनी योग्यता से आगे बढ़ा था। वह अद्वितीय सवार योद्धा समझा जाता था। एक सालतक वह अन्तर्वेद का प्रधान सेनापति भी रहा। विद्रोह करने पर खान ने उसपर आक्रमण किया और ज़मीन तथा सवात के बीच भूखी-मरुभूमि में दोनों का युद्ध हुआ। ऐयार लड़ते लड़ते खान (कुतलुक विलका बेग) के पास पहुंच गया था, लेकिन इसी समय खान के सिपाहियों ने उसे पकड़कर कत्ल कर दिया। खान को करलुकों और खुरासान में ध्वंसलीला मचानेवाले गूज़ों से लड़ना पड़ा था। गूज़ों से लड़ने के लिये वह एक लाख सेना के साथ जाड़े में वक्षु पार हुआ। करलुकों के साथ उसकी लड़ाईयां नखशाब, किश, शगानियान और तेरमिज़ में हुई। उसने विद्रोहों को दबाकर शान्ति स्थापित की।

इल-अरसलन चाहे कितना ही शक्तिशाली शाह हो, लेकिन अभी भी वह कराखिताइयों का करद सामन्त था। वार्षिक कर न चुकाने के कारण ११७१ (५६७ हि०) में गुरखानी सेनाने ख्वारेज्म पर आक्रमण किया। ख्वारेज्म ने भी मुकाबिला करने का निश्चय किया। इस समय उसकी हरावल का सेनापति ऐयारबेग था, किन्तु यह करलुक ऐयारबेग नहीं था। ऐयार बेग हार करा खिताइयों का बन्दी बना। ख्वारेज्मशाह ने बांध तोड़कर फिर भूमि को जलमग्न कर दिया, जिसमें कराखिताई ख्वारेज्म की ओर न बढ़ सकें।

मार्च ११७२ ई० में इल अरसलन मारा गया।

५: महमूद

तकाश इल-अरसलन का ज्येष्ठ पुत्र तथा जन्द का गवर्नर था, लेकिन छोटे भाई (महमूद मुल्तान शाह) और उसकी मां तुर्कने ने उसे वंचित करना चाहा था।

६. तकाश अरसलन-पुत्र (११७२-१२०० ई०)

तकाश उसे न मान कराखि-खिताई में प्रथम गुरखान की रानी तथा उसके पति फूमा (कर्मा) के पास चला गया था। फूमा बड़ी सेना के साथ तकाश का पक्ष लेकर ख्वारेज्म आया। कराखिताई सेनाको देखकर मां-बेटों की हिम्मत टूट गई और वह भाग गये। सुल्तानशाह ने मूएइद से मदद मांगी। मुएइद मदद करने के लिये आया भी। सूबरली नगर के पास मरुभूमि के किनारे लड़ाई हुई और ११ जुलाई ११७४ ई० को मुएइद पकड़ कर मारा गया। सुल्तानशाह और उसकी मां देहिस्तान की ओर भागे। तकाश ने शहरपर अधिकार कर तुर्कानाको पकड़कर मरवा डाला। सुल्तानशाह भागकर पहिले मूएइद के पुत्र तथा उत्तराधिकारी तुगानशाह अबूबक्र के पास गया, फिर सुल्तान गयासुद्दीन गोरी की शरण में पहुंचा।

तकाश कराखिताइयों की मदद से ११ दिसम्बर ११७२ ई० को ख्वारेज्म की गद्दी पर बैठा।

कराखिताई जानते थे, कि तकाश उनकी दया के भरोसे ख्वारेज्मशाह बना है। कर

उगाहने के लिये कराखिताई दूत—जोकि गुरखान का संबंधी भी था—ख्वारेज्म आया। उसके शेखी और अपमानजनक बर्ताव से क्रुद्ध हो तकाश ने उसे मार डाला, और उसकी आज्ञा से अमीरों ने दूत के साथियों को भी मार डाला। यह खबर जब सुल्तानशाह को मिली, तो उसने कराखिताई रानी के पास जाकर उसे उभाड़ा ओर सारा ख्वारेज्म हमारे पक्ष में है, कहकर रानी के पति कर्मा के साथ सेना लिवा लाया। तकाश ने बांध तोड़कर रास्ते की भूमि को जलमग्न कर दिया। ख्वारेज्म की तैयारी को देखकर कर्मा ने भी समझ लिया, कि सुल्तानशाह की बातें गलत है। वह स्वयं लौट गया, तो भी सुल्तानशाह की प्रार्थना पर एक बाहिनी उसके लिये छोड़ गया, जिसकी मददसे उसने सरख्शके पास गूज़ शासकको हरा मेर्व ले लिया। फिर १३ मई ११८१ को अपने पुराने मददगार तुगानशाह को पूरी तौर से पराजित कर सरख्श और तूस पर भी कब्जा कर लिया। इस समय तुगानशाह तकाश के सामन्त के तौर पर नसापर शासन कर रहा था। ११८१ के अन्त में गोरी-दूत अमीर हुसामुद्दीन बातचीत करने के लिये ख्वारेज्म आया। तकाश ने वचन दिया, कि अगले वसन्त में मैं सेना के साथ खुरासान आऊंगा और उसी समय गयासुद्दीन (गोरी) से मिलूंगा। हुसामुद्दीन जनवरी ११८२ ई० में ख्वारेज्म से विदा हुआ, उसके साथ तकाश का दूत फखुरुद्दीन भी था।

तकाश खुरासान के अभियान के लिये तैयारी करने लगा। इसी समय सुल्तानशाह का दूत ख्वारेज्म पहुंचा। तकाश ने उससे तुगानशाह के साथ शान्तिपूर्वक रहने की मांग की। दूत ने अपने मालिक की और से इस बात को मानकर अधीनता भी स्वीकार कर ली। अब खुरासान पर अभियान करने का कोई कारण नहीं रह गया, तो भी तकाश ने अपनी तैयारी जारी रखी और इस बात की चिट्ठी भी गोरी के पास भेज दी। मई में तकाश ने जाकर सरख्श को घेर लिया और यहां से गोरी के पास भेजे एक पत्र में लिखा, कि सरख्श चन्द दिनों में सर हो जायेगा, फिर हम दोनों की मुलाकात का प्रबन्ध किया जायगा। पत्र में यह भी लिखा था, कि हमारे शासित सभी प्रदेशों की वाहिनियां इस वक्त हमारी सेना में हैं। सरख्श के जल्दी सर नहीं होने पर, सरख्श के दरवाजे से तकाश ने गयासुद्दीन के पास दूसरा पत्र लिखा। अल्पकारा ऊरान जाड़ों में काफिर किपचकों की एक बड़ी सेना के साथ आ पहुंचा है। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र फीरान यूगुर के साथ और पुत्रों को भी भेजकर अधीनता स्वीकार करते अपनी सेवायें ख्वारेज्मशाह को अर्पित कीं। ख्वारेज्मशाह ने उन्हें जन्द के राज्यपाल शाहजादा मलिकशाह के पास भेज दिया है, और हुक्म दिया कि उनको साथ लेकर शाहजादा काफिरों पर हमला करे। ख्वारेज्मशाह इसी जाड़े में गोरी सुल्तान की मदद करने के लिये आनेवाला था, लेकिन शत्रुओं के विरुद्ध गोरियों की सफलता की खबर सुनकर उसने अभियान रोक दिया। अगला पत्र तकाश ने गयासुद्दीन मुहम्मद गोरी के नाम जनवरी ११८३ ई० में लिखा था, जिसमें ख्वारेज्मशाह ने मुलाकात न करने के लिये अफसोस प्रकट किया और यह भी कहा, कि जरूरी काम के लिये अन्तर्वेद पर अभियान करना पड़ रहा है, घोड़े बहुत थक गये हैं इसलिये नया सफर करना मुश्किल है।

अक्तूबर नवम्बर ११८२ में तकाश ने जो खत ईरानी अतावेग पहलवान के पास भेजे, उनमें किपचकों का जिक्र है। अक्तूबर के पत्र में लिखा है, कि अल्पकारा-पुत्र फीरान को तकाश के परिवार से रिश्तेदारी का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसने पिछले साल की तरह इस साल भी

अपनी सेवायें अर्पित की हैं— पिछले साल उसने तराज़ (तलस) तक के बहुत विस्तृत प्रदेश को काफिरों के जूये से मुक्त कर दिया। नवम्बर के पत्र में लिखा था: तुर्क-भूमि से आकर किपचकों की वाहिनियां बराबर ख्वारेज्मशाह की सेना में भरती हो रही हैं।

अन्तर्वेदके अभियानके संबंधमें ताशने अपने वजीरके पास ख्वारेज्ममें चिट्ठी लिखी थी। वक्षु पार हो ख्वारेज्मशाहने एक वाहिनी बुखारा भेजी। सैनिकोंको हुक्म दिया, कि शान्तिप्रिय निवासियोंको कोई हानि न पहुंचाई जाय। लेकिन प्राकारबद्ध नगर में राजद्रोही अत्याचारियों और ढीठ मुर्तिदोंने—जो कि इस प्रान्तमें रहते कुफ्रके शिकार हो गये थे—भारी जमात इकट्ठा कर ली थी। ख्वारेज्मशाहने दया दिखलाते हुए बहुत देर तक अपने सिपाहियोंको रोककर बागियोंको समझानेकी कोशिश की, लेकिन मालूम हुआ कि उनके कानोंमें भ्रान्तिकी रूई पड़ी हुई है, इसलिये मंगलवार १२ अक्तूबर ११८२ ई० (५७८ हि०)को सैनिकोंने नगर पर आक्रमण कर दिया। एक मुहूर्तमें प्राकार पर अधिकार हो गया। विजयके बाद सेना लूट मचाना चाहती थी, लेकिन शाहने धार्मिक जनतापर दया दिखलाते हुए सेनाको लौटा लिया। वह जानता था, आक्रमणके बाद दखल किये शहरमें यदि लूट-मार मची, तो पीड़ितोंमें वह शान्तिप्रिय निवासी भी होंगे, जिन्होंने कि मजबूर हो काफिरोंकी अधीनता स्वीकार की थी। इस पत्र से जान पड़ता है, पहिले आक्रमणको रोक दिया गया था। अगले दिन (बुधवार) तकाशने शहरके आत्मसमर्पण करने के लिये प्रतीक्षा की। शामके अंधेरेसे लाभ उठाकर विद्रोही सेनापतिने भागना चाहा, किन्तु वह अपनी एक हजार सेनाके साथ पकड़ा गया। ख्वारेज्मशाहने उसे माफ कर दिया। बुखारामें सेनाके आते समय एक सैयद इमामने बड़ी सेवा की थी। तकाशने इसके लिये उसको धन्यवाद दिया। सद्रे-जहान बुरहानुद्दीन द्वारा नियुक्त बदरुद्दीनकी मुदर्रिस-इमाम-खतीब और मुफ्ती के पदों पर नियुक्तिको स्वीकार किया और हिदायत दी कि खुतबेमें खलीफाके साथ मेरा भी नाम पढ़ा जाय।

तकाश अब इतना बढ़-बढ़कर हाथ मार रहा था, मानो अधिराज गुरखानका अब कोई अस्तित्व ही नहीं है। गयासुद्दीन और शहाबुद्दीन गोरी काबुल और भारतमें कुफ्रका चिराग बुझानेमें लगे हुए थे और तकाश किपचक भूमिको काफिरोंसे विहीन करना चाहता था। लेकिन सभी काम बेखटके नहीं हो रहे थे। उसके भाई सुल्तान शाहने खुरासानमें अपना अड्डा जमा लिया था और गयासुद्दीन मुहम्मद गोरीकी बुरी गत कर दी थी। तकाशने जब यह बात सुनी, तो उसने गयासुद्दीनको ढारस देते हुए लिखा—मैं पचास हजार तुर्कोंकी सेनाके साथ बिचवई करनेके लिये आ रहा हूं। इस पत्रमें तकाशने गयासुद्दीनको भाई नहीं बल्कि पुत्र कहकर संबोधित किया। ख्वारेज्मशाह पूरबके सारे इस्लामिक शासकोंको अपने अधीन बनानेकी इच्छा रखता था, यह इससे स्पष्ट है। ११८३ ई० की गरमियोंमें तकाश सेना-सहित खुरासान पहुंचा और शायद इसी कारण गयासुद्दीन मुहम्मद गोरी की स्थिति अच्छी हो गई।

१५ अप्रैल ११८५ ई० को तुगानशाह मर गया और उसका पुत्र सिंजरशाह खुरासानके तख्तपर बैठा। देशमें बराबर अशान्ति मची रही। अधिकांश प्रदेश तकाशके भाई सुल्तानशाहके हाथमें था। तकाशने मध्य जून ११८७ ई० में नेशापोर ले लिया, और जन्दके भूतपूर्व गवर्नर अपने ज्येष्ठ पुत्र मलिकशाहको वहां का शासक बनाया। सिंजरशाहको पकड़कर उसने ख्वारेज्म भेज दिया। जब पता लगा कि वह नेशापोर वालोंसे गुप्त बातचीत कर रहा है, तो उसे अन्धा

करा दिया। २९ सितम्बर ११९३ ई० को सुल्तानशाह मर गया। अब मेर्व भी तकाश का हो गया। इसी सालके अन्तमें उसने मलिकशाहको मेर्वका राज्यपाल और उसके भाई मुहम्मदको नेशापोरका शासक बनाकर भेजा।

सल्जूकी सुल्तान तुगरलने बगदादके खलीफा नासिरका नाकमें दम कर रखा था। खलीफा अपने बचे-खुचे राज्यको बचाना चाहता था। सुल्तान तुगरल और उसके अताबेग लोगोंको समझा रहे थे—"यदि खलीफा इमाम है, तो उसका कर्तव्य है नमाज़ पढ़नेमें लगा रहना। उसकी इज्जत और सम्मान इसीलिये है, कि वह अपने आचरण द्वारा लोगोंके सामने उदाहरण पेश करे। यही उसके लिये काफी है, यही सच्ची बादशाही है। लौकिक शासनके कामोंमें खलीफाका दखल देना बेसमझीकी बात है। यह काम सुल्तानोंके जिम्मे दे देना चाहिये।" इसकी वजहसे मुल्ला लोग सुल्तान तुगरलके खिलाफ हो गये थे, क्योंकि वह खलीफाके पक्षपाती थे।

खलीफाके बुलानेपर १९ मार्च ११९४ को तकाशने रे (तेहरान) के पास तुगरलकी सेनापर आक्रमण किया। तुगरल बहादुरीसे लड़ते हुए युद्ध-क्षेत्रमें मारा गया। तकाशने रे और हमदानपर अधिकार कर लिया। अब (११९४) तकाश एसियाका सबसे बड़ा मुसलमान सुल्तान था। खलीफाको अब अक्ल आयी और समझा, तकाश कम खतरनाक नहीं साबित होगा।

(बौद्ध, ईसाई, जर्थुस्ती)

११९५ ई० में तकाश ने सिर-दरियाके उत्तरके तुर्कोंकी खबर ली। काइर तुकू खान वहांके काफिरोंका नेता था। उसके विरुद्ध धर्म-युद्ध (ग़ज़वा) घोषित करते हुए तकाशने सिगनाकपर अभियान किया। जन्दमें ख्वारेज्मी सेनाके आनेकी खबर सुनकर तुकू खान भाग निकला, लेकिन ख्वारेज्मी सेनाने उसका पीछा किया। ख्वारेज्मकी सेनामें उत्तरके घुमन्तुओं की भी वाहिनियां रहती थीं, यह पहिले कह आये हैं। उरानियान कबीलेकी एक वाहिनी के सरदारने तुकू खानको सूचित किया, कि युद्धके समय हम ख्वारेज्मियोंका साथ छोड़ देंगे। इससे उत्साहित हो शुक्रवार १९ मई (११९५ ई०) को तुकू खानने युद्ध छेड़ा। उरानियानोंने अपने वचनके अनुसार तकाशकी सेनाका साथ छोड़ दिया और उसकी रसद और सामानको लूट लिया, जिसके कारण मुसलमानोंकी घोर पराजय हुई। बहुतसे युद्धमें मारे गये, और उससे भी अधिकने मरुभूमिमें भूखों-प्यासों प्राण खोये। १८ दिन बाद ख्वारेज्म लौट कर तकाशने सालके बाकी समयको "इराक" में बिताया। उसी सालके अन्तमें काइर तुकू खान और उसके भतीजे अल्प दरकमें झगड़ा हो गया। भतीजा तकाशके पास जन्दमें सहायता मांगने आया। तकाशने स्वीकार किया। शाहजादा कुतुबुद्दीन मुहम्मद जनवरी ११९८ ई० में नेशापोरसे ख्वारेज्म आया। तकाशने उसे अल्प दरककी मददके लिये भेजा। खान हार कर अपने कितने ही अमीरोंके साथ बन्दी बना, और बेड़ी पहनाकर फरवरी में ख्वारेज्म लाया गया। उसके कबीलेने अल्प दरकको अपना खान माना, किन्तु वह काफिर इस्लामके गाज़ीका भक्त अधिक दिनों तक नहीं रहा और उसने भी चचाका पथ पकड़ा। "लोहे को लोहा काटता है" की कहावतके अनुसार तकाशने भूतपूर्व खान (तुकू खान) को जेलखानेसे छोड़ अल्पदरक (अल्पकारा) के विरुद्ध भेजा। अगले साल शुभ समाचार (खबर बशारत) मिला, कि तुकू खान विजयी हुआ।

गोरियोंके प्रकरणमें हम कह चुके हैं, कि बहाउद्दीन (बामियान-शासक) ने ११९८ ई० में कराखिताई शासकसे बलख छीनकर वहां पर गयासुद्दीन मुहम्मद गोरीके नाम से खुतबा पढ़वाया। इस कामको तकाश अपने विरुद्ध समझता था। अब तक गोरी सुल्तान और ख्वारेज्मशाह हिन्दुस्तान और किपचकके काफिरोंको परास्त करने में एक दूसरेकी सहायता करते रहे। लेकिन जान पड़ता है, तकाशके इरादेको जानकर, अब गयासुद्दीन भी तन गया था, इसीलिए उसने बलख पर प्रहार किया। तकाशने गयासुद्दीनके खिलाफ कार्यवाही करनेके लिये कराखिताइयोंसे भी मदद माँगी। उस समय शत्रुकी भारी शक्तिको देखकर गयासुद्दीन हमला नहीं करना चाहता था, क्योंकि यद्यपि भारत (दिल्ली) विजय किये हुए ६ वर्ष हो गये थे, और ४ वर्ष पहिले कन्नौज भी विजित हो चुका था, किन्तु अभी वहाँ विद्रोह शान्त नहीं हुए थे, इसलिये गोर-सेनापति शहाबुद्दीन हिन्दुस्तानमें फंसा हुआ था। अन्तमें धोखेसे कराखिताइयोंके शिविरपर आक्रमण करके गोरी-सेनाने भारी सफलता प्राप्त की। इस हारका दोष कराखिताइयोंने ख्वारेज्मशाह पर लगाकर प्रत्येक निहत सैनिकके लिये १० हजार दीनार हर्जाना माँगा। तकाशने गयासके पास सहायताके लिये पत्र भेजा। गयासने शर्त रखी—इस्लामके खलीफाकी अधीनता स्वीकार करो और कराखिताइयोंके आक्रमणसे जो नुकसान हुआ है, वह हमारी प्रजाको दे दो। जब गयाससे समझौता हो गया, तो तकाशने गुरखानको लिखा—"आपकी सेनाने केवल बलख को दखल करनेकी ही कोशिश की, उसने हमारी कोई सहायता नहीं की। मैं न आपकी सेनासे मिला, और न उसे मैंने नदी (वक्षु) पार करनेकी आज्ञा दी। अगर मैंने ऐसा किया होता, तो आपकी माँगके अनुसार पैसा देता। अब जब कि आप गोरियोंका कुछ नहीं बिगाड़ सके, तो मुझसे माँग कर रहे हैं। मैंने अब गोरियोंसे समझौता कर लिया है। मैंने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली है, अब मैं आपके अधीन नहीं रहा।"

इस तरहका मुंह फट जवाब सुनकर कराखिताई कैसे चुप रहते? वह ख्वारेज्मकी राजधानी को घेर कर प्रति रात छापा मारते रहते। इसी समय काफी संख्यामें गाजी तकाशसे आ मिले, जिसपर कराखिताइयोंको लौट जाना पड़ा। तकाशने उनका पीछा करते हुए बुखारा को जा घेरा। बुखारा-निवासी इस्लामके सुल्तानके नहीं बल्कि काफिरोंके वफादार रहे, और उनकी तरफसे लड़े। तकाश एक आंखका काना था। बुखारा वाले कराखिताइयोंकी शक्तिपर विश्वास करते थे, इसलिये उन्होंने कफतान और ऊंची नुकीली टोपी पहनाकर एक काने कुत्तेको प्राकारके ऊपरसे "ख्वारेज्मशाह" कहकर प्रदर्शित किया। इसके बाद कुत्तेको कतापुल्त (युद्धयंत्र) द्वारा दुश्मनके शिविरपर फेंकते हुए चिल्लाकर कहा "यह है तुम्हारा सुल्तान"। ख्वारेज्मवाले बुखारियों को मुर्तिद (धर्मसे पतित) कहते थे। अन्तमें बुखारा तकाशके हाथमें चला गया। उसने दया दिखलाते लोगोंमें बहुत सा पैसा बांटा और कुछ समय बाद वहांसे ख्वारेज्म लौट गया।

खलीफाके वजीर मुईनुद्दीनने बड़ी धृष्टतापूर्वक वर्ताव किया और कहा—चूंकि सुल्तान (तकाश) को यह दर्जा हमारे यहांसे मिला है, इसलिये उसे वजीरसे मिलनेके लिये घोड़ेसे उतर कर आना चाहिये और वजीरके तंबू से खलअत ले जाना चाहिये। तकाश ऐसा करनेसे इंकार कर तुरन्त वहांसे लौट पड़ा। उस समय तो बीच-बचाव हो गया, लेकिन वजीरके मरनेके बाद (जुलाई ११९६ ई० में) तकाशने खलीफाकी सेनापर आक्रमण कर उसे बुरी तरहसे हराया। मृत वजीरको दंड देनेके लिये उसके शवको कब्रसे निकाल उसका सिर काटकर ख्वारेज्म भेज

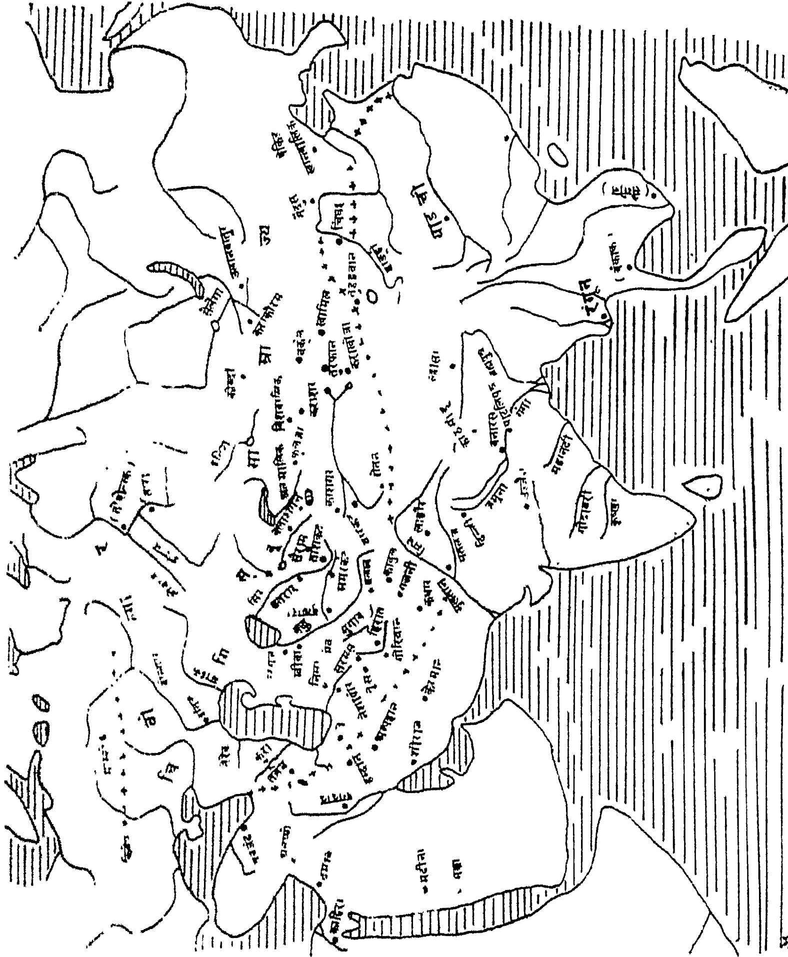
दिया। इसके बाद भी खलीफाका कहना था, कि ख्वारेज्मशाहको पश्चिमी ईरानकी ओर नज़र न दौड़ानी चाहिये। तकाशने जवाब दिया—इतना पर्याप्त नहीं है, मेरी असंख्य सेनाके खर्चके लिये इराक-अजमकी आदमनी बहुत कम है, इसलिये खुजिस्तान भी मिलना चाहिये। अंतिम जीवनमें तकाशने बगदादमें भी अपने नामका खुतबा पढ़े जानेकी मांग की। यहीं से ख्वारेज्म शाह और अब्बासियोंका भारी झगड़ा उत्पन्न हुआ, जिसका अन्त मंगोलों द्वारा दोनों वंशोंके उच्छेदके साथ हुआ। ख्वारेज्म सेनाने इस समय बड़ी बरबादी मचाई। इतिहासकार राबन्दीके अनुसार तकाशके सेनापति मायाचुकने उससे भी अधिक क्रूरता दिखलायी, जो कि गूज़ोंने खुरासान में, अथवा पीछे मंगोलोंने इराकमें की थी। जब इसकी शिकायत तकाशके पास पहुंची, तो उसने मायाचुकको पदच्युत कर दिया और ख्वारेज्ममें आनेपर उसे कत्ल करवा दिया। बगदादमें रखी सेनाकी हालत भी बेहतर नहीं हुई। ११९४ ई० में—जिस साल शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने जयचन्द्रको हराया—खलीफाने पांच सौ सवार ईराक-अजम भेजे। उन्होंने वहां पर रखी हुई ख्वारेज्मी सेनाको लूटकर मार भगाया।

तकाश ३ जुलाई १२०० ई० को मरा। यह खबर मिलनेपर इराक-निवासियोंने ख्वारेज्म की रही सही सेना को भी खतम कर दिया।

७. मुहम्मद तकाश-पुत्र (१२००-१२० ई०)

तकाशका बड़ा लड़का मलिकशाह पिताके जीवनमेंही ११९७ई०में मर गया था, इसलिये द्वितीय पुत्र मुहम्मद कुतुबुद्दीन (धर्म-ध्रुव) और अलाउद्दीनकी उपाधिके साथ गद्दी पर बैठा। उसके गद्दीपर बैठनेकी घोषणा ३ अगस्त १२०० ई० को हुई। मलिकशाहका पुत्र हिन्दूखान गद्दीका दावेदार था। गोरियोंने उसका समर्थन किया, जिनकी सहायतासे खुरासानके कितने ही शहरोंको उसने ले लिया। लोग लूट-खसूटके कारण हिन्दूखान से असन्तुष्ट हो गये। उधर उसका संरक्षक गयासुद्दीन भी मर गया। उसी वक्त मुहम्मदने अपने भतीजेपर धावा बोल दिया और १२०३ ई० तक उसने खुरासानके अपने सारे राज्यको वापस ले लिया। १२०४ ई० के वसन्तमें उसने और आगे बढ़ बादगियोंको लूटा और हिरातपर भारी कर लगाया। हिरात पर तकाशका कभी अधिकार नहीं हुआ था, इसलिये भारत-विजेता शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीको बुरा लगना ही था। वह भारतसे लौटते ही सीधे ख्वारेज्मपर चढ़ा। मुहम्मद जल्दी जल्दी मेर्वसे ख्वारेज्म लौटा। भूमिको जलमग्न कर गोरीकी सेनाको आगे बढ़नेमें ४५ दिनकी देर करा सका, लेकिन ख्वारेज्मियों की हार हुए बिना नहीं रही। गोरीके वर्णनमें हम बतला चुके हैं, कि किस तरह कराखिताइयोंकी मदद पहुंचनेके कारण ख्वारेज्मकी राजधानी शहाबुद्दीनके हाथमें जानेसे बची, उसे लौटना पड़ा और अन्तमें कराखिताई सेनाके हाथमें अन्दखुदमें ऐसी पराजय खानी पड़ी, जिससे वह फिर संभल नहीं सका। शहाबुद्दीन गजनी भागा। मुहम्मद ख्वारेज्मशाहके साथ इस्लामके सुल्तानको नाक रगड़कर संधि करनी पड़ी। अब हिरात छोड़ सारा खुरासान ही ख्वारेज्मशाहके हाथमें नहीं चला गया, बल्कि इस्लामका सुल्तान अब गोरी नहीं ख्वारेज्मशाह बना। १३ मार्च १२०६ ई० को जातीय बदला लेनेके लिये हिन्दुओंने जब शहाबुद्दीनको मार डाला, तो इस्लामी दुनियामें मुहम्मद ख्वारेज्मशाहका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रह गया। शहाबुद्दीनके भतीजे गयासुद्दीन महमूदके समय रहा सहा गोरी साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गया। तुर्की गुलामोंने गोरी राज्यको बांट

लिया। ख्वारेज्मशाहने भी इससे फायदा उठाया और दिसम्बर १२०६ ई० को हिरातमें विजयोत्सव मनाते हुए प्रवेश किया। गयासुद्दीन महमूद अब उसका एक सरदार भर था, जिसे गोरमें शासन करनेका अधिकार दिया गया। खुतबा और सिक्के ख्वारेज्मशाहके चलने लगे। जनवरी १२०७ ई० में ख्वारेज्मशाह अपनी राजधानीको लौट गया।



१३. चिंगिस साम्राज्य (१२२० ई०)

पूर्वी इस्लामी जगत अब फिर एकताबद्ध होने लगा। शक्तिशाली होते भी तकाशने कराखिताइयोंकी अधीनतासे इन्कार नहीं किया और वही शिक्षा वह अपने पुत्रको भी दे गया था, लेकिन मुहम्मद उसे भूल गया। उसने १२०८ ई० में कराखिताइयोंकी भूमि पर चढ़ाई की और उसे बुरी तरहसे हार खानी पड़ी। अगले साल की चढ़ाईमें उसे सफलता मिली और उतरार (फाराब) और तराज़ तकका प्रदेश उसने ले लिया। इसी समय कराखिताई साम्राज्यके पूरबी सीमान्तपर खतरा पैदा हो गया। १२०७ ई० में चिंगिसने नैमन तुर्कोंके खान तायङ को हराकर मारा डाला था। उसका पुत्र कुचलुक (गुचुलुक) भागकर गुरखान (कराखिताई) के

दरबार में शरणागत हुआ। दो वर्षके भीतर ही कुचलुकने किस तरह गुरखानके साम्राज्यको अपने हाथमें कर लिया, यह हम पहिले बतला चुके हैं। कुछ सफलताके बाद भी ख्वारेज्मशाहने अभी कराखिताइयोंको कर देनेसे इन्कार नहीं किया। लेकिन १२०९ (६०७ हि०) में जब कराखिताई दूत कर उगाहनेके लिये राजधानी गुरगांजमें आया और तख्तपर शाहकी बगलमें बैठा, तो इस्लामके सुल्तानको यह सह्य नहीं हुआ और उसने उसे वक्षु नदीमें फेंकवाकर मरवा दिया। यह कराखिताई साम्राज्यके प्रति युद्ध-घोषणा थी, इसलिये "प्रतिरक्षासे आक्रमण बेहतर होता है" इस नीतिका अनुसरण करते हुए मुहम्मदने कराखिताई राज्यपर अभियान किया। बुखारा लेकर वह समरकन्द पर बढ़ा। समरकन्दके कराखिताई शासक उस्मानने उसका स्वागत किया। आगे बढ़ते हुए ख्वारेज्मशाहने सिर-नदीके पार सितम्बर (१२१० ई०) में इलामिशके मैदानमें कराखिताई सेनाको हराकर उसके सेनापति तायङ्कूको बन्दी बना ख्वारेज्म भेजा और उसे भी वक्षुमें फेंकवाकर मरवा दिया। मुहम्मद ख्वारेज्मशाहका सितारा ओजपर था। अन्त-र्वेदका शासक उस्मान भी अब ख्वारेज्मशाहके पक्षमें था। उधर गुरखानको हाथकी कठपुतली बना कुचलुकने शासनको संभाल लिया था। कुचलुकने गुरखानकी एक रानीको व्याहा और दो साल बाद (१२१२ ई० में) जब गुरखान मर गया, तो स्वयं नया गुरखान बन गया।

१२०८ के वसन्तमें मुहम्मदने खुरासान जाकर वहाँकी अशान्ति दूर की। हिरातके राज्य-पालने ख्वारेज्मशाहके मरनेकी अफवाह सुनकर गोरी झंडा खड़ा करनेकी चेष्टा की थी। ख्वारे-ज्मशाहने राज्यपालको उसके किये का दंड दिया। नेशापोरके राज्यपाल कज़ली (कज़लिक) ने भी विद्रोह किया था। ३० मार्च १२०७ ई० को ख्वारेज्मशाह वहां पहुंचा। कज़लिकका पुत्र अन्तर्वेदकी ओर भागकर कराखिताइयोंके पास पहुंचना चाहता था। उसे और उसके साथियोंको वक्षु तटपर पकड़कर मरवा दिया गया। कज़लीने कहीं भी रक्षाकी संभावना न देखकर ख्वारे-ज्मशाहकी मां तुर्कान (तेरेकिन) खातूनकी शरण लेनी चाही और वह गुरगांज पहुंचा। तुर्कानखातून बड़ी जबर्दस्त स्त्री थी। उसका लड़का भी उससे बहुत दबता था, लेकिन कज़लीके अपराधकी गुरुताको वह समझती थी, इसलिये उसने अपने पति तकाशके मकबरेमें शरण लेने की राय दी। ऐसा कहकर भी अन्तमें तेरेकिन खातूनने कज़लिकका सिर कटवा कर पुत्रके पास भिजवा दिया और अपने संबंधी की मदद नहीं की।

१२०८ (६०५ हि०) में दिनको ख्वारेज्ममें एक भारी भूकम्प आया, जिससे राजधानीमें दो हजार आदमी मर गये, बाहर भी बहुत से लोग हताहत हुए, दो गांव धरतीके गर्भमें चले गये।

१२०९ ई० में कराखिताई दूत महमूद वाय कर मांगनेके लिये आया था। उसका जो परिणाम हुआ, उसे हम बतला चुके हैं। समरकन्दका शासक उस्मान ख्वारेज्मशाहका बड़ा सहायक हुआ। उसे शादी करनेके लिये ख्वारेज्म बुलाया गया था, लेकिन तुर्कान खातूनने तुर्की प्रथाका बहाना बनाकर एक साल ससुरालमें रहनेको कहा, जिसे उस्मानने स्वीकार किया। १२११ के वसंतके अभियानमें समरकन्दियोंकी मनोवृत्तिसे डरकर वह अपनी पत्नी-सहित समरकन्द चला गया। उस्मानको ख्वारेज्मका जो तजर्बा हुआ, उसके कारण उसने गुरखानसे संबंध जोड़ना ही अच्छा समझा। इसी समय उत्तरी सप्तनदमें मंगोल सेनापति कुबिलेनोयनने वहांके राज-कुमारके बुलानेपर आक्रमण किया और कराखिताई राज्यपालको मार डाला। मंगोल काफिर थे; तब भी उस्मानने जब उनकी सफलता की अतिरंजित बात सुनी, तो काफिरोंका जुआ उसे

पसन्द आया । उसकी प्रजा भी उससे सहमत थी । ख्वारेज्मशाह अपने दिग्विजयोंमें बड़ा धन खर्च कर रहा था। आखिर उसका सारा भार लोगों पर ही पड़ रहा था, इसलिये वह क्यों इस्लामके सुल्तानको पसन्द करने लगे ? समरकन्दियोंने ख्वारेज्मियोंको लूटना मारना शुरू किया : खबर पाकर ख्वारेज्मशाह चढ़ आया । समरकन्दने आत्मसमर्पण किया । उस्मान भी शरणमें आया । शायद ख्वारेज्मशाह क्षमा भी कर देता, लेकिन उसकी पुत्री तथा उस्मानकी बीबी क्षमा करनेके लिये तैयार नहीं थी, इसलिये उसे मारना पड़ा । गुरगांज एक कोनेमें था । वहांसे अफगानिस्तान और ईरान तक फैले साम्राज्यका शासन करना कठिन था, इसलिये अब एक तरह से समरकन्द ही ख्वारेज्मशाहकी राजधानी बन गया। उसने वहां एक जामा मस्जिद बनायी और एक बड़ा महल बनाने का काम शुरू किया । कराखिताइयोंकी ओर के इलाकोंको उसने छीन लिया।

गुरखान मर गया । गुचलुक से युद्ध करनेका बहाना करते हुए मुहम्मदने कहा: गुरखानने अपनी कन्या तफगाच खातूनको व्याहने और अपने सारे खज़ानेको दहेज़में देनेका वचन दिया था, इसलिये राजकन्या और खज़ानेको भेजो, और केवल दूरके प्रदेशोंपर ही अपना शासन रखो। गुचलुककी स्थिति अच्छी नहीं थी । उसके दुश्मन मंगोल उसे क्षमा करनेवाले नहीं थे । गुचलुकने अपने शासनमें मुसलिम धर्मान्धताका उत्तर अपनी धर्मान्धतासे देना चाहा , लेकिन अब तरिम-उपत्यका और सप्तनद मुसलिम-भूमि थी । वहांके मुसलमानोंने धार्मिक आन्दोलन किया। इस आन्दोलनसे फायदा उठाकर एक भूतपूर्व डाकूने कुल्जा प्रदेशमें अपना स्वतंत्र राज्य कायम कर लिया । गुचलुकने इसे बड़ी बुरी तरहसे दबाया । १२१३ ई० के आसपास ख्वारेज्मशाहने मुसलमानोंकी मददके लिये अपनी सेना राजधानी बिशबालिक भेजा । लेकिन लोगोंने गुचलुकका-साथ दिया । फिरसे व्यवस्था स्थापित करनेके बाद गुचलुकने मुसलमान आन्दोलनकारियोंपर —विशेषकर पूर्वी तुर्किस्तानमें—बड़ी क्रूरता दिखलायी । ख्वारेज्मशाह अपने सहधर्मियोंकी मदद करनेके लिये नहीं आया, यहां तक की अन्तर्वेदके उत्तरी इलाकोंको भी वह गुचलुकके अत्याचारोंसे नहीं बचा सका । १२१४ की गर्मियोंमें कराखिताई सेनाके समरकन्दपर आक्रमण का बड़ा भय था । ख्वारेज्मशाहकी इतनी हिम्मत नहीं हुई, कि आगे बढ़कर गुचलुकसे लोहा ले । उसने इस्फिजाव, शाश, फरगाना और काशानके लोगोंको आदेश दिया, कि वह देश छोड़कर दक्षिण-पश्चिममें चले आयें, जिसमें कि गुचलुकके हाथमें न पड़ें । सिर-दरियाके उत्तरी तटवाले फरगाना प्रदेशको उसने उजाड़कर बरबाद कर देनेकी आज्ञा दी, जिसमें गुचलुकके हाथमें कोई चीज न पड़े । यह ऐसा समय था, जबकि ख्वारेज्मशाहको चारों ओर गुचलुक ही गुचलुक (कुचलुक) दिखलायी पड़ता था, डर लग रहा था, कहीं फिरसे उसे अपना सारा राज्य खोना न पड़े और पूरबी इस्लामिस्तानपर धर्मान्ध काफिरोंका अखंड राज्य कायम हो जाये ।

किपचक मरुभूमिकी तरफ ख्वारेज्मशाहको ज्यादा सफलता मिली । शिगनाक अब ख्वारेज्म राज्यमें था । जन्दसे ख्वारेज्मियोंने उत्तरकी किरगिज मरुभूमिके किपचकोंपर आक्रमण किये और इसी अभियानमें मंगोल सेनासे ख्वारेज्मियोंकी टक्कर हो गयी, इसे हम पहिले बतला चुके हैं । यद्यपि मंगोलोंकी सेना बहुत बड़ी नहीं थी, तो भी मुकाबिला जितना कठोर रहा, उसके कारण मुहम्मद ख्वारेज्मशाह की हिम्मत नहीं हुई, कि सबेरे भाग निकली मंगोल सेनाका पीछा करे ।

अपने समसामयिक मुसलमान शासकोंमें मुहम्मद ख्वारेज्मशाह सबसे बड़ा था, इसमें संदेह

नहीं। १२१५ ई० में अपने पुत्र जलालुद्दीनको उसने गोरियोंके राज्यका शासक बनाया। जिस समय सुल्तान अन्तर्वेदमें क़राखिताई घुमन्तुओंके आक्रमणकी चिन्तामें पड़ा हुआ था, उसी समय उसके सेनापतियोंने प्रायः सारे ईरानकको जीत लिया और सुदूर उम्मा में उसके नामका खुतबा पढ़ा जाने लगा। बगदादका खलीफा यह नहीं चाहता था। ख्वारेज्मशाहने खलीफासे मांग की, कि अब वह लौकिक शासनको त्याग दे। खलीफा इस मांगको सहसा इन्कार नहीं कर सकता था। उसने शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दीको दूत बनाकर ख्वारेज्मशाहके पास भेजा। सुल्तानने देर तक शेखको इन्तिजार करते रक्खा, फिर जब वह दरबारमें आया, तो उसे बैठनेके लिये भी नहीं कहा। शेखने पैगम्बरकी हदीस (वाक्य) पढ़नेकी इजाजत मांगी और इस्लामिक प्रथाके अनुसार सुल्तानने सुननेके लिये घुटने टेके। हदीसका मतलब था—"कोई मोमिन (मुसलमान) अब्बासके खानदानको हानि न पहुंचाये"। मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने जवाब दिया—"यद्यपि मैं तुर्क हूं और अरबी बहुत कम समझता हूं, तो भी तूने जो हदीस पढ़ी है, उसका भाव मैंने समझ लिया। मैंने तो अब्बासकी एक भी संतानको हानि नहीं पहुंचायी और न मैंने उनकी बुराई करनेकी कोशिश की। इसी बीचमें मैंने सुना है, कि अब्बासकी संतान काफी संख्यामें अमीरुल् मोमिनीन (खलीफा) के हुक्मसे सदा जेलोंमें बन्द रहती हैं। यही नहीं बल्कि वहां उनकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। यह बहुत अच्छा और उचित होता, यदि शेख इस हदीसको अमीरुल्मोमिनीनके सामने पढ़ता।" शेखने समझानेकी कोशिश की, कि खलीफा धर्मवाक्योंका अर्थ समझनेका अधिकार रखता है, कि सारी मिल्लतके लिये किसी व्यक्तिको जेलमें डाले। शेखको असफल होकर लौटना पड़ा। खलीफाके साथ दुश्मनी और बढ़ गई।

खलीफा समझने लगा, कि जब तक इस कांटेको रास्तेसे निकाला नहीं जाता, तब तक खैरियत नहीं है। हसन सब्बाह-पुत्रका इस्माईली संप्रदाय गुप्त-हत्यायें करनेमें बड़ी प्रसिद्धि रखता था। उस वक्त इस्माइलियोंका मुखिया जलालुद्दीन हसन था—यह याद रखना चाहिये कि हमारे यहांके आगाखान उसी इस्माईली संप्रदायके मुखिया हैं। हसनसे कहकर खलीफाने कुछ फिदाइयों (मरनेके लिये तैयार व्यक्तियों) को ख्वारेज्मशाहको मारनेके लिये भेजा। फिदाइयोंने इराकके ख्वारेज्मी उपराजको मार डाला और मक्काके अमीरको भी अरफातके महोत्सवके समय पवित्र स्थानमें जाकर मारा।

१२१५ई० में जब ख्वारेज्मशाहने गज़नीमें अपने बड़े लड़केको शासक मुकर्रर करते समय दफतरको ढुँढ़वाया, तो वहां खलीफाके कई पत्र मिले, जिनमें गोरियोंको मुहम्मद ख्वारेज्मशाह पर आक्रमण करनेकी प्रेरणा दी गई थी। मुहम्मदने इन सब पत्रोंको दिखलाकर अपने यहांके इमामोंसे फतवा निकलवाया—"जो इमाम (खलीफा) इस तरहके अपराध करता है, वह अपने पदके योग्य नहीं है। और जो सुल्तान अपनेको इस्लामका अवलम्ब साबित कर चुका है और दीनके लिये युद्ध करनेमें अपना सारा समय देता है, उसके विरुद्ध यदि इमाम इस तरहके षड्यंत्र

---

[1] हर इमाम कि बर् इम्साल-इ हरकात कि ज़िक्र रफ्त इक़दाम नुमायद, इमामत-इं हक़ न बाशद। व सुल्तानेरा कि मदद-इस्लाम नुमायद व रोज़गार व-जिहाद सरफ़ कर्दा बाशद, क़सद कुनद् आँ सुल्तानरा रसद कि दफ़ा चुनीं इमाम कुनद, व इमाम दीगर नसब करदद। व जह् दीगर आँ कि खिलाफ़त रासादाद हुसैन मुस्तहक़ अन्द, व दर-खान्दान् अब्बास गसब स्त।

करता है, तो उसको हक है, कि ऐसे इमाम (खलीफा) को हटाकर उसकी जगह दूसरेको नियुक्त करे। अब्बासियोंने जबर्दस्ती खिलाफत दखल कर ली है, वस्तुतः वह हुसैनकी संतान अली-वंशियोंकी चीज है।"

यह फतवा निकालनेके बाद ख्वारेज्मशाहने नासिरको गद्दीसे हटाकर सैय्यद अलाउल्मुल्क तेरमिज़ीको खलीफा बना उसके नामसे खुतबा पढ़वाया और सेना ले बगदादके विरुद्ध कूच कर दिया। १२१७ ई० में उसने सारे ईरानपर अपना पूरा अधिकार स्थापित कर लिया, लेकिन जाड़ोंमें बगदादके विरुद्ध हमदानसे जो सेना भेजी, उसे कुर्दिस्तानमें बर्फानी तूफानमें पड़कर बड़ी हानि उठानी पड़ी। बची-खुची सेनाको कुर्दोंने खतम कर दिया। बहुत थोड़े लोग बचकर ख्वारेज्मशाहके पास पहुंचे। यह ख्वारेज्मशाहकी प्रतिष्ठा पर जबर्दस्त चोट थी। लोगोंमें यह ख्याल फैलाया जाने लगा, कि खलीफाके साथ दुश्मनी करनेका फल अल्लाने इस प्रकार दिया। उधर पूरबसे जो आक्रमण की खबरें आ रही थीं, उसके कारण मुहम्मद और बढ़कर खलीफासे झगड़ा छेड़नेकी स्थितिमें नहीं था। तो भी फरवरी १२१८ ई० में नेशापोर पहुंचनेपर उसने खलीफाका नाम खुतबासे हटवा दिया। यही बात मेर्व, बलख, बुखारा और सरख्शके शहरोंमें भी की। लेकिन ख्वारेज्म, समरकन्द और हिरातमें ऐसा नहीं करवाया। इसी समय ख्वारेज्म-शाहके घरमें झगड़ा हो गया। राजमाता तुर्कान खातूनने उग्र रूप धारण किया, जिसमें मुल्ला और सैनिक भी खातूनकी ओर थे। मुल्लोंको ऐसा करनेके लिये कारण था। १२१६ ई० में शाहने शेख नजमुद्दीन कुबरा (सूफी संप्रदाय कुबरी के संस्थापक) के शिष्य तरुण शेख मजदुद्दीन बगदादीको कत्ल करवा दिया। यह संदेह किया जाता था, कि सुल्तानकी मां तुर्कान खातून उससे फंसी। ख्वारेज्मशाहकी सेना अधिकतर भाड़ेकी थी। १२वीं शताब्दीमें साधारण लोग बहुत नीची निगाहसे देखे जाते थे, और उन्हें मजूरकी तरह पूरी तौरसे अपने अधीन रखनेकी कोशिश की जाती थी। सुल्तान सिंजर सल्जूकीकी कहावत थी—"गरीबों (कमज़ोरों) से मजबूतों (बड़ों) की रक्षा करना उससे कहीं आवश्यक है, जितना कि मजबूतोंकी स्वेच्छाचारी आचरणसे कमज़ोरोंकी रक्षा करना। यदि मजबूत कमज़ोरका अपमान करें, तो यह अन्याय (मात्र) है, जब कि कमज़ोर द्वारा मजबूतका अपमानित किया जाना अन्याय और अपमान दोनों है। अगर जन-साधारणको अधीनताके बंधनसे बाहर निकलने-का मौका मिले, तो बिलकुल अशान्ति और अव्यवस्था मच जायेगी। छोटे बड़ोंके कर्तव्यको पालन कर सकते हैं, लेकिन बड़े छोटोंके कर्तव्यको नहीं पूरा कर सकते। साधारण लोग चाहेंगे कि अमीरोंकी तरह रहें, लेकिन फिर उनके करनेका काम कोई नहीं करेगा।" मजूरों और किसानोंके बारेमें सिंजरकी सरकारका नियम था—"उन्हें बादशाहोंकी भाषा मालूम नहीं है। उन्हें अपने शासकोंसे समझौता करने या उनके विरुद्ध विद्रोह करने का कोई ज्ञान नहीं है। उनका सारा प्रयत्न केवल इसी एक उद्देश्यके लिए है, कि वह जीविकाके साधनोंको प्राप्त करें, बीबी-बच्चोंके पालन करनेके साधनोंको प्राप्त करें। इसके लिये उनको दोषी नहीं ठहराया जा सकता, यदि वह बराबर शान्ति का उपभोग करना चाहें।"

(१) शासन-व्यवस्था

ख्वारेज्मशाही शासनके बाद मंगोल शासन स्थापित हो जाता है, जब कि पहिलेसे चली

आयी शासनों-प्रथाकी जगहपर जगह-जगह से ली हुई चिंगीसीय शासन-व्यवस्था चालू होती है। इसी व्यवस्थाको तैमूर तथा दूसरे इस्लामी शासकने भी स्वीकार किया। वही मुगलों द्वारा भारतमें लाकर प्रचलित की गई। इसलिये ख्वारेज्मशाहके समय तक चली आती पुरानी राज्य-व्यवस्थाके बारेमें कुछ कह देना आवश्यक है। जैसा कि हमने पहिले कहा, गोरियोंकी सेनामें केवल भाड़के सैनिक नहीं रहते थे, बल्कि आस-पासके पहाड़ोंके इस्लामिक गाज़ी भी लूटके लोभ और धर्म-प्रचारके ख्यालसे शामिल होते थे। ख्वारेज्मशाहकी सेना बिलकुल भाड़ेकी टट्टू थी। ऐसी सेनाको अनुरक्त और अपने हाथमें रखनेके लिये शाह उनको असैनिक अधिकारियोंके ऊपर मानता था। असैनिक अधिकारी निम्न प्रकार थे—

वजीर, काज़ी और मुस्तौफ़ी—यह राज्यके सर्वोच्च अधिकारी थे।

वकील—दरबारके अतिरिक्त दीवान-खास का भी वकील होता था। वही भारी रकम और सेनाके खर्चके लिए निश्चित की हुई निधिका नियामक था। मंगोल कालमें शायद यही वकील खारिजी (बाह्य) वकील कहा जाने लगा।

मुशरिफ—प्रान्तोंमें वकीलका काम इसके आधीन था।

इनके अतिरिक्त शाहजादोंवाले प्रदेशोंके भी वज़ीर होते थे, जिन्हें सुल्तान नियुक्त करता था।

सुल्तानी वज़ीर कुछ कुछ वंशक्रमागत होते थे। जैसे मुहम्मदका वज़ीर निजामुल्मुल्क मुहम्मद मसऊद-पुत्र हारावी तकाशके वज़ीरका पुत्र था।

जानदार (बधिक)—सल्जूकियोंके समय इस अधिकारीका महत्व अधिक बढ़ गया था। मुहम्मद ख्वारेज्मशाहके समय इस पदपर काम करनेवाला अधिकारी "अयाज़ जहान पहलवान" के नामसे पुकारा जाता था और उसे दस हज़ारी सवारका मनसब (पद) था।

जागीर—सल्जूकियोंकी भांति इस समय भी सैनिक सेवाओंके लिये जागीरें दी जाती थीं। तकाशके समय बारचिनलिग कंतके नियुक्त सेनापतिको रबात-तुगानीन इलाकेका एक प्रधान गांव दीवान-अर्द (सैनिक विभाग) की मार्फत मिला था। उसी सुल्तानके समय राज-राजा-यगान-दुग्दूको एक गांव नुखास-मिल्क (माफी) के तौरपर मिला था।

(२) माँसे झगड़ा—

प्रेमीके मारे जानेके बाद भी राजमाताकी बातोंको मुहम्मद मानता था। जब निजामुल्मुल्क मुहम्मद हरवीको वज़ीर पदसे हटाया गया, तो राजमाताके कहनेपर मुहम्मदने उसके पूर्व गुलाम सालेह-पुत्रको "नासिरुद्दीन" और "निजामुल्मुल्क" की पदवी देकर वज़ीर बनाया। राजमताहीके कहने पर अपने सब से छोटे पुत्र कुतुबुद्दीन उज़लाग शाहको ख्वारेज्मशाहने अपना युवराज बनाया, क्योंकि उसकी मां राजमाताके कबीलेकी थी। बड़े शाहज़ादे जलालुद्दीन मंगूविरतीको खुश करनेके लिये हिरात छोड़ सारा गोरी राज्य प्रदान किया। युवराजको ख्वारेज्म, खुरासान और माज़न्दरानका शासन मिला था, किन्तु असली शासन-शक्ति तुर्कान खातूनके हाथमें थी।

फरवरी-मार्च १२१८ ई० में हिरातसे लौट कर सुल्तान नेशापोर पहुंचा, तो उसे वज़ीर मुहम्मद सालेह-पुत्रकी अयोग्यताका पता लगा,। शाहने उसे पदसे हटाकर तुर्कान-खातूनकी ओर इशारा करते हुए कहा—"जा अपने उस्तादके दरवाजे पर।" दरबारमें आनेपर तुर्कान

खातूनने बड़ी तैयारीके साथ पदच्युत वजीरका स्वागत करवा उसे युवराजका वज़ीर नियुक्त किया। सुल्तानने जब अन्तर्वेदमें रहते यह बात सुनी, तो वह जल-भुन गया और उसने इज्जुद्दीन तुगरलको उक्त वज़ीरका सिर काटनेका हुकम देकर भेजा। तुर्कान खातूनने तुगरलको गिरफ्तार नहीं किया, लेकिन सारी सभाके सामने यह कहनेके लिये मजबूर किया, कि सुल्तानने स्वयं निजामुल्मुल्कके पदकी स्वीकृति दे दी है। आखिर सुल्तान भी इसे मंजूर करनेके लिये मजबूर हुआ। अपने शासित प्रदेशोंमें तुर्कान खातूनकी चलती थी। सैनिक भी उसीके साथ थे। सैनिक वर्गकी मुखिया राजमाता थी।

निजामुल्मुल्कके हटानेके बाद अपने शासित प्रदेशोंमें ख्वारेज्मशाहने कोई वज़ीर नियुक्त नहीं किया, बल्कि यह काम दरबारके ६ वकीलोंको सुपुर्द कर दिया। उन्हींकी सर्वसम्मत रायसे काम चलाया जाता था। इन वकीलोंमें एक अभिलेख (दफ्तर) दीवान का मुखिया था। यह कहना मुश्किल है, कि मुहम्मदके दिलमें क्यों ऐसा ख्याल आया, कि व्यक्तिकी जगह उसने एक परिषद्के हाथमें शासन-सूत्र देना पसन्द किया। पुराने समयसे चली आती नौकरशाही परम्पराके यह बिलकुल विरुद्ध था। अब्बासियोंके समय जो राजनीतिक ढांचा पूर्वी मुसलिम जगत्में स्थापित किया गया था और जिसे उनसे ताहिरियो और सामानियोंने स्वीकार करके और विकसित किया, उस व्यवस्थाको मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने बिलकुल तोड़ दिया। इसके कारण नौकरशाहीका मान हेठा हो गया।

राजमाता अपने जार मुल्ला मज्दुद्दीनकी हत्याको क्षमा नहीं कर सकती थी और मुल्ला-वर्ग भी अपने एक प्रसिद्ध मुल्लाके मरवाने और खलीफाका नाम खुतबासे निकलवा देनेके लिये नाराज था। काफिरोंके जूयेसे जिन लोगोंको मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने स्वतंत्र किया था, वह भी उसके शासनकी कठोरताके कारण विद्रोही बन गये थे, क्योंकि उनको उसने बड़ी निर्दयतासे दबाया था। इस प्रकार शासन, उसके हरेक यंत्र और जनताके हरेक वर्गमें अविश्वास पैदा हो गया था; और यह ऐसे समय जब कि तीनों कालका सबसे अधिक प्रतिभाशाली संगठनकर्ता चिंगिस खान सीमांत पर आ पहुंचा था।

ख्वारेज्मी वंशका अवशिष्ट इतिहास अगले अध्याय में आयेगा।

स्रोत-ग्रन्थ :

1. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. W. Bartold)
2. Heart of Asia (E. D. Ross)
३. किताबुल्-हिन्द (अबूरेहाँ अल्बेरूनी)
४. आर्खिव्रेक्तुर्निये पाम्यात्निकि तुर्कमेनिइ (मास्को १९३९)
५. ओचेर्क इस्तोरिइ तुर्कमेन्स्कओ नरोदा (व० व० बरतोल्द, १९२४) (तारीख रशीदी, मिर्जा हैदर, अनुवादक E. D. Ross.)
6. A History of Mongol of Central Asia

अध्याय ७

चिंगिस् खान (—१२२६)

मंगोल ऐसी भूमिके रहनेवाले थे, "जहां न शहर या कस्बा क्या[1] गांव भी नहीं के बराबर हैं। चारों ओर वृक्ष-वनस्पति-हीन बालूकी भूमि है। इस भूमिका शतांश भी खेतीके योग्य नहीं है। बहुत थोड़ी सी जगहोंको नदियोंकी धारायें सिंचित करती हैं। यद्यपि पशुपालनके लिये इस भूमिके घासके मैदान बहुत अनुकूल हैं, लेकिन वहां भी कोई बड़े वृक्ष नहीं दिखाई पड़ते। घोड़ेकी लीद और याकके कंडेसे ही वहांके राजा और राजकुमार तक अपना भोजन पकाते हैं। आबोहवा बहुत ही कठोर है। गर्मियोंके मध्य में भी वहां ऐसे स्थान हैं, जहां भयंकर तूफान और वर्षा आतीं, बिजलीसे कितने ही आदमी और पशू मारे जाते हैं। इस समय भी भारी हिम-वर्षा हो जाती है। कभी कभी इतनी ठंडी हवा चलती है, कि आदमी मुश्किलसे घोड़ेपर बैठ सकता है। ऐसे ही एक तूफानमें हम धरतीपर पड़ गये थे और उस धूलकी धुंधमें कुछ नहीं देख पाते थे। वहां अक्सर एकाएक ओले पड़ने लगते हैं और असह्य गर्मीके बाद तुरन्त ही परले दर्जेकी सर्दी होने लगती है।" यह किसी आधुनिक यात्री या लेखकके वाक्य नहीं है, बल्कि चिंगिसके मरनेके थोड़े ही समय बाद मंगोलियामें पहुंचे कैथलिक साधू कारपीनीका लेख है। मंगोल लोगोंकी शकल-सूरत का अतिरंजित वर्णन एक लेखकने इस प्रकार किया है—"उनका चेहरा बड़ा ही भयंकर और घृणोत्पादक होता है। जिसपर दाढ़ी-मूंछका नामोनिशान केवल ऊपरी ओठों और ठुट्डीपर कुछ गिन लेने लायक बालोंके सिवाय नहीं मिलता। वह हर किस्मके जानवरोंका मांस खाते हैं, जिनमें घोड़ेका मांस बहुत पसंद करते हैं। जानवरको काटकर बिना नमकके ही उबाल लेते हैं, फिर उसके टुकड़े करके नमकीन पानीमें डुबोकर खाते हैं। कुछ लोग बैठकर भी खाते हैं, नहीं तो प्रायः खड़े-खड़े खा लेते हैं। भोजके समय स्वामी और सेवक एक समान भाग पाते हैं। उनका पेय कूमिस (एक प्रकारकी शराब) घोड़ीके दूध से बनाई जाती है



३४. चिंगिस

---

[1] Heart of Asia

जिसे बड़े बड़े बर्तनोंमें से प्यालेमें डालकर आकाश और चारों दिशाओंके देवताओंकी ओर थोड़ा सा फेंक कर पीते हैं। पीनेके समय सरदार अपने सेवकको चखाकर प्याला मुंहमें लगाता है। वह इच्छानुसार बीबियां रख सकते हैं, लेकिन व्यभिचार और चोरीके लिये मंगोल मृत्यु-दण्ड देते थे। उनका उस समय कोई धर्म या धार्मिक रीति-रिवाज नहीं था। लाशको कई दिन रखकर जला देते और कभी कभी मृत पुरुषके हथियारों और सोने-चांदीकी दूसरी चीजोंके साथ कुछ दास-दासियोंको मारकर उनके साथ गहरी कब्रोंमें गाड़ देते। श्राद्ध या स्मारकके तौरपर मारे हुए घोड़ेकी खालमें भूसा भरकर किसी ऊंची जगह या दरख्तपर टांग देते।

१. तैयारी

मंगोलोंकी यही अवस्था थी, जब कि उनमें १२ वीं शताब्दीके मध्य (११६२ ई०) में पीछे चिंगिस खानके नामसे प्रसिद्ध तेमोचिन पैदा हुआ। उस समय उत्तरी चीनका शासक किन्-राजवंश था, जो कि मंचु जातिसे संबंध रखता था। इसी किन्-वंशने खिताइयोंको भगाया था, इसे हम बतला आये हैं। मोंकू ताता (मंगोल तातार) कबीलेके खिलाफ किन् सम्राट्ने युद्ध घोषित किया था, फिर ११४७ ई० में उन्होंने मंगोल राजा औलो-बोतज़िले कगान (कुतुला,कुतलक) से सुलह की। यही वंश राज्य कर रहा था, जब कि ११६१ ई० में किन सम्राट् शी-चुङने मंकू-तातारके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। इसके कुछ समय बाद बोइरनोर (सरोवर) के तातारोंने मंगोलोंको बुरी तरहसे हराया। हम अनेक बार देख चुके हैं, कि घुमन्तुओंकी पूर्ण पराजय और उनका उच्छेद एक बात नहीं है। उस शताब्दीके बीतते बीतते चीन सरकारने कराइतों और मंगोलोंको तातारोंके विरुद्ध उभाड़ा। मंगोलोंके पास इतनी शक्ति अब भी थी, कि किन्-सम्राट् उनकी सहायता चाहता था। इसी संघर्षमें तेमुचिनको पहिले-पहल आगे आनेका अवसर मिला। उसने मरुभूमिके सरदारोंमेंसे चुनकर अपनी सेना बना युद्धमें भाग लिया। तातारोंपर विजय हुई और कराइतोंका खान पूर्वी मंगोलियामें प्रधान व्यक्ति माना जाने लगा। मंगोल सेनाने अपने नेता तेमुचिनको कगान (खान) घोषित किया। कराइतोंके खान वाङखानने भी इसमें अपनी सहमति प्रकट की। तेमुचिनने खानकी उपाधि स्वीकृत करते इसी समय अपने कबीलेका नाम फिरसे मंगोल रखना स्वीकार किया। कुतला कगानके बाद "मंगोल" नाम लुप्त हो चुका था। मंगोल शब्द चिंगिसके समय भी केवल सरकारी तौरसे इस्तेमाल होता था, साधारण लोग उससे अपरिचित थे। अब मंगोल राजवंशके सरकारी कागजोंमें इसका प्रयोग होने लगा, जिससे चीनमें उन्हें मंगोल कहा जाने लगा, लेकिन मंगोलिया तथा बाहर अब भी ताता (तातार) ही इनका नाम था। "मंगोल" नाम घोषित करते तेमूचिनने यह दिखलाना चाहा, कि मैं कुतलक कगानका उत्तराधिकारी हूँ और उसी वीर कगानका रुधिर मेरी नसोंमें बह रहा है—यद्यपि ऐतिहासिक तौरसे यह दावा गलत था।

परंपरा बतलाती है; कि इसी समय तेमुचिनने अपने १० दरबारी दरजे कायम किये—

१. कोरची—धनुष बाण ले चलनेवाले चार आदमी।

२. बाउरची—खाने-पीनेका निरीक्षण करनेवाले तीन आदमी।

३. अखताची—चरागाह के निरीक्षक।

४. तेरेगिन—गाड़ियोंकी तैयारीका निरीक्षक एक आदमी, जिसे पीछे युर्तची भी कहा जाने लगा। यही बुढ़ापेमें बुकाउल और बाबरची होता।

५. चेरबी—घरके कारबारको देखनेवाला निरीक्षक एक आदमी।

६. चार आदमी तलवारोंको लेकर चलनेवाले, जिनका मुखिया तेमुचिनका भाई जूची कसर था।

७. दो अख्ताची, जो कि घोड़ोंकी शिक्षाके निरीक्षक थे, इनका मुखिया तेमुचिनका भाई बिलगुतइ था।

८. तीन घोड़ोंके चरागाहके निरीक्षक।

९. चार खोला, ओयरा, जो कि दूर या नज़दीक बाणोंमें गुप्त संदेश रखकर ले जाते थे।

१०. परिषद्के रक्षक दो अमीर, जो कि खानके दाहिने बायें बैठते और उसे सलाह देते।



३५. मंगोल महाशकट

यह परंपरा कहां तक सच है,इसे नहीं कहा जा सकता; किन्तु १२०३ ई० तक तेमुचिनने अपने प्रतिहारों (केशिक) का संगठन निश्चय ही कर लिया था। अब तक वह कराइतों पर विजय प्राप्त करके संपूर्ण पूर्वी मंगोलियाका स्वामी बन गया था। उस समय ७० आदमी दिनमें पहरा देते, जिन्हें तुर्गेवुर्त कहते और ८० केब्तेवुर्त रातमें पहरा देते (एक वचन केब्तेवुर)। यह ओर दूसरे अधिकारी मिलकर केशिकतेन् (एक वचन केशिक) कहलाते। इन प्रतिहारोंमें कोर्ची (धनुर्धर), बाउर्ची (रसोइया), एगूदेंची (द्वारपाल), अख्ताची (सवार) भी शामिल थे। खानके घरू प्रबन्धके अधिकारी ६ चेर्बी थे। इनके अतिरिक्त एक हजार बहादुर खानके

वैयक्तिक प्रतिहार थे। युद्धके समय यही हरावल गारदका काम करते और शान्तिके (बगातिर) समय दरबारके गारद बनकर रहते।

१२०६ ई० में तेमूचिनने नैमन कबीलेको हराकर उनके राजा जमुकाको मारा। अब सारा मंगोलिया उसके अधीन था। इसी समय तेमूचिन ने ९ सफेद चौरोंवाला झंडा खड़ा कर राजाके तौरपर आसन ग्रहण किया। यही समय है, जबकि उसने चिंगिस कगान (खान) की पदवी धारण की, जिसका अर्थ है चक्रवर्ती राजा। चिंगिसने अब फिरसे अपने गारदका संगठन किया। केब्तेगुर्त (रात्रि प्रतिहारों) की संख्या ८० से ८०० कर दी, जो पीछे १००० हो गई। कोर्ची भी बढ़ाकर ४०० और पीछे १००० कर दिये गये। इसी तरह तुर्गेवुत (दिन-रक्षक) भी १००० हो गये। हजार बहादुरोंके नमूनेपर छ हजार बहादुरोंका गारद बनाया गया। ये सब मिलकर पीछे दस हजार हो गये। पहरे (कराउल) की चार वारियां मुकर्रिर की गई। हरेक बारीमें तीन दिन-रात डयूटी देनी पड़ती। दस हजार प्रतिहारोंमें भर्ती करानेके लिए हरेक साहसिक सेनापति अपने साथ अपने पुत्र, एक संबंधी और दस साथीको भी लाता। दशिकका पुत्र और स्वतंत्र मंगोल आमतौरसे अपने साथ एक संबंधी और तीन साथियोंको भरती करानेके लिये लाता। घोषणा हो जाती, कि जो कोई गारद में शामिल होना चाहता है, उसे कोई न रोके। चिंगिसने ऐसा नियम बनाया था, कि संध्याके बाद कोई आदमी खानके तंबूके पास फटक नहीं सकता था, बिना साथमें प्रतिहारके कोई खानके तंबूमें प्रवेश नहीं कर सकता था। अगर नियम उल्लंघन करके कोई भीतर आता, तो प्रहरी हथियार चला सकता। कौन से दिन कितने गारद डयूटी पर हैं, इसके बारेमें कोई पूछ नहीं सकता था। चिंगिसका अनुशासन बड़ा ही सख्त था। डयूटीके दिन न आनेपर पहिली बार ३० कोड़े मारे जाते, दूसरी बार ७० और तीसरी बार ३७ कोड़े मारकर उसे निकाल दिया जाता। कप्तानोंको भी डयूटीपर ठीकसे न आनेपर वही सजा दी जाती। जहां एक ओर गारदके सैनिकों और कप्तानोंका अनुशासन कड़ा था, वहां उनके विशेषाधिकार भी बहुत थे। खानके गारद के एक सिपाही का दर्जा सेनाके हजारी अफसरके बराबर था, युद्धमें असंलग्न एक गारद १०० अफसरके बराबर माना जाता था। गारदके आदमीको सजा तब तक नहीं दी जा सकती थी, जब तक कि कमांडर उसके बारेमें खानसे पूछ नहीं लेता। अपने एक घनिष्ट साथी सुबुदे बगातिर (बहादुर) को एक अभियान पर भेजते समय चिंगिसने हिदायत की थी—"जो कोई भी तुम्हारी आज्ञा माननेसे इन्कार करे, अगर वह मेरा परिचित है, तो उसे मेरे पास लाओ, यदि नहीं है, तो उसी जगह उसे मरवा डालो।" खानका गारद उसी समय युद्धमें भाग लेता, जबकि खान भी उसमें सम्मिलित होता। शिविरमें खानके तंबूके सामने मूल हजार बहादुर रक्खे जाते। कोर्ची और तुर्गेवुर्त दाहिनी ओर डेरा डालते और बाकी सात हजार बायीं ओर। चिंगिसके अधिकांश विख्यात सेनापति इन्हीं दस हजार वाले गारद में से आये।

१. शासन, शिक्षा

कराइत और नैमानभी घुमंतू कबीले थे, लेकिन वह मंगोलोंसे अधिक संस्कृत थे। मंगोलों

---

[1] वही

को संस्कृत बनानेका काम पीछे इन्हींनेही किया।१२०३ ई० में चिंगिसके दरबारमें कितने ही मुसलिम व्यापारी आये। व्यापारके सिलसिलेमें मध्य-एसियाके लोग मुसलमानोंके शासनके पहिले से भी सुदूर उत्तरके घुमन्तुओंमें जाया करते थे, इसलिए चिंगिसके दरबार में उनका पहुंचना कोई अचरजकी बात नहीं थी। हो सकता है, कराइत और नैमन कबीलोंके अतिरिक्त इन मुसलमान व्यापारियोंके द्वारा भी चिंगिसको कुछ बातें मालूम हुई, जिससे प्रेरित होकर उसने अपने गारदका संगठन और शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध किया। १२०६ ई० में नैमनों पर विजय प्राप्त करनेसे पहिले चिंगिसके राज-काजमें अभी लिखित कार्यवाही नहीं होती थी। नैमन खानका मुद्राधर उइगुर ताशा-तुन था, जिसे विजयके बाद चिंगिसने वही काम सुपुर्द किया। उसी के जिम्मे चिंगिस ने अपने पुत्रोंको उइगुर अक्षर सिखानेका भी काम दिया। चिंगिसकी दो मुहरें (मुद्रायें) थीं, जिनमेंसे एक का नाम अल-तमगा (रक्त-मुद्रा) और दूसरीका नाम कोक-तमगा (नील-मुद्रा) था। दोनों नाम तुर्की भाषाके हैं। नील तमगाका प्रयोग खान अपने परिवारके लिये पत्र लिखते समय करता। १२०६ के बाद चिंगिसके राज्य प्रबन्धने नया रूप लिया, जबकि दफ्तर और दूसरे असैनिक पदोंकी व्यवस्था की गई।

मंगोलोंके प्रथम शिक्षक और राजकर्मचारी उइगुर थे। उइगुरोंके बारेमें हम कह आये हैं, कि वह बहुत पहिले ही सुसंस्कृत हो चुके थे और बौद्ध धर्मके गहरे प्रभावमें आये थे। जब चिंगिसका राज्य चीन और मुसलिम देशोंमें फैला, तब भी दरबार और दफ्तरमें उइगुरोंकी ही प्रधानता रही। उइगुरोंने स्वयं चीन, भारत, तुर्किस्तान आदि देशोंके बौद्ध, मानी और नेस्तोरी प्रचारकों द्वारा शिक्षा प्राप्त की थी। मंगोलोंके गुरु इस प्रकार उइगुर हुए। उइगुरोंके बारेमें इतिहासकार औफीने लिखा है—"कराखिताइयों और उइगुरोंमें कुछ लोग सूर्यकी पूजा करते हैं, कुछ ईसाई हैं, यहूदी छोड़ बाकी सभी धर्मोंके अनुयायी उनमें पाये जाते हैं।..." उसने यह भी लिखा है, कि उइगुर लोग शान्तिप्रिय होते हैं, उनमें योद्धाके गुण नहीं हैं। उइगुरों और कराखिताइयोंमें बौद्धोंकी अधिक संख्या थी। मंगोल राज्यमें लेखक या राजकर्मचारीको बख्शी कहा जाने लगा, जिसका कारण यही था, कि पहिले वे अधिकतर उइगुर भिक्षु होते थे। भिक्षुका उच्चारण आज भी मंगोल भाषामें बख्शी है। उक्त लेखकने लिखा है, कि प्रार्थना करते वक्त उइगुर अपने मुंहको उत्तरकी ओर रखते हैं और हाथ जोड़कर जमीन पर पड़े दोनों हाथों पर अपने ललाटको रखते हैं। यह निश्चय ही बौद्धोंके नमस्कारका ढंग है, जिसे आज भी सिंहल, बर्मा, स्याम में देखा जा सकता है। भिक्षुओंकी इतनी प्रधानता ही बतलाती है, कि उइगुरोंमें बौद्धोंकी अधिकता थी, जिसके ही कारण जल्दी ही बौद्ध धर्म मंगोलोंका जातीय धर्म बन गया, और अबतक है। मुसलिम इतिहासकारोंने लिखा है—"उइगुरोंके मंदिरोंमें मरे आदमियोंकी मूर्तियां होती थीं। वह पूजाके समय घंटीका उपयोग करते थे। युरोपीय यात्री रुब्रिक (१२५१ ई०) ने उनके मंत्रोंमें "ओं मणि पद्मे हुं" को भी उद्धृत किया है। चीनी पर्यटक चाङ्चुङके अनुसार उइगुर बौद्ध भिक्षु लाल कपड़ा पहनते थे। वर्तमान मंगोलोंकी तरह उइगुर भी अपनी धर्म-पुस्तकको नोमे कहते थे। यह ग्रीक शब्द शायद सिरियासे मानीके अनुयायियों द्वारा मध्य-एसिया पहुंचा। उइगुर बौद्धों और ईसाइयोंमें आपसी प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी। उइगुर ईसाई चिङने बौद्धोंकी करलुकोंसे रक्षा की थी, क्योंकि वह उइगुर थे। बौद्ध और ईसाई दोनों ही प्रकारके उइगुर मुसलमानोंके सख्त दुश्मन थे। मंगोल भाषाके

लिये उइगुर लिपिका इस्तेमाल करनेका एक फल यह हुआ, कि मंगोलोंके जितने पारंपरिक नियम (यासा) थे, उन्हें तथा चिंगिस खानके वाक्यों (बिलिक) को लेखबद्ध करके जमा किया जाने लगा। बहुत समय तक ये अभिलेख मंगोल सम्राटोंके लिये सर्वोच्च प्रमाण रहे। सबसे पहिले चिंगिसके दत्तक पुत्र शीकी कुतुकू नोयोनने नई लिपि लिखना-पढ़ना सीखा। चिंगिसने उसे आज्ञा दी—"मैं तुझे चोरी और जालसाजीके मामलोंमें न्याय और दण्ड देनेके कामपर नियुक्त करता हूं। जो कोई मृत्यु-दण्डके योग्य हो, उसे मृत्युका दण्ड दे, जो कोई सज़ाका अधिकारी हो, उसे सजा दे। लोगोंमें सम्पत्तिके बंटवारेका जो मामला हो, उसका तू फैसला कर, काले तख्ते पर अपने निर्णयको लिख, जिसमें कि आगे चलकर दूसरे उसे बदल न सकें।" पीछे यासाका संरक्षक चिंगिसका द्वितीय पुत्र जगतइ (चगताई) हुआ।

किसी भी जिलेका असैनिक प्रबन्धक मुखिया दैसी कहा जाता था। जूचीके भी दैसी (दस हजारी) होते थे और कराखिताई कमाण्डरके भी दैसी थे। सैनिक तथा शासन विभागोंके संगठन के समय एक पद "बिकी" का भी होता था। चिंगिस खान मरते समय तक भूतपूजक (शमनी) रहा, इसीलिए उसने बिकी (शमन) का पद कायम किया। बारिन कबीलेके बृद्धतम पुरुष को बिकी नियुक्त करते समय चिंगिसने आज्ञा दी थी—"तू सफेद घोड़ेपर चढ़, सफेद पोशाक पहन, और जन-साधारण में सबसे ऊंचे स्थानपर बैठ। अच्छा वर्ष और महीना चुन और निर्णयके अनुसार प्रजाको सम्मान और आज्ञानुवर्त्तन करने दे।"

घुमन्तुओंके रवाजके मुताबिक चिंगिसके भी राज्यमें राजकुमारों और राज-संबंधियोंको अपने अपने शासन-क्षेत्र मिलते थे। १२०७ और १२०८ ई० में खानने जंगली जातियोंको जीता। इनका प्रदेश सालिंगा और येनीसेइके बीचमें येनीसेइकी उपत्यकामें था। सिबिर-जातिकी भूमिसे लेकर दक्षिण तटके जंगलों तक रहनेवाली जातियोंका शासक पिताकी ओरसे ज्येष्ठ पुत्र जूची नियुक्त हुआ। सबसे बड़ा पुत्र होनेसे उसे सबसे दूरका इलाका मिला। साम्राज्य के बढ़नेपर जूची और उसके ज्येष्ठ पुत्रको उत्तर-पश्चिमके सीमान्तके इलाके मिले। इतिहासकार रशीदुद्दीनके अनुसार जूची का युर्त (उर्दू) इर्तिश नदीके आसपास रहता था।

२. ख्वारेज्मशाहसे वैमनस्य[१]

१२०७ ई० के बाद कुछ वर्ष तैयारीके थे। १२११ ई० में मंगोल सेनाने जहां चीनकी ओर पैर बढ़ाना शुरू किया, वहां इसी समय पश्चिममें सप्तनद भूमिमें भी पहुंचकर उत्तरी सप्त-नदको मंगोल साम्राज्यमें मिला लिया, यह हम पहिले बतला चुके हैं। चीनमें फंस जानेके कारण पश्चिमकी ओरका बढ़ाव थोड़े समयके लिये रुक गया। लेकिन नैमन और मरगित कबी-लोंको—जो मंगोलोंके डरसे पश्चिमकी ओर भगे थे—सांस लेने देना मंगोल पसन्द नहीं करते थे। १२१५ ई० में पेकिङ-विजयके साथ प्रायः सारा उत्तरी चीन चिंगिसके हाथमें आ गया। मुहम्मद ख्वारेज्मशाह भी चीन-विजयका स्वप्न देख रहा था। अपने समकालीनोंकी तरह भूगोलका ज्ञान उसे स्पष्ट नहीं था, इसलिये चीनकी शक्ति और विस्तारका पता ख्वारेज्मशाहको कैसे लग सकता था? लेकिन जब उसे चीनके विजयका पता लगा, तो विशेष जानकारीके लिये उसने चिंगिसके पास बहाउद्दीन राज़ीको अपना दूत बनाकर भेजा। बहाउद्दीन चीनमें जा चिंगिससे मिला। किन्-सम्राट् स्वान्-चुङका पुत्र मंगोलोंका बन्दी था। बहाउद्दीनने अपनी आंखों चारों

और युद्धकी भयंकर ध्वंसलीला देखी। मारे गये लोगोंकी हड्डियां पहाड़की तरह ढेर की हुई थीं, मनुष्यकी चर्बीसे घास चिपचिपी हो गई थी। सड़ती हुई लाशोंसे निकलती दुर्गंधके कारण बहाउद्दीनके कुछ साथी बीमार होकर मर गये। पेकिङके दरवाजेपर हड्डियोंका भारी ढेर लगा हुआ था। बहाउद्दीनने सुना, जिस दिन राजधानी पर मंगोलोंका अधिकार हुआ, उस दिन साठ हजार लड़कियोंने शत्रुओंके हाथमें न पड़नेके डरसे नगर-प्राकारसे कूदकर प्राण दे दिये। चिंगिसूने दूतका बड़े सत्कारके साथ स्वागत किया और कहा—मैं ख्वारेज्मशाहको पश्चिमका बादशाह मानता हूं और अपनेको पूर्वका। मैं चाहता हूं कि हम दोनों सुलह और दोस्ती से रहें और व्यापारी एक राज्यसे दूसरे राज्यमें स्वतंत्रता-पूर्वक यात्रा करें। अभी चिंगिसको सारी दुनियाका बादशाह बननेका स्वप्न नहीं आया था। यह हम जानते ही हैं, कि मंगोलोंसे बहुत पहिले उनके पूर्वज हूण तथा छठीं सदीके तुर्क भी उभय-मध्यएसियाके स्थायी शासक रहे। मंगोल व्यापारके महत्वसे अपरिचित नहीं थे। येनीसेइ नदीके उत्तरी पहाड़ोंसे बहुत सा अनाज मंगोलिया जाता था, जिसके बदलेमें उन्हें चमड़ा और दूसरी चीजें मिलती थीं। ये व्यापारी उइगुर और मुसलमान होते थे। ख्वारेज्मशाह व्यापारके लिये उतना उत्सुक नहीं था। वह यही जानना चाहता था, कि उसके प्रतिद्वन्द्वीकी शक्ति कितनी है।

व्यापार चीनसे रूस तक होता था। इसमें शक नहीं, उसमें बहुत नफा था, लेकिन खतरा भी अधिक था। उधारपर दिये मालके डूब जानेका डर था, राज्य-विप्लवसे भी हर वक्त हानि की संभावना रहती थी। एक समय यदि अधिक लाभ होनेके कारण व्यापारी हाथ पैर बढ़ाते, तो दूसरे ही समय भारी हानि उठानेकी नौबत भी आ जाती। त्रेबेज़ेन्द यूनान और रूसके व्यापारका केन्द्रीय बन्दरगाह था। जब सल्जूकी सुल्तानने उसपर आक्रमण किया, तो उसके कारण वहांके व्यापारियों—जिनमें अधिकांश मुसलमान थे—को बहुत हानि उठानी पड़ी। उसी तरह १२०९ ई० में कराखितांइयों और ख्वारेज्मशाहके बीच जब सुलह हो गई, तो तुरन्त ही बडे बडे कारवां चल पडे। इन्हींके साथ कवि शेख सादी काशगर पहुंचे थे। मुसलिम राज्योंके व्यापारी उत्तरी रास्ते से मंगोलिया और चीन गये, क्योंकि दक्षिणमें उन्हें कुचलुक से भय था। ओर्मुज और किश के बन्दरोंके बीचमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ था, इसीलिए इस समय चीनका सामुद्रिक मार्ग बन्द हो गया था। बहाउद्दीनके साथ व्यापारियों का कारवाँ भी था, जिनमें अहमद खोजन्दी, अमीर हुसैन-पुत्र और अहमद बालचिच भी थे। वह अपने साथ जरबफ्त (ज़रदोजी), सूती और ज़न्दानी कपड़ेको लेकर गये थे। १०—२० दीनारकी चीजके लिये तीन सोने के बालिश (एक बालिश पचहत्तर दीनार) मांगे। चिंगिसने नाराज होकर कहा कि उर्दूसे लाकर ऐसी चीजोंको दिखलाओ, जिसमें इस व्यापारी को मालूम हो, कि हमारे लिये यह नयी चीज नहीं है। उसके बाद उसने बालचिच का सारा माल लुटवा लिया। यह देखकर खोजेन्दीने दाम कहने से इन्कार करते हुये कहा—"मैं यह सब चीजें खान की भेंट के लिये लाया हूं।" खानका दिल कुछ नरम पड़ा और उसने उसके सुनहरी धारीवाले मालपर प्रतिथान एक सुनहरी बालिश सूती थानपर एक चांदीकी बालिश देने का हुक्म दिया। फिर बालचिचको भी वही दाम दिलवा दिया। उस समय मंगोलोंने मुसलमानोंके साथ बहुत सहानुभूति और सम्मान दिखलाते हुये, उन्हें सफ़ेद नमदेके तंबूमें टिकाया। पीछे अपने कडुवे तजुर्बे के कारण मंगोलोंने अनेकबार मुसलमानों के साथ बड़ी निष्ठुरता दिखलायी।

ख्वारेज्मशाहके दूतके जवाबमें चिंगिसने भी अपना दूत भेजा, जिसके साथ व्यापारियोंका एक कारवाँ भी था। इस दूत-मंडलके मुखिया थे : महमूद (ख्वारेज्म), अली ख्वाजा (बुखारा) यूसुफ कंका (उतरार)। भेंट की चीजें थीं—चीनके पहाड़ोंसे निकला सोनेका एक डला, जोकि ऊंटके कोहानके बराबर था और गाड़ीपर लादकर भेजा गया था, बहुमूल्य धातु, अकीक (जेड पत्थर) के टुकड़े, खुतूबू (वलरस) की सींगे, कस्तूरी, ऊंटके ऊनसे बना कपडा तर्गू। दूतोंने ख्वारेज्मशाहसे कहा—"हमारे खानने आपके पराक्रम और विजयोंके बारेमें सुना है। वह चाहते हैं कि आपके साथ शान्तिकी संधि करें और आपको अपने सर्वप्रिय पुत्रोंके बराबर मानें। उन्हें विश्वास है, ख्वारेज्मशाहने भी मंगोलों के विजयोंको, विशेषकर चीन-विजय, और विजित देशोंकी संपत्तिके बारेमें सुना होगा; इसलिये दोनों राज्यों के बीचमें शान्ति और सुरक्षित व्यापारिक संपर्क की स्थापना दोनों के लिये लाभदायक होगी।" ख्वारेज्मशाहने खुले दरबारमें क्या जबाव दिया, इसे इतिहासकारोंने नहीं लिखा। पीछे उसने महमूद ख्वारेज्मीको एकान्तमें बुलाकर कहा—"ख्वारेज्मी होनेके कारण पहिले तुम्हें अपने देशके हितका ध्यान होना चाहिये। तुम मुझसे सच्ची सच्ची बातें कह दो, फिर जाकर मेरे गुप्तचर बन खानके दरबारमें रहो।" ख्वारेज्मशाहने उसे एक बहुमूल्य रत्न इनाम देनेका वचन दिया, फिर यह भी पूछा—"क्या यह बात सच है, कि तमगाचकी नगरी (पेकिङ) पर चिंगिसका दखल हो गया ?" दूतके हां कहनेपर मुहम्मदने कहा—"उस काफिरको मुझे पुत्र कहने का हक नहीं है।" महमूदने सुल्तानके गुस्से के डरसे जब कह दिया कि चिंगिसकी सेना आपकी सेनाके बराबर नहीं है। तब ख्वारेज्मशाहने चिंगिसके साथ संधि करनेकी स्वीकृति दी।

दूत-मंडलके प्रस्थान-समय के आस-पास ही मंगोलिया से व्यापारिक कारवां चला। जब वह ख्वारेज्म राज्यके सीमान्त नगर उतरारमें पहुंचा, उसी समय चिंगिसका दूत-मंडल लौट रहा था। कारवांमें चार व्यापारी थे—उमर ख्वाजा उतरारी, हम्माल मरागी, फखरुद्दीन दीज़की बुखारी और अमीनुद्दीन हरावी। कारवांमें कुल ४५० आदमी थे, जो सभी मुसलमान थे। सोना, चांदी, तांबा, चीनी, रेशम, तर्गू, समूर आदि माल पांच सौ ऊंटोंपर लदा था। उतरारका शासक इनालचिक काइर खान (इनाल खान) तुर्कान खातून का संबंधी सुल्तानके मामाका पुत्र था। उसने गुप्तचर कहकर कारवां को रोक लिया, फिर सबको मरवा दिया। इस हत्याके कई कारण बतलाये जाते हैं—कहा जाता है, कारवां में एक हिन्दू भी था, जो पहिले से इनाल खानको जानता था, इसलिये उसने बिना आदाब किये बड़ी घनिष्ठता दिखलाते इनालको संबोधित किया, जिससे वह नाराज हो गया। कोई कहते हैं, कि उसे इस धनी कारवांको लूटनेका लालच हो गया और अपने झूठे संदेहको सुल्तानके पास लिख भेजा, जिसके ही हुकमपर कत्ल करवाया। ४५० मेंसे केवल एक आदमी जान बचाकर भाग सका। उसने जाकर यह भयंकर समाचार चिंगिस खानको सुनाया। चिंगिस बड़ी ही धीर-गंभीर प्रकृतिका आदमी था। भारी उत्तेजनापूर्ण परिस्थितियोंमें भी वह आत्मसंयम कर सकता था, जिसका प्रमाण उसने इस समय दिया। उसने तकाशके एक सेवकके पुत्र कफराज बुगराको दो तातारों (मंगोलों) के साथ ख्वारेज्मशाहके पास इस दुष्कृत्यके प्रति विरोध प्रकट करनेके लिये भेजा और मांग की कि इनालचिकको दण्ड देनेके लिये हमारे हाथमें दे दो। ख्वारेज्मशाहने दूतोंसे मिलनेसे ही इन्कार कर दिया, बल्कि उन्हें भी मार डालनेका हुक्म दिया। कफराजको कतल करा उसके साथियोंकी दाढ़ी मुंडवाकर छोड़ दिया

गया। अब चिंगिस अपने पश्चिमाभिमुख अभियानको कैसे रोक सकता था? प्रभावशाली मुसलमान सलाहकारोंने शाहको बहुत समझाया, कि चिंगिस ख्वारेज्म-साम्राज्यके साथ अच्छा संबंध स्थापित करना चाहता है, वह कोई बड़ा कदम उठाना नहीं चाहता। "बेटा" कहकर वह अपमान नहीं बल्कि अधिक प्रेम प्रकट करना चाहता था।

इसमें शक नहीं, बगदाद, अफगानिस्तान और सारे अन्तर्वेदके स्वामी ख्वारेज्मशाहकी भी धाक चिंगिसपर थी। व्यापारिक हितोंके लिये यही बात अनुकूल थी, कि ख्वारेज्मशाहसे सुलह की जाय, क्योंकि उसने कुचलुकके साथके अपने युद्धोंके समय ही व्यापार, पथको बन्द कर दिया था।

ख्वारेज्मशाहके ऊपर चिंगिस तब तक प्रहार नहीं कर सकता था, जब तक कि कराखिताई राज्यके स्वामी कुचलुकको समाप्त नहीं कर दे। कुचलुक उस वंशका भगोड़ा राजकुमार था, जिसे खतम करके चिंगिसने अखंड मंगोलियाका शासन अपने हाथमें लिया था। चिंगिसको मौका मिल गया, जबकि इलिके राजा बुज़ार (जूचीके दामाद) पर शिकार करते वक्त एकाएक आक्रमण करके कुचलुकने उसे बन्दी बना लिया। मंगोल सेनाके आनेके डरसे ही कुचलुक वहांसे हटा, लेकिन बुज़ारको मार कर। मंगोल सेनापति जेबे नोयनने उसके पुत्र सुग्नाग तगिनको गद्दीपर बैठाया और बुज़ारकी लड़की उलुक खातूनको चिंगिसके लिये ले लिया। मंगोल सेना कुल्जाके रास्ते आगे बढ़ सप्तनद होते काशगर पहुंची। कुचलुकने तरिम-उपत्यकाके मुसलमानोंपर बहुत अत्याचार किये थे, इसलिये वहांके लोगोंने मंगोलोंका मुक्तिदाताके तौरपर स्वागत किया। कुचलुक वहांसे भाग निकला, लेकिन सरीकुलमें मारा गया। जेबेने कुचलुकका सिर कटवा मंगाया। इस प्रकार जिसकी प्रबल शक्ति ख्वारेज्मशाहके लिये एक बड़े सिर दर्दका कारण थी, उसे अ-प्रयास ही मंगोलोंके एक सेनापतिने खतम कर दिया। लेकिन इससे ख्वारेज्मशाहका सिर-दर्द कम नहीं हो सकता था, क्योंकि अब एक दुर्धर्ष तथा पहिलेसे शत्रु बनाया चिंगिस उसके दर-वाजेपर ताल ठोक रहा था। मुहम्मद अपनेको इस्लामका सुल्तान कहता था, लेकिन उसीने मुसलमानोंकी निष्ठुर हत्या करवाई, जब कि चिंगिसके भेजे हुए दूत-मंडलके चार सौ पचास मुसलमानोंमेंसे सिर्फ एक उसके हाथसे बचकर निकल पाया। ऐसी स्थितिमें उसे मुसलमान कैसे इस्लामका जहादी मान सकते थे?

४. अभियान

चिंगिसने जल्दी नहीं की—"रिपु-रुज-पावक-पाप, इनहिं न गनिये छोट करि"। उसने ख्वारेज्मशाहकी शक्तिको कम नहीं बल्कि बहुत बढ़ा-चढ़ाकर आंका, इसीलिये खास तैयारी किये बिना अभियान करना पसंद नहीं किया। इस अभियानमें वह अपने सारे पुत्रों तथा प्रधान-सेनापतियोंके साथ स्वयं शामिल हुआ। मंगोलियासे चलकर १२१९ ई० की गर्मियोंको उसने इर्तिश नदीके तटपर बिताया। पतझड़के समय उसकी यात्रा शुरू हुई। चिंगिस कयालिगके अत्यंत सुंदर मैदानमें डेरा डाले हुए था, वहीं अलमालिगका स्वामी सुग्नाग तगिन उइगुर इदिकुत (राजा) बाबुर्चिक, और स्थानीय करलुकोंका राजा अरसलन खान उससे आ मिले। सेनाकी संख्या डेढ़-दो लाखके करीब थी। चीन और हिया (तंगुत) पर अभी पूरी तौरसे विजय नहीं हो पायी थी, इसलिये वहांके लिये काफी मंगोल सेना छोड़नी पड़ी थी। इसमें शक

नहीं, ख्वारेज्मशाहकी सेना इससे भी ज्यादा थी, लेकिन जैसा कि हम बतला चुके हैं, वहां घरमें ही राजमाता तुर्कान खातून और उसकी पक्षपातिनी बहुत सी भाड़ेकी तुर्क सेना ख्वारेज्मशाहसे बिगड़ी हुई थी, जिससे उसको बराबर विश्वासघातका डर लगा रहता था। शहाबुद्दीन खीवगीने शाहको सलाह दी थी, कि सिर-दरियाके पार मोर्चा लगाकर चिंगिसके आक्रमणकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। उसने समझा, कि इतनी दूर तक आनेमें मंगोल सेना काफी थकी-मांदी तथा अपने केन्द्र से बहुत दूर होगी, इसलिये लड़नेमें सुभीता रहेगा। लेकिन मंगोल सेना किसी दूसरी ही धातु की बनी थी। मंगोल सेना मुख्यतः सवार-सेना थी। एक मंगोलके लिये जहां उसका घोड़ा यात्राका शीघ्रगामी साधन, युद्धका अच्छा वाहन था, वहां खानेकी कोई चीज़ न मिलनेपर घोड़ेके पैरकी नसमें छेद करके उसके खूनसे वह अपनी भूख भी शान्त कर सकता था। ऐसे सैनिकोंसे लड़ना आसान काम नहीं था। मुहम्मद ख्वारेज्मशाहका ख्याल था: पहिले सिर-दरिया पर मुकाबिला करें, फिर अन्तर्वेदमें पग-पग पर लोहा लें। लेकिन, वह होने नहीं पाया। वक्षु पार, हिन्दूकुश पार, गजनी या हिन्दुस्तान (पंजाब) तक लड़नेका मंसूबा धरा ही रह गया। सिर-तटसे भागकर वह समरकन्द आया। नगर-प्राकार बनानेका तीन सालका प्रोग्राम था, लेकिन १२ फरवरी (१२१९) को जब मंगोल सेनायें वहां पहुंची, तो अभी काम शुरू भी नहीं हुआ था। किलेकी खाई बनानेकी बात सुनकर मुहम्मदने कहा—"मंगोल अपने घोड़ोंको फेंक कर इसको पाट सकते हैं।" वहांसे भी बिना लड़े ही वह वक्षुके तटपर गया। एक दिन उसके तंबूपर बाण लगे पाये गये। यह अपने लोगोंका काम था। ऐसी स्थितिमें ख्वारेज्मशाह चिंगिस जैसे प्रबल शत्रुसे लड़नेकी हिम्मत कैसे करता? १२२० का वसन्त आ गया, लेकिन अभी भी इस्लामके नामपर भरती की गई सुल्तानकी नव-संगठित सेना एकत्रित नहीं हो पायी। पहिले की सेना अधिकतर तुर्कोंकी थी, जिसपर मांके पक्षपाती सेनापतियोंके विरोधी होनेके कारण विश्वास नहीं किया जा सकता था।

५. अन्तर्वेद-विजय

सितम्बर १२१९ में चिंगिसने उतरारके करीब पहुंचकर योजनाके अनुसार अपनी सेनाको निम्न प्रकार बांट दिया—

(१) एक वाहिनी, जिसमें उइगुर भी थे, उतरारके लिये छोड़ दी। (२) दूसरी वाहिनी जूचीके नेतृत्वमें निम्न सिर-दरियाकी ओर, (३) पांच हजारकी एक छोटी वाहिनी सिरके ऊपर अवस्थित वानाकत और खोजन्दकी ओर भेजी; (४) चौथी वाहिनीको अपने लड़के तूलुयके साथ लेकर चिंगिसने सुल्तानकी सेनाके रास्तेको बीचसे काटनेके लिये बुखाराकी ओर प्रस्थान किया। उतरार के पतनके पहिले ही शफ़ी अक़रा की ओरसे बदरुद्दीन अमीद चिंगिसकी तरफ हो गया। उसके पिता और चचा उतरारके काजी थे, जिन्हें सुल्तानने उतरार-विजय करते समय कत्ल करवा दिया था। बदरुद्दीनने ख्वारेज्मशाहके भीतरी झगड़ों तथा सेना आदिकी सारी बातें मंगोलोंको बतला दीं। ख्वारेज्मशाहने मुसलमान काजियोंको कतल करके मुसलिम व्यापारियों तक को अपना विरोधी बना लिया था। ये सभी चिंगिसके पक्षमें प्रचार करते तथा सभी भेद बतलाते थे। चिंगिस आजन्म अनपढ़ रहा। वह एक बिलकुल ही पिछड़े हुए कबीलेमें पैदा हुआ था, लेकिन उसकी प्रतिभाका लोहा सारी दुनिया मानती है। उसकी विजयोंके सामने कुरव,

दारयवहु और सिकन्दर ही नहीं बल्कि नेपोलियन और हिटलर भी बच्चे मालूम होते हैं। यह हम उसके विजय-क्षेत्रको देखकर कह सकते हैं। बिना पक्की योजना बनाये और उसे ठीक तौरसे काममें लाये चिंगिस आगे नहीं बढ़ता था। सिर नदी शायद इस समय जमी हुई थी, इसलिये उस महानद को पार करनेमें चिंगिसकी सेनाको दिक्कत नहीं हुई। एक मंजिल पर ज़रनूक का किला आया। निवासियोंके पास हाजिब दानिशमन्दको भेजकर कहवा दिया, कि तुम्हारे धन और प्राणको कोई हाथ नहीं लगायेगा। किला और निवासियोंने बिना लड़े ही आत्मसमर्पण कर दिया। मंगोलोंने अपने वचनका पूरी तौरसे पालन किया। किलेको तोड़कर उसी इलाकेके जवानोंकी उसने एक बाहिनी संगठित की, जो मुहासिरे (घिरावे) के काममें सहायता करती। मंगोलोंने शहरका नाम कुतलुकबालिक (सौभाग्य नगर) रख दिया। ज़रनुकमें ही तुर्कमान भी आ मिले, और उन्होंने बुखाराका एक नया रास्ता बतलाकर चिंगिसको गुप्त मार्ग जनवरी १२२० ई० में नूर पहुंचा दिया। बीच में निर्जल क़िज़िल-कुमकी मरुभूमि है, लेकिन वहां कारवांका रास्ता मौजूद था। नहर खराब नहीं हुई थी, बालूकी भूमि जहां कम पड़ती थी, वहांसे सेना पार हुई। हरावलका सेनापति ताइर बहादुर था। नूरके बागोंमें वह रातके समय पहुंचे। जाड़ोंके कारण पत्ते झड़ गये थे, इसलिये वृक्ष सूखेसे मालूम होते थे। तायरने नगर-प्राकारको लांघनेके लिये सीढ़ी बनानेके वास्ते वृक्षों को काटनेका हुकम दिया। शहरवालोंने समझा, शायद विदेशी व्यापारी आकर डेरा डाल रहे हैं। उन्हें ख्याल नहीं था, कि चिंगिस सेना मरुभूमिका रास्ता पकड़ेगी। जब पूरी एक बाहिनी (डिवीजन) आ पहुंची, तब उन्हें गलती मालूम हुई। चिंगिसने सुबुदायके हाथमें आत्म-समर्पण करनेके लिये दूत भेजा था। नगर निवासियोंके लिए दूसरा चारा नहीं था। मंगोलोंने उन्हें खाद्यसामग्री, खेतीका सामान्न और पशुओंको लेकर बाहर चले जानेका हुकुम दिया। चिंगिसकी सेनामें कितनी व्यवस्था और अनुशासन था, इसका यह प्रमाण था, कि मंगोल सेनाने निवासियोंसे साल भरका कर—पन्द्रह सौ दीनार—भर वसूल किया। यह नगरके लिये कुछ नहीं था। आधी रकम तो स्त्रियोंके कानकी बालियोंसे ही निकल आई। स्थानीय अमीरके पुत्र इल्-ख्वाजाके साठ आदमी कामके लिये भरती किये गये, जिन्होंने दबूसियाके मुहासिरेके समय काम किया।

फरवरीमें चिंगिस बुखारा पहुंच गया। वहां ख्वारेज्मशाहकी बीस या तीस हजार सेना (जिसमें बारह हजार सवार थे) सेनापति इख्तियारुद्दीन कुतलू और ईनचखान ओगुलू हाजिबके अधीन तैयार थी। दूसरे सेनापतियोंमें कराखिताइयोंका बन्दी हमीदपूर और सुयुंच खानभी थे। तीन दिनके मुहासिरेके बाद इनंच घिरावेकी पांती तोड़कर निकल भागा। मंगोलोंने उसका पीछा किया और बहुत थोड़े आदमियोंके साथ वह वक्षु पार होनेमें समर्थ हुआ। हमीदपूर युद्धमें काम आया। प्रतिरक्षियोंने साथ छोड़ दिया, फिर बुखारा-निवासियोंको आत्मसमर्पणके सिवाय कोई रास्ता नहीं रह गया। काज़ी बदरुद्दीन के नेतृत्वमें नागरिकोंका एक प्रतिनिधिमंडल भेजा गया, और १० (या १६) फरवरी को मंगोल बुखारा नगरमें दाखिल हुए। किलेके चार सौ प्रतिरक्षी १२ दिनों तक और डटे रहे। इनमें चिंगिस द्वारा पराजित गुरखान जामुका भी था, जिसने बड़ी बहादुरी दिखलायी। सुल्तानके लिये जो रसद इकट्ठा की गई थी, उसे नागरिकोंने मंगोलोंको दे मट्टी डालकर किलेकी खाईको पाट दिया। किला सर होनेपर वहांकी सारी सेनाको मंगोलोंने मार डाला। उतरारमें चिंगिसके कारवांकी हत्या करके जो

चांदी लूटी गई थी, उसे धनी व्यापारियोंने लौटा दिया। मंगोलोंके हुकम पर नागरिक केवल अपने शरीरपर के कपड़ोंके साथ बाहर निकल गये। उनके प्राण छोड़ दिये गये, किन्तु बिना प्रतिरोध आत्मसमर्पण न करनेके दण्डमें विजयी सेनाने उनकी संपत्तिको लूटा और जो शहरसे बाहर नहीं निकले थे, उन्हें मार डाला। इमाम जलालुद्दीन अली हसन (हुसैन)-पुत्र जन्दीने अपनी आंखों मस्जिदोंको लुटते और कुरानके पन्नोंको घोड़ोंकी टापोंके नीचे रौंदे जाते देखा था। इमाम-जादा रुकुनुद्दीन उस समय बुखाराके सबसे बड़े विद्वान् थे। उन्होंने अली हुसैन-पुत्रको क्रोध प्रकट करते देखकर कहा—"चुप रहो, अल्लाके क्रोधका तूफान आया है, तिनकेको कुछ कहनेका अधिकार नहीं है।" लेकिन जब मंगोलोंने बन्दियों और स्त्रियोंके साथ क्रूरता दिखलानी शुरू की, तो इमामजादा और उसके पुत्रोंने उसमें बाधा देनी चाही, जिसपर वह मार डाले गये। चिंगिसने एक बड़ी मस्जिदमें लोगोंको जमा करवाया, फिर कोई कुछ कर न बैठे इसका बिना कुछ ख्याल किये। निधड़क घोड़ेपर चढ़ा वह मस्जिदके भीतर चला गया,[1] उसने घोड़ेपर से ही कहा —"लोगोंके पापोंके दंड केलिये अल्लाके क्रोधके रूपमें मैं भेजा गया हूं।" चिंगिसने नगरके मुखियों और वृद्धोंका नाम बतलानेके लिये कहा, फिर उन्हें बुलाकर पैसे और दूसरी चीजोंकी मांग पेश की। चिंगिस बुखारामें केवल दो घंटे रहा। लूटके बाद मंगोलोंने शहरको जला दिया। ईंटकी बनी इमारतें जामा मस्जिद तथा कुछ महल बच पाये। यह भी कहा जाता है कि, शहरमें आग जान-बूझकर नहीं लगाई गई। यह ठीक भी है, क्योंकि चिंगिस अपनेको लुटेरा नहीं बल्कि स्थायी विजेता-शासक समझता था।

बुखारासे जब मंगोल सेना समरकन्दकी ओर जाने लगी, तो वह अपने साथ भारी संख्यामें लोगोंको बन्दी बनाकर ले गई। मंगोल सैनिक घोड़ोंपर थे, और अभागे बन्दी पीछे-पीछे पैदल चल रहे थे। यदि कोई बंदी थक कर गिर पड़ता, तो वह उसे मार डालते। अपनी साधारण नीतिके अनुसार मंगोल किसानोंको पकड़कर उनसे मिट्टी खोदने, खाई पाटने या दूसरे मुहासिरे संबंधी काम लेते। रास्तेमें दबूसिया और सरेपूलमें ही उनका थोड़ासा प्रतिरोध हुआ। मंगोल सेना जरफशाँ (सोग्द) नदीके दोनों तटोंसे कूच कर रही थी, शायद चिंगिस स्वयं उत्तरी तटसे जा रहा था। बीचमें पड़ते किलोंको फतह करनेके लिये कुछ सेनाको छोड़कर वह आगे बढ़ जाता। समरकन्दमें ख्वारेज्म- शाहकी (६० हजार तुर्क, ५० हजार ताजिक, २० हाथी की सेना थी)। दूसरे इतिहासकारोंके अनुसार तुर्क, ताजिक, गूज़, खलज और करलुक सब मिलाकर १ लाख सैनिक थे। समरकन्दका शासक तुर्कान खातून का भाई तुगाई खान था। मार्चमें समरकन्द पहुंचकर चिंगिसने कोक-सराइ (नील प्रासाद) में डेरा डाला। उसने कैदियोंको भी सैनिकोंके रूपमें खड़ा कर हर दस आदमियोंपर एक झंडा दे सेनाको भारी भरकम दिखलाकर नागरिकोंको भयभीत कर दिया। चिंगिसके दोनों पुत्र जगताय और उगुताय भी उतरारसे बहुतसे कैदी लिये आ पहुंचे थे। दूसरे शहरोंकी अपेक्षा उतरारमें अधिक दिनों तक मुहासिरा करना पड़ा था। इनाल खान को प्राण बचाकर भागनेका कोई रास्ता नहीं मिला, इसलिये वहाँ उसने जान तोड़कर मुकाबिला

---

[1] समरकन्दके बारेमें ए-ल्यु-चू शइने लिखा है—"नगरके चारों ओर लगातार बीसों मील तक अंगूर और दूसरे फलोंके बाग, फलोद्यान, जलाशय, बहती नहरें, चौकोर कुंड, गोल तड़ाग चले गये हैं। सचमुच समरकन्द बड़ा ही मनोहर प्रदेश है।"

किया। उसके पास २० हजार (दूसरोंके अनुसार ५० हजार) सवार थे, जिनमें हाजिब कराजा १० हजारकी कुमक लेकर आ पहुंचा था। ५ महीनेके मुहासिरेके बाद आत्मसमर्पण करने का निश्चय करके कराजा अपने आदमियोंके साथ बाहर निकल आया, लेकिन चिंगिस-पुत्र जगताय और उगुताय स्वामीके प्रति विश्वासघाती आदमी पर विश्वास नहीं कर सकते थे, इसलिये उन्होंने कराजाको कत्ल करवा दिया। नागरिकोंको बाहर निकालकर मंगोलोंने शहरको लूटा। किला एक मास और डटा रहा, जिसके पतनके बाद प्रतिरक्षक सैनिक मार डाले गये। तीरोंके खतम हो जाने पर इनाल खानने ईंटें फेंकनी शुरू की। वह जिन्दा पकड़ा गया और उसे चिंगिसके पास कोकसराय भेज दिया गया, जहां उसे बड़ी निष्ठुरताके साथ मारा गया।

समरकन्दके मुहासिरेके खतम होनेके बाद प्रतिरक्षकोंने छापामारी शुरू की, लेकिन उसका परिणाम उनके लिये बहुत ही भयंकर निकला। मंगोलोंने भी छिपकर उनपर आक्रमण किया और ५० (या ७०) हजार आदमियोंमेंसे एकको भी जीता नहीं छोड़ा। मुहासिरेके पांचवें दिन तुर्कों और नागरिकोंने आत्मसमर्पण करनेका निश्चय किया। किलेमें थोड़ेसे ही आदमी रह गये थे। तुगाइखानके नेतृत्वमें तुर्कोंने अपनी सेवायें मंगोलोंको अर्पित कीं, जिन्होंने पहिले स्वीकार कर लिया। नागरिकोंके प्रतिनिधि काजी और शेखुल् इस्लामके नेतृत्वमें मंगोलोंके पास आये। नमाजगाह द्वारसे भीतर घुसकर मंगोल तुरन्त किलाबन्दी तोड़नेमें लग गये। नियमानुसार नागरिकोंको निकालकर यहां भी सेनाने शहरको लूटा, लेकिन काजी, शेखुल्इस्लाम तथा उनके ५० हजार सैयदोंको प्राणदान मिला। चिंगिस और उसके मंगोल अभी किसी व्यवस्थित धर्मके अनुयायी नहीं थे, वह भूत-प्रेतपूजक (शमनी) होनेसे सभी धर्मों और उनके पुरोहितोंके प्रति सम्मान दिखलाते थे। समरकन्दके मुल्लोंने बुखारियोंकी तरह विरोध नहीं किया, इसलिये मंगोलोंने उनके साथ नरमीका बर्ताव किया। किलेको तोड़नेके लिये उसकी मिट्टीकी दीवारोंको नहरका बांध तोड़कर भिगो दिया गया, इस प्रकार दीवारके गिरानेमें दिक्कत नहीं हुई। दुर्गके पतनसे पहिली रात अल्प एर खान हजार आदमियोंके साथ मंगोलों की पंक्तिको तोड़कर सुल्तानके पास चला गया, बाकी हजार सैनिकोंको किलेकी मस्जिदमें जमाकर मंगोलोंने कत्ल कर डाला। यह वही मस्जिद थी, जिसे ख्वारेज्मशाहने बनवाया था। मंगोलोंने उसे जला भी दिया। सुल्तानकी ३० हजार तुर्क सेना तुगाइखान तथा अपने सारे नेताओंके साथ मार डाली गयी। ३० हजार कारीगरों और शिल्पकारोंको चिंगिसने अपने पुत्रोंऔर संबंधियोंमें बांट दिया, बाकीको मुहासिरेमें काम करनेके लिये भरती कर लिया। नगरपर दो लाख दीनार कर लगाया गया। हत्याकाण्डके बाद समरकन्दकी आबादी एक चौथाई रह गई।

समरकन्दकी विजय के बाद चिंगिसने सेनाको थोड़ा विश्राम लेने दिया।

६. जूची की सफलता

जूचीके अधीन जो सेना निम्न सिर-दरियाकी ओर भेजी गई थी, वह पहिले सिग्नाक (उतरार से २४ फरसख[1]) पहुंची। जूचीने हसन हाजीको भेजकर नागरिकोंको आत्मसमर्पण करनेके लिए कहा। निवासियोंने हाजीको मार डाला। मंगोलोंके सामने इससे बड़ा अपराध कोई हो

[1] फरसख—१६०० हाथ, (६ मील)।

नहीं सकता था। ७ दिनके मुहासिरेके बाद शहर पर कब्जा करके मंगोलोंने वहांके एक भी आदमीको जीता नहीं छोड़ा। हसनके पुत्रको नगरका शासक बना आगे बढ़ जूचीकी सेनाने उज़गन्द, बरचिनलिगकन्त और अशनासको ले लिया। अशनासकी सेना गुंडों और बदमाशोंको मिलाकर संगठित की गई थी, जिन्होंने मंगोलोंका सख्त मुकाबिला किया। ओंगुत् कबीलेके चीन तीमूर पीछे ईरानमें सेनापति—को—जन्दवालोंसे बात करनेके लिये भेजा गया। लोगोंने उसके साथ बुरा सलूक किया। जूची अभी आक्रमण न कर किपचकों (कंगलियों) की बस्ती कारकोरम में विश्राम करना चाहता था। २१ अप्रैल १२२० को उसे नागरिकोंके दुराग्रहके कारण आगे बढ़ना पड़ा। नागरिकोंने नगर-द्वार बन्द कर लिया, लेकिन प्रतिरोधके लिये बहुत लड़ाई नहीं की; इसलिये ज़न्दके विजय होनेपर जिन लोगोंने चीन तीमूरके साथ बुरा बर्ताव किया था, उन्हींको मारा गया। अली ख्वाजा बुखारीको जूचीने यहांका राज्यपाल नियुक्त किया। जूची इसके लिये वहां नहीं ठहरा। दूसरे साल उसने ख्वारेज्मपर चढ़ाई हुई। मंगोलोंकी जो सेना यहां छोड़ दी गई थी, उसीने जाकर बिना रोक-टोकके यानीकन्त (शहरकन्त) ले लिया। जिन शहरोंको मंगोल जीतकर वहां अपने शासक नियुक्त करते जा रहे थे, वह उनके हाथमें बराबर नहीं रहे और मंगोलोंकी भी यही मंशा थी। वह चाहते थे, कि सबसे बड़ी प्रतिरोधक शक्तियोंको पहिले खतम किया जाय, फिर छोटोंको दबाना मुश्किल नहीं होगा।

सेनापति अलाक नोयन (बारिन) के नेतृत्वमें ५ हजारकी वाहिनी बनाकतपर गई। कोंखोता कबीलेके सेनापति सुकेतु और तुगाई दूसरे मंगोल-सेनापति थे, जो इस वाहिनीके साथ गये थे। इलालगूमली के तुर्क सैनिकोंने तीन दिन तक मुकाबिला किया, फिर शहरने आत्मसमर्पण कर दिया। छावनीके सैनिक मार डाले गये, कारीगर और तरुण मुहासिरे संबंधी कामोंके लिये साथ ले लिये गये। नगरमें लूट-मार हुई। यहांसे सेना समरकन्दमें चिंगिसके पास चली गई।

५० हजार दूसरे सैनिकोंके साथ २० हजार मंगोलोंको चिंगिसने फरगाना-विजयके लिये भेजा। वहांके शासक तीमूर मलिकने जब देखा, कि शहरमें रहकर हम कुछ नहीं कर सकते, तो अपने हजार साथियोंके साथ सिर-नदीके बीचके एक टापूमें चला गया। यह टापू खोजन्दसे एक वर्स्त (१ मील) नीचे था। १८९६ ई० में रूसियोंने यहां खुदायी की, जिसमें बहुतसे सोने-चांदी-तांबे के सिक्के, घरेलू कामके बहुत तरहके बर्तन तथा दूसरी चीजें मिली थीं। यह टापू तटसे काफी दूर था, इसलिये तैमूर मलिकके आदमियों तक न बाण पहुंच सकता था, न कतापुल्तसे फेंके पत्थर ही। मंगोलोंने बन्दियोंको दस दस की टुकड़ीमें बांटकर उनपर एक-एक मंगोलको नियुक्त किया। वह खोजन्दसे तीन फरसखपर अवस्थित पहाड़ीसे पत्थर काटकर ढोने लगे और मंगोल सवार इस पत्थरको नदीमें फेंककर बांध बांधने लगे। शायद बांध तैयार हो गया था अथवा रसदकी कमी पड़ गयी, इसलिये तैमूर मलिक टापू छोड़नेके लिये बाध्य हुआ।

पहिले ही से छिपा रखी ७ नावों पर रसद और आदमियोंको चढ़ाकर वह रातके समय मशालकी रोशनीमें दरियाके नीचेकी ओर भाग चला। दोनों किनारोंसे मंगोल वाण-वर्षा करते हुए पीछा करने लगे। बनाकतके नजदीक मंगोलोंने सिर-दरियामें जंजीर डालकर नावोंको रोकनेकी कोशिश की, लेकिन तैमूर मलिक निकल भागनेमें सफल हुआ। बरचीनलिगकन्त और जन्दके पास उलुस इदीने नावोंका पुल बांध कर कतापुल्त (पत्थर फेंकनेका यंत्र) खड़ा कर रखा था। तैमूर उससे पहिले ही नदीके किनारे उतर गया। वह भागा जा रहा था और मंगोल उसका

पीछा कर रहे थे। रसदपानी और सारे अनुचर खतम हो गये, तो भी वह पराक्रमी वीर अकेले ख्वारेज्म पहुंचा तैमूर इसके बाद भी मुहम्मदके उत्तराधिकारी जलालुद्दीनकी ओरसे लड़ता रहा। मुसलमानोंकी ओरसे कभी कभी आदमियोंको अद्भुत पराक्रमके साथ लड़ते देखा गया लेकिन वह मुट्ठी भर ही रहे। एक विशाल सेनाको पूरी तौरसे संगठित करके प्रतिरोध करने में वह कभी सफल नहीं हुए, इसीलिए तातारों (मंगोलों) की मुख्य सेनाके सामने उन्हेंबराबर पीछे हटना पड़ा। मंगोलोंकी ओर मुश्किलसे कहीं व्यक्तिगत वीरताके असाधारण उदाहरण मिले, पर उनमें गजबका अनुशासन था। उनके बड़े बड़े सेनापति अपने स्वामीकी इच्छाके आज्ञाकारी चतुर सेवक के सिवाय और कुछ नहीं थे। स्थितिके अनुसार अपनी सेनाओंको अलग करते, फिर इकट्ठा करते और बड़ी तेजीके साथ आक्रमण करते हुए वह इस बातका ध्यान रखते थे, कि किसी एक जगहकी असफलताके कारण सारी योजना न विफल हो जाय। बड़े कठोर अनुशासनमें पले हुए मंगोल सैनिक किसी समय इस बातकी कोशिश नहीं करते थे, कि अपने को अपने साथियोंसे बेहतर योद्धा साबित करें। उनका काम यही था, कि प्रभु या नेता जो आज्ञा दें, उसे अक्षरशः पालन करें। मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने यद्यपि अपने राज्यको बहुत बढ़ाया था, उसकी धाक भी बहुत ज्यादा थी, लेकिन मंगोलोंकी लौह सेनासे जब उसका सामना पड़ा, तो वह उतना भी प्रतिरोध नहीं कर सका, जितना कि उसके पुत्र जलालुद्दीन ने किया। बदरुद्दीनकी सम्मतिसे ख्वारेज्मशाही के सेनापतियोंने चिंगिसको कितने ही पत्र लिखे थे, जो ख्वारेज्मशाहके हाथ में पड़ गये। इसके कारण उसको और भी संदेह हो गया। वह अपने आदमियों पर विश्वास नहीं कर सकता था। वक्षु नदीके तटपर कालिफ और अन्दखुदके घाटोंको ख्वारेज्मशाहने रोक रखा था। वहांसे उसने समरकन्दकी सहायताके लिये १० हजार सवार और २० हजार सेना भेजी, मगर वह वहां तक नहीं पहुंच सकी।

७. मुहम्मद का अन्त

समरकन्दकी विजयके बाद चिंगिसने फिर अपनी सेनाका नई तौरसे विभाजन किया—(१) एक वाहिनी खोजन्द और फरगानाके लिये, (२) सेनापति अलाक नोयन और हजारी यसाउर (जालेरी) की वाहिनी वख्श, तालकान और कुलाबके लिये, (३) जेबे, सुबोतइ और तोकूचरा बहादुरके नेतृत्वमें तीनों वाहिनियोंको भेजते हुए चिंगिसने हुक्म दिया—शान्त निवासियोंको बिना छेड़े ख्वारेज्मशाहका पीछा करो।

ऐसा करनेसे पहिले ही ७ हजार कराखिताई सेना और अलाउद्दीन (अलाउलमुल्क) ने सुल्तान को छोड़कर चिंगिसकी ओर जा करसुल्तानकी सैनिक कमजोरियोंको बतलाया। इराकके शासकके पुत्र रुकुनुद्दीनके वजीरकी सम्मति मान सेना न जमाकर सुल्तान उस प्रदेशमें चला गया। अलाउद्दीनने बहुत समझाया—"सेनाको अपने पास रखना चाहिये, नहीं तो प्रजा राजवंशको दोषी ठहराते कहेगीः शान्तिके समय कर ले लेकर खाते रहे और संकटके समय पीठ दिखाकर भाग गये।" सुल्तानके दोनों पुत्र मृत्युके समय तक पिताके साथ रहे। जेबे और उसकी सेनाके आनेके पूर्व ही सुल्तानने वक्षु-तट छोड़ दिया। पंजाब (मध्य-एसिया) में देखभाल के लिये एक चौकी छोड़कर मंगोल सेना सिर-दरियाकी भांति वक्षुको भी आसानीसे पार हो गई। लकड़ीका एक लम्बा सा ढांचा बना वह उसे बैलके चमड़ेसे मढ़ देते, जिससे उसके भीतर पानी नहीं जाता।

इसी चमड़ेकी नावमें अपने बर्त्तन और हथियार भी रख, घोड़ोंको पानीमें डाल देते, और उनकी पूंछ पकड़कर चमड़ेकी नाव को हाथ लगाये पार हो जाते। इस प्रकार हरेक चीज—घोड़ा, हथियार, रसद और आदमी—एक ही साथ नदीके परले पार पहुंच जाते। इतिहासकार इब्नुलअसीरकी उपरोक्त बातमें थोड़ी सी भूल मालूम होती है। प्लानो कार्पीनीने मंगोलोंके बारेमें कहा है—"उनके पास एक हलकासा गोल चमड़ा होता है, जिसके सिरे पर बहुतसी मुंद्धियां रहती हैं। इन मूंद्धियोंके भीतरसे एक रस्सी पार कराकर इतना कस दिया जाता है कि भीतर एक छोटा सा गोल अवकाश बन जाता है। जिसमें कपड़ा, हथियार और दूसरी चीजें डालकर मुंहको खूब अच्छी तरह बांध दिया जाता है। ज़ीन और दूसरे कड़े सामान बीचमें रख दिये जाते हैं, जिनके ऊपर आदमी बैठ जाते हैं। इस प्रकार तैयार किया हुआ पात्र घोड़ेकी पूंछसे बांध दिया जाता है। एक आदमी रास्ता दिखानेके लिये घोड़ेपर आगे आगे तैरता चलता है। कभी कभी पासमें पतवार भी होती है, जिसके द्वारा वह अपने चमड़ेकी नावको खेते हैं। घोड़ोंको पानीमें खदेड़ दिया जाता है। एक सवार घोड़ा तैराते आगे आगे चलता है, बाकी घोड़े उसका अनुसरण करते हैं। गरीब मंगोलोंमें हरेक आदमीके पास एक-एक अच्छी तरह सिया हुआ चमड़ेका थैला रहता है, जिसमें वह अपने कपड़े तथा दूसरी चीजोंको रखकर मुंहको अच्छी तरह बांध घोड़ेकी पूंछमें बांध देता है, फिर उपरोक्त क्रमसे नदी पार कर जाता है।" नदी पार करनेके लिये जो चमड़ेका थैला इस्तेमाल किया जाता है, वही रेगिस्तानी यात्रामें पानी भरनेकी मशकका काम देता है। मंगोलोंके कमसरियतका संगठन कितना सरल और मजबूत था, यह उपरोक्त वर्णनसे मालूम होगा।

ख्वारेज्मशाहने कहीं भी चिंगिससे डटकर लड़नेकी कोशिश नहीं की। सिरदरिया, समरकन्द, वक्षु (आमू दरिया) सब जगह वह पीठ ही दिखाता रहा। १८ अप्रैल १२२० ई० को नेशापोर पहुंचनेपर उसे खबर मिली, कि मंगोल वक्षु पार हो गये। भयके मारे सुल्तान एक दिन भी नेशापोरमें नहीं ठहरा। बिस्ताममें उसने रत्नोंसे भरी दो संदूकें अरदहन भेजनेके लिये अपने दरबारी वकील अमीन ताजुद्दीन उमर बिस्तामीको सुपुर्द कीं। इसी किलेमें पीछे सुल्तानका शव भी आया। रत्न नहीं बच सके। किलेको पीछे मंगोलोंने दखल कर लिया और उन्होंने संदूकें लेकर चिंगिस खानके पास भेज दीं। ख्वारेज्मशाह रे (तेहरान) होते कजवीन भागा, जहां उसका पुत्र रुकुनुद्दीन गूरगंजी ३० हजार सेनाके साथ पड़ा हुआ था। जेबे और सुबुतइके पास इतनी सेना नहीं थी, जिसके साथ कि वह पीछा कर रहे थे। उनको नष्ट कर डालनेका यह बड़ा अच्छा मौका था, लेकिन सुल्तान तो हर मौकेपर चूकनेका का ही ढंग जानता था। उसने अपनी रानी (गयासुद्दीन पीरशाहकी मां) और दूसरी स्त्रियोंको कारूनके किलेमें भेज दिया, जिसका किलेदार ताजुद्दीन तुगान था। अतावेग नसरतुद्दीन हजारास्प लूरिस्तानीको बुलाकर राय पूछनेपर उसने सलाह दी, कि लूरिस्तान पारसकी पर्वतमालाके पीछे तथा उर्वर प्रदेश है। वहां चलकर लूरियों, शूलियों और पारसियोंकी १ लाख सेना जमाकर मंगोलोंको मार भगाया जाये। सुल्तानने उसकी सलाहका यह अर्थ लगाया, कि वह मेरे द्वारा अपने दुश्मन फारसको अतावेगसे बदला लेनेके लिये यह सब कह रहा है। सुल्तान इराकमें ही था, कि पता लगा, मंगोल और नजदीक आ गये। वह अपने पुत्रों सहित भागकर कारूनके किलेमें चला गया। वहां भी केवल एक दिन रहा, फिर पथप्रदर्शक और सवारीके घोड़े ले बगदादके

रास्तेपर मंगोलोंसे बचते हुए आगे बढ़ा। कूचके समय मंगोल अपने नमदे, घोड़े, हथियारके सिवाय और कुछ नहीं रखते थे। वह किसीको लूटते नहीं थे, न घरोंको जलाते थे, न पशुओंको मारते थे। हां, कुछ लोगोंको घायल करके मार डालते या कमसे कम रास्तेसे भगा देते थे। पहिली बार ज्यादा कड़ाई करते थे—प्लानो कारपीनी जैसे समसमायिक लेखकोंने उनके बारेमें यही लिखा है।

जेबे और सुबुतइ रास्तेमें कहीं भी लूटने,-मारनेके लिये न रुकते अपने कदमको तेज़ करते सुल्तान का पीछा कर रहे थे। वह उसे कहीं सुस्ताने नहीं देते थे। चिंगिस खानकी आज्ञा पालन करते उन्होंने रास्तेमें खुरासानके किसी नगरको कोई भी हानि नहीं पहुंचाई; सिवाय बूशांग (हिरात प्रदेश) के, जहां एक मंगोल सेनप मार दिया गया था। उन्होंने इस शहरको बरबाद कर दिया, हरएक आदमीको मार डाला। तुकूचारने कहीं से अपने कानमें एक दाना ले लिया था, जिसके लिये चिंगिसने उसे प्राग-दण्ड की सजा दे दी, पीछे पदच्युत कर दिया। सुबुतयाने बिना कठिनाई के रे (तेहरान) को जीत लिया। पता लगा, सुल्तान हमदानकी ओर भागा जा रहा है। मंगोलोंके आनेसे पहिले ही सुल्तान रेसे रवाना हो चुका था। कज़बीन और कारुन के बीच मंगोल सुल्तानसे मिले, मगर वह पहिचान न सके। उन्होंने कुछ बाण छोड़े, जिससे सुल्तान घायल होकर कारूनके किलेमें पहुंचा। जब मंगोलोंने किलेका मुहासिरा किया, तो सुल्तान उसे छोड़ चुका था। वह रास्ता बदलकर सरेचाहान पहुंच गया। मंगोल रास्ता भूल गये, जिसपर उन्होंने अपने पथप्रदर्शकको मार डाला और वह फिर लौट पड़े। अन्तमें २० हजार सेनाके साथ सुल्तान हमदानके पास दौलताबादके मुहासिरेमें फंस गया, जिससे वह बहुत मुश्किलसे निकल सका। उसके अधिकांश अनुयायी यहीं मारे गये। पश्चिमी सीमांतके पास जा कर केवल यही एक लड़ाई हुई। यद्यपि उसके पास मंगोलोंसे अधिक सेना थी, लेकिन तो भी लड़नेकी जगह सुल्तानने भागकर प्राण बचाना ही पसन्द किया। हमदानसे लौटते वक्त मंगोलोंने ज़ुनज़ान और कजवी-नको नष्ट कर दिया। बेग तागुद और कुचवुगा खानके नेतृत्वमें मिली ख्वारेज्मी सेनाको भी उन्होंने यहीं कहीं नष्ट किया। जाड़ेके आरम्भमें मंगोलोंने आज़ुरबायज़ानपर आक्रमण किया। अर्दबील ध्वस्त हुआ। कास्पियन तटपर अवस्थित मुगानको भी उन्होंने बरबाद किया। रास्तेमें गुर्जियों (जार्जियन) के साथ लड़ाई हुई, लेकिन तब तक मुहम्मद ख्वारेज्मशाह दुनियासे चल बसा था।

अन्तमें भागते हुए मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने अब्सकून शहरके पास एक द्वीपमें जाकर शरण ली, जो कि गुरगान नदीके मुखपर गुरगान शहरसे तीन दिनके रास्तेपर अवस्थित था। शायद वह वर्तमान अशुरआदेका द्वीप था। वहां पहुंचते समय ही वह गुर्दे की बीमारीसे बहुत पीड़ित हो गया, जीनेकी आशा नहीं रह गई। मरते समय उसने अपने अनुयायियोंको बड़ी उदारताके साथ पदवियां, दर्जे, जागीरें प्रदान कीं, जिनको उसके पुत्र जलालुद्दीनने भी माना। इसी द्वीपमें दिसम्बर १२२० ई० में सुल्तान मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने सदा के लिये आंखें मूंद लीं। उसके पास कफनका कपड़ा भी नहीं था, जिसके लिये एक अनुचर ने अपना चोगा दिया। एक रूसी इतिहासकारने लिखा है—"यह था अन्त एक ऐसे बादशाहका, जिसने कि सल्जूकी साम्राज्यके अधिकांश भाग को एक छत्रछायामें ला दिया था। मंगोल आक्रमणके समय उसने बड़ी निंदनीय कमजोरी दिखलाई।"

मुहम्मद ख्वारेज्मशाहके रुपमें इस्लामको, ऐसियाके सारे मुसलिम देशोंको ही नहीं बल्कि भारतके पराजित प्रदेशको भी एक साम्राज्यके रूपमें परिणत करनेका आखिरी मौका मिला था। अभी उस विशाल इस्लामिक साम्राज्यकी सीमायें स्पष्ट नहीं थीं, लेकिन वह धीरे धीरे उभड़ती आ रही थीं। जान पड़ता है, मुहम्मद अपने पड़ोसियोंकी निर्बलताके कारण सफल हुआ था। यदि उसमें अपनी वैसी क्षमता होती, और इस्लामिक जगतके शासक-वर्गमें अपने स्वार्थोंके लिये भीषण फूट न होती, तो शायद चिंगिसको विश्व-विजयका ख्याल भी न आता। एक तरफ चिंगिस था, जो कि जबर्दस्तसे जबर्दस्त उत्तेजनाके समय भी उत्तेजित हो अपनी बुद्धिको खो नहीं बैठता था। संगठन करनेमें अद्वितीय था, पास आये लोगोंको अपने आकर्षणसे इतना बांध लेता, कि वह कभी उसे छोड़नेका ख्याल नहीं करते। अनुशासन और शिक्षा-दीक्षा द्वारा साधारण अनपढ़ घुमन्तू तरुणोंको जेबी और सुबुताय जैसा महान् सेनापति बना देता। दूसरी तरफ तुर्कान खातूनका पुत्र मुहम्मद ख्वारेज्मशाह था, जो अपने सहायकों और अनुचरोंको ही नहीं अपनी मां को भी अपना जानी दुश्मन बना लेता, किसी बातके निर्णय करनेकी शक्ति नहीं रखता और योद्धाका निर्भीक हृदय तो मानो उसे मिला ही नहीं था।

८ जलालुद्दीन[1] मुहम्मद-पुत्र (१२२०–१२३१ई०)

मुहम्मदका उत्तराधिकारी जलालुद्दीन यदि बापकी जगह गद्दीपर बैठा होता, तो शायद मंगोलोंको इतनी आसानीसे सफलता नहीं मिली होती, लेकिन जलालुद्दीनको तो उस वक्त गद्दी मिली, जबकि विशाल ख्वारेज्मी साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो चुका था, उसकी सैनिक शक्ति तितर-बितर हो गई थी। १२२० ई० के वसन्तमें सारा अन्तर्वेद चिंगिसके अधीन हो गया था। समरकन्दसे उसने नूशाबस्कामको बुखाराका मंगोल शासक बनाकर भेजा था। गरमियोंको चिंगिसने नशाब (नखशाब) में बिताया। इतनी मंजिल मारनेके बाद घोड़ोंको चरने तथा विश्राम लेनेके लिये छोड़ना आवश्यक था। चिंगिसके निवासके कारण पीछे नशाब एक पवित्र स्थान बन गया, जहां पिछले जमानेमें मंगोल सेनप अक्सर गर्मियाँ बिताया करते। एक जगताई खानने यहां महल (करशी) बनवाया जिसके कारण इसका वर्तमान नाम पड़ा। बाबरने पानीकी शिकायत करते हुए भी यहांके वसन्तके सौंदर्यकी बड़ी प्रशंसा की है। मंगोलोंके आनेके पहिले ही किश (शह्रसब्ज) की महिमा घट चुकी थी, और अब उनके आनेके बाद नसाबके भाग्यने पलटा खाया। शरदमें चिंगिस जाकर तेरमिजके ऊपर पड़ा। लोगोंने आत्म-समर्पण करनेसे इन्कार कर दिया। फिर दोनों ओरसे कतापुल्तकी मार शुरू हुई। अन्तमें मंगोलोंकी मारके सामने प्रतिरक्षियोंके हथियार कुंठित हो गये। ११ दिनके मुहासिरेके बाद किला सर हुआ। प्रतिरोधी नगरोंके लिये उपयुक्त दण्ड तेरमिजको मिला—नगरको नष्ट कर सभी निवासियोंको मार डाला गया। १२२०-१२२१ के जाड़ोंको चिंगिसने वक्षु तटपर बिताया। सभी बड़ी नदियोंकी तरह वक्षुका कछार भी घुमन्तुओंके शरद-निवासके लिये बहुत उपयुक्त स्थान था। पीछे जगताईने "सालीसराय" के नामसे यहां अपनी एक राजधानी बनवाई।

---

[1]Turkistan (Bartold)

(१) विद्याकेन्द्र ख्वारेज्म–

चिंगिस ख्वारेज्मशाहसे लड़ रहा था, लेकिन अभी तक हुए उसके सारे संघर्ष ख्वारेज्मकी भूमिपर नहीं हुए थे। यह पहिले ही कह आये हैं, कि मुहम्मद ख्वारेज्मशाहने अपनी राजधानी समरकन्द मानी थी और ख्वारेज्मपर उसके पुत्रकी अभिभाविकाके तौर पर राजमाता तुर्कान खातूनका शासन था। ख्वारेज्म सेनाका भारी भाग और उसके सेनापति भी तुर्क थे, जिनमेंसे अधिकांश तुर्कान खातूनके मातृपक्षीय थे। इसीलिये तुर्कान खातून सैनिक वर्गकी मुखिया थी। ख्वारेज्म बड़ा समृद्ध प्रदेश था और १२०४ई० में शहाबुद्दीन गोरीके हमलेसे बाल-बाल बचा था। बाहरसे आई लक्ष्मी यहां धीरे धीरे जमा होती गई थी। ११ वीं-१२ वीं सदी वह समय था, जब कि मुसलिम जगतकी शक्ति एकताबद्ध हो आगे नहीं बढ़ रही थी। भिन्न-भिन्न विद्या और सभ्यतामें बढ़े पराजित देशोंकी बहुत कुछ अवनति हो चुकी थी, क्योंकि जिस गतिसे मुसलमानोंने ध्वंसका काम किया, उसी गतिसे निर्माणका काम नहीं किया। इसमें शक नहीं, बगदादी खलीफोंके आरम्भिक जमानेमें दुनियाके ज्ञान-विज्ञानके अनुवाद और प्रचारका कितना ही काम हुआ था, लेकिन इस्लामकी सफलतामें ज्ञान-विज्ञानको नहीं बल्कि धर्मान्धताको परम सहायक माना गया था। ख्वारेज्मने अपनी पिछली पीढ़ियोंकी देनको अभी उतना नहीं खोया था। अभी भी वह अपनी विद्या-निधियोंका रक्षक तथा विद्वानोंका पृष्ठपोषक था। इसी समय बहुत से महत्वपूर्ण ग्रंथ संग्रह किये गये थे। शहरिस्तानी १११६ (५१० हि०) में ख्वारेज्मका अच्छा विचारक हुआ। "वह एक अच्छा विद्वान् था। यदि उसके विचारों और रुचियोंपर दर्शन या नास्तिकताका प्रभाव न होता, तो वह इमाम (धर्मिक नेता) बना होता। यह देखकर आश्चर्य होता है, कि जहां उसकी विद्या और विचारोंकी परिपूर्णता देखकर आश्चर्य करना पड़ता है, वहां किन्हीं किन्हीं बातोंमें वह ऐसे विचार रखता है, जिनका कोई आधार नहीं। वह ऐसे विषयोंको पसंद करता, जिनका कि न कोई बौद्धिक प्रमाण था, न पारम्परिक—दीनके प्रकाशके प्रति विश्वासघात और इन्कार करनेसे भगवान् हमारी रक्षा करे। इस सबका कारण यही था कि वह शरीयत (धर्मशास्त्र) के प्रकाशसे मुंह मोड़कर दर्शनके घपलेमें पड़ गया। हम उसके पड़ौसी और सहायक थे। वह यह समझानेकी बड़ी कोशिश करता था, कि (ग्रीक) दार्शनिकों के विचार बहुत ठीक हैं, और उनके विरुद्ध जो आक्षेप किये जाते हैं, वह गलत हैं। कुछ सभाओंमें में भी मौजूद था, जिनमें वह उपदेशकका कर्तव्य पालन करते (उपदेश दे) रहा था। मैंने एक बार भी उसके मुंहसे यह कहते नहीं सुना 'अल्लाहने ऐसे कहा' अथवा 'अल्लाके पैगम्बरने ऐसा कहा' और न कभी उसने शरीयतकी एक भी गुत्थीके बारेमें अपना कोई निश्चय प्रकट किया। अल्लाह ही जानता है, उसके क्या विचार थे।' शहरिस्तानीके बारेमें यह एक समसामयिक इतिहासकारके उद्गार थे।

राजवंशके अन्तिम समयमें कवि फखरुद्दीन राजी ख्वारेज्म-दरबारमें रहा। कवि मुबारक शाह हसन बिन मरवारीदी फखरुद्दीन (मृ० १२०६ ई०) ने गोरियोंके दरबारमें रहते अपना घर बनवाया था, जिसमें पुस्तकोंका बड़ा अच्छा संग्रह था, जिसके साथ वहां शतरंज भी रक्खा रहता था। वहां बैठकर विद्वान् स्वाध्यायका आनन्द लेते। इसी तरह गूरगांचमें वकील शहाबुद्दीन खीवगी पांच मदर्सों (विद्यापीठों) में अध्यापक था। उसने शाफई जामा-मस्जिदके पास ऐसा विशाल

पुस्तकालय स्थापित किया था, जिसके बारेमें कहा जाता है "न भूतो न भविष्यति"। मंगोलोंके आक्रमणकी खबर सुनकर उसे ख्वारेज्म छोड़ना पड़ा। अपनी पुस्तकोंको छोड़ते वक्त उसे बड़ा दु:ख हुआ और उनमेंसे कितनी ही महत्वपूर्ण पुस्तकोंको वह अपने साथ लेता गया। वह नसामें था, जबकि चिंगिसके दामाद तोकूचारने उस शहरको जीता। उसी समय शहाबुद्दीन मारा गया। मरनेके बाद उसकी किताबें दूसरोंके हाथमें चली गयी, जिन्हें इतिहासकार नसावीने फिरसे जमा करनेमें सफलता पाई, लेकिन पीछे वह भी यह कहते हुए देश छोड़नेके लिये मजबूर हुआ —"मैंने जो चीजें वहां छोड़ीं, उनमें केवल पुस्तकोंके लिये ही मुझे दु:ख है।" शाहज़ादा गयासुद्दीन पीरशाहने जब नसाको दखल किया, तो पुस्तकोंका संग्रह लुप्त हो गया।

(२) ख्वारेज्म का पतन

ख्वारेज्म जैसे समृद्ध देश और तुर्कों जैसी वीर सेना तुर्कान खातूनके हाथमें थी, जिससे वह जूचीको काफी परेशान कर सकती थी, इसे चिंगिस भी जानता था। इसीलिये चिंगिसने दूत भेजकर खातून को कहलवाया—मेरी तुमसे कोई दुश्मनी नहीं है। मैं तो केवल तुम्हारे पुत्रके अत्याचारोंके कारण उससे लड़ रहा हूं। दूतके आनेके बाद ही यह खबर मिली, कि सुल्तान वक्षु पार भाग गया। मां बेचारीकी हिम्मत क्या होती, उसने भी पुत्रका अनुसरण किया। राजधानी छोड़नेसे पहिले खातूनने गुरगांचमें बन्दी पड़े सारे शाहजादोंको नदीमें डुबोनेका हुक्म दे दिया। इन मरनेवाले में २० शाहजादों तथा अपने भाई और दो भतीजोंके साथ बुखाराका सदर बुरहान-उद्दीन भी था। खातून पहले भागकर याज़िर (पश्चिमी तुर्कमानिया) गयी। फिर वहांसे माज़न्दरान प्रदेशमें लारजान और इलालके किलोंमें उसने शरण ली। मंगोलोंने तुर्कान खातूनको वहां जा घेरा। उस विशाल किलेके चारों ओर लकड़ीका घेरा बना बाहरसे संबंध-विच्छेद करा दिया। वर्षा नहीं हुई, इसलिये पानीकी कमीके कारण चार मास बाद इलालके किलेका पतन हुआ। पतनके बाद भारी वर्षा शुरू हुई। मंगोलोंने वहां मिली शाहजादियोंको बांट लिया। उस्मान खान समरकन्दकी बेवा खान सुल्तानको जूचीने लिया। पीछे उसने एमिलके एक रंगरेजकी बीबी बनकर अपनी जिन्दगी बितायी। तुर्कान खातूनको पकड़कर मंगोलिया भेजा गया। जहां वह १३३२ (६३० हि०) तक जिन्दा रही। देश छोड़नेके समय उसे तथा दूसरी स्त्रियोंको आज्ञा दी गई, कि वह अपने दु:खको ज़ोरके साथ क्रन्दन करके प्रकट करें। खातूनके वज़ीर निज़ामुल्मुल्क को १२२१ में कत्ल करवा दिया गया था।

खातूनके राजधानी छोड़कर भागनेपर अली कूहे-दुरुगानने राजकीय खजाने और दूसरी चीजोंको अपने हाथमें कर लिया। १२२० की गर्मियोंमें खोजन्दसे भागा वीर तैमूर मलिक ख्वारेज्म पहुंचा था। ऐसे योग्य नेताको पाकर सेनाने आक्रमण कर जूचीके हाथसे यानीकन्तको छीन कर मंगोल शासकको मार डाला। जाड़ों तक शासन-प्रबन्ध भी फिरसे ठीक कर लिया गया, जिसका श्रेय मुशरिफ इमादुद्दीन और वकील शरफुद्दीनको था। उन्होंने लोगोंमें घोषित कर दिया, कि सुल्तान मुहम्मद शाह जिन्दा है, हम उसके पाससे आये हैं। इसके थोड़े ही समय बाद ख्वारेज्मी शाहजादे जलालुद्दीन, उजलगशाह और अकशाह पहुंच गये। शाहजादे मृत्युके समय तक सुल्तानके साथ रहे थे और पिता को दफनाने के बाद सवारों के साथ मनकिशलक आ वहांके निवासियोंसे घोड़े ले राजधानी पहुंचे थे। राजधानीमें पहुंचकर उन्होंने

सुल्तानकी मृत्युकी घोषणा कर दी। मृत सुल्तानने उजलगशाहको गद्दी देनेकी वसीयत की थी, जिसे हराकर जलालुद्दीन गद्दी पर बैठा। उजलगके कहनेपर भी झगड़ा नहीं मिटा और पहिले का शासक कुतुलुक खान तूजी पहलवान—जो ७ हजार सवारों का सेनप था—षडयंत्र करनेके लिये तैयार हो गया। खबर पाने पर जलालुद्दीन, तेंमूर मलिक और ३ सौ सवारोंको साथ ले खुरासानकी ओर भागा। चिंगिस जैसा भयंकर शत्रु सिरपर था, लेकिन तब भी वह अपने भीतरी झगड़ोंको मिटानेके लिये तैयार नहीं थे। जलालुद्दीनके जानेके ३ दिन बाद मंगोलोंके आ पहुंचनेकी खबर सुन उजलग और अकशाह भी ख्वारेज्म छोड़कर भागे।

सिंहासनके लिये लड़नेवाले शाहज़ादोंकेहटते ही सभी सेनापति एक हो गुरगांचकी रक्षाके लिये तैयार हो गये। किसी किसी इतिहासकारका मत है, कि उन्हींमेंसे एक तथा तुर्कान खातूनके संबंधी खुमारतगिनने सुल्तानकी पदवी धारण की। दूसरे सेनापति थे ओगुल हाजिब (बुखारा प्रतिरक्षक), यरबुका पहलवान और अली कूहे-दुरूगान (सिपहसालार)। गुरगांच जैसे बड़े शहरको जीतनेके लिये चिंगिसने एक और बड़ी सेना भेजी। दक्षिण-पूर्वसे जगतइ और उगुतइ की सेना बुखारा होते ख्वारेज्मकी ओर बढ़ी, और उत्तर-पूर्व से जूचीकी सेना। जूचीके आनेसे पहिले ही मंगोल सेनाकी संख्या १ लाख हो गई थी। धोखा देनेके लिये थोड़ी संख्यामें आकर मंगोलोंने ढोरोंको हांकना शुरू किया। नगर-रक्षक उनके फेरमें पड़कर दरवाजा-आलमीसे निकल उनका पीछा करने लगे। एक फर्सख पर बागखुर्रम था, जहां पर मंगोल छापा मारनेके लिये तैयार थे। उन्होंने सूर्यास्तसे पहिले ही एक हजार ख्वारेज्मियोंका बध कर दिया, बाकी बचोंका पीछा करते वह अकावीलान दरवाजेसे शहरके भीतर घुस गये, लेकिन अंधेरा होनेसे पहिले ही बाहर हो गये। अगले दिन युद्ध शुरू हुआ। मंगोल दरवाजा तोड़नेकी कोशिश कर रहे थे। फरीदून गोरी५०० योद्धाओंके साथ उसकी रक्षा कर रहा था। इसी समय जगतइ और उगुतइकी सेना आ पहुंची। आत्मसमर्पणके लिये बातचीत होने लगी और साथ ही मंगोल मुहासिरा करने की तैयारी भी करने लगे। मंगोलोंका एक बड़ा हथियार था कतापुल्त, जिसके द्वारा वह बड़े बड़े पत्थर फेंकते थे। गुरगांचके पास कोई पहाड़ नहीं था, इसलिये उन्होंने तूतके वृक्षोंको काटकर उनका गोला बनाया। हरेक पेड़को गोल-गोल टुकड़ोंमें काटा जाता, फिर उन्हें पानीमें इतना भिगोया जाता, कि वह काफी बड़े हो जायं।

जूचीके आते ही नगरको चारों ओरसे घेर लिया गया। साथ आये बन्दियोंने दस दिनोंमें खाइयां पाट दीं, फिर दीवार ढानेके लिए सुरंगें खुदने लगीं। मंगोलोंकी कार्रवाइयोंको देखकर खुमारतगिन इतना डर गया, कि वह आत्मसमर्पण के लिये दरवाजेसे बाहर निकल आया। इसका प्रभाव दूसरोंपर बुरा पड़ा, तो भी प्रतिरोध जारी रहा। सुल्तान खुमारके आत्मसमर्पण के समय ही मंगोल अपने झंडेको प्राकार पर गाड़ चुके थे, लेकिन नागरिकोंके प्रतिरोध के कारण उन्हें एक-एक सड़क और एक-एक मुहल्लेके लिये लड़ना पड़ा। भांड़ोंमें नफ्था (मिट्टीका तेल) भरकर उसके ज़रिये उन्होंने घरोंमें आग लगा दी। नगरका बहुत सा भाग जल गया था। जब उन्हें पता लगा कि आग अपना काम बहुत धीरे धीरे कर रही है, तो उन्होंने आमू दरियाके जलसे शहरको काटनेके लिये नदीपर एक पुल बनाना शुरू किया, जिसपर काम करनेके लिये तीन हजार मंगोल नियुक्त किये गये। ख्वारेज्मियोंने उन्हें घेरकर मार डाला। नगर प्राकार पर अधिकार होने तक ख्वारेज्मियोंसे अधिक मंगोल मारे गये थे। पुराने गुरगांचमें

मारे गये इन मंगोलोंकी हड्डियोंका पहाड़ खड़ा हो गया था। शायद गुरगांच जल्दी ही सर हो जाता, लेकिन चिंगिसके दोनों पुत्रों जगताइ और जूचीमें मतभेद हो गया। जूचीको मिलनेवाले प्रदेशमें होनेसे वह शहरको बचाना चाहता था, इसीलिए जोरका आक्रमण न कर वह लोगोंको आत्मसमर्पण करनेके लिये कह रहा था। जूची नहीं चाहता था, कि दीहातको भी नष्ट कर दिया जाय। समझदार लोगोंने प्रतिरोधको बेकार समझकर उसे बन्द करनेकी सलाह दी, लेकिन उनकी बात नहीं चली। उधर जूची किसी बातका जल्दी निश्चय नहीं कर रहा था, इसलिये उसका छोटा भाई जगताई बुरा मान गया। यह खबर जब चिंगिसको मिली, तो उसने तीनों सेनाओंका प्रधान-सेनापति उगुतइको बनाया।

मंगोल गुरगांचके मुहल्लोंको एकके बाद एक दखल करते गये। जब प्रतिरक्षकोंके हाथमें केवल तीन मुहल्ले रह गये, तो नागरिकोंने आत्मसमर्पण करनेका निश्चय करके नगरके मुहतसिब फ़क़ीह अलीउद्दीन खैयातीको जूचीके पास दया की भिक्षा मांगनेके लिये भेजा। लेकिन मंगोलोंको इतना नुकसान उठाना पड़ा था, कि अब जूची भी उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकता। सभी नागरिकोंको बाहर खेतोंमें जमाकर उनमेंसे कारीगरोंको अलग किया गया। उस समय कितनोंने अपने पेशेको इस ख्यालसे छिपाया, कि और शहरोंकी तरह शायद उन्हें भी अपने शहरमें रहने दिया जाय। गुरगांचसे दो लाख कारीगर मिले, जिन्हें ले जाकर मंगोलोंने अपने पूर्वी राज्य में बहुतसी बस्तियां बसाई। छोटे उम्रके बच्चों और स्त्रियोंको उन्होंने दास बना लिया। बाकी नागरिकोंको मार डाला या गुलाम बना लिया। इतिहासकार रशी-दुद्दीनके अनुसार उस समय ५० हजार मंगोल सिपाहियोंमें प्रत्येकको चौबीस गुलाम मिले थे। मंगोलोंने अब तक जितने शहर लिये थे, उन सबसे अधिक आफत का पहाड़ गुरगांचके ऊपर ढाया गया। दूसरे शहरोंमें कत्लआमके बाद कुछ आदमी बच भी रहे "कुछ लोग कहीं छिप गये, कुछ भाग गये, कुछ घसीटकर बाहर लाये जानेपर भी बच निकलनेमें सफल हुए, कुछने मुर्दोंके भीतर लेटकर अपने प्राण बचाये।" पर यहाँ कत्लआमके बाद मंगोलोंने गुरगांचके बांधको नष्ट कर दिया, जिससे सारे शहरमें पानी भर गया, जिसने इमारतोंको भिगोकर ढा दिया। बहुत समय तक नगरकी भूमि पानीमें डूबी रही और जो भी तातारों (मंगोलों) से बचनेकी कोशिश करता, वह बाढ़में अथवा मकानोंके भीतर प्राण गंवाता। गुरगांचमें केवल दो इमारतें बच रहीं जिनमें एक था कूशे-अखचक (प्राचीन प्रासाद) और दूसरा सुल्तान तकाशका मकबरा। इसी बांधके टूटनेके कारण ख्वारेज्मके और नगर भी पानीमें डूब गये और एक बार फिर वक्षु अपनी पुरानी धारसे कास्पियन समुद्रमें गिरने लगी। अप्रैल १२२१ में गुरगांच पर मंगोलोंका अधिकार हुआ। जगताइ और उगुताइ अपने पिताके पास तालकान लौट गये, जो उस नगरका मुहासिरा कर रखा था।

(३) जलालुद्दीन भगोड़ा—

ख्वारेज्मी शाहजादोंके भागनेकी खबर सुनकर चिंगिसने खुरासानके उत्तरी सीमान्त नगरोंमें गारद रख दिये। जलालुद्दीन अपने तीन सौ सवारोंके साथ नसाके पड़ोस में पड़े सात सौ मंगोलोंके ऊपर टूट पड़ा। उनमेंसे मुश्किलसे ही कुछ भाग निकलनेमें सफल हुए। उसके भाई उजलग और अकशाह मंगोल गारदसे बच निकले, लेकिन देशके भीतर जानेपर मंगोलोंने उन्हें

घेरकर मार डाला। चंद दिनों वहां रहनेके बाद ६ फरवरी १२२१ को जलालुद्दीन नसासे आगे चला। जूज़ान (कोहिस्तान और खुरासानकी सीमा पर काइनसे तीन दिनके रास्ते पर) में उसने किलाबन्दी करनी चाही। लेकिन जब इसकी खबर वहांके निवासियोंको मिली, तो मंगोलोंके सर्वनाशी कार्योंकी खबरोंसे भयभीत हो उन्होंने विरोध किया। जलालुद्दीन और आगे चला। वहां १० हजार सेना लेकर अमीनुलमुल्क उससे आ मिला, फिर दोनों कंधार होते गजना पहुंचे।



१३. चिंगिससाम्राज्य (१२२७ ई०)

१२२१ के वसन्तमें चिंगिसने वक्षु पारकर बलखपर अधिकार किया। लोगोंने पहिले बिना रोक-टोकके आत्मसमर्पण किया, लेकिन पीछे विद्रोह कर दिया। इसपर मंगोलोंने शहरको लूटकर बरबाद कर दिया। बलख आज भी मादरेशहर (नगरोंकी माता) कहा जाता है, किन्तु १२२१ में मंगोलों द्वारा मटियामेट किया यह शहर उसके बाद फिर आबाद नहीं हो सका। चिंगिसकी सेनाने वहांसे आगे बढ़कर तालकानके पास नुसरतकोह (विजयपर्वत) के

किलेको जा घेरा। तालकान और बलखकी पहाड़ियोंके बीच मंगोल सेनायें पड़ी हुई थीं। नुसरतका मुहासिरा नौ महीने तक रहा।

(४) गजनी का झगड़ा—

गजनी बहुत समयसे गोरियोंकी राजधानी रही। इस प्रदेशमें तुर्कोंसे गोरियोंकी संख्या अधिक थी। महमूद गजनवीके तुर्कों और शहाबुद्दीनके गोरियोंका वैमनस्य पहिलेसे ही चला आ रहा था, जिसने इस वक्त घोर रूप धारण किया। ख्वारेज्मशाहके स्वयं तुर्क होनेसे उसके अनुचर तुर्क अपनेको बड़ा समझते थे, लेकिन मंगोलोंके सामने दुम दबाकर भागते इन तुर्कोंकी धाक अब गोरियोंके मनमें बिलकुल नहीं रह गई थी। जलालुद्दीनने पेशावरके राज्यपाल इख्तियारुद्दीन मुहम्मद अली-पुत्र खरपोश्तको गजना बुला लिया था। गजनीके तुर्क राज्यपाल अमीनुलमुल्कको अनुपस्थित देखकर उसने शासनको अपने हाथमें लेना चाहा। अमीनुलमुल्कने अधिकार-विभाजन कर देनेके लिए कहा। इसपर गोरी खरपोश्तने कहा—"गोरी और तुर्क एक साथ नहीं रह सकते।" किलेदार सलाहुद्दीन नसाईने भोजके समय खरपोश्तका काम-तमाम कर दिया और गोरियोंको खबर मिलनेसे पहिले ही शहरपर अधिकार कर लिया। दो-तीन दिन बाद आकर अमीनुलमुल्कने शासन अपने हाथमें ले लिया। जिस समय गजनीमें यह घटनाएं घट रहीं थीं, उसी समय चिंगिस नसरतकूहका मुहासिरा किये हुए था। छोटी-छोटी मंगोल सेनाएँ आस-पासके इलाकोंमें जाकर लड़ रही थीं। अमीनुलमुल्क दो तीन हजारकी एक मंगोल सेनाका पीछा करने गया। सलाहुद्दीनको अकेला पा गोरियोंने उसे मार डाला और शासनका भार तेरमिजसे आए दो भाई रजीउलमुल्क और उम्दतुलमुल्कके हाथमें चला गया। रजीउलमुल्कने अपनेको सुल्तान घोषित किया। अब तुर्कों और गोरियोंका झगड़ा दूर तक फैल गया। जब तुर्कोंको इस विश्वासघातका पता लगा, तो पेशावर, खुरासान, अन्तर्वेदके भगोड़े खल्जी और तुर्कमानोंने सैफुद्दीन अगराक मलिकके नेतृत्वमें संगठित हो गोरी सेनाको हरा रजीउलमुल्कको मार डाला। अब उम्दतुलमुल्कने अपनेको सुल्तान घोषित किया। उसके विरुद्ध भी बलखके भगोड़े राज्यपाल इमादुद्दीनके पुत्र आजम मलिक और काबुलके राज्यपाल मलिकशेरने गोरियोंको साथ ले गजनी पर कब्जा कर लिया। गजनीकी यही अवस्था थी, जबकि तीस हजार सेनाके साथ अमीनुलमुल्कको लिये जलालुद्दीन वहां पहुंचा। यहीं तीस हजार और सेना उससे आकर मिल गई। तुर्कों और गोरियोंका झगड़ा खतम हो गया। जलालुद्दीनके सेनापति थे—अमीनुलमुल्क, अकराक, आजिम मलिक, अफगान-नेता मुजफ्फर मलिक और करलुक नेता हसन।

(५) जलालुद्दीनकी एक सफलता—

इसी गंगा-जमुनी सेनाको लेकर जलालुद्दीन ख्वारेज्मशाह मंगोलोंसे मुकाबिला करके रूठी कुल-लक्ष्मीको मनानेके लिये आगे बढ़ा। उसने परवानमें जाकर डेरा डाला। वालियान (वालिस्तान, तुखारिस्तान) को घेरे हुए एक मंगोल सेना बैठी थी, जिसे जलालुद्दीनने धर दबाया। हजार मंगोल मारे गये, बाकी पंजशीर नदीके पार भाग गये। ख्वारेज्मियोंने पुल तोड़ दिया। यह खबर सुनकर चिंगिसने सेनापति शिकी कुतुकू नोयनको मुकाबिलेके लिये भेजा। परवानसे एक फरसख आगे बढ़कर जलालने लड़ाई की। दो दिन तक घमासान युद्ध होता रहा। दूसरी

रात शिकीने मंगोलोंको नमदेका घोड़ा बनाकर दिखलानेका हुक्म दिया। घोड़ोंकी इतनी संख्या देखकर कुछ आतंक तो छाया, लेकिन जब जलालुद्दीनने स्वयं अपने घोड़ेको आगे बढ़ाया, तो गाज़ियोंको भी हिम्मत आयी। शिकी थोड़ेसे आदमियोंको लेकर अकेला आगे बढ़ा। युद्धमें मंगोलोंकी जबर्दस्त हार हुई, और चंद आदमियोंके साथ शिकी अपनी जान लेकर युद्ध-क्षेत्रसे भगा। इसका परिणाम एक तो यह हुआ, कि बलखके किलेका मुहासिरा उठ गया और कुछ दूसरे नगर भी मंगोलोंके हाथसे निकल गये। जलालुद्दीनने कितने ही मंगोलोंको बड़ी बेदर्दीसे मारा। एक समसामयिक मुसलिम इतिहासकारके शब्दोंमें—"मंगोल जलालुद्दीनके सामने लाये जाते थे, अपना गुस्सा उतारनेके लिये वह उनके कानोंको चिरवाता। जब मंगोल तड़फड़ाते, तो जलालुद्दीन बहुत प्रसन्न होता, उसका चेहरा प्रफुल्लित हो उठता। मंगोल इस लोकमें यातना सह रहे थे, परलोकमें उनके भाग्यमें इससे भी ज्यादा कठोर यातना बदी थी।" इस जीतमें बहुत सा मालेगनीमत (लूटका माल) प्राप्त हुआ, जिसके बंटवारेमें झगड़ा हो गया। सैफुद्दीन अकराक, आजम मलिक और मुजफ्फर मलिकने सुल्तानका साथ छोड़ दिया। अब उसके साथ केवल अमीनुल्मुल्क और तुर्क सैनिक रह गये।

(६) पराजय

हारकी खबर सुनकर चिंगिस जरा भी घबराहट न प्रकट कर,पूर्णतया शान्त रहा। उसने सिर्फ इतना ही कहा—"शिकी कुतुकू सदा विजयी रहनेका आदी था, उसने कभी भाग्यके इस कठोर उलट-फेरको अनुभव नहीं किया। अब जब कि ऐसा अनुभव करना पड़ा, तो वह और अधिक सावधान रहेगा।" यह था उद्गार एक भीषण पराजयके समय उस विश्व-विजेता का। तालकान सर हो चुका था, इसलिए अब चिंगिस जलालुद्दीनकी खबर लेनेके लिये स्वतंत्र था। तीन सेनापतियों के साथ छोड़ देनेके बाद जलालुद्दीन इस स्थितिमें नहीं था, कि वह मंगोलोंके साथ खुले मैदानमें लड़ता। वह हिन्दूकुशके दुर्गम दर्रोंसे फायदा उठा सकता था, लेकिन उसने यह भी नहीं किया और पीछा करते हुए मंगोलोंके सामने सिंधुके किनारे तक हटता गया। चिंगिस तालकानसे सीधे गुज़खानके रास्ते बामियान पहुंचा। वामियानमें उसका जबर्दस्त मुकाबिला किया गया, जिसमें चिंगिसका अत्यंत प्रिय पोत्र (जगताईका पुत्र) मुतुगिन मारा गया। चिंगिसका पारा गरम हो गया और उसने हुक्म दिया कि नगरमें किसीको जिन्दा न छोड़ा जाय। इसी समय उसने वामियानका नाम बदलकर मोबालिग (पापनगर) रख दिया।

मंगोल सेनाने बिना किसी विरोधके ग़ज़नापर अधिकार किया। उन्होंने सुना, कि सुल्तान पन्द्रह दिन पहिले यहांसे आगे गया। चिंगिसने माबायलवचको ग़ज़नाका शासक नियुक्त किया। ग़ज़नामें भी कत्लआम और लूट मचाते वह सिंधके किनारे पहुंचा। इस समय तक जलालुद्दीनने अभी नावोंका भी पूरा इंतजाम नहीं कर पाया था। पृष्ठ-रक्षक सेनाने काफी प्रतिरोध किया, किन्तु मंगोलोंकी प्रधान सेनाके आजाने पर वह और कुछ करनेमें सफल नहीं हुई। सिंधमें सिर्फ एक नाव तैयार हो पाई थी, जिसपर चढ़ा-कर ख्वारेज्मशाहकी वेगमें पार भेजी जानेवाली थीं। लहरोंके मारे वह भी चट्टानसे टकरा कर टूट गई। इस प्रकार ख्वारेज्मशाह अपने भारी भरकम अन्तःपुर और दूसरे सामानके कारण सिंधुकी प्रतिरक्षासे भी लाभ नहीं उठा सका और उसे बुधवार २४ नवम्बर १२२१ ई० को निर्णयात्मक युद्ध करनेके लिये मजबूर होना पड़ा।

यह युद्ध नीलाब और सिंधुके संगमके पास घोड़ाटाप स्थानमें हुआ। मुसलिम सेना अपने सुल्तानके नेतृत्वमें बड़ी बहादुरीसे लड़ी, जिससे एकबार मंगोलोंमें भगदड़ मच गई और खुद चिंगिसको भी पीछे हटना पड़ा। इसी बीच १० हजार मंगोल बहादुरोंने अमीनुल्मुल्क-संचालित दक्षिण पार्श्व पर हमला कर दिया। पासा पलट गया। जलालुद्दीनका सात-आठ सालका लड़का मंगोलोंके हाथमें पड़ा, जिसे पीछे उन्होंने मार डाला। मंगोलो के हाथ में न पड़ जायें, इस डरसे जलालुद्दीनके हुक्मसे उसकी मां, बेगम और दूसरी ही कितनी ही औरतें सिंधुमें डुबा दी गई। सुल्तान अपने घोड़ेको नदीमें डाल पार हो गया। तिफलिस (जार्जिया) विजयके समयसे सुल्तान ने इस घोड़ेको अपने साथ रखा था, और वह उसपर कभी नहीं चढ़ा था। चार हजार सवार उसके साथ नदी तट तक पहुंचे, किन्तु उनमें से केवल तीन सौ ही तीन दिन बाद नदीके निचले भागमें बहकर आ मिले। चिंगिसने तुरन्त अपनी सेना सिंधु पार नहीं भेजनी चाही। अगले साल उसने २० हजार सेना भेजी, जो मुल्तान* तक पहुंची, जहां दिल्लीके सुल्तान अल्तमश (अल्ततमश, करलुक) को मंगोलोंका मुकाबिला करना पड़ा। मुल्तानकी गर्मी (११५°-१२०°) इतनी असह्य सिद्ध हुई, कि अल्तमशकी सेना नहीं बल्कि इसी गर्मीने मंगोलोंको सिंधु पार जाने के लिये मजबूर किया। १२२२ का साल मंगोलोंने अफगानिस्तानके ठंडे पहाड़ी इलाकोंको जीतनेमें बिताया।

---

[१] चिंगिसके हमलेके ६१ वर्ष बाद १२८४ (६८३ हि०) में फिर एक बार मंगोल सेनापति इतमर ३० हजार सेनाके साथ मुल्तानके शासक सुल्तान मुहम्मदके खिलाफ आया था, जिसमें सुल्तान मारा गया और उसके दरबारी कवि अमीर खुसरो बन्दी बने, किन्तु संयोग से जान बचा कर भाग निकले। खुसरोंने इस घटनाको अपने एक कसीदेमें वर्णन किया है, जिसे बदाऊनीने उद्धृत किया है। इस वर्णनसे हमें मंगोलोंके प्रति तुर्कोंके भावका पता लगता है। खुसरो स्वयं तुर्क था—

"मुसलमानोंके खूनने बहकर रेगिस्तानको रंगा,
जबकि मुसलमान बन्दी फूलोंकी मालाकी तरह गरदनसे बंधे थे।
मैं भी पकड़ा गया और भयसे मेरी नसोंमें खून बहानेको एक रक्त-बिन्दु भी नहीं रह गया।
मैं पानीकी तरह जहां-तहां दौड़ता फिरा,
धाराके ऊपरके बुलबुलोंकी तरह मेरे पैरोंमें असंख्य छाले थे।
अत्यंत प्याससे मेरी जीभ जली और सूखी जाती थी,
और भोजन बिना मेरा पेट मानो लुप्त हो गया।
जाड़ेके पत्रहीन वृक्ष या काँटोंसे छिले फूलकी तरह,
मुझे नंगा बनाकर छोड़ दिया।
मुझे पकड़नेवाला मंगोल घोड़ेपर बैठा,
जैसे पहाड़के सानुपर सिंह टहल रहा हो।
उसके मुंह और कांखसे उबकाई लानेवाली गंध आ रही थी।
उसकी ठुड्डीपर झाड़ीकी तरह या निम्न रोमकी तरह दाढ़ी लगी थी,
यदि कमजोरीसे मैं जरा सा पिछड़ जाता,
तो वह अपने तरसे और कभी अपने भालेसे डराता।

९. खुरासानमें विद्रोह दमन

तालकान जीतनेके बाद १२२१ के आरम्भमें चिंगिसने अपने पुत्र तूलुयको खुरासानके शहरों पर अधिकार करनेके लिये भेजा। जीते हुए शहरोंसे लोगोंको भरती करता तूलुय जब मेर्व पहुंचा, तो उसकी सेना ७० हजार हो गई थी। खुरासानमें भी मंगोलोंने ग़ज़ना और ख्वारेज्मकी ध्वंस-लीलाकी पुनरावृत्ति की। ख्वारेज्मियोंमें अभी बहुत से सिंहासनके भूखे आपसमें लड़ रहे थे। मेर्वके भूतपूर्व वज़ीर मुदीरुलमुल्क शर्फुद्दीन मुजफ्फरको भी बादशाह होनेका ख्वाब आया था। इसके कारण तूलुयका काम आसान हो गया। ३ मासके भीतर ही छोटे-छोटे नगर ही नहीं बल्कि मेर्व, नेशापोर और हिरात पर भी मंगोलोंका झंडा फहराने लगा। २५ फरवरी १२२१ ई० को मेर्व फतह हुआ। मंगोलोंने चार सौ कारीगरोंको छोड़ बाकी सभी निवासियोंको मार डाला। स्थानीय आभिजात्यवर्गके सरदार जियाउद्दीन अली और मंगोल सेनापति बारमास शहरके शासक नियुक्त हुए। बचे-खुचे बाशिन्दोंको एकत्रित करनेका काम दूसरी बार आकर नई मंगोल सेनाने किया। १० अप्रैल सनीचरके दिन नेशापोर दखल हुआ। उसके भाग्यमें और भी क्रूरता बदी थी। नवम्बर १२२० ई० में नेशापोरके प्राकारसे चलाये गये बाणका शिकार तुकूचार हुआ था, इसलिये अपने बहनोईका बदला लेनेके लिये तूलुयने कुछ भी दया दिखलानेसे इनकार कर दिया। शहरकी नींव तक उखेड़कर उसे जोत दिया गया। कुछ कारीगरोंको छोड़कर सारे बाशिन्दोंको मार डाला गया। ध्वंसलीला मचाते समय भी मंगोल जानते थे, कि कारीगरोंके

मैं लम्बी सांस ले रहा था और सोचता था:
इस स्थितिसे छुट्टी पाना असंभव है।
लेकिन अल्लाकी मेहरबानीसे मुझे छुट्टी मिल गई,
बिना छातीमें बाणसे बिधे या तलवारसे दो टुकड़े हुए।"

६१ साल बाद जो बला खुसरो और उसके साथियोंपर पड़ी, वह चिंगिसकी सेनाके लाखों वन्दियोंके ऊपर भी घटी होगी। प्यासके मारे खुसरोका मंगोल सवार और उसका घोड़ा रावीमें पानी पीनेके लिये टूट पड़े, और तुरन्त ही मर गये। उस समय खुसरोको भागनेका मौका मिला। लेकिन खुसरोके जैसे सौभाग्यशाली कितने रहे होंगे? खुसरोने मंगोलोंके बारेमें उस समय लिखा था, जबकि उन्होंने सिर्फ हिन्दुस्तानके किनारेको जरासा छुआ भर था। शेरुल्-अजम (२) में (शिवलीने) में खुसरोके निम्न पद्य भी उद्धृत हैं—

"यह घटना है या आकाशसे बला आकर प्रकट हुई।
यह आफत है या प्रलय दुनियामें आकर जाहिर हुई।
आफतकी बाढ़के सामने दुनियाकी जड़ उखड़ गई,
कष्ट जैसे इस साल हिन्दुस्तानमें आकर प्रकट हुआ।
हवासे (सूखे) फूलपत्तोंकी तरह मित्र-मंडली बिखर गई,
मानो फुलवाड़ीमें पत्तोंका विखराव आकर प्रकट हुआ।
बस चारों ओर दुनियाकी आंखोंसे पानी बह चला।
मुल्तानके अन्दर दूसरे पंचआब आकर प्रकट हुए।"

मारनेसे धनके उत्पादक हाथ खतम हो जायेंगे, इसलिये वह उन्हें नहीं मारते थे। कारीगर ही तरह तरहकी बहुमूल्य चीजोंको पैदा करते थे, जिनके कारण उस समय व्यापार-लक्ष्मी अपनी चरम सीमा पर पहुंची हुई थी। अरबोंने भी अपने विजयकालमें उत्पीड़ित जनोंको अपनी ओर खींचकर अपनी शक्ति बढ़ाई थी, उसी बातको दुहराते मंगोल भी उत्पीड़ित, उपेक्षित और अपमानित जातियोंको अपनी ओर कर रहे थे। इसका पता इसीसे मालूम होगा, कि नेशापोरको जीतकर तुलुयने चार सौ ताजिकोंके साथ एक मंगोल सेनपको वहां शासन करनेके लिये छोड़ दिया। हिरातका भाग्य कुछ अच्छा था। वहां सुल्तानकी १२ हजार सेनाके सिवाय और कोई नहीं मारा गया। शहर पर भी तुलुयने एक मंगोल और एक मुसलमान दो संयुक्त-राज्यपाल नियुक्त किये।

१२२१ के उत्तरार्द्धमें अफवाह उड़ाई गयी, कि इस्लामके सुल्तानने मंगोलोंपर भारी विजय प्राप्त की है। इसकेकारण खुरासानके कुछ नगरोंमें विद्रोह हो गया। विद्रोह दबानेके लिये जियाउद्दीन मेर्वसे सरख्श गया। बारमासने कारीगरों और दूसरे युद्धबन्दियोंको बुखारा भेजनेके लिये शहरसे हटाया। लोगोंने समझा, सुल्तान आ रहा है, इसलिये यह भागनेकी तैयारी कर रहे हैं। बारमासने दरवाजेपर जा नगरके कुलीनोंको बुलाकर समझानेकी कोशिश की। उसका कोई फल न देख, जिसको भी पाया, उसे मार कर वह बुखारा चला गया। वहां उसकी मृत्यु हो गई, किन्तु मेर्ववाले बन्दी यहीं थे। जियाउद्दीन फिर लौटा,मंगोल भी फिर आगये। इसी समय सुल्तान जलालुद्दीनका गार्द-अफसर कुशतगिन पहलवान एक बड़ी सेना लेकर आ पहुंचा। शहरके गुंडे भी उससे मिल गये। जियाउद्दीन दूसरे मंगोलोंके साथ भागकर मरागके किलेमें पहुंचा। कुशतगिनने शहरकी मरम्मत करवाई और खेती-बारीको फिरसे आबाद करना चाहा। वह थोड़े ही समयमें इतना मजबूत हो गया, कि बुखारापर आक्रमण कर वहांके मंगोल-गवर्नरको भी मारनेमें सफल हुआ। इस विद्रोहको १२२२ ई० की गर्मियोंके अन्तमें ही मंगोल दबा सके। कराजा नोयनके सरख्श पहुंचने पर कुशतगिन अपने हजार सिपाहियोंके साथ मेर्व छोड़कर भाग गया। सरख्श ओर नेशापोरके बीचमें संगबस्तके पास उसके बहुतसे आदमियोंको मंगोलोंने मार डाला। मेर्वमें आकर मंगोलोंने अपना गुस्सा फिर दुबारा कत्लआम करके उतारा, जिसमें एक लाख आदमियोंने प्राण गंवाये। उन्होंने सेनापति अकमलिक हुमाऊंको बाकी बचोंको ढूंढ़कर मारनेके लिए छोड़ दिया। हुमाऊंने अपने मालिकोंसे भी अधिक क्रूरता का परिचय दिया। मंगोलोंके नगरसे हटते ही फिर सिंहासनके कई दावेदार खड़े हो गये। अबीवर्द, खरकान और मेर्व का शासन ताजुद्दीन उमर मसऊद-पुत्रने संभाला। उसने मंगोलोंकी रसदको भी लूटा, लेकिन नसाका मुहासिरा करते हुए वह मारा गया। इसके बाद तीसरी बार कुतुकू नोयन अपने साथ मंगोल, खल्जी और अफगान सेना लेकर आया। खल्जियों और अफगानोंने मंगोलोंसे भी ज्यादा क्रूरता दिखलाई। अन्तर्वेदमें भी झगड़ा हुआ, लेकिन वहां बादशाह बननेका स्वप्न देखनेवाले नहीं पैदा हुए थे, बल्कि केवल मामूली डाकुओंने अधिकार जमाना चाहा।

१०. पश्चिमकी विजय-यात्रा

चिंगिसको अपने और अपनी सेनापर पूरा भरोसा था। मुहम्मद ख्वारेज्मशाहकी अस्थायी राजधानी समरकन्दको ले लेनेके बाद ही उसने समझ लिया था, कि अब मुहम्मद उसके सामने

टिक नहीं सकता, इसलिये उसने अपने दो सेनापतियों चेपे और सुबोतइको हुक्म दिया—"दुनिया में जहां भी मुहम्मदशाह जाये, उसका पीछा करो। जो नगर तुम्हारे लिये अपना द्वार खोल दे, उसे अछूता छोड़ना, लेकिन जो प्रतिरोध करे, उसे हमला करके सर करना। मुझे विश्वास है, कि यह काम उतना कठिन नहीं मालूम होगा, जितना कि दिखाई पड़ता है।" चिंगिसने इन दोनों सेनापतियोंको दो तुमान (२० हजार) सेना दी। अप्रैल १२२० में इन्होंने समरकन्दसे प्रस्थान किया। दोनों सेनापति बलख, नेशापोर, रे (तेहरान), हमदान गये। फिर शरदमें कास्पियनके किनारे विश्रामके लिये ठहर गये। सुल्तान मुहम्मदके मरनेकी खबर सुनकर वह काकेशशकी ओर बढ़कर उन्होंने जार्जिया (गुर्जी) पर आक्रमण किया। दरबन्द (काकेशस) से आगे बढ़कर सुबोताइने किपचक घुमन्तुओंको उनके मित्र अलानों और दूसरे शक-जातीय घुमन्तुओंसे फोड़ लिया। फिर वह रूसियोंके ऊपर पड़े। ८२ हजार सैनिकोंके साथ पश्चिमी सीमान्त तकके रूसी राजुल लड़नेके लिये इकट्ठा हुए, लेकिन वह मंगोल सेनाको रोक नहीं सके। मजबूत किपचक योद्धा पार्श्वकी रक्षा करते हुए मंगोलोंको द्नियेपर नदीकी तरफ ले गये। रूसियोंके पास सुबोतइ जैसा सैनिक नेता नहीं था। याद रखनेकी बात है, कि सुबोतइ जैसी कितनी ही मिट्टीमें पड़ी हुई प्रतिमाओंको पारसकी तरह छूकर चिंगिसने महान् सेनापति बना दिया था। दो दिन तक लड़ाई हुई। रूसी महाराजुल अपने सरदारोंके साथ काफिरोंके हाथों मारा गया। थोड़ेसे लोग जो बचे, वह द्निपरके ऊपर की ओर भागे। क्रिमियामें लड़ते समय चेपे घायल हो गया था, लेकिन उसने गेनोआके व्यापारियोंके एक सुदृढ़ दुर्गको सर किया। रास्तेमें चेपे मर गया। दोनों सेनापति शायद यूरोपके पश्चिमी छोर तक खून बहाते, किलोंको सर करते चले जाते, यदि इसी समय लौटनेके लिये चिंगिसका हुक्म न आया होता। रास्तेमें मंगोलोंने पहिले की अछूती जगहोंको फिर ध्वस्त किया—वोल्गाके किनारे हूणवंशी बुल्गारोंकेनगरों और ग्रामोंको मलियामेट कर दिया। एक फारसी इतिहासकारने लिखा था—"क्या तुमने सुना नहीं है, कि सूर्योदयके (उदयाचल) स्थानसे मुट्ठीभर आदमियोंने चलकर लोगोंमें अपनी ध्वंस-लीला मचाते, रास्तेमें मौत बिखेरते पृथ्वीको कास्पियनके दरवाजे तक जीत लिया? फिर वह स्वस्थ और प्रसन्न लूटके मालसे लदे अपने स्वामीके पास लौट आये।" और यह सब कुछ केवल दो वर्षके भीतर। सुबोताइने काली मिट्टी-वाले दक्षिणी रूसकी विशाल चरभूमिका पता लगा लिया और पीछे फिर लौटकर उसने मास्कोको भी सर किया।

११. मंगोल युद्धसाधन

(१) **चिंगिसकी सेनाका कार्य**—सन् १२१९-२५ के ६ वर्षोंमें चिंगिसकी सेनाने वह काम किया, जिसे सैनिक चमत्कार कहा जा सकता है। उत्तरी चीन जीतनेके बाद इसी समय उसने तिब्बतको जीता। कास्पियन समुद्र तक की भूमिको उन्होंने केवल एक लाख आदमियों द्वारा जीत लिया और द्नियेपर नदी (उक्रइन) से लेकर चीन सागर तककी भूमिके जीतनेमें केवल ढाई लाख सैनिक इस्तेमाल किये। इसमें भी आधेसे ज्यादा मंगोल नहीं थे। बाकियोंको वह बरफकी गेंदकी तरह रास्तेमें अपने साथ लपेटते लिये चले गये। इतिहासकार लिखते हैं, कि इस अभियानके अन्त समय तक पचास हजार तुर्कमान चिंगिसकी सेनाके साथी बन गये थे। रेगिस्तानी किपचक घुमन्तुओंको आत्मशात् कर जूचीकी सेनाने विशाल रूप ले लिया था।

आजके कोरियनों और मंचुओंके पूर्वज मंगोलों की सेनाके अंग बन गये थे।

(२) **मंगोल हथियार**[१]—गुरगांचपर आक्रमण करते समय मंगोलोंने प्रज्वलित नफता (मिट्टीके तेल) के गोलोंको इस्तेमाल किया था, जिसका प्रयोग इससे पहिले मुसलमानोंने ईसाई धर्मयोद्धाओंके विरुद्ध नाममात्र ही कर पाया था। १२११ के बाद हम बारूदके उपयोग की बात सुनते हैं। हो-पाउ (आतिशबाजी) के तौरपर चीनी लोग गंधक, शोरा और कोयलेके मिश्रण से बनी बारूद पहिले भी इस्तेमाल करते थे। लेकिन मंगोलोंने इसे युद्धका हथियार बना दिया लकड़ीके बने हुए मीनारोंको बारूद फेंककर वह जला देते। मंगोलोंके भयसे आतंकित एक लेखकने अतिशयोक्ति करते हुए लिखा था—"इसकी आवाज बिजलीकी कड़ककी तरह होती है, जोकि सो ली (बीस मील) तक सुनाई देती है।" चिंगिसके मरनेके बाद १२३२ ई० में काइफोंङ नगरका मंगोलोंने मुहासिरा किया था। उसके बारेमें समसामयिक चीनी इतिहासकारने लिखा है—"मिट्टीके भीतर गढ़ा खोदकर छिपे हुये मंगोल गोलोंकी चोटसे सुरक्षित थे। उस समय हमने चिन्स्यान्-लेई (एक ज्वाला-निक्षेपक यंत्र) नामक मशीनको लोहासे बांधकर उसे फेंकनेका निश्चय किया। हमने मशीनको उस ओर कर दिया, जिधर मंगोल सैनिक थे। गोलोंने फूटकर सैनिकों और उनकी ढालोंको खंड-खंड उड़ा दिया।" इसके बाद कुबिलैखानके समयके एक लेखकने लिखा है—"सम्राट्ने आज्ञा दी, कि अग्नि-धनुष छोड़ा जाय। इसने तुरन्त शत्रु-सेनामें खलबली मचा दी।" मंगोल बारूदका इस्तेमाल अभी मुख्यतः शत्रुओंको भयभीत करने या जलानेके लिये करते थे। वह तोप ढालना नहीं जानते थे, न उसमें बहुत सुधार कर पाये थे। १२३८-४६ में विजय करते हुए वह सारे मध्य-यूरोपको अपने हाथमें कर चुके थे और साधु स्वार्जके समय अब भी वह पूर्वी पोलंदमें रहते थे। जर्मन साधु स्वार्जका निवास-स्थान फ्राइबुर्ग एक मंगोल छावनीसे तीन सौ मीलपर था। यही स्वार्ज है, जिसने पहिले पहल तोप ढालनेका आविष्कार किया। इसमें शक नहीं, कि उसने मंगोलोंके अग्नि-बन्दूक को देखा था। यूरोपने पीछे इन तोपोंको अपने जहाजों पर लगाकर, विश्व-विजय किया चिंगिज खानके समय से बारूद युग आरंभ होकर परमाणु बमके आविष्कारके समय तक चलता रहा।

शायद बाबर १५२५ ई० में पानीपतमें विजयी होकर भारत का सम्राट् न बनता और मुगल वंश इस देशमें अपने दृढ़ शासन और सुन्दर इमारतोंको न बना सकता, यदि यूरोपसे सीखे हुए रूमी (तुर्की) कारीगरोंने उसे बड़े मुंहकी तोपें ढालकर न दी होतीं।

इस प्रकार स्पष्ट है, कि साधु रोजर बेंकन (१२१४-१२९४ ई०) और स्वार्जसे बहुत पहिले चीनियाने बारूद बना ली थी। वह उसके फूटनेके गुणको जानते थे, लेकिन उन्होंने युद्धके लिये उसका इस्तेमाल नहीं सा किया। काम लायक पहिली तोप यूरोपवालोंने बनाई, इसमें संदेह नहीं।

(३) **मंगोल शिकार**—चीनियोंकी आविष्कार-प्रियता और शासन-व्यवस्थाको लेकर मंगोल पश्चिममें बहुत दूर तक घुस गये। कितनी ही चीजें उन्होंने मुसलमानोंसे भी सीखीं। चीन और रूसके बीचमें सदाके लिये संबंध स्थापित करना मंगोलोंका काम है। चिंगिसने

---

[१] अग्नि-बन्दूकके अतिरिक्त मंगोलोंके दूसरे युद्ध-साधन थे—२० घोड़ोंका रथ, १० आदमियोंसे झुकनेवाला पाषाण-निक्षेपक धनुष, दो सौ तोपचियोंवाला कतापुल्त, और उड़नेवाली आग।

को एक उच्च विज्ञानके तौरपर विकसित किया। जैसे भारतने सैनिक चालोंके अभ्यासके लिये चतुरंग (शतरंज) का आविष्कार किया, उसी तरह चिंगिसने शिकार द्वारा सैनिक व्यूह रचनाकी शिक्षा दी। चिंगिसने मध्यएसियामें रहते समय १२२१ ई० में एक शिकार संगठित किया था, जिसका वर्णन इतिहासमें निम्न प्रकार मिलता है—"शिकार नहीं यह जंगली जानवरोंके विरुद्ध एक बाकायदा अभियान था, जिसमें सारा युर्त (उर्दू) और खान तक भाग ले रहे थे। जहांसे सेना कूच आरम्भ करनेवाली थी, वहां झंडियां लगी हुई थीं। इसी तरह क्षितिजके परे कुर ताई शिकारके संगम-स्थान पर भी चिह्न लगा हुआ था। प्रायः ८० मीलके भूभागको घेरे हुए एक अर्धवृत्त सा बनाया गया। शिकारियों के पथ-प्रदर्शनमें अर्धवृत्त अपने दोनों पार्श्वोंको बन्द करते कुरताइके पास पहुंचने लगा। जंगली जानवरोंमें भयका संचार होने लगा—हरिन कांपते हुए सामने कूदते दिखाई पड़े, बाघ इधरसे उधर मुंह फेरते सिर नीचा करके दहाड़ने लगे। लेकिन आंखोंसे दूर कुरताइसे परे शिकारोंके चारों ओर वृत्त मजबूतीके साथ बन्द हो गया था। हल्ला अब और ज्यादा होने लगा। पहिले खानने यथेच्छ शिकार किया, तब दूसरोंको शिकार करनेकी इजाजत मिली। यह रोमके खूनी खेलके अखाड़ेकी तरहका मंगोल घुमन्तुओंका शिकार-वाला अखाड़ा था। इस अखाड़ेमें जानेवालोंमेंसे कितने ही जानवरों द्वारा बुरी तरहसे आहत या निहत हो बाहर निकाले गये। इस शिकार द्वारा चिंगिस अपने सैनिकोंको युद्धकी शिक्षा देता था, और सवारोंकी पंक्तिको मिला लेने के द्वारा वह पशुओं नहीं मनुष्योंको घेरामें लानेका तरीका सिखलाता था।" बलखपर अधिकार करनेके बाद चिंगिसने एक पूरे ग्रीष्मकालको इस महान् शिकारमें लगाया, लेकिन खान अब स्वयं शिकारमें भाग नहीं लेता था।

उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र जूचीको भाईसे झगड़ाकर गूरगांचको दखल करनेमें देर करनेके लिये फटकारा और उसे अपने उर्दूके साथ वहांसे चले जानेके लिये कहा। जूची अराल समुद्रके परे की मरुभूमिकी ओर रवाना हुआ। चलते वक्त चिंगिसने उसे हुक्म दियाः अपने शत्रुओंके विरुद्ध आधे मन या आधी घृणाके साथ व्यूह-रचना तथा लूट नहीं करना चाहिए। तुम्हारा जो भी शत्रु सामने आवे उसकी मनुष्य-शक्तिको पूरी तौरसे नष्ट कर देना।

१२. चिंगिस् सम्राट

(१) चाङचुन की यात्रा (१२२१-२४ ई०)

ख्वारेज्मशाहपर चढ़ाई करनेके लिये प्रस्थान करके जब चिंगिस खान इर्तिश नदीके तट-पर ठहरा था, उसी समय उसने चीनके तावधर्मी सन्त चाङ-चुन्की प्रसिद्धिके बारेमें सुना। लोगोंने बतलाया कि यह महात्मा अमृतसंजीवनी जानते हैं। पर, वस्तुतः चाङचुन् आध्यात्मिक संजीविनीका वेत्ता था। चीनके विजेता महान् खानका निमंत्रण पाकर वह इनकार कैसे कर सकता था? वह खानके पास चला। अपनी यात्राका जो विवरण चाङचुनने लिखा है, उससे मध्यएसियाकी उस समय आंखों देखी दशाका पता लगता है। उसने सोचा था, चिंगिससे मिलकर मैं उसकी निर्मम हत्याओंको रोकनेका कुछ प्रयत्न कर सकूंगा। चाङचुन् मंगोलिया, उइगुर प्रदेश, कुल्जा-प्रदेश, सप्तनद होते हुए नवम्बर १२२१ में सैराम पहुंचा। मंगोलोंके अभियानके समय जो सड़कें तैयार और मरम्मत कराई गई थीं, वह अच्छी हालत में थीं। चू नदी पर तख्तोंका और तलसपर पत्थरका पुल बनवाया गया था। सिर-दरियाके उत्तरवाले प्रदेशको

ख्वारेज्मशाहने उजाड़ दिया था, जो अब फिर आबाद हो गया था। समरकन्द तक उसे सभी जगह मंगोल शासक नहीं बल्कि देशी अफसर मिले थे। सैराम एक बड़ा नगर था। २० नवम्बर को यहां वैराम-महोत्सव—नव-वर्षोत्सव मनाया जा रहा था। लोग झुंडके झुंड एक दूसरेका अनुकरण करते घूम रहे थे। सिर दरिया और सैरामके बीचमें दो और नगर मिले थे, जिनमें पहिला सैरामसे तीसरे दिन और दूसरा चौथे दिन आया था। सिर नदीपर नावोंका पुल था। सिर नदीसे प्रायः दो सौ ली (४० मील) के विस्तारमें भूखा-रेगिस्तान था। इसके दक्खिनमें समरकन्द तक पांच और नगर मिले। हर जगह मुसलमान अफसर थे, जिन्होंने चाङचुन्का बड़ा स्वागत किया। ३ दिसम्बरको चाङचुन्ने जरफ्शाँ पार किया और उत्तर-पूर्वी द्वारसे समरकन्दके भीतर दाखिल हुआ। कतलआमके बाद अब नगरकी आबादी चौथाई रह गई थी। चीनियों,कराखिताइयों और दूसरोंके साथ मिलकर लोगोंको खेतों और बगीचोंके आबाद करनेकी इजाजत थी। मुखिया सदा भिन्न जातियोंके नियुक्त किये गये थे। नगरका शासक अहाइ करा-खिताई था, जिसको ताइ-सी (दैशी) की उपाधि प्राप्त थी। वह चीनी संस्कृतिसे सुपरिचित था।

चाङचुन्की चिंगिससे जो बातचीत हुई,उसमें इसीने दुभाषियाका काम किया था। पहिले अहाई ख्वारेज्मशाहके बनवाये अपूर्ण प्रासादमें रहता था, लेकिन पीछे नदीके उत्तर तरफ रहने लगा, क्योंकि जीविका दुष्प्राप्य होनेके कारण नगरके आसपास झुंडके झुंड डाकू घूमा करते थे। चाङचुन्के आनेसे थोड़ा ही पहिले विद्रोहियोंने आमू दरियाके नावोंवाले पुलको नष्टकर दिया था। शायद जलालुद्दीनकी सफलताकी बातें सुनकर कुछ मुसलमान विद्रोहियोंको ऐसा करनेका साहस हुआ। चाङचुन् समरकन्दमें पहिली बार २६ अप्रैल १२२२ ई० तक रहा, दूसरी बार मध्य जूनसे १४ सितम्बर तक, और तीसरी बार नवम्बरके आरंभसे ३ दिसम्बर तक। इस प्रकार उसे नगरके बारेमें अच्छा परिचय प्राप्त करनेका मौका मिला। उसके वर्णनसे मालूम होता है कि नगरकी अवस्था अब साधारण सी हो गई थी। मुवज्जिनके अजान देते ही नर-नारी मस्जिदोंकी ओर दौड़ते थे। उस समय तक स्त्रियां भी पुरुषोंकी तरह साधारण नमाजमें भाग लेती थीं। जो लोग नमाज पढ़नेमें ढिलाई करते, उन्हें कड़ा दण्ड दिया जाता। रमजानकी रातोंको भोज हुआ करते। बाजार पण्य वस्तुओंसे भरे थे—सारा नगर तांबेके बर्तनोंसे सोनेकी तरह चमकता था। १२२२ के वसन्तमें चाङचुन् और उसके साथी उपनगरमें घूमने गये। उन्हें सबसे सुन्दर स्थान पश्चिमी नगरान्त मालूम हुआ। शायद इसीको बाबरने कूले-मगाक कहा है। आजकल इसे कूले-मागियान कहा जाता है, जो कि अनहारके इलाकेमें है। "वहां पर हमने चारों ओर सरोवर, घासके मैदान, मीनार और तंबू देखे।" कहीं कहीं बाग भी थे, जिनका मुकाबिला चीनी बाग नहीं कर सकते थे। सितम्बर १२२२ में जरफशाँकी पहाड़ियोंकी ओरसे दो हजार डाकुओंका झुंड शहरके पूरबमें प्रकट हुआ। समरकन्दके नागरिक प्रतिरात्रि आस्मानको आगकी ज्वालासे लाल देखते थे। अपने अन्तिम निवासके समय (नवम्बर-दिसम्बर में) सन्तने अपने लिये मिली रसदकी खिचड़ी-लप्सी भूखों को खिलानेके लिये तैयार कराई। खानेवाले बड़ी संख्यामें जमा हो गये।

सन्त अप्रेलके अन्तमें चिंगिससे मिलने गया। इससे कुछ पहिले ही वक्षु पार (बलख) का यातायात स्थापित हो गया था—जगतइ वर्षके आरम्भमें ही विद्रोहियोंको खतमकर पुलको फिरसे बनवा चुका था। चिंगिस इस समय हिन्दूकुशके दक्षिणमें था, जहांसे उसके आनेकी सूचना

चाङचुनको मार्चमें मिली। २७ अप्रैलको समरकन्द छोड़ चौथे दिन वह किश (शहरसब्ज) पार हुआ। दरबन्द (लौहद्वार) से गुजरते समय चिंगिसके खास हुक्मसे एक हजार मंगोल और मुसलमान सैनिकों को लिये सेनप बुगुरजी संत के साथ साथ चल रहा था। दरबन्द पार होनेके बाद चाङचुनने दक्षिणका रास्ता लिया और गारद ऊपरी सुरखानमें डाकुओंके विरुद्ध गया। पहाड़ी लोग अभी हथियार नहीं रख चुके थे। चाङचुन और उसके साथी सुरखान् और वक्षु नदीको नावोंसे पार हुए। उस वक्त सुरखानके दोनों तटोंपर उन्होंने घना जंगल देखा था। वक्षुके घाटसे चार दिनका रास्ता चलनेपर १६ मईको चाङचुन् चिंगिस खानके शिविरमें पहुंचा।

चिंगिसने चांङचुन्से मृतसंजीनीके बारेमें पूछा। जिसके उत्तरमें सन्तने कहा—"जीवन को कायम रखनेके उपाय हैं, किन्तु अमरताकी कोई औषधि नहीं है।" यह सुन खानने निराश होनेका कोई चिह्न नहीं प्रकट किया, बल्कि सन्तकी ईमानदारीकी प्रशंसा की। २५ मई को उसने सन्तके उपदेशोंको सुननेका निश्चय किया था, किन्तु इसी समय पहाड़ोंमें मुसलिम विद्रोहियोंकी कार्रवाइयोंकी खबर मिली, जिससे उपदेश सुननेका समय नवम्बर तकके लिये स्थगित कर दिया गया। सन्त समरकन्दकी ओर लौट आया, और गरमीके बढ़नेपर चिंगिस हिमवत्त पर्वतोंकी ओर चला गया। उस समय सन्त भी कुछ दिनों मंगोल सेनाके साथ रहा। लौटते समय एक हजार सवारोंके साथ एक मुसलिम सेनप पथ-प्रदर्शन करते सन्तको दूसरे रास्तेसे पहाड़ ही पहाड़ ले गया। चाङचुन् लिखता है, कि वक्षुके दक्षिणमें लौहद्वारसे भी अधिक कठिन पहाड़ी घाटी है। रास्तेमें उसे अभियानसे लौटती एक मंगोल सेना मिली, जिससे २ यी (चीनी मोहर) चांदीके सिक्केसे संतने पचास मूंगे खरीदे। सितम्बरमें जब वह किशसे वक्षुकी ओर रवाना हुआ, तो उसके साथ चलनेके लिये हजार पैदल और तीन सौ सवार सैनिक मिले। अब की लौहद्वार नहीं बल्कि दूसरे रास्तेसे यात्रा करनी पड़ी, जो कि दक्षिण-पश्चिमकी ओरसे था। रास्तेमें नमकका चश्मा और लाल सेंधा नमक मिला। नावसे वक्षु पार हो वह बलख पहुंचा, जिसके ध्वंसावशेषोंका वर्णन करते हुए चाङचुन्ने लिखा है—"बहुत दिन नहीं हुए, विद्रोह करनेके कारण नगर छोड़कर लोग भाग गये। कुत्तोंका भूंकना अब भी नगरमें सुनाई देता है।" २८ सितम्बरको चाङचुन्का दल मंगोल-शिविरमें पहुंचा, जो बलखसे पूरब किसी स्थानपर था। चिंगिस अब मुसलिम देशसे स्वदेश लौटनेके रास्तेमें था। सन्त भी उसके साथ कुछ दिनों तक रहा।

(२) चिंगिस मंगोलिया लौटा—ख्वारेज्मशाह के विद्रोही सेनापति सैफुद्दीन अगराक और आजिम मलिक की सेना अभी नष्ट नहीं हुई थी, इसलिये चिंगिस को तीन मास तक सिंधु तटपर रहना पड़ा। मंगोलिया लौटने के लिये वह भारतसे हिमालय और तिब्बत का रास्ता पकड़ना चाहता था। उसकी सेना में बहुत से उइगुर और तिब्बती बौद्ध थे, जो बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करने के कारण भारत के रास्ते को जानते थे। उसने दिल्ली सुल्तान शमशुद्दीन अल्तमश को चिट्ठी लिखकर कहा, कि हम इस रास्ते जाना चाहते हैं, उसका प्रबन्ध करो। लेकिन जान पड़ता है, चिंगिस ने स्वयं अपना इरादा बदल दिया, नहीं तो अल्तमश की क्या शामत आयी थी, कि वह चिंगिस की इच्छा का विरोध करता। हिमालय की जोतें भी बरफ के कारण बन्द थीं। चिंगिस को यह भी खबर मिली, कि तंगुत (हिया) राजा ने विद्रोह कर दिया है। ज्योतिषियों ने भी हिमालय का रास्ता पकड़ने को बुरा बतलाया। फरवरी या मार्च १२२२ ई० में चिंगिस पेशा-

वरसे काबुल के लिये रवाना हुआ। खान का हुकम था, इसलिये लाखों मजदूरों ने मिलकर डाँडे पर पड़ी हुई बरफ को साफ कर दिया। बामियान के पहाड़ों से होते वह बगलान पहुंचा, और वहीं आसपास के विश्राम स्थानों में उसने गरमियों के दिन बिताये। रास्ता चलते हुये मंगोल सेनापतियों का एक काम था, वहां के पहाड़ी किलों को तोड़ना, यातायात को ठीक करना और रसद की रक्षा करना। उत्तरी अफगानिस्तान जैसे दुर्गम रास्तेमें भी मुख्य मंगोल सेना को किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा, यह चिंगिस की सैनिक दूरदर्शिता और प्रतिभा का प्रमाण था। मंगोलों को सबसे अधिक हानि तालकान में उठानी पड़ी, जहां पर गजना जाते वक्त चिंगिस ने अपनी रसद को छोड़ दिया था। अशियार (गर्जिस्तान) के पहाड़ी किलेका मुखिया अमीर मुहम्मद मरगानी ने रसद के ऊपर धावा बोल दिया, और सोने और दूसरे बहुमूल्य सामान से भरे बोझों को लूट ले गया, बहुत से घोड़ों को भी उसने छीना और काफी युद्ध-बन्दियों को मुक्त कर दिया। १२२३ के आरंभ में मंगोलों ने उसके किले को १५ महीने के मुहासिरे के बाद दखल किया। १२२१ और १२२३ के बीच में गर्जिस्तान के दूसरे किलों को भी मंगोलों ने जीत लिया।

चाङ-चुन् के अनुसार चिंगिस की सेना तैरते पुल (नावों के पुल) द्वारा ६ अक्तूबर १२२२ को वक्षु पार हुई। २०,२४ और २८ अक्तूबर को तीन वार चिंगिस ने चाङ-चुन् का भाषण सुना, जिसका अनुवाद अहाइ ने किया और खान के हुकम से वह व्याख्यान लिख लिया गया। नवम्बर के आरम्भ में समरकन्द पहुंचने पर सन्त को सुल्तान के पुराने महलमें उतारा गया। मंगोल-शिविर शहर से छ मील (३० ली) पूरब में था। चिंगिस अधिक नहीं ठहरा और उसने चाङचुन् को कष्ट न हो, इसके लिये उसे अपनी इच्छानुसार चलने की इजाजत दे दी। जनवरी १२२३ में चिंगिस का शिविर सिर-दरियाके दक्षिण तट पर था। शायद १० मार्च को वह चिचिक नदी के तट पर पूर्वी पर्वतों के पास था। चिंगिस सूअर का शिकार करते घोड़े से गिर गया, और जंगली सूअर ने हमला करके करीब करीब उसे मार डाला था। चाङचुन् ने उसे बुढ़ापे में शिकार न करने की सलाह दी, जिसे चिंगिस ने स्वीकार किया। तुरन्त शिकार छोड़ना अपने लिये उसने मुश्किल समझा, तो भी अगले दो महीने उसने शिकार में भाग नहीं लिया।

१२२२ के शरद में वक्षु पार होने के बाद चिंगिसने समरकन्द में काफी समय बिताया। इस समय जगतय और उगुतय जरफ़शा के मुहाने के पास कराकुलमें चिड़ियों का शिकार कर रहे थे। उन्होंने वहाँ से पचास ऊंटों पर तलही चिड़ियों को अपने बाप के पास भेजा। १२२३ के वसन्त में चिंगिस ने अपनी उत्तराभिमुख यात्रा शुरू की। सैराम से तीन मंजिल पर शायद चिरचिक के तट पर जगताय और उगुतय से उसकी मुलाकात हुई। कुरुल्ताई (महापरिषद्) भी यहीं हुई। अकलसांद्र पर्वत से उत्तर कुलानबाशी के मैदान में ज्येष्ठ पुत्र जूची भी पिता से आ मिला। उसने २० हजार सफेद घोड़ों की भेंट पेश की थी। पिता की आज्ञा से वह जंगली गदहों का शिकार करने गया। १२२३ ई० की गर्मियों को मंगोलों ने यहीं बिताया। यहीं उइगुर अमीरों पर अभियोग लगाकर उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया। चिंगिस अपने पुत्रों के आने पर कुछ की प्रतीक्षा करने लगा। १ अप्रैल को चाङचुन् ने उससे विदाई ली। आगे १२२४ की गर्मियों को चिंगिस नेट इर्तिश तट पर बिताया और १२२५ के वसन्त में वह अपने उर्दू में मंगोलिया पहुंच गया।

(३) जूचीकी मृत्यु—१२२३ ई०से अन्तर्वेद और ख्वारेज्ममें मंगोलोंका अकण्टक राज्य शुरू हो गया। ख्वारेज्म के नगरोंको संभालनेमें जितना समय लगा, उससे कहीं जल्दी अन्तर्वेदके नगर फिरसे आबाद हो गये। ख्वारेज्म की विजय के बाद जूचीने वहां चिनतिमूर को राज्यपाल नियुक्त किया। खुरासान और माजन्दरानका भी अधिकार जूचीको मिला था। जूची गुरगांचको ध्वस्त होने से नहीं बचा सका, यह कह आये हैं, मगर थोड़े ही समय में उसके पास एक बड़ा नया शहर बस गया। गुरगांच का नाम बदल कर मंगोलों ने उसे उरगंज कर दिया, जो आज भी इसी नाम से मशहूर है। १० वीं सदी में शहर वक्षु नदी के बायें किनारे पर था। १३ वीं सदी में जब वह विशाल साम्राज्य की राजधानी बना, तो नदी के दोनों तरफ शहर बस गया और यातायात के लिये कई पुल बना दिये गये। नया उरगंज वक्षु की दूसरी धारा पर बसाया गया। यह धारा उस समय कास्पियन में गिरने लगी थी। आगे वह धारा बन्द हो गई। [१९५० ई० से सोवियत सरकार ने फिर वक्षु से एक बड़ी नहर (महान् तुर्कमान नहर) निकालकर उसे कास्पियन समुद्र से मिलाने का काम शुरू कर दिया है।] वर्तमान कून्या-उरगंच का अस्तित्त्व १९ वीं सदी से है। मंगोलों के समय से ही उरगंच यूरोप और एसिया के वणिक्पथ पर होने से बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र बन गया। व्यापार को अधिक दिनों तक अस्तव्यस्त हालत में नहीं रखा जा सकता था, इसलिये व्यापारिक नगर को बढ़ने में सुभीता हुआ, तो भी ख्वारेज्म-देश को संभलने में बहुत समय लगा। वक्षु का टूटा बांध बहुत समय तक नहीं तैयार किया जा सका और ३ शताब्दियों तक वक्षु कास्पियन समुद्र में गिरती रही।

जूची अपने पिता के साथ मंगोलिया नहीं गया। उसे अपने विशाल प्रदेश का शासन करना था। उसने अपने पुत्रों को पिता के साथ कर दिया, लेकिन जूची के न आने से उसके साथ पिता का मनमुटाव सदा के लिये हो गया। पिता की मृत्यु से ६ महीने पहिले १२२७ ई० में जूची मर गया।

(४) चिंगिसकी मृत्यु (१२२७ ई०)—तैंसठ साल की उमर में भी चिंगिस शरीर से सुदृढ़ और सुपुष्ठ था। उसकी आंखें बिल्ली की तरह कंजी थीं। सिर पर थोड़ा सा सफेद बाल, शरीर लम्बा-चौड़ा और ललाट प्रशस्त था। लम्बी दाढ़ी ठुड्डी पर लटकती थी। चिंगिस में असाधारण आत्मसंयम था। किसी भी परिस्थिति में वह एक-तरफा भाव नहीं प्रकट करता था। जरूरत पड़ने पर वह हजारों-लाखों को कत्ल करवा सकता था, लेकिन जलालुद्दीन की तरह वह यंत्रणा देकर मारना पसन्द नहीं करता था। उसकी संतानों में रूस का स्वामी बातू-खान रूसी इतिहास कारोंकी आंखों में खूनी पशु था, लेकिन मंगोलों के लिये वह साइन खान (भला खान) था। जगतइ और गूयुक खान को कभी मुंह पर मुस्कराहट लाते देखा नहीं गया। वह प्रजा में भय संचार करना शासक का आवश्यक कर्तव्य समझते थे। उगुतय मुसलमानों के प्रति बड़ी नरमी और न्याय दिखलाने के लिये प्रसिद्ध था। चिंगिस का सिद्धांत था—

"न हलवा बन कि चट कर जायें भूखे। न कड़वा बन कि जो चक्खे सो थूके।"

चिंगिस चोरी और झूठ का सख्त दुश्मन था। चिंगिस के अनुसाशन में पले मंगोल ऐसा करने की क्षमता नहीं रखते थे। शराब में भी चिंगिस अति नहीं करता था। उसके हरम में चीन से रूस भारत से अमंगोलिया तक की सुन्दरियां चुन-चुन कर लाई गई थीं। लेकिन उसको

उनके बारे में भी व्यसनी नहीं कहा जा सकता। कड़ा अनुशासन, और दृढ़ संगठन चिंगिस का मूलमंत्र था। दूसरे संगठनों की तरह सेना, सैनिक नेताओं और स्वयं खान के लिये स्त्रियों को पहुंचाना बहुत कड़ाई के साथ किया जाता था। बुढ़ापे में भी चिंगिस शरीर और मन से बिलकुल स्वस्थ था। वह स्वयं घुमन्तू जाति में पैदा हुआ था। अपने तथा अपने उत्तराधिकारियों के लिये वह उसी जीवन को पसन्द करता था, लेकिन साथ ही वह बौद्धिक संस्कृति से भी समझौता करना चाहता था। जिसका प्रभाव उसके उत्तराधिकारियों पर अधिक पड़ा। यह संगठन ही था, जिसके बल पर चिंगिस की मृत्यु (१२२७ ई०) के ४५ साल बाद तक एसिया और यूरोप में फैला उसका विशाल साम्राज्य विश्रृंखलित नहीं हुआ। पीछे चीन, मध्यएसिया, रूस और ईरान में अलग अलग राज्य अवश्य कायम हुए, तो भी वह चौदहवीं सदी तक चलते रहे।

१२२७ ई० के अगस्त में ७२ साल की उमर में चिंगिस मंगोलिया में मरा। उसने अपने पुत्रों के लिये एक विशाल साम्राज्य, एक विशाल और सुसंगिठत सेना और साथ ही राजनीति तथा शासन-नियम छोड़े। उसका विजित भूखंड प्रशान्त महासागर से पश्चिम में यूक्सिन तक फैला हुआ था। उसकी प्रजा में चीनी, तंगुत (अमदो), अफगान, ईरानी, तुर्क आदि जातियां थीं उसने अपने चारों लड़कों के लिये अलग अलग भूभाग बांट दिये थे पर साथ ही कहा था, कि सारे मंगोल-साम्राज्य का एक खाकान होगा।

(५) **चिंगिसकी समाधि**—चिंगिस की समाधि कहां बनी थी, इसके बारे में निश्चयपूर्वक कुछ कहना मुश्किल है। उलानबातुर (उर्गा) के पास खानउला पहाड़ है, उसे भी चिंगिस की समाधि का स्थान बताया जाता है। इसके अतिरिक्त उर्दुस (ह्वाङ-ह्वो) प्रदेश में येत्जिन्कूरो में मंगोलीय तृतीय मास में इक्कीस दिन के लिये सारे मंगोल राजा जमा होते थे। यहीं पर महान् खाकान का चारजामा, एक धनुष और दूसरी चीजें रक्खी हुई हैं। वह एक शिविरमें में लाई जाती हैं। यहां पर कोई नगर नहीं है, बल्कि कटे हुए पत्थरों की दीवारों के चारों तरफ डेरा डालने का स्थान है। यहीं पर नमदे के दो तंबू खड़े किये जाते हैं, जिनमें से एक में एक पत्थर का डब्बा रखा रहता है। डब्बे के भीतर क्या है, यह किसी को मालूम नहीं। अब भी विशेष-अधिकार प्राप्त पांच सौ परिवार उसकी रक्षा करते हैं। यह स्थान चीन के महाप्राकार से बाहर ह्वाङ हो के मोड के दक्खिन में उत्तरी आक्षांश ९० तथा देशान्तर १०४०° में है।

(६) **जलालुद्दीनका अवसान (१२३१ ई०)**—जलालुद्दीन ख्वारेज्मशाह वैसे सिंध के किनारे मंगोलों से लड़ते वक्त बच निकला और कितनी ही छोटी-मोटी लड़ाइयां लड़ता रहा, लेकिन मंगोलोंके सामने फिर वह जम नहीं सका। अन्त में पश्चिमी ईरान के पहाड़ों में रहते समय एक कुर्द ने १२३१ (६२८ हि०) ने उसे मार डाला।

(७) **परिणाम**—मंगोल-विजय से मध्यएसिया में एक नये युग का आरम्भ हुआ, इसमें संदेह नहीं। यही नहीं बल्कि हम कह सकते हैं, कि मंगोलोंके कारण दुनिया के इतिहास में एक नये युग का आरम्भ हुआ। मंगोलों द्वारा ही बारूद और मुद्रणकला यूरोप में पहुंची, जिसे अपना कर आगे यूरोप दुनिया का अगुआ बन गया। जहां तक मध्य एसिया का संबंध है, मंगोलों ने विजयी इस्लाम के अभिमान को चूर-चूर कर दिया। अरब-विजेताओं ने भारी विश्वासघात और दूसरे तरीकों से जितनी असानी से अपने राज्य का विस्तार किया था; उससे वह समझने लगे थे, कि इस्लाम दुनिया में विजय और शासन करने के लिये आया है। यद्यपि मंगोलों

को अब अरबों के शासन के मध्याह्न काल में अरबी शक्ति से मुकाबिला करने का मौका नहीं मिला। इस समय मध्यएसिया, ईरान, क्षुद्रेसिया तथा भारत के भी शासक मुसलमान होते हुए भी अरब नहीं तुर्क थे; तो भी इस्लाम की अजेयता के गीत चारों ओर गाये जाते थे। मंगोल क्रूर थे, लेकिन चिंगिस ने उन्हें ऐसी कड़ी शिक्षा दी थी, कि वह धोखा देने के लिये जिस झूठ की बड़ी आवश्यकता थी, उसे बोल नहीं सकते थे, चोरी कर नहीं सकते थे। धर्म के बारे में वह निष्पक्ष रहते थे, विजित जातियों के सहयोग के इच्छुक थे, और उनके आदमियों को योग्यतानुसार सैनिक और असैनिक बड़े बड़े पदों को देने में भी आनाकानी नहीं करते थे। व्यापार के महत्व को वह समझते थे, इसीलिये वह कारीगरों कोकभी नहीं मारते थे। वह सड़कों और पुलों की मरम्मत का बहुत ध्यान रखते थे और उजड़े खेतों और बागों को जल्द से जल्द आबाद करने में सहायता करते थे। यही कारण था, जो देश की उत्पादक शक्तियां बड़ी तेजी के साथ फिर से अपने कामको पूर्ववत् करने लगतीं,व्यापार खूब चमकने लगता। मंगोलों ने देशों की सीमाओं को तोड़ने में इस्लाम से भी ज्यादा काम किया। मुहासिरे का काम करने के लिये युद्ध-बन्दियों की बड़ी बड़ी फौजें संगठित कर वह एक स्थान से दूसरे स्थान, एक देश से दूसरे देश ले जाते थे। जहां भी कोई नया सैनिक हथियार या साधन मिलता, वह उसका उपयोग करते और बनाने वाले कारीगरों को दूर तक ले जाते। गुरगांच के एक लाख कारीगरों को वह अपने साम्राज्य के पूर्वी भाग में ले गये थे। अपने शत्रुओं के प्रति कठोर अवश्य थे और उन्होंने गुर-गांच, बुखारा समरकन्द, बलख, नेशापोर, मेर्व तथा और बहुत से छोटे-मोटे नगरों के लाखों आदमियों को घास-मूली की तरह काटा। चिंगिस इसे विजय की एक कुंजी मानता था: प्रतिरोध करनेवालों को एक मर्तबे बड़ी निष्ठुरता के साथ पीस डालो, उनके बाल बच्चों तक को मत छोड़ो, फिर दूसरों को इससे कड़ी शिक्षा मिलेगी। तैमूर ने भी चिंगिस के इस गुर को अपनाया और द्वितीय विश्वयुद्ध में हिटलर ने भी चिंगिस से इस गुरुमंत्र को लिया। लेकिन एक बार जब लड़ाई बन्द हो जाती, विद्रोही दब जाते, तो मंगोल निर्माण के लिये भी एक सुसंगठित विशाल शासन और दूसरे साधन प्रस्तुत करते।

(८) **यास्सा**—चिंगिस के बनाये नियमों को यास्सा कहा जाता था। तैमूर और उसके वंशज बाबर पैगम्बर मुहम्मद के अनुयायी थे, लेकिन जहां तक राजनीति और युद्धनीति का संबंध था, वह मुहम्मद की शरीयत के भी ऊपर चिंगिस के यास्सा को मानते थे। शायद बहुत लोगों को मालूम नहीं है, कि भारत के मुगल बादशाहों में खतना नहीं किया जाता था, जोकि चिंगिस से अपने संबंध को दिखलाने के लिये ही था। चिंगिस जन्म भर अनपढ़ रहा, लेकिन वह लिखने पढ़ने के महत्व से इन्कार नहीं करता था। जैसे ही उइगुर लिपि मंगोल भाषा के लिये प्रयुक्त हुई, वैसे ही चिंगिस के मौखिक नियमों और आज्ञाओंको लिखा जाने लगा। चिंगिस को मंगोल लोग बोग्दा (देवप्रेषित) कहते थे। कारपीनीने लिखा है—"वह (मंगोल) सबसे अधिक अपने स्वामी (चिंगिस) के आज्ञाकारी थे। वह उसका भारी सम्मान करते और धोखा देने के लिये कभी एक शब्द भी नहीं बोलते थे। शायद ही कभी वह आपसमें लड़ते-झगड़ते, एक दूसरेको घायल करते या मारते। चिंगिस के राज्य में कहीं चोर-डाकू नहीं मिलते थे, इसीलिए मंगोलों के घोड़े, खजाने तथा सब तरह के माल से लदी हुई गाड़ियां ऐसे ही खड़ी कर दी जातीं, उनकी रखवाली का इंतिजाम नहीं किया जाता। मंगोलों के गल्ले का कोई पशु यदि खो जाता, तो लोग उसे

चीजों के अफसर के पास पहुंचा देते ।'अपने भीतर एक दूसरे के साथ वह बड़ी नम्रतापूर्वक बर्ताव करते हैं । भोजन की कमी हो तब भी वह मुक्त-हृदय से आपस में बांटकर खाते हैं। कष्ट के समय वह बड़े धैर्यशाली हैं । चाहे मंगोलों को एक या दो दिन से अन्न न मिला हो,तो भी वह गाते है, विनोद करते हैं । यात्रा में सर्दी और गर्मी दोनों को बिना दुःख प्रकट किये बर्दाश्त करते हैं । यद्यपि अक्सर शराब के नशे में मस्त हो जाते हैं, लेकिन उसके कारण वह कभी झगड़ा नहीं करते । बदमस्ती उनके भीतर एक सम्मान की चीज मानी जाती है। जब कोई मंगोल अत्यधिक पान करके कै करता है, तो वह फिर पीना शुरू करता है । दूसरे लोगों के प्रति वह अत्यंत अभिमानी और रोब दिखलाने वाले होते हैं । चाहे कोई कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो, दूसरी जाति के आदमी को मंगोल नीच दृष्टि से देखते हैं। हमने इस तरह का बर्ताव खान के दरबार में रूस के महाराजुल,जार्जिया के राजकुमार, बहुत से सुल्तानों और बड़े आदमियों के साथ होते देखा, जो कि भेंट और सम्मान प्रकट करने के लिये दरबार में आये थे । यहां तक कि उनकी सेवा के लिये जो तातार (मंगोल) नियुक्त किये गये थे, चाहे उनकी स्थिति कितनी ही हीन हो, लेकिन वह इन बन्दी कुलीनों के आगे आगे जाते और उनसे ऊंचा स्थान ग्रहण करते । दूसरे आदमियों से वह जरा सी बात पर बिगड़ जाते हैं । इतने अभिमानी हैं, कि जिस पर विश्वास नहीं किया जाता ।"

ऐसी जाति के पथ-प्रदर्शन के लिये चिंगिस खान ने यास्सा बनाया था। बाबरने लिखा है—"मेरे पूर्वज और परिवार के लोग बड़े पवित्र भाव से चिंगिस के नियमों (यास्सा) का अनुसरण करते थे । अपने भोजों, दरबारों, उत्सवों और विनोद-मंडलियों में, अपने उठने और बैठने में उन्होंने कभी चिंगिस के नियमों के विरुद्ध आचरण नहीं किया ।

यास्सा के कुछ नियम निम्न प्रकार हैं—

"१. यह विधान किया जाता है, कि स्वर्ग और पृथ्वी के कर्ता केवल एक भगवान् पर विश्वास करना चाहिये । केवल वही अपनी इच्छा से जीवन और मृत्यु,गरीबी और अमीरी प्रदान करता है । वह हरेक चीज पर पूर्ण अधिकार रखता है ।

२. धार्मिक नेताओं, उपदेशकों, साधुओं, धर्माचारी व्यक्तियों, मस्जिद के मुअज्जिनों, चिकित्सकों, और मुर्दा नहलाने वालों को राज्य की ओर से भोजन देना चाहिये ।

३. खानजादों (राजकुमारों), खानों, अफसरों और दूसरे मंगोल सरदारों द्वारा महा-परिषद् (कूरिल्ताई) में निर्वाचित हुए बिना जो अपने को खाकान (सम्राट) घोषित करे, वह चाहे जो भी हो, उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायगा ।

४. मंगोलों के अधीनस्थ जातियों के सरदार या कबीले की सम्मानीय उपाधियोंको धारण करना निषिद्ध है ।

५. जिसने अधीनता नहीं स्वीकार की है, ऐसे किसी राजा, प्रदेश या जाति से सुलह करना निषिद्ध है ।

६. सेना के आदमियों को १०, १००, १०००, १०००० के विभागों में विभाजन करने के नियम को कायम रखा जाय । इस प्रबन्धके अनुसार बहुत थोड़े समयमें एक वाहिनी और सेना-पति की इकाइयों को तैयार किया जा सकता है ।

७. जैसे ही कोई अभियान आरंभ हो, उसी समय प्रत्येक सिपाही को अपने उस अफसर

के हाथ से हथियार मिलने चाहिये, जिसके कि वह अधीन हैं। सिपाहियों को हथियार अच्छी हालत में रखना चाहिये, और युद्ध से पहिले अफसर से उसका निरीक्षण करा लेना चाहिये।

८. कमांडिंग सेनापति की आज्ञा के बिना शत्रु को लूटने की सजा मृत्युदण्ड है। लेकिन आज्ञा मिलने के बाद सिपाही को लूटने का उतना ही अवसर मिलना चाहिये, जितना अफसर को और जो कुछ भी वह अपने साथ ले जाय, यदि उसने खान के लिये उगाहक-अफसर को उसमें से भाग दे दिया है, तो बाकी को अपने पास रखने का उसे हक है।

९. सेना के आदमियों को अभ्यस्त रखने के लिये प्रत्येक जाड़े में एक भारी शिकार का प्रबंध किया जायेगा। इसके लिये साम्राज्य के हरेक आदमी को मार्च और अक्तूबर के बीच के महीनों में हरिन, हरिनी, खरगोश, जंगली गदहों और कितनी ही चिड़ियों का शिकार करना मना है।

१०. खाने के लिये मारे जानेवाले जानवर का गला रेतना मना है। मारने के लिये बांध कर उनकी छाती छेदनी चाहिये, और शिकारी को चाहिये, कि हाथ से कलेजे को निकाल ले।

११. पहिले चाहे इसका निषेध रहा हो, किन्तु अब जानवरों के खून और अंतड़ी का खाना विहित है।

१२. नवीन साम्राज्य के सरदारों और अफसरों को उतनी ही रियायतों और सुरक्षायें मिलनी चाहिये, जिनकी सूची बना दी गई है।

१३. जो आदमी लड़ाई में भाग नहीं लेता, उसे कुछ निश्चित समय तक बिना मजूरी साम्राज्य के लिये काम करना होगा।

१४. जिस आदमी ने एक घोड़े या टांघन या उसके मूल्य के बराबर ही चीज की चोरी की है, उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायगा, और उसके शरीर को दो टुकड़े कर दिया जायगा। इससे कम की चोरी की हुई चीज के लिये मूल्य के अनुसार ७, १७, २७ तक बेंत मारने की सजा दी जायगी, लेकिन चोरी गई चीज के मूल्य का नौ गुना दण्ड देने पर शारीरिक दण्ड से छुटकारा मिल सकता है।

१५. साम्राज्य का अधीनस्थ कोई आदमी किसी मंगोल को सेवक या दास नहीं रख सकता। कुछ थोड़ी सी स्थितियों को छोड़कर प्रत्येक (मंगोल) पुरुष को सेना में भरती होना पड़ेगा।

१६. जो कोई विदेशी दासों को भागने से नहीं रोकता या उन्हें शरण, खाना या कपड़ा देता है, उसे मृत्युदण्ड दिया जायगा। उस आदमी को भी इसी प्रकार का दण्ड दिया जायगा, जो कि भगोड़े दास से भेंट होने पर उसे उसके मालिक के पास नहीं पहुंचाता।

१७. विवाह कानून आज्ञा देता है कि हरेक आदमी अपनी स्त्री को खरीद सकेगा। अपने भाई-बन्धुओं में प्रथम और दूसरी श्रेणी के नजदीकी संबंधियों के बीच में विवाह वर्जित है। एक आदमी दो बहनों को व्याह सकता है, उतनी ही रखेलियों को रख सकता है। अपने पति की इच्छा के अनुसार स्त्रियां सम्पत्ति, तथा क्रय-विक्रय के काम को कर सकती हैं। आदमी (मंगोल) को केवल शिकार और युद्ध में लगना चाहिये। दासियों से पैदा हुए बच्चे वैसे ही वैध संतान हैं

जैसे कि पत्नियों के बच्चे। प्रथम पत्नी की प्रथम संतान को दूसरे बच्चों से अधिक सम्मान मिलना चाहिये। हरेक चीज का वही उत्तराधिकारी माना जायेगा।

१८. व्यभिचार की सजा मृत्यु-दण्ड है। जो इसका अपराधी है, उसे उसी समय मारा जा सकता है।

१९. अगर दो परिवार व्याह द्वारा संबंधित होना चाहते हैं, और यदि उनके पास छोटे बच्चे हैं, उनमें से एक लड़का है, और दूसरा लड़की, तो उन बच्चों का विवाह हो सकता है। यदि बच्चे मर जायें, तो भी विवाह-बन्धन मौजूद रहेगा।

२०. बिजली कड़कने (वर्षा) के समय बहते पानी में नहाना या कपड़ा धोना निषिद्ध है।

२१. गुप्तचर, झूठे गवाह, हीन-दुराचारी ऐसे सभी आदमियों तथा जादूगरों को मृत्यु की सजा दी जायगी।

२२. जो अफसर और सरदार अपनी ड्यूटी पर नहीं पहुंचते, अथवा खान के बुलाने पर नहीं आते—विशेषकर दूर के प्रदेशों में होते हुये—ऐसे आदमियों को कत्ल कर दिया जायगा। अगर उनका अपराध कुछ हलका हो, तो उन्हें स्वयं खान के पास आना होगा।

नहीं कहा जा सकता, यास्सा के इन नियमों में से सभी चिंगिस के मुंह से निकले थे। तो भी आशा की जाती है, कि इनमें से अधिकांश बातें चिंगिस की ही हैं। पैती दे. लाक्रुवा ने यास्सा का अनुवाद करते हुये लिखा है, कि मुझे पूरी सूची नहीं मिली। क्रुवा ने इन्हें फारसी इतिहासकारों, रुबरिक और कारपीनी के ग्रंथों से जमा किया।

स्रोत-ग्रन्थ :

1. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Bartold)
2. Heart of Asia (E.D. Ross.)
3. Chingis Khan (Harold Lamb, London 1924)
४. युआन चाओ वि शि (संपादक स० अ० कोज़िन)
5. Life of Jengis Khan (R. K. Douglus, 1877)
6. Introduction a l'histoire de l' Asia Turcs et Mongol des Origines a' 1405 (Leon Cohun Paris 1896)
7. (Travel of) John of Plano Carpini (London 1900)
8. Ibna.Batuta (Paris 1853)
9. Marco Polo (अनुवादक Henry Yule, 1921)
10. The Journey to the Eastern Parts of the World(William of Rubrique, London 1900)
11. Medieval Researches from Eastern Asiatic Sources (Liu Chutsui, London 1888)
12. A Literery History of Persia, (E. G. Browne, 1906-20)
13. Cambridge Medievel History Vol. 1v; The Eastern Roman Empire 1923)

14. Melange d' Histoire et de Geographie Orientale (H Cordier Paris 1920)

15. Cathy and the Way Thither (Henry Yule)

१६. जामउत्-तवारीख (फज्लुल्लाः रशीदुद्दीन)

१७. तारीख जहांगुशा (अलाउद्दीन अता-मलिक १२५७-६० ई०)

18. Chronology of Ancient Nations (Alberuni, अनुवादक E. Sachan

19. Histoire general des Huns, de Turcs, des Mongols et des autres Tartars Occidenteux (J. Deguigne)

20. Vie de. Djenghiz Khan (मीर खोन्द, अनु० Joubert)

21. Discription Topographique et Historique de Boukhara (Nerchakhy, Schefer)

22. Histoire des Mongols (D.' Ohesson)

२३. तबकात-नासिरी (जुज्रजानी)

२४. मंगोलिया स्त्राना तंगुतोफ़ (न. म. प्रभेवाल्स्की, मास्को १९४६)

२५. किताबुल-हिन्द (अबूरेहां अल्बेरुनी, अनु० सैयद असगर अली, अंजुमन तरक्की उर्दू, दिल्ली १९४१)

२६. मंगोल्स्कया पोवेस्त ओ खाने खरत् गङ (ग० द० संभेरेफ, लेनिनग्राद १९३७)

परिशिष्ट १

मध्यएसिया का इतिहास (१)

पुस्तक-सूचि

अल्बेरूनी। अबूरेहाँ : "किताबुल्‌हिन्द" (अंजुमन त० उर्दू, दिल्ली १९४१)

अर्खितेक्तुर्निये पाम्यात्निकि तुर्कमेनिइ (मास्को १८३९)

आर्खेओलोगिचेस्किये रस्कोप्‌कि व्‌ त्रिअलोति (त्बिलिसि १९२८)

इनस्त्रान्त्सेफ। क० : हुन्‌ु इ गुन्नी (लेनिनग्राद १९२६)

उपाध्याय। भागवतशरण : प्राचीन भारतका इतिहास (पटना १९४९)

उपाध्याय। वासुदेव : भारतीय सिक्के (प्रयाग १९४८)

ओर्बेली। इ०अ० : "प्राव्लोमा सेल्जुस्कओ इस्कुस्स्त्वो"। "सिनखोनिचेस्किये तबलित्सी द्‌ल्या पो खिज्रे ना येवरोपेइस्कोये लेताइस्‌ चिस्तेनिये (लेनिनग्राद १९४०)

क्रतिकये सोओब्श्चेनिया, VII, X, XII, (लेनिनग्राद)

क्रिस्तियान्सन। अर्थर : ईरान दर जमान सासानियान (अनुवादक: रशीद यासमी तेहरान १३१७)

जुजजानी : "तबकात-नासिरी"

ताल्स्तोफ। स० प० : खोरेज़्मस्कया एक्सपेदेत्सिया (१९३९), नोविये मतेरिअली पो इस्तोरिइ कुल्तुरि द्रेव्नओ खोरज़्मा (वेस्त्नेक द्रेव्नेइ इस्तोरिइ (१९४६)

त्रेवर। क०व० : कोव्रा इज़ नोइन उला (लेनिनग्राद् १९४७)। पाम्यात्निकि ग्रेको-वाक्त्रि-इस्कओ इस्कुस्स्त्वा (मास्को)

त्रुदी अत्देला नुमिज़्मातिकी (लेनिनग्राद १९४५); त्रुदी उज़्बेकिस्तान्स्कओ अकदमी नाउक (ताशकंद १९४०)

निज़ामुल्मुल्क : "सियासतनामा" (लाहोर)

पाम्यात्निकि व्‌ चेस्त क्बुलतेमिना (क्र० सा० XII २-४)

पिगुलेवस्कया। न : सिरिइस्कये इस्तोच्निकि पो इस्तोरिइ नरोदोफ़ (लेनिनग्राद १९४१)

प्र्झेवाल्स्की। न० म० : मंगोलिया इ स्त्राना तंगुसोफ़ (मास्को १९४६)

बरतोल्द। व० व० : ओचेर्क इस्तोरिइ तुर्कमान्स्कओ नरोद (१९२४); ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्या (वेर्नी १८९८); किर्गिज़ी (फ्रुन्जे १९२७)

बेर्न्श्ताम। अ० न० : आर्खेओलोगिचेस्किइ ओचेर्क सेवेर्नोइ किर्गिज़िइ (फ्रुंजे १९४१); सेवेर्नोकिर्गिज़ि इ पो. . .चुइस्कओ कनाला (फ्रुंजे १९४३); त्युरोक (लेनिनग्राद १९४६); सोग्दिइस्कया कलोनिज़ात्सिया सेमिरेच्या

मलिक । अलाउद्दीन अता : तारीख जहांगुशा (१२५७-६० ई०)
मालोफ। इ०न० : द्रेव्ने तुरत्स्किये नाद्ग्रोबिया स् नाद्पिस्यामि वास्सेइना रे...तलस (१९२९)
येफिमेंको । पी० पी० : पेर्वोवेत्नोये ओव्श्चेस्त्वो (लेनिनग्राद १९४५)
रशीदुद्दीन । फज्लुल्ला : जामे-उत्-तवारीख
वेइमार्न। व०व० : इस्कुस्स्त्वो स्रेद्निइ आजिइ (मास्को १९४०)
वोस्तोकोवेदेनिये : II (लेनिनग्राद १९४१)
शुस्कोव्स्की : रज्वलिनी स्तारओ मेर्व (१८९४)
संक्रेयेफ । ग० द० : मंगोल्स्कया पोवेस्त आ खोन् सरन् गड्ङ् (लेनिनग्राद १९३७)
सांकृत्यायन । राहुल : इस्लामकी रूपरेखा (प्रयाग १९४७); दर्शनदिग्दर्शन (प्रयाग १९४७);
"सोवियत भूमि"—दिल्ली १९५३
सोव्यत्स्कया एत्नोग्राफिया (१९४६)
स्त्रूवे । न०व० : इस्तोरिया द्रेव्ने ओ वोस्तोका (लेनिनग्राद १९४१)
हेरेदोतस : अनुवादक – फ० मिश्चेंको—इस्तोरिया व् द्रेव्यानि क्निगाख I, II (१८८५-८६)
Alberumi : Chronology of Ancient Nations. (**Tr. E. Sachau**)
Allen. J. : Coins of Ancient India (London. 1936)
Ayyangar. T. T. S.. ; Stone Age in India.
Bartold. W., : Turkistan Down to the Mongol Invasion (London.. 1928)
Bergmann. F. G., : Les Scythes (Paris)
Berthelot. A., : L' Asie Ancienne Centrale et Sud Orientale d' apre's Ptolomie. (Paris 1930)
Bloomfield. L. : Language. (1933)
Boas. Franz, & others, : General Anthropology. (Newyork 1938)
Bullettine de l' Acedamy Royal des Sciences et de lettre de Dennemark. No. 3. (Copenhague)
Burkitt. M. C., : Our Early Ancesters. (London 1929)
Carpini. John Plano, : Travel of. (London 1900)
Cordier. H., : Melonge d'historique et de Geographique Orientale. (Paris 1920)
Czalicka. M., : The Turks of Central Asia in History and at the Present Day (Oxford. 1918)
Desqugue. : Histoire des Huns. (Paris 1756).
D' Ohesson. : Histoire des Mongol
Douglus. R. K., : Life of Jengis Khen (London, 1877)
Elliot-Smith. G. : The Evolution of Man. (London, 1927) · In the Beginning, (London, 1940)

Gardner. P. : Catalogue of Coins in the Bri tish Museum. (London 1886)

Gorden-Childe. V. C. : The Aryan.

: The Bronze Age

: The Most Ancient East. (London, 1928)

: Progress and Archaeology (London 1944)

Guignes. J. de, : Histoire generale des Huns des Turks, des Mongoles et de Autre Tartares Occidentaux (Paris, 1756-58)

Haddon. A. C. : History of Anthropology. (London)

Hall. H. : The Ancient History of Near East. (London 1936).

Rawlinson. G. : Herodotus (London)

Hiuen Tsang (Tr. Julien) : Memoir Sur les Contries Occidentale.

Hotsma. : Recuecil de Textes relatif a l'histoire de seldjucides. (Paris)

Ibn-Batuta. : Travel (Paris 1453)

Inscription de l' Arkhon re cueillies per l' expidition Finnois. (1890)

Jasperson. O. : Language its nature, Devolopment and Origin. (1923)

Journal of American Oriental Society. (1917 Sept) : The Story of Chang-Kien.

Keith. Arthur. : Antiquity of Man. 2 vols. (London) : New Discovery relating to the Antiquity of Man. (London 1931)

Lamb. Herold., : Chingis Khan. (London. 1928)

Leith. Duncan : Geology in the Life of Man. (London, 1945)

Lerch. : Sur les monnides de Boukhare-Khoudats.

Lowie. R. H., : Primitive Society (1920)

Maspero. G. : Histoire Ancienne de l' Orient. 3 vols. (Paris 1905)

Meillet. A., and m. Cohen. : Les Languge du Monde (Paris 1924)

Mirkhond. (Tr. Joubert). : Vie de Djenghis Khan.

Mitra. P. : Prehistoric India (Calcutta,. 1928)

Moret. A. : Histoire de l' Orient, 2 vols. (Paris)

Morogon. J. de. : L' Humanite Prehistorique (Paris)

Marcopolo : (Tr. Henry yule) : Travel. (London, 1921)

Nemeth. J. : Die Kokturkischen Grabins chriften aus dem Taledes Talas in Turkistan (Budapest)

Nerchakhi (Tr. Schefer) : Discription Topographiqye et Historique de Bok hara.

Oppert. : Le people et la langue des Medes.

Paggots. : Prehistoric India. (London, 195)

Parker. E. H. : A Thousoud Years of Tartars (Shanghai 1895)

: The Turko-Scythien. (China Review, 1892)

Pumpelly. R. : Exploration in Turkistan 2 vols (1903-4)

Quennell. M. and C. H. B. : Everyday Life in the Old Stone Age. (London)

Radloff. W. : Altturkische studien. IV.

Rapson. : Coins of Ancient India. (London)

Rawlinson. H. : Inscription of Darius

Ridley. G. N. : Man the Verdict of Science (London, 1940)

Ruza. Nour. : Oughous-Name (Alexandrie, 1928)

Ross-E. D. (Tr.) : A History of Mongol of Centrerl Asia (Tarikh-i Rashidi) (London)

: Heart of Asia. (London, 1999)

Rubriiue. William. : The Journey to the Eastern parts of the world. (London, 1900)

Saint-Martin. Vivien de., : Surles Huns Blanc ou Ephthalites

Shiratorie. K., : A Study on the titles Kaghan and Khatun (Tokyo, 1926)

: Sur l' Origine des Huing-nu (Journal Asiatique C C X. I. (1923)

Smith. V. : Early History of India.

Sten-Kono : Notes on Indo-Scythianu Chronology.

Stein. M. A. : Manuscript in Turkish runic script from Miren and Tunhuang (J. R. A. S, 1912. Jan.)

Sykes. P. M. : Ancient Empires of the East.

: Persia. 2 vols.

Tarn. W. W. : Greek in Bactria and India (Cambridge, 1938)

: Hellenistic Civilization. (1930)

: Selucid-Parthien Studies (1930)

Taylor. E. B. : Anthropology. 2 vols. (London, 1946)

: Researches to the Early History of Mankind (London 1878)

Tsui-chi : A Short History of Chinese Civilisation. (London, 1945)

Thierry. Am. : Histoire d' Attila et de ses successurcs. (Paris, 1855)

Thomes. F. W. : Tibetan Documents Concerning Chinese Turkistan (J. R. A. S., 1934)

Thomsen. V. : Westturken

Traver. C. : Excavation in Northern Mongolia (Leningrad.)
: Terraeotta from Afrasiab (Leningread, 1936)

Ujfaly. : Migration des peoples et perticulerement Cells Touraniens. (Paris, 1873)

Vambery. A. : History of Bokhara (1873); Sketches of Central Asia (1868); Travel in Central Asia (London, 1861)

Washborn. : Early History of Turks

Watters. T. : On yuan Chwang's Travel in India, 2 vols.

Wylie. : History of Hingnu in their relation with china (London, 1892)

परिशिष्ट २

नामानुक्रमणी

अकबर—१०७, ३१२ (मुगल)
अकमलिक, हुमाऊँ — ४८४ (मंगोल सेनापति)
अकशाह (ख्वारेज्म)—४७६
अकसीकत—३५७, ३८५, ४०५
अकसू—१०२, ११०, १३२ (पोलुका, बालुका) १३८, २४९ (पेन्चुल)
अकिनो—१३१ (कराशर)
अक्कद—१४६
अखताची—४५८ (पद) ४५९ (सवार), (अख्ता=घोड़ा)
अखवतन—१४५ (हम्दान), १६४, १६५
अखामन—१४५
अखामनशी—१४५ (अखामनी)
अखामनी—१४३-१५७ (वंश) १४५,१६०, २९७
अगथोकल—१७६, १७८, १७९, १८५
अगथोक्लेइया—१८१ (मिनांदर-पत्नी)
अंगारा—१३७ (नदी)
अंग्रामेन्यु—१५१ (अह्रमान, शैतान)
अग्निधनुष—४८६ (बन्दूक)
अग्निमित्र—१६९
अच्वी—८१, ८८ (हूण)
अजम—२८०, २८२ (अन्-अरब)
अजिल—१२ (मानव), २३
अजेस्—१८२
अज़ोफ (सागर)—६, ८ (असोफ़ मी)
अतबास—२५१ (=कोशोद कुरगान) ३३२, ३८७
अतलस—२४८ (तलस)
अतलान्तिक—५
अताबेग—४७२ (फारस)
अत्तिका—१५२
अत्सिज—(ख्वारेज्मशाह), ३४९, ४२६, ४२७, ४३०, ४३२, ४४०-४२
अथिना—१८३ (देवी)
अथुर—१४९ (असीरिया, असुर)
अथेनोय—१५५
अथेन्स—१४७, १५२, १८३
अदिर—१३७, १३८ (तुर्क)
अद्भुतविहार—१३२
अनशन—१४५ (ईरान)
अनाहता—१८४ (वक्षुदेवी)
अनोशतगिन—४३२-४० (ख्वारेज्मी १)
अनौ—४२-४४, ५८, ६६
अन्चे—१०१
अन्तर्वेद—३००, २६८ (मावरा-उन्-नह्) २७४ ३११ (के सिक्के)
अन्ताकिया—४२१
अन्तिगोन—१६८
अन्तिमाखु—१७३, १७५, १७८
अन्तियालिकिद—१८०-१८१ (गंधार)
अन्तियोक—१६८ (१,२) १७१ (३), १७७-७९, ४)
अन्ती—१०१
अन्दकुइ—१६७ (अन्दखुद)
अन्दखुद—१६७ (अन्दखुइ), ४१२, ४३७ (शहाबुद्दीन गोरी का पराजय-स्थान), ४४३, ४४९, ४७१ (वक्षु-तट)
अन्दमन—४३
अन्दराब—२२३ (अन्तलोफ़ो)
अन्द्रोन्—७३
अन्द्रोनोय—६१ (सप्तनदकी संस्कृति), १५९ (का संबंधी ख्वारेज्मी ताज़ा बागयाबसे)
अपिया—६९ (शकदेवी)
अपो—१०८ (तुर्क)
अपोकों—३३५-३८ (अपओकी, खित्तनराजा)
अपोलोदोत—१७३ (बाख्तरी) १७५, १७६ (भरुकच्छ), १७९, १८१, १८२
अपोलोन—१८३ (देवता)
अफगानिस्तान—६, १२८, १३५, १७१, २२३, २७९, ३६७, ३९२
अफनास—७३
अफशान—३६८ (बुखाराके पास)
अफशीन—३१४ (उश्रूसनाका राजा, जिसका पुत्र काबूस), ३१५
अज़ोका—१२२
अज़ोग—१६२ (ख्वारेज्म)
अज़ोदिता—१८४ (देवी)
अबीवर्द—३६७, ४८४
अबुल्अब्बास—२९५ (अब्बासी)
अबुल्कासिम—३८४ (समरकन्दी मुल्ला), ४०० (गज़नवी वजीर)

अबुल्खैर खम्मार—३१० (अनुवादक)
अबुल्हारिस—४०२ (ख्वारेज्म शाह)
अबूअली—३१० (अनुवादक)
अबूऔन—३०४ (राज्यपाल)
अबूज़करिया—३१० (अनुवादक)
अबूजाफर—२९७ (अब्बासी खलीफा मन्सूर)
अबूदाऊद—२९५
अबूदाउदखालिद—३०२ (राज्यपाल)
अबूनस्र अहमद—३६८ (सामानी वजीर)
अबूबकर—२५९ (खलीफा)
अबूमहम्मद इस्फिजाबी—३७० (सामानी वजीर)
अबूमुजाहिम—२९० (=सुलू)
अबूमुस्लिम—२९४, २९५, ३००-३, ३१३
अबूसल्म—२९५
अब्दुल्जब्बार—३०३ (राज्यपाल)
अब्दुलमलिक—२७२ (खलीफा) ३६६ (सामानी ६), ३८१ ३७१ (नूह, सामानी ११), ३८१
अब्दुल्ला—२६७ अमीरपुत्र, राज्यपाल), ३६८, ३८१ (उजेरपुत्र, सामानी वजीर) २६७ (खाजिन-पुत्र, राज्यपाल), २७२ (जियाद-पुत्र, राज्यपाल), ३१५ (ताहिरी)
अब्दुल्ला नईम—३१० (अनुवादक)
अब्दुल्ला बुखारी—३६४ (सहीह बुखारी-संग्राहक)
अब्दुल्हसन अली—३७१ (ख्वारेज्मशाह)
अब्बास—२९३
अब्बासी (खलीफा)— २३८, २९८-९९, ३६१, ४५४
अमदो—२३३ (=तंगुत)
अमरावती—६८
अमरो—११३ (तुर्क)
अमरोशर—२३७ (तुर्क)
अमिन्तस—१६७ (ग्रीक क्षत्रप)
अमीन—३०८ (अब्बासी खलीफा ६)
अमीर—३६२ (सामानी, सुल्तान), ३७३ (राज्यपाल)
अमीर तैमूर—२८ (गुहा)
अमीराबाद—५८ (ख्वारेज्मकी संस्कृति)
अमेरिकन—२६ (इंडियन)
अम्र—३१९-२२ (अम्र, सफ्फारी), ३६३
अयस्—५२ (लोह, कृष्ण)
अयाज—३८५ (अल्पअरसलन-पुत्र)
अरखोसिया—१७१, १७६ (बिलोचिस्तान), १७८, १७९
अरदूहन—४७२
अरब—१२८, १३१, १३५, १३६, २१८, २६९ (-विजय) २७३ (-लूट खुरासानमें), ४१९, ४८४
अरबया—१४९ (अरब)
अरबी—३०९-११ (में अनुवाद)
अरबेला—१५६ (मेसोपोतामिया)
अरमन—४२१
अरमेनिया—१४७, १४९, ३०४
अरसलन—२४६ (असाला)
अरसलन—३४८ (करलुकखान), ४६५
अरसलन—३८४ (दाऊद-पुत्र कराखानी)
अरसलन—३२९-३० (कराखानी), ३८८ (महमूद तगिन कराखानी ९)
अरसलन, अल्प—३८४ (सल्जूकी)
अराल सागर—५, ६, ३५, १२८, १३४, १५८, २३३, ४४१, ४८७
अरालपैगंबर—४१४ (वक्षुका द्वीप)
अरमिज—१६५
अरिया—१७८ (हिरात)
अरिस्तातिल—१५५, ३६५, ३६६
अरिस्तोफ—१०२ (इतिहासकार)
"अरूजे समरकन्द,,—३८६ (निजामीकी पुस्तक)
अर्तक्षथ—१५४, १५५, (३), १६४(४), १७४
अर्तवान् (पार्थिय)—१७०, १७३
अर्दवील—४७३
"अर्थशास्त्र"—३९२ (कौटिल्य)
अर्धदासता—४७
अर्मनी—१३०
अशोक—१०२' १७०(१, २)
अलकसान्द्र पर्वत—४८०
अलसन्दा—१५६, १८१ (अलेकसंदरिया)
अलाक नोयन—४७० (मंगोल सेनापति), ४७१
अलाताउ—२५१ (पर्वत)
अलान—१३८, १३९, २३२, ४८५ (शक-वंशज)
अलिकसंदरिया—१५६ अलसंदा)
अलिकसुंदर—१५४, १४८ (सिकन्दर), १६१, १६४-१६७, १७१, १७५, १७८, १८२, १८३
अलिकसुंदर (२)—१६७
अली—२६०, २६२ (खलीफा)
अली—३१५ (ताहिरी)
अली ईसा-पुत्र—३०७ (राज्यपाल)
अलीतगिन—४१०, ४१८ (अन्तर्वेदपति)
अलेक्सान्द्रगिरि—१३२ (अलक्सांद्र पर्वत)
अल्तमश—४४४, ४८२, ४८९, (अल्ततमश)
अल्तमीरा—२५ (स्पेन में)

अल्ताई—५ (सुवर्ण पर्वत), ६, ५६, ५७, ६१, ६४ ७५ (-शक), ७६, ७९, १०५, १०७ (अल्तुनइश) ११०, १७१, १८४, २४८, ४१७
अल्ताइ ताग—१३०
अलतूनताश—४०३, ४१०, ४११ (ख्वारेज्मशाह) ४४०
अल्प अरसलन—३८४ (सल्जूकी), ४१८, ४२१-२२
अल्पकारा—४४५
अल्पतगिन (ख्वारेज्मी)—३९५, ३९६, ३९८, ४०५
अल्पतगिन (गजनवी)—३३६-६७, ३७४, ३७८, ३९३
अल्पतगिन (बुखारी)—३९८, ४२७, ४३२
अल्पदरक—४४७
अल्बेरूनी—२८३, ३६८ (देखो बेरूनी भी
अल्मालिक—३५७ (सप्तनदे)
अल्लाफ—३११ (मोतजली)
अवहरशहर—२८० (नेशापोर)
अवार—१०४-६ (वंश), ११७ (जूजेन), १२६, १३८ ३३५ (ज्वेन्-ज्वेन)
अवावद—२८० (नगर)
अवेस्ता—६५, १५१ (पुस्तक)
अव्सकूम—४७
अशगान—२३ (हुशिकान)
अशिनाशिन—१२९, १३५ (प०तुर्क खान)
अशियार—४९० (गर्जिस्तान)
अशुर—४७३
अशेननिशी—११९-१३९ (पू०तुर्कवंश)
अशोक—८७ (राजा) १४३, १४९, १६९
अश्योल (मानव)—१२, २३
अश्योल । प्राग्—१२ (मानव)
अश्विनी—१८५
"अष्टांगहृदय"—६८
असद कसरो—२९० (राज्यपाल), ३६१
असरस—२८७ (अब्दुल्ला-पुत्र)
असला—२४६ (अरसलन)
असिना—२१८ (खेलू)
असिनासिन्—१२१ (पूर्वी तुर्क खाकान), २१८
असो—१०१
असीरिया—५७
आसिम—२८९ (अब्दुल्ला-पत्र राज्यपाल)
असोफ—१०१ (अजोफ़=अस सागर)
अहद—३६७ (नियुक्ति-पत्र), ३७३, ३९८ (शासन-पत्र)
अहमद—३८६ (कराखानीद)
अहमद—५०८ (गजनवी वजीर)
अहमद—३१५, ३६१, ३६४-६६ (सामानी)
अहाइ—४८८ (समरकंद-शासक)
अहुरमज्द—१४५, १४७, १५१ (भगवान्)
अह्रेमान—१५१ (अंग्रामेन्यु, शैतान)
आकूता—३४५ (किन्)
आगाखां—४५३
आगूज—२३१ (किपचक, कंकाली, करलुक), २३२ (का राजनीतिक नाम तुर्क) ३७९
आचो—२४२ (उइगुर खान)
आजमिश—२३८ (तुर्कखान)
आजी—२४८ (त्युगिश)
आजुर्बाइजान—१०४, १४१, ४१९, ४७३
आतुर्युक—२४५ ५६
आदिम मानव—२८ (मध्य एसिया में)
आन्साइ—२३१ (आलान)
आमिल—३७३ (करसंग्राहक)
आमिलखराज—३६२ (कर संग्राहक)
आमू—८, १३५ (वक्षु नदी), १३८, २१९
आमूय—४२९ (आमूल)
आमूर—१७८ (नदी)
आमूल—२७५ (चारजूय), ३६४, ३७०, ३७२, ४०२, ४०३, ४२९ (आमूय)
आरियन—१६१ (हिरात)
आर्य—५३, ६४
आर्यद्वीप—६४, १४४
आर्यान वेइजा—६४
आर्यू—१७१ (हरीरूद), १७३
आलान—१०१, १६० (ख्वारेज्ममें), २३१ (आन्साइ)
आलाशान—२४६
आसीक्वित—२५० (नमंगान)
आसीव—४१४
आस्ट्रिया—६
आस्ट्रेलायित—२४
आस्ट्रेलियन—२६ (मूल)
आहूपोश—४२८, ४४१ (दर्वेश)
इखवतन—३६९ (अखवतन, हमदान)
इखशीद—२८१, ३०० (फरगानापति)
इंग्लैंड—९
इचिमी—१०२, १०३ (वूसुन्-राजा)
इचिसे—८१, ८७ (हूण)
इज्जुद्दीन तुगरल—४५६ (ख्वारेज्मी)
इत्तिल—२३२ (वोल्गा)
इदरीसी—४१९ (इतिहास-कार)
इदिकुत—३५१ (उइगर राजा) ४६५
इदिकू—३४८ (उइगुर राजा)
इनालचिक—४६४ (ख्वारेज्मी अफसर)
इर्ची—८४ (हूण)
इन्दोचीन—१३७
इन्दोनेसिया—२६
इब्नुल-असीर—३५०, ४५२ (इतिहासकार)

इब्न-मुजाहिम—२९१ (सुलु, अबूमुजाहिम भी)
इब्नफ़ज़लान—२३२, २३३ (इतिहासकार ९२२ ई०)
इब्नखल्दून—२३३ (इतिहास-कार)
इब्नसबा—२९३ (हसन, इस्माईली)
इब्नहौकल—२२३ (भूगोलज्ञ)
इबी तुलू—१२९, १३४ (प० तुर्क खान)
इबी शबोलो—१२९, १३४ (प०तुर्क खान)
इब्राहीम—३३१ (कराखानी), ३८३
इब्राहीम (गजनवी)—४१५
इरगिज—३५८ (नदी)
इरतिल—१३९ (दन्यूब)
इराक—२७० (मेसोपोता-मिया)
इराक-अज्म—४४९
इर्तिश—२८ (नदी), ४६२ (तटे जूची), ४६५, ४८७, ४९०
इलाक—३७५
इलामिश—४५१
इलाल—४७६ (किला)
इलालगूमली—४७०
इलि—७, (नदी) ६१, ७९ (उपत्यका), ९८, १२०, १२६, १२९, १३५, ३५७, ४६५
इलिक नस्र—४०१, ४०२ (अन्तर्वेदका)
इलिक नस्र—३२९, (कराखानी) ३७२, ३८०
इलियट-स्मिथ—२१ (इति-हासकार)
इलियास—३६१ (सामानी)
इलिगुइलू—११२ (तुर्क)
इलअर्सलन—४२९, ४३१, (अत्सिज-पुत्र), ४३२, ४४२-४४ (ख्वारेज्मी ४)
इलखाकान—१०७ (इलखान)
इलखानी—३२५ (कराखानी)
इलतुर्कान—३४८
इलतेरेस—१२० (पू० तुर्क)
इविनिशू—११८ (तुर्क)
"इशारात"—३६९ (सीना की कृति), "संकेत)
इशिमी—२५५, २५८
इसहाक—३६७ (गजनवी अल्पतगिन-पुत्र)
इसिमी—१०८-१० (पू०तुर्क खान)
इसिबालिक—२४२ (उइगुर राजधानी)
इसुस—१५६
इस्केमो—२३
इस्तख्र—२५९
इस्पहान—२९४, ४२५ (नगर) (अस्पहान भी)
इस्पाहबद—२७९ (बलख-राजा), ३६३ (कबूदजामा)
इस्फराइनी—४०६ (गजनवी वजीर)
इस्फारा—२८६
इस्फिजाब—२३२, ३१५, ३२६, ३५५, ३७४, ३७५, ३७७, ४०८, ४५२ (सिरसे उत्तर)
इस्फिइयाब—२१९ (पाइ-शुङ-शो ?)
इस्पाहबद—३६३ (कबूदजामा)
इस्फिजाब—२३२, ३५५, ३७४, ३७५, ३७७, ४०९, ४५२ (सिरसे उत्तर)
इस्माईल—३१९, ३६२-६४ (सामानी), ३६९, ३५४
इस्माईली—४५३
इस्लाम—१२८, १४३, २५६, २६९, २७९, २८४, २९२, (के सिद्धांत), ३३३ (करा-खानियों में), ४९२
इस्सिककुल—५६, ७३, ७९, ८८, ९८, १३०, १३२, १७२, २३४, २४९, (सरो-वर)
ईचुङ—२४५ (थाङ)
ईजान्या—१०९, १२६ (पू० तुर्क)
ईरान—६, ६४, १३१, १३५
ईरानी—७९, १४३, १६१ (-धर्म)
उइकला—१६०
उइगुर—११६ (कबीला), ११७, १२१, १२३, १२६, २३२, २३३, (-लिपि), २३३-४६ (वंश), २३३ (नैमन कङली-किपचक, कियत-कुंग्रद, नोखुंस-मंगित, २४२ (राजधानी इसिबालिक), २४३ (कराखोजा), २८३, ३७९, ४६१ (बखशी), ४६२ (से मंगोल-लिपि), ४८७, ४९० (अमीर)
उइशान—२३० (कुषाण)
उइसुन—१०४ (वूसुन)
उक्रइन—४८५
उगइ—१३७ (यूची, तुर्क)
उगुतइ—४७८ (देखो उगुतय भी)
उगुतय—४६८, ४९१
उचाङफू—२४६ (नगर)
उच्च—४३४ (राज्य, भारत)
उजगन्द—२५१ (उज़गेंद), ३५५, ३७१, ३७३, ३८७, ३९०, ४००, ४०५, ४१३, ४७०
उज्जैन—१७६
उज्बेक—१४४
उज्बेकिस्तान—६, ११, ५६, १७१, १५८, १७१
उजलागशाह—४७६, ४७७, ४७८ (ख्वारेज्मी)
उतरार—३२८ (फाराब), ४३३, ४५०, ४६६, ४६७, ४६९, ४८९
उत्तरापथ—५६ (कजाक-स्तान), ६१, ६२, ७१-१६९, १००, ३२३, ३८३, (तुर्कभूमि), ३२४-३५८, ३५७
उतब्रशी—३१७ (अलीवंश)

उपनिषद्—१४४
उबैदुल्ला जियाद-पुत्र—२७० (राज्यपाल)
उमर—२५९ (खलीफा), २८५ (उमैया)
उमैया—१३५ (वंश), २५६, २६४-८०, २६५ (खलीफा-सूचि), २६५-६० (उमैया राज्यपाल)
उरगंज—२३२ (गुरगंज), ४९१, (कुन्या-)
उरगा—२३३ (उलानबातुर)
उरसुला—१०० (नदी)
उरात्युबे—२२० (उश्रूसना)
उरानियान—४४७
उराल—९, ६१ १४८
उरुमची—१०६, १२२, (पीतिङ), १२५, २३७ (उइगुर भूमि में), २४२, २३३
उर्त—११९ (ओर्दू)
उर्दूबालिक—२३३
उर्म—११ (हिमसंधि)
उलगान—७५ (नदी)
उलानबातुर—२३३ (उरगा), ४९२
उलुकूखातून—३५७ (वुज़ार-कन्या, चिंगिस-रानी) ४६५
उवरज्मिया—१५० (ख्वारेज्म)
उवारेज्म—१६१ (ख्वारेज्म)
उश्रूसना—२२०, २३२, २९०, २९१, ३० (—राजा खरा-खरह), ३०८, ३०९ (उरा-त्यूबे जिला), ३१५, ३६१
उषा—४ (एओसेन्), ५
उषा। अति—८, (होलेसेन)
उषा। अधि-,—४ (प्लिओसेन्) ५
उषा। अभि—११ (प्लस्तोसेन्)
उषा। इव-,—१४ (भारतमें)
उषा। मध्य-,—४ (मिओसेन्) ५,८
उषा। लघु—४ (ओलिगोसेन्), ५
उस्तउर्त—२३२
उस्तादसीं—३०४ (विद्रोह)
उस्मान—२६१-६२ (खलीफा)
उस्मान—३५२, ३५४, ३५६, ४३८, ४५१, ४५२, (समर-कन्द शासक)
उसमानली—२३१ (किपचक, आगूज), ४१७ (तुर्की के तुर्क)
उस्तएरबा—६१
ऊमुज—२४४ (उइगुर सरदार)
ऊवजा—१४९ (एलम्)
ऋग्वेद—३९, ६७, १४४, १५१, १८४
उक्रतिद—१६८, १७८-१७९ (बाख्तरी), १७७, १८१
एउक्रतिदेइया—१७८
एउतिदिम—१८३ (एउथि-दिम)
एउथिदिम—१६९, १७०, १७१-७३ (बाख्तरी), १८३ (एउतिदिम)
एउथिदिम (२)—१७५
एक्सर्त—१४६ (सिर नदी, यक्सर्त भी)
एगुइंबी—४५९ (द्वारपाल)
एनेसेइ—२५० (नदी), येनेसेइ भी)
स्पारची—१८२ (जिला)
एपिस्तल—१८२ (मजिस्ट्रेट)
एफताल—१७३ (हेफताल)
एमिल—१२८, ३४८, ४७६
एम्बा—२३२ (नदी)
एल—१२७ (कबीला)
एलखान—१०७
एल्बे—२६ (नदी)
एसिया—१२२
एस्किमो—२०, २४ (कपिल-) ३४
एतुद्दौला—३८६
ऐमक—१३४
ऐरयानम् वेइजा—१४४
ओके—२४४ (उइगुर खान)
ओगल ईनच—४६७
ओगुताइ—३४८
ओचिर—१३५
ओजमिशि—१०९, १२६ (पू० तुर्क राजा)
ओडोनोवन—२७१ (पर्यटक)
ओनेयन—२४४ (उइगरखान)
ओपिस—१६७ (बगदाद)
ओब्—८ (नदी)
ओरखोन (नदी)—२३४, २४८, ३२५, ३३३
ओरनो—१६४ (गोरी या खुल्म)
ओराङ ऊतान्—२९
ओरिन्यक—१२, २०, २२
ओर्दाविचियन—५
ओर्दुस्—८१, ११४, १२३, १२४, ४९२
ओर्दू—८० (उर्दू)
ओश्रूसना—२२० (उश्रूसना भी)
ओसेती—१०१, (ओस्सेती), १६०
औलियाअता—११०, २१९, २५०, ३६३
कंकाली—१०६ (तिङ-लिङ, तिकालिक), २३१ आगूज़ा, का बायतुर)
कगान—१०४, १२७, २४२ (खान, राजा)
कंग—९८, ९९ (कंक), १००, १३८, १३९, १५८-६३ (ख्वारेज्ममें), १६० (आदिम-), १६१ (कंग-कुषाण), १७०, १८५
कङली—१०१
कंचाउ—२४६
कजली—४५१ (नेशापोर राज्यपाल)
कजवीन—४७२, ४७३
कजाक—१३८, १४४, २३१ (किपचक आगूज़)
कजाकस्तान—६, ५६, १०१, १३८, १७१

कतखुदा—३७६ (भूमिपति, तालुकदार)
कत्पतुक—१४९
लतवान—३४८, ४२७, ४२८, ४४१
कतापुल्त—४७७, ४८६
कत्तकुर्गन—२८
कनिष्क—१०३, १८४, १९१-२०० (कुषाणराजा), २०७
कन्धार—१६४
कन्नौज—४३५, ४३७, ४४८
कन्स्तन्तिनोपोल—४१९
कपादोकिया—१७१
कपिशा—१७२, १७४, १७५, १७९, १८०, १८१ (कोह-दामन), १८४
कफराज बुगरा—४६४ (चिंगिस दूत)
कबावियान—४०२, ४०५, ४०९
कब्र—६८
कम्बुज—१४७ (अखामनी)
कयालिक—३५०, ३५६ (करलुक राजधानी) ४६५
करलुक—२३२, २३७, २४२ (करलुग), २४३, २४६, २४८-५१ (वंश, कर-लुक-हिमपुरा), ३०६ (ताकुज-आगुज), ३०८ (कैयबगू), ३२६, ३४८, ३५४, ३८९, ४६८ (करलोक, करलोग)
करलोक—११९, १२८, १३३, १३५ (गोलोलू), १३७
कराइत—४५८ (वाङ-खान), ४६०, ४६१
कराउल—४६० (पहरा)
कराकुम्—६ (काला मरु), ८, २८, ३५, १५८, १६०
कराकुरम—७३ (कराकोरम)
कराकुल—२५० (डांडा)
कराकोरम्—८९ (मंगोलिया), २३३, ३२८ (नगर) ४७० (किपचकोंका)
कराकोल—९८ (कराकुल भी)
कराखानी—२४६, ३२५-३३ (इलाखानी, वंश), ३६८, ३७९-९० (खान, सिक्के), ४००, ४०१, ४४३
कराखिताई—३२९, ३३३, ३४७-५८ (वंश), ४२८, ४३७, ४४८, ४५०
कराखोजा—२४२ (उइगुर राजधानी), ३५१
करागंदा—६१
कराज—३७३ (भूगर्भी नहर)
कराजा—४६९ (हाजिब)
कराजानोयन—४८४ (मंगोल सेनापति)
कराजुरिन—२२६
करातीउ—३५
करावुदुन—१२७ (जनसाधारण)
करावुलक—२५०
कराशर—१२८ (हराशर), १३१ (अकिनी), १३६ (सूजरा), २४५
करासूक—६१ (सप्तनदकी संस्कृति) ४३६ (करासू)
कराहोजा—१३० (करा खोजा)
कर्बनभक्षीय—५ (जंतु)
कर्बला—२६२-६३, २९५, २९८
कर्मा—४३२ (कराखिताई जामाता), ४४२, ४४९
कर्मीना—२२० (होहान्)
कर्मीनिया—३७६
कलगन—१२२, ३३६ (नगर)
कलोन—२४५ (तिब्बती राज्य-पाल)
कल्प, अजीव—३ (अजोइक), ५
कल्प, चतुर्थ—६
कल्प, जीव—३ (जोइक), ५ (जीवक०)
कल्प, तृतीय—५, ७, ८
कल्प, नवजीवक—३ (किनोजोइक), १२
कवाव—३०५
कश्क—२८७ (उपत्यका)
कश्ककुशान—२९५ (बुखारा में कश्कमगान)
कश्मीर—१७५
कस्तिक—२५१ (कास्तिक-डांडा)
कस्पियन (समुद्र)—५-८, १३०, १३९, १६४, २१६, २१८, २३२, २७७
कहतबा—२९४ (अब्बासी सेनापति)
काइन—४७९ (स्थान)
काइफोङ—४८६
काउच्—३३८
काउतु—२३८ (दंडवत्)
काउतउ—१०४ (कंकाली), १०६
काउसाङ्—२४२ (उइगुर खान)
काकेशस—५
काजिउल्कुज्जात—३७५
कातूशाङ्फू—३४६
कातून—१२७ (खातून, रानी)
काजना—७५ (नदी)
काथि—४०२ (नगर)
कादिर—३७१ (अब्बासी खलीफा)
कादिरखान (कराखानी)—३२९-३०, ३३३ (जिब्राईल ८), ३८७, ४०४, ४२५
कादिरखान—३५२ (किपचक)
काना—३११ (-सिक्के)
कान्सू—१२२
कान्स्तान्तिनोपोल—४२३
काबुल—१३०, १६४, १६८, ३०४, ३९५, ४९०
कायम—३८४, ४१९ (अब्बासी खलीफा)
कारुन—४७२, ४७३ (किला)
कार्नवाल—६०
कार्पाथीय—१८४
कार्पीनी—(प्लानो)—१०१, ४५७, ४७२, ४७३, ४९६
काली—१८३
कालाभंडा—२८९ (अब्बासी)
कालासागर—६-८
कालिंजर—३९२
कालिफ—४७१ (वक्षुतटे)

कालिदया—५७
कावक—४१८ (सल्जूकी)
कावूस—३१४, ३१५ (उश्रूसना-राजा)
काशगर—८९, १२८, १३४, १३५, १३६, १३८, २४६, २८२, ३२८, ३२९, ३४८, ३५२, ३५७, ३८६, ४००, ४२१, ४४३, ४६५
काशान—२८२, ३१५, ३५५, ३८७ (कसान), ४५१ (सिरसे उत्तर)
काशी—४३७
कासन्ना—१३२ (देश
कासान—३८७ (देखो) काशान भी)
कास्तेक—११०, २४९, २५१
किगित—११० (मुयूखान)
किजिलकिया—२५१ (डांडा)
किजिलकुम—(लालमरु), ८, २८, ३५, १५८, ४६७
किजिलसू—१०२ (लोहित नदी)
"किताबुल् कूनिया"—३१६
कित्तन—८० (खिताई)
किन्—३४४ (वंश)
किन्चाउ-फू—३४५
किंदी—३२२ (दार्शनिक)
किन्नर—५३ (कनौर)
किपचक—१३९ (भूमि), २३१ (आगूजों के वंशधर): सेल्जूक, तुर्कमान, उस्मानली, (कजाक), २३३ (उइगुर), २८६, ३५४, ३४८ (कंगली), ३८८ (-भूमि), ४५२, (-मरू) ४७० ४८५
किबितक—३४८ (तंबू, परिवार)
किबिर—१३७, १३८ (तुर्क, चिपियू)
किमाक—२३२ (तुर्क)
किमाज—३५८ (नदी)
किमेरिय—२३१ (का वास्फोर, केर्च)
कियत—२३३ (उइगुर)
किरगिज—८०, ११७, १३५-१३७, १३८, १४४, २३३, २३४ (चिरेक, तेरेक)
किरगिजिस्तान—५६, १७१, २४९ (किर्गिज०)
किरमिन कित—२५०
किरा—७ (नदी)
किलिच—१०८ (खिलिज, कुइलुइचुइ), ३८९ (कराखानी खान) ११, ४२९ (अत्सिज-पुत्र)
किश—३०५, ३२९, ३६५, ४३६, ४४४, ४७४
कीथ, अर्थर—२५
कीमिया—३१०
कुइलुइचुइ—१०८ (किलिच, खिलिच)
कुक—१३७ (तुर्क)
कुंकिर्त—२३४ (उइगुर)
कुंग्रद—२३३ (उइगुर)
कुङ—१२१ (ड्यूक, महाराज)
कुचुलुक—३५१ (नैमन), ३५३-५५, ४३३ (गुचुलुक कराखिताई खान), ४५०, ४६५
कुजुल—१९६-१८७ (कदफिस)
कुतुकूनोयन—४८० (मंगोल सेनापति)
कुतुबुद्दीन (ऐबक)—३३१, ४३५, ४३७, ४३८, ४४४
कुतुबुद्दीन—४४०, ४४१, ४५५ (ख्वारेज्म शाह २)
कुतुला—४५८ (कगान)
कुतुलिग—२३७ (बिगा, उइगुर)
कुतुलुक—१२०, (गुदुलु), १२६
" देले—११५
कुतुलुकबालिक—४६७ (सौभाग्यनगर, जरनुक)
कुतुलुग—२४२ (कुतुलुक, उइगुर-खान)
कुतलू—८३ (हूण), ४६७ (इख्तियारुद्दीन)
कुतैब—(१३५, २६९, २७३-८१ (अरब राज्यपाल), २८४ (अत्याचारी)
"कुदत्कुबिलिक"—३३३, (बोगरा खानकी कृति), ३८३ (प्रथम तुर्की काव्य, कवि बलाशूनका)
कुनार—१७५
कुनोक-घेई—३३४
कुन्दुज—२२२ (हुओ)
कुबरा—४५४ (शेख नजीमुद्दीन तुकनिब्रातूनका यार)
कुबरी—५४५ (सूफ़ी संप्रदाय)
कुबिले नोयन—३५६ (हुबिले०), ४५१
कुम—२९४ (स्थान)
कुमवसन कला—१६०
कुमाउ—६८
कुमोल—२२२, ४१५
कुमजी—४११-१३ (कुमूज़ीभी)
कुमुक खेली—११८
कुमूजी—४११, ४१२ (पहाड़ी)
कुम्हार—४०
कुरव—१४४ (कीरोश) १४५-४६ (अखामनी), १५८, १६०
कुरवपुरी—१६५ (किरोपोली)
कुरसूर—२९० (तुर्क)
कुरा—२७७ (नदी)
कुरान—२७३
कुरुल्ताई—४९०
कुरेश—२५५
कुर्द—४५४
कुलजा—९२, १३० १३१, २१६, २४९, ३५५, ४५२ (वुजार खान), ४८७
कुलान्—१२१, १३५, ३०८, (तरती स्टेशन के पास) ३२५ (लुगोवया)
कुलाब—४७१

कुशतगिन—४९४ (ख्वारेज्मी सेनापति)
कुशानिया—२२० (कुशोङ्-हिका)
कुषाण—१०३, १३०, १६१, १७३, १७५, १८५ (–कला), १९५-२१५ (वंश), २१६, २१९ (उइशान), २२२ (काउशाङ्) ४१०
कुसुमध्वज—१७६ (पाटलिपुत्र)
कुस्ता—३१० (अनुवादक)
कूचा—९७, १२८, १३१ (कूची), १३६, २३२, २५१
कूफा—२९३, २९७ (राजधानी), ३०४
कूमिश—१०९
कूयेत्ना—२२२
कूशे अरब—४७८ (ख्वारेज्ममें प्रासाद)
कूहे दरोगान—४७६, ४७७ (अली, सेनापति)
कृषि—३७
केदारनाथ—३८
केन्तम्—६५ (भाषा), ६६
केम्बवुर्ल—४५९ (रात के पहरी मंगोल)
केम्ब्रियन—५
केम्ब्रियन, प्राक्—३, ५
करमीना—३४९ (उज्बेकिस्तान)
केरा—१२५ (चीला नदी)
केरलोन—११६ (नदी), ११७
केर्व—२३२ (बिमोरियों का बासोर)
केल्ट—२५, ६५
केल्तमीनार—५८ (संस्कृति), १५८, १५९, (ख्वारेज्ममें द्रविड़ संस्कृति), १६०
केश—२२१ (काइवाङना), २७९, २८१, २८२, ३०१ (शहेसब्ज)
केशिक—४५९ (मंगोल प्रतिहार)
कैली—३५८ (नदी)
कैस—२६७ (हेसान-पुत्र राज्यपाल)
कोइलूक—६१
कोक्चा—२२४ (नदी)
कोकसराय—४६८, ४६९
कोकोनोर—८२, ८७, २४५, २४६
कोखोता—४७० (मंगोल कबीला)
कोचकोर—५८
कोरिया—१०५, १११, १२२, ४८६
कोरोश—८२, १४४, (देखो कुरव भी)
कोलो—१०८ (बुद्ध)
कोबू—८५
कोहिस्तान—२७०, ३७० (ताजिकिस्तान)
कौवुङ—१२२ (थाङ)
कौटिल्य—३९२
कौसियन चाउ—३० (थाङ सेनापति)
कौसुङ—११९ (थाङ सम्राट्)
कौसू—१४० (सेनापति)
क्याङ—३९, ४०
क्युली—१३३, १३४ (प० तुर्क राजा)
क्यूली—२३८ (कुतुलुग, बिलगा)
क्युलतेगिन्—११९ (पू० तुर्क), १२३, १२४
क्रिमिया—१०४, ४८५
क्रेतासस्—५
क्रोमेञो—२० (मानव)
क्लेइत—१६७ (सेनापति)
क्लेमेन्त अलेक्सान्दरीय—१८४
क्वान् वान्—१०२-३ (वूसुन राजा)
क्वेन्लुन्—६
क्वोर्जा—२३७ (सेनापति)
क्षुद्र एसिया—१५५, ४१९
क्षत्रप—१४७, १४८
क्षत्रपी—१८२
क्षयार्श—१५१-१५४ (अखामनी), १५४ (२)
खजार—१३०, १३९, २१६, २३२
खबुर—१४९ (दजला नदी)
खरकान—४८४ (खुरासान)
खरजंग—३८५ (गाँव)
खराखरू—३०७ (उश्रूसना-राजा)
खरोष्ठी—१७५ (लिपि)
खलज खै—३७०, ३९६
खलजी—१२८ (वंश)
खलीफा—२६७ (अरब-, तुलनात्मक), २३७, २९२, ३९६
खस—६८ (समाधियां), ७३, ७४, ८६ (-कश, खश)
खाकान—११२ (युनख)
खाचाउ—२३६, २४४ (तुर्क मूलस्थान), २४५ (कां-तेले), ३४२
खाजार—३२७, २८७, ३०४ (-समुद्र), (खजार)
खाजिम—३०४ (अब्बासी सेनापति)
खातून—१०७ (रानी), १२५, २२७, २७० (बुखारा-रानी) ३३२ (कातून)
खानखाना—१०७
खान्चान्—२४६
खामजर्द—२८१ (ख्वारेज्मी)
खारजी—२९१, २९३, ३१८, ३६३, ३६८ (वातिनी) ३६९ (खारिजी)
खालिद—२५९ (अरब सेना)
खालिद कसरी—२८७ (क्षत्रप)
खारवेल—१७५
खिजिर—१३९ (समुद्र)
खिज्रखान—३२६ (कराखानी)
खिताई—८० (खित्तन, खित्तन), ११७, ११८, १२१, १२५

खितन—२३४, २४३, २४६, ३२९, ३३४-४६ (वंश), ३३५ (-राजा), ३४३ (जातियां—चेई, शिरवी, नूचेन्, बोत्स्फाई), ३४४
खिलजी—२१८
खीवगी—४६६, ४७५ (शहाबुद्दीन-)
खीवा—२७२
खुजिस्तान—४४८
खुत्तल—२२२ (कोतुलो), २९०, ३०१, (-खुदात्), ३६८, ३७५, ३७६ (बहराम वंशज), ३७७, ३८०, ३८४, ४०२, ४०५, ४१३, ४४३
खुमारतगिन—४७७ (ख्वारेज्म)
खुरासान—५७, ६०, १५१, १६४, २७०, २७२, ३६३, ३९४, ३९९, ४०१
खुरासान-राज्यपाल—२८६ (वही अन्तर्वेद के भी)
खुल्म—१६४, २२२ (हुरुमो), २७०, २८०
खुस्रो—१३० (ईरानी), ४८२ (देहलवी)
खुस्रो पर्वेज— २१८
खुतुकबुवात—२७८
खूनबून—२७८ (म्यान)
खुलैद (अब्दुल्ला-पुत्र)—२६७ (राज्यपाल), २७०
खेलबाशी—३७४ (विभाग-कमांडर)
खेली—१०९, ११५ (पू० तुर्क राजा), ११८ (चेई)
खेलू—१३४ (शेगुइ)
खैबर—१७५, २६३ (दर्रा)
खैयाती—४७८ (ख्वारेज्मी मुहतसिब)
खैय्याम (कवि)—२९२, ४२३
खोकन्द—८९, २३१
खोजन्द—१६५ (लेनिनाबाद), २३२, २८२, २८६, २८७, ३३२, ३८५ ४७०
खोतन—१३४, १३६, १३८, ३२८, ३३२, ३५३
खोरजाद—२८१ (ख्वारेज्मी)
खोहोतुन्—१०७ (खातून)
ख्वारेज्म—५८ (में ताम्रयुग), (में केत्तमीनार, ताजा-बागयाब, अमीराबाद अङ्का कला, तेशिकला, अमीराबाद, पित्तलयुगकी, संस्कृतियां) ६६, ७३, १३५, १४४, १४७, १४० (उवरज्मिया), १५२-६३ (प्रागैतिहासिक कालसे ईसवी पांचवीं सदी तक), १८५, २३३, २६२, २८१ (—राजा चिगान), ३२५ (-शाह), ३४९ (—शाह अत्सिज), ३५२-५३ (—शाह चिंगससे लड़ा), ३७५अ-७७, ३८६, ३९४ (वंश), ४३९-४८ (वंश), ४५४ (—शासन-व्यवस्था), ४६५, ४८८
ख्वारेज्म—५८ (की संस्कृतियां)
ख्वारेज्मिया—२२१ (हो-लि-सि-मि-का)
गंगा—६४
गज—२२३ (काशी)
गजनवी—१२८ (महमूद), १६२, ३६८, ३९२-४०० (वंश)
गजना—३६७ (अल्पतगिन, सुबुकतगिन), ४८१ (गज़नी भी)
गजनी—३९५, ४६६, ४८०
गजाली—४२३-२४ (दार्शनिक)
गंजा—३७४ (एलिजाबेत पोल)
गंधार—१५० (गंधार, पेशावर तक्षशिला) १६७, १७४, १७५, १८०, १८१ (खैबरसे जेहलम)
गंधारकला—१८३
गयासुद्दीन (गोरी)— ४३३, ४३४-३६, ४३८ (गोरी ३) ४४४, ४४९
गरलोक—१३५ (करलोक, गोलोलू), २३१ (आगूज, करलोक भी)
"गर्गसंहिता"—१७६
गर्जिस्तान—३७५ (ऊपरी मुर्गाब), ४३३, ४९० (में आशिभार)
गर्देजी—३७२ (इतिहासकार)
गस्सान—३६१ (राज्यपाल)
गाय—६५, १३९
गिजिया—२४३ (उइगुर शाद)
गितरिफ—३११ (सिक्के)
गिल्गत—७३
गुजखाल—४८१ (हिंदुकुश-मार्ग)
गुंज—११ (हिम-संधि)
गुजरात—१८२, ४३४
गुजार—३८०
गुदुलुग—२४२-४३ (-जिगित, उइगुर खान)
गुदुलू—१०९, १२० (पू० तुर्क राजा), १२३, १२४
गुनमो—१०२ (वुसुन राजा)
गुप्तकाल—१५०
गुरखान—३४८ (येलू), ३५१ (कराखिताई)
गुरगंज—२३३ (उरगंच), ४५१ (गुरगांच), ४९३ (गुरगंच)
गुरिल्ला—२९
गुर्ज जमीन—३८५ (कार-जर्मीन)
गुर्जी—२३२ (जार्जिया), ४७३, ४८५
गुलाम—१२८ (-वंश), ३३१, ३७३-७४ (शिक्षा)
गुसेर—१३७ (तुर्क)
गुस्तास्प—१५१ (विस्तास्प)
गूज—२३१, ४६८ (देखो आगूज भी)

गूजक—२८१ (सोग्द तरखून)
गूजगान—३६८, ३७५ (राजा फरीगून), ४३३ (के फरीगून)
गूरक—२८६ (देखो गोरक भी)
गूरगंज—२३२, ३७५, ४०२, ४३६, ४८७, ४९१
गूरगंजी—३६७, ३६८ (अमीर ..मामन), ४७२ (रुकनुद्दीन)
गूरगांच—४७५, ४७७ (गूरगंज), ४८६
गेदरोसिया—१७९
गेतोआ—४९५
गोबालिग—३५७ (स-नगर, बलाशगून)
गोरो—१०४, १०६, १२१, २३४, ४४३
गोमाता—१४७
गोरक—२७१, २७८ (सोग्द तरखन), २७९ (गूरक भी), २८२, २८६
गोरी—१६४, ४३३-३८, ४३३ (देश, गूर), ४४९ (शहाबुद्दीन), ४५३, ४५५, ४६१, ४७५
ग्युन्-चगुङमी—१०२ (वूसुन राजा)
ग्रिमाल्डी—२०-२१ (मानव)
ग्रीक—२५, ६५, ७९, १४३, ४७५ (दार्शनिक)
ग्रीकबाख्तरी—६५, ८७ (ग्रीको-बाख्तरी), १६४-८५ (वंश) १८५ (-कला)
ग्रीनलैंड २६, ३४
ग्रीस—१४७, १५१
ग्वालियर—२१६
घेई—११८, १२२ (खेली), १२४ (मंचूरिया), १३७ (तुर्क), २४४
घेरेका—१०८, ३३६
घोरन्—१०८ (घोडा)
चकमक—४१ (फ्लिंट)
चंगेज खान—६८ (देखो चिंगिस)
चन् चुन्—१२२
चन्दोर—४३५
चंद्रगुप्त—१६८, १७३ (मौर्य) १७५
चन्-गो—३०८ (तिब्बती सम्राट्, ल्ह-चन्-पो=देवभट्टारक)
चर्मपत्र—४६, ८५, १६२ (ख्वारेज्म)
चाउ—३३४ (वंश), २४२
चाउवुन—९२, ९३ (प्रभावती)
चाङ क्यान्—६६, ८७, ८८, ९८, ९९, १०२, १११, १७३, १८१
चाङ-क्वाङ-सेङ—२४०
चाङ चुङ—४६१
चाङ चुन्—४८७-८९ (यात्रा) ४९०
चाङथाइ —३४६
चाच—१२८, १२९ (ताशकन्द)
चादिर—४१८ (सल्जूकी)
चान्-शोल—८२, ८८ (हूण)
चारसद्दा—१७५ (पुष्कलावती)
चार्लस—१४८
चिगान—२८१ (ख्वारेज्मका राजा)
चिंगिस—२३३, २३४, २४६, ३३४, ३४७, ३५१, ४३३, ४५०, ४६० (का अनुशासन) ४६१, (के दो तमगे=मुहरें), ४६२-६४ (का ख्वारेज्मसे झगडा), ४५७-६४ (खान), ४५८ (जन्म), ४५८ (के दस पदाधिकारी), ४९१ (आकृति) ४९२ (मृत्यु)
चिङ—४६१ (उइगुर ईसाई)
चिगू—१०२ (वसून राजधानी)
चिङ चुङ—३३७, ३४० (खित्तन)
चितराल—४३४
चिन्—२२, ३३४ (वंश)
चिन्-स्यान्-लेइ—४८६ (ज्वालानिक्षेत्र)
चिपांजी—२९
चिपियू—१३७ (किबिर, तुर्क)
चिमकन्द—२१९, २३२ (चिमकन्त भी, सिरतटे)
चिर्चिक—४९० (नदी)
चिली—३४७
चिवित—७५ (दर्रा)
ची—१११ (वंश)
चीउचू—९९ (हुण)
चीकाज—११७ (किर्गिज)
चीची—९०-९१ (हूण शान्यू)
चीन—६६, ६७, ७९, २४३ (-राजकुमारी), २४४ (-स्त्रियोंका पैर बांधना), ४२१
चीयू—८१, ८५ (हूण)
चीला-हो—१२५ (केरा नदी)
चीहूलि—८१
चुकुतियान्—१६ (का चीन मानव)
चुङ-लिङ—१३२ (मामीर, पलांडुगिरि), १३४
चुङलीमी—१०२, १०३ (वूसुन राजा)
चुलोकगान—१२८, १३० (प०तुर्क खान), २१६, २१८
चू—७ (नदी), १०, ६१ ६१, ९८, ११०, १२० १२६, १२८, १३२ (शूसे), १३४, १३५, १३८ २४२, २५१ (करलोक केंद्र), ३५०, ४८७
चूचेन्—८१, ८७ (हूण)
चुजुइबो—१३४
चू-नहर—६१
चूला—२३४ (खाकान)
चूला खेऊ—१२९
चूलो—११५ (तुर्क)
चेकोस्लावाकिया—६०
चेपे—४८५ (चिंगिस-सेनप; जेबे)

चेबी—१०९, ११९ (पू० तुर्क राजा)
चेंरतामलिक—८०
चेरबी—४५९ (मंगोल पद)
चेलुगू—३५० (कराखिताई)
चेसी—२१९
चोचाउ—३४६
चोल—२३२ (तुर्क)
चौहान—४३४
चोङ—९३ (तिब्बती)
च्याङ कुन्—९१
"च्यान् शान् शूकी—८८
च्वाङ चुङ—३३६
छाङ अन्—११५ (चीने), १२९ (राजधानी), २३६
छिन्—३४२ (वंश)
ज़करिया—२३३ (कज़वीनी)
जगतइ—४६२, ४६८, ४७८ (चिंगिस-पुत्र, चगतइ)
जगरोस—१४९ (पर्वत)
जंगबहादुर—११२ (नेपाल)
जंगी—४३७ (ताजुद्दीन)
जङचेङ—३४३
जन—५६ (कबीला)
जनयुग—५५
जन्द—२३३, ३२६ (नगर), ३५३, ४१४, ४३०, ४४०-४२, ४४५, ४४७, ४५२, ४७०
जन्दी—४६८ (इमाम जलालुद्दीन)
जबगू—२३२ (आगूजोंके खान)
जमुका—४६० (नैमन खान)
जयचंद—४३५ (गहडवार) ४४९
जरंगिया—१४९
जरनूक—४६७ (किला)
जरफशां—७ (नदी), १०, ६२ (सोग्द नदी), २१९, २८७, ३७१, ४६८
जर्थुस्त्र—१५१, १८४, ३०५
जर्थुस्त्री—१३३, २४९
जर्राह—२८५ (राज्यपाल)
जलवायु—४१
जलालुद्दीन—३५८ (ख्वारेज्मशाह), ४५३, ४६६, ४७१, ४७४, ४७८, ८२, ४८३ (पराजय)
जलालुद्दीन हसन—४५३ (इस्माईली)
जहांगीर—३१२ (मुगल)
जहोज—२६९ (इतिहासकार)
जाति-सम्मिश्रण—२५
जांबास कला—१५८ (ख्वारेज्म में), १५०, १६२
जाफर आशासी—३०७ (राज्यपाल)
जाफर बरमक—३०७ (राज्यपाल)
जारिअस्प—१६५ (हजारास्प, पैकन्द)
जार्जिया—२३२ (देखो गुर्जी)
जालेरी—४७१ (मंगोल यसाउर)
जावा—८, १४-१६ (-मानव)
जासी—२५१ (यासी)
जिकली—३८६-८७ (कराखानी कबीला)
जिकिल—२५० (करलुक), २५१ (-भूमि)
जिगाय—२७९ (तुषार-शासक)
जिगिन्—१०८ (तुर्क), १३१, २३४ (उइगुर राजा)
जिंगिस—१०७ (देखो चिंगिस)
जिन्दीक—३०५ (मज्दकी)
जिब्राल्टर—८, १७
जिब्रैल—३०४ (फरिश्ता)
जियाद—२४८ (अरब सेनापति), २६७ (राज्य-पाल) २९५ (खुजाई), २९६
जिलअरिक—२५०
जीजक—२३२, ३७२, ३७६
जीवक, नव—४,५
जीवक, पुरा—५
जीवक, मध्य—३ (मेसोज़ोइक), ४, ५
जुंगारिया—११७, २३४
जुजजान—२७९, २८१ (-पति)
जुनजान—४७३
जुनैद—२८८ (राज्यपाल)
जुरासिक—५
जुर्जान—२८५, २९४, ३६३
जुल्—२५० (-मरु, नगर, विशपकके पास), २५० (-दर्रा)
जुवैनी—३५० (इतिहासकार) ४२६, ४३६, ४३७
जूची—४६२ (चिंगिस ज्येष्ठ-पुत्र), ४६५ (का दामाद त्रुजार) ४६६, ४६९, ४७७, ४७८, ४८५, ४८७ पर पिता कुपित), ४९० ४९१ (-मृत्यु)
जूर्जा—१२० (तुर्क राजधानी)
जूजान—४७९
जूजुन—१०४ (अवार), ११७, १३८
जूजोन—११७ (अवार)
जूमिन—३३४
जूमेत्—१३०
जेउस—१८३ (देवता)
जेंगी—८३ (चंगीज, हूणशान्यू)
जेगू—१०८ (यबगू, राजकुमार)
जेड—२३३ (अकीक पत्थर)
जेबे नोयन—३५७ (चिंगिस सेनापति), ४६५
जेब्गू—११९ (यबगू), १२० (पू० तुर्क), १२९
जेहोल—३३५
जैहूं—२८७ (आमू, वक्षु), ३९४
जोइलू—१८१
जोशतगिन—४०८ (गजनवी सेनापति)
ज्वान्ज्वान्—१०४, १०६ (आवार)
टस्कनी—६०
ठी. दे. चन—३१० (तिब्बत सम्राट्)

ठी-दे चुग्तन—३१० (तिब्बत सम्राट्)
ठी. स्रोङ वेचन्—३१ (तिब्बत सम्राट्)
डुवेलडोर्फ—१७ (जर्मनी)
डेन्युब—६४ (-दुनाइ)
तुर्कुत्तान—३५८ (मंगित)
तकमक—२३१ (सलजूकका बाप)
तकलामकान—२८, १३८
तकाश—४४४-४८ (ख्वारेज्म ६), ४४८ (काना) ४४९, ४५०
तक्षशिला—१५०, १७५, १७८
तंगुत—२३३ (अम्दो), २४६, ३४१, ३४६, ३४८, ४६५, ४८९ (देखो हिया)
तनई—१८४ (यक्सर्त देवी)
तनाइ—१६५ (दोन नदी)
तन्ता—१८४ (-तनइ)
तन्नूर—४४
तफगाचखातून— ३५५, ४५२ (गुरखान-कन्या)
तबगाच—३३३ (-तमगाच खान, कराखानी)
तबावीस—३८७ (स्थान)
तबारिस्तान—२८४
तमगा—४६१ (मुहर)
तमगाच खान—३८३ (कराखानी ३), ३८९ (कराखानी १०), ४४५ (कराखानी)
तमरउत्कुल—२३२ (स्थान)
तमीम—२७८ (अरब कबीला)
तमोटा—५२ (टगटा)
तमोसितियेलि—२२२ (धर्मस्थिति २)
तरकन—१२७ (तरखन)
तरखून—२८६ (सोग्दी)
तर-काल—१३७ (तुर्क)
तरबगतई—८२, ९१, ११९ (प्रदेश) २४८ (त्युगिश, तरबती), ३४८ (खुबु चोक)
तरस—२१९, २४२ (उइगुरखान), ३२८
तराज—६१ (जंबुल), २४८, २५० (तलस, औलियाअता जिला), ३७७, ४३३, ४५०
तरावडी—४३४, ४३५
तरिम—७३ (उपत्यका) ९७, १०३, १११, १२६, १३८, २३२, २३९, (५२ तिब्बती) २४२, २८१, ३००, ३७९
तलस—१०, ५६, ६१, ९२ १२८, १३४, २४२ (नदी) २४९, ३३३, ४०९, ४८७
तलहा—३१४ (ताहिरी)
तश्तदार—४२४ (थालवाहक)
तस्पोन्—१६८, २८७, ३८५ (में ताकखुसरो, ० कसरा)
तस्मानिया—११, २६, ३१ (मूल-निवासी)
ताइचाउ—२४०
ताइचाउ— २३९, २४० (थाङ) ३३४, ३३६ (तूयरिक, खित्तनी), ३३८-३९ (कित्तनी)
ताइबु—२४४ (शहर), ३४०-४१ (शुङ)
ताइयुवान्—२४३ (शान्सी नगर)
ताइर बहादुर—४६७ (मंगोल
ताइव. खान—३५१ (नैमन खान)
ताइसी—४८८ (थैसी, दैसी)
ताइसुङ— ११५ (चीन-सम्राट्) ११६, ११८, ११९, २३४
ताइहूती—१०४ (तोबा)
ताई—४०३ (मुहम्मद, सेनापति)
ताउ—४८७
ताउक्री—१३० (मेसोपोतामिया)
ताउचु—३४३
ताउचुङती—३४४ (खित्तनी)
ताउचू—३४५
ताउवूती—९६ (चीन)
ताकखुसरो—३८५ (तस्पोनमें, ताक-कसरा)
ताकूज—२३३, ३२५, २३२ (-आगूज)
ताजा मीराबाद—१६० (ख्वारेज्म)
ताजाबागयाब—५८, ६१ (ख्वारेज्मकी संस्कृति), १५९ (प्रथम आर्य)
ताजिक—३९५ (अ-तुर्क), ४६८
ताजिकिस्तान—१७१
तातार—७९, २३७ (मत्स्यचर्मी), २४० (तुर्क), ४७१ (मगोल)
तातुङ—८४ (चीनमें नगर), १०४, ३४५
तान्शान्—३४३ (कोयला गिरि)
ताम्रयुग—१२, ५२-५९, १६०
तायङ खान—४३३ (नैमन खान) ४५०
तायन्कू—३५२ (कराखिताई सेनापति), ४५१
ताराज—३६३ (तराज, तलस)
तालकान—२७४ (तालिकान) २७८, २८० (नरसंहार), २८१, ४७१, ४८०, ४८१, ४८३
तालिकान—२७४
तालमी—१७१ (तुरमाय)
तालिङ—३३७ (नदी), ३४५
तालस्तोफ—५८ (प्रोफेसर)
ताश—३७४ (सेनप)
ताशकन्द—११०, १३१ (शीकू, चाच, शाश) २१९
ताशातुन—४६१ (नैमन मुद्राधर)
ताशीहाइ—१०३ (राजा)
ताहिया—१७० (पार्थिया, दई)
ताहिर—३०८ (अब्बासी सेनापति), ३१३ (राजा), ३१६

ताहिरी—२९७, ३०८, ३१३-१७ (वंश)
तिकालिक—१०६ (कंकाली)
तिक्रा—१४५ (तिक्रा)
तिग्रा—१६८ (दजला नदी), १८२
तिङलिङ—१०६ (कंकाली), ११३, ११६, १२३, १२८, १३०, १३४, १३७, १९५, २३३
तिङली—८९
तिङलुङ—९९ (प्राग्उइगुर किरगिज)
तिङस्वान्—११७
तिफलिस—४८२
तिब्बत—३९, ६३, ९३, ९९, १२५, १२५, १२६, (थिगु) १३६, १३७, २३६, २३९ (कातरिमपर शासन) २४२ २७४, २८१, ३००, ३०६, ३१० (में अनुवादकार्य) ३५०, ४८५, ४८९
तिमार्खुस—१७९
तियेनशान्—५, ६, ७
तोरवात—१७०
तुकुचार—४७३, ४८३ (मेर्व-में निहत)
तुकुहुन—१२९ (पश्चिमी तुर्क)
तुक्तविको—३५१ (मर्गित कुमार)
तुक्यु—१०७ (तुइकू, तुर्क)
तुखार—१२८, १३८, २२१ (तुहुओलो), २२४
तुखारिस्तान—२२६, २३३, २६७, २७४, २७९ (विद्रोह) २८८, ३१८, ४३४
तुखो मुन् गेचो—१३७ (तुर्गिस वंश)
तुगरल—४११, ४१८-२१ (सल्जूकी १)
तुगरल। करा—३३१ (कराखानी)
तुगरल। तैमन—३३२ (कराखानी)
तुगरल, यनाल—३८७ (कराखानी)
तुगराई—४२९ (इज्जुद्दीन)
तुगलक—१२८ (वंश)
तुगशादे—२२७
तुगाई—४६९ (खान, ४७० (मंगोल)
तुगान २—३३० (कराखानी-खान), ३९० (काशगरी), ४०१ (अन्तर्वेद खान), ४०२
तुगानचिक—३९९ (सुबुकतगिन-पुत्र)
तुगानशाह—४४६
तुंगुस्—८२, १००, १०३
तुङलो—१३७ (तुर्किस)
तुङ्ह—८२ (तुंगुस), ९५,
तुतुक—१२७
तुन्वोशे—२१८
तुन्शेखू—१२९-१३३ (तुर्क
तुफगाज—३८३ (कराखानी-शाखा)
तुमान्स्की—४३३ (हस्तलेख)
तुमेत—२३५, २३६ (उइगुर राजा)
तुमेद—३३४ (मंगोल)
तुरुगर्त—२५१ (डांडा)
तुर्क—७९ ८० ९६ (वंश) १०४ १०५ (लोहकार) १०६-३९ (साम्राज्य) १०७ (तुइकू, तुक्यू, तुर्क त्यरोक, तरुक) १०८ १३६ १३८ १४३ २१७ २३२ (आगूज भी) २७४ ४१७ (उत्तरी, पूर्वी, पश्चिमी तुर्क)
तुर्क। उत्तरी-,—४१७ (याकूत)
तुर्क। पश्चिमी-,—१३८-३९ १२९ (तुर्कुहुन्) २१६-२७ ४१७ (तुर्की आजुर्बयिजान और तुर्कमानिस्तानके तुर्क)
तुर्क। पूर्वी-,—१०६-३९ ४११ (सिङ क्याङ, उज्बेकिस्तान, कजाकस्तान कूफाके तुर्क)
तुर्कमान—१४४, २३१ (किपचक-आगूज) ४१२ ४८५
तुर्कमान-नहर—४९१
तुर्कमानिस्तान—६ ५६ १७१
तुर्कान खातून—३५२ ३५६, ४२३ (सल्जूकी रानी) ४३६ ४५१ (तेरेक ४६४ खातून) ४५५-५६ ४६६ ४७४-७६
तुर्किस—१२८ १३७ (जातियां —ब्रक्कू तरंकल, थुङलो, बैकाल, गुसेर, अदिर, किबि-रस, कुकू, उगुइ, सिब्र, केई, खिताई) (-तुर्गिस)
तुर्किस्तान—३४ (चीनी) ३५ (शहर) ९४ (शान्यू) १३९ २४८ (पूर्वी) ३६३ ३७७
तुर्की—३४
तुर्गइ—३५७ (प्रदेश)
तुर्गिस—१२० (तुर्क) १२१ १२३ (सूजिया राजधानी) १२४-१३५ (त्युर्गेस) १३५ (-राजा सोगे) १३७ (वंश)
तुर्गेवूर्त—४५९ (दिनके पहरे-दार)
तुर्फान—१८५ २३२ २३३ २४५ २४६ (तुरफ़ान)
तुरुगू—१२४ (तोन्यू कुक)
तुला—११३ (मंगोलिया में नदी) ११६ १३७ २३४ (तुर्क)
तुलो—१०९ ११६-११७ (पूर्वी तुर्क खान) १३३
तूकिन्—११२ (पर्वत) ११४
तूचिन्—१०९ (पर्वत)
तूतान्—१०४ (वंश)
तूनकत—३७५ (इलाक में) ३८५
तूस—३९९
तूमन—८१ (हूण)
तूमिन—१०९ ११० १२० (प० तुर्क खान)
तूमुन—१०७ (इलिखान)

तुलूथ—४८३, ४८४, ८६
तेकिश—४३६
तेगिल—२१९
तेचुङ—२४० (थाङ) ३४५ खित्तन
तेत्राद्राख्मा—१७८
तेंदुर्स—२४४ (कुकुखाते)
तेमूचिन—४३० (चिंगिसू) ४५८-६०
तेमूर—६६ १०७ ३४९ (गुरखान)
तेमूर मलिक—४७ ४११
तेरेक—२३४ २३६ (जातियां—उइगुर, तरंकल, बैकाल, कुक्रू, तुला, गुसार, अदिर, किविर, घेई, किर, स्वतेसिर, शेकिर, किरगिज) २८२ (तेरेक डांडा)
तेरेगिन—४५९ (मंगोल पद)
तेर्किश—२३६ (तुर्क-शाखा)
तेर्मिज—१३५ १४१ १७५ (देमित्र) १८५ २२१ (तुखार राजधानी) २२२ २७५ २७८ ३७० ३७६ ३८५ ३८७ ३९९ ४०२ ४३७ ४३८ ४४३ ४७४ (साली सराय)
तेर्मिजी—४५४ (सैयद अलाउल्मुल्क खलीफा)
तेशिकाताश—२८-३४ (गुहा)
तेशिककला—१६०
तैमूर—६६ (तेमूर)
तोकूचरा—४७१ (मंगोल, तुकुचर)
तोगूज—२३४(नौ उइगुर)
तोन्—२५० (स्थान, नदी)
तोन्यूकुक्—१२० १२१ १२४ (पू० तुर्क)
तोप—४२६
तोप्रककला—१६२ (ख्वारेज्म)
तोबा—९६ (वंश) १०४ (मुकुरू अवार) १०५ (वंश) १०९, १११ (पूर्वी तुर्कखान), २१७ २४६, (सियन्पी), ३३४
तोमुरी—१४६ (मसागेत-रानी)
तोरमान—१७३, २१६ (हेफ-ताल)
तोरस—१४९ (कत्पूतक)
त्युर्गिश—२४८ (तरुती, आजी)
त्युर्गिस—१३५ (तुर्गिस, त्युर्गेस)
त्रसरेणु—१०
त्रिनील—१४ (जावा)
त्रियासिक—५
थाइशान्—१२५
थरमोपोली—१५२
थाइराइड—२५
थाङ—११३ (वंश), ११५, १२१, १३५
थाङ, पश्चाद्-,—३३८ (शाटो तुर्क)
थिबुत—१२६ (तिब्बत)
देवपातर—१७३ (देव-पुत्र)
थ्रेस—२५, १४७, १४८, १६४
दक्षिणापथ—(मध्य-एसिया) ५६, ६०, १२८, १४१-२२८ १४३, २५४-३२२, ३६०
दइतुई—१८४ (सोग्ददेवी)
दत्तामित्रि—१७५ (नगरी)
दन्दानकान—४१४ (स्थानमें, तुगरल सलजूकी विजयी)
दन्यूब—१३९ (इरतिल), १४८
दबूसिया—३७२, ३७६, ४६७, ४६८
दमिश्क—२५९, २७२, २८१, २९७, ३०३, ३६५
दरगम—३४९ (समरकंदसे दक्षिण)
दरजंगी—४१३ (दरबंद)
दरगाह—३७३ (अंतःपुर दरबार)
दरबन्द—१४६, २२१ (लोह-द्वार), २३८, २७७ ४१२ (दर-जंगी), ४८९
दर्जोंग्रे—९५
दलोबियान—१०८ (प०तुर्क) १११, १२८, १२९, २१६ (खान) (दालोब्यान)
दशपुर—१८३
दशरथ—१६९ (मौर्य)
दहे—१७० (ताहिया)
दाऊद—४११ (सलजूकी)
दाक्वान्—११७
दातूबुगा—१०९, ११५ (पूर्वी तुर्गखान)
दादाशिश—१४७ (बाख्तरी क्षत्रप)
दानिक—३१५ (सिक्का)
दानिशमन्द—४६७ (हाजिब)
दामो—१२९ (धर्म), २१६
दारयबहु—१४३ (दारयोश), १४७१५१, १४५, १५८, १६४, १७०, १७३, १७४, १८२, ४६६ (दारयोश भी)
दारयोश—६४ (दारा, दारयवहु), ६६, ८२ १४८,
दारुखची—३५७ (मंगोलप्रतिनिधि)
दालोब्यान्—१११ (प० तुर्क) (= दालोबियान)
दासता—४७, ५५
दाहे—७४ (शक) १७३
दिमित्रि—१७१, १७४, १८२, १८३
दियोनिसिलो—१८१
दिरहम—२७० (=२५ ग्रेन, १.६ माशा चांदी)
दिल्ली—४३४, ४३७
दिवु—६९ (शक-देवता)
दिवोदात—१६८, १६९-७० (१), १८३ (१, २)
दिवोदास—१४४
दिवोनिस्—१८४
दीवान—३७३ (मंत्रालय), ३७५ (वजीर, मुस्तौफी, अमीदुलमुल्क, साहिब शूरत, साहिबबरीद, मुसरिफ, काजी)

"दीवान लुगातुत्तुर्क"—३२९ (महमूद काशगरी की)
दुनाइ—६४, १०१, १४६ (दन्यूब)
दुर्गो—१०७ (तूपू, तोगी, तुर्क)
दुर्मोगो—२४०-४१ (उइगुर खान)
दूगी—८३
दूलन—१०९, ११४ (पू० तुर्क राजा)
दूलू—१३५
देइओक—१४५ (देवक, पर्वत-पुत्र)
देमित्रि—१६९, १६८, १७३-१७८ (बाख्तरी), (= दिमित्रि)
देरे—१२९, २४३ (राज-कुमार)
देले—१०८ (राजकुमार)
देवक—१४५ (देइओक)
देवपुत्र—१९४
देवमूर्ति—१६९
देहकान—२६८, २८७ (ग्रामणी, ग्रामपति, तालुक-दार), ४२० (के चिह्न)
देहिस्तान—४४४ (नसा)
दैलम्—३१७
दैलमी—३६४ (वंश), ३६६, ३८७, ३९९, ४१८
दैसी—४६२ (मुखिया, तैशी)
दोन—८ (नदी), ६४, ६७, १०७, १६५, (तनाइ), २३३
दोलोनोर—३३६
द निर्येपर—४८५
द्रंगियाना—१७१
द्रविड़—१५९ (ख्वारेज्म)
द्राप्सम—१७३ (तेत्रा-)
धर्मस्थिति—२२५ (बखान)
धातुयुग—४०-७०
धिषणा—१८४ (वैदिक देवी)
धून—५१ (धातु-पाषाण)
नइमन—२३३ (नैमन, उइगुर)
नकशाब—२७९, ३८८ (नख-शाब)
नखशाब—१८१, २८२, ४४४
नागरी—१७६ (मेवाडमें)
"नजात"—३६९ (सीनाकी कृति).
नज्जाम—३११ (मौतजली)
नन्द—१६७ (-साम्राज्य)
नफ्ता—४७७ (मिट्टीका तेल)
नफ्स—३६८ (विज्ञान, आत्मा)
नमंगान—२५०
नमदापोश—३८२ (फकीर युसुफ बुखारी)
नरशाखी—२७७, ४२० (इति-हासकार)
नर्मदा—८, १२८ (नदी)
नवपाषाण युग—२३
नववर्षोत्सव—८४ (हूण)
नवविहार—२२२ (बलखमें),
नशाब—४७४ (नखशाब)
नसा—४४५, ४७१, ४८४, ४८९ (शहरिस्तान)
नसाफ—३०६
नस्तोरी—१३८, ३६५
नस्र—३६२, ३६६ (सामानी ४)
नस्र सैयार-पुत्र—२९० (राज्य पाल)
नहावंद—२५९, २९५
नागसेन—१८१
नान्काउ—३४६ (जोत, डांडा)
नान्काङ—३३४ (पेकिंग समीप डांडा)
नाल—३४७ (= २॥ छटांक)
नासिक—१८३
नासिर—४३७, ४४७, ४५४ (अब्बासी खलीफा)
नासिर—५४५ (खलीफा)
नासिर—४३७ (अ० खलीफा)
निका—१८४ (विजया देवी)
निग्रोयित—२४
निङह्-या—१२२ (लिङचाउ)
निजामुल्मुल्क हसन—३७३, ३९२-९६ (सलजूकी वजीर), ४२१ (जन्मादि)
निनवे—१४५ (बबेरु राज-धानी)
नियंडर्थल—११ (= मुस्तेर)
निशूचो—१३४
निशूदुलू—१२९, १३४ (प० तुर्क खान)
निष्प्रणालिक ग्रंथि—२५
नीजक—२७० (तखूंन), २७९ (बागदी-राजा), २८०
नीमरोज—३९४, ४२१
नीमो—१०२ (वूसुन-राजा)
नील—१४६, १४९ (मुद्रदेश), २५६ (नदी)
नीलाब—४८२ (नदी, सिंध-शाखा)
नीली—१२९ (प० तुर्क खान), २१६
नुसरतकोह—४७९
नूजकन्द—२१९
नूर—३२६ (नूर अता), ३७२ (किला), ४६७
नूशतगिन—४२४, ४२६ (ख्वा-रेज्मी)
नूशावस्काम—४७४
नूह—३२८ (सामानी), ३६१, ३६६, ३६७, ३६९, ३८०
नेपाल—७३, ११२
नेपोलियन—१४८, ४६६
नेवाकित—२५० (चु-उपत्यका में), ३५०
नेस्तोरी—२३४, २४९, २६४ (धर्म), ३३३, ३५० (इलि-यास) (= नस्तोरी)
नेशापोर—२९५, ३१४, ३४९, ३६४, ३९९, ४४१, ४४६, ४५४, ४५५, ४७८, ४८३, ४८४
नैमन—२३४ (आदि, उइगुर), ३५०, ४३३ (—तायङ-खान), ४५० ४६० (-राजा जमकाको चिंगिसने मारा), ४६१, ४६२

नोखुस—२२३ (उइगुर)
नोमे—४६२ (–पुस्तक, ग्रीक', मंगोल)
नौशेरवान—२१६, ३०५
पख्तून—३०४
पंचाल—१७६
पंजशीर—४८०
पंजाब—१५५, १६८, १७५, ३९२, ४०६, ४१२ (-विद्रोह ४६६, ४७१ (वक्षुतटे)
पंजीकत—२५१ (नगर)
पटना—१५०
पतंजलि—१७३
पत्थरकोयला—३७७ (फरगाना में)
पयगू—३७२ (यबगू)
परमक—२७४ (=बरमक)
परमाणु युग—३८
परमाणुबम—८
परमाणु शक्ति—८
परवान—४८०
परोपमिसदै—१६८ (हिंदूकुश) १७१, १७४-७६ (परोपनिसदै, परोपमिसदै)
पर्शा—१४९ पारसीक, फारस)
पर्शुपुरी—१५० (पर्सेपोलि), १५६, १६५
पलातिया—१५२
पल्लवा—१८३ (=अथिना)
पल्लव—१८३
पशुपालन—३९-४०
पसरगर्द—१६४
पहलवान—४४५ (अताबेग)
पहलव—६८, १९१
पाइलग—३३४ (लोह नदी)
पाकिस्तान—१७१
पाङकी—८८
पाचाङ—३४२
पाजीरक—७५-७८ (घाटी)
पाटला—१७६ (सिंध डेल्टा)
पाटलिपुत्र—१७४-७७ (= पटना)
पादकंदुक—१०९
पानीपत—४८६
पामीर—५, ७, २८ ५७-१३२ १३२ (चुङ लिङ), १३७, १४४, २२१, २२४, २२५ (पोमीलो)
पारथी—७४
पारसीक—१४५
पारातागिन—२३३ (आमूपर)
पार्थव—१४९ (पार्थिया, हुर्कानिया)
पार्थिया—१६१ (मेर्व से कस्पियन तक), १६७, १७०
पार्थिव—१८० (पार्थिव), १८३ (पहलव)
पाषाणयुग—४२ में (प्रतिशत मृत्यु)
पाषाणयुग। अनव-,—४४-४५, १५८
पाषाणयुग। नव-,—१२, ३५, ३७-४३ (विवरण)
पाषाणयुग। निम्नपुरा-,—४०
पाषाणयुग। मध्य-,—२८, ३५-३६ (विवरण)
पाषाणास्त्र—४१
पिङयू—१३२ (बिङगुल)
पिटुइटरी—२५ (ग्रंथि)
पित्तलयुग—५४, ६०-६४
पिरो—२१०
पियाङ—२४५ (नगर)
पियान्—३३८ (काइफेंङ)
पीगू—४१८
पीतनदी—१२४ (ह्वाङहो)
पीरशाह—४७६ (गयासुद्दीन,
पुरापाषाण युग—११ (उपरि-, मध्य-)
पुष्कलावती—१७५, १८५ (चारसद्दा)
पुष्यमित्र—१६९, १७५, १७६
पूलेङवो—१०९ (एक पहाड़)
पृथिवी—३ (की आयु)
पृथिवीराज—४३५
पेइकन्द—१६१ (हेफताल राजा)
पेकिंग—११, १५-१६ (मानव), १६ (अधिउषा), ११२, १२८, १२२, २३९ (सी-चाइ-ई), ३३६, ३४१ (यामिङ)
पेगू—२३१ (भगवान्)
पेचेनगा—२३१
पेताउ—११९ (नदी)
पेत्रा ओक्सियाना—१६५ (कलानादरी मशहदसे उत्तर -पूर्व)
पेन्चुल—२४९ (-अकसू)
पेरिनेस—५
पेशावर—१७५, ४८०, ४८९
पैकन्द—२२० (फाती), २७५ (बैकंद), ३६२, ३६३, ३८८
पैगम्बर—१५१
पैमीर्यन—५
पोन्त—१७१ (ग्रीक राजा)
पोलितिमेतस—१६५ (बहुरत्न उपत्यका), १७२ (बाख्त्रिया)
पोलिस—१८२ (पुरा)
पोसंग—३७७
प्यासीभूमि—६ (कजाकस्तान-मरु), ८, २८
प्रवारणा—१३१ (महा–)
प्रवाहण—१४४
प्रशान्त—११० (-महासागर)
प्लातोन—२९३ (-विज्ञान-वाद), ३६५
प्लीनी—१७२ (रोमक)
फ़इहान—२१९ (फरगाना)
फकीर अब्दुल्ला—३६३
फकीह—३६४ (धर्मशास्त्री)
फजलतूसी—३, ६ (राज्यपाल)
फजल बरमक—३०७ (राज्यपाल)
फजल सहलपुत्र—३०९ (अब्बासी वजीर)
फरगाना—८८, ८९ (तावान), १०८, १३५ १७१, १७२, १७९, १८४, २१९, २४९, २८२, ३५५, ३६१, ३७७, ३७७, ३८७, ४५२, ४७

फरीगून—३७५, ४३३ (गूज-गान-राजा)
फाङ् साङ=भिक्षु)
फातमी—३८३ (मिस्रके शिया खलीफा)
फायक—३२८ (हिरात-राज्य-पाल), ३७० (सामानी वजीर), ३७१, ३७४ (सेनापति), ३८१
फारयाब—२७९ (दक्षिणी)
फारस—६४
फारसी—२९७ (भाषा), ४०७ (गजनवी के समय
फाराब—२३२, ३२८ (उतरार), ३६५, ४०२
फाराबी—३२२, ३६४-६६ (दार्शनिक अबूनस्र)
फारेल—२३२ (स्थान)
फिदाई—४५३ (इस्माईली गुंडे)
फिन—२५
फिनो-द्रविड—६५
फिरदौसी (कवि)—३२९, ३६८, ४०६ ("शाहनामा"), ४२३ (तूसी)
फिलिप—१५५ (मकदूनिया), १६७ (एलिमेयसीय क्षत्रप)
फिलोपातोर—१८१
फोरोजा—४४, ५४
फुरात—२१८, ४२१
फूरूचिङ—३३७ (कइयेवान्)
फोसोल—३
फ़्रात—१७० (पार्थिव १)
फ़ावर्त—१४७
जेंच—१०१ (राजा)
बख्शी ५६५
बगदाद—१६७, २९७, ३०३, ३०९, ३६४, ३७७, ४४९, ४६५
बगलान—२८
बदख्शां—८८, १७२, २२४, २२५
बदरुद्दीन—४६६
बनाकत—३७६, ४७०
बनारस—३९२
बन्तू—३५ (भाषा)
बन्दग—३९४
बन्दा—४४२ (दास)
बब्रेह—१४९ (कलदान, = बब्रेह)
बब्रेरु—१४४ (बाबुल), १४६, १४८, १६७
बम्बई—८
बरकयारुक—३८७ (सल्जूकी), ४२४-२५- (सल्जूकी ५), ४४०
बरकुल—९९, २३७, २४४
बरगशी—३७० (सामानी वजीर)
बरचिनलिगकन्त—४७०
बरमक—२७४, ३०० (परमक), ३०३, ३०७ (कश्मीर में)
बरसखान—२४९, २५० (नगर)
बर्दन (खुदात)—२२६ (बुखारा), २७८
बर्बर—४२१
बलख—१३०, २२ (फोही) २७४, ३०० (नवविहार), ३६४, ३७०, ३९४, ४००, ४०९, ४२९, ४४८, ४५४, ४३५, ४७९ (मादरेशहर), ४८७, ४८८
बलकाश—५, ६, ५६, ६१, ८२, ११६ (सरोवर)
बलबहादुर—३७, ३९
बलाशगून—६१, २४१, ३२५, ३२६, ३३०-३३, ३४६, ३५४, ४०५, ३५७, ४२१ (सूजिया) (बालाशगून
बल्कतगिन—४२४ (ख्वारेज्म)
बसाकबाशी—३९६
बसिमिर—१२५ (कबीला), १२६
बहराम गोर—३७६
बहराम चोबे—२१८, ३६१ (—वंशज सामानी)
बहिस्तून—६४
बाइसून—२८
बाउची—४५८ (पद)
बाकू—८
बाख्तर—८८, १६४, १६७, १७३ (नगर) (देखो बाख्त्रिया, बाख्त्री भी)
बाख्तरी—१४७
बाख्त्रिया—१५०, १६१, १६८, १८२ (राजव्यवस्था), १८२ (बलख)
बाख्त्री—१८२-१८५ (राजव्यवस्था), १८५ (—कला)
बागखुर्रम—४७७ (ख्वारेज्म में)
बाजौर—१७५
बालिनी—२८९, ३६८ (खारिजी)
बातूखान—४९१
बादगी—२७२, ३०४ (राजा नीजक), ४४९
बाबर—१०७, १७२, ४८६
बाबुल— १४४ (बब्रेरु), १४५ (राजधानी निनवे), १६८, १८०
बामियान—२१८, २२३, ४३४, ४३८, ४४८, ४८२, ४९०
बयनतुर—२३१ (कैंकाली)
बारमास—४८४ (मंगोल सेनापति)
बारिन—४६२ (कबीला)—
बारूइ—४८६, ४९२
बालाशगून—२३३ (सूजिया), २४६
बालचित्र—४६३ (व्यापारी)
बालिश—४६३ (=७५ दीनार)
बालोर—४३४
बाबुचि—४६५ (उइगुर खान)
बाशकिर—२३२
बासपोर—२३२ (किमेरियौं-का—, केर्च)
बासफोर्स—६ (तुर्की), ८, २३२
बिकी—४६२ (शमन, ओझा)

बिग्यागुदुलू—१०९, १२६ (पू० तुर्क खान)
बिङ्गुल—१३२ (पिङ्यू, सर) २१९ (सहस्रधारा)
बिजन्तीय—१३०, २३२, २७२
बिलगे तगिन—४३९, ४४० (ख्वारेज्मी)
बिलगातगिन—४०५ (गजनवी हाजिब)
बिलिक—४६२ (वाक्य, चिंगिस—)
बिलोचिस्तान—१६४, १७६ (अर्खोसिया), १७८
बिशबालिक—२३४, ३४८ (उइगुर नगर), ३५५
बिसाकबाशी—३७४ (कमांडर), ४३० (गारद अफसर)
बिस्ताम—४७२
बिह अफरीद—३९५ (जर्थुस्ती नेता)
बुकैर—२७२ (राज्यपाल)
बुक्क—१३७ (तुर्क), २३९ (उइगुर सेनापति), २४१, २४५ (तिब्बती-ध्वंसक)
बुखारा—१३५, २२०, २२६, २२७, २७०, २७५, २८७, २९५, ३४९, ३६३, ३७३, ३७६, ३९३-९४, ४४८, ३५४, ४६७
बुखतेवर—२३६ (उइगर)
बुजगला खाना—२२१ (दरबंद)
बुतपरस्त—२८४ (बुद्धपूजक)
बुत—८७, १३१ (मूर्ति), १४३
बुतेर—१७५
बुयुरुक—१२७
बुरताना—३५३
बुरी तगिन—३८२ (इब्राहीम, अंतर्वेदपति), ३८३, ४१३, ४१४
बुल्गार—२५, १३९, ३७६
बुवायही—३६६ (=दैलमी), ४१८
बूअलीसीना—३२२, ३८६-७० (दार्शनिक)
बूकिन—१३७, २४४ (तुर्क)
बूबे—९१
बूयुरुख—१२० (पू० तुर्क), (बुयुरुक भी)
बूरनामज—३७२ (स्थान)
बूशांग—४७३ (शहर), (बूसांग, पूसांग भी)
बेइसिन—८८, (सेनापति)
बेकन। रोजेर,—४३६
बेकलिग—२४२ (बेकलीलिंग, सोग्दी नगर)
बेकाल—६२
बेग—१२३ (सरदार), १२७
बेगतुजुन—३७०, ३७१, ३८२ (सामानी सेनापति)
बेडेल—११० (डांडा, जोत)
बेद्दा—१५ (लंका)
बेनूदून—२२६ (बुखारा राजा)
बेरूनी—१६३ (अलबेरूनी ख्वारेज्मी), ३२९, ३६८, (अबूरेहां), ३७७ (देखो अलबेरूनी भी)
बेरजेम—४२२ (दुर्ग)
बेर्कुतकला—१६०, १६२ (ख्वारेज्म)
बेहकिया—४२३ (नेशापोरमें मद्रसा)
बेहकी—४१३ (इतिहासकार), ४१४, ४१५
बैकन्द—२७० (बैकन्द), २७५ २७७
बैकलिग—२५१ (नगर, बैकलीलिग), ३३० (सिमकन)
बैकाल—८२, १०४ (सर), ११६ (कबीला), ११७, १२३, १३७, (तुर्क), २३४ (तुर्क)
बैरम—१०७
बोइरनोर—४५८
बोग्दा—४८३ (चिंगिस)
बोगराखान—२४६, ३२५ (कराखानी), ३२८, ३३०, ३८२ (बुखारा-शासक), ४१३
बोत्सकाइ—३३६ (खित्तन), ३३७, ३४५
बोयान्—९०
बोरुन—२३६ (उइगुरखान)
बोलन—१८२
बोल्गार—२३२, ३३३, ४८५
बोसत—२३५ (उइगुर खान)
बौद्ध—२४९, २८०, २९३, ३३३, ३६५, ४८९
बौद्धधर्म—१०५, १०८, १११, (तुर्कोंमें), १२४, १३८, २४६, ३४३, ३४९, ४३३
ब्योलितो—३४६
ब्राह्मन्—१०५ (अवार)
ब्राह्मी—१३१ (गुप्त—)
भुवा—४९६
भरुकच्छ—१७६
भारत—६४, १०३, १४४, १७१, २८८, ३३७, ३६७
भाषा—३३
भूखीमरुभूमि—३७२, ४८८ (कजाकस्तान)
भूमध्यसागर—५, ८, ५१
भूमध्यीय जाति—५१
मक—१५० (होरमुज प्रदेश)
मकदूनिया—१५०, १५४, १५५
मक्का—२५५ (बक्का)
मंकू-तातार—४५८ (मंगोल)
मग—१४७
मगयार—२६ (हुंगरी), ८० १०४
मगनेसिया—१७१, १७७ (रोम-ग्रीस-युद्ध)
मंगित—२३३ (उइगुर)
मंगोल—१०१
मंगोलायित—२४
मंगोलिया—२६, ८०, ४५८ ४६५, ४८७, ४९०
मंचू—४८६
मंचूरिया—६, ८९, ९६, ९९ १०४, २३७
मजारशरीफ—२६३

मज्दकी—३०५ (जिन्दीक)
मज्दयस्नी—१५१ (ईरानी धर्म)
मथुरा—६८, १७५, १७७, १८१
मतरिब—३०७ (राज्यपाल)
मत्ता अल्कन्नाई—३१० (अनुवादक)
मदगास्कर—३४
मदीना—२५६
मर्दैन—३०२, ३०४ (तर्खोन)
मद्र—१४४ (मिद), १४७
मद्लेन—१२ (मानव), २२, २३ (विवरण)
मध्यपाषाण युग—२३ (अज़िल, अश्योल)
मध्य-एसिया—३, ५
मनक—२५१ (वरसखान-नृप)
मनकन्द—२१९ (चिमकेंत)
मनकिशलक—४३०, ४३६, ४४२, ४७९
मन्सूर—३६७ (सामानी ८, १०)
मरकन्दा—१६५, १६७ (समरकन्द)
मरकरिन—२३७
मरगित—४६२
मराको—३५
मराग—४८४ (किला)
मराथोन—१४८ (युद्ध)
मर्ग—१५८ (मेर्व)
मार्गिनान—३८५
मर्गियाना—१४७, १६४ (मेर्व), १६७, १७१, १७३
मर्दुक—१४५, १४६ (बाबुली देवता)
मर्दोनियस—१५२
मलय—१५, ३४
मलिक—२७० (उपराज), २७३, २८०, २८५, (क्षत्रप)
मलिकशाह—३६५ (सल्जूकी), ३९२, ४१९, ४२२ (सलजूकी ३), ४२५ (सल्जूकी ६)
मसऊद—४०४, ४०९ (गजनवी)
मसऊदखान—३८७ (कराखानी)
मसकविया—४६८ (दार्शनिक)
मसगित—६६, ७३-७४, १०१, १३८, १३९, १४६, १५८ (महाशक), १६०
मंसूर—३०१ (अब्बासी खलीफा २), ३०७ (हिमयारी), ३७० (सामानी १०)
मसोपोतामिया—२६
मस्तमा—३८६ (उमैया क्षत्रप)
महमूद—४४१ (कराखानी खान)
महमूद—३५२ (कराखिताई वजीर)
महमूद—२३८ (काशगरी) ३२९ (का दीवान "लुगा-तुत्तुर्क")
महमूद—४४४ (ख्वारेज्मी) ५
महमूद—(गजनवी) ४३९, ३६८, ३७०, ३८०, ३८१, ३९०, ३९८-४००, ४०५ ४०६, ४०८ (कुरूप), ४०९ (प्रथम सुल्तान) ४१९, ४३३
महमूद—४२४ (सल्जूकी) ४, ४२५ ८
महमूदतगिन—३८७ (कराखान) ३८८
महादीवार—८२, ८६, ९३, ९४, १३०, ४१० (चीन-की)
महनदी—८ (भारत)
महाप्राकार—२४० (महा-दीवार)
महाभारत—१००
महेन्द्र—(लंका)
माउ—९२, ९३
माउकिरे—२४५ (शादो सम्राट्), ३३६, ३३८
माउदुन—८१ ८२ (हूण), ९३, ९९, ११४
माङचुङ—२४५ (शादो सम्राट्, माउकिरे)
माचीन—४२१
माजन्दरान—४५५, ४९१
मातृसत्ता—५५
मानव—४ (प्रागैतिहासिक जावा, नियंडर्थल, पेकिंग, मुस्तरे-नियंडर्थल), ११ (सपियन), (हैडलवर्ग
मानव-जातियाँ—११, १३, २४ (चार), ४५-४६
मानवित—१७ (होमोनिद)
मानी—११०, १३३, २४२ (धर्म), २४९, ३६५, ४६१
मानोमख—४१९
मामून—३०८-१२ (अब्बासी खलीफा), ३३० (ख्वारेज्म-शाह), ३६८, ३९०, ४०० (ख्वारेज्म १,२), ४०१
मायाचुक—४४९ (ख्वारेज्म सेनापति)
मावराउन्नह्र—२६८, ३२० ३९४ (=अन्तर्वेद)
मालिकी—२९३ (सुन्नी)
मालेगनीमत—२५७ (-व्याख्या)
माशरेवात—४१२, ४१८ (स्थान)
मास्को—४८५
मिकाईल—४१८ (सलजूक-पुत्र)
मिङ—१११ (वंश)
मिङच्यान—३४४ (निंगूता)
मिङती—९५ (चीन)
मिङली—८२
मिट्टी की छतें—४३
मित्र—१८४ (-धर्म)
मिथ्र—१८४ (की पूजा)
मिथ्रदात १—१७० (पार्थिव) १७७, १७९, १८० १८२
मिद—१४४ (मद्र)
मिदिया—१४९, १७९, २४५ (=मद्र)
मिदेल—११ (हिमसंधि)
मिनान्दर—१७८-८०, १८३, १८५
मिनिसून—७३

मिनूसून—६१ (सप्तनदकी संस्कृति), ८०
मिस्काल—२७६ (=७३ तोला)
मिस्र—३५, ५६, ६८, १४६, १४७, १५६, १६८, १७८ (मेम्फी), ३०१, ४२१
मिलिन्द—१८१ (= मिनां-दर)
"मिलिन्दप्रश्न"—१८१
मिहिरकुल—२१६ (हेफताल)
मुआज—३०५ (राज्यपाल)
मुर्कदेन—३३७, ३४५
मुकन्ना—३०५ (-विद्रोह)
मुकुरु—१०४ (-तोबा)
मुक्तदिर—४२४ (अ०खलीफा)
मुगल—१०७
मुगान—४७३ (कस्पियन तट)
मुजंग—३३७ (खित्तन राज-धानी)
मुजारी—२९१, २९३ (अरब)
मुजाहिम—१३६ (सूलू)
मुजुङ—११७ (वंश)
मुंडाद्रविड—१५९
मुतुगिन—४८१ (चिंगिस-पौत्र, जगतइ-पुत्र)
मुद्र—१४९ (=मिस्र)
मुद्रणकला—४९२
मुद्रा—१५० (दारयवहु-)
मुद्रिक—१४६ (मिस्र)
मुनजान—२२४
मुन्तसिर—३७१ (सामानो १२)
मुफज्जल—२७२ (राज्य पाल)
मुर्गाब—७ (नदी), १०
मुलतान—३०४, ३६४, ३९९ ४८२
मुबैयातुद्दौला—४२४ (निजा-मुत्मुल्क-पुत्र)
मुसिया—१४९ (स्पर्दा)
मुसैया—३०५ (राज्यपाल)
मुसल्मान—१०८
मुस्तन्सिर—३८३ (फातमी खलीफा)
मुस्तेर—११, १२, १७ (=नियंडर्थल मानव), २८
मुस्लिम—३५१ (-विद्रोह तरि-म-उपत्यकामें)
मुस्लिम किलाबी—२८७ (सईद-पुत्र सेनापति)
मुहम्मद—३५ (पैगंबर), २५५-५८, २८१ (बिन्-कासिम), ३१६ (ताहिरी), ३५३ (ख्वारेज्मशाह), ३५५, ३५७, ४१४ (गजनवी) ४२५ (सलजूकी), ४४९-५६ (ख्वारेज्मशाह), ४७३
मुहल्लब—२७१ (सेनापति)
मू-चुङ—२४२ (थाङ), ३४० (खित्तनी)
मूजुंग—३३४
मूर्ति-भंजन—२७६ (मुल्तान)
मूयू—१०९-११० (पूर्वी तुर्क खान), १२०, २१६
मूसा—१३५ (अब्दुल्ला-पुत्र) २७३
मृत्पात्र—४०-४१, ९८
मेगेस्थेन—१७४, १८४
मेचो—२३६ (तोंकिश खान)
मेनान्दर—१७५, १८१
मेमना—१६७
मेमेगू—२२० (मिमोहा)
मेम्फी—१७८ (मिस्र)
मेयलुक—२४५ (उइगुर मंत्री)
मेरुचक—१६७ (मुर्गाबितट)
मेर्गित—३५१ (कबीला), ३५८ (तकतूखान)
मेर्व—१४७ (मरगिया, मर्ग) २५९, २६७, २७१, २७३, (शाहेजान, शाहेजहां), २७४, २९४, २४९, ३६४, ३८८, ४३६, ४४०, ४४९, ४५४, ४८३
मेर्वरुद—२७५, २७९, ३०४
मेसोपोतामिया—४४, ५५, ५६, १३१ (ताउची), १८०, ४१९
मेहदी—२४९ (खलीफा), ३०४-६ (अब्बासी खलीफा
मैन्दर—१७१ (नदी)
मैयुर्ग—२६३ (प्रदेश)
मोइनचुरा—१२६, २३१, २३७ (उइगुरराजा)
मोकिरे—३४०
मोखे—१३७ (तुर्गिसवंश)
मोखेदू—१३३
मोग—१६९
मोगिल्यान—१०९, १२४, (पू०तुर्क खान), ११९, १२१, १२३, २३२, २३८, २३९, २४८
मोचो—१०९ १२१ (पूर्वी तुर्क खान) १२४, १२६ १३५, २३७
मोतजला—३११ (सँप्रदाय)
मोतजिद—३१९ ३६३ (अब्बासी खलीफा)
मोतमिद—३२०, ३६२ (खलीफा)
मोतसिम—२९७ (अब्बासी खलीफा ६)
मोबालिग—४८१ (=बामि यान)
मोहनजोडरो—४३,६५
मौदूद—४१५ (गजनवी ५)
मौर्य—१५० (साम्राज्य) १७४ १८३
म्यूकम—३५ (जँबुल जिला)
लीफा) २६४-७१, २७२ २८६, ३७४
म्वाविया—२६१-६२ (खलीफा), २६४-७१, २७२, २८६, ३७४
यक्केपर्सनकला—१६२
यक्सर्त—६४ (सिर-दरिया) ७३, १५८, १६५, १७०, १८४ (तनइ)
यगमा—३२५ (आगूज-शाखा)
यङगी केन्त—२३२ (देहेनौ)
यङ्-ची—१०७
यङती—१२९

यजीद—२६२ (उमैया) २ २७१, २७२, (मुहल्लब-पुत्र) २८३, ३१० (उमैया)
यज्दगर्द—२५९ (सासानी)
यनालतगिन—३८२ (सेनप)
यनालतैमिना—२५१ (बैक-लिग-पति)
यन्लो—११२ (तुर्क)
यबगू—१०८ १२७ १२९ २१६ २१९ २३२ २४८ ३७२ (उपाधि)
यमनी—२९१, २९२, २९४ (अरब-दल)
यवन—६८, १७६, १८३ (ग्रीस)
यवुना—१४९ (यवन, युनियन एवलियन दोरियन)
यस्रिब—२५६ (=मदीना)
यहिया—३६१ (सामानी)
याकूब—३१७-२० (सफ़ारी) ३२२ (दार्शनिक) ३६२
यागमा—२५१ (कबीला)
याजिर—४७६
याज्ञवल्क्य—१४४
यानीकन्त—४७०
यान्सोवेले—१२९
याफेत—२४८
यामिङ—३४१ (=पेकिङ)
यार—२५० (स्थान)
यारकन्द—१०३, ३२९
यालू—३७१ (कराखानी राज्यपाल, यालू अरसलन) ३७२ (सेनापति)
यासी—२५१ (=जासी नगर)
यास्सा—४९३-९६ (चिंगिसी विधान)।
यिनिकिन्—२३९-४० (उइगुर राजा)
युइ-किङ-जे—११३
युग—१३ (चतुर्थ तृतीय शरट)
युङ पिङ फू—३३५
युमेइ—२२३
युयेहत—३४३ (खित्तन राजवंश)
युरेशिया—५
युरोप—१२२, १५३
यूथ-विवाह—६८
यूची—६४ (शक) ७४ (लघु-) ७९, ८२, ८६-८७ (पलायन) ९९ १३८, १६१, १७३, १७९, १८०, १८७-९१, २३७ (ऋचीक, ऋजीक, आर्जीक)
यूनानी—१४७ (ग्रीस)
यूसुफ—४१८ (सल्जूक-पुत्र ईनच पैगू)
येतजिन्करो—४९२
येनेसेइ—६२, १७३ (नदी) २५० ४६२ (एनेसेई)
येत्येन्—३३८ (द्वार)
येलू—३४६-५० (ताउचू वंशी) ३४८ (गुरखान)
येलूइले—३५० (करा खिताई)
येरूशिलम—२१८, २६२, ४२१
योकर—२३४ (उइगुर)
योहन्ना—३१० (अनुवादक)
योहान हेलान-पुत्र—२६५ (विद्वान्)
य्वेन-याङ—३४५
य्वेत्ती—९१
रईस—४१३ (नगरपति)
रक्त—५ (प्राचीन-) २६ (-भेद)
रफी—३१८ (हरसमा-पुत्र) ३६१ (लैस-पत्र)
रबात—२७३ (पाथशाला)
रबात-मलिक—३८५
रबिन्जान—३७६ ४४३
रबी जियाद-पुत्र—२६७ २७० (राज्यपाल)
रमीतान—२२० (किपूतान)
रशीदी—२२१ (तारीख)
रशीदुद्दीन—४६२ (इतिहासकार)
रशत—३७५
राइनलैण्ड—२६
राजा—खान, कगान, खाकान
राजिक—३१३
राजी—४६२ (बहाउद्दीन ख्वारेज्म, दूत) ४७५ (कवि)
राजुल—४८५ (रूसी महा-)
रामातीन—२७० ३६२
रावंदी—३०३ (सम्प्रदाय) ४४९ (इतिहासकार)
रिस—११ (हिमसंधि)
रुकनुद्दीन—३९० (करखानी) १२
रुकनुद्दौला—३६७ (दैलमी)
रुकरुक—१०१
रुकले—८३ (हूण)
रुनी—२३८ (लिपि)
रुब्रिक—४६१, ४९९, (यात्री)
रूदकी—३६४ (कवि अबुल-हसन-)
रूस—१३९, १४९
रूसाफ—३०४ (महल्ला)
रूसी—५२ (भाषा) ७९, ४७०, ४८५, ४८६
रे—२९४ (तेहरान), ३६४, ४१९, ४४७, ४७२
रेगिस्तान—३७५ (बुखारा)
रोक्साना—१५७ १६६ १६७ (अलिफ सुंदर की पत्नी)
रोम—६५ (रोमक) ११३ (रोमन सम्राट्)
रोलखान—४१८
लओदिका—१७७, १७८, २१६, ४२१
लंका—३५ (में बौद्ध धर्म) ४५, ६०, २१८
लदाख—३७, ६८, १३८
लाउशान्—८५
लाचिनवेग—४४३ (करलुक)
लारजान—४७६
लिक्सेतु—१८१
लिङवाउ—१२२ (निङ ह्या)
लिङगू—१३२ (सहस्रधारा)
लिङशान्—१३२ (हिमगिरि)

लिदिक—१४५ (क्षुद्रसिया)
लिन् खाकान—१०८ (उप-राज)
लिनि चाउ—९४ (ल्यूइवन)
लिन्—३४ (अक्षर-संकेत अर्थसंकेत) ५८
लियाँङ—२८४ (वंश) २८७ २९२
लो—१२२ (वंश)
लोचिङ—११७ (सेनापति)
लूरी—४७२
लेकाक—२८३
लेद—१४८ (समुद्र)
लेनिनग्राद—७७
लोब्नोर—८२, ८६, २४६
लोयक—३९५ (काबुल-राजपुत्र)
लोयाङ—१११ (राजधानी) २३८ (होनान्-फू) २३९ ३०१, ३०८
लोहद्वार—४८९
लोहमहाप्रासाद—५२ (लंका)
लोहयुग—१२, ५४
ल्याउ—३६० (पश्चिमी-करा खिताई)
ल्याउचाङ—३३९ (नगर)
ल्याउतुङ—३४५ (उपत्यका)
ल्युवीयुवान्—३३९ (सेना-पति)
ल्याङची—१२५
ल्हासा—४०२, ४०८, ४१७
वकोल—३७४, ४५६ (ख्वा रेज्मी)
वक्षु—८ (आमूदरिया) ७३ ८७, १३५, १४३, १५८, १६५, २२१, २६७, ४५१, ४६६, ४७८ (कस्पियनमें), ४९१
वखान—२२४ (किलोशोमे), २२५
वक्श—४३४ (नदी), ४७१
वरक्शा—२२६ (फरख्शा)
वली—२६९ (=राज्यपाल), २८५, ३६३
वलीद—२७३ (खलीफा)
वशिष्क—२०७
वसीलेउस—१६८, १७७ (=राजा)
वसुदेव—१६९
वसुमित्र—१६९
वाइसुन्—१३४
वाइमेइ—१०९, १२६ (पू० तुर्क राजा)
वाग्भट—६८
वाङखान—४५८ (कराइत)
वाङचाउ—१०३
वङ-चेङ-मे—२४५ (उइगुर)
वाम्ब्रेरी—३०१
वालियान—४८०
वासिक—३२८, ३७७ (अ० खलीफा)
वासिज—३६५ (स्थान)
वासुदेव—१८४, २०९-१०
वाह्लीक—६८, १५० (बलख), १६५
विज्ञान अकादमी—७५
विन्ती—११३ (चीन)
विम—१९८ (कदफिस)
विशरिओत—१४९
विश्लेषात्मक—६७ (भाषा)
विश्वामित्र—१४४
विस्तास्प—१४७, १५१
वुजार—३५५, (कुलजा खान), ३५७, ४६५ (जूचीका दामाद)
वू—११९-२१ (याङ-रानी)
वूचिन—१३५
वूतो—८७, ९८ (चीन)
वूसुन्—७४ (शक), ८८ ९५, ९७-१०४, १०२ (राजा), १२८, १३८, १७२ (= सेरेस)
वूहवान्—९९
वेइ—९६ (वंश), ११६ (नदी), ११७
वेइचाङ—११८
वेजेर—२२ (फ्रांस)
वेत्तकवला—३५ (अत्मा-अता)
वेन्तो—८२ (चीन), ८५
वेस्सुस्—१६४ (बाख्त्रियाक क्षत्रप)
वोल्गा—८ (नदी), १३० १३९, १५९, २३२
व्लादिवोस्तोक—३४६
शक—५३, ६४-७०, ६९ (-देवता), ७३ (-जातिय.) ८४, १०१, १३८, १४३ १५०, १६५, १८४, १८५ (क्षत्रप,) ४८५ (आलान)
शकद्वीप—६४७०, ६६, १३९
शंकराचार्य—३११, ४२४
शकस्तान—६४ १८०
"शकाम वेइजा"—६४
शगनान—२२५
शगान—२९० (शगानियान)
शगानियान—१३५, ३६५, ३८०, ३८४, ४०३, ४०५ ४०९, ४१२, ४४४
शाङचुङ—३४१ (खित्तनी)
शतम्—६५ (भाषा), ६६ १५१, १८०
शतरंज—४८७
"शफा"—३६९ (सीनाकी कृति)
शबोलियो—१२८
शबोलो—२१९ (शेखू)
शबोलो खिलिश—१२९, १३१ (प० तुर्कराजा) २१८
शमनी—४६९
"शमशाबाद"-प्रासाद—३८८ (बुखारामें)
शमशुल्मुल्क—३८४-८५ (कराखानी ४)
शरट—३ (सीरस्
शरदोत्सव—८४ (हूण)
शरक—१०४ (अवार)
शवक्रिया—१०८ (तुर्क)
शवपेटिका—७६
शहरसब्ज—३०१ (=केश), ४८१
शहरिस्तान—४२९ (मसा)
शहरिस्तानी—४७५ (विद्वान्)
शहाबुद्दीनगोरी—४३३, ४३६ ९

शाङचाउ—३४१ (तामिङ-फू)
शाचाउ—२४६
शातवाहन—१७५
शातुक—२३८ (सातुक)
शातुक बुगरा—३७९ (खान)
शाद—१२७ (शाह), २३८ (तुर्क उच्च-अधिकारी)
शादो—३३६ (तुर्क वंश), ३३८, (पश्चात्-थाङ)
शान्—१३७ (प्राचीन थाई)
शान्तुङ—३४७
शान्यू—८१, ८३ (जेंगी), ९४ (उत्तरी, दक्षिणी हूण खान) १०७, ११६
शान्सी—८१, ११४, ११५, २३८, ३४७
शापूरगान—४११
शापोरो—१०८ (शाबोलियो, तुर्कखान)
शाफई—२९३ (सुन्नी), ३८६, ३८९, ४२२ (अबू-हनीफा)
शाबूरगान—१६७,४११
शाबोलियो—१०८ (तुर्क शापोरो), (= शबोलियो भी)
शाम—१६७ (=सिरिया), ३०१, ४२१
शारिक, महरो—२९५ (शिया नेता)
शालजी—३७७
शाव—२१६, २१८ (तुर्क सेनापति)
शाश—२१६ (ताशकंद), २८१, २९१, ३००, ३५५, ३६१, ३७७, ४५२
शिकार—३८, ४८६ (चिंगीसी-)
शिङवुङ—३४२ (खितन)
शिया—२८९, २९२, ३०३ (श्वेतपट, सफेदजामगान, अल्मुवैइदा), ३८२
शिरवी—११८, २४४ (कबीला)
शिव—१८४
शिवे—१०० (अल्ताई)
"शीकी"—८८
शीकी कुतुकू—४६२. (चिंगिसका धर्म-पुत्र) ५८१ (मंगोल सेनापति)
शीकू—१३१ (ताशकन्द)
शीचुङ—३३९ (खितनी), ४५२ (किन्)
शीयू—९४ (तुर्किस)
शीराबाद—२८
शी-हवान्-ती—८०, ८१ (चिन्-)
शुगनान—२२२ (शोगायेन्ना) ४३४
शुङ्—३४० (वंश)
शुमर—१४६
शूवेन—१३५ (चतुरहट्ट : काशगर, खोतन, कूचा, सूज्या)
शूगोहू—८१, ८८ (हूण)
शूली—४७२
शूलीहू—८१, ८८ (हूण)
शूसे—१३२ नगर- (चू नदी)
शेखुल् इस्लाम—३७५
शेगुइ—१२९, १३० (प० तुर्क राजा, शेक्की)
शेतू—११२ (नेतू, तुर्क)
शेतू शबोलिया—१०९, ११२ (प०तुर्क खान)
शेन्सी—८१
शेरेकिश्वर—२२६ (सेकेजकेत)
शेलुन्—१०४, १०५
शेल्स—१२
शेइ कगान—१३२ (तुनशेख)
श्वेतहूण—१२८ (हेफ़ताल)
श्वेतांग—२४
सइवाङ्—८६, १३८ (शक)
सईद अब्दुल्ला-पुत्र—२८६ (राज्यपाल)
सईद अम्र-पुत्र—२८३
सईद उस्मान-पुत्र—२७०
सकरौका—७३-७४ (शक)
सतलुज—१७५
सद्रेजहां—३४९, ४२७, ४४६ (बुखारा)
सन्मी—१३०
सपियन मानव—१९
सप्तगिद—१५० (ऊपरी हेलमन्द-उपत्यका)
सप्तनद—५६ (की पित्तल-युगीन संस्कृतियां— अन्द्रोनीय, करासुक, मिनूसून), ७३, १०२, ११०, १३८-३९, २३३ (तुर्किस्तान), २५०, ३५० (सात नदियां—अरिस, असातलस, चू इलि, कोकसकराताल, शेसा, आगूज), ४६२, ४८७
सप्तसिन्धु—६१, १४४ (पंजाब), १४६ (हफ्तहिन्द)
सफावी—२९३ (वंश)
सफ्फार—३८८ (इमाम)
सफ्फारी—२९७ (वंश), ३१८-२२ ३६३
सफ्फाह—२९३ (अब्बासी खलीफा १), २९७-३०१
समरकन्द—२८, ६६, ९२, १३३, १३५, २२० (समजीकान), २२७, २६३, २७०-७१, २८२ (मूर्त्ति-ध्वंस), २८८, ३००, ३२९, ३२९, ३३२, ३६१, ३६९, ३७१, ३७६, ३८९, ४५१ ४५२ (ख्वारेज्मशाह की राजधानी), ४६८, ४७४, ४७५, ४८५ (विशेष), ४८४, ४८८, ४९०
समिजान—२८० (नगर)
सम्पत्ति—५३ (वैयक्तिक)
सरखियान—४०० (बलखके पास)
सरख्श—१६७ (हरीरूद तटे) २८०, २९४, ४१४, ४३७, ४४५, ४५४, ४८४ (= सरक्श)
सरत—३७ (ताजिक)

सरमात—१०१, १३८, १३९
सरमातिक—६ (सागर) ८, ९, १०
सरिग—६१
सरिम—६१, २२५ (सरि-मगोल)
सरींकुल—४६५
सरीपुल—१६७, ४६८
सलूकिया—२९७ (तस्पोन)
सलामी—१५९
सलजूक—२३१ (तकमक-पुत्र) ४०५ (का पुत्र इस्राईल)
सलजूक—२३१ (किपचक, आगूज)
सल्जूकी—२३१ (किपचक, आगूज़), ३२६, ३७३, ४११, ४१६-३१ (वंश), ४३१ (पिछले सल्जूकी) ४३
सल्म जियाद-पुत्र—२७० (राज्यपाल), २७१, ३१३
संश्लेषात्मक—६७ (भाषा)
सहस्रधारा—१३२ (लिङ-यू)
सहस्रनगर—१७२ (बलख)
सहस्रनगरी—१६८
"सहीहबुखारी"—३६४ (संग्राहक अब्दुल्ला बुखारी)
साइबेरिया—१७२
साकेत—१७५, १७६
साक्या—४० (तिब्बत)
सागवरा—४२९
सागला—१७५, १८० (स्याल-कोट), १८१
सातुक—३२५ (कराखानी), ३२६
साम—४३४ (गोरी)
सामान—३६१ (बहराम चोबीन वंशज)
सामानी—२३१, ३०९, ३६१-७३, ३९९
साम्यवाद—२९६
साम्यवादी—३०५
सालिगा—४६२ (नदी)
सालीसराय—४७४ (तेर्मिज)
साव—२९४ (स्थान)
सासानी—११३, १६१, १६८, ३०२
साहिबखबर—४२० (गुप्त-चर)
सिकन्दर—८२, ४६६
सिकुल—२५१ (नगर, इस्सि-कुल)
सिक्के—३११ (अब्बासी)
सिगनाक—४२८, ४२९ ४४
सिङक्याङ—७३, १२२
सिंजर—३४८, ३४९, ३८७, ३४९, ४२५-३१ (सल्जूकी ९, ४४०, ४५४, ४६२
सिंजर । मलिक—३५२
सिंजरशाह—४४६ (खुर सानी)
सिथ—६४ (=शक)
सिथिया—६४
सिंध—३६ (उपत्यका), ५६, ५७, ६६, १२२, १४४ १४६ (नदी), १६८, १७४, १८२, २५६, २८१, (अरब-विजय), ३६३, ३६४, ३९२ ४८१, ४८२
सिन्धहिन्द—४२१
सिपहसालार—३७४
सिब—१३७, १३८ (तुर्क)
सिबिर—२३४ (खाकान), ४६२ (जाति)
सिबिली—१०९, ११८, (पू० तुर्क राजा)
सिबेरिया—१५९, ३७६ (= साइबेरिया भी)
सिमकन—३३० (बैकलिग)
सिमजूर—३२८ (अबू अली, खुरासान राज्यपाल)
सिमजूरी (अबुल्कासिम—३७०, ३७१, ३७४
सिमजूरी अबुल्हसन—३६६
सियान्पी—२३३, २४६ (तांबा) ३३४
सियान्फू—८६
"सियासतना"—१३९
(निजामुल्मुल्क की कृति) ३९२, ४०८
सिरकप—१७५ (तक्षशिला)
सिरदरिया—७, ५६, ६४ (यक्सर्त), १००, १४५, २१९, २२२ (शे), २५६, ४८७
सिरामुरैन—११७ (नदी), ३३४, ३३५, ३४०
सिरिया—१६७ (शाम), २९९ ३५७, ४६१
सिलिसिया—१४९
सिलूरियन—५
सिविर—१३० (सुबिली)
सिवा नोमानी—३०१
सिवो—११७ (मंगोल)
सिशेखू—१२९, १३४ (प० तुर्क राजा)
सिंहल—५२, १७३
सीना—३६८, ३६९, ३८२ (=बूअली सीना)
सीयू—८५
सीलू—३३७
सीस्तान—६४, १६४, १७१, १७९, १८०, २७८, ३०४
सीहाउ—१३० (धार)
सुइ—११० (नदी), ११३ (वंश), ११५, १३०
सुइशान्—२४६ (इस्सिकुलके पूर्वके हिमाल)
सुकरात—३६५
सुग्दा—६४, १५० (जरफ़शां उपत्यका)
सुग्ध—६४ (जरफ़शां नदी)
सुग्नागतगिन—४६५ (बुज़ार-पुत्र)
सुङ—१३१ (थाङ), २४५ (वंश)
सुतिरोस्—१७८ (त्राता)
सुतुलिसे—२२० (ओश्रूसना)
सुदास—१४४
सुन्नी—२९३ (संप्रदाय:हनफी मालिकी, शाफ़ई, हम्बली)
सुबुक्तगिन—३२५ (गज़नवी), ३२८, ३३१, ३४९, ३६७,

३६८, ३८०, ३८१, ३९५-९८

सुबुदइ—४६७ (सुबुदय), ४७३, ४७१, (सुबोतइ), ४७३ (सुबुतइ), ४७४ (सुबुतय), ४८५ (सुबोतइ, चिंगिस-पुत्र)

सुभगसेन—१७४ (मौर्य)

सुमात्रा—१५

सुयाब—११०, १३५, २४८, २५१ (चूतटे कराबुलक)

सुरखतपुत्र—३७२

सुरियानी—२३४ (लिपि)

सुर्खबुत—२२३ (बामियान)

सुर्खान—१३५ (नदी), ४८९

सुलू—१२४, १२९, १३६-३७ (प० तुर्क खान), १३६ (अबूमुजाहिम), २२६, २३२, २८६ (खाकान) २८८, २९०

सुलेमान—२८२ (उमैया खलीफा)

सुलेमान तगिन—३८७ (कराखानी)

सुल्तान—३७३, ३९९ (महमूद)

सुल्तानशाह—४४५-४७ (ख्वारेज्मी)

सुवर्णपथ—१७२

सुवास—२३१ (आगूज़)

सुवास तगिन—३७२ (कराखानी)

सुवासी तगिन—३९९

सुहरावर्दी—४५३ (शेख शहाबुद्दीन)

सूजिया—१२२३१ (तुर्गिस राजधानी),१३६० (कराशार २), २३३ (बलाशगून)

सूनिसिर—११७

सूफी,—३२६ (संत), ३६५, ३८८

सूबरली—४४४ (नगर)

सूमाक्यांङ—८८

सूमान—२२२, २८१

सूरत—८

सूर्य—६९ (देवता), १८४ (मूर्त्ति)

सूली—१३२ (सोग्द)

सूसियाना—१६८

सेइन्दा—२३६

सेखू—१२९

सेमेरेच्ये—६१ (सप्तनद)

सेमिकना—२४९

सेयन्दा—११६, ११७, ११८, १३७, २३४ (नदी)

सेरेस—१७२, १७३ (वूसुन)

सेलिंगा—९५ (सेलंगा), २३४ (नदी), २३८ (अभिलेख)

सेलूक—१६७ (= सेल्यूक भी)

सेलूकी—१६१

सेल्यूक—१६७ (सेलूक), १६५ ६८, १७०, १७३, १७४, १७७ (२, ३)

सेल्यूकिया—१७१ (राजधानी), १८२ (तस्पोन)

सेल्यूकीय—१७३, १८२

सैराम—२३२, ४८७, ४८८

सोगे—१२९, १३५ (प०तुर्क राजा), (तुर्गिस वंश) २२६

सोग्द—७४, ८७, १०१, १३५, १४५, १६०, १६७, १६८, १७३, १७५, १७८, २२० (सूही), २२६ २७१ (सुग्ध, सोग्ध भी)

सोग्दियाना—१७१

सोग्दी—११०, १२८, १३२ (सूली), १३८, १६४,२४९

सोतेर—१८१

सोमनाथ—३९२

सोरेन—१८३ (सेनापति)

सोलूजे—१२, २३

सोवियत रूस—६१, ७९ १५८ (क्रान्ति)

सौराहुर्री—२८८,२८९ (अरब सेनप)

सौराष्ट्र—१८३

स्कुथ—६४ (=शक)

स्कोल—६४ (=सकोल, शक)

स्क्लाव—१०१ (शक)

स्तेपी—१२

स्त्रतेगोस—१६७ (क्षत्रप)

स्त्रात—१८० (मिनांदर-पुत्र १), १८१ (२ भारत)

स्पर्दा—१४९ (लिदिया, सुसिया)

स्पितामा—१६४ (सोग्दी), १६५, १६७

स्पेन—१२२, २४६

स्याउबेन्—१६९

स्यान्बुङ—२४२ (थाङ)

स्यान्पी—९५, ९६, १०३, १०४ (तुङहू), १०४ (वंश) १११, १२२ (देखो सियान्पी भी)

स्यान्-बो—८९

स्यालकोट—१८१ (देखो सागला)

स्लाव—२५, ३५, १०१, २३१, ३७६

स्वात—१७५

स्वान्चुङ—३०० (थाङ), ४६२ (किन्)

स्वार्ज—४९६ (तोप-निर्माता)

स्वेन्चाङ—२८, १२५, १३१-३३, १३८, २१८-२६

स्वेन्चुङ—१२५ (थाङ), १३६, २४५, २९९

स्वेल्तो—९० (चीन), ९९

हज़ारास्प—१६५ (जारिअस्प) २८१, ४१०, ४२६ (ख्वारेज्म), ४२८, ४३७, ४४१

हज्जाज—२७२ (मलिक), २७८, २८०, २८२, २८२ (मृत्यु)

हज्र-असवद्—२५६

हनफी—२९३

हफ्तहिन्दु—१४७

हंबली—२९३ (सुन्नी)

हब्शा—४२१

हमदान—१५६ (हमदान), २४५ (अखवतन), २९४, ३०८, ३६९, ४४७, ४७३

हयतान—१५६ (हमदान)

हुरउवती—१५० (ग्रीक अर्खो-शिया)
हुरमेन—४२३ (पंडित)
हुरवी—४५५ (ख्वारेज्मी वजीरमुहम्मद)
हुराशर—१२८ (कराशर), १३७, २४५ (हरासर)
हुरोरूद—१६७
हुरेयव—१४९ (हिरात)
हुर्जमा खुजाई—३०७ (राज्य-पाल)
हलब—३०५ (अलेप्पो), ३६५
हलवाई—२८४ (स्थान)
हसन सब्बाह्—३९२ (इस्मा-ईली), ४२३, ४५३
हाउस्यान्चो—२४९
हाकिम—३७५ (प्रदेशपति)
हाकिम अमीर-पुत्र—२६७ (राज्यपाल)
हाचाउ—२४६
हाजिब—३७४ (तंबूकमांडर)
हाजिबहुज्जाब—३७४ (प्रधान सेनापति)
हादी—३०६, (अब्बासी खलीफा)
हानेन—३१० (अनुवादक)
हान्—८८ (वंश), १११, ११७, १६९
हामी—९९, १२५, १२८, १३३, ३३३
हारिस सूरैज-पुत्र—२८९ (शिया-नेता), २९२,२९४
हारून—३०८, ४१० (ख्वारे-ज्मशाह), ४१८
हारून तगिन—३८७ (करा-खानी)
हारून रशीद—३०७ (अब्बासी ५)
हारून शहाबुद्दौला—३२८ (कराखानी)
हार्मोन—२५
हाशिम—२९७ (वंश)
हिन्दो—३४
हिन्दो-युरोपीय—३४ (भाषा)
हिन्दुकुश—६४, १६८ (परोपमिसदे), १७५, १७९, २२२, २२३, ३०४, ३१८, ४५४, ४६६, ४६६, ४८१
हिंदूयुरोपीय—६५ (वंश), ६६
हिन्दुस्तान—१०७, ३९५
हिन्दूखान—४३६ (मलिकशाह-पुत्र), ४४९ (ख्वारेज्मी)
हिपारची—१८२ (सबडि-वीजन)
हिमयुग—९, १०, ११, १३
हिमयुग । अन्तिम—६
हिमयुग । चतुर्थ—७ १९ ३१
हिमयुग । तृतीय-,—१८
हिमयुग । प्रथम-,—१०, १५
हिमसन्धि—१०, ११
हिमवन्त—४८९ (पर्वत)
हिमवन्त । महा—२२१ (हिंदू-कुश) (= परोपमिसदे भी)
हिमानि—१०
हिमालय—५, ६, ४८९
हिमोतला—२२२
हिया—१६०, २४६ (तंगुत), ३४४, ३४६ (अम्दोराज-धानी)
हिराक्लियस्—२१८
हिरात—२७०, २८० ३०४, ३६१, ३६४, ३७१, ४३३, ४३७, ४४९, ४५०, ४८३
हिशाम—२८७ (उमैया ९)
हीनयान—२२४
हुइचुङ—३४७ (शुङ)
हुफ्रात—१४५, १४९ (फुरात नदी)
हुमैद—३०४ (राज्यपाल)
हुंगरी—१३९
हुर्कनिया—१४७, १४९ (पार्थव), १८०
हुलागूखान—२९७
हुविले नोयमन—३५६ (कुबिले०)
हुविष्क—२०७
हुशामुद्दीन—३४९ (बुखारा सद्रेजहां)
हुशिकान्—२२३
हुसैन—३६२ (ताहिर-पुत्र), ४५४ (इमाम)
हू—११९ (सुरियानी, ईरानी, हिन्दू), ११७ (अ-तुर्क), १२९ (सोग्द)
हूण—६५, ६७, ६८, ७४, ७९-९६, ८० (राजावलि), १००, १०२, १०६, १०९, १३८, १३९, १४३, १६९, १७२, १७९, २१६, २१९
हूतु एल् शी ताउकू—९३ (हूण)
हूपेइ—११९
हूलकू—८९ (हूण)
हूलूहू—८१, ८८ (हूण)
हूहान्ये—९१, ९२
हेफ्ताल—११३, ११४, १२८ (श्वेतहूण), १३०, १६१ (राजा पेइकन्द) १६५ (एफ्ताल),२११-१६, २१९
हेराक्लियस्—१३० (विज-न्तीय)
हेरेकल—१८४
हेलियोकल—१६९, १७८, १७९, १८०, १८३
हेलेनिक—१५२ (ग्रीक)
हेडलबर्ग—११, १५ (मानव) १७
होक्यान्फू—३४१
होगुइ—२१८
होनान्—१११
होपाउ—४८६ (आतिशबाजी)
होमवर्क—७३ (शक)
होमुंज्द—२१६, २१८ (सासानी ४)
होलोहू—११८ (सुबिली)
होवेदा—३१० (अनुवादक)
होस्सना—१३०
ह्वइह्वाङ—१०७
ह्वहुइ—१२४ (ह्वाङ हो)
ह्वाङचाउ—३४६
ह्वाङहो—७३ (पीत नदी) ११४, ११८, १२४ (ह्वहुइ), १४६, २४५, २४६, ३४१
ह्वारेज्म—६४ (=ख्वारेज्म)
ह्युङनू—८२ (हूण)

क

१



२



३



४



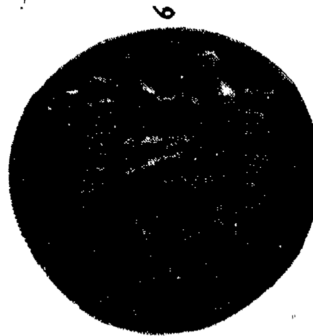
६



५



७



१–३. वसिलेओस्—**अन्तिओखो** II (२६२-२४७ ई० पू०) (पृ० १६८)
२. **दिओदोतोउ** I (२४५-२३० ई० पू०) (पृ० १७०)
४–५. वसिलेओस् **एउथुदिमोउ** I (२२५-१८९ ई० पू०) (पृ० १७१)
६–७. वसिलेउ **एउथुदिमोउ**

१

ख

२

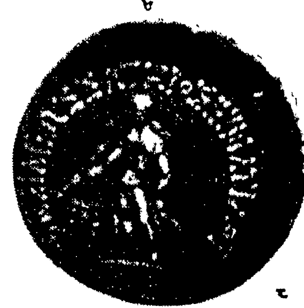




३



४



५



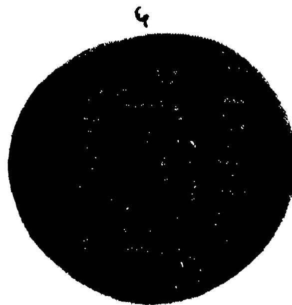
८



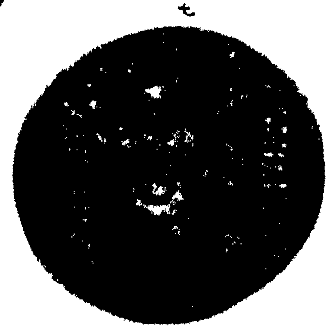
७



६



९



१–२. वसिलेओस् मेगलेउ **एउक्रतिदोउ** (१६९-१५९ ई० पू०) (पृ० १७८)
३–४. वसिलेओस् एओतिरोस् **एउक्रतिदोउ** (१६९-१५९ ई० पू०)
५–६–७. वसिलेओस् **दिमित्रिओउ** (१८३-१६७ ई० पू०) (पृ० १७३)
८–९. वसिलेओस् **अन्तिमखो** (१५० ई० पू०) (पृ० १७५)

ग







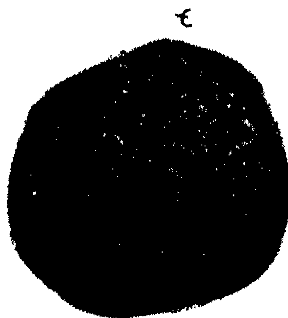












१–२. वसिलेओस् दिकइओउ (पृ० १७९) इलिओक्लेओउस् (१५९-१३६ ई० पू०)
३–४. वसिलेओस् एउथुदिमोउ (१८३-१७४ ई० पू०) (पृ० १७१)
५–६. वसिलेओस् अगथोक्लैओउस् (५०-० ई० पू०) (पृ० १७९)
७. वसिलोओस् दिकइओउ ह्लिओक्लेओउ महरजस ध्रमिकस हेलियक्रेयस (१५९-१३६ ई० पू०) (पृ० १७९)
८. अपोल्लोदोतोउ ज़ोतिरोस् महरजस अपलदतस (ई० पू० २ शतकं) (पृ० १७९)
९. वसिलेओस् मेगलेउ अज़ोउ (ई० पू० १ शतक) महरजस रजदिरजस महतस अयस (पृ० १८२)